३० ॥

'कल्याण'के प्रेमी पाठकों और ग्राहकोंसे नम्र-निवेदन

(१) 'श्रीरामाङ्क' नामक यह विशेषाङ्क प्रस्तुत है। श्रीरामाङ्कके लिये प्राप्त उपादेय सामग्री-का समावेश इस एक ही अङ्कमें हो सकना कठिन था, अतः फरवरी और मार्च मासके दोनों अङ्क भी क्रमशः प्रथम और द्वितीय परिशिष्टाङ्कके रूपमें प्रकाशित होंगे। दोनों परिशिष्टाङ्कोंसहित विशेषाङ्कको 'श्रीरामाङ्क' समझना चाहिये। श्रीरामाङ्कमें भगवान् श्रीराम और भगवती श्रीसीताके स्वरूपतत्त्व, नामतत्त्व, लीलातत्त्व और धामतत्त्वपर समाजके शीर्षस्थानीय आचार्यों, विद्वानों एवं भक्तोंके बड़े ही महत्त्वपूर्ण विचार संगृहीत हैं। इस अङ्कमें भगवान् श्रीरामके विभिन्न आदर्श गुणों, उनके प्रभाव, महत्त्व आदिपर भी विशेष प्रकाश डाला गया है। भगवान् श्रीरामकी लीला-कथाका अपनी वाणी अथवा लेखनीद्वारा जगत्में प्रचार-प्रसार करनेवाले प्रमुख ऋषियों, आचार्यों, कवियों, आदिका भी संक्षिप्त परिचय इसमें दिया गया है। भगवान् श्रीरामके लीला-परिकरोंका संक्षिप्त परिचय एवं प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कतिपय श्रीरामभक्तोंके सुन्दर और रोचक आख्यान भी इसमें विद्यमान हैं। भगवान् श्रीरामकी लीलासे सम्बद्ध प्रमुख स्थानों, पर्वतों, नदियों एवं सरोवरोंका माहात्म्य तथा श्रीरामके वन-गमन एवं वहाँसे लौटनेके मार्गका परिचय भी दिया गया है। भगवान् श्रीरामकी प्रसन्नता और कृपा-प्राप्तिके लिये तथा उनके साक्षात्कारके लिये अनुष्ठान, मन्त्र-स्तोत्र आदि भी दिये गये हैं और श्रीराम-सम्बन्धी व्रतों एवं उत्सवोंकी भी चर्चा है। महात्मा गांधीके लिये आदर्श तथा भारतीय शासन-व्यवस्थाके लिये स्पृहणीय 'रामराज्य'का भी मूल्याङ्कन एवं वर्णन इस विशेषाङ्कमें है। भारत देश तथा हिंदू समाज जिस विकट और संघर्षपूर्ण परिस्थितियोंमेंसे गुजर रहा है, उस परिस्थितिमें भगवान् श्रीरामके गुणोंको जीवनमें उतारनेकी तथा उनके चरित्रोंपर मनन करनेकी नितान्त आवश्यकताका प्रतिपादन करनेवाले लेख भी हैं। भगवान् श्रीरामका तथा रामकथाका भारतकी सीमासे बाहर जो प्रचार और विस्तार हुआ है, उसकी झलक लेखों और चित्रोंके माध्यमसे दी गयी है। साधकों, उपासकों तथा अनुष्ठान-कर्ताओंके लिये मार्च मासमें प्रकाशित होनेवाला द्वितीय परिशिष्टाङ्क अधिक उपयोगी होगा, जिसमें मन्त्र-पूजनविधि एवं स्तोत्र-स्तुतियोंकी प्रधानता है। इस प्रकार भगवान् श्रीराम-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक विषयोंपर प्रामाणिक सामग्रीका संग्रह इस अङ्कमें है।

(२) इस विशेषाङ्कमें ७०० पृष्ठोंकी पाठ्य-सामग्री है। सूची आदि अलग हैं। बहुत-से बहुरंगे चित्र भी हैं। अवश्य ही हम जितने और जैसे चित्र देना चाहते थे, उतने और वैसे परिस्थितिवश नहीं दिये जा सके। हमारी विवशता समझकर पाठक महोदय क्षमा करें। पर जो दिये गये हैं, वे सुन्दर तथा उपयोगी हैं।

(३) कागज, डाक-महसूल, वेतन आदिका व्यय बढ़ जानेके कारण गतवर्ष 'कल्याण'में बहुत घाटा रहा। इस वर्ष कागजोंका मूल्य बढ़ गया है। वी० पी०, रजिस्ट्री, लिफाफे आदिमें भी डाक-महसूल बढ़ रहा है। कर्मचारियोंका वेतन-व्यय भी बहुत बढ़ा है। कम वजनके छपाईके कागज बहुत कम बनने लगे हैं और अधिक वजनके लेनेपर खर्च और भी बढ़ गया है। इन सब खर्चोंकी बढ़ी रकमोंको जोड़नेपर तो 'कल्याण'का वर्तमान १०.०० लगभग पौनी कीमतके बराबर होगा। इस अवस्थामें 'कल्याण'के प्रेमी ग्राहकोंको तथा पाठकोंको चाहिये कि वे प्रयत्न करके अधिक-से-अधिक ग्राहक बनाकर रुपये भिजवानेकी कृपा करें।

(४) इस बार भी विशेषाङ्क कुछ देरसे जा रहा है, अनिवार्य परिस्थितिके कारण ही ऐसा हुआ है। ग्राहक महानुभावोंको व्यर्थ ही थोड़ा-बहुत परेशान होना पड़ा, हमें इस बातका बड़ा खेद है। ग्राहकोंकी सहज प्रीति तथा आत्मीयताके भरोसे ही हमारी उनसे क्षमा-प्रार्थना है।

(५) 'कल्याण'का विशेषाङ्क तो निकल गया, पर इस समय देशमें चारों ओर जैसी अशान्ति, अव्यवस्था, उच्छृङ्खलता, अनियमितता, अनुशासनहीनता आदिका विस्तार हो रहा है, उसे देखते कहा नहीं जा सकता कि 'कल्याण'का प्रकाशन कबतक हो सकेगा या किस रूपमें होगा। अतएव ग्राहकोंको यह मानकर संतोष करना चाहिये कि उनके भेजे हुए दस रुपयेके पूरे मूल्यका उन्हें यह विशेषाङ्क मिल गया है। अगले अङ्क भेजे जा सकें तो अवश्य भेजे जायँगे, नहीं तो उनके लिये मनमें क्षोभ न करें। परिस्थितिवश ही ऐसी प्रार्थना की जाती है।

(६) जिन सज्जनोंके रुपये मनीआर्डरद्वारा आ चुके हैं, उनको अङ्क भेजे जानेके बाद शेष ग्राहकोंके नाम वी० पी० जा सकेगी। अतः जिनको ग्राहक न रहना हो, वे कृपा करके मनाहीका कार्ड तुरंत लिख दें, ताकि वी० पी० भेजकर 'कल्याण'को व्यर्थ नुकसान न उठाना पड़े।

(७) मनीआर्डर-कूपनमें और वी० पी० भेजनेके लिये लिखे जानेवाले पत्रमें स्पष्टरूपसे अपना पूरा पता और ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या याद न हो तो 'पुराना ग्राहक' लिख दें। नया ग्राहक बनना हो तो 'नया ग्राहक' लिखनेकी कृपा करें। मनीआर्डर 'मैनेजर, कल्याण' के नाम भेजें। उसमें किसी व्यक्तिका नाम न लिखें।

(८) ग्राहक-संख्या या 'पुराना' ग्राहक न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें दर्ज हो जायगा। इससे आपकी सेवामें 'श्रीरामाङ्क' नयी ग्राहक-संख्यासे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्यासे वी० पी० चली जायगी। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप मनीआर्डरद्वारा रुपये भेजें और उनके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आपसे प्रार्थना है कि आप कृपापूर्वक वी० पी० लौटायें नहीं, प्रयत्न करके किन्हीं सज्जनको 'नया ग्राहक' बनाकर उनका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेकी कृपा करें। आपके इस कृपापूर्ण प्रयत्नसे आपका 'कल्याण' नुकसानसे बचेगा और आप 'कल्याण'के प्रचारमें सहायक बनेंगे। आपके विशेषाङ्कके लिफाफेपर आपका जो ग्राहक-नम्बर और पता लिखा गया है, उसे आप खूब सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी० पी० नंबर भी नोट कर लेना चाहिये।

(९) 'श्रीरामाङ्क' सब ग्राहकोंके पास रजिस्टर्ड पोस्टसे जायगा। हमलोग जल्दी-से-जल्दी भेजनेकी चेष्टा करेंगे तो भी सब अङ्कोंके जानेमें लगभग तीन सप्ताह तो लग ही सकते हैं। ग्राहक महोदयोंकी सेवामें विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार जायगा। इसलिये यदि कुछ देर हो जाय तो परिस्थिति समझकर कृपालु ग्राहकोंको हमें क्षमा करना चाहिये और धैर्य रखना चाहिये।

(१०) 'कल्याण-व्यवस्था-विभाग', 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी) और 'साधक-संघ'के नाम गीताप्रेसके पतेपर अलग-अलग पत्र, पारसल, पैकेट, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, बीमा आदि भेजने चाहिये तथा उनपर केवल 'गोरखपुर' न लिखकर पत्रालय—गीताप्रेस, जनपद—गोरखपुर (उ० प्र०)—इस प्रकार पता लिखना चाहिये।

(११) 'कल्याण-सम्पादन-विभाग'के नाम भेजे जानेवाले पत्रादिपर पत्रालय—गीतावाटिका, जनपद—गोरखपुर (उ० प्र०)—इस प्रकार पता लिखना चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

|| श्रीहरिः ||

श्रीरामाङ्ककी विषय-सूची

चित्र-सूची

बहुरंगे चित्र

दुरंगा चित्र

एकरंगे चित्र

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और रामचरितमानस हिंदू-समाजके ऐसे दिव्य ग्रन्थ हैं, जिनके अध्ययनसे तथा प्रतिपाद्य सिद्धान्तोंके मननसे अन्तरमें अचिन्त्य अलौकिक ज्योति प्रस्फुटित हो उठती है । एक ओर व्यक्तिका व्यक्तिगत जीवन समुन्नत होता है तो दूसरी ओर समाजका सम्पूर्ण वातावरण श्रेष्ठ गुणोंसे सुवासित होता है । आजके तमसाच्छन्न समाजमें तो ऐसे दिव्य ग्रन्थोंके अधिकाधिक पाठ और स्वाध्यायकी आवश्यकता है, जिससे इनके आदर्शोंका अधिकाधिक प्रचार हो तथा उनकी जन-मानसमें प्रतिष्ठा हो । इसी उद्देश्यसे 'गीता-रामायण-प्रचार-संघ' की स्थापना हुई । इसके सदस्यको नियमितरूपसे गीता और मानसका पाठ-स्वाध्याय करना होता है । अबतक सदस्योंकी संख्या ५५,००० से अधिक है । इस संस्थाके द्वारा श्रीगीताके ६ प्रकारके और श्रीरामायणके ३ प्रकारके एवं उपासना-विभागमें नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी या मानसिक पूजा करनेवाले सदस्य बनाकर श्रीगीता और श्रीरामायणके अध्ययन एवं उपासनाके लिये प्रेरणा की जाती है । विशेष जानकारीके लिये पत्रव्यवहार करना चाहिये । पता इस प्रकार है—

मन्त्री—श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, 'गीताभवन', पत्रालय—स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश होकर)
जनपद—पौड़ी गढ़वाल (उ० प्र०)

साधक-संघ

उसी मानवका जीवन श्रेष्ठ है, जो भगवत्परायणता, दैवीसम्पत्तिके गुण, सदाचार, आस्तिकता और सात्त्विकतासे सम्पन्न है । मानवमात्रका जीवन ऐसे दिव्य भावोंसे परिपूर्ण हो, एतदर्थ 'साधक-संघ'-की स्थापना की गयी । कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी वर्ण या आश्रमका हो, नारी या पुरुष हो, हिंदू या अहिंदू हो, बिना कोई शुल्क दिये इस संघका सदस्य बन सकता है । इस संघके सदस्यको कुल २८ नियमोंका पालन करना होता है, जिसका स्पष्टीकरण एक प्रपत्रपर छपा है । प्रत्येक सदस्यको ४५ पैसे मनीआर्डरसे अथवा डाकटिकटके रूपमें भेजकर 'साधक-दैनन्दिनी' मँगवा लेनी चाहिये तथा प्रतिदिन उसमें नियम-पालनका विवरण लिख लेना चाहिये । इस संघके सदस्योंका यह एक अनुभूत तथ्य है, जो श्रद्धा एवं तत्परतापूर्वक नियम-पालनमें संलग्न रहता है, उसके जीवनका स्तर श्रेष्ठसे श्रेष्ठतर होता चला जाता है । इस समय इसके १०,४००से अधिक सदस्य हैं । लोगोंको स्वयं इसका सदस्य बनना तथा अपने सगे-सम्बन्धियों, स्वजनों-सुपरिचितोंको सदस्य बनाना चाहिये । इससे सम्बन्धित किसी भी प्रकारका पत्रव्यवहार नीचे लिखे पतेपर करना चाहिये—

संयोजक—साधक-संघ, पत्रालय—गीतावाटिका, जनपद—गोरखपुर (उ० प्र०)

श्रीगीता और रामायणकी परीक्षाएँ

हिंदू वाङ्मयके दिव्यतम रत्न हैं—श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस, जिनमें श्रेय-प्रेयका पूर्ण विवेचन है । ये वास्तवमें सार्वभौम तथा सर्वकल्याणकारी पवित्र ग्रन्थ हैं । इन ग्रन्थोंका आश्रय लेनेसे लोक, परलोक और परमार्थ—सभी सुधरते हैं । भारत ही नहीं, भारतके बाहर भी इन ग्रन्थोंकी गौरवपूर्ण तथा मङ्गलमयी श्रेष्ठताका समादर है । इन ग्रन्थोंका दिव्यालोक जन-जनतक पहुँच सके तथा उनकी जागतिक या आध्यात्मिक उन्नतिके पथको आलोकित किया जा सके, एतदर्थ गीता और रामायण-परीक्षाकी व्यवस्था की गयी थी । परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र पुरस्कृत भी होते हैं । लगभग पाँच सौ स्थानोंपर परीक्षा-केन्द्र हैं । विशेष विवरणकी जानकारी नियमावलीसे हो सकती है । परीक्षा-सम्बन्धी सभी बातोंकी जानकारीके लिये नीचे लिखे पतेपर पत्र-व्यवहार करें—

व्यवस्थापक—गीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गीताभवन, पत्रालय—स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश होकर)
जनपद—पौड़ी गढ़वाल (उ० प्र०)

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्सङ्गकी सूचना

प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी गीताभवन, स्वर्गाश्रममें सत्सङ्गका आयोजन होनेकी बात है। ... प्रार्थना है कि सदाकी तरह सत्सङ्गी महानुभाव तथा माताएँ-बहिनें अधिकाधिक संख्यामें केवल सत्सङ्ग व भजनके पवित्र उद्देश्यसे ऋषिकेश पधारें। श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी शुद्ध वैशाख ... अमावास्या (१३ अप्रैल, १९७२) तक वहाँ पहुँचनेकी बात है। परमश्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी ... भी प्रार्थना की गयी है तथा अन्यान्य महात्मागण भी पधारनेवाले हैं।

नौकर-रसोइया आदि यथासम्भव साथ लाने चाहिये। स्वर्गाश्रममें नौकर-रसोइया मिलने कठिन हैं। स्त्रियाँ पीहर या ससुरालवालोंके अथवा अन्य किन्हीं सम्बन्धीके साथ वहाँ जायँ; अकेली न जायँ एवं ... आनेकी हालतमें कदाचित् स्थान न मिल सके तो कृपया दुःख न करें। गहने आदि जोखिमकी चीजें ... नहीं रखनी चाहिये। बच्चोंको जहाँतक बने, साथ न ले जायँ। गतवर्ष बच्चोंके कारण बड़ी बाधाएँ आ गयी ... नितान्त निरुपाय हों तो बच्चोंको वे ही लोग साथ ले जायँ, जो उन्हें अलग डेरेपर रखनेकी व्यवस्था कर सकें ... क्योंकि बच्चोंके कारण स्वाभाविक ही सत्सङ्गमें विघ्न होता है। खान-पानकी चीजोंका प्रबन्ध यथासाध्य किया ... रहा है, यद्यपि इस बार भी बड़ी कठिनता है; परंतु दूधका प्रबन्ध होना बहुत कठिन है।

सदाकी भाँति ही यह नम्र निवेदन है कि सत्सङ्गमें पधारनेवालोंको ऐश-आराम या केवल जलवायु-परिवर्तन की दृष्टिसे न जाकर सत्सङ्गके उद्देश्यसे ही जाना चाहिये तथा वहाँ यथासाध्य नियमित तथा संयमित साधनामें बिताते हुए सत्सङ्गमें अधिक-से-अधिक भाग लेना चाहिये।

'कल्याण'के पिछले प्राप्य विशेपाङ्क

(१) संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क— पृष्ठ-सं० ९८२ .... मूल्य ७.५०
(भगवान् श्रीराधा-माधवकी मधुर लीलाएँ)

(२) श्रीरामवचनामृत-अङ्क— पृष्ठ-सं० ७०४ .... मूल्य ८.५०
(भगवान् रामके पुराणोंमें वर्णित वचन)

(३) परलोक और पुनर्जन्माङ्क— पृष्ठ ६९६, सजिल्द .... मूल्य १०.५०
(परलोक और पुनर्जन्मकी जानने योग्य बातें)

(४) अग्निपुराण-गर्गसंहिता-अङ्क— पृष्ठ ७०० .... मूल्य ९.००
(अग्निपुराण—अ० १—२००), (गर्गसंहिता अ० १—२०१)

(५) अग्निपुराण-गर्गसंहिता-नरसिंहपुराण-अङ्क— पृष्ठ ७०० .... मूल्य १०.००
(अग्निपुराण—अ० २०० के बाद सम्पूर्ण, गर्गसंहिता—अ० २०१ के बाद सम्पूर्ण,
नरसिंहपुराण सम्पूर्ण) सजिल्द .... ,, ११.००

(डाकखर्च सबमें हमारा)

व्यवस्थापक—'कल्याण' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीश्रीसीताराम

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥ (रामचरितमानस)

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

दक्षिणे लक्ष्मणो यस्य वामे च जनकात्मजा । पुरतो मारुतिर्यस्य तं वन्दे रघुनन्दनम् ॥

(रामरक्षास्तोत्र, ३१)

वर्ष ४६ } गोरखपुर, सौर माघ, श्रीकृष्ण-संवत् ५१९७, जनवरी १९७२ { संख्या १ पूर्ण संख्या ५४२

श्रीरामकी वन्दना

श्यामाम्बुदाभमरविन्दविशालनेत्रं

बन्धूकपुष्पसदृशाधरपाणिपादम् ।

सीतासहायमुदितं धृतचापबाणं

रामं नमामि शिरसा रमणीयवेषम् ॥

(श्रीयामुनाचार्य)

जो नील मेघके समान श्यामवर्ण हैं, जिनके कमलके समान विशाल नेत्र हैं, जो बन्धूक-पुष्पके समान अरुण ओष्ठ, हस्त और चरणोंसे शोभित हैं, जो सीताजीके साथ विराजमान एवं अभ्युदयशील हैं, जिन्होंने धनुष-बाणको धारण किया है, जिनका वेष बड़ा ही सुन्दर है, उन श्रीरामको मैं सिरसे नमस्कार करता हूँ ।

श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि

(श्रीशिवकृत राम-स्तुति)

श्रीशिव उवाच

सुग्रीवमित्रं परमं पवित्रं सीताकलत्रं नवमेघगात्रम् ।
कारुण्यपात्रं शतपत्रनेत्रं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
संसारसारं निगमप्रचारं धर्मावतारं हृतभूमिभारम् ।
सदाविकारं सुखसिन्धुसारं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
लक्ष्मीविलासं जगतां निवासं लङ्काविनाशं भुवनप्रकाशम् ।
भूदेववासं शरदिन्दुहासं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
मन्दारमालं वचने रसालं गुणैर्विशालं हतसप्ततालम् ।
क्रव्यादकालं सुरलोकपालं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
वेदान्तगानं सकलैः समानं हृतारिमानं त्रिदशप्रधानम् ।
गजेन्द्रयानं विगतावसानं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
श्यामाभिरामं नयनाभिरामं गुणाभिरामं वचनाभिरामम् ।
विश्वप्रणामं कृतभक्तकामं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
लीलाशरीरं रणरङ्गधीरं विश्वैकसारं रघुवंशहारम् ।
गम्भीरनादं जितसर्ववादं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥
खले कृतान्तं स्वजने विनीतं सामोपगीतं मनसा प्रतीतम् ।
रागेण गीतं वचनादतीतं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि ॥

(आनन्दरामायण, सारकाण्ड १२ । ११६—१२३)

श्रीशिवजी बोले—सुग्रीवके मित्र, परमपावन, सीताके पति, नवीन मेघके समान शरीरवाले, करुणाके सिन्धु और कमलके सदृश नेत्रवाले श्रीरामचन्द्रकी मैं निरन्तर वन्दना करता हूँ । असार संसारमें एकमात्र सारवस्तु, वेदोंका प्रचार करनेवाले, धर्मके साक्षात् अवतार, भूभारका हरण करनेवाले, सदा अविकृत रहनेवाले और आनन्दसिन्धुके सारभूत श्रीरामचन्द्रको मैं सदा नमस्कार करता हूँ । लक्ष्मीके साथ विलास करनेवाले, जगत्के निवासस्थान, लङ्काका विनाश करनेवाले, भुवनोंको प्रकाशित करनेवाले, ब्राह्मणोंको शरण देनेवाले और शारदीय चन्द्रमाके समान शुभ्र हास्यसे विभूषित श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमन करता हूँ । मन्दारपुष्पोंकी माला धारण करनेवाले, रसीले वचन बोलनेवाले, गुणोंमें महान्, सात ताल वृक्षोंका (एक साथ) भेदन करनेवाले, राक्षसोंके काल तथा देवलोकके पालक श्रीरामचन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ । वेदान्त (उपनिषदों) द्वारा गेय, सबके साथ समान बर्ताव करनेवाले, शत्रुके मानका मर्दन करनेवाले, गजेन्द्रकी सवारी करनेवाले तथा अन्तरहित देव-शिरोमणि, श्रीरामचन्द्रको मैं सतत नमस्कार करता हूँ । श्यामसुन्दर, भक्तोंको आनन्द देनेवाले, गुणोंसे मनोहर, हृदयग्राही वचन बोलनेवाले, विश्ववन्दनीय और भक्तजनोंकी कामनाओंको पूरी करनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ । लीलामात्रके लिये शरीर धारण करनेवाले, रणस्थलीमें धीर, विश्वभरमें एकमात्र सारभूत, रघुवंशमें श्रेष्ठ, गम्भीर वाणी बोलनेवाले और समस्त वादोंको जीतनेवाले श्रीरामचन्द्रको मैं प्रतिक्षण प्रणाम करता हूँ । दुष्टजनोंके लिये मृत्युरूप, अपने भक्तोंके प्रति नम्रभाववाले, सामवेदके द्वारा स्तुत, मनके भी अगोचर, प्रेमसे गान करनेयोग्य तथा वचनोंसे अगम्य श्रीरामचन्द्रको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ ।

मारुतिकृत श्रीराम-स्तवन

ॐ नमो भगवत उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥

ॐकारस्वरूप पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीरामको नमस्कार है। आपमें सत्पुरुषोंके लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं; आप बड़े ही संयतचित्त, लोकाराधनतत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मण-भक्त हैं। ऐसे महापुरुष महाराज रामको हमारा पुनः-पुनः प्रणाम है।

यत् तद् विशुद्धानुभवमात्रमेकं
स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं
ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥

भगवन्! आप विशुद्ध बोधमात्र, अद्वितीय, अपने स्वरूपके प्रकाशसे गुणोंके कार्यरूप जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओंका निरास करनेवाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, शुद्ध बुद्धिसे ग्रहण किये जानेयोग्य, नाम-रूपसे रहित और अहंकारशून्य हैं; मैं आपकी शरणमें हूँ।

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥

प्रभो! आपका इस धराधामपर मनुष्यरूपमें अवतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है। अन्यथा अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वरको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था।

न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः
सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत
न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥

आप धीर पुरुषोंके आत्मा और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं; त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी आसक्ति नहीं है। आप न तो सीताजीके लिये मोहको ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मणजीका त्याग ही कर सकते हैं। आपके ये व्यापार केवल लोकशिक्षाके लिये ही हैं।

न जन्म नूनं महतो न सौभगं
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस-
श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥

हे राम! उत्तम कुलमें जन्म, सुन्दरता, वाक्चातुरी, बुद्धि और श्रेष्ठ योनि—इनमेंसे कोई भी गुण आपकी प्रसन्नताका कारण नहीं हो सकता, यह बात दिखानेके ही लिये आपने इन सब गुणोंसे रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है।

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं
य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ॥

देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य—कोई भी हो, उसे सब प्रकारसे श्रीरामरूप पुरुषोत्तम आपका ही भजन करना चाहिये; क्योंकि आप नररूपमें साक्षात् श्रीहरि ही हैं और थोड़े कियेको भी बहुत अधिक मानते हैं। आप ऐसे आश्रित-वत्सल हैं कि जब स्वयं दिव्य धामको पधारे थे, तब समस्त उत्तरकोसल-वासियोंको भी अपने साथ ही ले गये थे।

(श्रीमद्भागवत ५। १९। ३—८)

भगवान् श्रीरामसे विनय

बिनती केहि बिधि प्रभुहि सुनाऊँ !
महाराज रघुबीर धीर को समय न कबहूँ पाऊँ॥
जाम रहत जामिनि के बीतें, तिहि औसर उठि धाऊँ।
सकुच होत सुकुमार नींद तें कैसें प्रभुहि जगाऊँ॥
दिनकर किरन उदित ब्रह्मादिक रुद्रादिक इक ठाऊँ।
अगनित भीर अमर-मुनि-गन की, तिहि तें ठौर न पाऊँ॥
उठत सभा दिन मध्य सियापति, देखि भीर फिरि आऊँ।
न्हात, खात, सुख करत साहिबी, कैसें करि अनखाऊँ॥
रजनी-मुख आवत गुन गावत नारद तुंबुरु नाऊँ।
तुमहीं कहौ कृपन हौं रघुपति किहि बिधि दुख समझाऊँ॥
एक उपाय करौं कमलापति, कहौ तौ कहि समझाऊँ।
पतित-उधारन 'सूर' नाम प्रभु लिखि कागद पहुँचाऊँ॥

देव !

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो।
तात-मातु, गुरु-सखा, तू सब बिधि हितु मेरो॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै॥

दीनदयाल कहावत 'केसव', हौं अति दीन दसा गह्यो गाढ़ो।
रावन के अघ-ओघ में, राघव ! बूड़त हौं, बरही गहि काढ़ो॥
ज्यों गज की प्रहलाद की कीरति, त्योंही बिभीषन को जस बाढ़ो।
आरत-बंधु ! पुकार सुनौ किन, आरत हौं तौ पुकारत ठाढ़ो॥

'केसव' आपु सदा सह्यो दुक्ख, पै दासनि देखि सके न दुखारे।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुख, त्योंही तहाँ तेहि भाँति सँभारे॥
मेरियै बार अबार कहा, कबहूँ नहिं काहु के दोष बिचारे।
बूड़त हौं महामोह-समुद्र में राखत काहे न राखनहारे॥

साधन सिद्धि राम पग नेहू

श्रीरामप्रेम ही सच्चा स्वार्थ एवं परमार्थ है

सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥
स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥

आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम।
तेहि के पग की पानहीं तुलसी तनु को चाम॥

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोकधाम तजि काम॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥

देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥

× × ×

सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥

× × ×

सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥

× × ×

जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तब पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर॥

× × ×

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना॥
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा॥

× × ×

सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥

श्रीराम-प्रेमके बिना सब व्यर्थ है

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥

× × ×

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू॥

× × ×

सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरि भगति जा...

× × ×

बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥
राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करै न सहस सहाइ॥

रसना साँपिनि बदन बिल जे न जपहिं हरिनाम।
तुलसी प्रेम न राम सों ताहि बिधाता बाम॥

हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम॥

रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुरु पायँ।
तुलसी जिन्हहि न पुलक तनु ते जग जीवत जायँ॥

हृदय सो कुलिस समान जो न द्रवइ हरिगुन सुनत।
कर न राम गुन गान जीह सो दादुर जीह सम॥

स्रवै न सलिल सनेहु तुलसी सुनि रघुबीर-जस।
ते नयना जनि देहु राम! करहु बरु आँधरो॥

रहैं न जल भरि पूरि राम सुजस सुनि रावरो।
तिन आँखिन में धूरि भरि भरि मूठी मेलिये॥

कामु-से रूप, प्रताप दिनेसु-से, सोमु-से सील, गनेसु-से माने।
हरिचंदु-से साँचे, बड़े बिधि-से, मघवा-से महीप, बिषै-सुख-साने॥
सुक-से मुनि, सारद-से बकता, चिरजीवन लोमस ते अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी', जो पै राजिवलोचन रामु न जाने॥

झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे, मद अंबु चुचाते।
तीखे तुरंग मनोगति-चंचल, पौन के गौनहु तें बढ़ि जाते॥
भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते।
ऐसे भए तौ कहा 'तुलसी', जो पै जानकीनाथ के रंग न राते॥

राज सुरेस पचासक को बिधि के कर को जो पटो लिखि पाए।
पूत सपूत, पुनीत प्रिया, निज सुंदरता रति को मदु नाए॥
संपति-सिद्धि सबै 'तुलसी' मन की मनसा चितवैं चितु लाए।
जानकी-जीवनु जाने बिना जग ऐसेउ जीव न जीव कहाए॥

झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जगु, संत कहंत जे अंतु लहा है।
ताको सहै सठ! संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है॥

जानपनी को गुमान बड़ो, तुलसी के बिचार गँवार महा है।
जानकी-जीवनु जान न जान्यो, तो जान कहावत जान्यो कहा है॥

तिन्ह तें खर-सूकर-स्वान भले, जड़ता बस ते न कहैं कछु वै।
'तुलसी' जेहि राम सों नेहु नहीं, सो सही पसु, पूँछ, बिषान न द्वै॥
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवनु जानकिनाथ! जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै॥

गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता, सुत भौंह तकैं सब वै।
धरनी, धनु, धाम, सरीरु भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुखु स्वै॥
सब फोकट-साटक है तुलसी अपनो न कछू, सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवनु जानकिनाथ! जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै॥

सुरराज-सो राज-समाजु, समृद्धि बिरंचि, धनाधिप-सो धनु भो।
पवमानु-सो, पावकु-सो, जमु, सोमु-सो, पूषनु-सो, भवभूषन भो॥
करि जोग, समीरन साधि, समाधि कै, धीर बड़ो, बसहू मनु भो।
सब जाय, सुभायँ कहै तुलसी, जो न जानकि-जीवन को जनु भो॥

जाकें बिलोकत लोकप होत, बिसोक लहैं सुर लोग सुठौरहि।
सो कमला, तजि चंचलता, करि कोटि कला, रिझवै सुर-मौरहि॥
ताको कहाइ, कहै तुलसी, तूँ लजाहि न मागत कूकुर-कौरहि।
जानकि-जीवन को जनु ह्वै, जरि जाउ सो जीह, जो जाचत औरहि॥

सो सुकृती सुचिमंत सुसंत, सुजान सुसील सिरोमनि स्वै।
सुर-तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत हैं ता तनु छ्वै॥
गुन गेहु, सनेह को भाजनु सो, सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सतिभायँ सदा छल छाड़ि सबै, 'तुलसी' जो रहै रघुबीर को ह्वै॥

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं जियँ जाचिअ जानकिजानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे॥
गति देखु बिचारि बिभीषन की, अरु आनु हिएँ हनुमानहि रे।
तुलसी भजु दारिद-दोष-दवानल, संकट-कोटि-कृपानहि रे॥

लालायित राम-भक्तकी भावना

मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥
नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥
होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥

× × ×

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरें जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥

× × ×

राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जन्म सफल करि लेखौं॥

राम-भक्तकी याचना

बार बार मागउँ कर जोरें। मनु परिहरै चरन जनि भोरें॥

× × ×

प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे॥

× × ×

यह बर मागउँ कृपा निकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥
अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥

× × ×

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन॥

× × ×

अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर मागऊँ।
जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ॥

× × ×

बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना॥
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥

राम-भक्तकी अनन्यता

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

जागैं जोगी-जंगम, जती-जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ, मोह, कोह, काम के।
जागैं राजा राजकाज, सेवक-समाज, साज,
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के॥
जागैं बुध बिद्या हित, पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि, धन, धाम के।
जागैं भोगी भोग हीं, बियोगी, रोगी सोगबस,
सोवै सुख 'तुलसी' भरोसे एक राम के॥

श्रीराम—मूर्तिमान् धर्म

(श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीमद्दक्षिणाम्नायशृङ्गेरीशारदापीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराज)

मानवका जीवन तभी उन्नत बन सकता है, जब उसके सामने कोई अच्छा आदर्श हो। बिना आदर्शके अपने-आप विरले ही ऊँचा जीवन प्राप्त कर सकते हैं। स्थिर निश्चय, कर्मण्यता और आदर्श—तीनों मिलकर ही मनुष्यको देवता बना सकते हैं। आदर्शके बिना स्थिर निश्चय और कर्मण्यता उसे गुमराह कर देती है।

हमारे सामने ऐसा कौन-सा आदर्श उपस्थित है, जिसके आधारपर हम अपना जीवन उन्नत बना सकें? पुण्य भारतभूमिपर हजारों महापुरुष उत्पन्न हुए। उन्होंने उत्तम जीवन व्यतीतकर लोगोंका मार्गदर्शन किया। लेकिन 'विग्रहवान् धर्म' तो अकेले श्रीरामचन्द्रजी ही हैं।

राक्षस मारीच तो स्वभावसे ही आसुरी सम्पदासे भरा था। उसमें न दया थी न धर्म; थी तो निष्ठुरता और दम्भ। वह भी अपने प्रभु राक्षसराज रावणसे रामचन्द्रजीके सम्बन्धमें कहता है—'रामो विग्रहवान् धर्मः—श्रीराम मूर्तिमान् धर्म हैं।' (वा० रा० ३। ३७। १३)

यह निर्विवाद सिद्धान्त है कि श्रेय-प्राप्तिके लिये धर्मकी ही शरण लेनी है। अगर मूर्तिमान् धर्म ही मिल जाय तो हमको और क्या चाहिये। सारे श्रेय उनके पैरोंतले पड़े मिलेंगे। मूर्तिमान् धर्म तो श्रीरामचन्द्र ही हैं। उन्होंने कहा है—'लोकस्याराधनार्थाय त्यजेयं जानकीमपि'—संसारकी भलाईके लिये मङ्गल-मूर्ति श्रीजानकीजीको भी त्यागना पड़े तो भगवान् श्रीराम तैयार हैं।'

महर्षि वाल्मीकि श्रीरामजीके विषयमें एक रोचक कथा सुनाते हैं। यह यौवराज्याभिषेकारम्भकी कथा है। राजा दशरथजी बूढ़े हो गये। शरीर जर्जर हो गया। उन्होंने राज-काज चलानेमें अपनेको असक्त पाया, अतः श्रीरामचन्द्रजीका यौवराज्यपदाभिषेक करना चाहा। वे परिषद् बुलाकर अपना मत उनके सामने रखते हैं। पारिषद्लोग बड़े संतोषसे उनके प्रस्तावका अनुमोदन करते हैं—'स रामं युवराजान-मभिषिञ्चस्व पार्थिव।' (वही, २। २। २१)—राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीको आप यौवराज्य पदपर अभिषिक्त करें।'

राजा दशरथको विश्वास न था कि प्रजाजन रामजीपर इतना प्रेम रखते हैं। उनको कुतूहल हुआ। वे परिषद्से पूछते हैं—

> कथं नु मयि धर्मेण पृथिवीमनुशासति।
> भवन्तो द्रष्टुमिच्छन्ति युवराजं महाबलम्॥
>
> (वही, २। २। १५)

'हम धर्मसे पृथिवीका परिपालन करते हैं, यह जानते हुए भी आपलोग रामजीको युवराजके रूपमें क्यों देखना चाहते हैं?'

तब परिषद्के लोग रामजीके ऊपर मुग्ध होनेका कारण बताते हुए उनके गुणोंका इतना अच्छा वर्णन करते हैं कि हम पढ़नेवाले भी मुग्ध हो जाते हैं। अयोध्याकाण्डके पहले सर्गमें वाल्मीकि अपने ही शब्दोंमें रामजीके गुणोंका वर्णन करते हैं। इन्हीं गुणोंसे रामजीका सारा जीवन ओतप्रोत है। इसी कारणसे उनका सारा चरित्र लोकप्रिय हुआ और वे हमारे आदर्श हुए हैं।

श्रीरामचन्द्रजी भगवान् विष्णुके अवतार ही थे, इसमें संदेह नहीं—'अर्चितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः।' (वही, २। १। ७)

भगवान्‌ने सनातन धर्मका उपदेश तो सृष्टिके आदिकालमें मरीचि आदि महर्षियोंको दिया। रामावतारमें स्वयं आपने ही उसका अनुष्ठान करके दिखाया कि उत्तम जीवन क्या है। बच्चेसे बूढ़ेतक तथा मामूली आदमीसे महाप्राज्ञतक, सब लोग रामायण-महाकाव्यके हर एक पात्रसे शिक्षा प्राप्तकर अपना जीवन उत्तम-से-उत्तम बना सकते हैं। राम-चरित्ररूप रामायणके पढ़नेसे पाप-ताप नष्ट होते हैं, मङ्गल बढ़ते हैं।

श्रीरामकी भगवत्ता और राम-नामकी महिमा

(श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीअभिनवसच्चिदानन्दतीर्थजी महाराज)

श्रीरामचन्द्रजी पूर्णब्रह्म परमेश्वर ही हैं—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥

'वेदवेद्य परमपुरुष श्रीहरिभगवान्‌के दशरथ-भवनमें जन्म लेते ही वेद ही मुनि वाल्मीकिके मुखसे निर्गत होकर रामायणरूपमें परिणत हो गये।' इस तरहकी आर्ष उक्तियोंके अनुसार श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् भगवान् ही ठहरे। तब—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥
(शिवमहिम्नःस्तोत्र ३२)

'शिव! यदि महासमुद्ररूपी मसिपात्रमें कज्जलगिरिके समान स्याही घोलकर भर दी जाय और कल्पवृक्षकी शाखारूपी कलम एवं समूची पृथ्वीको कागज बना दिया जाय तथा शारदा उसे लेकर निरन्तर लिखती रहें तो भी वे आपके गुणोंका पार नहीं पा सकतीं।'

—इस न्यायसे आपके गुण-गणोंका कौन, किस मुँहसे वर्णन कर सकता है! मर्यादापुरुषोत्तमत्व तो किसी अन्य अवतार या देवमें है नहीं, वह तो यथार्थतः श्रीरामचन्द्रजीमें ही रूढ़ है।

श्रीरामचन्द्रजीके नामकी महिमाका किसीने निम्नाङ्कित रूपसे गान किया है—

रामेत्युच्चरणादेव मुखान्निर्यान्ति पातकाः।
पुनः प्रवेशभीत्यैव मकारस्तु कपाटवत्॥

'रा' शब्दका उच्चारण करते ही जन्म-जन्मान्तरोंके सभी संचित पाप निकल भागते हैं; क्योंकि 'रा' शब्दके अन्तर्गत रकारका स्थान 'ऋटुरषाणां मूर्धा'—के अनुसार मूर्धा (मुखका ऊपरी भाग) होनेसे दीर्घ रेफका उच्चारण करनेके लिये मुख खोलना ही पड़ता है। इसी तरह बाहर गये हुए पाप पुनः वापस न आ जायँ—यदि यह भय हो तो मकारका उच्चारण करके मुखके ओष्ठरूप कपाटको बंद कर देना चाहिये—'मकारस्तु कपाटवत्'; क्योंकि 'उपूपध्मानीयानामोष्ठौ'—के अनुसार मकारका स्थान ओष्ठ होनेसे उसका उच्चारण करनेके लिये ओठ बंद करने ही पड़ते हैं। मुँह बंद हो जानेपर बाहर निकले हुए पाप पुनः अंदर नहीं आ सकते। यह है राम नामकी महिमा। राम-नाममें और भी वैशिष्ट्य यह है कि मन्त्रोंमें अष्टाक्षर मन्त्र ('ॐ नमो नारायणाय') और पञ्चाक्षर मन्त्र ('ॐ नमः शिवाय') क्रमशः भगवान् नारायण एवं भगवान् शिवके प्रतीक हैं। अष्टाक्षर मन्त्रमेंसे 'रा' और पञ्चाक्षर मन्त्रमेंसे 'म' लेकर 'राम' शब्द बना है। ये दो अक्षर उन दो मन्त्रोंमें मुख्यत्व रखते हैं। अर्थात् उपर्युक्त दो मन्त्रोंके मुख्यार्थप्रतिपादक दो अक्षरोंसे 'राम' नाम पवित्र होनेसे इसका महत्त्व स्वयमेव स्पष्ट हो जाता है।

श्रीरामचन्द्रजीकी मातृ-पितृ-भक्ति, भ्रातृ-वात्सल्य, गुरु-देवता-भक्ति, प्रजावात्सल्य, धर्मभीरुता एवं सर्वोपरि सत्यवादिता—'रामो द्विर्नाभिभाषते'(वा० रा० २।१८।३०)—इत्यादि गुणोंका वर्णन विस्तारसे कल्याणके अनेक विशेषाङ्कोंमें आ जानेसे यहाँ पुनरुक्तिकी आवश्यकता नहीं है। न केवल रामजीका, अपितु उनके पारिवारिक जनोंके भी गुणगण दिव्य और आदर्श हैं।

रामायण भारतीय चिरंतन संस्कृतिका द्योतक है। वेद, उपनिषद्, दर्शन आदिमें जो तत्त्व तथा सत्य प्रतिपादित है, वह जनसामान्यके लिये सुलभ हो जाता है। उसीका इतिवृत्तके रूपमें आदिकवि श्रीमहर्षि वाल्मीकिने अपनी रामायणमें प्रतिपादन करके स्वयं अमर बने तथा भारतीय संस्कृतिको अमर बना गये।

रामायणकी कथा सर्वप्रथम ऋग्वेदमें देखनेमें आती है—'भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्' आदि (१० । ३ । ३)।

'शुद्ध ब्रह्म परात्पर राम'

(श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीपुरीक्षेत्रस्थगोवर्धनपीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी महाराज)

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक, परात्पर, पूर्णतम, सच्चिदानन्दकंद, निर्गुण, निर्विकार, अच्छेद्य, अभेद्य, अलक्ष्य, अखण्ड, अचिन्त्य, अव्यय, सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन, उपनिषद्वेद्य, शुद्ध ब्रह्म ही सकलकल्याणमय, गुणगणनिलय, सगुण, साकार, सर्वजनमनोहर, सर्वेन्द्रियाभिराम शरीर धारणकर रघुनन्दन, दशरथनन्दन, कौसल्यानन्दन श्रीरामरूपमें प्रकट होते हैं। भक्तशिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने इसी बातको अपने श्रीरामचरितमानसमें स्पष्ट किया है—

> ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
> सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥
> (मानस १। १९८)

'मन क्रम बचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई॥'
(मानस १। २०२। १½)

'राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥'
(मानस १। ११५। २½)

> ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
> भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥
> (मानस १। २०५)

—यह श्रीतुलसीदासजी महाराजकी कोई अपनी मनमानी कल्पना नहीं है। किंतु प्राचीन सभी ग्रन्थकारोंने इसका समर्थन किया है।

> वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
> वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥

'वेदवेद्य परब्रह्म साक्षात् भगवान्‌के दशरथपुत्र-रूपमें प्रकट होनेपर भगवान्‌का प्रतिपादन करनेवाले वेदको भी रामायणके रूपमें परमतत्त्व परब्रह्मका प्रतिपादन करनेके लिये प्रचेताके पुत्र वाल्मीकिके द्वारा प्रकट होना पड़ा।' महर्षि श्रीवाल्मीकिने भी युद्धकाण्डके अन्तमें अपने-आपको रामायणका कर्ता और प्रचेताका पुत्र लिखकर यह भी लिखा है कि 'मेरी लिखी हुई इस रामायणका आदिदेव ब्रह्माजीने भी अनुमोदन किया है।'

> पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम्।
> ...

महर्षि वाल्मीकिने पदे-पदे श्रीरघुराजेन्द्र सरकारको 'साक्षाद्विष्णुः सनातनः' लिखा है। पर कुछ लोगोंका कहना है कि निर्गुण निराकार सगुण साकार हो ही नहीं सकता। किंतु उनका यह कहना असंगत है। निर्गुण-निराकारको सर्वज्ञ-सर्वत्र, सर्वशक्तिमान् तो वे भी मानते ही हैं। यदि निर्गुण निराकार सगुण-साकार नहीं हो सकता तो वह सर्वत्र नहीं हो सकता और उसे सगुण-साकार होनेका ज्ञान नहीं होनेसे 'सर्वज्ञ' भी नहीं कह सकते हैं। अतः निर्गुण-निराकारकी सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता सिद्ध करनेके लिये उसे सगुण-साकार होना ही पड़ेगा। इसी प्रकार सगुण-साकार हुए बिना निर्गुण निराकार सर्वशक्तिमान् भी नहीं हो सकता। निर्गुण निराकारको सर्वशक्तिमान् होनेके लिये भी सगुण साकार बनना ही पड़ेगा, नहीं तो उसमें एक शक्तिकी कमी रह जायगी।

यह भी कहा जा सकता है कि 'निर्गुण-निराकार शुद्ध परात्पर ब्रह्म सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तो हैं, पर ऐसी कोई आवश्यकता नहीं कि जिसके लिये उनको अपना निर्गुण-निराकार रूप त्यागकर सगुण साकार रूप धारण करना पड़े। सगुण-साकार रूप धारण किये बिना ही शुद्ध परात्पर ब्रह्म जगत्‌की उत्पत्ति-प्रलय आदि सम्पूर्ण क्रिया-कलाप अपनी प्रकृतिरूपा शक्तिसे कर लेंगे।' पर ऐसा कहनेवालोंको यह भी समझ लेना चाहिये कि यदि शुद्ध परात्पर ब्रह्म अपनी प्रकृतिरूपा शक्तिसे इतने बड़े अनन्तकोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्चको और तदन्तर्वर्ती भोग्य-पदार्थोंको पैदा कर सकते हैं—यदि उनकी प्रकृतिमें इतनी सामर्थ्य है, तब फिर इस कार्यके लिये एक दिव्यातिदिव्य शरीर धारण करना उनके लिये अति साधारण कार्य है और शरीर-धारणका प्रयोजन है, अपने अनन्यभक्तोंके मनोऽभिलषिताभिमत अर्थोंका सम्पादन करना।

वस्तुतः ऐसी ही शङ्काओंके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है—'अर्जुन! यद्यपि मैं निर्गुण निर्विकार परात्पर शुद्ध ब्रह्म हूँ, अज एवं अनादि-अनन्त हूँ और समस्त संसारके प्राणियोंका स्वामी हूँ, तथापि अपनी प्रकृतिको अधिष्ठित करके अपनी मायाशक्तिके द्वारा सगुण-साकार कल्याणमय गुण-गणनिलय स्वरूपसे प्रकट होता हूँ और मेरे एवंविध स्वरूपमें प्रकट होनेका प्रयोजन है—साधु-परित्राण, दुष्ट-दमन तथा धर्म-संस्थापन।'

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
(गीता ४ । ६—८)

भगवान् स्वयं कहते हैं कि सज्जनोंका परित्राण करनेके लिये, दुर्जनोंको उनकी दुर्जनताका दण्ड देनेके लिये और धर्मकी संस्थापनाके लिये मुझे युग-युगमें शुद्ध ब्रह्म परात्पर रूपका परित्याग कर सगुण-साकार दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र एवं नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र आदि अनेक रूप धारणकर इस संसारमें आना पड़ता है।

कुछ लोगोंका यह कहना ठीक नहीं है कि संसारमें आनेसे तो भगवान् बन्धनमें फँस जायँगे। संसार बन्धन-स्वरूप है। जब एक साधारण बुद्धिमान् जीव भी जेलखानेमें आना पसंद नहीं करता, तब नित्यशुद्ध, नित्यमुक्त, परात्पर ब्रह्म संसाररूपी बन्धनमें क्यों आयेगा? यह सभी जानते हैं कि जेलखानेमें कैदी अपने कर्मोंके फलको भोगनेके लिये जाता है, इसीलिये बंदीके लिये कारागार बन्धन है; किंतु जेलखानेके मालिक अथवा जेलरके लिये, जो कैदियोंको उनके कर्मोंका फल देनेके लिये जेलखानेमें जाता है, जेलखाना बन्धनस्वरूप नहीं है। भगवान् भी इसी प्रकार संसारके प्राणियोंको अपने कर्मोंका फल देनेके लिये और जेलके स्वामी (राजा) की तरह संसारकी व्यवस्था सुसम्पादित करनेके लिये इस संसारमें आते हैं। इसलिये उनके लिये संसार बन्धनका कारण या बन्धनस्वरूप नहीं हो सकता।

पूछा जा सकता है कि ज्यों, भगवान् अपने निश्वास-मात्रसे वेदोंका प्राकट्य कर देते हैं, महाभूतोंको उत्पन्न कर देते हैं और इस सृष्टिकी उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय कर देते हैं, वे निराकार स्वरूपमें स्थित रहते हुए संकल्पमात्रसे सज्जनोंका त्राण, दुर्जनोंका विनाश और धर्मकी संस्थापना क्या नहीं कर सकते? रावण-कुम्भकर्ण आदि राक्षसोंको मारनेके लिये निर्गुण-निराकारका अवतार लेना क्या, मच्छरको मारनेके लिये तोप दागनेके समान न होगा? रावण ही राम-कुम्भकर्ण-मेघनाद आदि राक्षसोंको मारनेके लिये भगवान्‌के अवतारकी आवश्यकता नहीं है; संकल्पमात्रसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका संहार करनेकी सामर्थ्य रखनेवाले भगवान् रावण-कुम्भकर्ण आदिको भी संकल्पमात्रसे ही मार सकते हैं, किंतु कुछ भगवद्भक्त ऐसे होते हैं, जिनके लिये नित्य-मुक्त परात्पर ब्रह्मको सगुण-साकार रूप धारण करना पड़ता है। इन भक्तोंमें सबके महामति महाभागनाएँ, ब्रजबाला, अवध या ब्रजके सब जड़-चेतन प्राणी, राजरानी मीराँ, रैदास चमार, धन्ना जाट आदि असंख्य अनन्य भगवत्प्रेमियोंके अतिरिक्त शबरी-जैसी सामान्य स्त्री और गीध-जैसे पशु-पक्षी आदि भी आते हैं, जो जप, तप, योग, यज्ञ, श्रवण, मनन, यम, नियम, ध्यान एवं समाधिके द्वारा भगवान्‌को जन्म-जन्मान्तर तो क्या, कल्प-कल्पान्तरमें भी इस परात्पर रूपमें प्राप्त नहीं कर सकते। उनके लिये ही भगवान् सगुण-साकार नयनाभिराम श्रीरामरूप धारणकर दण्डकारण्यमें अपने निरावरण-चरण-विन्यासके द्वारा ही कल्याण प्रदान करते हैं। इसीलिये शुद्ध परात्पर ब्रह्म श्रीरामरूपमें अवतरित होते हैं। इतिहास-पुराणादिमें तो इनकी महिमा भरी ही है, 'श्रीरामतापिनी' आदि उपनिषदोंमें भी भगवान् श्रीरामके अवतार-स्वरूपका सविस्तर वर्णन मिलता है। इतना ही नहीं, भारतवर्षके ऐतिहासिकोंकी दृष्टिमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदकी मन्त्रसंहितामें भी इस परात्पर ब्रह्मका राजा रामके रूपमें स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

ऋषि-मुनियोंके देश भारतमें जन्म लेकर भी आज कल बहुत-से लोग भगवान् श्रीरामके परात्पर ब्रह्म होनेमें संदेह प्रकट करते हैं, इन्हें ऐतिहासिक न मानकर काल्पनिक घोषित करते हैं, यह हिंदू देशका और हिंदूजातिका दुर्भाग्य है। यह उनका स्वयंका भी महान् दुर्भाग्य है कि उनके मनमें ऐसे गंदे विचार उठते हैं और वे अपने हाथों अपना लोक-परलोक बिगाड़ रहे हैं। भगवान् कौसल्यानन्दन दशरथनन्दन श्रीराम साक्षात् परात्पर शुद्ध ब्रह्म हैं और ये ही हम सनातनधर्मी हिंदुओंके पूज्य परमाराध्य हैं। भगवान् श्रीरामके होनेमें संदेह करना अथवा उन्हें काल्पनिक बताना अथवा उन्हें साधारण मनुष्य बताना महान् पाप है। भगवान् श्रीरामके ब्रह्म होनेमें तनिक-सा भी संदेह करनेपर जब भगवती सतीदेवीको भी इसका दण्ड भोगना पड़ा, तब हम कलियुगी मानवोंकी क्या गति होगी? इसलिये सब भीतोंको छोड़कर भगवान् श्रीरामचन्द्रका ही शुद्ध भजन-स्मरण चिन्तन-कीर्तन करो। भगवान् श्रीराम ही हमारे आराध्य हैं और उनका स्मरण-चिन्तन करना ही हमारे जीवनका एकमात्र लक्ष्य है।

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप श्रीराम

(श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीबदरिकाश्रमस्थज्योतिष्पीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीब्रह्मानन्दसरस्वतीजी महाराज)

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक, अकारणकरुण, करुणा-वरुणालय, मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम धर्मके साक्षात् स्वरूप हैं। धर्म ही उनका श्रीविग्रह है। भगवान् श्रीरामकी बाल्यकालसे लेकर सम्पूर्ण लीलाएँ धर्म मर्यादासे ओतप्रोत हैं।

जिस वंशको आपने अपने प्राकट्यसे सुशोभित किया, उस वंश-परम्परामें धर्म-पालन एवं भारतीय संस्कृतिकी रक्षा तथा सनातन आर्य-मर्यादाका पोषण और मानवोचित सद्गुणोंको धारण करनेवाले एक-से एक दिव्य महापुरुष हो चुके थे। हरिश्चन्द्र, दिलीप, रघु आदि अनेक सत्पुरुषोंके पावन चरित्र जन्मसे लेकर अन्ततक विशुद्ध और पवित्र रहे हैं। वे मर्यादामें रहकर धर्मकी रक्षा करते हुए प्रजाके पालन-पोषण-में ही अपने जीवनका सौभाग्य समझते थे तथा अन्तमें परमात्माका स्मरण करते हुए अपने शरीरका विसर्जन करते रहे। ऐसे पवित्र वंशमें भगवान् श्रीरामभद्रका आविर्भाव हुआ था।

पारिवारिक जीवनकी दृष्टिसे देखें तो श्रीरामभद्र एक आदर्श पुत्र, आदर्श भाई और आदर्श पतिके रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। माता पिता एवं गुरुजनोंके प्रति उनमें असीम श्रद्धा और सम्मानके भाव हैं। भाइयोंके प्रति उनका हृदय प्रेमसे इतना द्रवित रहता है कि स्वयं श्रीभरतलालजी अपने मुखसे कहते हैं—"हारेहुँ खेल जितावहिं मोही" (रामचरितमानस २।२५९।४) श्रीराम भाइयोंके साथ क्रीडा करते हुए स्वयं अपनेको हारा मानकर, अपने प्रिय भाइयोंको जिता देते थे। इतना ही नहीं, अपितु यौवराज्याभिषेककी चर्चा उन्हें अटपटी-सी लगती है। वे सोचते हैं—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
(वही, २ । ९ । १-४)

सब भाई एक साथ जन्मे, साथ-साथ सबका पालन-पोषण हुआ, साथ साथ खाये-पिये, खेले-कूदे। फिर यह क्या कारण है कि एक भाईको ही राजगद्दी मिले।

वे पहले भाइयोंकी सुख-सुविधाकी बात सोचते हैं, तब अपनी। प्राणप्रिया भगवती जनकनन्दिनी सीता उनकी परम अनुरक्ता हैं और वे भी उनके प्रति सदैव प्रेमसे परिपूर्ण हैं। किंतु ये भ्रातृप्रेम, पितृप्रेम और दाम्पत्य-प्रेमके इतने उदात्त एवं उच्च स्तर हैं कि वे उनके जीवन-आदर्शोंमें सहज ही सहायक सिद्ध होते हैं और आस्तिकोंके लिये महान् उपयोगी तो हैं ही। मोहाविष्ट प्राणियोंकी तरह वे उनके लिये बन्धनकारी नहीं।

श्रीरामभद्रके आदर्श चरित्रमें हमें स्नेहकी कोमलताके साथ ही साथ कर्तव्यकी महान् निष्ठाके भी दर्शन होते हैं। पिताके सत्य एवं धर्मकी रक्षाके लिये युवराज पदपर अभिषेकके दिन वे समस्त राजसिक सुविधाओंको त्यागकर जीवनके कठिन कण्टकाकीर्ण वनकी ओर अग्रसर होते हैं।

पिताकी मूर्च्छा और मृत्यु, माताओंकी हृदय-व्यथा, पत्नीका महान् कष्ट, स्वजनोंका आर्तनाद और प्रजावर्गका गम्भीर शोक भी उन्हें कर्तव्य मार्गसे विचलित नहीं कर पाते। सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनके इस त्याग-वैराग्यमें कहीं भी आवेश नहीं है। यह सब उनका सहज स्वभाव है। वे शान्त, आवेशहीन, धर्म-मर्यादाओंसे पूर्ण हैं। जब उनके श्वशुर जनक तथा भाई भरत आदि माताओंसहित उन्हें मनाने आते हैं, तब स्नेहके भार एवं शील-संकोचसे सिर झुकाये हुए वे केवल अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं और कर्तव्यके निर्णय और आदेशका भार उन्हें ही सौंप देते हैं।

अपने धर्ममें दृढ रहते हुए भी वे कहीं गुरुजनोंसे तर्क-वितर्क नहीं करते, सदा अपनी धर्ममर्यादाका ध्यान रखते हुए ही उत्तर देते हैं। क्यों न हो, भगवान् श्रीरामभद्रके विग्रहमें समस्त सद्गुण स्वाभाविक रूपसे निवास करते थे।

एक बार तमसा नदीके पावन तटपर महर्षि श्रीवाल्मीकिजीने नारदजीसे पूछा—

"मुने! इस समय इस संसारमें गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, उपकार माननेवाला, सत्यवक्ता और दृढप्रतिज्ञ कौन है? सदाचारसे युक्त, समस्त प्राणियोंका हितकारक, विद्वान्, सामर्थ्यशाली और एकमात्र प्रियदर्शन सुन्दर पुरुष कौन है? मनपर अधिकार रखनेवाला, क्रोधको जीतनेवाला, कान्तिमान् और किसीकी निन्दा न करनेवाला कौन है?

और अपने अक्षय आत्मबलसे रावण एवं उसकी अज्ञान-मूलक प्रकृति-पद्धतिका विनाश कर आसुरी शक्तियोंसे विश्वको मुक्त किया तथा जनताको स्वस्थ वातावरणमें साँस लेने और जीनेका शुभ अवसर प्रदान किया। यद्यपि रावणसे युद्ध करनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीके पास रावणकी अपेक्षा भौतिक आधार अत्यन्त नगण्य थे, फिर भी आध्यात्मिक शक्तियों एवं अपने उदात्त गुणोंके समुचित संघटनद्वारा उन्होंने भयंकर असुरपर विजय पायी।

असत्य, अज्ञान, अधर्म एवं अन्धकारसे सत्य, ज्ञान और प्रकाशका युद्ध ही मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके जीवनमें प्रमुखताके साथ व्यक्त हुआ है, जो मानवमात्रके जीवनमें न्यूनाधिक रूपसे चलता ही रहता है, चल ही रहा है।

अतएव, अधर्मके प्रति युद्ध करते हुए उसके निराकरणमें हम जिस सीमातक पहुँच पाते हैं, उसी सीमातक हम मानो श्रीरामभद्रको अपने जीवनमें उतार पाते हैं और उसी सीमातक हम धर्मरूप हो पाते हैं; क्योंकि श्रीरामभद्र ही आर्य-संस्कृति एवं आर्य मर्यादाके मूल स्तम्भ हैं। वे ही सम्पूर्ण विश्वके प्राणियोंके प्राण, आत्मा, परमात्मा और जीवनधन हैं। अतः उन्हीं मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामभद्रके पावन चरित्रका श्रवण, मनन, अनुकरण कर हम पावन एवं धन्य हो सकते हैं। क्योंकि मर्यादारक्षक श्रीरामभद्र ही मूर्तिमान्—विग्रहवान् धर्म हैं।

भगवान्का रामरूपमें दर्शन

(श्रीश्रीमाँ आनन्दमयी)

एक युवकने माँ आनन्दमयीके सम्मुख जिज्ञासा की—

'माँ! तुलसीदासजी तो महाज्ञानी और भक्त थे।'

माँने उत्तर दिया—'निस्संदेह थे थे ही।'

युवकने पूछा—"उन्हें जब भगवान्ने श्रीकृष्णके विग्रह-रूपमें दर्शन दिया, तब उन्होंने यह क्यों कहा कि 'मैं आपका इस रूपमें दर्शन नहीं चाहता। मुझे रामरूपमें दर्शन दीजिये।' क्या यह ज्ञानकी बात थी? वे (भगवान्) ही तो सबमें हैं, फिर इस तरह तुलसीदासजीने रामको भिन्न क्यों समझा?"

माँने उत्तर दिया—"तुम्हीं तो कहते हो कि वे ज्ञानी भी थे, भक्त भी थे। उन्होंने ज्ञानकी ही बात तो कही कि 'आप हमें रामरूपमें दर्शन दीजिये; मैं आपके इस (कृष्ण) रूपका दर्शन नहीं करना चाहता, मैं रामरूपका ही दर्शन चाहता हूँ।' यही प्रमाण है कि वे जानते थे, श्रीराम और श्रीकृष्ण एक ही हैं, अभिन्न हैं। 'आप मुझे दर्शन दीजिये'—यह उन्होंने कहा था। रूपमात्र भिन्न था, पर मूलतः तत्त्व तो एक ही था। इन्हीं शब्दोंमें तो उन्होंने अपनी बात कही। भक्तिकी बात तो उन्होंने यह कही कि 'मैं आपके रामरूपमें ही आपका दर्शन करना चाहता हूँ। क्योंकि यही रूप मुझे प्रिय है।' इस कथनमें ज्ञान और भक्ति—दोनों भाव प्रकाशित हैं।"

वेदावतार श्रीरामायण और भगवान् श्रीसीताराम

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

इस विश्वका मायामय व्यामोह दुरन्त है । प्राणी मृगमरीचिकामय पद, प्रतिष्ठा, अधिकार-ऐश्वर्यादिके पीछे केवल अशान्ति एवं तन्मूलक दुःखपरम्पराका ही संग्रह करता जाता है । यत्र-तत्र भटकते शकुनिके लिये जैसे एकमात्र भूमि ही विश्रामस्थल है, वैसे ही नाना योनियोंमें भटकते अज्ञानी जीवके लिये भी एकमात्र करुणासिन्धु भगवान् ही विश्रामस्थल हैं । पर दुरन्त्यक्त जीवको निम्बकीटकी भाँति सितारस तुल्य मधुर यह भगवत्सुखानुभूतिका पथ उद्वेजक ही प्रतीत होता है । अतः उसकी प्रज्ञा सतत विचलित ही होती रहती है—

'तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ।'

(गीता २ । ६७)

ऐसी दशामें माता-पितासे भी विशेष हितकारिणी निष्पक्ष निष्कण्टक मार्ग दिखलानेवाली श्रुति ही शरण्य है । पर इस श्रुति तथा तत्वविषयक परमपदका ज्ञान दुरधिगम होनेके कारण श्रुतिका रामायण एवं ब्रह्मका श्रीरामरूपमें अवतरण हुआ—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ॥
'वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः ।'

(वा० रा० १ । ४ । ६)

वेदावतार श्रीमद्रामायण पाठकको बड़ी ही मधुर कोमलकान्त पदावलीमें रामचरितकी दिव्यामृतमयी सुरसरितामें अवगाहितकर परब्रह्म रामके समक्ष उपस्थित करती है । वेदवाक्य परोक्षप्रिय होते हैं, अतः वेद या वेदावतार रामायण भी परोक्षरीतिसे यत्र-तत्र रामके परब्रह्मत्वका प्रतिपादन करती है । एक दो उदाहरण देखें—

विष्णुके अवतार परशुराम कहते हैं—'श्रेष्ठेश्वराय प्रभो ! आपद्वारा पराभूत होकर मैं ब्रीडाका अनुभव नहीं करता । आप निश्चय ही मधुदैत्य, मधुसूदन ही हैं । स्वर्गादि लोकोंका दान या प्रतिरोध परमेश्वरका ही कार्य हो सकता है ।' (वाल्मी० १ । ७६ । १७—१९)

इ०८ श्रुति भी इसी प्रकार 'अमपुत्रावरुपेसाम' (छ० बृ० ३१ । २) के द्वारा यही बात कहती है ।

इसी प्रकार रावणके प्रति हनुमान्‌जीके—

सत्यं राक्षसराजेन्द्र शृणुष्व वचनं मम ।
× × ×
सर्वाँल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान् ॥
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ।

(वाल्मी० ५ । ५१ । ३८-३९)*

'राम सम्पूर्ण स्थावर-जंगमात्मक विश्वका संहार कर पुनः दूसरे ही क्षण उसी रूपमें सर्जन कर सकते हैं ।'

इस कथनमें—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व, तद्ब्रह्म ।

—इस तैत्तिरीय श्रुतिका ही संकेत—उपबृंहण दीखता है ।

जैसे दहनात्मक लोहपिण्डमें दाहकत्वप्रदायक अग्नि लोहपिण्डको भी दग्धा (दाहक) कहा जाता है, वैसे ही सूर्यादिमें प्रकाशकत्व तथा ईश्वरमें भी ईश्वरत्वादिका प्रदाता, सर्वाधिष्ठान, स्वप्रकाश, विशुद्ध सनातन ब्रह्म राम सूर्यादिके भी सूर्य, सर्वान्तर्यामी पूर्ण परात्पर ब्रह्म हैं । अतः वे प्राणोंके भी प्राण, जीवके भी जीव, श्रीके भी श्री और आनन्दके भी सारभूत परम आनन्द हैं । देवी सुमित्राने अम्बा कौसल्याजीसे कहा था—

सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः ।
श्रियाः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमाक्षमा ॥
दैवतं दैवतानां च भूतानां भूतसत्तमः ।

(वाल्मी० अयो० २ । ४४ । १५-१६)

'देवि ! श्रीराम सूर्यके भी सूर्य (प्रकाशक) और अग्निके भी अग्नि (दाहक) हैं । ये प्रभुके भी प्रभु, लक्ष्मीकी भी उत्तम लक्ष्मी, कीर्तिकी भी कीर्ति और क्षमाकी भी क्षमा हैं । इतना ही नहीं, ये देवताओंके भी देवता तथा भूतोंके भी उत्तम भूत हैं ।'

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी महाराज भी कहते हैं—

'प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम ।'

(राम० च० मा० २ । २९०)

* वाल्मी०, २ । ११ । २३; ६ । २४ । ७९—९१ आदिमें भी यही भाव व्यक्त हुआ है ।

था—

'राम प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥'
(मानस २। ७१। ६)

वास्तवमें इन भावोंमें भी—

'स उ प्राणस्य प्राणः'　　(केनोपनिषद् १। २)

एवं—

'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्'
(कठोप० ४। १३, श्वेताश्व० ६। १३)

—आदि श्रुतियोंका ही उपबृंहण हुआ है।

सुग्रीवसे भगवान्‌ने स्वयं भी कहा था—'हे हरीश्वर! मैं इच्छा होनेपर इस समस्त विश्वके ही यक्ष, राक्षस, पिशाच एवं दानवोंका एक अँगुलीके अग्रभागमात्रसे संहार कर सकता हूँ'—

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर॥
(वा० रा० ६। १८। २३)

पूर्ण संकल्पसिद्धि परमेश्वरका ही स्वरूप है। अपरिमेय ईश्वर यदि अपनी निरतिशय शक्ति-माहात्म्यको प्रकट करे तो आश्चर्य क्या? वास्तवमें भगवान्‌के इस कथनमें भी—

'सत्यकामः सत्यसंकल्पः' (छान्दो० ८। १। ५) एवं 'सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः।' (छान्दो० ३। १४। २)

—आदि श्रुतियोंका उपबृंहण हुआ है।

रामका तेज अपूर्व था। अतः बिना किसीके बतानेके ही तारा उन्हें पहचान गयी—

ददर्श रामं धृतचापपाणिं स्वतेजसा सूर्यमिव ज्वलन्तम्॥
....
काकुत्स्थं पुरुषव्याघ्रमवं स काकुत्स्थ इति प्रजज्ञे॥
(वा० रा० ४। २४। २७-२८)

'इतनेमें ही उसने अपने सामने धनुष-बाण धारण किये श्रीरामको खड़ा देखा, जो अपने तेजसे सूर्यदेवके समान प्रकाशित हो रहे थे। उन पुरुषप्रवर श्रीरामको, जो पहले कभी देखनेमें नहीं आये थे, देखकर मृगशावक-नयनी तारा समझ गयी कि ये ही ककुत्स्थकुल भूषण श्रीराम हैं।'

वह उन्हें 'अचिन्त्य, अलौकिक, मनुष्यभिन्न लोकेश्वर दिव्यशरीरी' कहती है—

'मनुष्यदेहाभ्युदयं विहाय दिव्येन देहाभ्युदयेन युक्तः॥'
(वही, ४। २४। ३१)

इसी प्रकार युद्धकाण्डमें मन्दोदरी, रावणके अनुचर आदि तथा देवगण भी उन्हें 'ईश्वर' ही कहते हैं।●

इसी प्रकार भगवती सीता भी महामाया या साक्षात् श्री हैं। ये परब्रह्मकी महिषी या श्रीरामकी ऐश्वर्याधिष्ठान-शक्ति हैं—'महामाया विश्वं भ्रमयसि परब्रह्ममहिषी।' किंवा कृपानिधान, आत्माराम, आनन्दकन्द रघुनन्दन रामभद्र श्रीरामकी स्वरूपभूता माधुर्यसारसर्वस्वा आत्मा ही हैं—'आत्मैव राधिका' (आत्मोपनिषद्) 'आत्मा तु राधिका तस्य' ''आत्मारामः इति स्मृतः।' (स्कन्द०) सीता ही राधिका और राम ही कृष्ण भी हैं—

'कृष्णश्चैव बृहद्वतः॥'　(वही, ६। ११७। १५)

ये ही परमेश्वराङ्कनिलया राजराजेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी भी हैं। ये ही आद्याप्रकृति, चिति, मूल संविधि, चिद्रूपा, विशुद्ध परतत्त्व भी हैं—

'सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः।'
(वही, ६। ११७। २७)

अतः इन दोनोंकी उपासना-आराधना आदिसे ही जीव कृतार्थ हो सकता है।

'मूलप्रकृतिर्भगवती सा सीतेति संज्ञिता॥' इत्यादि
(सीतोपनिषद्, मन्त्र० २)

● स्कन्द—६। ५०। ४९, ६। ५९। ११०, ६। ११४। १४-१९, ६। ११७। पूरा सर्ग ११०, १११ तथा ११६ सर्ग पूरे।

भगवान् श्रीरामके दर्शनार्थ विविध साधन

(ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्री[illegible])

बहुत से सज्जन मनमें शङ्का उत्पन्नकर इस प्रकारके प्रश्न किया करते हैं कि ‘जो प्यारे मित्र जैसे आपसमें मिलते हैं, क्या उसी प्रकार इस कलियुगमें भी भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन मिल सकते हैं ? यदि यह सम्भव है तो ऐसा कौन-सा उपाय है कि जिससे हम उस मनोमोहिनी मूर्तिका शीघ्र ही दर्शन कर सकें ?’

यद्यपि मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ, तथापि परमात्माकी और महान् पुरुषोंकी दयासे केवल अपने मनोविनोदार्थ दोनों प्रश्नोंके सम्बन्धमें क्रमशः कुछ लिखनेका साहस कर रहा हूँ।

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
(श्रीमद्भा० १२। ३। ५२)

‘सत्ययुगमें निरन्तर विष्णुका ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञद्वारा यजन करनेसे और द्वापरमें पूजा (उपासना) करनेसे जिस परमगतिकी प्राप्ति होती है, वही कलियुगमें केवल नाम-कीर्तनसे मिल जाती है।’

जैसे अरणिकी लकड़ियोंके मन्थनसे अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, उसी प्रकार सच्चे हृदयकी प्रेमपूरित पुकारकी रगड़से, अर्थात् उस भगवान्‌के प्रेममय नामोच्चारणकी गम्भीर ध्वनिके प्रभावसे भगवान् भी प्रकट हो जाते हैं। महर्षि पतञ्जलिने भी अपने ‘योगदर्शन’में कहा है—

‘स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।’

‘नामोच्चारणसे इष्टदेव परमेश्वरके साक्षात् दर्शन होते हैं।’

वास्तवमें नामकी महिमा वही पुरुष जान सकता है, जिसका मन निरन्तर श्रीभगवन्नाममें संलग्न रहता है। नामकी प्रिय और मधुर स्मृतिसे जिसके क्षण-क्षणमें रोमाञ्च और अश्रुपात होते हैं, जो जलके वियोगमें मछलीकी भाँति क्षणभरके नाम-वियोगसे भी विकल हो उठता है, जो महापुरुष निमेषमात्रके लिये भी भगवान्‌के नामको नहीं छोड़ सकता और जो निष्कामभावसे निरन्तर प्रेमपूर्वक जप करते-करते उसमें तल्लीन हो चुका है, ऐसा ही महात्मा पुरुष इस विषयके पूर्णतया वर्णन करनेका अधिकारी है और उसीके लेखसे संसारमें विशेष लाभ पहुँच सकता है।

मेरा अनुभव—कुछ मित्रोंने मुझे भगवन्नामके विषयमें अपना अनुभव लिखनेके लिये अनुरोध किया है, परंतु जब कि मैंने महात्माओंका विशेष संसर्ग भी नहीं किया, तब मैं अपना अनुभव क्या लिखूँ ! भगवत्कृपासे जो कुछ यत्किञ्चित् नामस्मरण मुझसे हो सका है, उसका माहात्म्य भी पूर्णतया लिखा जाना कठिन है।

नामका अभ्यास मैं लड़कपनसे ही करने लगा था, जिससे शनैः-शनैः मेरे मनकी विषय-वासना कम होती गयी और पापोंसे हटनेमें मुझे बड़ी सहायता मिली। काम-क्रोधादि अवगुण कम होते गये, अन्तःकरणमें शान्तिका विकास हुआ। कभी-कभी नेत्र बंद करनेसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका अच्छा ध्यान भी होने लगा। सांसारिक स्फुरणा बहुत कम हो गयी। भोगोंमें वैराग्य हो गया। उस समय मुझे वनवास या एकान्त स्थानका सेवन अनुकूल प्रतीत होता था।

इस प्रकार अभ्यास होते-होते एक दिन स्वप्नमें श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीसहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन हुए और उनसे बातचीत भी हुई। श्रीरामचन्द्रजीने वर माँगनेके लिये मुझसे बहुत कुछ कहा, पर मेरी इच्छा कुछ भी माँगनेकी नहीं हुई। अन्तमें बहुत आग्रह करनेपर भी मैंने इसके सिवा और कुछ नहीं माँगा कि ‘आपसे मेरा वियोग कभी न हो।’ यह सब नामका ही फल था।

इसके बाद नामजपसे मुझे और भी अधिक लाभ हुआ, जिसकी महिमाका वर्णन करनेमें मैं असमर्थ हूँ। मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि नामजपसे मुझे जितना लाभ हुआ है, उतना श्रीमद्भगवद्गीताके अभ्यासको छोड़कर अन्य किसी भी साधनसे नहीं हुआ।

जब-जब मुझे साधनसे च्युत करनेवाले भारी विघ्न प्राप्त हुआ करते थे, तब-तब मैं प्रेमपूर्वक, भगवन्नामके नामका जप करता था और उसीके प्रभावसे मैं उन विघ्नोंसे छुटकारा पाता था। अतएव मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि साधन पथके विघ्नोंको दूर करने और मनमें होनेवाली सांसारिक स्फुरणाओंका नाश करनेके लिये स्वरूपचिन्तनसहित प्रेमपूर्वक भगवन्नाम-जप करनेके समान दूसरा कोई

साधन नहीं है। जब कि साधारण संख्यामें भगवन्नामका जप करनेसे ही मुझे इतनी परम शान्ति, इतना अपार आनन्द और इतना अनुपम लाभ हुआ है, जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता, तब जो पुरुष भगवन्नामका निष्काम भावसे ध्यानसहित नित्य-निरन्तर जप करते हैं, उनके आनन्दकी महिमा तो कौन कह सकता है।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥
(मानस ७। १०३ क)

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥
(मानस १। २१)

प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय—आनन्दमय भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शनके लिये सर्वोत्तम उपाय 'सच्चा प्रेम' है। वह प्रेम किस प्रकार होना चाहिये, इस विषयमें आपकी सेवामें कुछ निवेदन किया जाता है।

श्रीलक्ष्मणकी तरह कामिनी-काञ्चनको त्यागकर भगवान्‌के लिये वन-गमन करनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

ऋषिकुमार सुतीक्ष्णकी तरह प्रेमोन्मत्त होकर विचरनेसे भगवान् मिल सकते हैं।

श्रीरामके शुभागमनके समाचारसे सुतीक्ष्णकी कैसी विलक्षण स्थिति होती है, इसका वर्णन श्रीतुलसीदासजीने बड़े ही मर्मस्पर्शी शब्दोंमें किया है। भगवान् शिवजी उमासे कहते हैं—

होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥
अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा॥
मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए॥
(मानस ३। ९। ५–८)

श्रीहनुमान्‌जीकी तरह प्रेममें विह्वल होकर अति श्रद्धासे भगवान्‌की शरण ग्रहण करनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

कुमार भरतकी तरह रामदर्शनके लिये प्रेम-विह्वल होनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं। चौदह सालकी अवधि पूरी होनेके समय प्रेममूर्ति भरतजीकी कैसी विलक्षण दशा थी, इसका वर्णन श्रीतुलसीदासजीने बहुत ही मार्मिक शब्दोंमें किया है—

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥
अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥
जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥
(मानस ७। ०। १–४; ७। १ क, ख)

हनुमान्‌के साथ वार्तालाप होनेके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीसे भरत-मिलाप होनेके समयका वर्णन इस प्रकार है। शिवजी महाराज देवी पार्वतीसे कहते हैं—

राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही॥
बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥
(मानस ७। ४। १-२ छं०)

भगवान् श्रीरामका ध्यान—श्रीभगवान्‌ने गीतामें ध्यानकी बड़ी महिमा गायी है। ध्यानके प्रकार बहुत से हैं। साधकको अपनी रुचि, भावना और अधिकारके अनुसार तथा अभ्यासकी सुगमता देखकर किसी भी एक प्रकारसे ध्यान करना चाहिये। एकान्तमें आसनपर बैठकर साधकको दृढ़ निश्चयके साथ नीचे लिखी

(१) मिथिलापुरीमें महाराज जनकके दरबारमें भगवान् श्रीरामजी अपने छोटे भाई श्रीलक्ष्मणजीके साथ पधारे हैं । भगवान् श्रीराम दूर्वाके अग्रभागके समान हरित आभायुक्त सुन्दर श्यामवर्ण और श्रीलक्ष्मणजी स्वर्णाभ गौरवर्ण हैं । दोनों इतने सुन्दर हैं कि जगत्की सारी शोभा और सारा सौन्दर्य इनके सौन्दर्यसमुद्रके सामने एक जलकण भी नहीं है । किशोर-अवस्था है । धनुष-बाण और तरकस धारण किये हुए हैं । कमरमें सुन्दर दिव्य पीताम्बर है । गलेमें मोतियोंकी, मणियोंकी और सुन्दर सुगन्धित तुलसीमिश्रित पुष्पोंकी मालाएँ हैं । विशाल और बलकी भण्डार सुन्दर भुजाएँ हैं, जो रत्नजटित कड़े और बाजूबंदसे सुशोभित हैं । ऊँचे और पुष्ट कंधे हैं, अति सुन्दर चिबुक है, तुकीली नासिका है । कानोंमें झूमते हुए मकराकृति सुवर्णकुण्डल हैं । सुन्दर अरुणिमायुक्त कपोल हैं । लाल-लाल अधर हैं । उनके सुन्दर मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी नीचा दिखानेवाले हैं । कमलके समान बहुत ही प्यारे उनके विशाल नेत्र हैं । उनकी सुन्दर चितवन कामदेवके भी मनको हरनेवाली है । उनकी मधुर मुस्कान चन्द्रमाकी किरणोंका तिरस्कार करती है । तिरछी भौंहें हैं । चौड़े और उन्नत ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक सुशोभित है । काले, घुँघराले मनोहर बालोंको देखकर भौंरोंकी पङ्क्तियाँ भी लजा जाती हैं । मस्तकपर सुन्दर सुवर्णमुकुट सुशोभित है । कंधेपर यज्ञोपवीत शोभा पा रहे हैं । मत्त गजराजकी चालसे दोनों चल रहे हैं । इतनी सुन्दरता है कि करोड़ों कामदेवोंकी उपमा भी इनके लिये तुच्छ है ।

(२) महामनोहर चित्रकूट पर्वतपर वटवृक्षके नीचे भगवान् श्रीराम, भगवती श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी बड़ी सुन्दर रीतिसे विराजमान हैं । नीले और पीले कमलके समान कोमल और अत्यन्त तेजोमय उनके श्याम और गौर शरीर ऐसे लगते हैं, मानो चित्रकूटरूपी कामवनमें प्रेम, रूप और शोभामय कमल खिले हों । वे नखसे शिखातक परम सुन्दर, सर्वांग अनुपम और नित्य दर्शनीय हैं । भगवान् राम और लक्ष्मणके कमरमें मनोहर मुनिवस्त्र और सुन्दर तरकस बँधे हैं । श्रीसीताजी लाल वसनसे और नानाविध आभूषणोंसे सुशोभित हैं । दोनों भाइयोंके वक्षःस्थल भार कंधे विशाल हैं । वे कंधोंपर वल्कलोंकी और यज्ञोपवीत धारण किये हुए हैं । गलेमें सुन्दर पुष्पोंकी मालाएँ हैं । अति सुन्दर भुजाएँ हैं । कर कमलोंमें सुन्दर धनुष सुशोभित हैं । परम शान्त, परम प्रसन्न मनोहर मुखमण्डलकी शोभाने करोड़ों कामदेवोंको जीत लिया है । मनोहर मधुर मुस्कान है । कानोंमें कुण्डल शोभित हो रहे हैं । सुन्दर अरुण कपोल हैं । विशाल कमल-जैसे कमनीय और मधुर आनन्दकी वर्षा करनेवाले अरुण नेत्र हैं । उन्नत ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक है और सिरपर जटाओंके मुकुट बड़े मनोहर लगते हैं । तीनोंकी यह वैराग्यपूर्ण मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है ।

(लक्ष्मी)

वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम्

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥
त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद् वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

(श्रीमद्भागवत ११ । ५ । ३३-३४)

प्रभो ! आप शरणागतवत्सल हैं । आपके चरणारविन्द सदा-सर्वदा ध्यान करनेयोग्य, माया-मोहके कारण होनेवाले सांसारिक पराजयोंका अन्त कर देनेवाले तथा भक्तोंको समस्त अभीष्ट वस्तुओंका दान करनेवाले कामधेनुरूप हैं । वे तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले स्वयं परम तीर्थस्वरूप हैं; शिव, ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता उनकी स्तुति करते हैं और जो कोई उनकी शरणमें आ जाय, उसे वे स्वीकार कर लेते हैं । सेवकोंकी समस्त पीड़ा और पापके नाशक तथा संसार-सागरसे पार जानेके लिये जहाज हैं । महापुरुष ! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ । भगवन् ! आपके चरण-कमलोंकी महिमा कौन कहे । अपने पिता दशरथजीके वचनसे देवताओंके लिये भी वाञ्छनीय और दुस्त्यज राज्यलक्ष्मीको छोड़कर आपके चरणकमल वन-वन घूमते फिरे । सचमुच आप धर्मनिष्ठताकी सीमा हैं । और महापुरुष ! अपनी प्रेयसी सीताजीके चाहनेपर जान-बूझकर आपके चरण-कमल मायामृगके पीछे दौड़ते रहे । सचमुच आप प्रेमकी सीमा हैं । प्रभो ! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ ।

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय और भगवान् श्रीराम

(लेखक—अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्यजी महाराज)

अखिलब्रह्माण्डनायक, क्षराक्षरातीत, भवाब्धिमग्नोद्धारक, प्रमथेन्द्रादिकिरीटकोटिपीडितपदपीठ, परात्पर, अनुपमनिर्मल, कौसल्यानन्दवर्द्धन, दशरथनन्दन, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामभद्रका पावनतम चरित्र कितना समुज्ज्वल, दिव्य और शास्त्रमर्यादाओंसे निबद्ध है—इसे प्राकृत भाषामें अङ्कित करना अति कठिन है। लोकाभिराम भगवान् श्रीरामका ऐसे अत्यन्त भीषण संकट कालमें आविर्भाव हुआ, जब कि दुर्दान्त रावण-कुम्भकर्ण एवं मेघनाद-खरदूषण-जैसे अगणित प्रबल अत्याचारी क्रूरकर्मा निशाचरका अतिशय प्राबल्य था। गो-ब्राह्मण-साधुजन, देवगण, ऋषि-मुनि-महात्मा नाना प्रकारसे महाघोर-कर्मसंलग्न इन असुरोंके अकल्पनीय भयंकर कुकृत्योंसे अत्यन्त उत्पीडित थे। त्रिभुवनविमोहन करुणा-वरुणालय श्रीराघवेन्द्र सरकारने कृपा कर इन दुर्दम दुष्ट दैत्योंका दलन और प्रपन्न भक्त-जनोंका परित्राण कर वैदिक-धर्म एवं शास्त्रमर्यादाकी सम्यक् प्रकारसे स्थापना की। आपके लोकपावन चरित्रका श्रवण, मनन और निदिध्यासन कर आज भी विभ्रान्त मानव सत्पथानुगामी बनकर आपकी महामहिमामयी कृपानुकम्पाका सत्पात्र बन जाता है, तथा आपके अति दुर्लभ मधुर दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त कर लेता है। भगवान् श्रीरामके सभी चरित्र इतने आदर्श और महान् हैं कि उनके स्मरणमात्रसे ही त्रिविध ताप एवं पापकोपप्रवाहक क्षणभरमें ही प्रशान्त हो जाते हैं।

रघुकुलतिलक श्रीरामके अखण्ड साम्राज्यमें सर्वत्र सुख-शान्तिकी अजस्र धारा प्रवहमाण थी। सम्पूर्ण प्रजा धन-धान्य-समृद्धिसे सम्पन्न थी और नित्यनव हर्षोल्लासका अनुभव करती थी। जनकनन्दिनी श्रीसीताजीसहित श्रीरामभद्रकी अतुलित-अनुपम सौन्दर्य-माधुर्यमय्य विलक्षण शोभाके दर्शन-हेतु अगणित देव-ऋषि-मुनि-वृन्द आ-आकर अपनी अनन्त-कालकी उपार्जित तपःसाधनाकी उपलब्धिका साक्षात्कार करते थे। असीम बलनिधान पवनतनय श्रीहनुमान् जिन भगवान् श्रीरामके युगल पदकंजमें सदा अनुरक्त रहते थे, उन प्रभुकी इच्छित सेवा-सामग्रीको सतत प्रस्तुत करना कैसी आदर्श और उत्कृष्ट भक्तिका निदर्शन है। श्रीप्रभुके कुलगुरु राज्यमें धर्म और नीतिके अद्वितीय मर्मज्ञ महामुनि श्रीवसिष्ठ-जैसे प्रमुख परामर्शदाताका होना रामराज्यकी गरिमाका महत्तम द्योतक था। अवधेश महाराज दशरथ और माता कौसल्याका अनिर्वचनीय अगाध अनुराग भला किसे अनुप्राणित नहीं कर देता। लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न-जैसे परम अभेद्य महामहिम भ्राता रामाज्ञाके अनुपालनमें सर्वदा विनम्रभावसे संनद्ध रहते एवं तदनुवर्तनमें अपना अतिशय सौभाग्य मानते हैं।

इस प्रकार मानव-जीवनका यथार्थ प्रेरक एवं उदात्त उद्बोधनप्रदायक मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका त्रैलोक्यपावन मङ्गलमय चरित्र सामने है। यह जिस दृष्टिसे भी देखा जाय, सर्वोत्कृष्ट और दिव्यातिदिव्य है। नीलाम्बुज-श्यामलकोमलाङ्ग दशरथसुत नयनाभिराम श्रीराघवेन्द्र प्रभुके निखिललोकवन्दित परमाद्भुत चरित्रका श्रुति-स्मृति-पुराण-तन्त्रादि धर्मशास्त्र एवं वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण प्रभृति अनेक रामायणों तथा अनेक मुनीश्वर, सम्प्रदायाचार्यों, संत-महात्माओंने भी मधुर, सरस और अति विस्तृतरूपसे वर्णन किया है। श्रीराम-चरितमानस तो प्रसिद्ध ही है। श्रीगोस्वामीजीने जिस अनूठे प्रकारसे मानसका प्रणयन किया है, वह अद्वितीय है। श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके सर्वमूर्द्धन्य पूर्वाचार्य एवं परवर्ती आचार्यचरणोंने भी श्रीराममहिमाका गुणगान जिस अनुपमेय, अनिर्वचनीय भाषामें किया है, वह भी विशेषतः द्रष्टव्य है।

श्रीमन्निम्बार्काचार्यपीठाधिरूढ जगद्विजयी जगद्गुरु श्रीकेशवकाश्मीरी भट्टाचार्यजी महाराजने 'श्रीकृष्णशरणापत्ति-स्तोत्र'में भगवान् श्रीकृष्णकी प्रपन्नताकी आकाङ्क्षा करते हुए भगवान् श्रीरामकी भी प्रपत्ति बड़ी ही सरलतासे की है—

> श्रीरामचन्द्र रघुनाथ जगच्छरण्य
> राजीवलोचन धनुर्धर रावणारे।
> सीतापते रघुपते रघुवीर राम
> श्रीमन् केशव हरे शरणागतं माम्॥
> (श्रीकृष्णशरणापत्तिस्तोत्र, ४)

ऐसे ही श्रीनिम्बार्कपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीपरशुरामदेवा-चार्यजी महाराजने भी अपने 'श्रीपरशुरामसागर' नामक बृहद् ग्रन्थमें अनेक दोहों और पदोंसे 'राजीवलोचन भगवान् राम'का गुणगान किया है। उदाहरणार्थ कतिपय दोहे और पद यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

रंक विभीषन कौं दयो, है रावन को गाउ।
'परसा' परम उदार अति, राम गरीब निवाज ॥
'परसा' हित करि सेइये, हरि सारन समपार।
और न को रघुनाथ सम, नेह निबाहन हार ॥
घर बाहर सनमुख सदा, हरि जहँ-तहँ इक सार।
रामचंद्र भजि 'परसराम', दाता परम उदार ॥
रामचंद्र दसरथ नृपति सुवन 'परसा' परम-उदार।
लंक दई छिन हेत करि, भभ्भे भगति दातार ॥
सिव तारी सिला सिंधु परि, 'परसराम' सो राम।
ता सुमिरयौं सब सुद्दरै, करिये औ कछु काम ॥
(श्रीपरशुरामसागर दो० २, दो० ९, ११, १३, १४, १७, दो० १४)

पद-राग भवन राम । तुलसी ।
सदगति भई सिला जब-ही-जब, देखि प्रगट सबकी रिषि-नारी ॥
पवन गये पावन परस में, यह अभिराम राघव अति मारी ।
बड़े पातक सबल, पद-पंकज पारस दिव्य देह जिनि धारी ॥
बरनि सकै कवि कौन सुमहिमा अति अगाधि सेस सिरधारी ।
सोइ दीजे, रघुनाथ ! कृपा करि 'परसा' जन-रज चरन सिरधारी ॥
(श्रीपरशुरामसागर, पं० ४ पद ११, २, पृ० ११९, १०५)

इसी प्रकार श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधिपति जगद्गुरु श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराजने अपने निजप्रणीत 'गीतामृतगङ्गा' नामक वाणी-ग्रन्थमें अवधेशकुमार श्रीरामचन्द्रजीकी महिमाका अनेक स्थलोंपर बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है।

यथा—

जय-जय रघुवर ! करुणासागर ! कामुंक-हस्त ! कौशल्यानागर !
जय-जय-राघवमोनिय धनु मथन ! दशमुख दशमुख दुःख-कन्दन !
जनकसुता-सहचर सुखदाते, विहर हमारे 'वृन्दावनदासे' ॥
बड़ु रे, मनुवाँ ! है रे राम की चाम ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह में क्या भटकत बेकाम ॥
बिनमि गर्वे सब छिनक एक में कोउ न पूरे है काम ।
'(श्री) वृंदावन' यह समदि, बावरे ! पैसे पकरि निज धाम ॥
(श्रीगीतामृतगङ्गा, पद १०, ११, पद १०, ९)

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठसमास्द आचार्यवर्य जगद्गुरु श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजी महाराजने भी अपनी अति मनोहर सम्पुष्ट पदावलीमें रघुकुलतिलक जनकसुतावल्लभ विश्वविमोहन श्रीरामचन्द्रके रूपसौन्दर्य एवं हितकर उपासना-विषयक हृदयहारी और मनोरम वर्णन किया है, जिसका कुछ अंश नीचे उद्धृत है—

मिथिला नगर जनकपुर देसा। सुन नृप सौरभ नरेसा॥
सखी जनक-नन्दी जु कह्यां है। मानो रूप की धाम है॥
सजनी सों बोली मैना। ये काके कुँवर रति-मैना॥
तन साँवर सरस सलोने। सुंदर अस रूपे न होने॥
लख्यौं मम-कानन लगी है। मेरी मति यह मूल भगी है॥
सिसु कठिन धनुष पन कीनों। कोउ नहीं जाय कछु कीनों॥
ये सुकुल मनोहर जता। यह धनुष कठिन अति ठाढ़ा॥
सब कारौं भई जात्मी। (मैं) इनकी पत्नी है लाई॥
जनकसुता की कल्पना-करी। रघुपति अपने मन मारी॥
सिव कठिन धनुष है तोरयौ। मट बीरम को मद मोर्यौ॥
भयो व्याह, बधाई मनियाँ। सब सखी गई रँगभीनी॥
हुलसी है निज पुर आये। भये 'गोविंदसरन' मन भाये॥
(श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजीकी वाणी, पद १०)

सुन्दर जनकजाकी रघुनंदन।
अति अभिराम बाल छवि, गुन निधि धनुष बान कर कंदन ॥
सरजू तीर कलरव मन्दी हरित भूमि मनरंजन।
पावस रितु बन उपवन सोभा निरखि होत मन मंजन ॥
उर बिसाल मुकुताहल सोहै मदन के मन गंजन।
'गोविंदसरन' राजाधिराज नृप तिलक असुर दलभंजन ॥
(श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजीकी वाणी, पद १०२)

यद्यपि श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके आराध्य नित्यनिकुञ्जविहारी युगलकिशोर श्यामाश्याम भगवान् श्रीराधाकृष्ण हैं, तथापि सम्प्रदायके सिद्धान्तानुसार भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णमें अन्तर नहीं माना गया है। वस्तुतः वे एक ही परात्पर रसस्वरूप परब्रह्म हैं। भक्त-विशेषोंको भक्तोंको आनन्द देने, धर्मके संस्थापन एवं निशाचरोंके दमनार्थ ही समय समयपर विभिन्न रूपमें अवतार लेते हैं, जैसा कि श्रीपरशुराम देवाचार्यजी महाराजने स्पष्ट किया है—

राम कृष्ण हरि नाम है, भेद-अभेद न कोय।
यह ज्ञान कौं 'परसराम', नाम पैन प्रभु सोय ॥
(श्रीपरशुरामसागर, श० पौर २०० । २)

भगवान् श्रीरामका दिव्य चरित्र मर्यादा-स्थापनादिके उद्देश्यसे की गयी अनेक लीलाओंसे परिपूर्ण है और इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी लीलोत्तर, अलौकिक रसिक चरित्र भी मुख्य उद्देश्य निज जनभक्तोंको सुख देनेके अतिरिक्त दिव्य केलि-रस प्रदान ही है, असुर-संहारादि कार्य तो आनुषङ्गिक हैं।

श्रीश्रीरामनाम-माहात्म्य

(लेखक—महात्मा श्रीसीतारामदास ओंकारनाथजी महाराज)

मनोऽभिरामं नयनाभिरामं
वचोऽभिरामं श्रवणाभिरामम्।
सदाभिरामं सततामिरामं
वन्दे सदा दाशरथिं च रामम्॥

(आनन्दरामायण)

'मनके लिये मनोरम, नयनोंके लिये रमणीय, वचनकी दृष्टिसे सुन्दर, श्रवणके लिये मनोरम, सर्वदा अभिराम, निरन्तर सुन्दर दाशरथि रामको मैं सदा वन्दना करता हूँ।'

'श्रीरामरहस्योपनिषद्'में श्रीरामचन्द्रजीके श्रीमुखकी वाणी है—

श्रीराम उवाच—

[illegible] पितृघ्नो मातृघ्नो ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पग-कोटियतिघ्नोऽनेककृतपापो यो मम षण्णवतिकोटिनामानि जपति स तेभ्यः पापेभ्यः प्रमुच्यते स्वयमेव सच्चिदानन्दस्वरूपो भवेन्न किम्? (१ । ५)

'जो मनुष्य पितृघाती, मातृहन्ता, ब्रह्मघाती, गुरुहन्ता, कोटियतिविनाशक तथा और भी अनेक पापोंका कर्ता है, वह मेरे ९६ करोड़ नामका जप करके उन सब पापोंसे विमुक्त हो जाता है। अधिक क्या कहा जाय, वह सच्चिदानन्दस्वरूप हो जाता है।'

अग्नीषोमात्मकं रूपं रामबीजे प्रतिष्ठितम्।
यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः॥
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।

(वही, ५ । ३-४)

'रामबीज (रां)में अग्नीषोमात्मक विश्व प्रतिष्ठित है। जिस प्रकार वटबीजके भीतर प्राकृत महान् वटवृक्ष रहता है, उसी प्रकार दृश्यमान चराचर जगत् रामबीजमें अवस्थित है।'

आद्यो रा तत्पदार्थः स्यान्मकारस्त्वंपदार्थवान्॥
तयोः संयोजनमसीत्यर्थे तत्त्वविदो विदुः।

(वही, ५ । ११-१२)

''राम' शब्दके आदिका 'रा' तत्पदार्थ है, मकार 'त्वं'-पदार्थ है, दोनोंका संयोजन 'असि' है, अर्थात् 'राम' शब्द 'तत्त्वमसि' (तू आत्मा ही वह परमात्मा है)—इस महावाक्यका द्योतक है—आत्मतत्त्वके ज्ञाता इससे अवगत हैं।''

'श्रीरामोत्तरतापिनी उपनिषद्'में लिखा है—

मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः।
ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शंकरम्॥
वृणीष्व यदभीष्टं तद् दास्यामि परमेश्वर।
अथ सच्चिदानन्दात्मानं श्रीराममीश्वरः पप्रच्छ—
मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः।
म्रियेत देही तज्जन्तोर्मुक्तिर्नातो वरान्तरम्॥

(१ । १-३)

''भगवान् शंकरने हजारों मन्वन्तरतक जप-होम-अर्चना आदिके द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रकी आराधना की। तदनन्तर श्रीभगवान् प्रसन्न होकर शंकरजीसे बोले—'हे परमेश्वर! आपको जो अभीष्ट हो, वह वर माँगिये। उसे मैं अवश्य दूँगा।' तत्पश्चात् शंकरजीने सच्चिदानन्द श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'मेरे अविमुक्त क्षेत्र (वाराणसी)में मणिकर्णिकामें, गङ्गामें अथवा उसके तटपर जो कोई जीव देहत्याग करे, उसकी मुक्ति हो—इसके सिवा अन्य वर मुझे नहीं चाहिये।'

अथ स होवाच—

क्षेत्रेऽस्मिंस्तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः।
कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा॥
अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये।
अहं संनिहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु॥
क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(१ । ४—६)

श्रीरामचन्द्रजी बोले—'देवेश! आपके इस क्षेत्र (वाराणसी)के अन्तर्गत किसी भी स्थानमें मरे हुए कृमि-कीटपर्यन्त जीव शीघ्र मुक्त हो जायँ, मेरा यह वरदान अन्यथा नहीं हो सकता। आपके अविमुक्तक्षेत्रमें सबको मुक्ति प्रदान करनेके लिये मैं पाषाण-प्रतिमा आदिमें संनिहित ही रहूँगा। शिव! इस क्षेत्रमें जो मनुष्य भक्तिपूर्वक राममन्त्रके द्वारा मेरी पूजा
उसको ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त
न करो।'

त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम् ।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते ॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव ॥
(१ । ७८)

'आपसे या ब्रह्मासे जो षडक्षर मन्त्र (श्रीरामाय नमः) प्राप्त करेंगे, वे जीवितावस्थामें ही मन्त्रसिद्ध हो जायँगे और देहान्त होनेपर मुझको प्राप्त करेंगे। अथवा शिव! आप स्वयं जिस किसी मुमूर्षुके दाहिने कानमें मेरे मन्त्रका उपदेश कर देंगे, वह मुक्त हो जायगा।'

'मुक्तिकोपनिषद्'में लिखा है—

दुराचाररतो वापि मन्नामभजनात् कपे ।
सालोक्यमुक्तिमाप्नोति न तु लोकान्तरादिकम् ॥
जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे—
येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति मानवः ॥
पुनरावृत्तिरहितां मुक्तिमाप्नोति मानवः ।
यत्र कुत्रापि वा काश्यां मरणे स महेश्वरः ॥
जन्तोर्दक्षिणकर्णे तु मत्तारं समुपादिशेत् ।
निर्धूताशेषपापौघो मत्सारूप्यं भजत्ययम् ॥
(१८-१९, २०-२१)

'हनुमान्! दुराचारी व्यक्ति भी यदि मेरे नामका भजन करता है तो वह सालोक्य मुक्ति प्राप्त करता है। उसे अन्य लोककी प्राप्ति नहीं होती। जीवके प्राणोत्क्रमणके समय काशीमें भगवान् रुद्र उसे तारक ब्रह्म (राम नाम)का उपदेश करते हैं, जिसके द्वारा जीव अमृतत्वको प्राप्त होकर मुक्त हो जाता है। काशीमें जिस-किसी स्थानमें मृत्युके समय महेश्वर जीवके दाहिने कानमें मेरे तारक मन्त्रका उपदेश करते हैं, उसके द्वारा सारे पापोंसे मुक्त होकर वह मेरे सारूप्यको प्राप्त होता है।'

हारीतस्मृति—

एतन्मन्त्रमगस्त्यस्तु जप्त्वा रुद्रत्वमाप्तवान् ।
ब्रह्मत्वं काश्यपो जप्त्वा कौशिकस्त्वमरेशताम् ॥
कार्त्तिकेयो मनुत्वं च इन्द्रार्कौ गिरिसम्भवौ ।
वाल्मीक्याद्यिमुनयो देवत्वं प्रपेदिरे ॥
तस्मात् सर्वात्मना रामनामरूपं परं प्रियम् ।
मन्त्रं जपेत् सदा धीमान् संसिद्धयान्यसम्भवम् ॥
श्रीरामाय नमो ह्येष तारकब्रह्म उच्यते ।
नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्य एव महामनुः ॥
तमिमं चैकाक्षरं रामं योगिनः समुपासते ।
(२ । १४, १५, १६)

"इस मन्त्रका जप करके अगस्त्यमुनि रुद्रके पदको प्राप्त हुए थे, कश्यप ब्रह्माके पदको, कौशिक अमरपतित्वको तथा कार्तिकेय, मनु, इन्द्र, सूर्य, पर्वतमुनि, नारद और वाल्मीकि आदि मुनिगण देवत्वको प्राप्त हुए थे। अतएव बुद्धिमान् मनुष्य अन्य साधनोंको सम्यक्‌रूपसे त्यागकर इस रामनामरूपी परमप्रिय मन्त्रको सर्वात्मभावेन सदा काय मन-वचनसे जप करे। 'श्रीरामाय नमः'—यह तारक मन्त्र कहलाता है, यह महामन्त्र विष्णुसहस्रनामके तुल्य है। और इस एकाक्षर राममन्त्रकी योगीजन सम्यक् उपासना करते हैं।"

रामराम, सीताराम

काहे को पचंबर ओढ़ करो आडंबर भग, काहे को दिगंबर हो रूप गहाय रहिये।
कहैं पद्माकर त्यों जमना के कलेस देत, सीकर मर्भान सीस पात मार सहिये॥
काहे को जपो ये जप, काहे को तपो ये तप, क्यों को प्रपंच पंच पावक में दहिये।
रैन-दिन आठों जाम राम राम राम राम राम, सीताराम सीताराम सीताराम कहिये॥

आनँद के कंद, जग त्रिपावन, जगत वंद, दशरथ के नंद के निपाट ही निपटिये।
कहैं पद्माकर त्यों पवित्र पन पालिबे को, त्यों ही रामचन्द्र के चरित्रन को चहिये॥
आनँद बिहारी के बिनोदन में धीर, धीर, धीर की बिचार के गुनानुवाद गहिये।
रैन-दिन आठों जाम राम राम राम राम राम, सीताराम सीताराम सीताराम कहिये॥

—पद्माकर

रामनामकी महत्ता

(पूज्यपाद योगिराज अनन्तश्री देवरहवा बाबाका उपदेश)

भगवान् श्रीरामकी कथा सभी जानते हैं। लेकिन रामनाम-जपकी क्या महत्ता है, इसे विरले लोग ही जानते हैं। रामनामकी महत्ताके विषयमें जो भी कुछ कहा जाय, वह सब अपूर्ण ही है और होगा। रामनामकी महत्ता इतनी विशाल है कि कोई इसको पूर्णतः वर्णन करनेका दावा नहीं कर सकता। जितना बड़ा यह विस्तृत आकाश है, उससे भी बड़ी इस रामनामकी महिमा है। रामनामकी महत्ताको समझानेके लिये संतोंने एक ही वाक्यमें इसकी विशालता बतला दी है। संतलोग कहते हैं कि 'संसारके सातों बड़े-बड़े समुद्रोंको यदि दावात बना लिया जाय और किसी एक ऊँचे पर्वतको कलम बनाकर यदि गणेशजी-जैसे तेज लिखनेवाले व्यक्तिद्वारा भी रामनामकी महिमा लिखवायी जाय, तो भी इसमें संदेह है कि वे रामनामकी महिमाका सम्पूर्ण वर्णन लिख सकेंगे।'

रामनामकी महिमा इतनी विशाल है कि बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि भी इसका पूर्णतया वर्णन नहीं कर सके। उनने अन्तमें यही कह दिया कि इसके यथार्थ वर्णनमें हमलोग भी असमर्थ ही हैं। चूँकि 'कल्याण'के सम्पादक महोदयने अपने 'रामाङ्क'के लिये कुछ उपदेश माँगा है, इसलिये रामनामकी महिमापर हम अपना नहीं, संत तुलसीदासका ही विचार रखते हैं, जो रामायणमें वर्णित है और सर्वमान्य है। इस रामनाममें केवल दो अक्षर हैं—रकार और मकार। इन दो अक्षरोंकी महिमा अनन्त है। संत तुलसीदास कहते हैं—

> आखर मधुर मनोहर दोऊ। बरन बिलोचन जन जिय जोऊ॥
> सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥
> (मानस १ । १९ । १)

'ये दोनों अक्षर उच्चारणमें मधुर तथा देखनेमें भी सुन्दर हैं, स्मरण करनेमें सबको सुलभ और सुखदायक हैं, लोक और परलोक, दोनोंका निर्वाह करनेवाले हैं।' इसकी महिमा शिवजी, गणेशजी तथा वाल्मीकिमुनि ही जानते हैं, जिन्हें इसका साक्षात् अनुभव है और यह नाम भगवान्‌के हजारों नामके बराबर है—

> महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
> महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥
> जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
> सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥
> (मानस १ । १८ । २-३)

रामनामके जपका ही यह प्रभाव था कि शिवजी निर्भय होकर हलाहल जहर पी गये—

> 'नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥'
> (मानस १ । १८ । ४)

रामनामके जपमें योगी मुनि जागते हैं। उनको सांसारिक प्रपञ्चोंसे वैराग्य हो जाता है और नामस्मरणका अनुपम आनन्द मिलता है—

> नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी॥
> ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा॥
> (मानस १ । २१ । १)

जो साधक भक्त ईश्वरकी गूढ़ गति जानना चाहते हैं, वे भी केवल रामनामके जपसे ईश्वरके तत्त्वको समझ लेते हैं और इसके प्रभावसे अनेकानेक सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं। संसारके दुःखी प्राणी जो अनेकानेक चिन्ताओंसे व्यग्र हैं, वे भी रामनामके सतत स्मरण और जपसे अपने दुःखोंसे छुटकारा पा जाते हैं—

> जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
> साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥
> जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
> (मानस १ । २१ । १-२½)

ये तो कही गयीं कुछ दुःखी और कामी भक्तोंके विषयमें। और जो निष्काम भक्ति करनेवाले हैं, तथा अपना कर्तव्य समझकर भगवान्‌की उपासना करते हैं, वे तो साक्षात् योगी ही हैं—उनके विषयमें भगवद्गीताका श्लोक सुनिये—

> अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
> स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः॥
> (६ । १)

'जो निष्काम भक्ति करता है और बिना इच्छा या फल चाहे करनेयोग्य कर्म करता है, वह तो यथार्थमें संन्यासी और योगी ही है।'

श्रीराम-तत्त्व

(एक महात्माका प्रसाद)

उदारता, स्वाधीनता अथवा प्रेम ही जीवन-तत्त्व है। यही वास्तविक मानवता है। उसका मूलस्रोत अनादि, अनन्त श्रीराम-तत्त्व है। इस तत्त्वमें अविचल आस्था अनिवार्य है। अनुत्पन्न होनेसे श्रीराम-तत्त्व सदैव सर्वत्र विद्यमान है, अर्थात् अभी है, अपनेमें है और अपना है। अपना होनेसे प्रिय है। प्रियता एक ऐसा अनुपम, अलौकिक, अद्भुत तत्त्व है कि उसका प्राकट्य होनेपर श्रीराम-तत्त्वसे दूरी, भेद और भिन्नता शेष नहीं रहती, अर्थात् मानवको स्वतः योग-बोधक प्रेमकी प्राप्ति होती है। भोग-मोह-आसक्तिकी निवृत्ति तथा योग-बोध-प्रेमकी प्राप्ति मानवमात्रकी अपनी माँग है। माँग उसे नहीं कहते, जो अपनी पूर्तिमें आप समर्थ न हो; कारण, माँग उसीकी होती है, जो अपना जीवन है। माने हुए असत्के सङ्गसे काम अर्थात् दृश्यका आकर्षण उत्पन्न होता है, जिसके होते ही माँग दब जाती है और अनेक कामनाओंका जन्म हो जाता है। कामनाओंकी उत्पत्ति-पूर्ति-अपूर्तिके कारण मानव पराधीनता, जड़ता एवं अभावमें आबद्ध हो जाता है; किंतु फिर भी स्वाभाविक माँगका नाश नहीं होता। सत्सङ्गके द्वारा माँग सबल तथा स्थायी हो जाती है। इतना ही नहीं, ज्यों-ज्यों माँग होती है, त्यों-त्यों कामका नाश स्वतः होता जाता है। यह अनन्तका मङ्गलमय विधान है। सर्वांशमें कामका नाश होते ही माँग स्वतः पूरी हो जाती है और फिर प्रियता और प्रेमास्पदका अविनाशी, चिन्मय, रसरूप विहार ही शेष रहता है। यह शरणागत साधकोंका अनुभव-सिद्ध सत्य है।

मानव जन्म-जात साधक है। साधन-तत्त्व उसका जीवन है। असत्के सङ्गसे असाधन उत्पन्न होता है। वह साधकका अपना प्रमाद है, जिसकी निवृत्ति एकमात्र सत्सङ्गसे ही साध्य है। प्रमाद कोई प्राकृतिक पदार्थ नहीं है, अपितु वह मानवकी भूलसे ही उत्पन्न होता है। जो भूलजनित है, उसकी निवृत्ति भूलरहित होनेसे ही होती है। भूलका ज्ञान जिस ज्ञानसे होता है, वह ज्ञान अनन्तका प्रकाश है, जो श्रीराम-कृपासे मानवको नित्य प्राप्त है। प्राप्त ज्ञानका आदर तथा प्राप्त बलका सदुपयोग एवं श्रीराम-तत्त्वमें विकल्परहित आस्था सत्सङ्ग है, जो मानवका अपना स्वधर्म है। स्वधर्मनिष्ठ होते ही असाधनका नाश, साधनकी अभिव्यक्ति तथा साधन और जीवनमें एकता हो जाती है, जिसके होते ही साधकका अस्तित्व साधन-तत्त्वसे भिन्न कुछ नहीं रहता। समस्त साधन साधन-तत्त्वमें विलीन हो जाते हैं। जबतक साधन और असाधनका द्वन्द्व रहता है, तबतक साधक और साधन-तत्त्वमें भिन्नता रहती है। सर्वांशमें असाधनका नाश होते ही साधकका अस्तित्व साधनसे भिन्न कुछ नहीं रहता, अर्थात् अखण्ड स्मृति, अगाध प्रियता एवं नित्य जागृति ही शेष रहती है, जो वास्तविक जीवन है।

यह सर्वमान्य सत्य है कि दृश्यका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, अपितु उसके उत्पत्ति-विनाशका क्रम है। जिसकी स्थिति नहीं है, उसके अस्तित्वमें आस्था रखना भूल है। इस दृष्टिसे अनुत्पन्न हुए तत्त्वमें ही आस्था-श्रद्धा-विश्वास करना चाहिये। उत्पत्तिका आधार, प्रतीतिका प्रकाशक, अनादि, अनन्त श्रीराम-तत्त्व ही है। आस्था-श्रद्धा-विश्वास-पूर्वक श्रीराम-तत्त्वसे आत्मीय सम्बन्ध स्वीकार करना तथा ज्ञानपूर्वक दृश्यसे असङ्ग होना एवं निर्मम, निष्काम होकर प्राप्त बलका सदुपयोग करना जीवनका सत्य है। सत्यको स्वीकार करनेसे ही मानवका सर्वतोमुखी विकास होता है। आत्मीयतासे ही अखण्ड स्मृति तथा अगाध प्रियता उदित होती है, जिसके साथ ही साधक साधन-तत्त्वसे अभिन्न हो जाता है अर्थात् मानवका अस्तित्व अगाध प्रियतासे भिन्न कुछ नहीं रहता। स्वप्रियताका ही विवेकात्मक रूप स्वाधीनता एवं क्रियात्मक रूप उदारता है। उदारतासे जीवन जगत्के लिये और स्वाधीनतासे अपने लिये एवं प्रियतासे प्रभुके लिये उपयोगी होता है। उदारता, स्वाधीनता और प्रेम श्रीराम-तत्त्वकी ही महिमा एवं मानवके विकासकी चरम सीमा है। महामहिम श्रीराम-तत्त्वके अस्तित्व और महत्त्वको स्वीकार करना प्रत्येक सजग मानवके लिये अनिवार्य है। स्वीकृति कोई अभ्यास नहीं है, अपितु अविचल विश्वास है। विश्वाससे सम्बन्ध सजीव होता है और सम्बन्धसे स्मृति तथा प्रियता उदय होती है। श्रीराम-तत्त्व साध्य-तत्त्व है। मानव साधक है। साध्यकी अगाध प्रियता ही साधकका स्वरूप है। इस दृष्टिसे साधक और साध्य अर्थात् प्रेमी और प्रेमास्पदका नित्य विहार ही श्रीसीतारामतत्त्व है।

अलंकारोंसे अलंकृत होकर, अपने दाहिने हाथमें सुवर्णमयी बहुमूल्य माला लेकर मन्द-मन्द मुस्कराती हुई श्रीरामचन्द्रजीके समीप आयीं। उनका वर्ण सुवर्णके सदृश था। वे मुक्ताहार, कर्णफूल और कमरबन्द आदि बहुमूल्य आभूषणोंसे विभूषित थीं तथा शरीरपर बहुमूल्य अनुपम साड़ी पहने हुए थीं। सीताजीने बड़ी ही सरलतासे विनम्रतापूर्वक मन्द-मन्द मुस्कराते हुए वह जयमाला श्रीरामजीके गलेमें डाल दी।

यहाँ सर्वप्रथम भेंट धनुष-भङ्गके पश्चात् विवाह होनेके पूर्व ही हो गयी। दोनों ही सयाने थे। अतः उस प्रथम-मिलनमें दोनोंको कितनी प्रसन्नता हुई होगी, यह अवर्णनीय है।

(३) आनन्दरामायणग्रन्थमें श्रीराम और श्रीसीताका अपूर्व मिलन कराया है। आनन्दरामायणमें नियमानुसार सीताजीका स्वयंवर रचा गया है। देश-विदेशसे सहस्रों राजा-राजकुमार आये हैं। विश्वामित्रजी भी राम-लक्ष्मणको लेकर एक आमके बगीचेमें ठहरे हैं। यहाँ विश्वामित्रजी अपने एक शिष्यसे चुपके-चुपके महाराज जनकको संदेश भेजते हैं—'मैं सीता-ऊर्मिलाके विवाहके लिये राम-लक्ष्मणको लाया हूँ। उनका शुभ अच्छी भाँति स्वागत करें।' राजाने वही किया। हाथियोंपर बैठाकर उनकी शोभायात्रा निकाली। इससे अन्य राजाओंको संदेह हुआ कि 'हमारा तो ऐसा स्वागत नहीं किया गया। कहीं जनकने चुपकेसे सीताको रामके लिये दे तो नहीं दिया।'

स्वयंवर-सभा लगी है। राजा अपना प्रण सुनाते हैं। राजा-राजकुमार धनुषको उठानेका प्रयत्न करते हैं, परंतु वह नहीं उठता। रावणसे भी नहीं उठता। रावण धनुषके उलट जानेसे उसके नीचे दब जाता है, मरणासन्न हो जाता है। यह मर जायगा, यह सोचकर जनकजी कहते हैं—'इस सभामें एक भी ऐसा वीर नहीं, जो रावणके प्राण बचा सके।' तब गुरुकी आज्ञासे श्रीरामजी जाकर रावणको बचाते हैं। तभी सीताजी रामजीके दर्शन करती हैं। धनुष-भङ्गके पूर्व ही दिव्य मण्डपमें छतपर सीताजी वस्त्रालंकारोंसे सुसज्जित होकर आती हैं। श्रीरामचन्द्रजीकी लोकाभिराम छविको देखकर सीताजीके सम्पूर्ण शरीरमें स्वेद चूने लगता है। वे हड़बड़ाकर अपने आसनसे उठकर अपनी सखी पृथ्वीके गलेमें हाथ डालकर कहती हैं—'कहाँ ये कोमलाङ्ग सुकुमार राजकुमार और कहाँ त्र्यंबके ... गुरु धनुष! ये इसे कैसे चढ़ा सकेंगे! ये चढ़ा सकें या न चढ़ा सकें, मैं तो श्रीरामको छोड़कर किसी अन्यसे विवाह करूँगी ही नहीं। हे शम्भो! हे विधे! मैं आप सबसे आँचल पसारकर भीख माँगती हूँ, विनय करती हूँ कि आप सब इस धनुषको फूलके समान हलका कर दें। श्रीरामजीके भुजदण्डोंमें प्रवेश करके उन्हें अमित बल प्रदान करें, जिससे श्रीराम धनुषको चढ़ा सकें और मैं उनकी अनुगामिनी बनकर मुनिवेश धारण करके इस पर्यन्त उनके साथ वनोंमें भ्रमण कर सकूँ।'

यहाँ सीताजीने तो सर्वप्रथम धनुषभङ्गके पूर्व ही श्रीरामको देख लिया, किंतु श्रीरामजीने श्रीसीताजीको धनुष-भङ्गके अनन्तर ही देखा। यह दर्शन भी अनिर्वचनीय ही हुआ।

श्रीरामने सहज भावसे धनुष तोड़ दिया। अब सीताजीके आनन्दका क्या कहना। उनका समस्त शरीर रोमाञ्चित हो गया। उन्हें बड़ी उत्कण्ठा हो रही थी, कब जाकर मैं अपने हृदयसर्वस्व प्राणनाथजीसे मिलूँ। वे अपलक भावसे—निर्निमेष दृष्टिसे एकटक श्रीरामको ही निहार रही थीं। तभी महाराज जनकका संदेश आया—'श्रीरामको जयमाल पहनाने सीता मण्डपमें आवें।' मातोंपदेशमें सभी सीताने सर्वप्रथम अपनी माताके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर सखियोंसे घिरी हुई हथिनीपर बैठकर सभा-मण्डपकी ओर चलीं। श्रीसीताजीकी इस प्रथम मिलनकी शुभ-यात्राका कविने जैसा सजीव वर्णन किया है, वह अपूर्व है। मण्डपमें पहुँचनेपर वे हथिनीसे उतारी गयीं। फिर लजाती हुई मन्द-मन्द गतिसे श्रीरामके समीप गयीं तथा उनके कण्ठमें उन्होंने जयमाला पहना दी। उन्होंने श्रीरामके अरुण-वर्ण युगल चरणोंमें अपना सिर रखकर प्रणाम किया और फिर लजाती हुई नीचेकी ओर निहारती हुई वहीं खड़ी रहीं।

अब श्रीरामजीकी पारी थी। उन्होंने भी बहुमूल्य वस्त्रालंकारोंसे अलंकृत सुवर्णवर्णी निर्दोषा सीताको लजाते हुए निहारा। फिर तुरंत लजाकर गुरुके समीप चले गये। कृतज्ञतासे भरे हृदयसे उन्होंने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया।

सीताजी वहीं ठिठकी हुई खड़ी थीं। वे [illegible] बनी हुई थीं। हृदय रामको छोड़कर [illegible] था। वे निर्णय न कर सकीं, अब मुझे [illegible] उसी समय महाराज जनक अपनी [illegible]

सुनु, सुग्रीव ! सोचेहुँ मो पर फेर्‍यो बदन बिधाता ।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लखन-सो भ्राता ॥
गिरि, कानन जैहैं साखामृग, हौं पुनि अनुज-सँघाती ।
ह्वै है कहा बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती ॥

(गी०, लंका० ६ । १-२)

शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामको बार-बार विभीषणका ही स्मरण हो रहा है—

तात को सोच न मातु को सोच न सोच अवध के राज गये को।
पंचवटी बन मीत मुरी नहिं सोच जटायु के पंख जरे को ॥
लछिमन के उर सक्ति लगी, नहिं सोच है रावन सीय हरे को ।
बारहिं बार कहैं रघुनाथ, मोहि सोच बिभीषन बाँह गहे को ॥

भगवान् जिसको एक बार आश्रय दे देते हैं, उसको फिर त्यागते नहीं—

तुलसी कहूँ राम मजु, छाँडि कपट-छल छाँह ।
सरनागत की राम ने, कब नहिं पकरी बाँह ॥
जो कबहुँ बाँह सपूत की, पोसेहुँ सुत दुख जाय ।
अपु निबाहि अनम मरि, लछिमन सौं कहि जाय ॥
ससि कलंक, मृग-कलंक हरि, बड़वानलहि समुद्र ।
प्रहलन किये स्वम्मत नहीं, महादेव बिष रुद्र ॥

अभिप्राय यह है कि भगवान्की शरणागतिमें जीव अविनाशी शान्तिको प्राप्त करता है । श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने एक बात बड़ी अच्छी लिखी है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

(१८ । ६२)

'हे भारत ! सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही अनन्य शरणको प्राप्त हो। उस परमात्माकी कृपासे ही परम शान्तिको और सनातन परमधामको प्राप्त होगा ।'

एक घटना और है, जो अनेक महात्माओंसे सुनी है । विभीषण लङ्कासे भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके साथ अयोध्या आये । कुछ समय अयोध्यामें रहकर पुनः लङ्काके लिये वापस हुए । रास्तेमें एक ब्राह्मणसे विभीषणका पैर छू गया और उस ब्राह्मणकी मृत्यु हो गयी । वहाँकी प्रजाजनने विभीषणको सूलीकी आज्ञा दे दी । विभीषणने सूलीपर चढ़नेसे पहले पूछा गया कि 'तुम क्या चाहते हो ।'

विभीषणने कहा कि 'मैं राजा रामचन्द्रजीके दर्शन करना चाहता हूँ ।' उस समय भगवान् रामचन्द्रका सारे संसारपर राज्य हो चुका था—'भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ॥'

जिस राज्यमें विभीषणकी प्रजा तरानेसे विभीषणको मृत्यु-दण्डकी आज्ञा हुई, वह राज्य भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके राज्यके अन्तर्गत ही था । उस राज्यके राजाने सोचा कि इसी भाँति भगवान् रामचन्द्रके दर्शन हो जायँगे । उसने भगवान् श्रीरामचन्द्रको आदरपूर्वक निमन्त्रित किया । भगवान्ने पधारकर कहा—'आपने मुझे कैसे स्मरण किया ?' उस राजाने कहा—'विभीषणकी भूलसे एक ब्राह्मणकी मृत्यु हो गयी है । यहाँके नियमानुसार विभीषणको सूलीपर चढ़नेकी आज्ञा दी गयी है । उन्हींने आपको स्मरण किया है, जिसके कारण आपको कष्ट दिया गया है ।'

शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि 'आपके राजाने विभीषणको सूलीपर चढ़नेका आदेश दिया है और हमने विभीषणको यह कहकर लङ्काको भेजा है—

करेहु कल्प भरि राज तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माहिं ।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं ॥

(मानस ६ । ११६ क)

अब तो ऐसा उपाय होना चाहिये कि जिससे आपकी आज्ञा भी भङ्ग न हो और मैंने जो कहा है, उसका भी निर्वाह हो जाय । भक्तके अपराधको मैं अपना अपराध समझता हूँ; इसलिये विभीषणको सूलीपर न चढ़ाया जाय, अपितु मुझे चढ़ाया जाय ।

भक्तापराधे सर्वत्र स्वामिनो दण्ड इष्यते ।
वरं ममैव मरणं मद्भक्तो हन्यते कथम् ॥

'भक्तके अपराधको स्वामी सदा स्वयं ही स्वीकार कर लेता है । अतएव मृत्युदण्ड मुझे ही भोगना चाहिये । मेरे रहते हुए मेरा भक्त कैसे मारा जा सकता है ।' 'करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी ।' (मानस ३ । ४२ । २½) अपना यह वाक्य प्रभुने सत्य करके दिखा दिया । भगवान्की ऐसी शरणागतवत्सलताको समझकर भी जो उनका सहारा नहीं लेता, उनके लिये गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

'सुनहु उमा ते लोग अभागी । हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥'

(मानस ४ । ११ । १½)

लोभ रावण और शान्ति सीता

(लेखक—आचार्य श्रीतुलसीजी)

त्यागका मार्ग कठिनाइयोंका मार्ग है। इनसे घबरानेकी आवश्यकता नहीं। कठिनाइयोंको पार करो। साहससे काम लो। नीतिकारोंने कहा है कि भयसे भय बढ़ता है। भयकी छातीको चीरकर आगे बढ़ो, फिर कोई भय नहीं। ठीक इसी प्रकार कठिनाइयोंसे घबराओगे तो वे बढ़ेंगी। उनका सामना करो, वे मिट जायँगी। यदि राम समुद्रसे घबरा जाते, अपनी थोड़ी सी सेना देखकर निराश हो जाते तो उन्हें सीता कैसे मिलती? वे घबराये नहीं। उन्होंने साहससे काम लिया। अपने छोटे साधनोंके उपरान्त भी घबराहटको समस्त कठिनाइयोंके साथ सागरपर पुल बना दिया। एक कविने कहा है—

> विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि-
> र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
> तथाप्येको रामः सकलमवधीद्राक्षसकुलं
> क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

महान् पुरुषोंकी क्रिया सिद्धि उनके सत्त्व (बल), साहस एवं व्यक्तित्वमें रहती है, वह बाहरी उपकरणोंमें नहीं मिलती। आज भारती त्रिपथगा मूर्तिवती बापू गङ्गामें अन्तर्हित हो चुकी है। बीचमें पाकिस्तान विशाल समुद्र पड़ा है। दुनियाके सामने खड़े शत्रु लोभ—रावणको मारकर भारतके अपनी शान्ति—सीताको लाना है। डरो मत। घबराओ नहीं। हिम्मत रक्खो। साहस बटोरो। युद्ध जहाँ गर्भिणियोंके पेटमें छुरा तानकर खड़े हो जाते हैं, वहाँ इसमें घबरानेकी क्या बात है?

रामनामकी अपार महिमा

(महामहोपाध्याय पं० श्रीगोपीनाथजी कविराज एम० ए०)

श्रीरामनामकी अपार महिमा है। कलियुगमें तो नाम-कीर्तन ही उद्धारका एकमात्र साधन है। प्रसिद्ध है कि भगवान् श्रीविश्वनाथ काशीमें जीवको तारकमन्त्रका उपदेश देकर मोक्ष प्रदान करते हैं। यह तारक मन्त्र श्रीरामनाम ही है, परंतु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि यह तारक मन्त्र साधारण रामनाम नहीं है, अपितु विशेष शक्तिसम्पन्न मन्त्र है। अधिकारी साधकोंको यह रहस्य प्रतिभात है।

दशावतारमें भी श्रीरामावतार प्रसिद्ध है। राम-कृष्ण आदि अभिन्न होनेपर भी तारकमन्त्र श्रीरामनाम ही है। शरीर अस्वस्थ होनेके कारण इस विषयपर अधिक स्पष्टीकरण अभी मेरे लिये असम्भव है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि श्रीभगवान् रामचन्द्रजीकी कृपासे प्रस्तुत विशेषाङ्क भी अन्य विशेषाङ्कोंकी तरह साहित्य एवं साधना-जगत्में उपकारक सिद्ध होगा। साथ ही भाईजीकी कीर्ति-रक्षा करने तथा पाठकोंके चित्तको संतोष पहुँचानेमें सक्षम होगा।

गुणार्णव श्रीराम

(लेखक—जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्रीपुरुषोत्तमाचार्य रङ्गाचार्यजी महाराज)

प्रस्तुत लेखमें श्रीवाल्मीकि-रामायणके आधारपर गुण-समुद्र श्रीरामके कतिपय गुणोंका अनुसंधान किया जाता है। श्रीरामायणमें वर्णित गुणोंको हम जैसे अल्पबुद्धिके लोगोंको सरलतासे ज्ञान करानेके लिये पूर्वाचार्यों और श्रीरामायणके टीकाकारोंने उन्हें अनेक वर्गोंमें विभक्त किया है। जिन वर्गोंमें उपर्युक्त गुणोंका वर्गीकरण किया गया है, उन वर्गोंके नाम ये हैं—(१) स्वरूपनिरूपक गुण, (२) परत्वसूचक गुण, (३) सौलभ्यसूचक गुण, (४) आश्रितरक्षणोपयोगी गुण, (५) अवतारैकान्तगुण, (६) अभिगमनहेतुभूत गुण, (७) हेय-प्रत्यनीक गुण, (८) सत्पुरुष साधारण गुण, (९) श्रीरामके असाधारण गुण तथा (१०) अविशानुग गुण।

श्रीरामावतारका मुख्य उद्देश्य

उपरिनिर्दिष्ट वर्गोंमें वर्णित गुणों और उनके अर्थोंके निर्देशके पूर्व श्रीरामावतारका उद्देश्य जान लेना परम आवश्यक है। श्रीरामायणके प्रसिद्ध व्याख्याता विद्वान् श्रीगोविन्दराज श्रीरामावतारके उद्देश्यका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

'स्वाचारमुखेन मनुष्याणां शिक्षयितुं रामादिरूपेण चतुर्धावततार।'

अर्थात् अपने आचरणोंके द्वारा मनुष्योंको धर्माचरणकी शिक्षा देनेके लिये भगवान् विष्णु श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन चार रूपोंमें प्रकट हुए।

धर्मके चार रूप

मानवधर्मके—सामान्यधर्म, विशेषधर्म, विशेषतर धर्म और विशेषतम धर्म—ये चार विभाग हैं। इनमेंसे भगवान्‌ने श्रीराम-रूपसे 'पितृवचनपालन' आदि सामान्य धर्मोंका अपने आचरणद्वारा उपदेश दिया है, श्रीलक्ष्मणरूपसे 'जीवात्मा भगवान्‌का शेष (अंश) है। अर्थात् भगवान्‌का अंश होनेसे भगवान्‌की सेवा इसका कर्तव्य है', इस विशेष धर्मका उपदेश दिया है, श्रीभरतरूपसे—'जीवात्मा परमात्माके परतन्त्र है', इस विशेषतर धर्मका अपने आचरणद्वारा उपदेश दिया है तथा श्रीशत्रुघ्नरूपसे (जीवात्मा भागवतों (वैष्णवों) का दास है), इस विशेषतम धर्मका अपने आचरणद्वारा उपदेश दिया है, अर्थात् भगवान्‌की सेवाकी अपेक्षा भी श्रीवैष्णवोंकी सेवा अधिक है, इसका उपदेश दिया है।

(१) स्वरूपनिरूपक गुण

श्रीगोविन्दराजजीके* मतानुसार निम्नलिखित गुण स्वरूप-निरूपक हैं, अर्थात् श्रीरामके स्वरूपका निरूपण करते हैं।

१—नियतात्मा—'नियतात्मा'का अर्थ नियतस्वभाव है। अर्थात् श्रीराम निर्विकार हैं। श्रीमहेश्वरतीर्थके मतसे नियतात्माका अर्थ 'शिक्षितमना' है। अर्थात् श्रीरामका मन शिक्षित (उनके अधीन) है। श्रीरामका मन रामके वशमें है, न कि वे मनके वशमें हैं।

२—महावीर्य—यहाँ 'वीर्य' शब्दका अर्थ 'शक्ति' है। अतः 'महावीर्य'का अर्थ है—अचिन्त्य-विविध-विचित्र-शक्तिशाली। अर्थात् श्रीराम अचिन्त्य विविध प्रकारकी विचित्र महाशक्तियोंसे सम्पन्न हैं।

३—द्युतिमान्—'द्युति' शब्दका अर्थ 'प्रकाश' है। अतः 'द्युतिमान्'का अर्थ प्रकाशमान होता है। परंतु प्रकाश सब पदार्थोंमें है, इसलिये 'द्युतिमान्'का अर्थ स्वाभाविक प्रकाशयुक्त किया गया है। अर्थात् श्रीराम स्वाभाविक प्रकाश-से युक्त हैं। इस विषयमें वेदका वचन है—'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।'—अर्थात् परमात्माके ज्ञान, बल और प्रकाश आदि सब गुण स्वाभाविक हैं।

४—धृतिमान्—'धृति' शब्दका अर्थ आनन्द है, अतः 'धृतिमान्'का अर्थ निरतिशय आनन्दवान् होता है। श्रीराम निरतिशय आनन्द-गुणसे सम्पन्न हैं।

५—वशी—'वशी'का अर्थ है, सब जगत् जिसके वशमें हो। महेश्वरतीर्थने 'वशी'का अर्थ जितेन्द्रिय किया है। अर्थात् श्रीराम अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, अतः 'वशी' हैं। श्रीरामके प्रस्तुत पाँच गुण उनकी भगवत्ताके सूचक हैं। 'भगवत्ता' ही 'परत्व' है, अतः ये गुण परत्वके भी सूचक हैं।

६ (१)—बुद्धिमान्—'बुद्धिमान्'का अर्थ सर्वज्ञ है, अर्थात् सब वस्तुओंके ज्ञाता श्रीराम हैं। महेश्वरतीर्थके मतमें 'बुद्धिमान्'का अर्थ प्रशस्तबुद्धि-सम्पन्न है, अर्थात् श्रीरामकी बुद्धि प्रशस्त (अच्छी) है।

---

* यहाँ दूसरे ही [illegible] व्याप न [illegible] व्याख्याता ही [illegible] मत [illegible]

'महोरस्क' है। श्रीराम 'महोरस्क' हैं। अर्थात् श्रीरामका वक्षःस्थल विशाल है। यह महीपालत्वका लक्षण है।

६—गूढजत्रु—'गूढजत्रु'का अर्थ 'गूढे जत्रुणी यस्य सः गूढजत्रुः' है। 'जत्रु' नाम अंसास्थिका है। अतः जिसकी अंसली (हँसली) प्रकटरूपसे नहीं दीखती हो, वह 'गूढजत्रु' है।

७—अरिंदमः—'अरिंदमः'का अर्थ—'अरीन् दमयति इति अरिंदमः' अर्थात् शत्रुओंका जो दमन करे वह 'अरिंदम' है। श्रीगोविन्दराजके मतमें यहाँ 'अरि' शब्दसे 'व्याप्त' (पाप) भी विवक्षित है। अतः 'अरिंदम' शब्दका अर्थ 'अपहतपाप्मा' (निष्पाप) होता है। अर्थात् श्रीराम निष्पाप हैं।

महेश्वरतीर्थके मतमें यहाँ 'अरि' शब्दका अर्थ काम, क्रोध, लोभ और अहंकार आदि दुर्गुण हैं। अतः 'अरिंदम' का अर्थ 'श्रीराम काम आदि शत्रुओंके नाशक हैं' यह होता है।

तिलकके मतमें यहाँ 'अरि' शब्दसे निज भक्तोंके काम, क्रोध आदि शत्रु विवक्षित हैं। अतः उनके मतमें—निज भक्तोंके काम, क्रोध और लोभ आदिके नाशक होनेसे श्रीराम 'अरिंदम' हैं।

८—आजानुबाहुः—'आजानुबाहुः' शब्दका अर्थ करते हुए श्रीगोविन्दराज लिखते हैं कि श्रीरामके बाहु (हाथ) घुटनेतक लंबे हैं, अतः वे 'आजानुबाहु' हैं।

९—सुशिराः—'सुशिराः'का अर्थ करते हुए श्रीगोविन्दराजका कहना है—

'सुष्ठु समं वृत्तं छत्राकारं शिरो यस्य असौ सुशिराः।'

अर्थात् श्रीरामका सिर सम और छत्राकार गोल है, अतः वे 'सुशिरा' हैं। 'सुशिराः' के विषयमें सामुद्रिक शास्त्रका निर्देश है—

समवृत्तशिरश्चैव छत्राकारशिरास्तथा।
एकच्छत्रां महीं भुङ्क्ते दीर्घमायुश्च विन्दति॥

अर्थात् जिसका सिर सम (गोल) अथवा छत्राकार हो, वह पृथ्वीका एकच्छत्र राजा होता है और दीर्घ आयुको प्राप्त करता है।

१०—सुललाटः—जिसका ललाट सुन्दर हो, वह 'सुललाट' है। इस विषयमें सामुद्रिकोंका कथन है—

'अर्धचन्द्रनिभं तुङ्गं ललाटं यस्य स प्रभुः।'

अर्थात् जिसका ललाट अर्धचन्द्राकार और ऊँचा हो, वह प्रभु (राजा) अथवा शासक होता है।

११—सुविक्रमः—'सुविक्रमः'का अर्थ 'शोभनः विक्रमः पादविक्षेपो यस्यासौ सुविक्रमः।' अर्थात् जिसकी चाल सुन्दर हो, वह 'सुविक्रम' है। चालका सौन्दर्य उत्तम हंस, वृषभ, व्याघ्र, सिंह, गजकी-सी होना है। सुन्दर चालके विषयमें सामुद्रिक शास्त्रका वचन है—

सिंहर्षभगजव्याघ्रगतयो मनुजा मुने।
सर्वत्र सुखमेधन्ते सर्वत्र जयिनः सदा॥

अर्थात् जिनकी गति (चाल) सिंह, बैल, हाथी या बाघकी-सी हो, वे मानव सर्वत्र सुख और विजयको प्राप्त करते हैं।

१२—समः—जो न अधिक ऊँचा हो और न अधिक वामन (ह्रस्व) हो, उसको शास्त्रमें 'सम' कहते हैं। सामुद्रिक शास्त्रका इस विषयमें वचन है कि—

'षण्णवत्यङ्गुलोत्सेधः सार्वभौमो भवेन्नृपः।'

अर्थात् छियानबे अंगुल ऊँचा मानव चक्रवर्ती होता है। अंगुल एक मापविशेष है।

१३—समविभक्ताङ्गः—'समविभक्ताङ्गः'का अर्थ है—समानि विभक्तानि अङ्गानि यस्य सः समविभक्ताङ्गः।

अर्थात् जिनके दोनों पार्श्वोके हाथ, पाँव, आँख और कान आदि अङ्ग सम—बराबर हों, वह 'समविभक्ताङ्ग' होता है। इस विषयमें सामुद्रिक शास्त्रका वचन है—

भ्रुवौ नासापुटे नेत्रे कर्णावोष्ठौ च चूचुके।
कूर्परौ मणिबन्धौ च जानुनी वृषणौ कटी॥
करौ पादौ स्फिचौ यस्य समौ ज्ञेयः स भूपतिः।

अर्थात् जिसके दोनों भौंहें, दोनों नासापुट (नथुने), दोनों नेत्र, दोनों कर्ण, दोनों ओठ, दोनों चूचुक (स्तन), दोनों कूर्पर (कोहनियाँ), दोनों मणिबन्ध (पौंहचे), दोनों जानु (घुटने), दोनों वृषण (अण्डकोष), दोनों कटिभाग, दोनों हाथ और दोनों पाँव सम (तुल्य) हों, वह भूपति होता है।

१४—स्निग्धवर्णः—
श्रीगोविन्दराज कहते

रामकथा मानवता-कथा है

(लेखक—स्वामी श्रीअनिरुद्धाचार्यजी वेंकटाचार्यजी महाराज)

यह कल्पना अज्ञान अथवा भ्रममात्र है कि 'श्रीरामायण'का विषय भगवान् केवल आर्यराष्ट्र और आर्यजातिके मानवों और मानवियों (स्त्रियों) के लिये ही हुआ है। कारण यह है कि इसमें 'श्रीरामकथा'के रूपमें 'मानवता'की कथा कही गयी है। इसके विद्वान् व्याख्याकारोंका भी श्रीरामायणके विषयमें यही मत है कि वाल्मीकिने 'श्रीरामायण'के द्वारा श्रीरामचरित्रके माध्यमसे विश्व-राष्ट्र और विश्व-मानवोंको 'मानवता'का उपदेश दिया है। मानव कौन है? और यह मानवताकी प्राप्ति कैसे कर सकता है? इन दो जिज्ञासाओंका समाधान श्रीराम और रामचरित्रमें है, अर्थात् राम-जैसा नर 'मानव' है और रामके-जैसे चरित्रसे मानवताकी प्राप्ति हो सकती है। श्रीराम मानवोंके तथा रामचरित्र मानव-चरित्रके आदर्श हैं। अतः विश्वके मानवोंका कर्तव्य है कि वे अपना जीवन रामका-जैसा बनाकर स्वयं सुख-शान्ति और उन्नति प्राप्त करें। विश्वमें रामचरित (मानवता) का तिरस्कार करके सदाचार, सुख, शान्ति, विनय, सौहार्द और सौमनस्य आदिकी रक्षा दुर्घट कर्म है। यह 'रामकथा' (मानवता-कथा) 'चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्' है। प्राचीन कालमें इसका प्रभाव और प्रसार पृथ्वीके दोनों गोलार्धों एवं चारों खण्डोंमें एक रूपसे सर्वत्र व्याप्त था। आज भी इसका प्रभाव और विस्तार भारतके पूर्वीय द्वीपों और देशोंमें अविच्छिन्न रूपसे सुरक्षित है। उत्तरमें मंगोलिया-साइबेरिया आदि देशोंमें यत्र-तत्र इसका प्रसार है। दक्षिण अमेरिकाके पेरु आदि प्रदेशोंमें वहाँके मूलनिवासियोंमें 'राम-सीता' आदि उत्सवोंके रूपमें 'रामकथा'का प्रचार आज भी अक्षुण्ण है। पश्चिममें भी इसका प्रभाव सुदूर पश्चिममें स्थित आइसलैण्डतक था। किंतु यावन (मूसा-ईसा-मुहम्मदद्वारा प्रवर्तित) मतोंसे इसके प्रसारमें बाधा आयी है।

मानवतासे दानवताका अभिभव

'श्रीरामायण'में इस बातका चित्रण किया गया है कि 'मानवता'से ही दानवताका पराभव हो सकता है। श्रीरामायणमें श्रीरामचरित्रके माध्यमसे 'मानवता' एवं रावणके चरित्रके माध्यमसे 'दानवता'के स्वरूपोंका प्रतिपादन हुआ है। 'मानवता' नाम मर्यादाका है और मर्यादाका जनक 'विनय' है। 'दानवता' नाम उच्छृङ्खलताका है और उसका जनक 'अहंकार' है। मानवता सुख, शान्ति, उन्नति एवं ऐश्वर्य आदिकी जननी है। 'दानवता' दुःख, अशान्ति एवं पीड़ा, अभाव आदिकी जननी है। राममें विद्यमान 'रामत्व' विनय है, रावणमें विद्यमान 'रावणत्व' उच्छृङ्खलता है।

त्रिविध राम—रामायण एवं पुराण आदि आर्षग्रन्थोंके अवलोकनसे श्रीराम तीन प्रकारके हैं, यह सिद्ध होता है—(१) इनमें एक राम तो ऐतिहासिक राम हैं, जो दाशरथि हैं एवं जिनका इतिहास 'रामायण' है, जिन्होंने अपना परिचय 'आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्'के रूपमें देवताओंको दिया था। (२) दूसरा राम अध्यात्ममें मन अथवा आत्मा है। शास्त्रोंमें उस मन अथवा आत्माको 'राम' माना है, जो विवेक, सुमति, दया, मैत्री और मुदिता आदि आत्मगुणोंसे परिपूर्ण है। इसके लिये ही 'शान्तिसीतासमायुक्त आत्मा रामो विराजते' कहा गया है और (३) श्रीराम आदिके आचरणोंके समान आचरणवाला 'मानव' तीसरा राम है।

त्रिविध रावण—इसी प्रकार 'रावण' भी तीन प्रकारके हैं—(१) इनमें एक 'रावण' विश्रवामुनिका पुत्र था, जो लङ्कानिवासी था, (२) अध्यात्म (शरीर)में मन अथवा आत्माके रूपमें दूसरा रावण है, जो अहंकार, मोह, कुमति, मत्सर, लोलुपता एवं उच्छृङ्खलता आदि दुर्गुणोंसे सम्पन्न है और (३) 'रावण' वह मानव है, जो रावण आदि राक्षसोंके चरित्रके समान चरित्र (आचरण)-वाला हो।

इस प्रकार इन तीन रामों और रावणोंमें केवल अध्यात्मके रावण और रामको स्वीकार करके ऐतिहासिक राम और रावणको अस्वीकार करना एक अपराध है।

परमात्मा राम और हमारी साधना

(लेखक—साधुवेषमें एक पथिक)

प्रायः संसारमें प्रत्येक मनुष्य जहाँ-कहीं सौन्दर्य अथवा माधुर्य एवं ऐश्वर्य देखता है, उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रहता और जब-कभी किसीमें एक साथ ही अनुपम सौन्दर्य, अगाध माधुर्य तथा सर्वोपरि ऐश्वर्यका परिचय मिलता है, तब चित्त जन-मानस उसको ही—निराकार ब्रह्मके नररूपमें अवतरित आकारको ही—उपासनाको अपने जीवनका परम लक्ष्य निश्चित कर लेता है। त्रेतायुगमें निराकार ब्रह्मके नराकार अवतारके अनुपम सौन्दर्य-माधुर्य ऐश्वर्यकी कथाएँ सुनकर सहज ही उनके दर्शनकी अभिलाषा जाग्रत् होती है। इन्हीं दर्शनाभिलाषी जनोंमें अनेक लोग जप करते हैं, अनेक लोग नाम-संकीर्तन करते हैं तथा अनेक लोग भगवान् श्रीरामकी मूर्तिमें मन्त्रोंद्वारा प्राणप्रतिष्ठा कर वर्षों अपनी मान्यताके अनुसार अर्चन-वन्दनरूपमें भावोपासना करते हुए जीवन बिता देते हैं; पर दर्शन उनके लिये दुर्लभ ही रह जाते हैं।......रामकी कृपासे संतोंका सुसङ्ग सुलभ होता है, उस सुसंगतिसे विवेक प्राप्त होता है, विवेकके सदुपयोगसे मूढ़ताका अन्त होता है, तभी साधक दर्शनका अधिकारी होता है। कुछ भक्तोंका निर्णय है कि जो साधक प्रेमसे निरन्तर रामके स्वरूपका चिन्तन करेगा तथा कभी किसी भी प्रलोभनसे विचलित न होगा और रामके स्वरूप स्मरण-मनन एवं चरित्रका गान करते हुए उन्हींके स्वरूपके दर्शनकी ध्यानमें प्रतीक्षा करेगा, उसीके समक्ष भगवत्तत्त्व रामरूपमें प्रकट होगा। जब कोई साधक भगवान्‌के अतिरिक्त संसारमें अन्य कुछ भी नहीं चाहता, उस निष्काम साधकको प्रभुकी कृपाका अनुभव होता है। प्रभुकी कृपासे ही स्वयं प्रभु सुलभ होते हैं। जब हम सुनते हैं कि भगवान् राम अखण्ड ज्ञानस्वरूप हैं, सच्चिदानन्द हैं, तब साधकोंके लिये विशेष साधनाद्वारा यह ध्यान देना सम्भव है कि असत्‌के साथ सत्, जड़के साथ चेतन और दुःखके साथ आनन्दात्मकके रूपमें परमात्मा ही हमारे साथ हैं।......भगवान् राम हमलोगोंके साथ अपने सच्चिदानन्दस्वरूपमें अभिन्न ही हैं—

'राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥'
(रामचरितमानस १। ११५। २)

श्रीरामाज्ञ है—

त्रेताके रामरूपसे विमोहित होकर मुनियोंके मन भी भ्रमित हो सकते हैं, पर वे भगवान् राम आज हमारे साथ जिस तरह नित्य निरन्तर हैं, उस तरह उनके दर्शनसे मोह-भ्रमका लेश भी नहीं रह सकता। यदि किसीका प्रश्न हो कि 'इस सहज साधनामें पाठ-पूजा, जप-कीर्तन, कथा-श्रवण आदिकी आवश्यकता है या नहीं?' तो इसका यही उत्तर है कि जहाँ विनाशी नाम-रूपका कीर्तन-स्मरण, चिन्तन और ध्यान अनायास ही चलता रहता है, वहीं उस अभ्यासको हटानेके लिये अविनाशी रामके नाम-रूप, लीला तथाके कीर्तन, जप, स्मरण-चिन्तन ध्यानका अभ्यास आवश्यक है। जब साधक किसी साधनामें ही अटककर संतुष्ट होता रहता है और साध्य तत्त्वकी अभिन्नताका अनुभव नहीं कर पाता, तब वह जो भी साधना करता है, उसीको करनेमें अपने-आपको असमर्थ पाता है; क्योंकि जो भी साधन मिले हैं, वे सभी छूट जायँगे। जिस साधना, आराधना, उपासना, पूजा, जप-कीर्तनमें किसी भी वस्तु, व्यक्ति, शक्तिकी अर्थात् किसी अन्यकी अपेक्षा रहती है, उससे स्वतन्त्रता नहीं आती। निरपेक्ष ही स्वतन्त्र होता है; जो परका आश्रय छोड़ देता है, वही स्वरूपमें शान्त होकर सत्यचेतन परमात्मा रामतत्त्वसे नित्ययुक्त अथवा भक्त होता है।

भगवान् रामके सगुण-साकार रूपका दर्शन भाव दृष्टिसे सुलभ होता है और उनके स्वरूपका अनुभव ज्ञानदृष्टिसे ही सुलभ होता है। रूप और स्वरूपके दर्शनकी दृष्टि भिन्न-भिन्न है। हमें समझाया गया है कि जिसकी सत्तासे अथवा जिसकी चेतनासे जड़ साधनोंद्वारा अर्थात् इन्द्रियोंद्वारा विषयोंका ग्रहण होता है तथा मनरूपी साधन-द्वारा सुखका भोग होता है और बुद्धिरूपी साधनद्वारा भोगके परिणामकी जानकारी होती है और अन्तमें सभी साधनोंको शान्त लेनेपर प्रज्ञारूपी साधनद्वारा ज्ञानमें सच्चिदानन्दका अनुभव होता है, वही परमात्मा रामतत्त्व हम सभीको नित्य सुलभ है। नित्य निरन्तर रामसे विमुख रहनेके कारण ही रामकी परिधिमें आ...

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥
(रामपूर्वतापिनी उ० १)

'अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा । अकथ अगाध अनादि अनूपा॥'
(मानस १ । २२ । १)

यह परमात्मा सगुण भी है, निर्गुण भी है; साकार भी है, निराकार भी है और उससे विलक्षण भी है। वास्तवमें परमात्माके विषयमें जितना ही संत-महात्माओंने विवेचन किया है, परमात्मा उससे कहीं विलक्षण है; क्योंकि वर्णन, विवेचन और चिन्तन करनेवाली शक्ति सीमित है और परमात्मा अनन्त, अपार और असीम है। सीमित शक्तियोंके द्वारा असीम तत्त्व कैसे नापा जा सकता है। उस अलौकिक तत्त्वका संकेत मात्र ही कराया जा सकता है।

वास्तवमें जो सब गुणोंसे सर्वथा अतीत है, उसीमें ही सब गुण रह सकते हैं। जो किसी एक गुणमें आबद्ध हो, उसमें सभी गुण नहीं रह सकते और जिसमें अनन्त गुण अनादि-कालसे नित्य निरन्तर रहते हैं, वह वास्तवमें सभी गुणोंसे सर्वथा निर्लिप्त है। सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार आदि शब्द उसके द्योतन करनेवाले विशेषण हैं, न कि उसका वर्णन करनेवाले। हृदय (भाव)-प्रधान साधकोंको गुणोंकी दृष्टिसे वे सगुण दीखते हैं और गुणरहित दृष्टिवाले बुद्धि (ज्ञान)-प्रधान साधकोंको गहरे विचारसे वे निर्गुण ही दीखते हैं। इसी प्रकार आकृतिको लेकर विचार करनेवाले पुरुषोंको वे साकार और आकृतिका निराकरणपूर्वक विचार करनेवाले पुरुषोंको निराकार भासते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि सगुण-निर्गुण एवं साकार-निराकार दृष्टिसे देखनेपर वे तदनुरूप ही दीखते हैं। वास्तवमें सब दृष्टियोंसे अतीत तत्त्व एक ही है। वह अलौकिक है, उसके समान कोई दूसरा होना सम्भव नहीं।

सगुण रूप भी दो तरहका है—एक तो सत्त्व-रज आदि प्राकृत गुणोंसे युक्त और दूसरा सौशील्य, औदार्य, सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्य आदि अप्राकृत दिव्य गुणोंसे युक्त।

विचार करनेसे दोनों ही स्वरूप परिपूर्णतम ही हैं, जैसे वेदमन्त्रोंमें आता है, 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि'''।'(पु०यजु०)

परमात्माके किसी अंशमें प्रकृति और प्रकृतिका कार्य संसार है। इसपर मनन विचार करें कि जैसे निर्गुण परमात्माके किसी अंशमें प्रकृति और उसमें अनन्त संसार है, ऐसे ही कौसल्या अम्बाकी गोदमें रामलला और उस रामललाके मुखमें अनन्त सृष्टि है।

जैसे 'अनन्त संसारमें एक ब्रह्माण्ड, एक ब्रह्माण्डके किसी अंशमें एक पृथ्वी, पृथ्वीके किसी एक अंशमें भारतवर्ष, भारतवर्षके किसी एक अंशमें युक्तप्रान्त, युक्तप्रान्तके मध्यमें एक अवधमण्डल, अवधमण्डलमें श्रीअयोध्यापुरी, अयोध्यापुरीमें राजमहल, राजमहलमें एक महल, महलके एकदेश-में स्थित सिंहासन, उसपर विराजमान महारानी श्रीकौसल्या अम्बा, उनकी गोदमें नन्हे-से रामलला, उन रामललाके एक अङ्ग—मुखमें अनन्त सृष्टि। उसी प्रकार बालरूप रामजीके उदरमें काकभुशुण्डिजीने अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डोंको देखा,[1] ऐसे ही श्रीकृष्णभगवान्‌के मुखमें यशोदामैयाने अनन्त सृष्टिको देखा।[2] ऐसे ही अर्जुनने भगवान्‌के एक अंशमें सम्पूर्ण संसारको एकमें स्थित देखा।

महाभारत, उद्योगपर्वके अनुसार भीष्मादिने कौरवसभाके अन्तर्गत श्रीकृष्णके शरीरमें विश्वब्रह्माण्डको देखा और उसी प्रकार अश्वमेध पर्व (५५ । ४-९) के अनुसार उत्तङ्क ऋषिने भी भगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन किया।

अतः निर्गुण और सगुण दो नहीं हुए।

जैसे सगुण भगवान् पापी-से-पापीको भी, जो ईश्वरीय सिद्धान्तसे बिलकुल विपरीत चलनेवाले हैं, शरणमें आ जानेपर आश्रय देते हैं, इसी प्रकार निर्गुण निर्विकार ब्रह्मने भी, जो सत्-चित्-आनन्दघन हैं, अपने सर्वथा विरुद्ध असत्-जड-दुःखरूप अविद्याको, अर्थात् सत्त्व-रज-तमयुक्त मायाको, विश्वरूप

---

१. उदर माझ सुनु अंडज राया । देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया ॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका । रचना अधिक एक ते एका ॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा । अगनित उडगन रबि रजनीसा ॥
अगनित लोकपाल जम काला । अगनित भूधर भूमि बिसाला ॥
सागर सरि सर बिपिन अपारा । नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर । चारि प्रकार जीव सचराचर ॥
(मानस ७ । ७९ । २-४)

२. श्रीमद्भागवत १० । ७ । ३५-३६ ।

३. (१) गीता ११ । ७ भगवान्‌के वचनोंमें 'इहैकस्थं'।
(२) गीता ११ । १३ सञ्जयके वचनोंमें
(३) गीता ११ । १५ अर्जुनके व

एक वीतराग श्रीरामभक्त संतके सदुपदेश

(प्रेषक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

एक दिन हमने एक बड़े ही वीतराग, त्यागी, तपस्वी श्रीरामभक्त संतके श्रीचरणोंमें बैठकर उनसे श्रीरामभक्ति सम्बन्धी जो सदुपदेश प्राप्त किये, वे पाठकोंके सामने रखे जा रहे हैं। आशा है, पाठक इन्हें बड़े ही ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे।

प्रश्न—पूज्य महाराज! भगवान् श्रीरामचन्द्र प्रभुकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? वह साधन आप बतानेकी कृपा करें।

उत्तर—बेटे! यदि तुम परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीरामचन्द्र प्रभुकी प्राप्ति करना चाहते हो तो निम्नलिखित बातोंपर अवश्य ही ध्यान दो—

(१) यदि तुम मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी प्राप्ति करना चाहते हो तो यह स्मरण रहे कि श्रीराम स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम हैं, अतः उनको प्रसन्न करनेके लिये तुम भी मर्यादानुसार चलो। तभी तुमसे मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र प्रभु प्रसन्न हो सकेंगे।

× × ×

(२) याद रखो, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम बड़े ही ब्रह्मण्य हैं और पूज्य भूदेव ब्राह्मणोंके अनन्य भक्त हैं। प्रभु श्रीराम ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें श्रीमुखसे स्पष्ट कहते हैं—

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर सब देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा॥
(मानस ७। ४४। ४)

इसलिये यदि तुम श्रीरामभक्त बनना चाहते हो तो सदा-सर्वदा पूज्य ब्राह्मणोंका सेवा-सत्कार, मान-सम्मान करते रहना। इससे प्रभु श्रीराम बहुत जल्दी प्रसन्न हो जायँगे।

× × ×

(३) कलियुग समय महाभयंकर है। इसमें भगवान् श्रीरामकी प्राप्ति एकमात्र श्रीराम-नाम जपनेसे ही हो सकती, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। पर मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम राम नाम जपनेवालोंमेंसे उसीसे प्रसन्न होंगे, जो श्रीरामनाम मर्यादानुसार जपेगा।

× × ×

(४) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके भक्त होकर मर्यादाका उल्लङ्घन करके जो अभक्ष्य (अंडे, मांस, मछली, प्याज, लहसुन, शलजम, बिस्कुट, डबलरोटी आदि) खाता है, उसकी भक्ति फलवती नहीं होती।

× × ×

(५) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम एकपत्नीव्रत-का पालन करनेवाले महान् जितेन्द्रिय थे और परस्त्रीकी ओर आँख उठाकर देखना भी घोर पाप मानते थे। जो मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामको प्राप्त करना चाहता है, उसे भूलकर भी कभी परस्त्रीसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये—

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकैं रबि रजनी इक ठाम॥

× × ×

(६) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम वर्णाश्रम-धर्मकी रक्षाके लिये अवतरित हुए थे। यदि मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामको प्राप्त करना चाहते हो तो वर्णाश्रम-धर्मको मानो।

× × ×

(७) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका नाम स्त्री-पुरुष, बच्चा-बूढ़ा, गरीब-अमीर, विद्वान्-मूर्ख—सभी ले सकते हैं और सभीको श्रीरामनामामृत-पान करनेका अधिकार है। स्त्री खूब श्रीरामनाम ले, पर यह स्मरण रखे कि वह नाम-कीर्तनके द्वारा जिनको प्रसन्न करना चाहती है, वे भगवान् श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। स्त्री श्रीरामका नाम लेकर यदि अपने पातिव्रत-धर्मका पालन नहीं करती, पतिकी अवहेलना करती है और पाखण्डी साधु-संतोंके पैरोंको दबाती है, ऐसी कुलटा स्त्रीसे भगवान् श्रीराम प्रसन्न नहीं होंगे। जो अपने पवित्र पातिव्रत-धर्मका पालन करती हुई श्रीरामनाम लेती है, भगवान् श्रीराम उसी स्त्रीसे प्रसन्न होते हैं।

परतत्त्व श्रीराम

(लेखक—श्रीस्वामीजी महाराज, श्रीपीताम्बरापीठ)

नाम-रूपात्मक इस दृश्यमान जगत्‌के अन्तःस्थित अपनी आनन्दशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिद्वारा जो रमण कर रहा है, उसे ही संत महात्माओंने 'राम' शब्दसे अभिहित किया है। व्याकरण-शास्त्रमें 'रमु क्रीडायाम्' इस धातुसे 'राम' शब्दकी निष्पत्ति करके उक्त अर्थकी सिद्धि की गयी है। वैदिक साहित्यमें जिसे 'परब्रह्म परमात्मा' कहा गया है, उसका ही बोध 'राम' शब्दसे होता है। हिंदूधर्मके भिन्न मतोंमें परमतत्त्वकी प्राप्तिके साधन एक ही प्रकारके माने जाते हैं (जैसे इस्लाम-ईसाई आदि मतोंमें हैं), परंतु हिंदूधर्ममें ऐसी बात नहीं है।

हिंदूधर्ममें साधकोंकी प्रवृत्ति एवं स्वभावके अनुसार अनेक प्रकारसे परमात्माकी प्राप्ति मानी गयी है और प्राप्तव्य तत्त्व एक होनेसे भेदजन्य विवादको समाप्त किया गया है। इसे 'शिव महिम्नस्तोत्र'में इस प्रकार कहा गया है—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥
(शिव म० ७)

'भगवन्! वेद, सांख्य, योग, पाशुपत (शैव), वैष्णव आदि मतवादी सिद्धान्त अपने ही सिद्धान्तोंको श्रेष्ठ एवं दूसरे मतोंको हीन बताते हैं। वास्तवमें ये सब एक आपकी ही ओर जा रहे हैं। सबकी प्राप्तिके स्थान आप ही हैं, जैसे अनेक प्रकारसे प्रवाहित नदियाँ अन्तमें समुद्रको ही प्राप्त होती हैं।' उपनिषद्‌में भी ऐसा ही कहा गया है—

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥
(मु० ३। २। ८)

'जैसे नदियाँ बहती हुई समुद्रमें आकर एक हो जाती हैं, इसी प्रकार विद्वान् भेदरहित परात्पर परमात्माको प्राप्त हो जाता है।' इन प्रमाणोंसे यही सिद्ध होता है कि उसी एक तत्त्वको सभी साधक प्राप्त होते हैं।

रामोपासनाके प्रकार

कबीर, दादू, नानक आदि संतोंने श्रीरामतत्त्वका स्वरूप निर्गुण निराकार बताया है, नादबिन्दुकलातीत परमतत्त्व श्रीरामकी प्राप्तिका साधन भी उन्होंने योगको ही प्रधानरूपसे बताया है। दादू एवं नानकने राम-नामके विषयमें भी बहुत कुछ कहा है। नाद-सिद्धान्तमें 'सोऽहं' शब्दसे ॐकार एवं ॐकारसे 'राम' शब्दका आविर्भाव माना गया है। कुण्डलिनी-शक्तिके उत्थानद्वारा षट्चक्र-भेदनके अनन्तर गुरुतत्त्वकी सहायतासे राम-तत्त्वकी प्राप्ति करके जीव कृतकृत्य होता है। ये विषय संत-साहित्यमें विशेषरूपसे कहे गये हैं। यहाँ उसका सारमात्र दिया गया है।

सगुण-साकारस्वरूप

परमतत्त्व श्रीराम-तत्त्व सगुण है या निर्गुण, यह विवादका विषय है। निर्गुणवादी उसे 'निर्गुण' एवं सगुणवादी उसे 'सगुण' मानते हैं। सगुणवादियोंका कहना है कि 'कोई वस्तु निर्गुण नहीं हो सकती; गुण ही वस्तुका परिचायक है। बिना गुणके कोई वस्तु नहीं हो सकती, इसलिये किसी वस्तुको निर्गुण नहीं कहा जा सकता। गुणोंकी सूक्ष्म अवस्था ही 'निर्गुण' नामसे कही जा सकती है। गुणोंका सर्वथा अभाव, निर्गुणका अर्थ नहीं हो सकता; कारण, अभावसे भाव नहीं होता। श्रुतिमें निर्गुण एवं सगुण तत्त्वोंको 'असम्भूति' एवं 'सम्भूति'के नामसे कहा गया है—

ईशावास्योपनिषद् (१२, १४) में कहा गया है—

'जो केवल सम्भूति (सगुण) की उपासना करते हैं, वे अँधेरेमें चले जाते हैं। इसके विपरीत जो केवल असम्भूति (निर्गुण) की उपासना करते हैं, वे सगुणोपासकोंकी अपेक्षा भी अधिक अँधेरेमें चले जाते हैं। जो समन्वयरूपसे दोनोंकी उपासना करते हैं, वे सगुणोपासनासे मृत्युको पार करके निर्गुण-उपासनासे अमृत या मोक्ष प्राप्त करते हैं।' इसलिये दोनों स्वरूपोंका समन्वय रूप ही यथार्थ है। वैष्णव-भावोंसे स्मरण करके परम प्रेमास्पद सगुणस्वरूप

भगवान् श्रीराममें भगवत्ता एवं मानवताका परमाश्चर्यमय समन्वय*

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥
(मानस १।७)

यह हमारी संस्कृतिकी एक महान् देन और हमारे ऋषि-मुनियोंके दिव्य ज्ञाननेत्रोंद्वारा अनुभूत सत्य है, जो वे मानवमात्रमें ही भगवत्के दर्शन नहीं करते, चेतन-अचेतन प्राणी-पदार्थमात्रमें केवल भगवत्के ही नहीं, अपने आराध्यके, यहाँतक कि भगवान्के दर्शन करते हैं तथा सबको अनन्यभावसे प्रणाम करनेकी बात कहते हैं। श्रीमद्भागवतमें आया है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किंच भूतं प्रणमेदनन्यः॥

—'यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह नक्षत्र, प्राणी, दसों दिशाएँ, वृक्ष लता, नदी-समुद्र—सभी श्रीहरिके शरीर हैं। सभी रूपोंमें स्वयं भगवान् ही प्रकाशित हैं, यह जानकर सभीको अनन्य भगवद्भावसे प्रणाम करें।' गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

'सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥'
(मानस १।७।१)

इस धर्मात्ममयी धर्मप्रेमुखी भारतीय आर्य-संस्कृतिके प्राण जिस केन्द्रमें नित्य-प्रतिष्ठित हैं, वह केन्द्र है—रामायण और महाभारत। इन दो महाग्रन्थोंमें जो एक ही साथ सत्य इतिहास और सर्वलक्षणसमन्वित महाकाव्य भी हैं, आध्यात्म, ज्ञान-विज्ञान-शास्त्र और परम साधन-शास्त्र, मोक्षशास्त्र और प्रेमभक्तिशास्त्र, धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र और समाज-नीतिशास्त्र—सभीका सर्वाङ्गसुन्दर निरूपण है। इन महान् ग्रन्थकारोंने अन्यान्य पुराण-शास्त्रोंके सहयोगसे भारतके अमर ज्ञान-भंडार वेद और उपनिषद्, आगम और दर्शनशास्त्रोंके 'अमूल्य सुधासागरका मंथन करके उसे सर्वग्राही, सरल तथा सर्वोत्कर्षक भावसौन्दर्यसे सजाकर बड़े ही विशद रूपमें प्रवाहित किया है। इसीसे समाजके उच्चतम स्तरकी आध्यात्मिक संस्कृति साधारण स्तरतकमें अबाधरूपसे अक्षुण्ण बनी हुई है। सहस्रों वर्षोंसे इस विशाल भारत महादेशके सभी प्रान्तोंके महान् आचार्य, महाकवि, धर्मनेता, महाराष्ट्रनायक, महान् राजनीतिविशारद एवं समाज व्यवस्थापक—सभी इन महाग्रन्थोंके आदर्शसे उद्दीप्त तथा अनुप्राणित होकर अपनी-अपनी असाधारण प्रतिभाके द्वारा समाजको विभिन्न प्रकारसे लाभ पहुँचाते रहे हैं और सभी श्रेणियोंके नर-नारियोंके हृदय, मन तथा व्यावहारिक जीवनमें इनकी अनुपमेय अमिट छाप पड़ी हुई है।

रामायण तथा महाभारतके भगवान् श्रीराम एवं श्रीकृष्णके महान् दिव्य रूपमें सनातन भारतके नित्य सत्य, स्वप्रकाश आत्मपुरुषकी ही सर्वविचित्रचमत्कारी अनन्ताचिन्त्य महिमासे मण्डित लीलामयी अभिव्यक्ति है। इन दोनोंके चरित्रोंमें पूर्ण भगवत्ता एवं पूर्ण मानवताका परमाश्चर्यमय समन्वय है।

श्रीराम और श्रीकृष्ण परिपूर्णतम भगवान् हैं और साथ ही पूर्ण मानव भी हैं। उनके लीलाचरित्रमें जैसे एक ओर भगवत्ताका 'अशेष वैचित्र्यमय लीला-विलास है, वैसे ही दूसरी ओर मानवताका परमोत्कर्ष प्रकाश है, अनन्त ऐश्वर्यके साथ अपरिसीम माधुर्य, अनन्त वीर्यके साथ मुनि-मन-मोहन अनुपम नित्य नवसौन्दर्य, वज्रवत् न्याय-कठोरताके साथ कुसुमवत् प्रेम-कोमलता, विश्वव्यापिनी विशाल यश कीर्तिके साथ निस्सीम सम्यक् निरभिमानिता, विचित्र अनन्त कर्ममय जीवनके साथ सम्पूर्ण वैराग्य और उपरति, समस्त विषमताओंके साथ नित्य सहज समता—इस प्रकार अगणित परस्पर-विरोधी भावों और गुणोंका युगपत् विकास है।

इन श्रीराम और श्रीकृष्णके दिव्य-चरित्रोंका श्रद्धा-भक्तिके साथ अध्ययन-चिन्तन तथा विचार करनेपर साधारण नर-नारीको भी सर्वमय, सर्वातीत, सर्वगुणगणसमन्वित सर्वगुणरहित, अखिलानन्तविश्वधारा, अखिलविश्वव्यापी,

---

* 'श्रीरामायण विद्यापीठ', दिल्लीके तत्त्वावधानमें आयोजित 'श्रीरामायण-सम्मेलन' के अवसरपर चैत्र शुक्ल ११, सं० २०१७ को प्रदत्त अध्यक्षीय-भाषणका एक अंश।

श्रीभगवान् नारायण चतुर्व्यूहरूपमें व्यक्त हुए हैं, जो वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध नामसे कहे जाते हैं। रामावतारके समय प्रकट हुए स्वरूपोंमें राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्नके रूपोंमें उक्त चतुर्व्यूहका निर्देश किया गया है। ये चारों व्यूह मूलमें एक ही परमतत्त्वके रूपान्तर हैं। परमब्रह्मके साथ पराशक्ति भी अपने वैशिष्ट्य-रूपसे आविर्भूत होती है। उसे ही लक्ष्मी, सीता आदि नाम दिये गये हैं। जब-जब धर्मकी हानि, दुष्टोंकी वृद्धि एवं साधु पुरुषोंको कष्ट होता है, तब-तब श्रीनारायण अवतार लेते हैं। उसे ही 'अवतार' संज्ञा दी गयी है। सगुण रूपके अनन्तर ही साकार रूपकी श्रेणी है। सगुण और साकार रूपमें अभिन्नता है, इसीलिये गीता (९।११)में कहा गया है—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

'मूढलोग मनुष्यरूपमें मुझे देखकर मेरे भूतोंके महेश्वररूप परमभावको न समझते हुए मेरा तिरस्कार करते हैं।'

ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्तिकी प्रधानताको लेकर श्रीराम-तत्त्वका अवतार है, जिसे महर्षि वाल्मीकिने अपनी पद्धतिसे निरूपित किया है। व्यवहारमें मनुष्यको कैसा वर्ताव करना समुचित है, इसे बतानेमें महर्षि वाल्मीकिने कोई कमी नहीं रखी है। माता, पिता, गुरु, आचार्य, प्रजा आदिके प्रति रामके आचरणका निरूपण अद्वितीय है। यह सब निरूपण साकार ब्रह्मके ही निरूपणके अन्तर्गत आता है। परंतु श्रीगोस्वामी तुलसीदासने सगुण एवं निर्गुण ब्रह्मका निरूपण करके इसे पूर्ण कर दिया है।

श्रीभगवती पार्वतीने श्रीशंकरजीसे एक दिन पूछा कि 'भगवन्! आप रामनामके महत्त्वमें कुछ कहिये', तब भगवान्ने इसे एक श्लोकमें ही इस प्रकार बताया है—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥
(पद्मपुराण)

अनन्यता

रामही को दास मैं हौं, रामही की आस मोहि,
राम सुख वास मम वास राम धाम हौं॥
रामही की पूजा मेरें, राम बिन दूजा नाहिं,
सीताराम सरन रहौं मैं आठौ जाम हौं॥
रामही को ध्यान मेरें, रामही को ग्यान, 'रस-
रंग' सत्य अभिमान राम को गुलाम हौं॥
रामपद काम मेरे, रामही को नाम मेरे,
माँगौं सीताराम हौं मों रट सो राम राम हौं॥
आग मेरे राम, भूरि भाग मेरे राम, गीत
राग मेरे, राम अनुराग, रम्य गम है।
धीर मेरे राम, वर वीर मेरे राम,
दूर पीर मेरे राम, धनु तीर धर स्याम हैं॥
ज्ञानी मेरे राम, सत्यधर्मी मेरे राम, सिया-
रानी रत राम, सुख खानी, शील धाम हैं,
तात मेरे राम प्रभु, मात मेरे राम, भव
त्रात मेरे राम, सरनाम रामनाम हैं॥

भगवान् श्रीराममें भगवत्ता एवं मानवताका परमाश्चर्यमय समन्वय*

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥
(मानस १। ७)

यह हमारी संस्कृतिकी एक महान् देन और हमारे ऋषि-मुनियोंके दिव्य ज्ञाननेत्रोंद्वारा अनुभूत सत्य है, जो वे मानवमात्रमें ही मनुष्यत्वके दर्शन नहीं करते, चेतन-अचेतन प्राणी-पदार्थमात्रमें केवल मनुष्यत्वके ही नहीं, अपने आत्माके, यहाँतक कि भगवान्के दर्शन करते हैं तथा सबको अनन्यभावसे प्रणाम करनेकी बात कहते हैं। श्रीमद्भागवतमें आया है—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किंच भूतं प्रणमेदनन्यः॥

—'यह आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह नक्षत्र, प्राणी, दसों दिशाएँ, वृक्ष लता, नदी-समुद्र—सभी श्रीहरिके शरीर हैं। सभी रूपोंमें स्वयं भगवान् ही प्रकाशित हैं, यह जानकर सभीको अनन्य भगवद्भावसे प्रणाम करें।' गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

'सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥'
(मानस १। ७। १)

इस सर्वात्ममयी सर्वतोमुखी भारतीय आर्य-संस्कृतिके प्राण जिस केन्द्रमें नित्य-प्रतिष्ठित हैं, वह केन्द्र है—रामायण और महाभारत। इन दो महाग्रन्थोंमें जो एक ही साथ सत्य इतिहास और सर्वाङ्गपूर्णसमन्वित महाकाव्य भी है, अध्यात्मशास्त्र, ज्ञान विज्ञान-शास्त्र और परम साधन-शास्त्र, मोक्षशास्त्र और प्रेमभक्तिशास्त्र, धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र और समाज-नीति-शास्त्र—सभीका सर्वाङ्गसुन्दर निरूपण है। इन महान् ग्रन्थरत्नोंने अन्यान्य पुराण-शास्त्रोंके सहयोगसे भारतके अमर ज्ञान-भंडार वेद और उपनिषद्, आगम और दर्शनशास्त्रोंके अमूल्य सुधासारका संकलन करके उसे सर्वभोग्य, सरल तथा सर्वाकर्षक भाषासौन्दर्यसे सजाकर बड़े ही विशद रूपमें प्रवाहित किया है। इसीसे समाजके उच्चतम स्तरकी आध्यात्मिक संस्कृति साधारण स्तरतकमें अबाधरूपसे अक्षुण्ण बनी हुई है। सहस्रों वर्षोंसे इस विशाल भारत महादेशके सभी प्रान्तोंके महान् आचार्य, महाकवि, धर्मनेता, महाराष्ट्रनायक, महान् राजनीतिविशारद एवं समाज-व्यवस्थापक—सभी इन महाग्रन्थोंके आदर्शसे उद्दीप्त तथा अनुप्राणित होकर अपनी अपनी असाधारण प्रतिभाके द्वारा समाजको विभिन्न प्रकारसे लाभ पहुँचाते रहे हैं और सभी श्रेणियोंके नर-नारियोंके हृदय, मन तथा व्यावहारिक जीवनमें इनकी अनुपमेय अमिट छाप पड़ी हुई है।

रामायण तथा महाभारतके भगवान् श्रीराम एवं श्रीकृष्णके महान् दिव्य रूपमें सनातन भारतके नित्य सत्य, स्वप्रकाश आत्मपुरुषकी ही सर्वचित्तचमत्कारी अनन्ताचिन्त्य महिमासे मण्डित लीलामयी अभिव्यक्ति है। इन दोनोंके चरित्रोंमें पूर्ण भगवत्ता एवं पूर्ण मानवताका परमाश्चर्यमय समन्वय है।

श्रीराम और श्रीकृष्ण परिपूर्णतम भगवान् हैं और साथ ही पूर्ण मानव भी हैं। उनके लीलाचरित्रमें जैसे एक ओर भगवत्ताका अशेष वैचित्र्यमय लीला विलास है, वैसे ही दूसरी ओर मानवताका परमोत्कर्ष प्रकाश है, अनन्त ऐश्वर्यके साथ अपरिसीम माधुर्य, अनन्त वीर्यके साथ मुनि-मन-मोहन अनुपम नित्य नवसौन्दर्य, वज्रवत् न्याय-कठोरताके साथ कुसुमवत् प्रेम-कोमलता, विश्वव्यापिनी विशाल यश कीर्तिके साथ निस्सीम सम्यक् निरभिमानिता, विचित्र अनन्त कर्ममय जीवनके साथ सम्पूर्ण वैराग्य और उपरति, समस्त विषमताओंके साथ नित्य सहज समता—इस प्रकार अगणित परस्पर-विरोधी भावों और गुणोंका युगपत् विकास है।

इन श्रीराम और श्रीकृष्णके दिव्य-चरित्रोंका श्रद्धा-भक्तिके साथ अध्ययन-चिन्तन तथा विचार करनेपर साधारण नर-नारीको भी सर्वमय, सर्वातीत, सर्वगुणगणसमन्वित सर्वगुणरहित, अखिलानन्तविश्वरूप, अखिलविश्वव्यापी,

* 'श्रीरामायण विचारपीठ', दिल्लीके तत्त्वावधानमें आयोजित 'श्रीरामायण-सम्मेलन' के अवसरपर चैत्र शुक्ल ११, सं० २०१७ को प्रदत्त अध्यक्ष-भाषणका एक अंश।

नित्य-त्रिगुणातीत, सर्वलोकमहेश्वर श्रीभगवान्‌को अपने अत्यन्त निकट अनुभव कर सकते हैं और उन्हें अपने अत्यन्त परम आत्मीय स्वजनके रूपमें प्राप्त कर सकते हैं। इन मानवलीला-विलासी भगवान्‌का चिन्तन करते-करते मनुष्य सहज ही भगवत्प्रेमसे भावित होकर परम दुर्लभ भागवत-जीवनकी उपलब्धि कर सकता है।

श्रीराम और श्रीकृष्णके रूपमें रामायण और महाभारतने मनुष्यको उसके अत्यन्त संनिकट अवतरित सच्चिदानन्द परात्पर भगवान्‌के मधुर मनोहर दर्शन कराये हैं और उसको भगवान्‌के अतिशय सांनिध्यमें पहुँचाकर धन्य कर दिया है। श्रीराममें भगवान् और मनुष्यकी, नारायण और नरकी दूरी दूर होकर मानवरूपके अंदर नरके नित्य परिपूर्ण स्वरूपका परिचय प्राप्त होता है। भगवान् और मनुष्यके भेदकी आड़में भगवान्‌के नरोत्तमत्व या पुरुषोत्तमत्व और मनुष्यके पारमार्थिक भगवत्स्वरूपका परिचय-प्रदान समग्र मानवजातिके लिये भारतीय संस्कृतिका एक अत्याश्चर्यजनक अपूर्व महान् आविष्कार है। भगवान् पुरुषोत्तमने श्रीराम और श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट होकर, मनुष्योंमें उतरकर समस्त मानवके हृदयपर नित्य मधुरताकी प्रतिष्ठा कर दी है और समग्र भारतीय संस्कृतिको अध्यात्म-भावोंसे अनुप्राणित कर दिया है। केवल भारतकी राष्ट्रीय सीमाके अंदर ही नहीं, किसी भी देशमें, जहाँ भी भारतीय संस्कृतिने अपना प्रभाव विस्तार किया, वहाँ ही श्रीराम और श्रीकृष्णकी लीला-कथाने जनताके हृदयपर अधिकार स्थापन किया है और भगवान्‌को मनुष्यके अत्यन्त समीप लाकर उपस्थित कर दिया है।

भारतकी प्रायः सभी भाषाओंमें श्रीरामचरित और श्रीकृष्णचरितके आधारपर विविध विचित्र रस साहित्यका सृजन हुआ है। भगवान् श्रीरामपर इस साहित्यमें—हिंदीमें श्रीरामचरितमानस सबसे विलक्षण है। यह पवित्र ग्रन्थ अपने युगके महान् भक्त, महान् ज्ञानी, महान् उदात्तचेता महाकवि प्रेमसम्प्लीन गोस्वामी तुलसीदासजीकी अमर कीर्ति है। यह एक ऐसा सर्वोपयोगी, सबके लिये महान् आदर्श प्रदर्शित करनेवाला, निर्दोष तथा परम पवित्र ग्रन्थ है, जिसने निखिल मङ्गलके परम धाम परात्पर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रको सभी श्रेणियोंके नर-नारियोंके हृदयमें समग्र भारतीयोंके परम प्रेमास्पद रूपमें और साथ ही अत्यन्त निकटस्थ परम आत्मीयके रूपमें नित्य प्रतिष्ठित एवं हृदि अधिष्ठित, आबालवृद्धवनिता—सभीके अंतरको विशुद्ध भक्ति तथा रामप्रेमके दिव्य मधुर सुधारससे अभिषिक्त कर अपना अद्भुत प्रभाव-विस्तार किया है। किसी भी युग, किसी भी देशका कोई भी एक ग्रन्थ इस प्रकार अनन्त सार्वभौम आध्यात्मिक प्रभाव-विस्तार करके इतना समादर प्राप्त नहीं कर सका है।

इस विचित्र चमत्कारमय 'श्रीरामचरितमानस'के एक मर्यादारक्षक, सर्वसद्गुणसम्पन्न, परम आदर्श मानव शिरोमणि होनेके साथ ही सर्वतन्त्र स्वतन्त्र, स्वमहिमामें स्थित महामानव हैं और साथ ही वे सच्चित्प्रेमानन्दघन, महामहिम, अचिन्त्यमहिम, चिदानन्दविग्रह श्रीभगवान् हैं। श्रीतुलसीदासजीने अपने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके आदर्श मानविक लीलाविलासमें ही गुणातीत, क्लेशातीत, निर्विकार, निराकार, नित्यनिरञ्जन, प्रकृतिपर, अज, अविनाशी, 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं-समर्थ' भगवान्‌की अचिन्त्य, अनादि, अनन्त ऐश्वर्य माधुर्यमयी दिव्यलीलाके दर्शन किये हैं और उसे अपने सुन्दर मनोहर शब्दोंमें सबके लिये हृदयग्राही बनाकर सबमें वितरण किया है। वे अपने रामका परिचय देते हुए कहते हैं—

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यानरूप बल धामा॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता॥
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता॥
निर्मम निराकार निरमोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा॥
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी॥
(मानस ७ । ७१ । १-४)

श्रीरामचरितमानसके श्रीराम केवल उपर्युक्त ब्रह्म ही नहीं हैं, वरं अनन्त महाविष्णु और शिवके मूल अंशी हैं और उन्हींके अंशसे नाना विष्णुओंका उदय होता है और उनकी भ्रूविलासिनी लीलाके संकेतसे ही अगणित रमा, उमा और ब्रह्माणीका प्राकट्य होता है—

'संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना॥'

× × ×

'जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥'
(मानस १ । १४४ । ३; १४८ । २)

इन प्रभु श्रीरामका दिव्य मङ्गलमय शरीर पाञ्चभौतिक

नहीं, वरं सच्चिदानन्दमय, सर्वथा निर्विकार, मायागुणरहित और स्वेच्छासम्भूत सत्य नित्य चिद्घन-विग्रह है—

'चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥'

(मानस २। १२६। ३)

'निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।'

(मानस १। १९२)

'सोइ सच्चिदानंदघन कर नर चरित उदार॥'

(मानस ७। ७५)

'जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।'

(मानस ७। १२। १)

अनन्य रामभक्त श्रीगोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसमें परमाराध्य भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे अपने भक्तिपूत हृदयके समस्त प्रेममक्तिरसको छन्दोमयी सुललित सरस ग्रामीण भाषामें अभिव्यक्त करके अपने परमप्रेष्ठ भगवान् श्रीरामचन्द्रके लौकिक और अलौकिक गुणोंका, उनकी मधुर-मनोहर प्राणोन्मादकारी परम आदर्श लीलाओंका और उनके परिपोषकरूपमें उनके ऐकान्तिक सेवक तथा भक्तोंके एवं मित्रभावान्वित तथा शत्रुभावान्वित लीला-सहचरोंके अशेष विचित्र चरित्रोंका यथास्थान बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। 'श्रीरामचरितमानस'के श्रवण, मनन और चिन्तनसे नितान्त संसारमलिन, असदाचारी, विषयासक्त, कठोर-हृदय मनुष्य भी पवित्र विचारपरायण, सदाचारी होकर निर्मल प्रेम-भक्ति-रस-धारासे प्लावित हो सकता है।

इसमें साधारण नर-नारियोंके लिये आचरण करनेयोग्य पारिवारिक धर्म, सामाजिक धर्म और पूर्ण मानवताके विकासके अनुकूल अन्यान्य सर्वविध धर्मके आदर्शोंका अत्यन्त सुनिपुणरूपसे सरल भाषामें सरस वर्णन है। इस ग्रन्थमें हमें आदर्श गुरु, आदर्श शिष्य, आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श पत्नी, आदर्श स्वामी, आदर्श सेवक, आदर्श धर्मनीति, आदर्श समाजनीति, आदर्श सत्यपरायणता, आदर्श त्याग, आदर्श प्रेम, आदर्श सेवा, आदर्श धीरता, आदर्श क्षमा और आदर्श दान आदि सम्पूर्ण आदर्शोंके प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। इसीसे यह ग्रन्थ सर्वप्रिय है। इसीसे सम्पूर्ण लोकोत्तर गुणोंके अटूट भंडार इस 'श्रीरामचरितमानस'का सर्वत्र समादर है और यह क्रमशः बढ़ रहा है।

'श्रीरामचरितमानस' वाञ्छा पूर्ण करनेमें कल्पवृक्षसे भी बढ़कर समर्थ है। कल्पवृक्ष मनुष्यकी मलिन इच्छाके अनुसार उसे अनिष्टकर वस्तु भी दे सकता है, परंतु 'मानस' तो सदा मङ्गलमय वस्तु ही प्रदान करता है। 'मानस'की चौपाइयोंको मन्त्रवत् मानकर उनका जप-पारायण किया जाता है और लोग उसके आश्चर्यमय परिणामको प्राप्त करके चकित रह जाते हैं।

हम ऐसे ग्रन्थरत्नके परायण हों और भगवान् श्रीरामकी परमाश्चर्यमयी भगवत्ता एवं मानवताके दर्शन करें।

प्रार्थना

पार रस औन सिद्ध पारद महेस नितै
मुक्त भय-रोग तैं करैं हैं अविमुक्त धाम।
तुलसी-ससी की कला माहिं हुलसी जाकी सुधा
सींचि वसुधा कौं अविराम करै पूर्नकाम॥
रामरस भीनो सबै जा बिन अलोनो,
मधु अच्छर प्रतच्छ रसने! तू सेइ आठो जाम।
राम राम, राम राम, राम राम, राम राम,
राम राम, राम राम, राम राम, राम राम॥
दो०—सौंच सबै दिन, सबै बिधि, डरलो-सीधो सौंच।
राम नाम सुफलहि फलै, चाहे जैसे बौंच॥

—रामकृष्णदास

त्याग। धर्मपर आडिग रहनेके रामके अटल निश्चयको भरतकी हजार युक्तियाँ और महर्षि जाबालिकी अनेक उक्तियाँ भी नहीं डिगा सकीं। लोकापवादको शान्त करनेके लिये सीताका जो त्याग उन्होंने किया, उसमें भी रामकी विरक्त भावना ही प्रकट होती है। सीताकी पवित्रताकी ओर कोई उँगली न उठा सके, इसके लिये उन्होंने सीताको अग्निपरीक्षामें उतरने दिया। मनुष्य अपने जीवनमें शुद्ध और सच्चा रहे—यही पर्याप्त नहीं, जगत्‌को भी इसका पता चलना चाहिये कि वह शुद्ध और सच्चा है। जगत्‌को नीति और धर्मके राजमार्गपर ले आनेका यही एक उपाय है।

आज भी नीतिभ्रष्टताकी शक्तियाँ हमारे समकालीन जीवनमें भयंकर बनकर उठ रही हैं, हमारे दृष्टिकोणको विकृत कर रही हैं, हमारे आचारसम्बन्धोंको ही दिशा दे रही हैं। इस समय हमारे सनातनधर्मके चिरंतन आदर्शोंके प्रतीक श्रीरामके चरित्रसे हमें अपने जीवनके लिये प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये।

आज जिस भारतके प्रति हम गौरवका अनुभव करते हैं, वह रामायणके बिना कभी नहीं बन सकता था। रामायणकी दीप्तिके कारण ही पश्चिमी संसारका भयग्रस्त मानव भारतकी ओर मानवताकी रक्षाके लिये एकमात्र आशाके रूपमें तथा आध्यात्मिक प्रकाश पानेके लिये देखता है। ('नवजीवन' के सौजन्यसे)

श्रीसीता-राम और रामराज्य

(लेखक—श्रीराम दिगम्बर जैन-मुनि १०८ श्रीविद्यानन्दजी महाराज)

बहुत समयसे रामके बारेमें कथाएँ सुनी और पढ़ी जाती हैं, पर हमलोगोंने उनकी ऊपरी बातोंको ही देखा है, श्रीरामका दर्शनशास्त्र नहीं देखा। रामका दर्शनशास्त्र क्या था? योगवासिष्ठमें श्रीराम कहते हैं कि 'मिथ्या ज्ञान एक विकार है और जबतक इसको यह जीव नहीं त्यागता, तबतक यह स्वप्न-अवस्थामें रहता है। सम्यग्ज्ञानसे मनुष्यका मन और आत्मा ऊँचे उठते हैं तथा सम्यग्ज्ञानी संकटके समय भी विवेकसे काम लेता है और धैर्यको नहीं खोता। सम्यक्-ज्ञानसे ही सम्यक्-श्रद्धान होगा। जिस तत्त्वज्ञानपर तुमने श्रद्धान किया, उसे अपनी आत्मामें उतार लो। जिसे सम्यग्ज्ञानरूप बुद्धि प्राप्त हो गयी, उसके लिये विपर्यासाभिनिवेश, आधि-व्याधि, मानसिक कष्ट एवं रोग दूरकी चीज हैं।

श्रीराम-कथा पढ़ियाके सभी देशोंमें देखने-सुननेको मिलती है। श्रीरामकी महत्ता इसलिये नहीं है कि उन्होंने कोई युद्ध जीता, अपितु वे जितेन्द्रिय होनेके कारण अपने गुणोंसे महान् थे। जिस प्रकार उनका बाहरी आचरण सादगीका था, वे अन्तरङ्गमें भी उतने ही निर्मल थे।

जिस समय श्रीरामको उनके पिताजीने वनगमनकी आज्ञा दी, तब उन्होंने 'पिताजीने मुझे दण्डकारण्यका राज्य दिया है।' यह कहकर अपने पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य किया। आज तो भाई भाईकी और बेटा बापकी भी बात सुननेको तैयार नहीं।

श्रीराम तो वीतरागी तथा सम्यग् दृष्टि थे। कविवर दौलतरामके शब्दोंमें 'जो क्रोध, मान, माया और लोभ-रूपी हाथीसे नीचे उतरकर आते हैं, उन्हींका नाम वीतराग है।' भगवान् राम जन्मसे ही वीतराग थे। इसीलिये समस्त विश्व उनका अनुयायी है। वे किसी सम्प्रदायके नहीं। आदर्श व्यक्तिको सभी अपना कहनेको तैयार हैं, पर उनके गुण ग्रहण करनेको कोई तैयार नहीं।

आज हमने धर्मको संकीर्णताकी परिधिमें बाँध दिया है। हम अलौकिक पुरानी गाथाओंमें ही फँसे हुए हैं। वह धर्म हमें नहीं चाहिये जिसको स्पर्श करनेसे वह नष्ट हो जाय। धर्म तो वह है, जिसके स्पर्शसे आत्मा ऊँचा उठता है; उसी प्रकार, जैसे पारसको छूकर लोहा भी सोना बन जाता है। यदि धर्मके नामपर हम लड़ें तो हमारा जीवन पशु-पक्षियोंसे भी बदतर है।

रामके तत्त्वज्ञानको जाननेसे हम भी 'राम' बन सकते हैं। रामचन्द्रजीने हमारी आत्माकी जड़ोंमें जो तत्त्वज्ञानरूपी जल दिया, उसे यदि हमने नहीं जाना तो यह जीवन बेकार है। ज्ञान तो भोजनके समान है। जैसे यदि खाया हुआ भोजन हजम नहीं होता तो बेकार है, उसी प्रकार यदि आत्मामें ज्ञानको हमने नहीं उतारा तो श्रीरामको क्या जाना? जिसे सम्यग्ज्ञानका सम्यक्-आलोक मिल जाता है, वह आत्मनिष्ठ और ब्रह्मनिष्ठ बन जाता है तथा वह एक दिन मोक्षको प्राप्त करके रहता है। सम्यग्ज्ञान, दर्शनसे प्राप्त होता है। उसके

लिये आराधना करनी होगी। सम्यग्ज्ञान स्वयं ही प्रकाशमान है, उसे किसी प्रकाशकी आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार पूर्ण चन्द्रमाको देखकर बच्चे भी प्रसन्न होते हैं और सारे प्राणियोंको शीतलता मिलती है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र्यसे सारे संसारमें सुखकी प्राप्ति होती है। यह सम्पूर्ण जगत् चेतनरूप है और इस चेतनरूप आत्माको स्वीकार करना ही हमारा मूल सिद्धान्त होना चाहिये।

योगवासिष्ठमें वाल्मीकि कहते हैं—'जिसे सम्यग् ज्ञानका आलोक प्राप्त हो जाता है, वह अभय हो जाता है—जैसे मदिरा पीनेवाला मदिरामय हो जाता है। उसकी आत्मामें विरोधीके पदार्थ भले ही समावें, पर उनसे निर्लेपभावसे रहनेके कारण निर्विकार रहता है।'

धीर व्यक्ति भयभीत नहीं होते। जो सत्यमयसे रहित हैं वही सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी है। निर्भय होना ही मोक्षमार्ग है। यही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दृष्टि दीनताको पसंद नहीं करता। दीनताको मनमें बनाये रखना स्वस्थताका चिह्न नहीं। मनुष्य आत्मस्थ तभी हो सकता है, जब उसके अंदर दीनता न हो। स्वस्थाचरण यही है कि सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र्य प्राप्त हो जानेके बाद आत्मस्थ हो जाय। आत्मस्थ होनेके बाद ही मुक्ति मिलती है। वही व्यक्ति आत्मस्थ है, जो वज्रोंके वेगसे और हाथीकी चिंघाड़से भी कम्पायमान न हो।

शान्ति प्राप्त करनेके लिये वीतराग होना आवश्यक है। जब न किसी वस्तुके ग्रहण करनेकी और न त्याग करनेकी इच्छा रहे, तभी पूर्णमुक्त होनेकी अवस्था समझनी चाहिये।

इस संसारमें जो अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर ले, वही वीतराग है। सम्यग्ज्ञानसे युक्त शुद्धचित्त मुनि मनके विकारोंसे विचलित नहीं होता। जैसे दर्पणके सामनेसे चाहे जो चीज निकल जाय, उसका दर्पणपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, उसी प्रकार जो वीतराग है, उनपर किसी बातके विकारोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

श्रीराम ऐसे ही वीतराग और तीनों लोकोंके नाथ थे। श्रीरामका दर्शन मानवमात्रका इष्ट रहा है, क्यों रहे न भला।

श्रीरामके जीवनसे हमें कई शिक्षाएँ मिलती हैं। उनका जीवन बड़ा पुरुषार्थमय था। वे बड़ोंका और अपने माता-पिताका पूरा आदर करते थे और उनकी आज्ञाका पालन करना अपना कर्तव्य समझते थे। वे किसीसे बैर नहीं रखते थे। वे मर्यादापालन करने और प्रेमभाव रखनेवाले थे। उनके राज्यमें कोई भी निर्धन नहीं थी। वे अपनी प्रजाको दुःखी नहीं देखना चाहते थे। भगवान् रामका मन तीनों लोकोंसे भी ऊँचा था। श्रीराम मन्दोदरीको विधवा देखकर बहुत दुःखी हुए तो मन्दोदरीने कहा—'राम! वे माता-पिता धन्य हैं। इक्ष्वाकुवंश धन्य है!!' रावणने भी मरते समय कहा था—'हे राम! इस संसारमें तुम्हारे समान कोई धनुर्धारी नहीं हो सकता। जबतक यह दुनिया रहेगी, तबतक मेरी अपकीर्ति और तुम्हारी कीर्ति रहेगी।'

श्रीराम सम्यग्ज्ञान, दर्शन और चारित्र्यके द्वारा सिद्ध बन गये। उनका चरित्र पापरूपी अन्धकारको नष्ट करनेवाला है। श्रीरामके जीवनमें सीताजीका बहुत महत्त्व है। यदि सीताजी का नाम हटा दें तो रामके चरित्रमें रह ही क्या जायगा। पत्नी ही पतिको परमेश्वर बना सकती है।

जीवन तो सभी जीवोंका होता है, परंतु उनमेंसे जिनमें लोकहितकी विशेष भावना होती है, उन्हींका चरित्र महापुरुष आलोचन करते हैं तथा उन्हें विश्वके समक्ष प्रस्तुत करते हैं। जैनाचार्य महासेन मुनिने 'सिद्ध चरित' नामक ग्रन्थ महासती सीताके जीवनपर विस्तार लिखा था।

देशमें असंख्यात सतियाँ हुईं, पर महासती सीताजी मात्र अपना ही हैं। उनका अपना विशेष स्थान है। आज भी यदि देशमें नारियाँ हैं तो वे ऐसी ही महासतियोंकी कृपासे हैं। श्रीरामके कहनेपर सीताजीने अग्निपरीक्षा देकर न मात्र सती ही नहीं, अपितु विश्वके स्त्रीसमाजका सिर ऊँचा किया।

आचार्योंने शास्त्रोंमें एक ओर जहाँ स्त्रीको उसके अवगुणोंके कारण हेय बताया, वहीं दूसरी ओर बड़े-बड़े ऋषियों, तीर्थंकरोंको जन्म देनेके कारण उसे महान् भी बताया है। महासेन मुनिके शब्दोंमें सीताजी कहती हैं कि आत्मबलसे ही स्त्री वैभवका अभिमान किया जा सकता है और मुक्तिको प्राप्त किया जा सकता है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्यको पालकर ही हम अपने आत्माको परमात्मा बना सकते हैं। धर्म करनेके त्याग और लौकिक गुणोंके मिलनेके बिना यथार्थ सुख नहीं प्राप्त हो सकता।'

सीताजीने रावणके वैभवको तुच्छ समझा। सीताजीका वैभव तो उनका शील था। सीताजीका जीवन रामचन्द्रजीकी पत्नीके रूपमें ही नहीं, बल्कि एक तपस्विनीके रूपमें महत्त्वपूर्ण है।

एक बार सीताजी कहीं जा रही थीं। उन्होंने उसमें देखा कि एक स्त्री अपनी गोदमें एक बच्चा लिये जा रही है और उसके पाँव रो

हुए हैं। सीताजीने उसको रोककर उसकी इस दुःखका कारण पूछा। उस स्त्रीने बताया कि उसके पतिकी मृत्यु यात्रामें हो गयी थी तथा उसके जीवननिर्वाहका कोई साधन नहीं है। सीताजीने तुरंत अपने बदनसे सारे गहने उतारकर उस स्त्रीको दे दिये। यह था सीताजीका त्याग। यदि गहनोंके होते हुए तुम्हारा पड़ोसी दुःखी रहे तो तुम्हारे पास ऐसे गहनोंका होना बेकार है। पड़ोसी भी सुखी रहे, तभी तुम्हारा गहना रखना भी ठीक है। आधुनिक युगमें त्यागभावनासे ही महिलाओंका जीवन आदर्श बन सकता है।

आज देशमें रामराज्य लानेकी बात तो बहुत कही जाती है, पर हम देखते हैं कि सरकार और जनता, दोनोंमें एक-दूसरेके प्रति विश्वासका अभाव है। सरकार नित्य नये करोंका बोझ जनतापर लादती जा रही है और जनता नित्य नये तरीके अपने बचावके निकाल रही है। ऐसी स्थितिमें रामराज्य कैसे आ सकता है। रामराज्य तभी आयेगा, जब हमारे नेता राम बनेंगे और प्रजा भी लक्ष्मण और सीताके-जैसा आचरण करेगी। इसलिये आवश्यक है कि हमारे स्कूल-कालेजोंमें दी जानेवाली वर्तमान शिक्षामें मूलभूत परिवर्तन किये जायँ और नौजवानोंको राम, सीता और लक्ष्मणका चरित्र पढ़ाया जाय। आजके युवक यदि उनके जीवनकी घटनाओंको पढ़ेंगे तो निश्चय ही उनके जीवनमें परिवर्तन आ जायगा।

मैं आपसे यही कहूँगा—सम्पूर्ण जगत्के प्राणियोंमें ज्ञानचेतना मौजूद है। अपनेमें स्थिर होनेके बाद आत्मस्थ होकर जो अपने स्वभावमें लीन हो जाते हैं, वे ही मुमुक्षु हैं, वीतराग हैं। जो ऐसा पुरुषार्थ करते हैं, उन्हें कुछ-न-कुछ अवश्य प्राप्त होता है।

श्रीराम गृहस्थ-अवस्थामें भी मुनिके समान थे। उनकी कथा श्रोताओंमें प्रमोद उत्पन्न करनेका साधन है एवं पापका नाश करनेवाली है। उनके गुणोंको अपनाकर ही देशमें रामराज्यकी स्थापना की जा सकती है। ('मङ्गल-प्रवचन'से संकलित)

पश्चात्ताप

अब लौं न गाई रामनाम बिन दाम हाय,
माथ मैं लगाई न चरन-रज-कनिका।
कनकभवन में सलाम न बजाई, रही
लाज, न गिराई कैसे मन की जवनिका॥
लही न अवधपति-भगति, गँवाई पति,
बिपति कमाई, बढ़ी पाप की चयनिका।
नमकहराम पाई तनिक न बिसराम,
भरमति अबिराम मेरी मति गनिका॥
अधम न पायौ रामनाम धन कवि 'लाल',
रसम रसायन को मनन कर्यो नहीं।
समन भयौ न पाप-ताप कौ, गम न गयौ,
अवध नरायन कौं नमन कर्यो नहीं॥
भव जलनिधि में मगन है, गमन है न,
तरन उपायन कौ परन कर्यो नहीं।
कहा करौं, कासौं कहौं, पतित हमारो मन
सीतापति-पायन कौ भजन कर्यो नहीं॥

—रामलाल

ऋषि जानते थे कि भार उठानेवाले तो रावण-जैसे दैत्यराजों भी उठानेकी क्षमता रखते हैं। परंतु यह दिव्य धनुष है। अतः इसे तो भविष्यत्-शक्तिसम्पन्न व्यक्ति ही उठा सकेगा। यह शक्ति केवल रामभगवान्‌को महर्षि विश्वामित्रने प्रदान की है—

'भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरइ न टारा॥' [illegible] ... विपुला। अनुचित बहु तनु तेज प्रकासा॥'

(मानस १। २०२। ४)

बस, समस्त सामन्त उसे न उठा सके। रामजीने उसे उठा लिया। त्रिभुवन-विजय-माला उनके कण्ठमें पड़ गयी। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे समस्त सामन्त-मण्डलको रामकी शक्ति-का लोहा मानना पड़ा। परंतु अब वे सब संगठित होकर उपद्रव करनेकी तैयारी करने लगे। ऋषि-मुनियोंने पहले ही इस सम्भावित समस्याका समाधान तैयार कर रखा था। दुष्ट राजाओंको इक्कीस बार निर्वीर्य करनेवाले परशुराम तत्काल आ पहुँचे। राजाओंकि दम खुश्क हो गये। निश्चित योजनानुसार क्रोध करते हुए परशुरामजीसे निडर होकर लक्ष्मणजी उत्तर-प्रत्युत्तर करने लगे। इस वादानुवाद-का मनोवैज्ञानिक प्रभाव सामन्त-गणपर यह पड़ा कि जिस परशुरामसे हमारे दम खुश्क हो रहे हैं, रघुकुलका छोटा राजकुमार निर्भय होकर उन्हींको करारे उत्तर दे रहा है। अन्तमें परशुरामजीके रामको स्व-धनुष देकर स्वयं तपो-भूमिकी ओर पधारनेसे तो समस्त सामन्त-गणपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे अयोध्या-सिंहासनके पूर्ववत् अनुगामी भक्त बन गये। षड्यन्त्र-संलग्न होनेका जो भूत उनके दिमागमें घुसा था, वह सदा-सर्वदाके लिये भाग गया। इस प्रकार विघटनकारी तत्त्वोंकी समस्याका तो समाधान हो गया।

महाराज दशरथ ऋषियोंकी गुप्त योजनासे परिचित नहीं थे। अतः वे श्रीरामका राज्याभिषेक करने चले। किसी गुप्त समझौतेसे मन्थराने कैकेयीद्वारा रामको वन भिजवा दिया। ऋषि जानते थे कि श्रीरामके राजा हो जाने-पर यदि रावणसे संग्राम होगा तो उसमें अयोध्याके अनेक सैनिक मरेंगे, धनजन भी होगा। फिर भी युद्धका क्या परिणाम हो, यह अनिश्चित रहेगा। अतः रावणसे रामका निजी युद्ध हो, जिसमें अयोध्याके सिंहासनको कुछ भी हानि न हो, विभीषण समान-ही-नाम हो।

इसी योजनाके अनुसार राम अन्य दिशामें न जाकर बाली और रावणकी ओर ही उन्मुख हुए। एकमात्र बालीके मार देनेपर समस्त वानर-सेना रामकी सहायक हो गयी। राम-रावण-महायुद्धमें निश्चित योजनाके अनुसार एक भी अयोध्यावासी सम्मिलित नहीं हुआ—यहाँतक कि मूर्च्छित लक्ष्मणके स्वास्थ्यका समाचार जाननेके लिये दूतक नहीं भेजा गया। अर्थात् अयोध्याके सिंहासनसे युद्धसे सर्वथा अलिप्त रखा गया। १४ वर्षतक राजधानी भी नन्दिग्रामकी झोपड़ी बनकर रही। राज्यसिंहासनपर कोई मानव व्यक्ति न होकर प्रतिनिधिभूता पादुकाएँ प्रतिष्ठापित रहीं।

यदि यह सब कुछ योजनाबद्ध न किया जाता तो लङ्का-की भाँति अयोध्या भी रावणके दूतोंद्वारा दग्ध की जा सकती थी। भगवान् रामने भी १२ वर्षपर्यन्त रावणसे झगड़ा नहीं किया। चौदहवें वर्षमें ही सब काण्ड हुआ, जिससे अन्ताराष्ट्रीय कानूनके अनुसार चौदह वर्षपर्यन्त अयोध्यासे रामका कुछ भी सम्बन्ध न रहनेके कारण यह अभियान रामका निजी अभियान माना गया।

काश आज भी भारतके कर्णधार पाश्चात्य देशोंकी कुटिल नीतियोंका अन्धानुकरण छोड़कर रामचरित्रकी नीति-से प्रेरणा लें और ऐसी कोई दृढ़ योजना बनायें कि जिससे सर्वप्रथम अपने ही विघटनवादी सार्वभौम केन्द्रके मानस्पटपर स्थायी प्रभाव पड़े और वे अपनी भावें दिनकी धौं-धपटसे विरत होकर भारतकी अखण्डताके पक्षपाती बन जायँ।

भारत आज जिस प्रकार विघटनकारी तत्त्वोंमें जकड़ा हुआ है, उससे मुक्ति पानेका एकमात्र उपाय है—श्रीरामकी कार्यपद्धतिका अनुकरण—उस कार्यपद्धतिका अनुकरण, जिसने भारतको भगवत् प्रभुसत्ताके अधीन कर दिया, जिसके कारण मानवके आचारसे विमुक्त होनेके विचार समाप्त हो गये, एक समय, एक विचारमें सभी संलग्न हो गये, स्वामी सत्ताधार मानवकी अखण्डताने विजय पायी, सभी दूसरेके दुःख-सुखको अपना दुःख-सुख समझने लगे, दूसरेकी हानिको अपनी हानि मानने लगे और सभी प्रभुसत्तामें लीन हो गये।०

• इस इतिहासका समग्र विवरण विलास [illegible] 'रामचरितमानस' में देखना चाहिये, जिसको ... [illegible] विशेषांक ८—

नामसे 'सरस्वती-विहार ग्रन्थमाला'में सन् १९२८में प्रकाशित हुआ था। फ्रांसीसी भाषामें इसका अनुवाद सन् १९०४ में हुआ।

'चीनी त्रिपिटक' के अन्तर्गत १२१ अवदानोंका एक संग्रह है। यह संग्रह ४७२ ई०में चीनी भाषामें प्रकाशित हुआ था। इसकी कथाका अर्थ चीनी, फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी पुस्तकोंसे स्पष्ट्य पड़ता है। इसमें 'दशरथ-कथानकम्'का जो अंश आया है, उसमें सीता या किसी राजकुमारीका उल्लेख नहीं है।

हिंद-एशिया तो रामकथाओंका भंडार है। आजकल यह मुस्लिम देश है। पर तब भी यहाँ कठपुतलियोंके नाचमें रामलीलाके दृश्य दिखाये जाते हैं। एक पुस्तक 'हिकायत (कथा) सेरी (श्री) राम'में श्रीरामकी कथा आती है। यहाँकी एक नदीका नाम 'सरयू' और उसपर बसे हुए नगरका नाम 'युधिया' है। यहाँके लोगोंका विश्वास है कि भगवान् रामका जन्म यहीं हुआ था और रामायणकी अधिकांश घटनाएँ भी यहीं हुई हैं। भारतीयोंने यहाँसे लेकर रामकथाका प्रचार अपने यहाँ किया। कुछ ही दिन पहले यहाँ एक *रामलीला* हुआ था, जिसमें भारतीयोंका भी एक प्रतिनिधि-मण्डल आया था। उसमें रामायणके कई दृश्य दिखलाये गये थे। इस तरह रामकथाकी परम्परा समस्त एशियामें फैलती हुई अमेरिका तथा योरपतक पहुँच गयी।

यह भगवान् रामचन्द्रजीकी ही लीला है कि उनके वास्तविक स्वरूपमें विश्वास न करनेवाले लोगोंने भी इनका गुणानुवाद किया है। भारतमें जैन और बौद्ध अवैदिक सम्प्रदायोंमें सबसे प्राचीन तथा विशिष्ट हैं। इनमें रामचरितका विकास बड़ी स्पष्टतासे पाया जाता है। बौद्धोंके 'दशरथ-जातकम्', 'अनामकम् जातकम्', 'दशरथ-कथानकम्'-में रामकथाकी परम्परा दिखलायी जा चुकी है। 'दशरथ-जातकम्' पाँचवीं शतीके एक सिंहली पुस्तकका अनुवाद है। इसमें सीताको दशरथकी पुत्री बतलाया गया है। इसे ही लेकर कई लेखकोंने तरह-तरहकी कल्पनाएँ की हैं। किंतु इसके आधारपर विश्वास नहीं किया जा सकता, जबतक कि उसकी पुष्टिके लिये समुचित प्रमाण न हो। इसके अनुसार पूर्वजन्ममें शुद्धोदन महाराज दशरथ, महामाया रामकी माता, यशोधरा सीता तथा आनन्द भरत थे। पश्चिमी विद्वानोंने यह सिद्ध करनेका पर्याप्त प्रयत्न किया है कि वाल्मीकिने 'दशरथजातकम्'के आधारपर रामायणकी रचना की थी। परंतु यह प्रयास व्यर्थ ही सिद्ध हुआ। बौद्ध महात्मा बुद्धको रामका पुनरवतार मानते हैं।

जैनियोंमें रामचरितकी परम्परा विमलसूरि तथा गुणभद्रसे चलती है। विमलसूरिने 'पउम-चरिय' की रचना लगभग १७७२ ईसवीमें की। इसका संस्कृत रूपान्तर 'पद्मचरित' के नामसे १८०७ ईसवीमें हुआ। इसका अनुवाद हिंदी खड़ी बोलीमें सन् १८१८ में दौलतरामजीने किया। विमलसूरिकी परम्परामें जैनियोंद्वारा कई रामचरित लिखे गये। 'कथा-कोष' 'शत्रुंजय-माहात्म्य', 'निरत्नकोष' आदिमें बिखरी रामकथाएँ मिलती हैं। जैनी विद्वान् गुणभद्रने नवीं शतीमें अपने 'उत्तरपुराण'में रामचरितका वर्णन किया है।

इन अवैदिक सम्प्रदायोंके अतिरिक्त देशकी सभी क्षेत्रिय भाषाओंमें भी रामकाव्यकी रचना हुई है। तमिळ भाषामें 'कम्बनरामायण'की चर्चा की जा चुकी है। तेलुगु साहित्यमें 'द्विपद रामायण', जो 'रङ्गनाथ रामायण' के नामसे अति प्रसिद्ध है, श्रीरङ्गनाथद्वारा ग्यारहवीं शतीमें लिखी गयी। मलयालम्की सबसे प्राचीन रचना रामकृत 'रामचरित' चौदहवीं शतीमें हुई। कन्नड भाषामें नरहरिने 'तोरवे रामायण' सोलहवीं शतीमें लिखी।

सिंहल द्वीपमें एक कथाका प्रचार है, जिसका रचना-काल ईसापूर्व पाँचवीं शती माना जाता है। इसमें सिंहलके प्रथम राजा तथा राजकुमारीका 'सूलेणी' और 'सीतात्याग'— ये दो प्रधान आख्यान हैं। काश्मीरी रामायणकी रचना दिवाकरप्रकाश भट्टने अठारहवीं शतीमें की। १५वीं शतीमें कृत्तिवासने बँगलामें रामायणकी रचना की। उत्कल भाषामें श्रीबलरामदासने १५वीं शतीमें 'रामायण' लिखी। मराठीमें एकनाथने 'भावार्थरामायण' १८वीं शतीमें लिखी। श्रीधर तथा मोरोपंतने भी श्रीरामपर काव्य लिखे। गुजरातमें भी गुजराती भाषामें रामकथाके कुछ प्रसङ्ग कई ग्रन्थोंमें देखनेमें आते हैं—जैसे प्रेमानन्दकृत 'रणयज्ञ', सत्रहवीं शतीका हरिदासकृत 'सीताविरह' आदि। असमिया भाषामें भी रामकथापर कई ग्रन्थ लिखे हैं। श्रीबरुआने 'असमी-साहित्यके इतिहास'में इनका उल्लेख किया है।

श्रीरामका नाम जितना लिया जाता है, अन्य किसी अवतारी पुरुषका उतना नहीं। राम-नामकी बड़ी महिमा है। 'रामु न सकहिं नाम गुन गाई।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामचरित विदेशी तथा देशी भाषाओंमें ताने-बानेकी तरह व्याप्त है। बाइबलको छोड़कर कदाचित् ही किसी दूसरी कथाका इतना अधिक प्रचार हुआ हो। भगवान् रामका चरित्र केवल भारतको ही नहीं, अन्य कई देशोंको भी एकताके सूत्रमें बाँध सकता है।

की जा सकती है। रामके समस्त गुण जब पूर्ण पराकाष्ठापर एक ही व्यक्तिमें एकत्र दिखने लगते हैं, वहीं हमारी परब्रह्मकी भावना पूर्ण होती प्रतीत होती है, और यह भावना वाल्मीकिके राममें पूर्ण हुई है। वेद और उपनिषदोंके अव्यक्त ईश्वरको महामानवके माध्यमसे वाल्मीकि-रामायणमें और परब्रह्मके अवतारके रूपमें मानसमें साकारता प्रदान की गयी है।

मानसकी दार्शनिक पृष्ठभूमिके सम्बन्धमें कई मतभेद हैं। कोई कहते हैं कि 'तुलसीदासका दर्शन औपनिषदिक दर्शनका समर्थक नहीं है।······उपनिषदोंके अनुसार ब्रह्ममात्र ही मुक्ति है। तुलसीकी दृष्टिमें दासभावसे भगवान्‌के समीप उनके वैकुण्ठधाममें निवास ही आदर्श मुक्ति है[6]।' दूसरेका कहना है कि 'मानसका दर्शन मूलतः अद्वैतपरक है और उसमें अद्वैतके व्यावहारिक पक्षका ऐसा माङ्गल्यमय विनियोग हुआ है, जो संस्कृत-वाङ्मयमें भी 'भागवत'के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है[7]।'

तुलसीको किसी एक दर्शनकी मान्यतामें बाँधना उनकी बहुमुखी प्रतिभा और साधना-संवलित आध्यात्मिक अनुभूतिका अपमान करना होगा। मानसके आरम्भमें ही उन्होंने कहा है—

'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।'
(मानस १।०।७)

इससे स्पष्ट है कि तुलसीने अपनी 'रघुनाथ-गाथा'में उन सभी जीवनतत्त्वोंका सामञ्जस्यपूर्ण समावेश किया है, जो समाजकी मर्यादाके आदर्श हो सकते हैं और जिनमें ज्ञान और भक्ति, कर्म और वैराग्य तथा योग और साधनाके मूल्यतत्त्वोंको हृदयंगम करानेकी शक्ति है।

तुलसीकी भक्ति-निष्ठा समन्वयवादिनी है। समन्वयवाद भारतीय संस्कृतिकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। समय समयपर इस देशमें कितनी ही संस्कृतियोंका आगमन और आविर्भाव हुआ, पर वे घुल मिलकर एक हो गयीं। कितनी ही दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक और सौन्दर्यमूलक विचारधाराओंका विकास हुआ, किंतु उनकी परिणति संगमके रूपमें हुई। उदारचेता विचारकोंकी सारग्राहिणी प्रतिभाने दूसरोंकी ग्राह्य मान्यताओंको निस्संकोचभावसे ग्रहण किया। यह समन्वय-भावनाका ही परिणाम है कि नास्तिक बौद्धोंने रामको बोधिसत्त्व

मान लिया और आस्तिक वैष्णवोंने बुद्धको अवतारक्रममें प्रतिष्ठा की। सांख्य-योग एवं न्याय-वैशेषिकमें वेदान्तके ईश्वरकी सत्ता स्वीकार की गयी और वेदान्तमें सांख्यकी सृष्टि-प्रक्रिया, योगकी ज्ञान-साधना तथा न्यायकी तर्क-प्रणालीको गौरव दिया गया। अर्थ-काम और धर्म-मोक्षमें, वेद-शास्त्र और लोक-परम्परामें, प्रवृत्ति और निवृत्तिमें, साहित्य और जीवनमें समन्वय स्थापित करनेके विराट् प्रयत्न किये गये। अनेकतामें एकताकी स्थापना की गयी, वैषम्यमें साम्यका दर्शन किया गया। समन्वयमें आस्थावान् इस देशके जन-जीवनकी कल्पना, अभिलाषा, धर्म और विश्वास तथा दर्शन एवं साधनाको रामके केन्द्रबिन्दुसे समन्वितकर लोकदर्शी तुलसीने एक अद्भुत मानवीय मर्यादाका सृजन किया है। मानसका समन्वय अपने कवित्वमय भक्ति-दर्शन, भक्ति-दर्शनमय कवित्व और आमूल-पण्डितव्यापिनी लोकप्रियताके कारण अद्वितीय है। यह तुलसीके प्रत्यक्ष अनुभव, सूक्ष्म पर्यवेक्षण और गहन अनुशीलनका सम्मिलित परिणाम है।

तुलसीके राम मूलतत्त्व या परमतत्त्व हैं[8]। वे सच्चिदानन्दस्वरूप हैं[9]। उपनिषत्कारों और वेदान्तियोंने जिसे 'ब्रह्म' कहा है, योगियोंने जिसे 'परमेश्वर' माना है, वैष्णवोंकी दृष्टिमें जो 'परम-विष्णु' हैं, उसी परमार्थतत्त्वको तुलसी 'राम' कहते हैं। उन्हींसे आविर्भूत और उनसे भिन्नाभिन्न तत्त्व हैं— जीव और जगत्[10]। वही राम—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा[11] ॥

और—

ब्रह्म अद्वैत अनाम, अलख-रूप-गुन-रहित जो।
माया-पति सोइ राम दास हेतु नर-तनु धरेउ[12] ॥
निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ[13] ॥

---

६. 'तुलसी-दर्शन-मीमांसा'—डा० उदयभानु सिंह, पृ० १४०।

७. 'रामचरितमानसका तत्त्व-दर्शन', डा० [illegible], पृ० ९।

८. रामचरितमानस १।२४१।२।

९. वही, २।८७; दोहावली ११६।

१०. विनयपत्रिका ५४।२-४; दोहावली २००।

११. रामचरितमानस १।१२०।३-४।

१२. वैराग्यसंदीपनी ४।

१३. रामचरितमानस ७।७२; और 'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥' (१।११५।½), 'अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥' (१।२३।१); 'जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।' (७।१२ छं० १)

भगवान् श्रीरामका लीला-परिकर*

[लेखक—स्व. श्रीआदित्यनाथजी झा (भूतपूर्व उपराज्यपाल, दिल्ली प्रदेश)]

विश्वका विराट् प्रपञ्च लीला-विलास है, इस तथ्यको दार्शनिकोंने अलग-अलग ढंगसे निरूपित और स्वीकार किया है। कोई जगत्‌को आत्माका विवर्त और कोई ईश्वरकी इच्छाका परिणाम मानते हैं। ऋग्वेदके 'पुरुषसूक्त'में परम सत्ताके एकत्व और अद्वितीयत्वका प्रतिपादन बड़ी मोहक शैलीमें किया गया है। यहाँ वर्णित है कि 'जो कुछ भूत और भविष्य है, वह सब पुरुष ही है। वह अमरत्वका अधीश्वर है और अन्तर्यामी होकर भी विश्वातीत है।'[1] 'नासदीयसूक्त'में कहा गया है 'कि वह सबका आत्मा होते हुए भी स्वतः अनिर्वाच्य है। वह जगत्‌की मूल सत्ता है और प्रत्येक द्रव्यमें अनुस्यूत है। उसे न 'सत्' कहा जा सकता है और न 'असत्'।'[2] अथर्ववेदके 'स्कम्भसूक्त'का वचन है कि "जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश समाहित हैं, अग्नि, चन्द्रमा तथा वायु जिसमें अर्पित होकर स्थित हैं, वही 'स्कम्भ' (आधार) है। द्यावा-पृथ्वी और अन्तरिक्षको धारण करनेवाला वही स्कम्भ है। वह भूत, भविष्य तथा वर्तमानका अधीश्वर है।'[3] इसी तथ्यको भारतीय दर्शनकी अद्वैत, द्वैत और विशिष्टाद्वैत आदि परम्पराओंने अपनी अनुभूति और मान्यताओंके आधारपर पल्लवित एवं विकसित किया है। भारतीय तत्त्व-चिन्तकोंने महाभारत, वाल्मीकि-रामायण आदि महाकाव्योंके माध्यमसे दार्शनिक सिद्धान्तोंको जीवनमें उतारनेका प्रयास किया है और पारमार्थिक ज्ञान एवं व्यावहारिक जीवनका सामञ्जस्य स्थापित किया है।

जगत् अपने सत्यकी कल्पना-अभिव्यक्तिसे दूर न होने पाये और मानवके जीवन और प्रतिभामें वह प्रकाश धूमिल न होने पाये, जिससे जगत्‌का कण-कण उद्भासित है, इसी पावन प्रयासमें मनीषियोंने मानव-मर्यादाका उद्घोषन किया था और दाशरथि रामको मर्यादा-पुरुषोत्तमके रूपमें मान्यताका आधार एवं जीवनका प्रकाशस्तम्भ बनानेका काम प्रारम्भ किया था।

संस्कृत-साहित्यमें राम-सम्बन्धी परम्परा लंबी एवं विस्तृत है[4]। पर आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकी 'रामायण' और भक्तिमान् दार्शनिक कवि गोस्वामी तुलसीदासका 'रामचरितमानस' भगवान् रामके मर्यादा-पुरुषोत्तम रूपकी अभिव्यक्तिमें प्राञ्जल तथा मधुररूपी संजीवनी शक्तिसे अनुप्राणित है। दोनों महाकवियोंका अपना दृष्टिकोण है और दोनों ही उसमें बेजोड़ हैं।

वाल्मीकि-रामायण और रामचरितमानस, दोनोंमें राम देवताओंसे भी श्रेष्ठ दिखलाये गये हैं। जो कार्य इन्द्र आदि देवता भी नहीं कर सके, वह कार्य रामने किया है। वाल्मीकि-रामायणमें उनकी तुलना विष्णु, इन्द्र और वरुणसे की गयी है। उन्हें केवल 'विष्णु-पुंगव' (१ । १५ । २९), 'विष्णुः सनातनः' (२ । १ । ७) और 'सुरेश्वर' (१ । ७६ । १७) ही नहीं कहा गया है, वरं 'सर्वलोकनमस्कृत' (१ । १५ । २७), 'महायोगी परमात्मा सनातन' (६ । १११ । १४) भी कहा गया है। रामायण और मानसके रामके परब्रह्मस्वरूपमें अन्तर यह है कि रामायणमें उनका मानवरूप प्रधान है और उसमें पूर्ण गरिमामें ही परब्रह्मका आभास होता है, जब कि मानसमें इसका उलटा है। मानसके राम वस्तुतः परब्रह्म हैं, जो कि भक्तोंके रञ्जनके लिये मनुष्य-जैसी लीला करते हैं[5]।

वाल्मीकि-रामायणमें यद्यपि किसी विशिष्ट दार्शनिक सम्प्रदायमें निरूपित परब्रह्म और उसके अवतारका निरूपण नहीं किया गया है, तथापि उसके पुरुषोत्तम राममें ही ईश्वरत्वकी वह आभा दृष्टिगोचर होती है, जिसकी तुलना परब्रह्मसे ही

---

* इस लेखकी प्राप्तिके दो ही दिन बाद सम्माननीय लेखक महोदयके आकस्मिक निधनका दुःखपूर्ण संवाद मिला, जिससे हमें क्षोभ हुआ। करुणानिधि श्रीराम दिवंगत आत्माको शान्ति प्रदान करें। —सम्पादक

१. ऋग्वेद १ । ९० । १—३

२. ऋग्वेद १० । १२९ । १

३. अथर्ववेद १० । ७ । १२; १० । ७ । १५; १० । ८ । १

४. देखिये 'रामचरितमानसका तुलनात्मक अध्ययन', डा० शिवकुमार शुक्ल।

५. 'वाल्मीकि और तुलसी—साहित्यिक मूल्यांकन', डा० रामप्रकाश अग्रवाल।

भी आ सकती है। सृष्टिके समस्त गुण जब पूर्ण पराकाष्ठापर एक ही व्यक्तिमें एकत्र दिखने लगते हैं, वहीं हमारी परब्रह्मकी भावना पूर्ण होती प्रतीत होती है, और यह भावना वाल्मीकिके राममें पूर्ण हुई है। वेद और उपनिषदोंके अव्यक्त ईश्वरको महामानवके माध्यमसे वाल्मीकि-रामायणमें और परब्रह्मके अवतारके रूपमें मानसमें साकारता प्रदान की गयी है।

मानसकी दार्शनिक पृष्ठभूमिके सम्बन्धमें कई मतभेद हैं। कोई कहते हैं कि 'तुलसीदासका दर्शन औपनिषदिक दर्शनका समधील नहीं है।......उपनिषदोंके अनुसार ब्रह्ममात्र ही मुक्ति है। तुलसीकी दृष्टिमें दासभावसे भगवान्‌के समीप उनके वैकुण्ठधाममें निवास ही आदर्श मुक्ति है[6]।' दूसरेका कहना है कि 'मानसका दर्शन मूलतः अद्वैतपरक है और उसमें अद्वैतके व्यावहारिक पक्षका ऐसा मङ्गलमय विनियोग हुआ है, जो संस्कृत-वाङ्मयमें भी 'मानस'के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है[7]।'

तुलसीको किसी एक दर्शनकी मान्यतामें बाँधना उनकी बहुमुखी प्रतिभा और साधना-संवलित आध्यात्मिक अनुभूतिका अपमान करना होगा। मानसके आरम्भमें ही उन्होंने कहा है—

'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।'
(मानस १।०।७)

इससे स्पष्ट है कि तुलसीने अपनी 'रघुनाथ-गाथा'में उन सभी जीवनतत्त्वोंका सामञ्जस्यपूर्ण समावेश किया है, जो समाजकी मर्यादाके आदर्श हो सकते हैं और जिनमें ज्ञान और भक्ति, कर्म और वैराग्य तथा योग और साधनाके मूलतत्त्वोंको हृदयंगम करनेकी शक्ति है।

तुलसीकी भक्ति-निष्ठा समन्वयवादिनी है। समन्वयवाद भारतीय संस्कृतिकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। समय समयपर इस देशमें कितनी ही संस्कृतियोंका आगमन और आविर्भाव हुआ, पर वे घुल मिलकर एक हो गयीं। कितनी ही दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक और सौन्दर्यमूलक विचारधाराओंका विकास हुआ, किंतु उनकी परिणति संगमके रूपमें हुई। उदारचेता विचारकोंकी धारणाशक्ति प्रतिभाने दूसरोंकी ग्राह्य मान्यताओंको निस्संकोचभावसे ग्रहण किया। यह समन्वय-भावनाका ही परिणाम है कि नास्तिक बौद्धोंने रामको बोधिसत्त्व मान लिया और आस्तिक वैष्णवोंने बुद्धकी अवताररूपमें प्रतिष्ठा की। सांख्य-योग एवं न्याय-वैशेषिकमें वेदान्तके ईश्वरकी सत्ता स्वीकार की गयी और वेदान्तमें सांख्यकी सृष्टि-प्रक्रिया, योगकी ध्यान-साधना तथा न्यायकी तर्क-प्रणालीको गौरव दिया गया। अर्थ-काम और धर्म-मोक्षमें, वेद-शास्त्र और लोक-परम्परामें, प्रवृत्ति और निवृत्तिमें, साहित्य और जीवनमें समन्वय स्थापित करनेके विपद् प्रयत्न किये गये, अनेकतामें एकताकी स्थापना की गयी, वैषम्यमें साम्यका दर्शन किया गया। समन्वयमें भास्वान् इस देशके जन-जीवनकी आस्था, अभिलाषा, धर्म और विश्वास तथा दर्शन एवं साधनाको रामके केन्द्रबिन्दुसे समन्वितकर लोकदर्शी तुलसीने एक अद्भुत मानवीय मर्यादाका सृजन किया है। मानसका समन्वय अपने कवित्वमय भक्ति-दर्शन, भक्ति-दर्शनमय कवित्व और आमूल-परिव्याप्तिनी लोकप्रियताके कारण अद्वितीय है। यह तुलसीके प्रत्यक्ष अनुभव, सूक्ष्म अवेक्षण और गहन अनुशीलनका सम्मिलित परिणाम है।

तुलसीके राम मूलतत्त्व या परमतत्त्व हैं[9]। वे सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं[10]। उपनिषत्कारों और वेदान्तियोंने जिसे 'ब्रह्म' कहा है, शैवोंने जिसे 'परमशिव' माना है, वैष्णवोंकी दृष्टिमें जो 'परम-विष्णु' हैं, उसी परमार्थतत्त्वको तुलसी 'राम' कहते हैं। उन्हींसे आविर्भूत और उनसे भिन्नाभिन्न तत्त्व हैं— जीव और जगत्[11]। वही राम—

"जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा[8]"॥

और—

"अज अद्वैत अनाम, अलख-रूप-गुन-रहित जो।
मायापति सोइ राम दास हेतु नर-तनु धरेउ[12]॥
निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ[13]"॥

---

६. 'तुलसी-दर्शन-मीमांसा'—डा० उदयभानु सिंह, पृ० १४०।

७. 'रामचरितमानसका तत्त्व-दर्शन', डा० रामकुमार, पृ० ९।

८. रामचरितमानस १।१२१।२।

९. वही, २।८७; दोहावली ११६।

१०. विनयपत्रिका ५४।२-४; दोहावली २००।

११. रामचरितमानस १।११०।१-४।

१२. वैराग्यसंदीपनी ४।

१३. रामचरितमानस ७।७३; और 'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥' (१।११५।१), 'अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥' (१।२३।१); 'जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।' (७।१२ छं० १)

तुलसीके ये राम भक्तोंके भगवान् तो हैं ही, वे उनके स्वामी, सखा और सहचर भी हैं और हर प्रकारसे अपने भक्तोंके वशमें हैं—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥
(पद्म० उत्तर० ९४ । २२)

भगवान् कहते हैं—'नारदजी ! मैं न तो वैकुण्ठमें रहता हूँ न योगियोंके हृदयमें । मैं तो वहीं स्थित रहता हूँ, जहाँ भक्त मेरा गुणगान करते हैं ।'

भक्तोंके दुःखसे दुःखित होकर वे विश्वके कल्याणके लिये अवतार धारण करते हैं और तरह-तरहकी लीलाएँ करते हैं । लीलाके बिना मानव उनका ध्यान भले ही कर ले, उन्हें अपने जीवन और हृदयमें पुत्र मित्र आराध्यके रूपमें नहीं अनुभव कर सकता । इसीलिये 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'की भावनासे परम पुरुषके अवतारकी बात कही गयी है ।

रामचरितमानसके आरम्भमें ही गोस्वामी तुलसीदासजीने भगवान् शंकरके मुखसे कहलवाया है—

'मिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहन सीला'[14]।'

यद्यपि मानस रामकी गरिमा-मण्डित लीलाओंके वर्णनसे अनुप्राणित है । तुलसीने परम्पराके गुणों और भक्तिभावनामें अनेक नवीन तत्त्वोंका समावेश किया है, जिनमें मुख्य है—परब्रह्मका लीलारूप । मानसके राम अपने परब्रह्मरूपसे परिचित हैं, परंतु वाल्मीकिके रामको अपने परब्रह्मरूपका भान तब होता है, जब देवगण उनके इसकी चर्चा करते हैं (वा० रा० ६ । ११७) । यही कारण है कि वाल्मीकि-रामायणमें परब्रह्मका लीला-तत्त्व अप्राप्य है । इसका उद्घाटन परवर्ती कालमें हुआ और मानसके रामका चरित इसके बिना नहीं समझा जा सकता ।

मानसके रामके लीलातत्त्वोंको साधारणतया निम्नलिखित रूपमें व्यक्त किया जा सकता है—

(१) रामका समस्त जीवन एक विशाल क्रीडा और विराट् अभिनय है । उनकी न किसीसे शत्रुता है और न मित्रता । रावणका वध वे शत्रुतावश नहीं करते, लोकोद्धारके लिये करते हैं और रावणके वध स्वयं रावणका उद्धार भी उसे मुक्ति देकर कर देते हैं । कौसल्याको वे जन्मके समय ही सचेत कर देते हैं कि वे उनके पुत्र नहीं, वरं 'माया-गुन-ग्यानातीत' (मा० १।१९२।१ छं०) हैं । दशरथभी उनके ब्रह्मरूपसे अवगत हैं (मा० २।७६।३-४) । इस प्रकार समस्त प्राणी लौकिक नातोंके बीच भी उनके ब्रह्मरूपसे पहचानते हैं और जहाँ-कहीं उनमें विस्मरण दिखलायी पड़ता है, वहाँ ही उन्हें इसकी याद दिलाना नहीं भूलते । परंतु रावणको रामका जीवन और आचरण इस प्रकारका नहीं है । उनके हास-रुदन, शोक-क्षेम, स्वाभाविक हैं और इनके द्वारा ही उनके आत्मसंयमका प्रभाव भी रामके उस स्व-मानवत्वको प्रकट करता है, जो मानवीय भावोंका माध्यम बनकर उनमें ईश्वरत्वका आभास करा देता है ।

(२) रामकी लीलाका दूसरा तत्त्व है—उनकी भक्त-वत्सलता । यह मनोभाव उनमें इतना प्रबल है कि वे भक्तोंके प्रेममें नीति-अनीति, सब कुछ भूल जाते हैं । बालीको वे पर-नारीरमणके अपराधपर दण्ड देते हैं, पर भक्त सुग्रीवके इस कुकर्मपर उनका ध्यान नहीं जाता । स्वयं तुलसीदास भी इस पक्षपातपर कटाक्ष करनेसे बाज नहीं आये हैं ।[15] क्योंकि भक्ति इतनी उदारता और इतनी क्षमता न तो यथार्थ मनुष्यमें देखी जाती है और न आदर्श मानवमें । यथार्थ मनुष्यके संकीर्ण हृदयमें भक्तोंके विशाल परिवारसे प्रेम करनेकी उदारता नहीं हो सकती और आदर्श मानव नैतिकताके विचारसे न्याय और नीतिका उल्लङ्घन नहीं करेगा ।

(३) लीलाका तीसरा तत्त्व है—श्रीरामकी स्वतन्त्र स्वच्छन्दता और अपनी शक्ति एवं सम्पन्नताका बोध । वे संसारकी सत्ताको शरणागतके रूपमें ही मानते हैं । जो शरणागत नहीं है, उसे प्रत्यक्ष या परोक्षरूपसे दमनकर शरणागत बना लिया करते हैं ।[16] वाल्मीकि रामायणके अनुसार संधिका प्रस्ताव लेकर लङ्का जाते हैं, परंतु मानसमें शरणागतिका ।

(४) निरपेक्षता लीलाका चौथा तत्त्व है । उनका प्रत्येक कार्य केवल इच्छामात्रसे हो जाता है । उन्हें किसी कार्यके सम्पादनके लिये परिश्रम या प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं पड़ती । धनुषयज्ञमें वे धनुषको अनायास उठा लेते हैं और उसे कमलनालकी तरह खण्ड-खण्ड कर देते हैं । विराध, कबन्ध, बाली आदिका केवल एक बाणसे वध कर देते हैं । रावणके साथ युद्ध नहीं करते, उसे खेल खिलाते हैं । इसी प्रकार उनके समस्त मनोविकार भी प्रदर्शनमात्र हैं क्योंकि उनकी इच्छाशक्ति ऐसी है, जिससे समस्त सृष्टि एवं अखिल ब्रह्माण्ड संचालित है ।

(५) लीलाका पाँचवाँ तत्त्व उनकी सर्वव्यापकता प्रसाद है । इसे गोस्वामी तुलसीदासने अपने रामचरितमानसमें बड़ी दक्षता एवं चातुरतासे प्रदर्शित किया है ।

(६) रामकी माया उनकी लीलाकी आधार-शक्ति है । इस मायाकी अभिव्यक्ति परब्रह्म राममें दो रूपोंमें की गयी

१४. १ । १११ । ४ ।

१५. मा० (१ । १८ । १ ।

१६. देखिये—'मानस-दर्शन', पृ० ११ ।

है। एक तो उनकी रहस्यमयी शक्तिके रूपमें और दूसरी सीताके रूपमें साकार बनकर चिन्मयी पड़ती है। सीता महाविष्णु रामकी अथवा परब्रह्मकी महाशक्ति हैं—

'श्रुति-सेतु, पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी' (मा० २।१२५।१ छं०)।

रामकी लीला और उसके परिकरोंकी भावभूमि समझनेके लिये मानसकी दार्शनिक एवं भावनात्मक पृष्ठभूमिका ज्ञान आवश्यक है। इसी बातको दृष्टिकोणमें रखकर उपर्युक्त विवेचन संक्षेपमें किया गया है।

मानसमें भगवान् रामकी भिन्न प्रसंगोंकी प्रकार है, उन्हें स्थूलरूपसे चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—

१-ईश्वरत्वको प्रकाशित करनेवाली लीलाएँ।

२-सनातन सत्यको उद्भासित करनेवाली लीलाएँ।

३-मानवीय संयोगों एवं मानवीय आदर्श परम्पराओंको उद्घोषित करनेवाली लीलाएँ।

४-सामाजिक सम्बन्धोंसे समन्वित लीलाएँ।

भगवान् रामके जन्मके समय ही माता कौसल्याने जब भगवान्का रूप देखा—

लोचन अभिरामा तनु घनस्याम निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥
(मा० १।१९२।१ छं०)

—तो उन्होंने अपनी प्रार्थनामें भगवान्से विनती की—

'कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा॥'
(मा० १।१९२।छं० ४)

यहाँसे मानसके रामकी लीलाका प्रारम्भ होता है और मानसके अन्ततक अलग-अलग परिस्थितियोंमें और अलग-अलग रूपोंमें भगवान्के लीला-वैभवका दर्शन होता है।

लीलाके परिकरोंमें केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी, देवता और राक्षसोंके भी दर्शन होते हैं। एक तरफ परब्रह्मकी मूर्तिमती शक्ति 'सीता' हैं, जिनको केन्द्र बनाकर मानसकी कथा अपने सौष्ठव एवं अनुपम कथा-संगठनके साथ बढ़ती है। दूसरी तरफ परब्रह्मके अंशरूप रामके तीनों भाइयोंकी मर्यादा-स्थापिनी मूर्तिके दर्शन होते हैं। इन्हीं पाँचकी परिधि बनाकर मर्यादापुरुषोत्तमके रूपको उद्भासित करनेके लिये पिता-माता, सखा-सेवक, बन्धु-मित्र तथा शत्रु और सहायकोंके परिकरको निखारा और सँवारा गया है। लीला-परिकरके पात्रोंका समुचित चित्रण एक लेखमें करना सम्भव नहीं है, इसलिये यहाँ उनका उल्लेख मात्र किया जा सकता है।[१०]

भगवान् रामके लीला परिकरके मुख्य पुरुष-पात्र हैं—लक्ष्मण, भरत, दशरथ, रावण, हनुमान्, सुग्रीव, विभीषण, मेघनाद और अङ्गद।

प्रधान स्त्री-पात्र हैं—सीता, कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा, मन्थरा, शूर्पणखा, शबरी, मन्दोदरी और तारा।

गौण पुरुष-पात्र हैं—(क) रामके स्वजन-सम्बन्धी—शत्रुघ्न, सुमन्त्र, जनक, वशिष्ठ और वाल्मी।

(ख) रामके सखा, सेवक, सहायक आदि—निषाद, जाम्बवंत, जटायु और सम्पाति।

(ग) ऋषिगण—विश्वामित्र, परशुराम, भरद्वाज, वाल्मीकि और अगस्त्य।

(घ) रामके शत्रु और सहायक—मारीच, कुम्भकर्ण, खर, माल्यवान् और प्रहस्त।

गौण स्त्री-पात्र—त्रिजटा, मनसूया और सुनयना।

कथानिष्ठ पात्र—

रामसे समन्वित पुरुष-पात्र—शतानन्द, वसन्त, मनि, शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, कबन्ध, नल, नील, सुषेण और गरुड़।

स्त्री-पात्र—अहल्या, सुरसा।

रावणसे सम्बन्धित पुरुष-पात्र—अक्षयकुमार, महोदर, कुम्भ, निकुम्भ, विरूपाक्ष, नरान्तक, दूषण, त्रिशिरा, मय दानव, कालनेमि, शुक, सारण, शार्दूल आदि।

स्त्री-पात्र—छायाग्राहिणी और लङ्किनी।

पौराणिक पात्र, जिनका समावेश कथाकी प्रस्तावना या विकासके लिये किया गया है। ये हैं—नारद, ब्रह्मा, शिव, पार्वती, इन्द्र, काकभुशुण्डि और सरस्वती।

वाल्मीकि-रामायण और रामचरितमानस—दोनोंकी कथाका विकास यद्यपि श्रीरामके चरित्र चित्रणके लिये ही किया गया है, तथापि दोनों महाकवियोंकी मान्यतामें भेदके कारण कथाका गठन और चरित्र-चित्रणका विन्यास अपने-अपने दृष्टिकोणके अनुसार ही उक्त महाकवियोंने किया है।

---

१०. रामचरितमानसमें चित्रित चरित्रोंका वाल्मीकि-रामायणमें वर्णित वाही चरित्रोंके साथ तुलनात्मक अध्ययनके लिये देखिये—'वाल्मीकि और तुलसी साहित्यिक मूल्याङ्कन'—डा० रामप्रकाश अग्रवाल, पृष्ठ १५१-२४।

पतितपावन राम नमोऽस्तु ते

(रचयिता—साहित्याचार्य पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम')

भुवनभावन राम नमोऽस्तु ते
निजजनावन राम नमोऽस्तु ते।
अधमभावनतारणतृष्णया
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

जगदाश्रय श्रीरामजी! आपको नमस्कार है। स्वजनरक्षक राम! आपको नमस्कार है। अधम जनोंका उद्धार करनेकी प्रबल इच्छासे दौड़नेवाले पतित-पावन श्रीराम! आपको नमस्कार है।

सुरधराविधिशम्भुभिरर्थित:
प्रकटितस्त्वममूर्भुवि भारहृत्।
सुखयितुं निजभक्तजनान् विभो
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

विभो! देवता, पृथ्वी, ब्रह्मा और शिवके द्वारा प्रार्थना किये जानेपर (भू-) भारका हरण करनेके लिये और अपने भक्तजनोंको सुख देनेके लिये आप इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। अतः हे पतित-पावन श्रीराम! आपको नमस्कार है।

त्वमसि भास्वरभास्करसंततिः
कुमुदिनीकुलमोदनचन्द्रमाः।
स्वजनचन्दन तापनिकन्दन
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

सज्जनोंके लिये चन्दनस्वरूप एवं त्रिविध तापोंको नष्ट करनेवाले श्रीराम! आप ही सूर्यवंशको दीप्तिमान् बनानेवाले हैं तथा आप ही (भक्तोंके) कुमुदसमूहको आनन्द देनेवाले चन्द्र हैं। हे पतित-पावन श्रीराम! आपको नमस्कार है।

निजपितुर्निजमातुरपारतं
नयननन्दन चन्दन चेतसः।
जनकजानिजजीवन चित्त हे
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

अपने माता एवं पिताके नेत्रोंको सतत आनन्द प्रदान करनेवाले, हृदयके चन्दन और श्रीजानकीजीके ... हे पतित-पावन श्रीराम! आपको नमस्कार है।

अवधवासिजनप्रियजीवन
जनकराजपुरीप्रणयास्पद।
सकृदपि स्मरतां निजधामद
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

हे अवधवासियोंके प्रिय जीवनस्वरूप! हे जनकपुरीके प्रेमास्पद! एक बार स्मरणमात्रसे ही अपने धामको प्रदान करनेवाले पतित-पावन श्रीराम! आपको नमस्कार है।

त्रिभुवने भुवनेश सतीषु सा
किमु कृता शबरी न वरीयसी।
स्वयमुपेत्य तदीयगृहे त्वया
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

हे भुवनेश! क्या शबरीके घर स्वयं उपस्थित होकर आपने उसे त्रिलोकीकी सतियोंमें श्रेष्ठ नहीं बना दिया? (इससे यही सिद्ध होता है कि आप पतित-पावन हैं। अतः) हे पतित-पावन श्रीराम! आपको नमस्कार है।

परमसेव्यतमः किल मारुतेः
कपिपतेः सुहृदो विपदन्तकः।
अशरणस्य सदा शरणं भवान्
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

हे पतित-पावन श्रीराम! निश्चय ही आप हनुमान्-जीके परमाराध्य हैं, वानरोंके अधिपति मित्र सुग्रीवजीकी विपत्तिको नष्ट करनेवाले हैं और सदा ही अशरणको शरण देनेवाले हैं। आपको नमस्कार है।

अपि मुनीन्द्रमनोविषयो भवान्
भवति दीनजनस्य सदाऽऽश्रयः।
स्वपितरावित्र मुग्धशिशोः कृते
पतितपावन राम नमोऽस्तु ते॥

हे पतित-पावन श्रीराम! आप मुनिश्रेष्ठोंके मनके लिये अगम्य होते हुए भी सदा दीनजनोंके आश्रय हैं और अबोध शिशु (के समान भोले भक्तों) के लिये आप माता-पिताके समान हैं। आपको नमस्कार है।

श्रीराम-दर्शन

(लेखक—प्रभुपाद आचार्य श्रीप्राणकिशोरजी गोस्वामी)

भक्तकवि तुलसीदास राममय संसारका दर्शन करते हुए कहते हैं—

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥
[श्रीरामच० मा० १। ७ (ग)]

तुलसीदास जिनका विश्वरूपमें दर्शन करते हैं, उनकी ही खोज तपस्वी वाल्मीकिने देवर्षि नारदके समीप की थी। वे कहते हैं—

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकप्रियदर्शनः॥
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः।
(वा० रा० १। १। २-४)

'जिसके गुणोंकी सीमा नहीं है ? सर्वशक्तिमान्, धर्म-रहस्यवेत्ता, कृतज्ञ, सत्यप्रिय, दृढव्रती, चारित्र-गुणमें गरीयान्, सर्वभूत हितमें रत, ज्ञानमय, समर्थ और सर्वजनके लिये प्रियदर्शन कौन है ? इन्द्रियजयी, क्रोधजयी, तेजस्वी और अदोषदर्शी, कौन है ?' नारदजी कहते हैं कि 'वह अन्य कोई नहीं है, इक्ष्वाकुवंश-प्रभव श्रीराम हैं।' श्रीराम ही वह पुरुषोत्तम हैं। उनके आविर्भावसे विश्वके चर-अचर—सभी जीव पाप-मुक्त हो गये थे। महादेवी सतीके मनमें भी उनकी नरलीलाके विषयमें संदेह उत्पन्न हुआ था। शंकरजी निशिदिन राम-नाम स्मरण करते हैं। देवी जिज्ञासु बनकर रामका परिचय प्राप्त करना चाहती हैं। जो श्रीराम पत्नीके विरहमें कातर होकर वन-वन रुदन करते घूम रहे हैं, वे कातर राम, शिवके स्मरणीय कैसे हो सकते हैं ? देवी परीक्षा लेनेके लिये रामका अनुसरण करती हैं। सीताका वेष बना लेती हैं—राम-को मोहित करनेके लिये। परंतु राम, देवीके सामने आते ही, पूछ बैठते हैं—'भगवति ! आप अकेली क्यों हैं ? शंकर कहाँ हैं ?' देवीकी माया रामको मोहित नहीं कर पाती। जान पड़ता है, वह दूर हट जाना चाहती है। हाय ! राम तो सामने हैं, इधर हैं, उधर हैं, सब ओर हैं—

जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना। सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना॥
फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा। सहित बंधु सिय सुंदर वेषा॥
(श्रीरामच० मा० १। ५४। ३)

श्रीरामने जब जन्म लिया, तब माताने उनका चतुर्भुज-रूपमें ही दर्शन किया था। वह रूप अद्भुत था—

लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥
(श्रीरामच० मा० १। १९१। १)

वे शोभासिन्धु कौसल्यानन्दन हैं। माँ कहती हैं—'तुम तो अज-भव-वन्दनीय हो। मेरे गर्भसे तुम्हारा जन्म होना उपहासकी बात है। अपने इस ऐश्वर्य-मण्डित रूपका संगोपन करके साधारण शिशुलीला करो।' माताके कहनेसे चतुर्भुज द्विभुजरूप हो गये।

विष्णुका आविर्भाव युग-युगमें विभिन्न घटना-क्रमके माध्यमसे वेद-पुराणमें वर्णित है। राजा दशरथने ऋष्यशृङ्गके द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञके फलस्वरूप मूर्तिमान् धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंको ही मानो राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नके रूपमें प्राप्त किया। वाल्मीकिके वर्णनके अनुसार—

कौसल्याजनयद् रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥
विष्णोरर्धं महाभागं पुत्रमैक्ष्वाकुनन्दनम्।
(१। १८। १०-११)

ब्रह्मसंहितामें लिखा है—

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद् भुवनेषु किंतु।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

स्वयं भगवान् गोविन्द श्रीकृष्ण युग-युगमें नाना अवतार-रूपोंमें प्रकट होकर जीवोंका कल्याण-साधन करते हैं। मत्स्य, कूर्म, वराह आदि उनके ही अवतार हैं। कवि जयदेव कहते हैं—

जनकसुताकृतभूषण, जित-दूषण हे,
समर-शमित-दशकण्ठ,
जय-जय देव हरे।
(गीतगोविन्द १। २। ६)

तारक-ब्रह्म-नाम हरि-कृष्ण-राममेंसे किसी एक नामका बोध करानेके लिये ही कहा जाता है। गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीरूप गोस्वामी स्वयं भगवान्के तीन परावस्थ रूप स्वीकार करते हैं।

श्रीकृष्ण, श्रीराम, श्रीनृसिंह—भगवान्‌के ये ही तीन पराक्रम रूप हैं। इनके उत्कर्षमें स्वरूपका उत्कर्ष अवश्य सौन्दर्य होता है। श्रीमद्भागवतमें अद्वयज्ञान-तत्त्वको ही भगवान् कहा गया है। तुलसीदासजी श्रीरामको ही 'सच्चिदानन्दघन परमब्रह्म' कहते हैं। नरलीलामें श्रीरामने वात्सल्यरूपमें ही प्रभूत शक्तिका परिचय दिया है। विश्वामित्र मुनिने महाराज दशरथसे उनके ज्येष्ठ पुत्र रामको ही राक्षसोंका विनाश करनेके लिये माँगा—

> स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम् ॥
> काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि।
> (वा० रा० १। १९। ८-९)

रामने विश्वामित्रके कहनेपर वनके मार्गमें ताड़काको मारा था। अकारण-करुण श्रीरामचन्द्रने गौतम ऋषिके आश्रममें शापभ्रष्ट अहल्याको अपने चरणोंके स्पर्शसे चेतना प्रदान की थी। अहल्याने उनका परम पावन, सुखदायक, प्रेममय पुरुषोत्तमरूपमें दर्शन किया। तुलसीदासकी भाषामें—

> परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
> देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही ॥
> (श्रीरामच० मा० ११। २१० छन्द १)

जनकपुरके मार्गमें दो बालक चले राम-लक्ष्मणके साथी बनकर। पास जाकर उन्होंने किसी बहाने रामके अङ्गोंका स्पर्श करके अनुभव किया कि ये कितने कोमल हैं। वे मुग्ध हो गये, स्पर्शसे पुलकित हो उठे। नगरमें प्रवेशके साथ-साथ यह संवाद फैल गया कि दो राजकुमार नगर-दर्शन करनेके लिये आये हैं। उनके रूपकी कोई तुलना नहीं है। नर-नारी दौड़ पड़े दर्शनके लिये। घरके काम-काजको छोड़कर सुन्दरियाँ गवाक्षमें आँखें लगाकर श्रीरामको देखने लगीं। वास्तवमें इतना सुन्दर पुरुष उन्होंने कभी देखा न था। सुनते हैं, विष्णु परम सुन्दर पुरुष हैं, किंतु उनके तो चार हाथ हैं, मनुष्यके समाजमें मिलकर रहनेकी योग्यता उनमें कहाँ है! ब्रह्माकी सुनहली कान्ति होनेसे क्या! वे चतुर्मुख जो हैं! क्या उनसे कोई मानवी प्रेम करेगी! शंकरका तो प्रश्न ही नहीं उठता। कमनीय-मूर्ति तो हैं, किंतु पञ्चमुख! गलेमें सर्पकी माला, बारंबार डसने! जिनका वाहन भी उनके पास नाग! ये तो अपरूप सौन्दर्यके परमाश्रय किशोर श्याम श्रीराम हैं, इनके अङ्गकी शोभाके सामने करोड़ों कामदेवकी शोभा भी [illegible] है।'

> बय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम।
> अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम ॥
> (श्रीरामच० मा० १। २२०)

राजर्षि जनककी सभामें विश्वामित्रके शिष्यके रूपमें श्रीराम राजर्षिकी दृष्टिको आकर्षित करते हैं। दूर्वादलश्याम श्रीराम और स्वर्णोज्ज्वल लक्ष्मण—दोनों भाई मनोहर चित्र रूपी मूर्ति हैं। उनको देखकर सभाके राजाओंके वीर पुरुषोंके समूह, साधारण पुर-नर-नारी अपने-अपने हृदयके भावोंकी शोभा ही श्रीरामके रूपमें देख रहे हैं। योद्धागण उनको मूर्तिमान् वीररसके रूपमें देखते हैं, कुटिल लोगोंको वे भयानक दीखते हैं, असुरभावापन्न लोगोंको यमराजके रूपमें तथा पुरके नर-नारियोंको श्रेष्ठ पुरुषरत्नके रूपमें दीखते हैं। तुलसीदास कहते हैं—

> बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
> जनक जाति अवलोकहिं कैसें। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें ॥
> सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ॥
> जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥
> हरि भगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता ॥
> रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया ॥
> (श्रीरामच० मा० १। २४१। १-४)

उपनिषद्-वेद्य, परमतत्त्व, सर्वसुखके आकर सच्चिदानन्द श्रीराम हैं। शिव-धनु-भङ्गके पश्चात् राजा जनक स्वीकार करते हैं कि दशरथ नन्दन श्रीरामकी अति अद्भुत अतर्क्य अचिन्त्य शक्तिका परिचय उन्होंने पाया—

> भगवन् दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः।
> अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया ॥
> (वा० रा० १। ६७। २१)

इससे पूर्व ही पुष्पोद्यानमें जानकीजी श्रीरामका दर्शन करके मुग्ध हो चुकी हैं। सम्भवतः यह बात राजा जनक नहीं जानते थे। जानकीका दर्शन आसक्त अर्थात् निर्निमेष था, सारा शरीर स्नेह-स्नात हो गया। उनकी अवस्था शरद्‌के पूर्णचन्द्रके प्रति चकोरकी-सी थी। तुलसीदास कहते हैं कि 'जानकीने श्रीरामको हृदयमें धारण करके पलकके कपाटको बंद कर दिया। राम जानकीके हृदयमें बस गये।'

> लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥
> (श्रीरामच० मा० १। २३२। ४)

बाल-स्वभाव, धनुर्धारीके रूपमें

ही देखे गये। इसी कारण उसने श्रीरामको वनगमनका कठिन आदेश दिया था। रामकी सत्यप्रियताको दुर्बलता समझ लिया था। रामने श्रीमुखसे ही कहा है—

तद् ब्रूहि वचनं देवि राज्ञो यदभिकाङ्क्षितम्।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते॥
(वा० रा० २।१८।३०)

शबरीके आश्रममें रामके जानेपर उसने चरणोंमें प्रणत होकर उनका दर्शन किया था—

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥
(श्रीरामच० मा० ३।३३।४)

भरतके द्वारा वनवासी रामके दर्शनका भी अनुपम वर्णन मिलता है—

निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम्।
उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम्॥
(वा० रा० २।९९।२५)

देवर्षि नारदने किसी समय उदार, सरल-स्वभाव, सुन्दर, वरदायक श्रीरघुनाथके चरणोंमें उनकी उदारताके प्रमाण-स्वरूप एक वर माँगा। वे बोले—'तुम तो भक्तको सब कुछ दान कर देते हो। यह तुम्हारा स्वभाव है। मैं अधिक तुम्हारे साथ चालाकी न कर सकूँगा। मुझे तुम मेरा अभिलषित वर दो। तुम्हारे जो अनेक नाम हैं, उनमें श्रीराम-नाम मुझे अत्यन्त प्रिय है। उस नामको तुम सर्वाधिक अधिक शक्तियुक्त कर दो।' देवर्षि नारदकी इस प्रार्थनाको श्रीरामने अङ्गीकार किया था।

राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥
(श्रीरामच० मा० ३।४१।४)

प्रथम दर्शनमें ब्रह्मचारी हनुमान्‌ने रामका दर्शन करते समय कहा था—'तुम कौन हो? श्यामल-गौरकान्ति, क्षत्रिय-वेषधारी तुम अपने इन कोमल चरणोंसे इस कठोर वनभूमिमें कैसे विचरण करते हो? मनोहर सुन्दर कोमल अङ्गोंपर कैसे दुस्सह सूर्य-तापको सहन करते हो? क्या तुम ब्रह्मा विष्णु महेशमेंसे कोई हो अथवा तुम दोनों नर-नारायण हो?'

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥
(श्रीरामच० मा० किष्किन्धा०)

विषाद-ग्रस्त श्रीरामका महामुनि वाल्मीकिने जिस रूपमें वर्णन किया है, उस अंशकी पर्यालोचना करनेसे ज्ञात पड़ता है कि वे उनको देवरूपमें प्रतिष्ठित करनेके लिये विशेष आकुल नहीं हैं। साधारण अज्ञानी जनके समान ही राम अपनी प्रिया जानकीको वनके प्रत्येक प्रान्तमें खोजते-फिरते हैं। वे उन्मत्तके समान प्रत्येक वृक्षके पास जाकर पूछते हैं—'क्या तुमने मेरी प्रिया जानकीको देखा है?' एक शब्दमें—

वृक्षाद् वृक्षं प्रधावन् स गिरींश्चापि नदीन्नदम्।
बभ्राम विलपन् रामः शोकपङ्कार्णवप्लुतः॥
(वा० रा० ३।६०।३३)

शोक-मोह-क्रोध आदिकी अभिव्यक्ति होनेपर भी श्रीरामके चरित्रमें एक विचित्र समन्वय देखा जाता है। मानव-मनके विकासमें विभिन्न मानधाराका परिचय मिलता है। पूर्णाङ्ग मानव-धर्मका क्रम-विकास विशेषरूपसे श्रीरामचरित्रमें दर्शनीय है। माता-पिता, आचार्य और गुरुवर्गके समीप राम सुविनीत आदर्श पुत्र, शिष्य तथा स्नेह-योग्य हैं। सहचरों एवं बन्धु-बान्धवोंकी मण्डलीके बीच श्रीराम सर्वजनप्रिय हैं। राजकुमाररूपमें वे अपने रूप-गुण-शीलके द्वारा प्रजाजन-को आनन्द प्रदान करते हैं।

एकपत्नी-व्रतधारी राम जानकीके इहलोक और परलोकके लिये जीवन-सर्वस्व हैं। भ्रातृत्वके गौरवमें राम अद्वितीय हैं। लक्ष्मणके समान समर्पित-आत्मा भाई और किसको मिला है? भरतने त्याग, सेवा और धर्मका जो आदर्श स्थापित किया है, उसकी तुलना कहाँ है? ज्येष्ठ भ्राताके गुणसे ज्येष्ठ भ्राताका परम गौरव प्रतिष्ठित हुआ है, यह अस्वीकार करनेका कोई कारण नहीं है। प्रत्येक प्रजाके संतोषके लिये राजाका आत्म-त्याग और दुःख-वरण और कहाँ है? मित्रके प्रति वात्सल्य श्रीरामकी एक परम विशेषता है। एक बार शरणागत होनेपर श्रीरामके सामने फिर शत्रु-मित्रके भेदका कोई विचार नहीं रहता। उसको अभयदान करना रामका व्रत था। श्रीरामका जीवन-दर्शन दास्य-सख्य-वात्सल्य-मधुर आदि विविध रसचित्रोंसे चित्रित होनेपर भी उसकी मूल पट-भूमि कारुण्य रसमें है, इस सम्बन्धमें सम्भवतः विद्वद्-गोष्ठीमें मतभेद नहीं है।

महाभारत, शान्तिपर्वमें देवर्षि नारद और पर्वत मुनिकी कथा आती है। वहाँ सुन्दरी राजकुमारीके विवाहके निमित्त आग्रहको लेकर पर्वत मुनि और नारदके शाप और प्रतिशापकी कथा है। नारद अभिशप्त होकर वानरमुख हो गये थे। ऐसी

कथा यहाँ है। रामचरितमानसमें भी नारदजीने शीलनिधि राजाकी कन्या विश्वमोहिनीसे विवाहका आग्रह कर विष्णुसे रूप-सम्पत्-प्राप्तिकी प्रार्थना करके, वानरमुख होकर स्वयंवर-सभामें लज्जित होकर विष्णुको शाप दे डाला कि 'जाओ, तुम मनुष्यलोकमें जन्म लेकर पत्नी-वियोगका दुःख उठाओ।'

नारदजी कहते हैं—

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥
(श्रीरामच० मा० १ । १३६ । ४)

योगवासिष्ठ रामायणके अन्तर्गत अग्निवेश्य-कारुण्य-संवादमें इस श्रीरामरूपमें आविर्भावके कारणस्वरूप कई शाप-कथाएँ हैं। श्रीवाल्मीकि कहते हैं कि 'अभिशापको निमित्त बनाकर श्रीहरि सर्वज्ञानमय होकर भी अज्ञानी या असमर्थके समान रागद्वेष धारण करके रामशरीरमें लीला करते हैं।' राजा अरिष्टनेमि पूछते हैं कि 'चैतन्यविग्रह चिदानन्दस्वरूप भगवान् क्योंकर अभिशापग्रस्त हुए?' वाल्मीकि मुनिने कहा कि 'वैकुण्ठनाथ विष्णुका एक बार सत्यलोकमें शुभागमन हुआ। ब्रह्माने उनकी यथायोग्य पूजा की। किंतु सनत्कुमार निष्काम होकर अनासक्त रहे, विष्णुकी यथायोग्य पूजा नहीं की। सत्यलोकनिवासी सबके द्वारा पूजा हुई, किंतु सनत्कुमारने उसमें योग नहीं दिया। विष्णु बोले—'सनत्कुमार! तुम्हारे मनमें निष्काम साधु होनेका गर्व है। मुझको साक्षात् देखकर भी तुमने पूजा नहीं की। मैं अभिशाप देता हूँ कि तुम स्कन्द नामसे जन्म ग्रहण करोगे और तुम्हें विवाह-की इच्छा होगी।' सनत्कुमार प्रतिशाप देते हुए बोले—'आपका भी सर्वज्ञान कुछ समयके लिये तिरोहित हो जायगा।'

तेनापि शापितो विष्णुः सर्वज्ञत्वं तवास्ति यत्।
किंचित्कालं हि तत्त्यक्त्वा त्वमज्ञानी भविष्यसि॥
(योगवा० १ । १ । ६०)

भृगुमुनिने अपनी पत्नीको विष्णुद्वारा मारी गयी देख, कोपमूर्च्छित होकर, अभिशाप दिया कि 'मैं जिस प्रकार पत्नीविरहमें कातर हो रहा हूँ, हे विष्णु! तुमको भी भार्या-वियोगका दुःख इसी प्रकार सहना पड़ेगा।'

भृगुर्भार्यां हतां दृष्ट्वा प्रोवाच कोपमूर्च्छितः।
विष्णो तवापि भार्याया वियोगो हि भविष्यति॥
(वही, १ । १ । ६१)

वृन्दा सतीने विष्णु-मायासे मुग्ध होकर विष्णुको अभिशाप देते हुए कहा—'मेरे साथ छल करके तुमने मेरे पतिकी मृत्यु करा दी। इस कारण मैं तुमको अभिशाप देती हूँ कि तुम भी स्त्री-विरहका दुःख-भोग करोगे।'

वृन्दया शापितो विष्णुस्त्वकर्म यास्या कृतम्।
अतस्त्वं स्त्रीवियोगं तु वचनान्मम यास्यसि॥
(वही, १ । १ । ६२)

पयोष्णी नदीके तीरपर देवदत्त नामके एक ब्राह्मण रहते थे। हिरण्यकशिपुके वधके बाद विष्णुको भयंकर नृसिंहवेशमें देखकर उनकी पत्नीका प्राण छूट गया। वह ब्राह्मण पत्नीके विरहसे कातर हो उठा और विष्णुको अभिशाप दे दिया कि 'मेरे समान तुमको भी पत्नी-वियोगका दुःख सहन करना पड़ेगा।'

इन सब शापोंको स्वीकार करके भगवान्ने श्रीराम-शरीरमें श्रीजानकीजीके विरहको अङ्गीकार किया था। विरह रामके मनमें वैराग्यका उदय योगवासिष्ठ रामायणकी भूमिका है।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें वर्णित है कि श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु दक्षिण देशमें भ्रमण करते समय एक रामभक्तके अतिथि हुए थे। उस ऐकान्तिक रामभक्तने, श्रीजानकीजीको दुष्ट रावण हर ले गया है—इस भावसे कातर होकर आहार-निद्रा त्याग दी थी। महाप्रभु उसके ऐकान्तिक भावसे मुग्ध हो गये। महाप्रभुने ब्राह्मणको आश्वासन देते हुए कहा—

पतिव्रताशिरोमणि जनकनन्दिनी।
जगतेर माता सीता श्रीरामगृहिणी॥
रावण देखि सीता लैल अग्निर शरण।
रावण देखि अग्नि कैल सीता अन्तर्धान॥
सीता लैया राखिलेन पार्वतीर स्थाने।
माया-सीता दिया अग्नि वञ्चिला रावणे॥
(चै० च० २ । ९ । १८०–८१)

रामदास ब्राह्मणको विश्वास दिलानेके लिये उन्होंने शास्त्रसे कूर्मपुराण मँगाकर उसका प्रमाण दिया—

सीतयाऽऽराधितो वह्निश्छायासीतामजीजनत्।
तां जहार दशग्रीवः सीता वह्निपुरं गता॥
परीक्षासमये वह्निं छायासीता विवेश सा।
वह्निः सीतां समानीय तत्पुरस्तादनीनयत्॥

अग्नि-परीक्षाके समय अग्निदेव छायासीताको ग्रहण करके जगज्जननी जानकीको प्रत्यर्पण करते हैं। यह कथा सुनकर रामदास आनन्दित हो बोल उठे—

..............तुमि साक्षात् रघुनन्दन।
संन्यासीर वेशे मोरे दिले दरशन॥

भक्त तुलसीदासजी महाराजने गरुड़ और काकभुशुण्डिके संवादमें रामकथाका दिग्दर्शन कराया है। गरुड़ जिज्ञासु हैं और त्रिकालदर्शी काकभुशुण्डि वक्ता हैं। वे कहते हैं कि 'भक्तके निमित्त सर्वेश्वर प्रभु श्रीभगवान् राजवेष धारण करके परम पावन लीला करते हैं। प्राकृत दृष्टिसे नरलीलाके अनुकरणमें वे मनुष्य ही जान पड़ते हैं। यथार्थतः वे सच्चिदानन्द जन्मरहित व्याप्य व्यापक अखण्ड अनन्तस्वरूप हैं'—

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप॥

(श्रीरामच० मा० ७।७२ क)

श्रीरामके निर्गुण रूपका बोध सुलभ है, किंतु गुणातीत गुणमय सगुण रूपका परिचय प्राप्त करनेमें श्रमसाध्य अनुभव अत्यन्त दुर्लभ है।

प्राकृत गुणोंसे रहित होनेपर भी वे अनन्त अप्राकृत गुणोंसे विभूषित हैं, इस बातकी धारणा करनेमें बहुत ही कम साधकोंके मन-प्राण समर्थ होते हैं। श्रीराम जिसको जनाते हैं, वही उनको जान पाता है। उनकी कृपाके बिना यह विश्व जान नहीं होता।

भुशुण्डिजी कहते हैं कि 'जिस दिन भक्तोंके ऊपर कृपा करनेकी इच्छासे नररूपमें भगवान् अवतीर्ण हुए, उसी दिनसे मैं अयोध्यामें जाता हूँ। रामके शिशुरूपका दर्शन करता हूँ। ध्वज-वज्र-अङ्कुशके चिह्नोंसे युक्त उनके चरणोंकी ओर ही सर्वप्रथम मेरी दृष्टि आकर्षित हुई है। उनके नूपुरकी कैसी मधुर ध्वनि है। उसे सुनकर मेरे कान तृप्त हो जाते हैं। उनके अङ्ग-अङ्गमें विचित्र वर्णोंकी शोभासे मण्डित मणिमय अलंकार, उनका बाल-चापल्य, मधुर बोली—सब कुछ निरुपम है। दशरथके आँगनमें पीत वस्त्र पहने सुन्दर राम मुग्धके समान अपनी छायाके साथ नृत्य करते हैं। मैं उस रूपको देखता हूँ। मैं सोचता हूँ कि चिदानन्दस्वरूप भगवान्की इस लीलाका क्या महत्त्व है। मैं भी उनकी मायासे मुग्ध हो जाता हूँ। मैं जानता हूँ कि माया-मुग्धता जीवका स्वरूप है। भगवान् एक, स्वतन्त्र, मायाके प्रभु हैं; जीव असंख्य, परतन्त्र, मायाका दास है। श्रीरामके भजनके बिना जीवकी माया दूर नहीं होती। ज्ञानका अभिमान करके भी जीव पशु-जीवन व्यतीत करता है। जीव और ईश्वर आश्रित और आश्रय, दास और प्रभु आदि सम्बन्धोंसे युक्त हैं।'

'भक्तके दास्यभावमें भेद-भक्ति सदा संवर्धित होती रहती है—

ताते नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर॥

(श्रीरामच० मा० ७।७८।२)

'दशरथनन्दनके विषयमें मैं अज्ञानी था। प्रभुने कृपा करके उस मोहको दूर कर दिया। बाल-चापल्यवश वे मुझको पकड़नेके लिये दोनों हाथ फैलाते हैं। मैं उड़ जाता हूँ। कहाँ जाऊँगा! जिधर ही जाता हूँ, देखता हूँ कि श्रीरामका फैला हुआ हाथ वहाँ मौजूद है। ब्रह्मलोकतक उड़कर जानेपर भी उसका मैं छोर नहीं पाता। देखता हूँ, मुझसे केवल दो अंगुल दूर श्रीरामका वह हाथ है।

ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात॥

(वही, ७।७९ क)

'सातावरण-भेद करके भी मैंने कहीं स्थान न पाया। अन्तमें देखा कि श्रीरामके उदरमें अनन्त ब्रह्माण्ड विराजित हैं। उसके भीतर ही कोसलपुरी अयोध्या है। मैं भी दर्शकरूपमें वहाँ हूँ और राम मेरी मुग्धावस्था देखकर हँसते हैं। जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती, ऐसी बहुत कुछ बातें देखनेको मिलीं श्रीरामके उदरके भीतर। मैं व्याकुल हो गया। श्रीरामने मेरी अवस्था देखकर मुझे मोह-मुक्त कर दिया। अपनी अहैतुक कृपाकी माधुरीसे सिक्त कर दिया'—

कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा॥

(वही, ७।८२।१)

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु एक बार शान्तिपुरमें श्रीअद्वैतके घर थे। चारों ओर बहुत-से भक्त थे, उनमें श्रीराम-भक्त मुरारिगुप्त भी थे। वे श्रीरामकी महिमाका वर्णन करते थे। महाप्रभु भक्तकी वाणीसे श्रीरामदर्शनका आनन्द प्राप्त करते थे। वे कहा करते थे—'मुरारि! अपने मुखसे श्लोक उच्चारणकर श्रीराम-दर्शनका आनन्द प्रदान करो।' मुरारिगुप्त कहते थे—

इसमें बताया गया है कि दसवें महीने देवकीका गर्भ पूर्ण हो गया। गर्भ वायुसे पूर्ण हो गया, पर भगवान् उस वायुसे निर्लिप्त रहे और देवकीके हृदयप्रदेशमें उन्होंने अपना अधिष्ठान बनाया।

अब देवकीके प्रसव-समयका वर्णन सुनिये—

एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्रपात देवकी सती।
निस्ससार च वायुश्च देवकीजठरात् ततः॥
(वही ७१)

देवकीके पेटसे वायु निकल गयी।

तत्रैव भगवान् कृष्णो दिव्यरूपं विधाय च।
हृत्पद्मकोषाद् देवस्या हरिराविर्बभूव ह॥'
(वही ७२)

'उसी समय भगवान् देवकीके हृत्पद्मकोषसे दिव्यरूपमें प्रकट हो गये।'

तभी भगवद्गीतामें भगवान् कृष्णने उक्त भाष्यका सूत्र लिखा है—

'जन्म कर्म च मे दिव्यम्।' (४।९)

यहाँ भगवान्का जन्म 'दिव्य' बताया गया है। यही 'अवतार' होता है। श्रीमद्भागवतमें भी स्पष्ट किया गया है—

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।
(१०।१४।२)

यहाँ भी भगवान्के शरीरको 'अभौतिक' बताया गया है। इस रूपमें पुराणने पूर्व कहे 'अजायमानो बहुधा विजायते'—इस वेदमन्त्रांशका अविकल अनुवाद दिया है।

(४) अन्य भी एक वेदमन्त्र देख लीजिये—

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः, पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।

स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः। (यजु०, माध्य० ३२।४)

इस मन्त्रका भी यही अभिप्राय है। इसमें भी 'जनः' धातुका अर्थ प्रकटी भाव है—

'जनी प्रादुर्भावे' (सि० को० से०)

इन्हीं वेदमन्त्रोंका आशय भगवद्गीतामें भी स्पष्ट कहा गया है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
(४।६)

यह प्रसिद्ध अवतारतत्त्व-प्रदर्शक पद्य है।

(५) परमात्माने वेद ऋषियोंको दिया। ऋषियोंमें ब्राह्मणोंने वेदोक्त धर्मका प्रचार सारे संसारके हृदयभूत केन्द्र भारतवर्षमें किया। यह श्रव्यकाव्य था। परंतु श्रव्यकाव्यका प्रभाव जनतापर वैसा नहीं पड़ता, जैसा दृश्यकाव्यका।

'सत्यं वद, धर्मं चर।' (कृष्णयजुर्वेदान्तर्गत तैत्तिरीयोपनिषद् १।११।१)

—वेदने यह आदेश दे दिया, परंतु श्रव्यकाव्यमयी इस वैदिक आज्ञाका साधारण जनतापर, कहो, क्या प्रभाव पड़ सकता था।

पर जब इसी श्रव्यकाव्यका अर्थ दृश्यकाव्य (नाटक आदि) द्वारा 'सत्यहरिश्चन्द्र' आदि नाटकके रूपमें दिखलाया जाता है, तब उसका प्रभाव साधारण जनतापर भी ठीक-ठीक पड़ता है और जनता उसके अनुकरणार्थ उद्यत भी हो जाती है। इसी 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटकसे श्रीमोहनदास गाँधी पहले सत्यप्रिय एवं कर्मवीर बने, फिर 'महात्मा' तथा 'विश्ववन्द्य' कहलाये।

परमात्माने भी यही किया, केवल हमें अपना श्रव्यकाव्य वेद ही नहीं सौंपा, बल्कि उन वेदके सिद्धान्तोंका स्वयं अभिनय करके भी हमें सिखलानेके लिये दिखलाया।

वेद परमात्माके लिये कहता है—

'त्वं हि नः पिता वसो। त्वं माता'
(ऋ० ८।९८।११)

इस मन्त्रसे उस देवको परम पिता और परम माता माना गया है।

परंतु उस परम पिताने भी हमें शिक्षा देनेके लिये अपने माता-पिता भी बनना स्वीकार किया और फिर उन वेदके सिद्धान्तोंका मर्म भी स्वयं अभिनय करके हमें सिखलाया कि—

'अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।'
(अथर्व०, शौ० सं० ३।३०।२)

भगवान्ने इन्हीं वैदिक सिद्धान्तोंका अनुकरण करनेके लिये स्वयं अवतार लिया, जिससे पुत्र पिताके व्रतों-नियमों एवं प्रतिज्ञाओंका पालन करनेवाला बने। उसकी प्रत्येक आज्ञाको पूर्ण करनेवाला बने। माताकी, चाहे वह विमाता

ही क्यों न हो, अन्तर्मनसे दी गयी धर्मसम्मत आज्ञाओंको पूर्ण करनेवाला बने, उससे विमनस्क होकर न रहे।

पत्नी पतिका आदर करनेवाली और उसके एक एक संकेतके अनुसार चलनेवाली, पतिके सुखमें सुखिनी और उसके दुःखमें दुःखिनी, पतिसे मधुर बोलनेवाली, उसके अप्रिय व्यवहार करनेपर भी मनसे भी पतिका अनिष्ट न सोचनेवाली, शान्तिप्रिय बने। रामरूपमें अवतार लेकर भगवान्ने इन्हीं वैदिक सिद्धान्तोंका शिक्षार्थ अभिनय करके दिखलाया।

वेदमें यह भी बताया गया है—

'मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।'
(अथर्व० ३ । ३० । ३)

भाई भाईसे द्वेष न करनेवाला बने। छोटा भाई बड़े भाईको पितृस्थानीय मानकर उसके इच्छानुसार चलनेवाला और बड़ा भाई छोटे भाईके दोषोंको न देखनेवाला, उसके अप्रिय कार्य करनेपर भी उसके साथ बुरा व्यवहार न करनेवाला बने। बहिन बहिनसे प्रेम करनेवाली बने। अपनी बहिनकी सौभाग्यवृद्धि देखकर उससे कुढ़ी न रहे। ईर्ष्यालु न बने।

कृष्णयजुर्वेदमें भी कहा है—'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव' (तैत्तिरीय उपनिषद् १ । ११ । २)। पुत्र माता-पिताका, शिष्य आचार्यका देवताकी भाँति सत्कार करनेवाला बने। उनकी इहलोक एवं परलोकमें सुख देनेवाली अन्तर्मनसे दी गयी धर्म्य आज्ञाओंको पूर्ण करनेवाला बने। वेदके इसी भव्य निराकार उपदेशको मूर्तरूप देनेके लिये निराकार भगवान्ने स्वयं दशरूप भी ग्रहण किया। भगवान्ने रामावतारका अभिनय दिखलाकर उसका यह उत्तम परिणाम दिखलाया—'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव।'

(६) परमात्मा देवोंका भी देव है, यह सभी सम्प्रदाय कहते हैं तथा मानते हैं। पर उसी देवदेवने ऋग्वेदके आरम्भमें 'अग्निमीळे पुरोहितम्' (१ । १ । १) द्वारा अग्निदेवकी स्तुति एवं उपासना की। क्या अपने लाभके लिये? नहीं नहीं, हमें शिक्षा देनेके लिये। उन्होंने समुद्रके पार जानेके लिये 'नमः कपर्दिने नमो भवाय च' (अथर्व० ७ । ९२ । १) अग्निस्वरूप महादेवकी पूजा की। क्या अपने लाभके लिये? नहीं-नहीं, हमारे लाभ, कल्याणके लिये तथा हमें सिखलानेके लिये। उसका नाम रक्खा 'रामेश्वर'। श्रीरामको उसका अर्थ इष्ट था—'रामस्य ईश्वरः' (रामका स्वामी), श्रीमहादेवजी उसका अर्थ इष्ट था—'राम ईश्वरो यस्य' (राम हैं स्वामी जिसके)। इस प्रकार साम्प्रदायिक विवाद मिट गया।

श्रीमद्भागवत (५ । १९ । ५) तथा श्रीमद्देवीभागवत (८ । १० । १५) पुराणोंमें भी आता है—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद् रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥

'परमात्माका मनुष्यावतार केवल राक्षसोंको मारनेके लिये ही नहीं होता, किंतु मनुष्योंके सिखलानेके लिये भी होता है। नहीं तो अपने-आपमें रमण करनेवाले भगवान्‌को, भला सीताके वियोगमें दुःख क्यों हो? यह सब मनुष्योंको यह सिखलानेके लिये होता है कि अपनी स्त्रीके दुःखसे दुःखी बनो। उसका प्रतीकार करो। भारतीय स्त्रीके दुःखदाते राक्षसकी ईंट-से ईंट बजा दो।'

(७) यद्यपि परमात्मा निजस्वरूपमें सर्वव्यापक होता है तथा उसका एकदेशमें अवतरण तथा अयोध्या एवं लङ्का आदिमें गमनागमन साधारण जनोंमें संशय उत्पन्न कर देता है, तथापि सूक्ष्मदर्शियोंको यहाँ कोई भ्रम नहीं होता। वे जानते हैं कि अग्निकी भाँति संघर्षादि कारणसे यह एकदेशमें प्रकट हो जाता है। एकदेशमें प्रकट हो जानेपर भी उसकी सर्वव्यापकतामें कुछ भी बाधा नहीं पड़ती और न उसके स्वरूपमें कोई न्यूनता आती है—'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।' (बृहदारण्यक ५ । १ । १) 'पूर्णसे पूर्ण अंशके निकल जानेपर भी वह पूर्ण ही रहता है।'

यदि अग्नि कहीं प्रज्वलित हो उठती है, तो उसका अन्य स्थलोंमें अभाव नहीं हो जाता। उसकी सर्वव्यापकतामें भी कोई न्यूनता नहीं आती और वह प्रज्वलित अग्नि उस सूक्ष्म, निराकार अग्निसे कोई भिन्न भी नहीं हो जाती या नहीं रहती।

आकाश भी सर्वव्यापक होता है। वह घड़ेमें भी घटाकाशरूपमें रहता है। कोई पुरुष घड़ेको लेकर भाग जाता हो, तो घड़ेके साथ घटाकाश भी भागता हुआ मालूम होता है। घड़ेके अनुसार उसका परिमाण भी छोटा हो जाता है। पर ये सब स्थूल दृष्टियाँ हैं। सूक्ष्मदर्शी जानते हैं कि आकाशमें घड़ा आ रहा है, आकाश नहीं भाग रहा है।

सिनेमामें लोग भागते हुए मालूम होते हैं; वस्तुतः वे भागते नहीं होते, चित्रपर चित्र एक साथ प्रकट हो गये होते हैं, वही पुरुषका भागना मालूम पड़ता है। रातको मोटरकी तीनगीपर बिजली दौड़ रही मालूम होती है; पर वहाँ बिजली उसी रूपमें रहती है, केवल भ्रम मात्र रहा होता है। इस प्रकार विचार-दृष्टि रखनेपर कूटस्थ सर्वव्यापी परमात्माके गमनागमनकी वास्तविकता ज्ञात हो जाती है कि वह भ्रममात्र है।

लोगोंको शङ्काएँ या भ्रम कुछ स्थूलदर्शिता, कुछ अल्पज्ञता या अज्ञानवश, कुछ अपनी एकदेशीय साम्प्रदायिक दृष्टिके दुराग्रहवश हुआ करते हैं। सनातनधर्मकी सूक्ष्मतम दृष्टि स्वीकृत करनेपर सभी प्रकारकी शङ्काएँ एवं कुतर्क हट जाते हैं। अस्तु!

(८) निराकाररूपमें यद्यपि अग्नि सर्वत्र है, तथापि वह सर्वसाधारणके उपयोगमें नहीं आ सकता। प्रज्वलित-अप्रज्वलित अग्नियोंमें वास्तवमें कोई भेद नहीं होता; परंतु प्रज्वलित अग्नि ही सर्वसाधारणके काममें आता है और सबके द्वारा सेवनीय होता है। यह ठीक है कि सूक्ष्ममें स्थूलकी अपेक्षा अधिक शक्ति होती है; पर संसारी प्राणी स्थूल होनेसे वे सूक्ष्मसे काम नहीं ले सकते। उन्हें रोटी पकानी होती है, उसे वे सूक्ष्म अग्निसे नहीं पका सकते; इसके लिये उन्हें स्थूल अग्नि अपेक्षित होती है।

यही बात भगवान्के लिये भी माननी चाहिये। अग्निकी भाँति भगवान् भी प्रकट होकर यद्यपि फिर पृथिवीसे तिरोभूत हो जाते हैं, तथापि दिव्यतावश उनकी वह प्रकट हुई शक्ति इस पृथिवीपर अक्षुण्ण रहती है और वह शक्ति वेदमन्त्र-प्रतिष्ठापित पार्थिव मूर्तिद्वारा विशेष आयतनमें जुटी जा सकती है। वही जुटी हुई प्रज्वलित शक्ति भक्तोंके मनोरथों-को पूर्ण करती है और अधिकारियोंद्वारा उसकी उपासना की जा सकती है।

(९) परमात्माके निराकार होनेका तात्पर्य यह नहीं है कि उसका कुछ भी आकार नहीं है। वैसी मान्यतासे परमात्मामें शून्यता आ जायगी। वस्तुतः निराकारका अर्थ है—अनिर्वचनीय आकारवाला। अत्यन्त सूक्ष्मतावश हम उसे न देख सकते हैं, न उसका किसी भी भाँति वर्णन कर सकते हैं, न उसे जान पाते हैं; अतः वह निर्विकल्पक ज्ञानद्वारा ही ज्ञात होता है। इसी अनिर्वचनीय आकारके कारण उसे 'निराकार' कहा जाता है, आकारशून्य होनेके कारण नहीं।

आर्यसमाजके संस्थापक श्रीस्वामी दयानन्दजीने परमात्माको 'निराकार' माना है। उन्होंने यह लिखा है कि आकाश और जीवात्मा भी निराकार हैं, किंतु उनका आकार परमात्माकी अपेक्षा कुछ स्थूल है; परंतु परमात्मा तो इनसे भी सूक्ष्म—सूक्ष्मतर है। इससे स्पष्ट हो गया कि परमात्माका आकार तो है, पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म है।

इसी कारण ही सनातनधर्म परमात्माको साकार भी कहता है। लेकिन स्पष्ट है कि वह लौकिक आकार नहीं, भौतिक आकार नहीं, किंतु दिव्य एवं अनिर्वचनीय आकार है। 'निराकार'में 'निर्' 'अनुदरा कन्या,' 'अनमित्रो राजा,' 'अजातशत्रुर्युधिष्ठिर' आदिके 'नञ्' की भाँति अल्प अर्थवाला अथवा—अस्फुट अर्थका वाचक ही होता है। ऐसी स्थितिमें परमात्माकी निराकारता अपेक्षाकृत हुई, आकारके सर्वथा अभावकी द्योतक नहीं।

(१०) अवतारवादके विरुद्ध यह कहा जाता है कि परमेश्वर सबसे बड़ा एवं निराकार है, वह मनुष्य आदिके लघु शरीरों और अत्यन्त लघु गर्भाशयोंमें कैसे प्रवेश कर सकता है? अतः परमात्माका अवतार सम्भव नहीं।

इसपर जानना चाहिये कि आकाश भी सभी संसारी वस्तुओंसे महान् है और निराकार है तथा ईश्वरकी अपेक्षा महास्थूल है; क्योंकि—परमात्माके लिये 'सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति' कहा गया है। इस प्रकार परमात्माकी अपेक्षा स्थूल आकाश भी जब घट आदि छोटे-छोटे पदार्थोंमें पूर्णतया प्रविष्ट होकर घटमें 'घटाकाश' नामसे तथा मठ आदिमें 'मठाकाश' आदि नामोंसे प्रसिद्ध होता है, घट आदि उपाधिके हटनेसे उस आकाशका नाश नहीं होता, तब आकाशसे भी महासूक्ष्म परमेश्वर यदि माताके गर्भाशयमें प्रविष्ट हो जाता है—'प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते' (यजु॰ माध्य॰ २१। १९)—इस वेदमन्त्रानुकूल—जिसकी व्याख्या हम पहले ब्रह्मवैवर्तपुराणके वचनसे कर चुके हैं—दिव्यरूपसे अवतीर्ण हो जाता है तो इसमें आश्चर्य क्या!

धर्मको श्रीरामसे ...
प्रकारसे रक्षा
पशु, पक्षी

अर्थ प्रकरणानुसार होता है, वैसे ही 'रामः' का अर्थ भी 'कृष्णवर्णः श्रीरामः' हो जाता है। पूर्व समयमें व्यवहार तथा गुण' के अनुसार श्यामवर्ण होनेसे उनके राम-कृष्ण आदि नाम भी गुणानुसार रखे जाते थे।

(१३) 'प्र तद् दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे' (ऋ० सं० १०।९३।१४)—इस मन्त्रमें राजाओंके नामोंमें 'राम' का नाम भी आया है। तब इससे वे ही तो 'रघुपति राघव राजा राम' सिद्ध हुए। 'असुरे' यह रामका विशेषण शब्द है। विशेषण सदा यौगिक हुआ करते हैं। 'असुर'का यौगिक अर्थ 'बलवान्' होता है, अतः यहाँ 'बलवान् राजा राम' वेदमें इष्ट हुए।

'वरुण! असुर!' (ऋ० १।२४।१४)—यहाँ परमदेवताको भी 'बलवान्' अर्थका विचार करके ही 'असुर' कहा गया है। रावण-कुम्भकर्ण-जैसे दुर्दान्त राक्षसोंको मारनेमें श्रीरामकी यशस्विता स्पष्ट है। अर्वाचीन विचारोंको रखनेवाले रावबहादुर श्रीचिन्तामणि वैद्यने भी पूर्वोक्त मन्त्रमें श्रीरामकथाका बीज माना है। जैकोबी आदि पाश्चात्य विद्वान् भी रामायणीय कथाके बीज वेदमें मानते हैं।

रामायणीय कथाके पात्र भी वेदोंमें संकेतरूपसे मिलते हैं। 'अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या। तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः' (अथर्व १०।२।३१) इस मन्त्रमें 'हिरण्यय कोश' शब्दसे 'श्रीराम' इष्ट हैं। 'स्वर्गः' का अर्थ है—'स्वः—स्वर्गं गच्छतीति।' यह कथा श्रीरामके वैदिकलीला-संवरणके प्रसङ्गमें उत्तरकाण्डमें आयी है। इस मन्त्रमें 'अयोध्या' नगरीका वर्णन है।

'सरयु' (ऋ० १०।६४।९) इसमें अयोध्या-नगरीकी नदी सरयूका संकेत है। सरयू नदीका अयोध्याके साथ सम्बन्ध है, उसीके तटपर उक्त नगरी बसी हुई थी। तब अयोध्यानगरी भी सरयूसे सिद्ध है। उसे मनुने बनाया था। मनुका भी वेद (ऋ० १।५।५-६) में स्पष्ट उल्लेख है। जब वेदमें 'सरयू' नदीका वर्णन है, तब वेदकी 'अयोध्या' नगरी भी वही सरयूके तटवाली सिद्ध हो गयी। इससे वेद पीछेके सिद्ध नहीं हो जाते। 'उत्तररामचरित'में यह ठीक ही कहा है—

'ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।' (१।१०)

आद्य ऋषियों (वेदों) की वाणी पदसे चलती है—जैसे 'अयोध्या', 'दशरथ', आदि शब्द। और इन नामोंके द्वारा बोधित स्थान, व्यक्ति आदि पीछे अपने समयपर होते रहते हैं। इस प्रकार 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता' (ऋ० सं० १०।१९०।३)—यहाँ वेदमें सूर्य-चन्द्रमा आदिका नाम पहले आया है। पर वे वेदमें पीछे अपने समयपर हुए। भगवान्के नित्य होनेसे उनके अवतार भी 'यथा पूर्वमकल्पयत्' नित्य ही हुआ करते हैं। इसलिये 'न्यायमुक्तावली'में 'नृसिंह' को 'जाति' इसी रूपमें माना गया है। वेदोंमें आये हुए विशेष शब्द इसी कारण प्रवाह-रूपमें नित्य माने जाते हैं। अतः इन शब्दोंकी यौगिकतासे तोड़-मोड़ करना व्यर्थ-सा है।

'चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः' (ऋ० सं० १।१२६।४)

यहाँ राजा दशरथका संकेत है। जो वेदभाषिणी सरयू एवं अयोध्याको जानता है, वही दशरथ और रामको भी जानता है। आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक अर्थोंका भी वेदमें सद्भाव सर्वप्रमाणित है।

'अर्वाची सुभगे! भव सीते! वन्दामहे त्वा'

(ऋ० सं० ४।५७।६)

यहाँ सीताकी वन्दना (नमस्कार) की गयी है। यदि यहाँ 'सीता'का केवल 'लाङ्गलपद्धति' (हलकी रेखा) ही अर्थ रखा जाय तो उसे नमस्कार करनेसे 'जड़पूजा'का प्रसङ्ग उपस्थित होगा। हमारे अनुसार तो लाङ्गल (हल) की अधिष्ठात्री देवता श्रीसीता ही इष्ट हैं, जैसा कि वाल्मीकिरामायणमें भी श्रीसीताका आविर्भाव लाङ्गल (हल) से स्वीकृत किया गया है। तभी तो उसका नाम भी 'सीता' रखा गया था—'यथा नाम तथा गुणः।' जनकजीकी भी उक्ति है—

अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः॥
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता।

(१।६६।१३-१४)

सूर्यमण्डलाधिष्ठाता देवको भी 'सूर्य' कहा जाता है। वैसे ही सीताधिष्ठात्री देवताको भी 'सीता' कहा जाता है। इसी कारण उत्तरकाण्डके अन्तमें भी सीता उसी पृथिवीमें प्रविष्ट हुई दिखलायी गयी हैं।

'इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु' (ऋ० सं० ४।५७।७) यहाँ श्रीरामद्वारा सीताकी निग्रह-कथा तथा पूषा (अग्नि) द्वारा उस सीताको वापिस लौटाना सूचित

बालरूप श्रीराम

पदमें माधुरीका निर्झर झरता रहता है[8]। उनका वह परम पद अत्यन्त प्रकाशमान है[9]। श्रीविष्णु पूजनीय हैं, परम वीर हैं। आप सब उनकी प्रशंसा कीजिये[10]। ये भक्तोंके रक्षक हैं, सौम्य हैं और कामनाओंके परिपूरक हैं[11]। ये नवयुवक हैं। आवाहन करनेपर सज्जन-संनिधिमें आनेको दौड़ा करते हैं[12]। ये आदिदेव हैं, जगत्की रचना करनेवाले हैं, नित्य-किशोर हैं, रमाकान्त हैं। जो उनकी सेवामें (पत्र-पुष्पादि) समर्पण करता है एवं जो उन महनीयके जन्म और कर्मका प्रवचन करता है, वह उनके संकीर्तनमें, गुणानुवादमें निमग्न हो जाता है[13]। यों कहकर ऋषि अपने समीप उपस्थित भक्तोंसे कहते हैं कि ऐ स्तुति करनेवाले महानुभावो! इन श्रीविष्णुके नामका कीर्तन करते रहो[14]। तत्पश्चात् ये स्वयं प्रभुसे निवेदन करते हैं—हे विष्णो! आप महान् हैं, महनीय हैं। हम सब आपकी दयादृष्टिका आश्रय लेते हैं[15]।

मित्रावरुणतनय ब्रह्मर्षि वसिष्ठने तो यहाँतक कह दिया—हे विष्णो! हे देवाधिदेव! आपकी महिमाका पार न तो अबतक उत्पन्न किसी भी व्यक्तिने पाया है और न कोई पा सकेगा, जो अब जन्म ले रहा है[16]।

विष्णुभगवान्‌की इस वेदोक्त उदात्त महिमाको कतिपय जन सूर्य-महिमा कह दिया करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि इन्हीं ब्रह्मर्षियोंके सूक्तोंमें एक स्थानपर विष्णुको सूर्य नहीं, अपितु सूर्यका स्रष्टा बताया गया है[17]। वे 'भुमज्ञानि' शब्द-पर भी ध्यान नहीं देते, जिसका अर्थ ऊपर 'रमाकान्त' किया गया है और जो एकमात्र स्पष्ट ही विष्णुका सूचक है। न जाने वे 'विष्णुके परम पद'का किस प्रकार 'सूर्यमण्डल' अर्थ कर लेते हैं। परम पदमें मधुके उत्स (निर्झर) और देवयु (भक्त) जनोंके सानन्द निवासका प्रतिपादन हुआ है, जो दहनात्मक तिग्म सूर्य-मण्डलमें सम्भव नहीं है। इसी प्रकार वे उस आर्य सूक्तिको भी भूल जाते हैं, जिसमें भगवान् विष्णुसे प्रार्थना की गयी है कि 'आप अपने दक्षिण और वाम करकमलोंद्वारा हमें सम्पत्ति प्रदान कीजिये।'

वेदमें श्रीविष्णुका परम-पद इस त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे परे बताया गया है[18]। वहाँ पुण्यात्मा ही जा सकते हैं और वहाँ शङ्ख-चक्र-गदाधर भगवान्‌का स्मरण होता रहता है। वह मोक्षधाम है[19]।

श्रीविष्णुका एक और नाम है 'पुरुष'—

'इमे वै लोकाः पूः, अयमेव पुरुषो योऽयं पवते सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात् पुरुषः।'

पुरुषके एक चरणमें, एक अंशमें, यह समस्त सृष्टि विद्यमान है। तीन चरण प्रकृतिसे परे हैं।

श्रीविष्णुभगवान्‌का अवतार

परम पुरुष विष्णुभगवान्‌के एक चरणमें जो त्रिगुणात्मक विश्व ब्रह्माण्ड है, उन्हें उनकी एकपाद्-विभूति कहा जाता है; और जो सच्चिदानन्दमय तीन चरण हैं, उन्हें 'त्रिपाद्-

---

८. तरस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥
(तत्रैव १। १५४। ५)

९. अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि॥
(तत्रैव १। १५४। ६)

१०. प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत।
(१। १५५। १)

११. इरज्यन्ता भुरण्यतो ... सौम्यानुगाः।
(तत्रैव १। १५५। ४)

१२. युवा कुमारः प्रत्येत्याहवम्॥
(तत्रैव १। १५५। ६)

१३. यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत् सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत्॥
(तत्रैव १। १५६। २)

पूर्व्याय—अनादिदेवाय। वेधसे—विधात्रे। सुमज्जानये—सुष्ठु या माद्यन्ती स्वयं माद्यन्ती हर्षयन्ती वाऽस्मान् भक्तजनान् इति। सुमत् स्वयमेव रमा। सा जाया पत्नी यस्येति सुमज्जानिः। पत्नीवीत्यं जायाया निङ्। ददाशति—निवेदयति। जातमस्य। महि—परिमाणम्। ब्रवत्—ब्रूयात्। इति टीका

१४. तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विवक्तन ...॥ (तत्रैव १। १५६। ३)

१५. महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे॥
(तत्रैव १। १५६। ३)

१६. न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप।
(तत्रैव ७। ९९। २)

१७. जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम्।
(तत्रैव ७। ९९। ४)

१८. भूयसस्य रजसः पराके। (तत्रैव ७। १००। ५)

१९. (अ) यत्र तत् परमं पदं विष्णोरन्ते महीयते।
देवैः सुकृतकर्मभिस्तन्मामम्नुत इति।
(आ) यत्र तद् विष्णुर्देवाने सद्मसमितिम्।
यत्र शङ्खचक्रगदाधरस्मरणं मुक्तिस्तन्मामम्नुत इति॥
(ऋक्परिशिष्ट १०। १। ५)

मत्स्यरूप-धारण किया था, उनमें यह तो नहीं बताया था कि उस समय मनुष्य आदि नहीं थे। यदि पशु-पक्षी-मनुष्य आदिकी उत्पत्तिसे पूर्व ही भगवान् मत्स्यरूपमें प्रकट होते, तब तो विकासवादियोंका तर्क कुछ अर्थ रखता, किंतु पुराणोंमें तो हम मत्स्यावतारकी कथाको इस प्रकार पढ़ते हैं कि 'एक दिन कृतमाला नदीके तटपर सत्यव्रत नामक एक राजर्षि तर्पण कर रहे थे। इतनेमें ही एक छोटी-सी मछली उनकी अञ्जलिमें आ गयी। राजाने उसे जलमें छोड़ दिया। परंतु मछलीकी प्रार्थनासे वे उसे अपने कमण्डलुमें रखकर आश्रमको चले आये। रात ही-रातमें वह मछली इतनी बड़ी हो गयी कि वह पात्र उसके लिये पर्याप्त न रहा' इत्यादि। इस पौराणिक आख्यानसे तो स्पष्ट ही मत्स्यरूपमें भगवान्‌के प्रकट होनेसे पूर्व सत्यव्रत नामक राजाके अस्तित्वका उल्लेख है। ऐसी दशामें मत्स्यावतारसे विकासवादकी कल्पना करना नितान्त असंगत है।

मत्स्यावतार सृष्टिके प्रारम्भमें नहीं हुआ था, अपितु सृष्टिके प्रारम्भके बहुत पीछे—चाक्षुष और वैवस्वत मन्वन्तरोंके मध्यमें—

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसम्प्लवे।
नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम्॥
(श्रीमद्भा० १।३।१५)

'चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें जब सारी त्रिलोकी समुद्रमें डूब रही थी, तब उन्होंने मत्स्यके रूपमें दसवाँ अवतार ग्रहण किया और पृथ्वीरूपी नौकापर बैठाकर अगले मन्वन्तरके अधिपति वैवस्वत मनुकी रक्षा की।'

प्राचीन परम्पराके अनुसार भगवान्‌ने कूर्मरूप 'चाक्षुष' नामक मन्वन्तरमें धारण किया था। कूर्मावतारके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतके निम्न-निर्दिष्ट पद्य मननीय हैं—

षष्ठश्च चाक्षुषः पुत्रश्चक्षुषो नाम वै मनुः।
पूरुपूरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः॥
× × ×
तत्रापि देवः सम्भूत्यां वैराजस्याभवत्सुतः।
अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः॥
पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा।
भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः॥
(८।५।७, ९-१०)

'छठे मनु चक्षुके पुत्र चाक्षुष थे। उनके पूरु, पूरुष, सुद्युम्न आदि कई पुत्र थे। ×××भगवान्‌ने उस समय भी वैराजकी पत्नी सम्भूतिके गर्भसे 'अजित' नामका अंशावतार ग्रहण किया था। उन्होंने ही समुद्र-मन्थन करके देवताओंको अमृत पिलाया था तथा वे ही कच्छपरूप धारण करके मन्दराचलकी मथानीके आधार बने थे।'

इस प्रकार मत्स्यावतारकी अपेक्षा कूर्मावतार प्राचीन सिद्ध होता है और इस सिद्धिसे अवतारोंमें विकासवादकी कल्पना खण्डित हो जाती है।

वराहावतार तो कूर्मावतारसे भी प्राचीन है; क्योंकि भगवान्‌ने वराहरूप प्रथम (स्वायम्भुव) मन्वन्तरमें धारण किया था। इस सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धके त्रयोदशाध्यायके पद्य अनुशीलनीय हैं। इस विवेचनसे हम इस निर्णयपर पहुँचते हैं कि भगवान् विष्णुका वराहावतार प्रथम स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें हुआ था, कूर्मावतार छठे चाक्षुष-मन्वन्तरमें और मत्स्यावतार छठे तथा सातवें मन्वन्तरके बीचमें। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टिसे भगवान्‌के प्रकट होनेका क्रम हुआ—वराह, कूर्म और मत्स्य। अतः अवतारोंमें विकासवादकी कल्पना सर्वथा अयथार्थ ही है।

वेदमें रामावतार

रामावतारकी कथा संस्कृत साहित्यमें अनेक स्थलोंपर मिलती है। सर्वप्रथम वेदने इसका निरूपण किया है—

भद्रो भद्रया सचमान आगात्
स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्
रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥
(ऋ० सं० १०।३।३; सामवेद १५४८)

इस मन्त्रके चार चरणोंमें राम-कथाके मुख्य चार अंशोंका उल्लेख किया गया है। पहले चरणमें बताया है कि भगवान् रामभद्र पतिव्रता सीताजीके साथ (वनमें) आये। राम पिताजीके आदेशका पालन करनेके कारण 'भद्र' हैं अर्थात् सत्पुत्र किंवा महापुरुष हैं। सीताजीने अयोध्याके राजसुखोंका परित्याग करके पतिदेवके साथ कष्ट सहन किया, अतएव वे भी 'भद्रा' अर्थात् पतिव्रताओंकी मुकुट-मणि हैं।

दूसरे चरणमें कहा गया है कि पीछेसे छिपकर दुराचारी रावण बहिनके सम्मुख आया। रावण विद्वान् था। उसने यह नीति अवश्य पढ़ी होगी कि—

'हे महादेव ! आपके इस क्षेत्रके अन्तर्गत किसी भी स्थानमें कृमि-कीट-जैसे प्राणी भी शीघ्र ही मुक्त हो जायँगे, इसमें अन्यथाभाव नहीं है। आपके इस 'अविमुक्त' क्षेत्रमें सभी प्राणियोंको मुक्तिकी प्राप्ति करानेके लिये प्रस्तरकी प्रतिमा आदिमें मेरा सांनिध्य रहेगा। हे शिवजी ! जो व्यक्ति इस क्षेत्रमें भक्तिपूर्वक मन्त्रोच्चारण करते हुए मेरा अर्चन करेगा, मैं उसको ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त कर दूँगा। जो मानव आपसे अथवा ब्रह्माजीसे षडक्षर-मन्त्र प्राप्त करते हैं, वे जीवनमें मन्त्रसिद्ध होकर अन्तमें मुक्त होकर मुझे प्राप्त कर लेते हैं। आप स्वयं जिस-किसी मरणासन्न व्यक्तिके दाहिने कानमें मेरे मन्त्रका उपदेश कर देंगे, हे शंकर ! वह मुक्त हो जायगा।' इसी उपनिषद्में आगे चलकर श्रीरामकी भगवत्ता-का प्रतिपादन इन शब्दोंमें किया गया है—

ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्द आत्मा।
यः सच्चिदानन्दाद्वैतैकचिदात्मा भूर्भुवःसुवस्तस्मै वै नमो नमः।
(५ गद्यांश)

'ॐ जो सर्वत्रसिद्ध श्रीरामचन्द्रजी हैं, वे निश्चय ही भगवान् (षड्विध ऐश्वर्यसे सम्पन्न) हैं, अद्वितीय परमानन्दस्वरूप हैं। जो सच्चिदानन्द अद्वितीय एकचित्-स्वरूप हैं, भूः, भुवः, स्वः—ये तीन लोक हैं, उन श्रीराम-चन्द्रजीको निश्चय ही मेरा बारंबार नमस्कार है।'

रामरहस्योपनिषद्में भगवान् रामका ध्यान और उनके मन्त्रोंके जपका विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। उसके चतुर्थ अध्यायके अनुसार सनकादि मुनियोंने हनुमान्‌जीसे श्रीरामके मन्त्रोंके पुरश्चरणकी विधि पूछी थी। हनुमान्‌जीने साधक-के लिये स्नान, मौन, ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, जप, गुरुभक्ति, हवन, तर्पण, ध्यान और मन्त्र-जपकी साङ्गोपाङ्ग विधि बताकर कहा कि 'मन्त्र सिद्ध हो जानेसे मानव जीवन्मुक्त हो जाता है और उसे अणिमादि सिद्धियोंकी भी प्राप्ति हो जाती है।' उन्होंने यह भी कहा कि 'साधकको लौकिक कार्योंकी सिद्धिके लिये, महाविपत्ति पड़नेपर भी, राममन्त्रका प्रयोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि राममन्त्रसे तो दुर्लभ मोक्ष प्राप्त किया जाता है। यदि लौकिक कार्यकी सिद्धिका प्रसङ्ग आ ही जाय तो साधकको चाहिये कि मेरा (हनुमान्‌जी का) स्मरण करे। जो मनुष्य राममन्त्रका प्रतिदिन जप करते हुए भगवान् रामका भक्तिपूर्वक स्मरण करता है, उसके मनोरथोंकी पूर्तिका उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है। मैं रामभक्तोंके भक्तोंकी लौकिक कामनाएँ पूर्ण कर दूँगा। मैं श्रीरामचन्द्र भगवान्‌का कार्य करनेके लिये सदा सावधान हूँ।'

वाल्मीकि-रामायणमें

जब परम पुरुष भगवान् विष्णु महाराज दशरथके प्रासादमें उनके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए, तब वेद भी महर्षि वाल्मीकिके माध्यमसे रामायणके रूपमें अवतीर्ण हुआ—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना॥

आदिकवि वाल्मीकिने ब्रह्माजीके आदेशसे नारदजीसे परामर्श करके दशरथ-नन्दन श्रीरामके लोकपावन चरित्रको २४ हजार श्लोकोंमें निबद्ध किया था। गायत्री मन्त्रके प्रथम अक्षरसे उन्होंने अपने काव्यकी रचनाका प्रारम्भ किया था। जब एक हजार पद्य पूरे हो गये, तब उस मन्त्रके द्वितीय अक्षरसे आगेकी रचना चलायी। अगले एक हजार पद्य लिखे जानेपर गायत्रीके तीसरे अक्षरसे अग्रिम रचनाका प्रसार हुआ। इस प्रकार गायत्रीके २४ अक्षरोंको आदिमें रखकर वाल्मीकिजीने रामायणके २४ हजार श्लोकोंकी रचना की। महर्षि वाल्मीकि भगवान् रामके समकालीन थे। उन्हें समस्त राम-चरित्र विदित था। अन्तर्दर्शी तो वे थे ही। जितने राम चरित्र अबतक लिखे गये हैं, उनमें वाल्मीकि-कृत रामायणकी सर्वाधिक महिमा है।

इस रामायणमें ऐसे अनेक प्रसङ्ग हैं, जिनमें रामचन्द्रजी-की भगवत्ता विशदरूपसे प्रतिपादित हुई है। नीचे कुछेक प्रसङ्ग दिये जा रहे हैं—

देवताओंने जब ब्रह्माजीसे रावणके कुकृत्योंका वर्णन किया और उसके वधका उपाय पूछा, तब ब्रह्माजीने उनसे कहा था कि रावणकी मृत्यु किसी मनुष्यके द्वारा ही होगी। इस उत्तरसे देवताओंको बड़ा संतोष हुआ। तभी शङ्ख-चक्र-गदाधारी, महाद्युतिमान, पीताम्बर-परिवीत, जगत्पति भगवान् विष्णु विनतानन्दन गरुडपर बैठकर वहाँ पधारे। तब देवताओंने उनकी स्तुति की और वे प्रणाम करके बोले—'हे प्रभो ! आप परम तेजस्वी, दानि-शिरोमणि, धर्मात्मा, अयोध्या-नरेश दशरथके पुत्ररूपमें भूमण्डलमें अवतीर्ण होकर युद्धमें रावणका संहार कर दीजिये।'

देवताओंकी इस प्रार्थनाको सुनकर भगवान् बोले, 'अच्छी बात है। भयका परित्याग करो। मैं उस दुराचर्ष

लक्ष्मणजीको अपने साथ सशरीर ही दिव्य धाम लिवा ले गये थे—

> अदृश्यं सर्वमनुजैः सशरीरं महाबलम्।
> प्रगृह्य लक्ष्मणं शक्रो दिवं संविवेश ह॥
>
> (७ । १०६ । १७)

यहाँपर यह बता देना अप्रासङ्गिक न होगा कि श्रीराम जिस प्रकार चिन्मय हैं, उसी प्रकार उनके समस्त परिकर भी दिव्य और चिन्मय हैं। श्रीरामके आयुध धनुष-बाणादितिरिक्त अवसरोंपर पुरुष-विग्रहमें उनकी सेवा-सपर्यामें निरत रहते हैं। वाल्मीकिजीने लिखा है कि रामके अनेक प्रकारके बाण और उनका विशाल धनुष पुरुष-रूप-धारी होकर उनके पीछे-पीछे गये थे—

> शरा नानाविधाश्चापि धनुरायतमुत्तमम्।
> तथाऽऽयुधाश्च ते सर्वे ययुः पुरुषविग्रहाः॥
>
> (७ । १०९ । ७)

भरतजी पाञ्चजन्यके अवतार थे, लक्ष्मणजी शेषके और शत्रुघ्नजी सुदर्शनके—

> कैकेय्यां भरतो जज्ञे पाञ्चजन्यांशसम्भवः।
> ....
>
> अनन्तांशेन सम्भूतो लक्ष्मणः परवीरहा॥
> सुदर्शनांशाच्छत्रुघ्नः संजज्ञेऽमितविक्रमः।
>
> (पद्मपुराण ६ । २४२ । ९४, ९५, ९६)

श्रीरामके सहायक ऋक्ष और वानर भी साधारण रीछ और बंदर नहीं थे। वे सब विभिन्न देवताओंके अवतार थे। वे कामरूपी थे, अर्थात् सिद्ध-योगियोंके समान इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। अयोध्यामें आकर वे मनुष्यरूप धारण करके, सब प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत होकर, हाथियोंपर चढ़कर चले थे—

> नव नागसहस्राणि ययुरास्थाय वानराः।
> मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिताः॥
>
> (वा० रा० ६ । १२८ । ३२)

हनुमान्‌जीने लङ्का-प्रवेशके समय स्वल्प आकार बना लिया था और लङ्का-दहनके समय अत्यन्त विशाल।

श्रीरामचन्द्रजीके निज धाम पधारनेके अनन्तर सभी ऋक्ष-वानर अपने-अपने मूल-देव-रूपोंमें लीन हो गये थे। केवल विभीषण और हनुमान्‌जी भगवान् रामकी आज्ञासे भूमण्डलपर रहे हैं। कालिदासके अनुसार विभीषणजी दक्षिण-गिरि (त्रिकूट) पर और हनुमान्‌जी उत्तर-गिरि हिमालय प्रदेश (किम्पुरुष वर्ष) में हैं—

> निर्वर्त्यैवं दशमुखशिरश्छेदकार्यं सुराणां
> विष्वक्सेनः स्वतनुमविशत् सर्वलोकप्रतिष्ठाम्।
> लङ्कानाथं पवनतनयं चोभयं स्थापयित्वा
> कीर्तिस्तम्भद्वयमिव गिरौ दक्षिणे चोत्तरे च॥
>
> (रघुवंश १५ । १०३)

अध्यात्मरामायणमें

अध्यात्मरामायणमें भी अनेक स्थलोंपर श्रीरामचन्द्रजीकी सनातन भगवत्ताका निरूपण हुआ है। समय और स्थानके अभावसे केवल उनके जन्मप्रसङ्गकी एक झाँकी दी जा रही है। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी नवमीको कर्कलग्नमें, पुनर्वसु नक्षत्रमें तथा मध्याह्न-वेलामें सनातन परमात्मा जगन्नाथ जिस सुन्दर मनोनयनहारी दिव्य रूपमें प्रकट हुए थे, वह इस प्रकार है—

> आविरासीज्जगन्नाथः परमात्मा सनातनः॥
> नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासाश्चतुर्भुजः।
> जलजारुणनेत्रान्तः स्फुरत्कुण्डलमण्डितः॥
> सहस्रार्कप्रतीकाशः किरीटी कुञ्चितालकः।
> शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविराजितः॥
> अनुग्रहाख्यहास्येनसुमुखस्मितचन्द्रिकः।
> करुणारससम्पूर्णविशालोत्पललोचनः।
> श्रीवत्सहारकेयूरनूपुरादिविभूषणः॥
>
> (१ । ३ । १५—१८)

अर्थात् उनका वर्ण नील कमलके समान अभिराम था और वे पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनके चार भुजाएँ थीं और वे चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म लिये हुए थे। गलेमें आजानुलम्बिनी सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वल वनमाला शोभा दे रही थी। उनके अपाङ्ग गुलाबी थे और वे चमचमाते हुए कुण्डलोंको अपने कानोंमें पहने हुए थे। सहस्रों सूर्योंकी-सी उनकी कान्ति थी; सिरपर किरीट-मुकुट सुशोभित था और अलकावली घुँघराली थी। नेत्र-युगल विकसित कमल-युगल एवं सुन्दर थे, विशाल भी थे और अपने भक्तोंके प्रति करुणाका रस उनमें उमड़-सा रहा था। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न अङ्कित था और हार, केयूर एवं नूपुर आदि अलंकारोंसे वे विभूषित थे ... मन्द-मन्द मुस्कान छिटक रही थी।

२०१५ और ११३७ संख्याओंमें योगसे ५०७२ वर्ष होते हैं। अबसे इतने वर्ष पूर्व भारत युद्ध हुआ था। भारतीय संस्कृतिकी प्राचीनताके अनुसंधित्सु छात्रोंको उक्त शिलालेख पर ध्यान देते हुए ही सत्यकी खोजमें अग्रसर होना चाहिये।

रामकथाके त्रिगुणात्मक लेखक

श्रीरामके चरित्रका वर्णन करनेवाले कवि और लेखक मुख्यतः तीन प्रकारके हैं—सात्त्विक, राजस और तामस। तामस व्यक्तियोंने अपनी विषय-वासनाकी परितृप्तिके लिये तथा क्षुद्र भावनाओंकी अभिव्यक्तिके लिये श्रीसीता और रामका आश्रय लिया तथा उनको भगवती और भगवान् न मानकर साधारण नायक-नायिकाके रूपमें उनका चित्रण किया। राजस कवि-लेखकोंने साहित्यके रस, छन्द, अलंकार आदिके उदाहरण देनेके लिये भगवल्लीलाओंका अधिकांशमें कल्पना-प्रसूत वर्णन किया। सात्त्विक वर्ग उन कवि लेखकोंका है, जिन्होंने वेद, उपनिषद् और वाल्मीकि-रामायण आदि आर्ष ग्रन्थोंके आधारपर सीता-रामके लीलाओंका, उन्हें लक्ष्मीनारायण भगवान्का अवतार मानकर वर्णन किया है। भगवान् श्रीरामकी कथाका वर्णन करनेवाली विभिन्न सात्त्विक रचनाओंमें घटनाओं तथा उक्तियोंकी जो विभिन्नता दिखलायी देती है, उसका एकमात्र कारण है—कल्प-भेद। जिन प्राचीन और अर्वाचीन रचनाओंमें—चाहे वे किसी कालकी, किसी देशकी, किसी भाषाकी हों—रामका चित्रण भगवान्के रूपमें नहीं हुआ है, वहाँ न्यूनता वर्ण्यविषयके पक्षमें नहीं है, अपितु वर्णनकर्ताके पक्षमें है। तामस लेखकोंके मानसका स्तर और उनका आध्यात्मिक धरातल समुन्नत नहीं होता, भक्तिभावसे ओतप्रोत नहीं होता; इस कारण वे भगवान् रामकी भगवत्तासे वञ्चित रहते हैं। यही हेतु है कि उनकी रचनाओंमें केवल भगवान् रामकी भगवत्ताका निदर्शन हो नहीं कराया जा सका है, अपितु लोकपावन रामकथा विकृतरूपमें भी चित्रित हुई है। अन्यथा भगवान् रामकी भगवत्ता जो आज है, वह कल भी थी और कल भी रहेगी।

राम-राज्य

श्रीराम जिस कार्य-कलापके लिये भूतलपर अवतीर्ण हुए थे, उसका उन्होंने सम्यक् सम्पादन किया। वे आदर्श सम्राट् थे। उनके राज्यकालके सम्बन्धमें महर्षि वाल्मीकिने जो वर्णन किया है, वह सभी शासकोंके लिये उपादेय, मननीय और अनुकरणीय है।

रामराज्यमें सब प्रकारका सुख था। न किसीको सर्प भय था, न रोग भय। स्त्रियोंको वैधव्यका कष्ट नहीं था। दस्युओंका त्रास प्रजामें नहीं था। किसी प्रकारके उपद्रव भी नहीं थे। माता पिताके जीवनमें संतानकी मृत्यु नहीं होती थी। सभी लोग धर्मात्मा और सुखी थे। श्रीरामको आदर्श मानकर सब लोग परस्पर सौमनस्यपूर्वक रहते थे—हिंसा भाव और वैमनस्यमें नहीं। संतति सुख विपुल था। समस्त जनता स्वस्थ, प्रसन्न और दीर्घायु थी। वृक्ष फल-फूलोंसे लदे रहते थे। कृषकोंके इच्छानुसार वर्षा होती थी। पवनका स्पर्श सदा सुखद था। अपने अपने सत्कर्मोंके अनुष्ठानमें प्रजा स्वधर्मके पालनमें दत्तचित्त थी। मिथ्या व्यवहारका प्रचार नहीं था और सभी व्यक्ति सुलक्षण थे और थे कर्तव्य परायण।

रामचरित्रका श्रवण

पुराणरत्न श्रीमद्भागवतका वचन है—

> स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
> कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥
> पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन्।
> आनृशंस्यपरो राजन् कर्मबन्धैर्विमुच्यते॥
> (९।११।२२-२३)

"कोसल देशके जिन निवासियोंने रामका स्पर्श किया था, उनके साथ विश्राम किया था, उनका अनुगमन किया था, अथवा उनका दर्शनमात्र भी किया था, उन सबने वह स्थान पाया, जहाँ योगी लोग जाते हैं। (शुकदेवजी कहते हैं—) हे महाराज परीक्षित्! शान्तिपूर्वक अपने कानोंसे श्रीरामचरित्रका श्रवण करनेवाला व्यक्ति कर्मके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।"

इससे अधिक श्रीरामकी भगवत्ताका और क्या प्रमाण हो सकता है!

राम-नाम

रामके नामकी महिमाका गान अनेकानेक सन्त महात्मा और कवियोंने किया है। कलियुगमें केवल राम नामका ही आधार है। रामके नाममें अद्भुत चमत्कार है। कविवर श्रीहर्षने ठीक ही कहा है—

राम नाम तव ... गुणागमम्।
(... २२। ११)

अर्थात् हे राम! आपके नाममें धर्मार्थकाममोक्षदातृत्वादि अनन्त गुण विराजमान हैं।'

प्रार्थना

अयि परात्पर सीता-कान्त भगवान् श्रीराम! ऐसी कृपा कीजिये, जिससे जनताके मन शुद्ध हों, उनमें सात्त्विक भावोंका संचार हो, परस्पर सद्भाव हो और यह विश्व मङ्गलमय हो जाय कि—

रामो हि विष्णुः पुरुषः पुराणः।

(अध्यात्मरामायण ७। ९। ५६)

'रामस्तु भगवान् स्वयम्'

(लेखक—श्रीमान् रामजी द्विवेदी, एम्० ए०, बी० एड्०, साहित्यरत्न)

भारतीय वैदिक, ऐतिहासिक एवं पौराणिक वाङ्मयके अन्तर्गत निर्गुण, निराकार ब्रह्मके सगुण रूप-विग्रहवाले, अथवा परमात्माके सगुण अवतारोंमें भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णकी महिमा सर्वोपरि है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णको स्वयं भगवान् (अंशी—पूर्ण) और अन्य अवतारोंको अंश—अपूर्ण कहा गया है[1], उसी प्रकार महारामायणमें श्रीरामचन्द्रजीको भी—१-विराट्के भर्ता, २-पोषणकर्ता, ३-सर्वाधार (सबका आश्रय), ४-शरणागतवत्सल, ५-सर्वव्यापक और ६-करुणा-वरुणालय (दयानिधि) अर्थात् षड्गुणसम्पन्न होनेके कारण—'रामस्तु भगवान् स्वयम्' कहा गया है[2]।

राम शब्दका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—रमते इति (रम् + घ) या रम्यते अनेन (रम + घञ्) अर्थात् आनन्द, सुन्दर, अन्तर्यामी। पद्मपुराणमें रामके इसी महत्त्वपूर्ण अर्थको ध्यानमें रखकर भगवान् शंकरने पार्वतीसे कहा था—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥

(पद्म०, उत्तर० २५४। २१)

आदिकवि वाल्मीकिके मतानुसार भगवान् श्रीराम सर्वगुणसम्पन्न (सर्वलोकप्रिय) हैं। श्रीरामके राज्य-शासनकालमें प्रजाओंके बीच केवल रामकी ही चर्चा होती थी। सारा जगत् श्रीराममय हो रहा था।[3] वे विष्णुस्वरूप सनातन ब्रह्म हैं[4]। भगवान् राम और लक्ष्मणका पारमार्थिक स्वरूप बतलाते हुए ब्रह्माजीने कहा है कि साक्षात् आदिदेव महाबाहु चक्रधारी प्रभु नारायण ही रघुकुलतिलक श्रीराम हैं तथा भगवान् शेष ही लक्ष्मण हैं।[5]

श्रीराम स्वयं भगवान् हैं। भगवत्-शब्दका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है—भग + मतुप् (वत्)—ऐश्वर्यवाले। विष्णुपुराणके अनुसार सृष्टिकी उत्पत्ति एवं प्रलय, आगमन (जीवके पुनर्जन्म), गमन (जीवके प्रयाण), विद्या तथा अविद्याका पूर्ण परिज्ञाता ही भगवच्छब्दवाच्य है।[6]

विशिष्टाद्वैतदर्शनके अनुसार निरवधि आनन्दमय विभूति महात्म्यरूपको 'षाड्गुण्य विग्रह' कहा गया है[7]। ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति और तेजसे परिपूर्ण होनेके कारण भगवान्के दिव्य शरीरको षाड्गुण्यविग्रह कहते हैं।[8]

शुद्धाद्वैतदर्शनमें भग (ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, धर्म, यश तथा श्री) से युक्त पुरुषविशेषको भगवान् कहा

---

१. एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।
(श्रीमद्भा० १। ३। २८)

२. भर्ता वैराट्भर्ता सर्वाधारः ... ।
करुणावरुणालयः ... रामस्तु भगवान् स्वयम्॥
(महारामायण)

३. रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः।
रामभूतं जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति॥
(वा० रा० ६। १२८। १०२)

४. ... न हि विष्णुः सनातनः॥
(वा० रा० ६। ११८। ११)

५. भवान् नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।
... ... ॥
(वा० रा० ६। ११८। १३)

६. उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥
(विष्णुपुराण ६। ५। ७८)

७. विशिष्टाद्वैतदर्शन ... , पृ० ११४।

८. ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः॥
(विष्णुपुराण ६। ५। ७९)

गया है।[9] पातञ्जलयोगदर्शनमें क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश), कर्म (पुण्य-पाप, पुण्य-पाप-मिश्रित और पुण्यपापरहित), विपाक (कर्मफल) एवं आशय (कर्म-संस्कारयुक्त हृदय) से परे पुरुषोत्तमको 'ईश्वर' नामसे अभिहित किया गया है।[10]

श्रीराम ही पूर्णब्रह्म, नारायण, परमात्मा, पुरुषोत्तम, हरि और ईश्वर हैं। त्रिकालदर्शी महाकवि वाल्मीकिजी-के शब्दोंमें भगवद्विभूतियोंका वर्णन करते हुए ब्रह्मा कहते हैं—'श्रीराम! आप चक्र धारण करनेवाले, सर्व-समर्थ एवं श्रीमान् भगवान् नारायणदेव हैं।[11] आप अविनाशी परब्रह्म हैं। सृष्टिके आदि, मध्य और अन्तमें सत्यरूपसे आप ही विद्यमान हैं। तथा लोकोंके परम धर्म भी आप हैं। आप ही विष्वक्सेन तथा चतुर्भुजरूपधारी श्रीहरि हैं। आप ही शार्ङ्गधन्वा, हृषीकेश, अन्तर्यामी, पुरुष तथा पुरुषोत्तम हैं। आपको पराजित करनेवाला संसार-में कोई नहीं। आप खड्गधारी विष्णु एवं महाबली श्रीकृष्ण हैं।'[12]

(१) विभूतिमान्के रूपमें श्रीराम स्वयं भगवान् हैं

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण (विभूतिमान्) शस्त्रधारी श्रीरामको अपनी दिव्य विभूति बतलाते हुए 'रामः शस्त्रभृतामहम्' (१० । ३१) कहते हैं।[13]

वाल्मीकि-रामायणमें श्रीराम (विभूतिमान्) की दिव्य विभूति महाबलशाली श्रीकृष्ण हैं—

'...... कृष्णश्चैव बृहद्बलः।' (६ । ११७ । १५)

जिस प्रकार गीतोक्त भगवद्विभूतियाँ भगवान् श्रीकृष्ण-के यथार्थ विभुत्व, अखण्ड अन्तर्यामित्व और व्यापक ब्रह्मत्वकी परिचायिका अथच 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—इस मान्यताकी विधायिका हैं, उसी प्रकार रामरहस्योपनिषद्, अध्यात्मरामायण, अद्भुतरामायण, स्कन्दपुराण, वाल्मीकि-रामायण और रामचरितमानसमें वर्णित श्रीराम-गीतोक्त भगवद्-विभूतियाँ भी अपने विभूतिमान् (श्रीराम) के अखिलब्रह्माण्डनायकत्व, स्वामिकर्तृत्व और सच्चिदा-नन्दत्वकी उद्घोषिका एवं 'रामस्तु भगवान् स्वयम्'—इस सिद्धान्तकी सम्पोषिका हैं।

रामरहस्योपनिषद्में राम (र्+आ+म)-शब्दका मान्त्रिक भाव स्पष्ट करते हुए हनुमान्जी कहते हैं कि 'रकार' सच्चिदानन्दस्वरूप है, अर्थतः वह परमात्मरूप है। 'र्' व्यञ्जन निष्कल (मायारहित) ब्रह्मका बोधक है। 'आकार' स्वर प्राण—मायाविशिष्ट तत्त्व है।[14] 'मकार' अभ्युदयका वाचक है। यही राममन्त्रका बीज है। अतः 'राम' शब्दसे मायायुक्त (ब्रह्ममय) ब्रह्मकी निष्पत्ति होती है।[15] यही राममन्त्र महामन्त्र है, जिसे महेश्वर श्रीशिवजी जपते हैं और उनके द्वारा जिसका उपदेश काशीमें मुक्तिका कारण है तथा जिसकी महिमाको गणेशजी जानते हैं, जो इस 'राम' नामके प्रभावसे ही सबसे पहले पूजे जाते हैं।[16] ऐसे ब्रह्मस्वरूप रामकी वन्दना करते हुए गोस्वामी तुलसीदास-जी कहते हैं कि जो कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा) का हेतु, अर्थात् 'र', 'आ', 'म' (रूपसे बीज है), वह 'राम' नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप है।

९. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥
(विष्णुपुराण ६ । ५ । ७४)

१०. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।
(योगदर्शन १ । २४)

११. भवान् नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।
(वा० रा० ६ । ११७ । १३)

१२. (क) अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः॥
(ख) शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजितः खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः॥
(वा० रा० ६ । ११७ । १४-१५)

१३. रामः शस्त्रभृतामहम्।
(गीता १० । ३१)

यहाँ शस्त्रधारी राम क्षात्र-धर्मोंके वाचक हैं—
'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते।' (कौटल्य)।

१४. सच्चिदानन्दरूपोऽस्मिन् परमात्मार्थ उच्यते।
व्यञ्जनं निष्कलं ब्रह्म प्राणो मायेति च स्वरः॥
(रामरहस्योपनिषद् ५ । ४)

१५. मकारोऽभ्युदयार्थत्वात् स मायेति च कीर्त्यते।
सोऽयं बीजं स्वकं यस्मात् समायं ब्रह्म चोच्यते॥
(वही, ५ । ६)

१६. महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥
(रामचरित०, बाल० १८ ।

(२) षडैश्वर्ययुक्त दिव्य विग्रहवान् श्रीराम स्वयं भगवान् हैं।

श्रीरामका षडैश्वर्ययुक्त दिव्य विग्रह भगवान्‌के नामसे विख्यात है, यह निम्न शब्द-चित्रद्वारा स्पष्ट होता है—

ॐ
स्वरूप
श्रीरामचन्द्रजी
स्वयं
भगवान् हैं
| भग |
षडैश्वर्य

ऐश्वर्य	धर्म	यश	श्री	ज्ञान	वैराग्य
विभूतिदं विश्वसुखं विरामं ···राममहं भजामि। (ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, विश्वसुखदायक, सबके विश्राम-स्थान श्रीरामचन्द्रमें भजन करता हूँ।)[२९] श्रीरामके दिव्य विग्रहकी पूजा ऐश्वर्यदायिनी है।[३०]	रामो विग्रहवान् धर्मः। (श्रीराम ही धर्मके पराकाष्ठा हैं।) यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः (वैशेषिक दर्शन १।२४) रामो भुक्तिमुक्तिप्रदायकः। (भुक्ति—अभ्युदय, मुक्ति—निःश्रेयस)[३१]	यशश्री पराकाष्ठा श्रीराम (ब्रह्म) की प्रेरणासे हम सब जीवोंमें यशस्वी हों।[३२] श्रुति नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं।[३३] बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि।[३४]	श्रीपरं श्रीकरं श्रीशं श्रीनिवासं परात्परम्। श्रीको धारण करनेवाले, श्रीकी प्राप्ति करानेवाले, श्रीके श्रीनिवास(लक्ष्मी)के स्वामी परात्पर श्रीराम(को नमस्कार है।)[३५] भगवन्! हम श्रीसम्पन्न और यशस्वी हों।[३६]	नमो रामाय महते परब्रह्मज्ञानस्वरूपिणे। (तत्त्व-ज्ञानस्वरूप पुरुषोत्तम श्रीरामको नमस्कार है।)[३७] ज्ञानधाम श्रीपति असुरारी।[३८] सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। (तैत्तिरीय० २।१।१) विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। (बृ० ३।९।२८)	मनकास-प्रसङ्गमें श्रीरामकी वैराग्य-भावना—अज्ञानी भोगोंके पीछे दौड़ता है, कालकी गतिको नहीं देखता। कच्चे घड़ेके जलके समान आयु नित्य क्षीण होती है।[३९] श्रीरामका ध्यान वैराग्यका मूल है।[४०]

२९. रामरक्षाराज (श्रीरामचरणामृतसङ्ग्रह), श्लोक-संख्या ८५।
३०. रामपूर्वतापनीयोपनिषद् १ । ५ ।
३१. रामरहस्योपनिषद् ५ । ११ ।
३२. सर्व स्मृतेषु यशसः स्याम ॥ (अथर्व० ६ । ५८ । २)
३३. रामच० मा०, बा० का०, दोहा ५०, ऊपर पंक्ति २ ।
३४. रामच० मा०, बा० का०, दोहा १०९ ।
३५. रामरक्षाराज, श्लोक-सं० १० ।
३६. यशः श्रीः भजतां मयि । (श्रीसूक्त)
३७. 'श्रीरामार्चा विधि और माहात्म्य' (श्रीरामचरणामृतसङ्ग्रह, [illegible])
३८. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा ५० । १
३९. श्रीरामानुरागेण वैराग्यं न परंवति । [illegible] ॥ ([illegible])
४०. उपनिषद्-अङ्क, पृष्ठ ५११ ।

कमलनयन, रघुवंशनायक, करुणामूर्ति श्रीरामचन्द्रजीकी मैं शरण लेता हूँ।'[४९]

(३) मर्यादा-पुरुषोत्तमरूपमें श्रीराम स्वयं भगवान् हैं।

महर्षि वाल्मीकिने अपने इष्टदेव श्रीरामको मर्यादा-पुरुषोत्तम माना है। वस्तुतः श्रीराम आदर्श मानवताकी मर्यादा हैं। 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'—विविध मानवताका आदर्शोन्मुख विकास ही सत्-चित्-आनन्द है। भगवान् श्रीराम सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। ब्रह्माजी स्तुति करते हुए कहते हैं—'ॐ-स्वरूप जो श्रीरामचन्द्रजी हैं, वे अवश्य ही भगवान् हैं, सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। भूः, भुवः, स्वः—तीनों लोक उन्हींके स्वरूप हैं। उन्हें बारंबार नमस्कार है।'[५०]

श्रीवाल्मीकिजीने श्रीरामचन्द्रका चित्रण आदर्श मानवके रूपमें करते हुए उनके मर्यादा-पुरुषोत्तमत्वकी महिमाका गान भी किया है—'श्रीराम! आप पुराण पुरुषोत्तम हैं, दिव्यरूपधारी परमात्मा हैं। जो लोग आपमें भक्ति रखेंगे, वे इस लोक और परलोकमें अपने सभी मनोरथ प्राप्त कर लेंगे।'[५१]

'मर्यादा पुरुषोत्तम' यह साभिप्राय विशेषण श्रीरामचन्द्रजीकी आदर्श कार्यप्रणाली और उसकी गरिमाके सर्वथा अनुकूल है। भगवान्के अन्य अवतारोंमें यह विशेषण घटित नहीं होता। स्वामी विवेकानन्दजीने श्रीरामके 'मर्यादापुरुषोत्तम' विशेषणपर अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहा है—'मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका प्रादुर्भाव अन्य सकल अवतारोंकी अपेक्षा अनेक विशेष महत्त्व रखता है।'······ श्रीरामको सदादर्शोंका खजाना कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। मनुष्योंकी सत् शिक्षाके लिये जितना गुरुपदका कार्य श्रीरामचरित कर सकता है, उतना अन्य किसीका चरित्र नहीं। श्रीरामका 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' नाम इसी कारणसे पड़ा है।'[५२]

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी अनादि-अनन्त हैं। मानव मात्रके एकमात्र आदर्श (मर्यादा-सीमा) हैं। रामत्व (सच्चिदानन्दत्व) की प्राप्ति ही मानव जीवनका परम पुरुषार्थ है। मानवताका ईश्वरोन्मुख चरम विकास ही भगवत्ता है। श्रीरामका मानवीय रूप (अवतार) पुरुषोत्तमके दैविक विधानमें पर्यवसित है। भगवान् राम एक साथ ही आदर्श सम्राट्, आदर्श शासक, आदर्श राजा, आदर्श गृहस्थ, आदर्श स्वामी, आदर्श पति, आदर्श पुत्र, आदर्श गुरु, आदर्श शिष्य, आदर्श बन्धु, आदर्श मित्र और आदर्श भक्त हैं।'[५३] अर्थात् मानवीय मर्यादा (सीमा) में आनेवाले सम्राट्, राजा, गृहस्थ, पिता, पुत्र, मित्र आदि श्रीरामको अपना आदर्श बनाकर परमपदको प्राप्त कर सकते हैं। उसी परमपदको अध्यात्म-रामायणमें 'प्रकृतिसे परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दघन, अद्वितीय, पुरुषोत्तम, श्रीराम' कहा गया है।'[५४]

'रामस्तवराजमें नारदजी भगवान् रामकी स्तुति करते हुए कहते हैं—'हे पुरुषोत्तम! आप ही सबके परब्रह्म परमात्मा हैं। सम्पूर्ण जगत् आपका ही स्वरूप है, अर्थात् आप ही विश्वके निमित्त और उपादान कारण हैं। आप ही अविनाशी परम ज्योति हैं, आप ही तारक ब्रह्म (राम-नाम) हैं।'[५५]

भगवान् श्रीरामचन्द्र मर्यादाकी महिमासे सुशोभित, अतएव भारतीयोंके वन्दनीय हैं। उनके नामामृतका पान करके भक्तोंकी रसना धन्य हो जाती है। श्रीराम नैतिक मूल्योंके एकमात्र संस्थापक और आदर्शोंके पथप्रदर्शक हैं। वे परम पुरुष पुरुषोत्तम हैं, दिव्य गुणोंके धाम हैं।'[५६]

---

४९. लोकाभिरामं रणरङ्गधीरं
राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम्।
कारुण्यरूपं करुणाकरं तं
श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये॥
(रामरक्षास्तोत्र, श्लोक-सं० ३२)

५०. श्रीरामोत्तरतापनीयोपनिषद्, भरद्वाजस्तुति।

५१. ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम्।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च॥
(वा० रा० ६। ११७। ११)

५२. श्रीरामनवरत्नसार, पृष्ठ १।

५३. मानसपीयूष (श्रीरामचरित मानस—भावार्थ 'रामायण विश्व कोश'), पृष्ठ १११

५४. रामः परात्मा प्रकृतेरनादिरानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि।
(अध्यात्म० १। १। १७)

५५. सर्वेषां त्वं परं ब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि।
त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वमेव पुरुषोत्तम॥
त्वमेव तारकं ब्रह्म त्वत्तोऽन्यन्नैव किंचन॥
(रामस्तवराज ७४-७५)

५६. मर्यादा-महिमासे मण्डित अगजग-वन्दित राम।
पीती रसना सुधा-मकरन्द, नाम उनका धाम॥

होकर प्रार्थना करते हैं कि "जिन्हें वेद 'नेति नेति' (यह भी नहीं, यह भी नहीं) कहकर निरूपण करते हैं, जो आनन्दस्वरूप, उपाधिरहित और अनुपम हैं, एवं जिनके अंशसे अनेकों शिव, ब्रह्मा और विष्णुभगवान् प्रकट होते हैं,[65] हे दानियोंमें शिरोमणि, कृपानिधान, हे नाथ!—हम अपने मनका सच्चा भाव कहते हैं—उन्हीं आपके समान पुत्र हम चाहते हैं। प्रभुसे, भला, क्या छिपाना है।"[66]

राजाकी प्रीति देखकर, उनके अमूल्य वचन सुनकर करुणानिधान भगवान् बोले—"ऐसा ही हो। हे राजन्! मैं अपने समान (दूसरा) कहाँ जाकर खोजूँ, अतः स्वयं ही आकर तुम्हारा पुत्र बनूँगा।"[67]

तब—

'होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत।'[68]

"इच्छानिर्मित मनुष्यरूप सजकर मैं तुम्हारे घरमें प्रकट होऊँगा। तात! मैं अपने अंशोंसहित देह धारण करके भक्तोंको सुख देनेवाले चरित्र करूँगा।"[69]

ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी हिंदू-संस्कृतिपरक 'अवतार-वाद-मीमांसा'—

(क) 'रामस्तु भगवान् स्वयम्।'

और—

(ख) 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—

का समन्वय मूलक तथ्य ज्ञातव्य है—

"भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्ण साक्षात् पूर्ण ब्रह्म परमात्मा हैं, यह विश्वास हिंदू जातिमें प्रायः सदासे ही चला आ रहा है। यह युक्तियुक्त और उचित ही है। निर्गुण-निराकाररूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही सगुण-साकाररूपमें प्रकट हैं, जैसे आकाशमें परमाणुरूपसे स्थित जल ही बादलरूपमें बरसता है।"[70]

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम

(लेखक—श्री॰ सेठ श्रीगोविन्ददासजी)

अन्य जीवोंकी अपेक्षा मनुष्यमें कुछ विशेषताएँ हैं, विलक्षणताएँ हैं, उसकी कुछ समस्याएँ हैं, जिम्मेदारियाँ हैं और कर्तव्य हैं, जो उसकी श्रेष्ठताके मापदण्ड हैं तथा जिनके कारण उसकी शोभा भी है और सार्थकता भी।

अन्य जीवों और मनुष्यके जीवनमें अन्तरकी दृष्टिसे यदि हम विचार करें तो मूलरूपमें एक बात हमारे सामने आती है। वह है, मनुष्य प्रकृतिके निर्देश-नियमोंका पालन करते हुए भी उसकी दासता स्वीकार नहीं करता। पशु अथवा अन्य जीवोंके जीवनमें यह बात नहीं है। वे पूर्णतया प्रकृतिके अधीन, उसके नियन्त्रणमें जीवन-यापन करते हैं। उनका अपना कोई विधि-विधान, नियम-निर्देश और आचार-संहिता नहीं रहती। इसके विपरीत मनुष्य प्रकृतिके गुण-धर्मोंका निर्वाह करते हुए भी उससे परे, उससे ऊपर एक ऐसी सत्ताको स्वीकार करता है, जिसका कोई दायरा नहीं, जिसकी कोई सीमा नहीं, जो परिधि और बन्धनोंसे परे, आकृति और आकारसे रहित होते हुए अनुभूतिके माध्यमसे प्रकृति और प्रकृतिजन्य सत्ताका भी नियन्त्रण करती है।

मनुष्यके इसी स्वीकारने, उसके इसी आत्मबोधने उसे

---

६५. नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा॥ संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
(रामच॰ मा॰, बाल॰ १४३ । ३)

६६. दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ। चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥
(रामच॰ मा॰, बाल॰ १४९)

६७. देखि प्रीति सुनि बचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि बोले॥ आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होब मैं आई॥
(रामच॰ मा॰, बाल॰ १४९ । १)

६८. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा १५१।

६९. इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥ अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥
(रामच॰ मा॰, बाल॰ १५१ ...

७०. हिंदू-संस्कृति अङ्क (कल्याण-वर्ष) पृष्ठ ८१।

दिया, जिसपर चलकर मनुष्य अपने जन्म और जीवनको कृतार्थ कर सकता है।

अब हम यहाँ उनके मर्यादा-पक्षको लें। जब महामुनि विश्वामित्रजीके साथ राम और लक्ष्मण—दोनों भाई जनकपुरी पहुँचे और लक्ष्मणजीकी इच्छा जनकपुरी-भ्रमणकी हुई,—जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजीके इन शब्दोंसे वर्णित है—

लखन हृदयँ लालसा बिसेषी। जाइ जनकपुर आइअ देखी॥
प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं॥
(१।२१७।१)

—लक्ष्मणकी इस मनःस्थितिको श्रीराम भाँप गये, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजीके इन शब्दोंसे स्पष्ट है—

राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हियँ हुलसानी॥
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई॥
नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं॥
(१।२१७।२-३)

श्रीलक्ष्मणकी जनकपुरी-भ्रमणकी इच्छा और श्रीरामके विश्वामित्रजीसे आज्ञा माँगनेके इस प्रकरणमें अनुज और अग्रजके सम्बन्धके साथ-साथ गुरु और शिष्य सम्बन्धके औचित्य, उनकी पवित्रता, मर्यादा और शील आदि सद्-संस्कारोंका जो निर्वाह हुआ है, वह कितना मोहक है। तभी तो विश्वामित्रजीने श्रीरामके उक्त वचन सुनते ही तत्काल कहा—

सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता॥
(१।२१७।४)

जनकपुरी-भ्रमणके बाद जब श्रीराम-लक्ष्मण लौटते हैं, उस समयके गुरु-शिष्य-सम्बन्धकी एक और झलक देखिये, जिसमें मर्यादा अपनी चरम सीमाको भी पार कर गयी है। श्रीराम धनुष-मखशाला लक्ष्मणको दिखा रहे हैं और उसके बाद जिस मनःस्थितिमें गुरुके पास दोनों भाई लौटते हैं, उसका वर्णन देखिये—

राम देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना॥
लव निमेष महुँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया॥
भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुष मखसाला॥
कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥
जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई॥
कहि बातें मृदु मधुर सुहाईं। किए बिदा बालक बरिआईं॥

सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥

निसि प्रबेस मुनि आयसु दीन्हा। सबहीं संध्याबंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥
मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥
चापत चरन लखनु उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥

उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥
(१।२२४।२-४; २२५ से २२६)

उपर्युक्त वर्णनमें गुरुसेवा, भ्रातृ-प्रेम और गुरु-शिष्य तथा अनुज-अग्रजकी मर्यादाका जो पोषण हुआ है, वह वर्णनकी नहीं, मनन चिन्तनकी वस्तु है। विश्वामित्रजीके दोनों भाई पैर दबाते हैं और विश्वामित्रजीके बार-बार आज्ञा देनेपर ही राम शयन करने जाते हैं। यहाँ ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि जब अन्य प्रसङ्गों और बातोंमें श्रीराम अपने गुरुकी आज्ञा तो क्या, संकेतमात्रसे कर्तव्य-कर्ममें अग्रसर हो जाते हैं, तब यहाँ बार-बार कहनेपर भी पैर दबाना क्यों बंद नहीं करते। क्या यह गुरुकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं? भाव-की बात है। सेवा-धर्मका मर्म सच्चा और निःस्पृह सेवक ही जानता है, जैसा कि एक अन्य प्रसङ्गमें कहा गया है—

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥
(२।२०२।४)

तात्पर्य यह कि सेवाकी सार्थकता सेवककी रुचिमें नहीं, स्वामीकी रुचिमें है। और रुचिका पता तो रुचि अथवा रुचि-की बार-बार पुष्टि करनेपर ही लग पाता है। इसीलिये विश्वामित्रजीके बार-बार कहनेपर ही श्रीराम उनके चरण चापना बंदकर शयनको जाते हैं; और उसके बाद जब लक्ष्मण अपने अनुज धर्मका निर्वाह करते हुए श्रीरामके पैर दबाते हैं, तब वही स्थिति उनके सामने उपस्थित होती है। श्रीराम बार-बार लक्ष्मणजीको शयन करनेकी आज्ञा देते हैं, तब लक्ष्मणजी सोने जाते हैं। इसके बाद प्रातः मुर्गेकी बाँग सुनकर सबसे पहिले श्रीलक्ष्मणजी ही सोकर उठते हैं, उसके बाद श्रीराम, तदुपरान्त मुनि विश्वामित्रजी। यहाँ विश्वामित्रजीके

बादमें उठनेका तात्पर्य यह नहीं कि वे देरसे उठते थे। तात्पर्य यह है कि श्रीलक्ष्मण और श्रीरामकी दिनचर्या इतनी मर्यादित थी कि ब्राह्ममुहूर्तमें जागनेवाले मुनि विश्वामित्रसे भी पहिले अपनी-अपनी मर्यादाओंके अनुसरणमें दोनों जाग उठते थे।

अब आप एक अन्य प्रसङ्ग देखिये। जब श्रीराम-लक्ष्मण मुनि विश्वामित्रके लिये पुष्प लेने पुष्पवाटिकामें जाते हैं और उसी समय सीताजी सखियोंसहित गौरी-पूजनको आती हैं, श्रीराम और सीताका नेत्र-मिलन होता है। इस समयकी अपनी मानसिक स्थितिका चित्रण करते हुए वे अपने अनुजसे कहते हैं—

सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि॥

तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखीं लै आईं। करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं॥
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥
(श्रीराम० १ । २३० । २३१ । १–३)

अब यहाँ मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी मर्यादा-अमर्यादाका रहस्य देखिये। सीताजीको देखकर वे अपने अनुज लक्ष्मणसे अपनी भावनाओंको व्यक्त कर देते हैं। प्रश्न उठता है कि क्या अग्रजका अपने अनुजसे ऐसे प्रसङ्गोंमें सब बातें साफ-साफ कह देना उचित और मर्यादानुकूल है? साधारणतया सांसारिक दृष्टिसे देखनेपर बात कुछ अटपटी लगती है और लगता है, ऐसा करनेपर धर्म-संकोचका निर्वाह नहीं हुआ तथा छोटे और बड़े भाईके बीच जो धर्म-संकोचकी एक मर्यादा रहती है, उसका उल्लङ्घन हुआ। सामान्यतः ऐसी बातोंको छिपाया जाता है, और लगता है पारिवारिक मर्यादाओंको बनाये रखनेके लिये छिपाया जाना चाहिये भी। पर यहाँ बात ऐसी नहीं है।

इसके दोहेमें स्पष्ट कहा गया है—श्रीरा[illegible] प्रभु, जिनके स्पष्ट कहा देता है कि उनके म[illegible] और क्यों दीखता है, यही मर्यादा है। [illegible] परिवारकी रक्षाके लिये ही [illegible] होते हैं, जो श्रीरामके ही [illegible] पत्नीके समर्पित है। श्रीराम अपने अन्तःकरण,

परिवार और उनके मर्यादारूप अन्तर्मनको स्पष्ट करते हुए आगे कहते हैं कि मेरा मन जो अपने स्वभावमें पवित्र है, वह आज विचलित है। साथ ही रघुवंशियोंका सहज स्वभाव है कि उनका मन कभी कुपथगामी नहीं होता। फिर जिसने (मैंने) स्वप्नमें भी परायी स्त्रीकी ओर नहीं देखा, उसका सीताके प्रति यह प्रीतिविशेष क्यों? स्वयं ही यह शङ्का करना और इसका रहस्य 'सो सबु कारन जान बिधाता' कह देना राम और निश्छल अन्तःकरण तथा मनकी पवित्रताकी पराकाष्ठा द्योतक है। उक्त कसौटियोंके संदर्भमें जब मन मीकिमन हो उठा है, तब अपने अनुजसे बिना किसी छिपाव-दुराव और भेदभावके सारी स्थिति व्यक्त कर देना मर्यादाकी परम उच्चता और पारदर्शिताका प्रतीक है। क्योंकि राम-जैसे पुरुष—पुरुषोत्तम का मन, जो अपनी कुल-परम्परासे ही सुपथगामी और मर्यादित है और असाधारण, असाधारण स्थितिमें भी विचलित न होनेका अभ्यासी है, यदि सीताका साक्षात्कार कर विचलित होता है तो इसमें कोई दैवी संयोग है और उसे रामकी मर्यादाके अनुरूप उसी प्रकार, जो उसके लिये ही बनाने विरचा और उसकी भी गति अन्य नहीं हो सकती, स्थिर होना ही चाहिये।

यही बात थी; और जैसा कि आगे हुआ भी, जिसके इस संयोगके कारण ही रामने अपने सहज अन्तःकरण और मनकी पवित्रताका यह सत्य रहस्य न केवल अनुजसे कहा, बल्कि जब वे पुष्प लेकर विश्वामित्रजीके पास पहुँचे, तब गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें—

राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुअत छल नाहीं॥
(१ । २३१ । १)

दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आए रनधीरा॥

कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय॥

(१।२५०।१—४। २५१)

इतना ही नहीं, इससे भी आगे रोषभरे शब्दोंमें जनक यहाँतक कह गये हैं—

कहहु काहि यहु लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥
अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर बिहीन मही मैं जानी॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥
सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ। कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ॥
जौं जनतेउँ बिनु भट भुबि भाई। तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई॥

(१।२५१।१—४)

राजा जनकके इस तरहके अपमानजनक वचन सुनकर भी रघुकुलमणि श्रीराम विचलित नहीं हुए। भले ही श्रीलक्ष्मणजीने राजा जनकके इन वचनोंका परिहार कर दिया हो, किंतु श्रीरामका तटस्थ और मौन बने रहना इस बातका प्रमाण है कि वे अपने गुरु विश्वामित्रकी, जिनके संरक्षणमें वे हैं, आज्ञा बिना बल-प्रदर्शनकी यह उद्दण्डता, जिसका परिणाम उनका विवाह हो, यदि करते हैं तो उनका शील भङ्ग तो होता ही है—गुरु-शिष्यकी मर्यादा भी भङ्ग हो जाती है। जब राजा जनकके इन वचनोंपर श्रीलक्ष्मण कुपित होते हैं और अपने कुल-पराक्रमका प्रदर्शन करनेको उद्यत भी, तब श्रीराम उन्हें संकेतसे मनाकरके प्रेमसहित अपने पास बैठा लेते हैं।

तुलसीदासजीके शब्दोंमें सुनिये—

सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥

(१।२५२।१)

यह भी श्रीरामके उक्त मर्यादित चरित्रका ही एक ज्वलन्त प्रमाण है। इसके बाद ही जब गुरु विश्वामित्र अनुकूल अवसर पाते हैं, तब श्रीरामको धनुष तोड़नेकी आज्ञा देते हैं। उनके इस आज्ञा-पालनमें भी जो शील, सौन्दर्य, स्वाधीनता, मर्यादा तथा निःस्पृहताका अपार रहस्य भरा हुआ है, वह भी हमारे मनन-चिन्तनकी वस्तु है। तुलसीदासजीके शब्दोंमें सुनिये—

बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा॥
सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुबा मृगराजु लजाएँ॥

उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥

(१।२५४।१—४। २५४)

धनुष-भङ्गके बाद परशुरामजीके आनेपर जो लक्ष्मण और परशुराम-संवाद हुआ, वह तो सर्वविदित ही है। श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मण और परशुरामजीके इस विवादमें भी अपने स्वाभाविक शील और मर्यादानुरूप ही वचन कहे। इस प्रकरणमें भी श्रीरामके शील और मर्यादाकी झाँकी देखिये। लक्ष्मणजीके व्यङ्ग्यभरे विनीत वचन, जो उनके हृदयमें दाह उत्पन्न करनेवाले थे, सुनकर परशुरामजी कहते हैं—

परसुरामु तब राम प्रति बोले उर अति क्रोधु।
संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु॥

बंधु कहइ कटु संमत तोरें। तू छल बिनय करसि कर जोरें॥
करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहिं त छाड़ कहाउब रामा॥
छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही। बंधु सहित न त मारउँ तोही॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ। मन मुसुकाहिं रामु सिर नाएँ॥
गुनह लखन कर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहु ते बड़ दोषू॥
टेढ़ जानि सब बंदइ काहू। बक्र चंद्रमहि ग्रसइ न राहू॥
राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगें यह सीसा॥
जेहिं रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी॥

प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर रोसु।
बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालकहू नहिं दोसु॥

देखि कुठार बान धनु धारी। भै लरिकहि रिस बीरु बिचारी॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा॥
जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी॥
हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥
देव एकु गुनु धनुष हमारें। नव गुन परम पुनीत तुम्हारें॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥

(१।२८० से २८१।१—४ तक)

श्रीराम और परशुरामके उपर्युक्त संवादमें श्रीरामचन्द्र-

जीने अपने स्वभावजन्य शील और विप्र-पद-पूजाके अपने कुल संस्कारोंका निर्वाह तो किया ही है, इसीके साथ लक्ष्मणके प्रसङ्गमें अति मृदु और गूढ़ वचनोंमें—

प्रभु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा॥

—कहकर अपनी वंशपरम्परा और मर्यादाका भी दिग्दर्शन परशुरामजीको करा दिया।

श्रीरामचन्द्रजीके इन वचनोंसे भी जब परशुरामजीका परितोष न होकर उनका क्रोध बढ़ता है और वे कठोर कहते हैं—

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावउँ तोही॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोपु मोर अति घोर कृसानू॥
समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भए पसु आई॥
मैं एहिं परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे॥
मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें। बोलसि निदरि बिप्र के भोरें॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहुँ जीति जगु ठाढ़ा॥
(१ । २८३ । १—४)

—परशुरामजीके इन क्रोधभरे वचनोंको सुनकर श्रीराम अपने सहज स्वभावसे अपने अतीव गौरवकी अनुभूति कराते हुए कहते हैं—

जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भय बस नावहिं माथ॥

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहि पचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ॥
छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहिं पावँर आना॥
कहउँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥
बिप्र बंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥
(१ । २८३, २८४ । १—३)

श्रीरामके उपर्युक्त कथनसे—जो विनम्रता और विप्र-पूजा-भावकी परिपूर्णता तथा रघुवंश, उसकी कुलीन मर्यादाओं एवं क्षत्रिय जातिके कर्तव्यकर्मोंकी अनुभूति करानेवाला था—श्रीपरशुरामजीके हृदयके कपाट खुल गये और वे कह उठे—

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥
(१ । २८४ । ४)

इसके बाद परशुरामजी विविध प्रकारसे श्रीराम-लक्ष्मणकी स्तुति कर तप करने वनको चले गये।

अब इसके बाद आप भी रामचन्द्रजीके वनवासका प्रकरण देखिये। महारानी कैकेयीने महाराज दशरथसे श्रीरामके लिये चौदह वर्षका वनवास और भरतजीके लिये राजतिलकके दो वर माँगे। इस प्रसङ्गपर महाराजा दशरथ शोकविह्वल होकर मूर्च्छित हो गये। रात्रिमें उन्हें निद्रा नहीं आती और राम-रामकी रट लगाते रात काटते हैं। सबेरा होनेपर जब भाट और गायक महाराज दशरथके गुणोंकी प्रशंसा करते हैं, नित्यकी भाँति द्वारपर सेवकों और सचिवोंकी भीड़ होती है, पर जब नित्य रात्रिके पिछले पहरमें जागनेवाले महाराज दशरथके दर्शन नहीं होते, तब सब लोगोंको आश्चर्य होता है और सब मिलकर श्रीसुमन्त्रको महाराज दशरथके पास भेजते हैं। सुमन्त्र कैकेयीके भवनमें महाराज दशरथके पास आते हैं। वहाँ बड़ी विकल, अशोभन और भयानक स्थितिमें भूमिपर पड़े महाराज दशरथको देखकर जब सुमन्त्र सहम और सभीत हो जाते हैं तथा उनके मुखसे वचन नहीं निकलते, तब पास खड़ी कैकेयी सुमन्त्रसे कहती है—

परी न राजहि नीद निसि हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु॥
(२ । ३८)

और—

आनहु रामहि बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछेहु आई॥
(२ । ३९ । १)

श्रीसुमन्त्र श्रीरामचन्द्रजीको यहाँ ले आते हैं। जिन्होंने अबतक कोई दुःख देखा नहीं था, वे श्रीराम पिताका यह हाल देखकर कैकेयीसे पूछते हैं—

मोहि कहु मातु तात दुख कारन। करिअ जतन जेहिं होइ निवारन॥
(२ । ४१ । १)

श्रीरामके ये वचन सुनकर कैकेयी कहती है—

सुनहु राम सबु कारनु एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। मागेउँ जो कछु मोहि सोहाना॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥

सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु॥
(२ । ३९ । १-४; ४०)

श्रीराम कैकेयीसे संक्षेपमें सब वृत्तान्त सुनकर बोले—

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥
(२ । ४० । ४; ४१)

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके इस मर्मभरे थोड़े-से कथनमें कुल परिवारका और माता पिता-वचन-अनुसरणका जो रहस्य भरा है, वह अकथनीय है। जिसका राजतिलक होनेवाला था, उसीको देश निष्कासनकी आज्ञा देनेवाली विमाताको जिस स्नेह, ममत्व और श्रद्धा एवं भक्तिभावसे श्रीरामने सम्बोधित किया और उसकी इस आज्ञाके लिये सराहा, यह अकथनीय और अलौकिक घटना है, जो श्रीरामके ही अनुरूप है। फिर यह जानते हुए कि इस सारे कुचक्रकी जड़ कैकेयी है, उसके इस कुचक्रको—'सबहि भाँति हित मोर' तथा 'तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥' पिताकी आज्ञा उनके वचन और माता (कैकेयी) की सम्मति कहकर भूषण बना दिया। इतना ही नहीं, वे आगे—

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा॥
(२ । ४१ । १)

—कहकर भ्रातृ-प्रेमकी पवित्रताको पराकाष्ठातक पहुँचा देते हैं। यहाँ ध्यान देनेयोग्य बात यह है कि अनेक बार ऐसा देखा जाता है कि अपने कुल-परिवारकी मर्यादाओंके अनुसरणमें लोग भोगका तो वरण करते ही हैं, मर्यादाओंका उल्लेख कर उन्हें अपने हित, सुख और भोगके लिये ढाल बनाकर सामने रखते हैं; पर श्रीरामका चरित्र इस सम्बन्धमें एक आदर्श प्रस्तुत करता है। उन्होंने मर्यादाओंको सदा सुखके नहीं दुःखके, भोगके नहीं त्यागके अर्थमें लिया है। श्रीरामचरितमानस ऐसे प्रसङ्गोंसे भरा पड़ा है, जिसमें श्रीरामने भोगको त्याग त्यागका वरण कर मर्यादाकी गरिमा बढ़ायी—उसे अनुकरणीय बनाया, नया आयाम दिया। यह तो सर्वविदित और सर्वमान्यसिद्ध ही है कि सत्ता और साम्राज्योंके लिये सदासे संघर्ष और युद्ध होते आये हैं, आज भी होते हैं और स्वार्थके लिये इस संघर्षमें उचित-अनुचित या औचित्य-अनौचित्यका कोई विवेक नहीं किया जाता। इतना ही नहीं, भाई-भाई सत्ताजनित स्वार्थके लिये लड़कर शहीद हो जाते हैं; किंतु श्रीरामका चरित्र, जैसा कि ऊपर कहा गया है, सत्ता और साम्राज्यके सहज और स्वाभाविक अधिकारकी प्राप्तिके अवसरको भी ठोकर मारकर एक नया आदर्श प्रस्तुत करनेवाला सिद्ध होता है। ज्येष्ठ पुत्रको राजतिलक करनेकी परम्परा होते हुए और रघुकुलकी मर्यादाके अनुरूप राज्य-तिलकके न्यायोचित अधिकारी होते हुए जब उन्हें गुरु श्रीवसिष्ठ कहते हैं—

भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुबराजू॥
(२ । ९ । १)

तो इसपर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामका उत्तर सुनिये—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
(२ । ९ । ३-४)

श्रीरामके उक्त कथनसे ही स्पष्ट है कि सुख साम्राज्यकी मर्यादाओंका अनुसरण ही रामकी मर्यादा नहीं है। यदि वही स्वीकार करें तो वह तो रघुकुलकी मर्यादा होगी, रामकी नहीं। रामकी मर्यादा तो सुखके नहीं, दुःखके और भोगके नहीं, त्यागके वरणकी है—ऐसे त्यागकी, जिसमें मनुष्य सामान्य स्तरसे उठकर महान् बन जाता है। यही रामकी मर्यादा है और इसीलिये उन्हें 'मर्यादापुरुषोत्तम' कहा गया है।

श्रीराम—भारतीय लोक-मर्यादाके आदर्श

(लेखक—श्रीरामनाथजी 'सुमन')

भगवान् राम भारतीय लोक-मर्यादाके आदर्श हैं। वे भारतीय संस्कृतिकी सामाजिक विशिष्टताओंके प्रतीक हैं। उनमें धर्म और आश्रमकी 'श्री' मूर्त दिखायी पड़ती है। उनके जीवनमें हमारी सामाजिक मर्यादाएँ एवं आदर्श व्यक्त हुए हैं। श्रीकृष्ण अपने चरित्रसे नवीन शास्त्र गढ़ते हैं; उनका चरित्र ही शास्त्र है, उनका आचरण ही धर्म है, श्रीराम श्रुति-प्रणीत शास्त्र-मर्यादाके रक्षक और पालक हैं। वे लोक जीवनमें समाहित होकर भी उसके ऊपर हैं। वे एक साथ आदर्श और मर्यादा-पालक हैं। वे व्यक्ति होकर भी समष्टि हैं।

समस्त भारतीय संस्कृति तपोमयी, त्यागमयी है। उसमें प्रत्येक वर्गके लिये, अपने स्तर एवं स्थितिके अनुसार, भोगवृत्तियोंको क्रमशः छोड़ते हुए, त्यागकी वृत्ति ग्रहण करनेपर जोर दिया गया है। प्रत्येक पथ साध्य भी है और गन्तव्य भी है। प्रत्येक भोग भोग भी है और त्याग भी है। भोग है, किंतु वही भोग अपनेमें त्यागकी एक सीढ़ी भी है। इसीलिये समस्त भारतीय जीवन आत्मार्पणको आधारपर गठित हुआ है। इस भावनाके कारण सामाजिक पक्षमें अधिकारके स्थान-पर कर्तव्यकी प्रधानता स्थापित हुई। यह भी कहा जा सकता है कि यहाँ अधिकारसे कर्तव्य और कर्तव्यसे अधिकार-का जन्म होता है।

श्रीरामका समस्त जीवन त्यागप्रधान है एवं उदात्त कर्तव्य-भावनासे पूर्ण है। उनका जीवन कहीं भी अपने लिये नहीं है। वह एक आदर्शसे प्रेरित, एक आदर्शके लिये समर्पित और उस आदर्शको आचरणमें व्यक्त करनेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील जीवन है। वह व्यक्तिगत सुख एवं भोगपर कर्तव्योन्मुख लोकहितकी प्रधानतावाला जीवन है। वह लोकानुरञ्जक, लोकानुप्रेरक, लोकोपकारक जीवन है। वह प्रकाशदाता है, वह जीवनदाता है। वह प्रत्येक विन्दुपर व्यक्तिके ऊपर आत्मनैवेद्यके स्वर्गोदयका जीवन है—ऐसा जीवन, जिसमें कोटि-कोटि जीवनोंको वाणी और सामर्थ्य देनेकी शक्ति भी है, शक्ति भी है। एक विराट् लोकव्यापी पुरुष, यह है श्रीराम।

वंश-मर्यादा

जिस वंशमें उन्होंने जन्म लिया था, उसमें भारतीय संस्कृतिके आदर्शको प्रकाशित करनेवाले एकसे एक बढ़कर महापुरुष हुए हैं। हरिश्चन्द्र, दिलीप, भरत, रघु, अज—एक-से-एक महान् राजा इस वंशमें हुए। इस वंशका वर्णन करते हुए महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—

> सर्वा पूर्वमियं येषामासीत् कृत्स्ना वसुंधरा ।
> प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम् ॥
> येषां स सगरो नाम सागरो येन खानितः ।
> षष्टिपुत्रसहस्राणि यं यान्तं पर्यवारयन् ॥
> इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम् ।
> महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम् ॥
>
> (वा० रा० १ । ५ । १-३)

"यह सम्पूर्ण वसुंधरा पूर्वकालमें प्रजापति मनुसे लेकर अबतक जिस इक्ष्वाकुवंशके विजयशाली नरेशोंके अधिकारमें रही है तथा जिन्होंने सागर खुदवाया और जिन्हें युद्धयात्राके समय साठ हजार पुत्र घेरकर चलते थे, वे महाप्रतापी राजा सगर जिनके कुलमें उत्पन्न हुए ...." आदि।

और महाकवि कालिदास इस वंशके विषयमें लिखते हैं—

> सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
> आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥
> यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ।
> यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ॥
> त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
> यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥
> शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
> वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥
> रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ।
> तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः ॥
>
> (रघुवंश, सर्ग १ । ५-९)

"मैं उन प्रतापी रघुवंशियोंका वर्णन करने बैठा हूँ, जिनके चरित्र जन्मसे लेकर अन्ततक शुद्ध और पवित्र रहे; जो किसी कामको उठाते थे तो उसे पूरा करके ही छोड़ते थे, जिनका राज्य समुद्रके ओरतक फैला हुआ था, जिनके रथ पृथ्वीसे सीधे स्वर्गतक आया-जाया करते थे, जो शास्त्रोंके नियमानुसार ही यज्ञ करते थे, जो

माँगनेवालोंको मनचाहा दान देते थे, जो अपराधियोंको उनके अपराधके अनुसार ही दण्ड देते थे, जो (सोनेके बाद) समयपर जाग पड़ते थे, जो दान करनेके लिये ही धनका संचय करते थे, जो सत्यकी रक्षाके लिये बहुत कम बोलते थे, जिससे कि वे जो कहें, उसे करके भी दिखा दें; जो दूसरोंका राज्य हड़पने या लूटमारके लिये नहीं, वरं यशोवर्द्धन-निमित्त ही दूसरे देशोंको जीतते थे; जो भोग विलासके लिये नहीं, वरं संतति-के लिये ही विवाह करते थे; जो बाल्यपनमें विद्याध्ययन करते थे, तरुणावस्थामें विषय-भोगोंकी अभिलाषा करते थे, बुढ़ापेमें मुनियोंके समान जंगलोंमें रहकर तप करते थे और अन्तमें परमात्माका ध्यान करते हुए शरीर छोड़ते थे।''

ऐसे वंशमें रामका जन्म हुआ था; सहज ही उन्हें श्रेष्ठ संस्कार मिले थे। रघुवंशियोंके लिये तुलसीदासजीने भी कहा है—

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥
(श्रीरामच० मा० २। २८। २)

शुभ संस्कारोंका जीवन

श्रीराम सत्यसंघ महाराज दशरथ और चारुशीला महारानी कौसल्याकी प्रिय संतान थे। श्रेष्ठ वंश और उत्तम-चरित्र माता-पिताकी संतान होनेके कारण उनमें शुभ संस्कार बचपनसे ही पुष्ट दिखायी पड़ते हैं। यों तो वे साक्षात् परमेश्वर, अवतार ही थे; किंतु मानवीय दृष्टिसे देखा जाय तो भी वे 'मर्यादापुरुषोत्तम' थे। शरीर-सम्पत्ति, वीरभाव एवं प्रतिभाके आलोकसे उनका शैशव आलोकित है। बचपनसे ही वे शीलके समुद्र हैं। उनके विद्योपार्जनमें केवल सैद्धान्तिक या पुस्तकीय ज्ञान ही नहीं, वरं जीवन तथा उसके श्रेष्ठ कर्तव्यों एवं आदर्शोंकी विकासमान अनुभूतियोंका संचयन भी दिखायी पड़ता है। छोटोंपर ममता एवं स्नेह तथा गुरुजनोंके प्रति सम्मान एवं भक्तिसे उनका हृदय पूर्ण है। माता-पिता—दोनोंकी अगाध स्नेहधारासे स्निग्ध एवं मृदुल हृदय उनको मिला है, परंतु कहीं भी उनमें मनावश्यक चपलता नहीं है; सर्वत्र वे अपने शील एवं चरित्रकी गम्भीरताके साथ हैं।

श्रेष्ठ वंश विभूति, माता-पिताका गम्भीर वात्सल्य, एक महान् राज्यका भावी अधिकार, अनुपम बन्धु, गुरुजनोंका आशीर्वाद, असीम पौरुष एवं बल—सब मिलकर भी कहीं उनमें अहंकारकी सृष्टि नहीं कर पाते, न ये विभूतियाँ कभी उन्हें अपने कर्तव्यसे विमुख या शिथिल ही कर पाती हैं। माताके आँसू और पिताका प्राण-त्याग उनके कर्तव्य-मार्ग—धर्ममार्गके कुछ पद-चिह्न मात्र हैं। प्राणप्रिया पत्नीका त्याग उनकी कठोर कर्तव्य-भूमिकाका स्मारक है।

महर्षि वाल्मीकि उनका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

स हि रूपोपपन्नश्च वीर्यवाननसूयकः।
भूमावनुपमः सूनुर्गुणैर्दशरथोपमः॥
स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते॥
कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥
शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्च सज्जनैः।
कथयन्नास्त वै नित्यमस्त्रयोग्यान्तरेष्वपि॥
बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः।
वीर्यवान् न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः॥
न चानृतकथो विद्वान् वृद्धानां प्रतिपूजकः।
अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्यते॥
सानुक्रोशो जितक्रोधो ब्राह्मणप्रतिपूजकः।
दीनानुकम्पी धर्मज्ञो नित्यं प्रग्रहवाञ्छुचिः॥
कुलोचितमतिः क्षात्रं स्वधर्मं बहु मन्यते।
मन्यते परया प्रीत्या महत् स्वर्गफलं ततः॥
नाश्रेयसि रतो यश्च न विरुद्धकथारुचिः।
उत्तरोत्तरयुक्तीनां वक्ता वाचस्पतिर्यथा॥
अरोगस्तरुणो वाग्मी वपुष्मान् देशकालवित्।
लोके पुरुषसारज्ञः साधुरेको विनिर्मितः॥
(वा० रा० २। १। ९—१८)

"वे बड़े रूपवान् और पराक्रमशील थे, किसीका दोष नहीं देखते थे। संसारमें वे अनुपम थे, गुणोंमें दशरथके समान एवं उनके योग्य पुत्र थे। प्रशान्तात्मा और मृदुभाषी थे। यदि कोई उन्हें कठोर बात भी कह देता तो उसका उत्तर नहीं देते थे। कोई कभी एक भी उपकार कर देता तो सदैव उसे याद रखते और उससे संतुष्ट रहते थे और कोई सैकड़ों अपराध कर देता तो भी उन्हें भूल जाते थे। ... भी समय निकालकर शील, ...

कहीं आवेश नहीं है, अनुचित आवेग नहीं है। यह सब उनके लिये सहज है; यह शान्त, उद्वेगहीन और मर्यादासे पूर्ण है। जब उनके ससुर जनक तथा भाई भरत आदि माताओंसहित उन्हें मनाने आते हैं, तब स्नेहके भार एवं शील संकोचसे सिर झुकाये हुए वे केवल अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं और कर्तव्यके निर्णय एवं तत्सम्बन्धी आदेशका भार उन्हींपर छोड़कर चुप हो जाते हैं। अपने धर्ममें दृढ़ रहते हुए भी कहीं गुरुजनसे तर्क वितर्क नहीं करते; सदा अपनी सहज मर्यादाका ध्यान रखते हुए, विनयपूर्वक ही उत्तर देते हैं।

सामाजिक एवं राष्ट्रिय आदर्शोंकी दृष्टिसे विचार कीजिये तो हम उन्हें सदैव अन्याय एवं अधर्मकी शक्तियोंसे युद्ध करते देखते हैं। उनका समग्र जीवन अनैतिकता एवं अधर्मके विरुद्ध निरन्तर संघर्षका जीवन है। सामाजिक दृष्टिसे अपने जीवनमें उन्होंने निषादराज, शबरी इत्यादि निम्न-वर्गोंको अपनाया; अहल्याका उद्धार करके मानो बताया कि महात्मागण पतितसे घृणा नहीं करते, उनमें अपनी शक्तिका, पावनताका आधान कर उन्हें ऊपर उठा देते हैं। छोटे वानर—वनचरोंको अपने संसर्ग और संस्कारसे उन्होंने शक्ति और महत्ताकी सीमापर पहुँचा दिया।

आर्यावर्तका जातीय जीवन उस समय विशृङ्खल एवं विशृङ्खल हो रहा था। विद्या एवं शक्तिसे मदान्ध रावणके आतङ्कसे समस्त दक्षिणा-पथ एवं मध्यभागत काँपता था। भोगोन्मुखी आसुरी सभ्यताने धर्म एवं श्रेष्ठ संस्कारोंका आर्य-जीवन असम्भव कर दिया था। ऋषियों एवं तपस्वियोंके कार्यमें बड़ी बाधाएँ उपस्थित होती थीं। रावणने अपनी विद्या-बुद्धि और वैज्ञानिक सिद्धियोंके बलपर अनेक प्राकृतिक शक्तियोंको वशीभूत कर लिया था, वायु एवं अग्निपर नियन्त्रण स्थापितकर उनसे वह मनमाना काम लेता था। महत्वाकांक्षिणी और आसुरी सभ्यता बढ़ रही थी। मानव-जीवनको आत्मिक विकासके मार्गपर प्रेरित करनेवाली और तपःपूत संस्कृतिको महत्त्व देनेवाली आर्य सभ्यताके लिये घोर संकट उपस्थित था।

श्रीरामने अपने कौशल, पराक्रम, संघटना-शक्ति और अभय आत्म विश्वाससे रावण एवं उसकी अज्ञानमूला प्रवृत्ति-का विनाश किया और बन्धन-ग्रस्त देशको पुनः मुक्त, स्वस्थ वातावरणमें साँस लेने और जीनेका अवसर प्रदान किया। शत्रुके साथ युद्ध करते समय भी हम देखते हैं कि रामके पास भौतिक साधन शत्रुकी अपेक्षा नगण्य थे; परंतु आत्मिक शक्तियों एवं उदात्त गुणोंके समुचित संघटनद्वारा उन्होंने भयंकर शत्रुपर विजय पायी।

असत्य एवं अन्धकारसे सत्य एवं प्रकाशका युद्ध ही रामके जीवनमें प्रबलताके साथ व्यक्त हुआ है। मानव मात्र के जीवनमें यह युद्ध न्यूनाधिक मात्रामें चलता रहता है। और आज तो मानव समाजमें भोगमूलक भौतिक प्रवृत्तियोंकी बाढ़ आ रही है, धर्म मजाककी चीज बन गया है। आसुरी मूल्योंका बोलबाला है; विज्ञान मानवताका उद्धारक और पालक नहीं, भ्रामक एवं विघटनकर्ता हो रहा है। भौतिक सिद्धियोंने आत्मज्ञानकी दृष्टिको आवृत और विभ्रमित कर लिया है। प्रायः वही संकट है, जो रामके सामने था। इसलिये आज उनके जीवनके स्मरण, अध्ययन एवं तदनुकूल आचरणका समय है और उनके असत्य एवं अधर्मके प्रति युद्ध करते हुए, उसके निःशेष निराकरणमें हम जिस सीमातक बढ़ते हैं, उसी सीमातक मानो रामको अपने जीवनमें उतारते हैं। जिस सीमातक हम राममय बनते हैं, उसी सीमातक हम धर्मरूप होते हैं; क्योंकि राम ही आर्यसंस्कृतिकी सामाजिक मर्यादाके आदर्श हैं। वे ही धर्म हैं, वे ही जीवन हैं, वे ही आत्मा हैं, वे ही परमात्मा हैं। उनके चरित्रका श्रवण मनन-अनुकरण कर, उनसे अपने हृदयकी गाँठ बाँधकर हम पावन एवं धन्य हो सकते हैं। केवल व्यक्तिगत मुक्तिके लिये नहीं, वरं सामाजिक एवं वर्तमान रोग मुक्तिके लिये, जिस महाविनाश के गर्तकी ओर हम तेजीके साथ चले जा रहे हैं, उससे रक्षाके लिये आज हमें राम और उनके आदर्शोंकी ही आवश्यकता है।

'शुद्ध ब्रह्म परात्पर राम'

(लेखक—श्रीभगवानप्रसादजी द्विवेदी)

मंगल भवन अमंगल हारी । द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी ॥

(श्रीरामच० मा० १ । ११२ । २)

श्रीरामजी परम विशुद्ध परात्पर सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा हैं । इन्हींको वेद-पुराण षड्दर्शनादि तथा ज्ञानी, भक्त, योगी आदि एक स्वरसे अखण्ड-अनादि-अनन्त-अद्वैत-रस-आनन्द सर्वव्यापी-निरञ्जन, परमसत्य, आदिमध्यान्तरहित, निर्गुण निराकार-स्वयंप्रकाश ज्ञानानन्दैकरसविग्रह सर्वस्वरूप-सर्वगत सर्वज्ञान-सर्वमय-सर्वातीत सर्वसम्बन्धातीत-अद्वितीय-नित्य शुद्ध-बुद्ध—एकमात्र परतः पर, परम सत्तात्मक-स्वरूप, सर्वम-सर्वाधार सर्वनियन्ता सर्वोपाधिवर्जित, सनातन, समस्त सदसद्-वस्तुके निरूपण, परम ज्योतिःस्वरूप, सर्वप्रकाशक, सबमें रमण करनेवाले ब्रह्मपरमात्मा कहते हैं । श्रीरामजी परम शुद्ध, चिद्घनानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, परमपूर्ण ब्रह्म हैं । उनसे कहीं एक परमाणु भी खाली नहीं है । वे सबमें एक समान रम रहे हैं । जो कुछ दृश्य-अदृश्य, सत्-असत्, प्रिय तथा अप्रिय प्रतीत है, वे सब राममय हैं ।

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ।

—यह श्रुति श्रीराममें चरितार्थ होती है । यह सब कुछ ब्रह्म (श्रीराम) मय है । निश्चयपूर्वक उनके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है । एक राम ही सब कुछ हैं । वे परम शुद्ध परात्पर ब्रह्म श्रीरामजी भक्तोंके अहैतुकी कृपावश चिदानन्दमय दिव्य शरीरसे आविर्भूत होकर भवसागरमें डूबते हुए निःशेष जीवोंके कल्याण महान् उद्धारहेतु रघुवंशको पवित्र मर्यादायुक्त परमानन्द-मोक्षदायिनी परम मधुर आदर्श लीला करते हैं ।

गोस्वामी तुलसीदासजी रामचरितमानसमें कहते हैं—

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी ।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की ॥
जो सहस सीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी ।
सुर काज धरि नर राज तनु चले दलन खल निसिचर अनी ॥

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर ।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ॥

(मानस २ । १२५ का छंद १२६ दोहा)

"श्रीरामजी ! आप श्रुतिकी मर्यादाका पालन करनेवाले परब्रह्म परमात्मा हैं । आपकी योगमाया परमाह्लादिनी शक्ति श्रीजानकीजी हैं, जो आपको रुख—प्रेरणा पाकर भ्रूके इशारेमात्रसे जगत्की उत्पत्ति करती हैं, उसका पालन करती हैं और उसका संहार भी करती हैं । श्रीलक्ष्मणजी सहस्र-सिरधारी शेषजी हैं । आपने देवकार्य तथा सुजन-सज्जनके लिये नर-शरीर धारण किया है और खल निशाचरोंका दलन करनेके लिये आप सक्रिय हैं ।

"श्रीराम ! आपका स्वरूप वाणीद्वारा अवर्णनीय है, बुद्धिसे परे है, अविगत है, अकथनीय है, अपार है । वेदतक उसे 'न इति', 'न इति'—इतना ही नहीं, यही नहीं—कहते हैं ।"

चिदानंदमय देह तुम्हारी । बिगत बिकार जान अधिकारी ॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा । कहहु करहु जस प्राकृत राजा ॥

(२ । १२६ । ३)

"राम ! आपका यह देह चिदानन्दमय है—यह प्रकृतिजन्य पाञ्चभौतिक कर्मबन्धनमय—मायिक नहीं है । साथ ही उत्पत्ति, वृद्धि, क्षय, नाश आदि सब विकारोंसे रहित है । संत और सुरोंका हित करनेके लिये आप मानव देह धारण करते हैं और जैसे संसारी लोग—प्राकृत जन—कहते करते हैं, वैसा ही आपका आचरण होता है ।"

गीतामें कहा गया है—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥

(७ । २४)

"बुद्धिहीन मूढ मेरे परात्पर स्वरूपको न जानकर मुझे साधारण मनुष्य मानते हैं, मैं तो अविनाशी आत्मा होते हुए भी अपनी योगमायासे स्वेच्छानिर्मित सच्चिदानन्दविग्रहसे प्रकट होता हूँ ।"

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे । जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे ॥

तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा ।

जगन्माता पार्वतीजीकी जिज्ञासाका भगवान् शंकरजी कहते हैं—

राम सच्चिदानंद दिनेसा । नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
सहज प्रकास रूप भगवाना । नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥

हरष बिषाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ॥

(श्रीरामच० मा० १ । ११५ । १-४; ११६)

श्रीरामचन्द्रजी विशुद्ध सच्चिदानन्दघन हैं। सत्‌का अर्थ है—सदा एक समान रहनेवाला, अविनाशी। सन्तीति सत्—जिसकी सत्ता सदा एक-सी बनी रहती है, जो सदा वर्तमान रहता है, वही 'सत्' है। चेततीति चित्—जो सदा प्रकाशमय ज्ञानस्वरूप है, जिसे कोई प्रकाशित नहीं करता है बल्कि जो स्वयं प्रकाशित होता है, उसे 'चित्' कहते हैं।

आनन्दयतीति आनन्दः। सर्वाप्तकामः सर्वाभावरहितः परमपूर्णः॥

'आनन्द'का अर्थ है—'जहाँ सर्वसुख हो, इच्छामात्रसे ही सब कुछ प्राप्त हो जाय, किसी प्रकारका अभाव न हो। समस्त कामनाएँ पूरी हो जायँ।' अतः जो सर्व-अभावशून्य हो, सब तरहसे परिपूर्ण हो, वही 'आनन्द' है। सत्-चित्-आनन्द मिलकर 'सच्चिदानन्द' होता है। भगवान् श्रीरामजी सदा रहनेवाले, अखण्ड ज्ञानस्वरूप परमानन्दसिन्धु हैं। सदा उदित रहनेवाले सूर्य हैं। उनमें मोह या अज्ञान-अन्धकारमयी रात्रिका लेशमात्र भी नहीं है। वे सहज प्रकाशरूप भगवान् हैं। वहाँ तो विज्ञानरूप प्रातःकाल नहीं है। जब अज्ञानरूपी रात्रि होगी, तभी तो विज्ञानरूपी प्रभात होगा। जब रात ही न होगी, तब प्रभात कहाँसे आयेगा। भगवान् श्रीरामजी तो सच्चिदानन्द दिनेश हैं। हर्ष-विषाद, ज्ञान-अज्ञान, अहंता-ममता—ये द्वन्द्व तो जीवोंके धर्म हैं, अर्थात् ये सब जीवोंमें रहते हैं। श्रीरामजी तो सर्वत्र व्यापक ब्रह्म, परमानन्दस्वरूप परमात्मा हैं। परात्पर परम पुरुषोत्तम पुराणपुरुष सर्वेश्वर हैं, जिनके एक निमेषमें करोड़ों ब्रह्मा, विष्णु, शिवका प्रादुर्भाव और तिरोधान हो जाता है।

श्रीराममें तथा उनकी दिव्यविभूतियोंमें कालचक्रका साम्राज्य नहीं है। काल तो उनका धनुष है—

लव निमेष परमानु जुग बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम को कालु जासु कोदंड॥

(श्रीरामच० मा० लङ्काकाण्ड)

श्रीराम तो कालके भी काल हैं—

भुवनेस्वर कालहु कर काला।

(श्रीरामच० मा० ५ । ३८ । १)

वे ही परम ब्रह्म परमात्मा परम विशुद्ध तत्त्व श्रीरघुकुल-शिरोमणि शिवजीके स्वामी हैं—

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥
आदि अंत कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

× × ×

राम सो परमातमा भवानी।

× × ×

राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी॥

(वही, १ । ११६ । ४; १ । ११७ । २-४; ११८ । १, २; १ । ११९ । १)

शिवजी महाराज कहते हैं—'यह संसार प्रकाश्य है और श्रीरामजी इसके परम प्रकाशक हैं। वे मायाके अधीश्वर, दिव्य अलौकिक अखण्ड ज्ञान और परम विशुद्ध सत्त्वगुण तथा कल्याणमय मङ्गलके धाम हैं। उनकी कृपा-कटाक्षसे सब संशय मिट जाते हैं। उनका आदि, मध्य, अन्त कोई नहीं जान सकता। वेद भी अनुमानसे कहते हैं कि वे सत्तामात्र, अगोचर—इन्द्रियातीत हैं। वे प्राकृत पैर, कान, हाथ, मुँह, नाक, आँखसे रहित होते हुए भी गमनशील, श्रोता, कर्ता, भोक्ता, वक्ता, द्रष्टा हैं। अर्थात् प्राकृत इन्द्रियाँ न होनेपर भी उनके समस्त विषयोंका उपभोग करते हैं।'

श्रुतिमें भी कहा है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

(श्वेताश्वतर० ३ । १९)

'वे बिना हाथ-पैरके वेगवान् और ग्रहणकर्ता हैं, बिना नेत्रके देखता है, बिना कानके सुनता है, वह सभी कुछ

देखें ।' यथा-वाल्मीकिकी प्रेममयी यह वाणी श्रीभगवान्‌को बहुत प्रिय लगी । वे भक्तवत्सल, कृपानिधान, सम्पूर्ण विश्वके निवासस्थान, सर्वव्यापी, 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' सर्वसमर्थ, सर्व-कारण-कारण भगवान् श्रीराम इनके सामने प्रकट हुए । कोटि-कोटि अरब-खरब कामदेव जिनके एक नखकी शोभासे लज्जित हो जाते हैं, ऐसे असंख्य-काम-कमनीय दिव्यातिदिव्य सर्वदा परम सत्य सच्चिदानन्दमय सर्वानन्द-प्रदायक श्रीरामने अपने निज नराकार स्वरूपका दर्शन दिया । परब्रह्म परमात्मा श्रीरामका सब कुछ नित्य तथा परमानन्दप्रदायक है—

रामस्य नामरूपं च लीलाधाम परात्परम् ।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥
(वसिष्ठसंहिता)

'श्रीरामजीका नाम, रूप, लीला और धाम—ये चारों ही परम तत्त्व, दिव्य, ब्रह्म—ब्रह्मस्वरूप, अप्राकृत, नित्य, सच्चिदानन्द, अव्यय—सदा एक समान रहनेवाले हैं । अर्थात् ये चारों परब्रह्म परमात्मा श्रीरामके समान ही हैं । इनमें और राममें कोई अन्तर नहीं है ।' अनन्त छविधाम श्रीरामका अद्भुत स्वरूप अवर्णनीय है । ये ही परात्पर परमप्रभु श्रीराम हैं ।

एतं महिमानं परं ब्रह्मेति चाभ्यधुः ।

"इन श्रीरामकी महिमाको 'परब्रह्म' कहा जाता है ।" ये ही विश्वाधार श्रीराम मनु शतरूपाके लिये प्रकट हुए । इनके वामाङ्गमें इनकी अर्धाङ्गिनी, जो सदा इनसे अभिन्न हैं, परमाह्लादिनी परमाशक्ति श्रीसीताजी शोभित हैं, जिन सीताजी-के अंशमात्रसे अगणित उमा-रमा-ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं, जिनके भृकुटि-विलासमात्रसे संसारका उत्पत्ति-पालन-संहार होता रहता है । अपनी उन अभिन्न शक्ति सीतासहित श्रीरामने मनु-शतरूपाको दर्शन देकर पूर्णरूपसे कृतार्थ किया ।

इन्हीं श्रीरामजीके सम्बन्धमें सामवेद कहता है—

भद्रो भद्रया सचमान आगात्,
स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्, रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥
(उत्तरार्चिक १५४८)

'सर्वाधारभूतका परममङ्गल—कल्याण करनेवाले भद्र श्री-रामजी जगत्कल्याणकारिणी भद्रा … आविर्भूत हुए और देवताओंकी प्रार्थनासे संतुष्ट होकर परम प्रकाशमय अग्निके समान तेजस्वी स्वरूपसे श्रीअयोध्यामें विराजमान हुए । फिर कुछ समय पश्चात् दुष्ट प्रकृतिवाले अपने ही पार्षद जय-विजयका, जो रावण-कुम्भकर्णके रूपमें राक्षसी-योनिमें प्रकट हुए थे, उद्धार करनेके लिये परम तेजस्वी प्रखर बाणोंसे संहार किया और फिर परमधाममें स्थित हुए ।'

श्रीरामचन्द्रजी सच्चिदानन्द दिनेश—सविता हैं । सबको प्रकाशित करनेवाले परब्रह्म परमात्मारूप सूर्य हैं और सब ईशोंके भी परम ईश हैं । जिनसे सब ईश्वरगण प्रभाव तथा बल पाकर 'ईश्वर' कहे जाते हैं, जिनकी स्तुति-वन्दना बड़े-बड़े ईश्वर करते हैं, जिनकी स्तुति नरहरि, वराह, महाविष्णु, विष्णु, महाशम्भु आदि करते रहते हैं, जिनकी प्राप्तिके लिये हितमाननकारी भक्तगण कठिन तपस्या करते हैं तथा बड़े-बड़े मण्डलाचार्य भक्त-ज्ञानी-तपस्वी विविध मार्गसे प्रयत्न करते हैं, वे दक्षिणस्थ परम पुरुष अर्थात् सदा सबके दाहिने रहनेवाले अथवा सदा सबकी रक्षा करनेवाले, सबका माता-पिताकी तरह पालन-पोषण करनेवाले, सर्वेश्वरेश्वर परब्रह्म परमात्मा श्रीराम ही हैं ।

श्रीराम परात्पर हैं, इस सम्बन्धमें वसिष्ठसंहितामें कहा गया है—

परान्नारायणाच्चैव कृष्णात् परतरादपि ।
यो वै परतमः श्रीमान् स वै दाशरथिः स्वराट् ॥
अथ मत्स्याद्यसंख्येयावताराणां ह्यकारणम् ।
ब्रह्मविष्णुमहेशादिसंसेव्यश्चरणाम्बुजः ॥

'श्रीनारायणसे परे, श्रीकृष्णसे भी परे, जो सबके परात्पर परमात्मा हैं, वे ही दशरथनन्दन श्रीराम हैं । ब्रह्मा-विष्णु-महेशादिसे भी सेव्यचरण-कमल तथा मत्स्य-कूर्म-वराहादि असंख्य अवतारोंकी उत्पत्तिके कारण श्रीरामकी ! आपकी जय हो । आपसे श्रेष्ठ कोई नहीं है ।'

वाल्मीकिजीका भी ऐसा ही कहना है—

परं ब्रह्म परं तत्त्वं परं ज्ञानं पर…
परं बीजं परं क्षेत्रं परं …

'श्रीराम ! आप परब्रह्म, …
… जगत्‌की उत्पत्ति …
के कारण हैं ।'

सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम् ।
परात्परतरं तत्त्वं सत्यानन्दं चिदात्मकम् ॥
मनसा शिरसा नित्यं प्रणमामि रघूत्तमम् ।
(श्रीरामरहस्य ११, ४९, ४८)

'अशेषभेदशून्य—अपार ज्ञानानन्द-वारिधि, अद्वितीय-स्वरूप, परात्पर, सूर्यमण्डलस्थ ही नहीं, सूर्यको भी प्रकाश देनेवाले—चक्षोः सूर्यो अजायत—जिनके नेत्रकी ज्योतिसे सूर्यकी उत्पत्ति है—ऐसे सीतायुक्त परात्पर-तत्त्व सत्यानन्दचिदात्म-स्वरूप रघूत्तम श्रीरामको मनसे-शिरसे मैं नमस्कार करता हूँ ।'

सुखस्वरूप रघुबंसमनि मंगल मोद निधान ।
(श्रीरामच० मा० २ । २००)

'श्रीराम सुखस्वरूप तथा मङ्गल और मोदके खजाने हैं ।'

चिद्वाचको रकारः स्यात् सद्वाच्योऽकार उच्यते ।
मकारोऽनन्दवाची स्यात् सच्चिदानन्दमव्ययम् ॥
(महारामायण)

'श्रीरामके नामका रकार चिद्वाचक है, अकार सद्वाचक है तथा मकार आनन्दवाचक है । वे सच्चिदानन्द अव्यय पुरुष हैं ।'

उमा राम की भृकुटि बिलासा । होइ बिस्व पुनि पावइ नासा ॥
(श्रीरामच० मा० ६ । १४ । ४)

ऊपर हम यह कह आये हैं कि श्रीरामके नाम, रूप, लीला और धाम सभी परात्पर हैं । नामकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है । मनु शतरूपाके प्रकरणमें यह बताया जा चुका है कि श्रीराम मनु-शतरूपाके सामने प्रकट हुए । मनुने श्रीभगवान्‌की स्तुति की और वर माँगा—

'चाहउँ तुम्हहि समान सुत—तुम्हारे समान पुत्र चाहता हूँ ।' श्रीभगवान्‌ने उत्तरस्वरूप कहा था—

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई । नृप तव तनय होब मैं आई ॥
(वही, १ । १४९ । १)

'राजन् ! मैं अपने समान [दूसरा] कहाँ जाकर खोजूँ ! मैं ही तुम्हारा पुत्र बनूँगा ।'

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।
(यजुर्वेद ३२ । ३)

'उस परमात्माकी समता करनेवाला कोई नहीं है, उसका नाम ही महान् यश है ।' फलतः उसे अपने समान कौन मिलेगा !

अतः वे ही परात्पर ब्रह्म सच्चिदानन्द परमात्मा श्रीरामरूपमें धराधामपर अवतीर्ण हुए । उन्होंने नररूप धारण किया । देवताओंपर विपत्ति पड़नेपर उन्होंने स्वयं कहा—'तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ।' यहाँ 'नर' रहस्यवाची शब्द है । 'नरति सद्गतिं नयतीति नरः मनुष्यः ।'—जो सद्गति प्राप्त करने-करानेमें समर्थ है, उसे 'नर' कहते हैं ।'

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो ।
(श्रीरामच० मा० ७ । ४३ । ४)

नर तनु सम नहिं कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत तेही ॥
(वही, ७ । १२० । ५)

नर-देह मोक्षका द्वार कहा जाता है—'साधन धाम मोच्छ कर द्वारा ।' (वही, ७ । ४२ । ४) श्रीभगवान् अपनी नर-देहसे शिक्षा देना चाहते हैं कि किस तरह सांसारिक क्लेशोंके इस भवसागरको पारकर मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है । इसलिये नर-शरीरमें आनेके उनके अनेक कारण सामने आते हैं । पहला कारण भक्तोंका रञ्जन, दूसरा कारण संतोंका उद्धार, तीसरा कारण राक्षसोंका—आसुर-वृत्तियोंका विनाश, चौथा कारण लीला—ऐसे अनेक कारण हैं ।

मनु और शतरूपाको वरदान देकर प्रभु अन्तर्धान हो गये । मनु और शतरूपा त्रेतामें दशरथ और कौसल्याके रूपमें प्रकट हुए । इसी अवसरपर पुराणपुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम अंशोंसहित मनुष्यरूपमें प्रकट हुए । श्रीभगवान्‌का यह रूप परात्पर रूप है और इस रूपमें उन्होंने जितनी लीलाएँ की हैं, वे सभी परात्परताकी झाँकियाँ हैं, साकार प्रतिमाएँ हैं, ऐसी झाँकियाँ जिन्हें देखकर साधारण जन तो अलग रहे, परमज्ञानी भरद्वाज मुनितक ऋषि याज्ञवल्क्यसे प्रश्न कर बैठे—

प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि ।
(वही, १ । ४६)

इस तरहकी शङ्का भरद्वाजको ही हुई हो, ऐसी बात नहीं है, जगज्जननी सतीतक इस मोहमें पड़ गयी थीं । उनके मनमें भी शङ्का उठ खड़ी हुई थी—

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ॥
(वही, १ । ५०)

यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥
न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥
अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः॥
तस्मिन्हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्॥
(अथर्ववेद १०। २। २८-३३)

"उपनिषद्-विभूतिमें परब्रह्म परमात्मा श्रीरामका धाम साकेत या अयोध्या है, जिसके स्वामी श्रीरामजी हैं। जो प्रेमी अनन्यभक्त या ज्ञानी उस ब्रह्मपुर—श्रीरामपुरको तथा श्रीरामब्रह्मको जान लेता है, वह श्रीरामभक्तिद्वारा श्रीराम-कृपासे संयुक्त होकर, स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर तथा जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंसे पार होकर, तुरीयावस्था—मुक्तिमें पहुँचकर, सच्चित्-आनन्दस्वरूप सालोक्य-सामीप्य सारूप्य-सायुज्य मुक्तिका अधिकारी बन जाता है। वह दिव्य—अप्राकृत—ब्रह्मशरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। तब वह श्रीराम-कृपासे ही अमृतसे आवृत, मृत्युरहित, कालातीत ब्रह्मपुर—श्रीरामकी पुरी अयोध्याको प्राप्त होता है। तब ब्रह्म श्रीरामजी उसको अपने सदृश परम दिव्य ज्ञान, दिव्य चक्षु, प्राण, ओज, कान्ति, बल—सब कुछ दे देते हैं। उस मुक्तात्मा भक्तको श्रीरामका दिया हुआ प्राण-चक्षु आदि कभी नहीं त्यागता अर्थात् वह अमर हो जाता है, वहीं निवास करने लगता है। वह रामधाम साकेत आठ आवरणयुक्त है और उसमें नौ द्वार हैं। इन द्वारोंपर श्रीरामजीकी विमलादि शक्तियोंसे संयुक्त पार्षद—द्वारपाल हैं। ऐसी दिव्य पुरी अयोध्या श्रीराम-भक्तोंका निवास-स्थान है। इसमें सब दिव्य रत्नकोष, प्रकाश-मय स्वर्ग, परमानन्दमय धाम है। इस अयोध्याके मध्यभागमें राजभवन है। यहाँ तीन आवरणसे परिवेष्टित हिरण्मय कोशमें कमलके आकारवाले दिव्य सिंहासनपर परमात्मा श्रीराम विराजमान हैं। इन्हींको ब्रह्मज्ञानी लोग 'परब्रह्म' कहते हैं। ये ही सबको प्रकाशित करनेवाले परमशुद्ध परात्पर ब्रह्म श्रीराम हैं। ये स्वयं प्रकाशमान, सबके क्लेशहर, सर्वेश्वर हैं। परम यशसे परिपूर्ण हिरण्मयी इनकी दिव्यपुरी अपराजिता—अभेद्या, योद्धुमशक्या, अयोध्या है। इसीमें परात्पर श्रीराम विराजमान हैं। इनकी अपार महिमाका कौन वर्णन कर सकता है।

श्रीरामका नाम, रूप, लीला और धाम—सभी परात्पर हैं। श्रीरामको पानेका एकमात्र साधन-भक्ति है। भगवान् स्वयं अपने श्रीमुखसे कहते हैं—

सोऽहं सर्वगतः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः।
मया ततमिदं विश्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥
अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः।
धार्मिकाणां च गोप्ताहं निहन्ता वेदविद्विषाम्॥
अहं वै सर्वसंसारान्मोचको योगिनामिह।
संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः॥
अहं हि भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः।
परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते॥
नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम्॥
(महारामायण १२। अ० ११। १६-१७; १४। ४७-४८; ११।२)

"हे वायुनन्दन! मैं सर्वगत, शान्त, ज्ञानात्मा—अखण्ड ज्ञानस्वरूप परमेश्वर परमात्मा हूँ। मुझसे ही यह संसार व्याप्त है। मैं सभी योगियोंका अविनाशी गुरु, धर्मात्माओंका रक्षक और वेद-निन्दकोंका संहारक हूँ। योगी-यति, भक्त-ज्ञानी—सभीको मुक्ति देनेवाला मैं ही हूँ—

रघुपति बिमुख जतन कर कोरी। कवन सकइ भव बंधन छोरी॥
(श्रीरामच० मा० ७। ११९। ५)

"मैं ही संसारका कारण हूँ और संसारसे रहित भी हूँ। मैं ही भगवान् ईश्वर, स्वयंज्योति सनातन परमात्मा हूँ, परब्रह्म हूँ। मुझसे अन्य कुछ भी नहीं है। हे हनुमान्! मैं नाना प्रकारके तपोंसे, दान एवं यज्ञादिसे नहीं जाना जा सकता—नहीं प्राप्त होता। मेरी प्राप्ति करानेमें मेरी अनन्य भक्ति ही साधन है।"

श्रीरामका स्वरूप

[लेखक—डॉ० सत्यनारायणजी शर्मा, एम्० ए०, (हिंदी एवं संस्कृत,) पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न, साहित्याचार्य]

श्रीरामके स्वरूपको समझनेके लिये प्राचीन ग्रन्थोंके अनुसार ईश्वरके अस्तित्व एवं स्वरूपका थोड़ा विवेचन कर देना आवश्यक है। यों तो विश्वके प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदमें अनेक देवताओंका वर्णन है, परंतु उनमें तीन प्रधान हैं—अग्नि, इन्द्र और सूर्य। यथार्थतः ये भी एक ही परमात्माके भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। इस बातका प्रमाण ऋग्वेदका 'पुरुषसूक्त' है। इस सूक्तके पहले मन्त्रमें पुरुष अर्थात् ईश्वरको सहस्र सिरों, सहस्र चक्षुओं एवं सहस्र चरणोंवाला कहा गया है और उसको इस समग्र ब्रह्माण्डको चारों ओरसे व्याप्त करके दस अंगुल ऊपर उठा हुआ भी बतलाया गया है।[1] दूसरे मन्त्रमें स्पष्ट उद्घोष है कि जो कुछ होनेवाला है, हुआ है और है, वह सब पुरुष या ईश्वर ही है। तीसरे मन्त्रमें इस सारे ब्रह्माण्डसे भी उसकी महिमा बड़ी कही गयी है। चौथे मन्त्रमें उसे ही सारे ब्रह्माण्डमें चेतन और अचेतन प्राणियों और वस्तुओंमें व्याप्त होनेवाला कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि सर्वव्यापी, सबका कारण एवं सबसे परे ब्रह्म एक ही है और सारे देवता उसके अङ्ग एवं उपाङ्ग हैं।[2]

ऋग्वेदमें एक अन्य महत्त्वपूर्ण देवता भगवान् विष्णु भी हैं। इनका वर्णन बहुत थोड़े मन्त्रोंमें हुआ है, पर उन्हीं मन्त्रोंसे उनकी सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित होती है। विष्णुके [illegible] भरने [illegible] सारे ब्रह्माण्डको ढक लेने एवं परिव्याप्त करनेकी बात कही गयी है।[3] उन्हें समस्त संसारका रक्षक बतलाया गया है और यह भी कहा गया है कि उनका आघात करनेवाला कोई नहीं है।[4] आगे सूक्त १५४में विष्णुके द्वारा तीनों लोकोंको तीन डगोंमें मापनेकी चर्चा की गयी है और उन्हें इन तीन तथा औरोंके भी धारक अर्थात् पृथ्वी, द्युलोक एवं समस्त भुवनोंको धारण करनेवाला कहा गया है।[5] वे सनातन, नित्य तरुण, सबके पालक एवं सर्वोपरि हैं।[6] साथ ही वे प्राचीन, वेदोंके नित्य नवीन, स्वयम्भू, इन्द्रसखा एवं देवोंमें सर्वाधिक पराक्रमशील भी हैं।[7]

वस्तुतः 'विष्णु' शब्द 'विष्लृ' धातुसे बना है, जिसका अर्थ होता है—सर्वत्र व्याप्त होना। अतः विष्णु यथार्थमें वे ही हैं, जिन्हें ऋग्वेदमें 'पुरुष' कहा गया है। इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वरुण आदि जितने वैदिक देवता हैं, सब उसी पुरुष या विष्णुके अङ्गोपाङ्ग हैं।[8]

निर्गुण एवं निरञ्जन परमात्माके जो तीन सगुण रूप माने गये, वे हैं—ब्रह्मा अर्थात् सृष्टिकर्ता, विष्णु अर्थात् पालनकर्ता और रुद्र या शिव अर्थात् संहारकर्ता। पौराणिक युगमें प्रधानतया इन्हींका पूजन होता था। इनमें भी विष्णु तथा शिवका विशेषरूपसे पूजन हुआ, जिनके अनुयायी क्रमशः वैष्णव तथा शैव कहलाये।

पुरुष, ब्रह्म या ईश्वरके दो रूप स्वीकार किये गये हैं—'निर्गुण' और 'सगुण'। निर्गुण और सगुणका विवेचन बड़ा ही कठिन है। वस्तुतः ब्रह्म, विष्णु या पुरुषका वास्तविक स्वरूप हमारी इन्द्रियोंसे अगम्य है। इसीलिये वह अगम्य, अगोचर एवं निर्गुण है। उसका दूसरा स्वरूप, जो अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त तथा उससे परे है, वह हमारी इन्द्रियोंद्वारा ग्राह्य है। अतएव सगुण है। इस प्रकार ब्रह्म निर्गुण भी है और सगुण भी है।

इस निर्गुण-सगुण ब्रह्मका विवेचन किये ग्रन्थोंके रूपमें भारतीय दर्शनका वर्णन हिंदू धर्मग्रन्थोंमें अत्यन्त प्राचीन कालसे चला आ रहा है। वेदोंमें भगवान् विष्णुके रूप तीन ही डगोंमें समग्र ब्रह्माण्डके नाप लेनेकी कथा प्रसिद्ध है,[9] जो वामनावतारका आधार है। यों तो अवतारोंकी संख्या चौबीस है,[10] पर प्रमुख अवतार दस ही माने गये हैं।[11] विष्णुके दशावतारों—

१. ऋग्वेद, म० १०, सूक्त ९०, मन्त्र १।
२. वही, म० १, सू० १६४, मन्त्र ४६।
३. वही, म० १, सू० २२, मं० १७।
४. ऋग्वेद, म० १, सू० २२, मं० १८।
५. वही, म० १, सू० १५४, मं० १, ४।
६. वही, म० १, सू० १५५, मं० ५-६।
७. वही, म० १, सू० १५६, मं० २, ५।
८. यजुर्वेद, अ० ३१, मं० १-३।
९. ऋग्वेद, म० १, सू० १५५, मन्त्र ४।
१०. श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १, अध्याय ३, श्लोक ६—२५।
११. वही, स्कन्ध ११, अ० ४, श्लोक १८—२२।

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहोऽथ वामनः।
रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किश्च ते दश ॥

—यही कथा पुराणोंमें चिरकालसे वर्णित होती रही है, जिसे पीछेके कवियोंने भी स्वीकार कर लिया है। इस प्रकारके अवतारवादका सबसे पहले उल्लेख भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें किया है।[12] गीताका तो इस सम्बन्धमें यहाँतक कथन है कि 'जो पुरुष भगवान्‌के दिव्य जन्म एवं दिव्य कर्मको जान लेता है, वह शरीर त्यागकर उनसे मिल जाता है और फिर जन्म नहीं लेता।'[13]

अब प्रश्न यह है कि तुलसीके श्रीराम किसके अवतार हैं? वे ब्रह्म, पुरुष या विष्णुके अवतार हैं अथवा स्वयं परात्पर ब्रह्म हैं? वस्तुतः ब्रह्म, पुरुष या विष्णुकी जो महिमा बतलायी गयी है, उसपर विचार करते हुए इन तीनोंको एक ही तत्त्वके भिन्न भिन्न नाम स्वीकार करना पड़ता है। यथार्थमें तुलसीने भी अपने रामको उपर्युक्त ब्रह्म, पुरुष या विष्णुका स्वरूप ही माना है। जिस तरह प्राचीन शास्त्रोंके अनुसार ब्रह्म, पुरुष या विष्णुसे बड़ा कोई देव नहीं है, उसी तरह तुलसीके अनुसार श्रीरामसे बड़ा कोई देव नहीं है। अतः तुलसीके श्रीराम भी ब्रह्म, पुरुष या विष्णुसे भिन्न नहीं हैं। अध्यात्मरामायणकारने भी दाशरथि रामको विष्णुका ही अवतार माना है।[14] आदिकाव्यमें आदिकविने उन्हें विष्णुका अंशावतार बतलाया है।[15] श्रीमद्भागवतमें भी उन्हें साक्षात् ब्रह्ममय हरिका अंशावतार कहा गया है।[16] यहाँ 'हरि' शब्दका अर्थ विष्णु लेनेसे भागवतके अनुसार भी श्रीराम विष्णुके ही अवतार सिद्ध होते हैं।[17]

श्रीरामचरितमानसमें तुलसीने श्रीरामको कहीं-कहीं तो अनादि ब्रह्म माना है और कहींपर उन्हें हरि या विष्णुका अवतार घोषित किया है। यदि इतना ही होता तो इस सम्बन्धमें विवादकी कोई आवश्यकता नहीं होती। उन्होंने कहीं-कहीं ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन सबको श्रीरामसे पृथक् तथा उनका सेवक भी बतलाया है। निम्नाङ्कित स्थलोंमें तुलसीने श्रीरामको परब्रह्मरूपमें स्वीकार किया है—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद ॥
(मा० १। १९८)

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा ॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ॥
(मा० २। ९२। ४)

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं ॥
अमलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं ॥
(मा० ३। १०। ६)

तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥
(मा० ४। ३५। ६)

बिस्वरूप रघुबंसमनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु ॥
(मा० ६। १४)

सोइ सच्चिदानंद घन रामा। अज बिग्यान रूप बल धामा ॥
ब्यापक ब्याप्य अखंड अनंता। अखिल अमोघसक्ति भगवंता ॥ [?]
प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥
(मा० ७। ७२। ३,४)

इसी प्रकार कहीं-कहीं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें श्रीरामको उन्होंने विष्णुका अवतार भी माना है। सर्वप्रथम पार्वतीके पूछनेपर शिवने भिन्न-भिन्न कल्पोंमें अवतारके जो कारण बतलाये हैं, उनमेंसे तीन कल्पोंमें श्रीरामको विष्णुका अवतार कहा गया है।[18]

स्वयं तुलसीने श्रीरामको विष्णुके अवतारोंके बीच परिगणित किया है—

उमहि त्रिबिक्रम भए खरारी।
(मा० ४। २८। ४)

महिषासुर मधु कैटभ जेहिं मारे। महाबीर दितिसुत संघारे ॥
जेहिं बलि बाँधि सहस भुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा ॥
(मा० ६। ६। ४)

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी ॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो। नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो ॥
(मा० ६। १०९। ४)

१२. गीता, अ० ४, श्लो० ६—८; अ० १०, श्लो० ४१।

१३. गीता, अ० ४, श्लो० ९।

१४. अध्यात्मरामायण, बालकाण्ड, सर्ग २ श्लोक २८-२९।

१५. वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, सर्ग १५, श्लोक २८-३०।

१६. श्रीमद्भागवत, स्कन्ध ९, अ० १०, श्लोक २।

१७. यों तो 'हरि' का पर्यायवाची शब्द विष्णु है ही, किंतु 'ब्रह्म' तथा 'हरि' शब्द रामके लिये भी श्रीमद्भागवत स्कन्ध ९, अ० १०, श्लोक २ में एक साथ ही व्यवहृत भी हुए हैं।

१८. मा० १। १२१। १। १२४।

यथार्थतः एक ही तत्त्व हैं।[10] तुलसीने यत्र तत्र राम-भक्तोंको प्रायः विष्णु-भक्त भी कह दिया है।[11] इससे भी सिद्ध है कि वे राम और विष्णुमें कोई अन्तर नहीं मानते।

उपर्युक्त तथ्योंसे ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीके श्रीराम परब्रह्म एवं विष्णु दोनोंके ही अवतार हैं। यथार्थतः प्राचीन वैदिक दृष्टिसे यह बात असंगत भी नहीं है। कारण यह है कि परब्रह्म, पुरुष या विष्णुमें वेदोंने कोई अन्तर नहीं माना है। परंतु तुलसीने कहीं-कहीं श्रीरामको विष्णुसे पृथक् उनके वन्दनीय तथा उनको नचानेवाला भी कहा है—

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
(मा० १।१४४।६)

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। बिधि हरि हर बंदित पद रेनू॥
(मा० १।१४६।१)

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
(मा० १।३१६।२)

जग पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
(मा० २।१२६।१)

जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
(मा० ५।२०।१)

बिष्नु कोटि सम पालन कर्ता।
(मा० ७।९२।१)

हरिहि हरिता, बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो दई।
सोइ जानकी पति मधुर मूरति, मोदमय मंगल मई॥
(विनय-पत्रिका, पद ११५, छंद ३ की अन्तिम पंक्तियाँ)

ऐसी स्थितिमें यह संदेह होना स्वाभाविक है कि आखिर उनके राम किसके अवतार हैं? गोस्वामीजीने कतिपय स्थलोंपर राम और विष्णुमें जो इस प्रकार भिन्नता प्रदर्शित की है, इसका प्रमुख कारण यह है कि उनके युगमें या उनसे कुछ पूर्व कबीर आदि निर्गुणवादी संतोंने दाशरथि रामको सामान्य मनुष्य सिद्ध करनेका प्रयत्न किया था। वे सगुण-वादको निरर्थक, असत्य एवं उपहसनीय प्रमाणित करना चाहते थे। उनके इस प्रयत्नसे हिंदुओंके वेद-शास्त्र-पुराणानु-मोदित भागवत-धर्मपर आघात पहुँचता था। इसीलिये सूर और तुलसी-जैसे सगुण-ब्रह्मवादी संत निर्गुण-ब्रह्मवादी संतोंकी विचारधाराओंका खण्डन करनेके लिये तत्पर हुए। यही कारण है कि तुलसीके समक्ष जब यह शङ्का प्रकट की जाती थी कि दाशरथि राम मनुष्य हैं अथवा परब्रह्म, तो वे आवेशमें आ जाते थे।[12] सूरदास इस प्रकारके आवेशमें तो नहीं आते थे, पर निर्गुण-ब्रह्मवादियोंसे इस सम्बन्धमें वे बड़ी मीठी चुटकी लेते थे।[13] कबीर-जैसे निर्गुण-ब्रह्मवादीका कथन था—

दशरथ सुत तिहुँ लोकहिं जाना। राम नामका मरम है आना॥[14]

साथ ही वे अपने रामको सभी देवी-देवताओंसे बड़ा और निर्गुण मानते थे। तुलसीदासने इसीलिये दाशरथि रामको निर्गुण एवं परात्पर ब्रह्मका भी अवतार स्वीकार किया और पौराणिक परम्पराओंका निर्वाह करनेके लिये उन्हें विष्णुका भी अवतार माना। विष्णुसे श्रीरामको बड़ा माननेका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि श्रीराम तुलसीके इष्टदेव थे। आराधकके लिये आराध्यसे बढ़कर महान् कोई अन्य नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥[15]

अर्थात् 'जो भक्त जिस रूपकी अर्थात् देवताकी श्रद्धासे उपासना करना चाहता है, उसकी श्रद्धाको मैं उसीमें स्थिर कर देता हूँ।'[16] गीताके इस सिद्धान्तका प्रमाण तुलसीकी श्रीरामोपासनामें अत्यन्त स्पष्ट है।

---

१०. मा० १।९।९।
११. मा० १।१११।१; १।१७५।१।
१२. मा० १।१११।४; १।११४।
१३. सूरसागर, दशम स्कन्ध, पद १६११, पद १९२८-१९२९।
१४. बीजक, पृष्ठ १०९, पद १०९, पंक्ति २।
१५. गीता ७।२१।
१६. तिलककृत 'गीतारहस्य', पृ० ७११।

भी। वे देव-असुर—सब कुछ हैं, वे कलाविद् (Artist) हैं, दार्शनिक (Philosopher) हैं। वे इस संसारके हैं और इस संसारके उस पारके भी हैं। वे ही समस्त क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ हैं। ऐसे ही एक पुरुषोत्तम 'मानुष'का आश्रय लेकर तुलसीदास-जीने समस्त भारतवर्षको एक अखण्ड मानवता राज्यमें परिणत कर देनेके उद्देश्यसे 'श्रीरामचरितमानस'रूपी शक्तिकी अवतारणा की। 'राम'के जीवनके केवल तत्त्वज्ञान ही सत्य नहीं है, 'राम'के जीवनमें 'नाम' भी सत्य है। यह निर्गुण-सगुण दोनोंकी अपेक्षा सत्य है—यही तुलसीदासजीका दान है। 'नाम' वस्तु सगुण-निर्गुण दोनोंसे 'अधिक' (Transcendental) है, इस प्रकार कहनेका साहस भक्तके सिवा और किसका हो सकता है।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरें मत बड़ नामु दुहू तें। किए जेहिं जुग निज बस निज बूतें॥
(श्रीरामच० मा० १।२२।१)

मायावादने 'नाम-रूप'की व्याख्या न कर सहजेपर कह दिया—'नाम-रूप मिथ्या है।' भक्तिवादने इसका तीव्र प्रतिवाद करके कहा—'नाम ब्रह्मका ही स्वरूप है, बल्कि नाम नामीसे भी बड़ा है।' 'कहउँ नामु बड़ राम तें' (वही, १।२३)—नाम रामसे भी बड़ा है, मैं यह कहता हूँ।'

नाम-रूपात्मक इस जगत्‌को जो ब्रह्मकी तरह ही (ब्रह्मरूपसे ही) सत्य सिद्ध करनेके लिये जगत्‌में अवतीर्ण होते हैं, वे ही हैं पुरुषोत्तम। पुरुषोत्तममें ब्रह्म सत्य है, जगत् भी सत्य है। मायावादमें 'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है।' परंतु मानुष 'राम' सर्वगुणसमन्वित निर्गुण हैं, सर्वविशेषयुक्त निर्विशेष हैं। ऐसे ही श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें भारतवर्षका निर्माण होगा। जो लोग नाम-रूपात्मिका प्रकृतिके भयसे भागकर प्रकृतिके उस पार कैवल्यके अंदर शान्ति-लाभ करनेके लिये व्याकुल हैं, श्रीरामजीकी लीला मानो उनका मार्ग रोककर खड़ी है। प्रकृतिकी युद्ध-घोषणा (Challenge) को स्वीकार करके जो एक पैर भी विचलित न होकर अभ्युत्थानसे खड़े रहनेका साहस और सामर्थ्य रखते हैं, वे ही वीर हैं, वे ही पुरुष हैं। जो प्रकृतिके भयसे भीत हैं, प्रकृतिके नाम-रूपको लेकर रमण करते जिनका कलेजा काँपता है, वे 'नाम-सत्य'को नहीं समझ सकते। 'नाम-सत्य' उनके लिये नहीं है। जो रमण करते हैं, वे ही 'राम' हैं। प्रकृतिके समस्त स्तरोंमें, सम्पूर्ण अङ्गोंमें रमण करनेपर भी अनाहत जिनका स्पर्श नहीं कर सकता, वे ही राम, सीताराम या श्रीराम हैं और सीता का प्रकृति हैं। प्रकृतिकी यह घोषणा थी—

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥
(श्रीदुर्गा० ५।१२०)

'जो मुझको संग्राममें जीत सकेगा, जो मेरा दर्प चूर्ण करेगा, जो मेरा प्रतिबली होगा, वही मेरा भर्ता होगा।' विश्वके महाक्षेत्रमें ऐसे दो ही 'पुरुष' हुए हैं, जो प्रकृतिके सम्पूर्ण स्तरोंमें स्वच्छन्द विचरण करनेका अनन्त साहस रखते हैं और जिनके चरणतलोंपर स्वयं मदन मोहित है। वे हैं 'श्रीराम' और 'श्रीकृष्ण'। प्रकृतिके वक्षःस्थलपर रमण करनेका दुर्जय और अनन्त साहस 'श्रीराम' और 'श्रीकृष्ण'-के अतिरिक्त और किसमें है? श्रीराम ही वास्तवमें सत्य जगन्नाथ हैं और श्रीकृष्ण ही पुरुषोत्तम भर्ता हैं। प्रकृतिके सारे मुहूर्तोंमें, सम्पूर्ण युद्धोंमें वेदान्तमय जीवन बनाये रखनेका दृष्टान्त दिखाया है पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने। जगत्‌के और उस पारके निर्मल वैकुण्ठधामके अद्वैतवादको चरित्रधामय युद्धके वक्षःस्थलपर स्थापित करनेकी सामर्थ्य रखनेवाले होनेमें ही 'श्रीराम' वीर हैं। जो ब्रह्मचारी प्रकृतिके भयसे अपनेको बचानेमें ही व्यस्त है, श्रीराम वैसे ब्रह्मचारी नहीं हैं। हमें आवश्यकता है आज सच्चे ब्रह्मचारी श्रीरामके जीवनकी। जो ब्रह्मचर्य सामनेसे हटकर मायाका पाश कटाना चाहता है, जो ब्रह्मचर्य प्रकृतिके प्रति विद्वेषका पोषण करनेमें ही प्रवृत्त है, वह ब्रह्मचर्य भारतवर्षकी वर्तमान समस्याका समाधान करनेमें असमर्थ है। उसने तो केवल जीवनको दबाया ही है। उसकी सारी चेष्टा जीवनयन्त्रकी गतिको धीमी करके स्थितिके बन्धनमें बाँध देनेकी ओर ही रही है। जीवनकी सम्पूर्ण दिशाएँ शक्तिसे भरपूर होकर भी उच्छृङ्खल न हो सकें, श्रीरामके जीवनमें दिखने इसी बातको प्रत्यक्ष देखा है। हजारों वर्षोंसे भारतवर्ष उस उपदेशको नहीं जानता, जिसमें 'न्याय्यकर्मको नहीं सूखने देकर संयमकी बात कही गयी है। बहुत दिनोंसे भारतवर्षको ब्रह्मचर्यका यह मार्ग नहीं मिला है, जिसमें शक्तिके स्पन्दनको रोकनेकी आवश्यकता न हो। आज श्रीरामके जीवनमें निष्ठ उसीको देखेगा। धनुर्धरत्व और योगेश्वरत्वके सम्मिलनमें ही वीर्य स्थिर होनेकी सम्भावना है। 'निर्गुन ... और योगराम धनुसे ही ... धनुको खोकर 'योग', 'प्रेम'

थे, उनके व्यवहारमें दीखता था । वे कैसे अद्भुत नर थे ! क्या भगवत् कहीं भी उनके इन गुणोंकी तुलना पायी गयी है ? इसी एकमात्र नर-शरीरधारी महात्मा, मर्यादापुरुषोत्तमके सिवा अन्य किसी मानवका पता नहीं मिलता । ऐसा नाम दूसरा नहीं है और ऐसा मानव भी दूसरा नहीं हुआ । उनके जैसा होना मिलना ही नहीं, असम्भव है । असाधारण पुरुषार्थपरायण होनेके साथ ही वैसा दैवानुसारी जीवन और ऐश्वर्य किसी राज-परिवारमें नहीं देखा गया । वे विश्वव्यापी प्रजा-पालक थे, यह सत्य है; परंतु ऐसा चरित्रवान् राजा भी दूसरा नहीं हुआ । इस चरित्रके गुणसे ही वे विश्वके लिये प्रणम्य हो गये ।

श्रीसीता-तत्त्व

(ब्रह्मीभूत पूज्यपाद श्रीश्रीभार्गव शिवरामकिंकर योगत्रयानन्द स्वामीजी महाराज)

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तित्रयं यद्भावसाधनम् ।
तद्ब्रह्मसत्तासामान्यं सीतातत्त्वमुपास्महे ॥*

वक्ता—रमा ! आज सीतानवमी है ।

जिज्ञासु (रमा)—पञ्चाङ्गमें मैंने एक चित्र देखा है, जिसके नीचे लिखा है—'श्रीश्रीसीतानवमीव्रतम् ।' दादा ! इस महीनेकी इस तिथिको सीतादेवीने जन्म ग्रहण किया था, क्या ! इसीसे इसका नाम 'सीतानवमी' पड़ा है ?

वक्ता—हाँ, आज ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी, सर्ववेदमयी, सर्वदेवमयी, सर्वलोकमयी, सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी, सर्वाधारकार्यकारणमयी, इच्छा-ज्ञानक्रियाशक्तिमयी,-विश्वमाता, महालक्ष्मी सीतादेवीके जगद्धितार्थ स्थूल-रूपमें पृथ्वीपर अवतरित होनेका दिन है । आजका दिन जगत्के लिये क्या ही आनन्दका है ! क्या ही सौभाग्यका है !! आज जगत्को विशुद्ध ज्ञान तथा भक्ति सिखानेके लिये, निखिल कोमल भावोंका विमल रूप दिखानेके लिये जगन्माताके इस दुःखमय मर्त्य-धाममें स्थूल रूपमें प्रकट होनेका दिन है । अहा ! किसी अवस्थामें भी जिनका चित्त सर्वाभिराम राम-रूपको छोड़कर अन्य किसी रूपमें गमन नहीं करता, जिनके चरित्रका स्मरण करनेपर पातिव्रत्यकी विमल छवि नेत्रोंके सामने नाचने लगती है; पृथिवीके अन्य किसी देशमें, किसी कालमें, कोई कवि जिनके आदर्श चरित्रकी पूर्ण छवि अपनी कल्पनारूपी तूलिकाद्वारा अङ्कित करनेमें समर्थ न हो सका; जिनके मातृभावकी उपमा नहीं, जिनके पातिव्रत्यकी तुलना नहीं, जिनके धैर्यकी सीमा नहीं, जिनकी कोमलताका दृष्टान्त नहीं; जिनकी निर्मल तेजस्विता अनुपमेय है; शरणागत भक्तोंपर जिनका प्रेम, दुःखियोंपर जिनकी करुणा अतुलनीय है; जिनका सुस्निग्ध, सौम्य हृदय देखकर अग्निको भी शीतल होना पड़ा था;

* सीता-तत्त्व क्या है, यह उपर्युक्त श्लोकमें स्पष्टरूपसे बतलाया गया है । इच्छा, ज्ञान और क्रिया—इस शक्तित्रयके सत्त्वमात्रसे जो भाव विमल बुद्धि-दर्पणमें प्रतिबिम्बित होता है, वह ब्रह्मसत्तासामान्य—वह अखण्ड सच्चिदानन्दमय ब्रह्मभाव ही 'सीतातत्त्व' है । सीतोपनिषद्में कहा गया है—'सीता सर्ववेदमयी है, सर्वदेवमयी है, सर्वलोकमयी है ।' कहना न होगा कि 'सीता सर्ववेदमयी है' इस वाक्यका यदि अभिप्राय जानना हो तो पहले वेदका स्वरूप जानना होगा । क्योंकि वेद-त्रय इच्छा-क्रिया-ज्ञान-शक्तिरूप है । 'सीता' शब्दका उच्चारण करनेपर साधारणतः लोगोंके चित्तमें जो भाव उदय होता है, उस भावसे सीताको 'सर्ववेदमयी' समझना असम्भव है । 'सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता ।' (सीतोपनिषद्), 'सीताको मूलप्रकृतिसंज्ञिता भगवती जानना'—सीतोपनिषद्की यह बात भी दुर्बोध या अबोध्य है, इसमें भी संदेह नहीं ।

'सा देवी त्रिविधा भवति शक्त्यात्मना—इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिः साक्षाच्छक्तिरिति ।' (सीतोपनिषद्) । 'सीतादेवी शक्त्यात्मामें इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति तथा साक्षात्-शक्तिके भेदसे त्रिविधा है ।' सीतोपनिषद्में सीतादेवी मूल-प्रकृति तथा प्रणवस्वरूपिणी कही गयी है—

मूलप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिः स्मृता ।
प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते ॥ (सीतोपनिषद्)

सीतादेवीको मूल-प्रकृति या प्रणवस्वरूपिणी कहनेसे ही यह सूचित होता है कि सीतादेवी सर्ववेदमयी है, इच्छा, क्रिया तथा ज्ञान—इस शक्तित्रयका तत्त्वज्ञान ही सीता-तत्त्वका प्रधान है । 'ज्ञान, क्रिया और इच्छा'—ये सत्त्व, रज और तम—इन गुणत्रयात्मिका प्रकृतिके ही कार्य हैं । [illegible] संसार [illegible] । [illegible]
क्रियाकर्मनियमेन [illegible]
महाभारत) ।

माँके दो रूप हैं—अव्यक्त और व्यक्त। अव्यक्तरूपिणी महामाया किस तरह व्यक्त रूप धारण करती हैं, अब यही कह रहे हैं।

'प्रथमा शब्दब्रह्ममयी स्वाध्यायकाले प्रसन्ना'—माँका प्रथम व्यक्त रूप है उनका 'शब्दब्रह्ममय' रूप, अर्थात् वेद-पुराण आदि पढ़नेके समय जिनकी कृपासे हम उन्हें (उन शास्त्रोंको) समझा करते हैं, उनको जाना करते हैं, माँका वह रूप। स्वाध्याय या वेदपाठ करते-करते (अर्थबोध तथा यथार्थ मननादिके साथ) जब पहले आनन्दानुभव होता है, तब फिर सीताका दर्शन होता है। स्वाध्याय करते-करते ऐसा ख्याल होता है कि मैं अशेष पापपङ्कमें निमग्न था, अब वेदाध्ययन करके निष्पाप हुआ, मैंने सीताके रूपका दर्शन किया। यह नहीं कि केवल मैं ही एक वेदाध्ययन कर रहा हूँ और माँकी कृपासे उसकी अर्थोपलब्धि करके आनन्द-लाभ कर रहा हूँ, प्रत्युत इसके पहले भी जिस-जिसने वेदाध्ययन करके आनन्दलाभ किया है, उसे भी माँकी ही कृपासे उसकी अर्थोपलब्धि हुई है और आनन्द मिला है। सबसे पहले ब्रह्मा आदिने ही माँका स्मरण किया था और वेदाध्ययन किया था।

'द्वितीया भूतले हलाग्रे समुत्पन्ना'—यही माँके अवतारका रूप है। माँका द्वितीय व्यक्त रूप यही है, जिसमें वह भूतलपर हलाग्रमें जानकीरूपसे अभिव्यक्त हुई थीं।

भूतल—आधार-शक्ति जो वस्तु है, वह विष्णुकी ही शक्ति है। पृथिवीशक्ति—आधारशक्ति। सीता ही पृथिवी-शक्ति है—जिस शक्तिने जगत्को धारण कर रखा है। इसीलिये सीता पृथिवीरूप होकर अवतीर्ण हुई थीं। मननशील साधकको इसमें कुछ और भी विशेष तत्त्व दिखायी देगा। सूक्ष्म किस तरह स्थूल अवस्थाको प्राप्त होता है, यहाँपर यह विचार करना चाहिये। माँका प्रथम व्यक्त रूप शब्दब्रह्ममय या मातृकामय है। 'शब्दसे विश्व-जगत् सृष्ट हुआ है, अकारादि मातृका-वर्ण ही व्यक्त जगत्का पूर्व-रूप हैं' इत्यादि शास्त्रोक्तियोंको लेकर स्मरण करना चाहिये। तदनन्तर पाश्चात्त्य विज्ञानद्वारा वर्णित जगत्के सृष्टितत्त्वको भी स्मरण करना चाहिये। नैहारिक सिद्धान्त (The Nebular Theory of Creation) पूर्णरूपसे भ्रमशून्य न होनेपर भी उसमें किंचित् सत्यकी छाया है। एक अविभागप्राप्त विश्वव्यापी वाष्पमय अवस्था किस तरह घनीभूत या सम्मूर्छित होकर वर्तमान दृश्यजगत्में परिणत हो गयी है—इसका वर्णन पाश्चात्त्य विज्ञानने किया है। सीताशक्ति पहले अपेक्षाकृत सूक्ष्म शब्दब्रह्ममय रूपमें अभिव्यक्त हुई थीं, तदनन्तर वह शक्ति क्रमशः घनीभूत या सम्मूर्छित (Condensed) होकर अन्तमें आधारशक्तिरूपमें—स्थूलरूपमें—पृथिवीरूपमें अभिव्यक्त हुईं। वे पृथिवीपर पड़ी हुई थीं—इस अवस्थामें जनकजीने उनको देखा।

ऊपर माँकी दो अवस्थाओंकी बात कही गयी है। ये दो ही उनके व्यक्त रूप हैं। माँका तृतीय रूप ईकार-रूपिणी अव्यक्ता मूल-प्रकृतिका रूप है। यही संक्षेपमें सीताका स्वरूप है, यह शौनक ऋषिका उपदेश है।

जिज्ञासु—माँके व्यक्तावस्थाके पूर्वके रूपकी धारणा किस तरह की जा सकती है?

वक्ता—सामान्य ही विशेषका पूर्वरूप है। सामान्य दो प्रकारका है—परसामान्य और अपरसामान्य। जिसका (अथवा जिससे) और कोई सामान्य भाव नहीं है, वह 'परसामान्य' है। 'सत्तासामान्य' शब्दके अर्थकी उपलब्धि करनेकी चेष्टा करो। सत्तासामान्यपर एक और विशेषण 'अ' देनेसे 'असत्तासामान्य' पद बनता है। इसका अर्थ है—अव्यक्तसत्तासामान्य या अपरिच्छिन्नसत्तासामान्य। विश्व-जगत्की व्यक्तावस्थाके पूर्वकी अवस्थाका वर्णन करते हुए ऋग्वेदने कहा है—

> न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
> न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
> आनीदवातं स्वधया तदेकं
> तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास॥
> (ऋग्वेदसंहिता १०।१२९।२)

'प्रलयकालमें मृत्यु न थी, सूर्य और चन्द्रमाके अभावके कारण तब दिन-रात्रिका ज्ञान न था, तब सर्वभेदान्त-रहित अखण्ड ब्रह्मवस्तु विद्यमान था। 'आनीदवातं' कहनेसे लोग निरुपाधि ब्रह्मको जीवभावापन्न, जीववत् क्रियाविशिष्ट समझ जाते हैं, इसी आशङ्कासे वेदने 'अवातम्' पदका प्रयोग किया है। उस समय (सत्त्व, रज और तम) त्रिगुणात्मिका प्रकृति या माया अपने आधार ब्रह्मके साथ अविभागापन्न होकर साम्यावस्थामें विद्यमान थी। तब क्रियाशील रजोगुणकी अनभिव्यक्तिके कारण किसी प्रकारकी क्रिया नहीं थी।'

पानेका, उन्हें यथार्थरूपमें जाननेका एकमात्र उपाय है। इसीका नाम अविराम 'नमो नमः करना' है। सर्वदेवमयी, सर्वशास्त्रमयी सीतादेवीने स्वयं ही अपनी प्राप्तिका, पूर्णरूपसे अपनेको जाननेका, अपने समीपवर्ती होनेका यह उपाय बता दिया है।×××

जिज्ञासु—करुणामयी सीतादेवीकी कृपाके बिना उन्हें जानना असम्भव है, यह बात आपकी कृपासे क्रमशः मेरी समझमें आ रही है। क्या मनुष्य मनुष्यमात्रको ही ठीक तौरसे जान सकता है? मनुष्योंमें जो देवत्व है, क्या मनुष्य-मात्र ही उसे प्रत्यक्ष करते हैं? अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि देवता हुए बिना देवताका स्वरूप देखना सम्भव नहीं। 'सीतादेवी देवत्वमें देव-देहा हैं, मनुष्यत्वमें मनुष्य-विग्रहा हैं'—स्कन्दपुराणकी यह बात कितनी सुन्दर है! किंतु मैं इसे अनुभव करनेमें असमर्थ हूँ।

वक्ता—यह बात क्रमशः तुम्हारी समझमें आयेगी कि स्थावर-जंगम पदार्थोंकी जो पृथक्-पृथक् आकृतियाँ होती हैं, इसका कोई सूक्ष्म अथवा आन्तरिक कारण है। प्रकृति सब प्रकारका रूप धारण कर सकती है, प्रकृति देवता प्रसव करती है, प्रकृति मनुष्यकी सृष्टि करती है, प्रकृतिसे धार्मिक, लोम्य, विविधगुणविशिष्ट प्रजाकी उत्पत्ति होती है, प्रकृति फिर घोर अधार्मिक, अलोम्य, सर्वदोषागार, सब मनुष्योंमें क्षोभ पैदा करनेवाली कुसंतान भी पैदा करती है। सीतोपनिषद्में सीतादेवी 'मूल-प्रकृति' बतायी गयी हैं। अतएव सीतादेवी सर्वदेवमयी हैं, सर्वदेवमयी हैं, सर्वलोकमयी हैं। मूल-प्रकृति सर्वशक्तिमयी हैं, अतः मूल-प्रकृतिस्वरूपिणी सीतादेवी देव-देहा हैं। 'कैसे मनुष्य-देह धारण करती हैं'—इस बातपर विचार करनेमें कोई बाधा नहीं हो सकती। 'वे (सीतादेवी) विष्णुदेहके अनुरूप अपनी देह स्वीकार करती हैं। हे विष्णो! (हे रामचन्द्र!) आप जब-जब जो-जो अवतार स्वीकार करते हैं, तब-तब ये आपकी संगिनी होती हैं'—स्कन्दपुराणोक्त पावक-देवकी यह बात युक्तिविरुद्ध मानकर कदापि अविश्वास करनेयोग्य नहीं है।

× × × ×

जिज्ञासु (कमलकिशोर विद्यानन्द)—आज सीतोपनिषद्की कुछ संक्षिप्त व्याख्या सुनना चाहता हूँ। यद्यपि सीता-तत्त्वको हृदयंगम करनेकी यथार्थ योग्यता मुझमें नहीं है, तथापि श्रीमुखसे उपदेश सुनते-सुनते कुछ तो योग्यता आ ही जायगी—ऐसी आशा है।

वक्ता—देवताओंने प्रजापतिके पास जाकर उनसे पूछा—'सीता कौन हैं? उनका स्वरूप क्या है?' प्रजापतिने कहा—'वह सीता हैं। अर्थात् तुमलोग जिनका स्वरूप जानना चाहते हो, उनका स्वरूप तो 'सीता' शब्द ही बता रहा है। स, ई, त—ये तीन अक्षर ही उनके स्वरूपके वाचक हैं। सब वस्तुओंकी ये मूल-प्रकृति हैं, इसीसे 'प्रकृति' नामसे ख्यात हैं।'

मूल-प्रकृति कौन-सा पदार्थ है? जो दूसरे किसी पदार्थका कार्य नहीं है, जिसका और कोई मूल नहीं है, जो स्वयं अमूल है, जो अविकृति है, वह 'प्रकृति' है। (प्रकृति जगत्‌की सृष्टि-स्थिति-संहार-कारिणी है, वह जगत्-कारण है।) प्रणव ही प्रकृति-रूप है, प्रणव ईश्वरका वाचक है, प्रणव भगवान् श्रीरामचन्द्रका रूप है। जिसके द्वारा कुछ प्रकृत होता है, उसे 'प्रकृति' कहते हैं। विश्वजगत् किसके द्वारा प्रकृत है? सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंके द्वारा। चूँकि अकार-उकार-मकारात्मक प्रणवसे ही जगत् उत्पन्न हुआ है, इसलिये प्रणव ही प्रकृति है। मूल-प्रकृतिका स्वरूप है प्रणव अर्थात् चैतन्याधिष्ठित गुणत्रय, यह बात दो बार कही गयी है। सम्भवतः इसे पुनरुक्तिदोष कहा जा सकता है। किंतु नहीं, मूल-प्रकृतिका स्वरूप समझानेके लिये ही द्वितीय बार इसका उल्लेख किया गया है। स-ई-त—इन वर्णत्रयात्मिका सीताको चैतन्याधिष्ठिता माया जानना चाहिये।

'विष्णुः प्रपञ्चबीजं च' इत्यादि। विश्वजगत् नाना आकार धारण करता है, इसलिये इसे 'प्रपञ्च' कहते हैं। जो महाभूतरूपसे पञ्चीकृत या विस्तृत होता है, उसे 'प्रपञ्च' कहते हैं। विष्णु ही 'प्रपञ्चबीज' हैं। व्याप्त्यर्थक 'विष्लृ' धातुसे 'विष्णु' पद सिद्ध हुआ है। विष्णु ही विश्वमें व्याप्त होते हैं—

यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महान् द्रुमः।
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्॥

—इत्यादि रामपूर्वतापनीय उपनिषद् (१।२-१) के वाक्योंको यहाँ स्मरण करना चाहिये।

'सत्', 'चित्' और 'आनन्द'—ये सभी सीताके रूप हैं (चाहे परिच्छिन्नभावसे देखा जाय अथवा अपरिच्छिन्न-भावसे)।

माँके दो रूप हैं—अव्यक्त और व्यक्त। अव्यक्तरूपिणी महामाया किस तरह व्यक्त रूप धारण करती हैं, अब यही कह रहे हैं।

'प्रथमा शब्दब्रह्ममयी स्वाध्यायकाले प्रसन्ना'—माँका प्रथम व्यक्त रूप है उनका 'शब्दब्रह्ममय' रूप, अर्थात् वेद-पुराण आदि पढ़नेके समय जिनकी कृपासे हम उन्हें (उन शास्त्रोंको) समझा करते हैं, उनको जाना करते हैं, माँका वह रूप। स्वाध्याय या वेदपाठ करते-करते (अर्थबोध तथा यथार्थ मननादिके साथ) जब पहले आनन्दानुभव होता है, तब फिर सीताका दर्शन होता है। स्वाध्याय करते-करते ऐसा अनुभव होता है कि मैं महोप पापपङ्कमें निमग्न था, अब वेदाध्ययन करके निष्पाप हुआ, मैंने सीताके रूपका दर्शन किया। यह नहीं कि केवल मैं ही एक वेदाध्ययन कर रहा हूँ और माँकी कृपासे उसकी अर्थोपलब्धि करके आनन्द-लाभ कर रहा हूँ, प्रत्युत इसके पहले भी जिस-किसीने वेदाध्ययन करके आनन्दलाभ किया है, उसे भी माँकी ही कृपासे उसकी अर्थोपलब्धि हुई है और आनन्द मिला है। सबसे पहले ब्रह्मा आदिने ही माँका स्मरण किया था और वेदाध्ययन किया था।

'द्वितीया भूतले हलाग्रे समुत्पन्ना'—यही माँके अवतारका रूप है। माँका द्वितीय व्यक्त रूप यही है, जिसमें वह भूतलपर हलाग्रमें जनकोत्सवसे अभिव्यक्त हुई थीं।

भूतके—आधार-शक्ति जो वस्तु है, वह विष्णुकी ही शक्ति है। पृथिवीशक्ति=आधारशक्ति। सीता ही पृथिवी-शक्ति है—जिस शक्तिने जगत्को धारण कर रखा है। इसीलिये सीता पृथिवीरूप होकर अवतीर्ण हुई थीं। मननशील साधकको इसमें कुछ और भी विशेष तत्त्व दिखायी देगा। सूक्ष्म किस तरह स्थूल अवस्थाको प्राप्त होता है, यहाँपर यह विचार करना चाहिये। माँका पहला व्यक्त रूप शब्दब्रह्ममय या मातृकामय है। 'शब्दसे विश्व-जगत् व्याप्त हुआ है, अकारादि मातृका-वर्ण ही व्यक्त जगत्का पूर्व-रूप हैं' इत्यादि शास्त्रोक्तियोंको यहाँपर स्मरण करना चाहिये। तदनन्तर पाश्चात्य विज्ञानद्वारा वर्णित जगत्के उत्पत्तिक्रमको भी स्मरण करना चाहिये। नैहारिक सिद्धान्त (The Nebular Theory of Creation) पूर्णरूपसे प्रमाणरूप न होनेपर भी उसमें किंचित् सत्यकी छाया है। एक अविभागप्राप्त विश्वव्यापी वाष्पमय अवस्था किस तरह घनीभूत या सम्मूर्छित होकर वर्तमान दृश्यजगत्में परिणत हो गयी है—इसका वर्णन पाश्चात्य विज्ञानने किया है। सीताशक्ति पहले अपेक्षाकृत सूक्ष्म शब्दब्रह्ममय रूपमें अभिव्यक्त हुई थीं, तदनन्तर यह शक्ति क्रमशः घनीभूत या सम्मूर्छित (Condensed) होकर अन्तमें आधारशक्तिरूपमें—स्थूलरूपमें—पृथिवीरूपमें अभिव्यक्त हुईं। वे पृथिवीपर पड़ी हुई हैं—इस अवस्थामें जनकजीने उनको देखा।

ऊपर माँकी दो अवस्थाओंकी बात कही गयी है। ये दो ही उनके व्यक्त रूप हैं। माँका तृतीय रूप ईकार-स्वरूपी अव्यक्त मूल-प्रकृतिका रूप है। यही संक्षेपमें सीताका स्वरूप है, यह शौनक ऋषिका उपदेश है।

जिज्ञासु—माँके व्यक्तावस्थाके पूर्वके रूपकी धारणा किस तरह की जा सकती है?

वक्ता—सामान्य ही विशेषका पूर्वरूप है। सामान्य दो प्रकारका है—परसामान्य और अपरसामान्य। जिसका (अथवा जिससे) और कोई सामान्य भाव नहीं है, वह 'परसामान्य' है। 'सत्तासामान्य' शब्दके अर्थकी उपलब्धि करनेकी चेष्टा करो। सत्तासामान्यका एक और विशेषण जोड़ देनेसे 'अखण्डसत्तासामान्य' पद बनता है। इसका अर्थ है—अखण्डसत्तासामान्य या अपरिच्छिन्नसत्तासामान्य। विश्व-जगत्की व्यक्तावस्थाके पूर्वकी अवस्थाका वर्णन करते हुए ऋग्वेदने कहा है—

> न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि
> न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
> आनीदवातं स्वधया तदेकं
> तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास॥
>
> (ऋग्वेदसंहिता १०।१२९।२)

प्रलयकालमें मृत्यु न थी, सूर्य और चन्द्रमाके अभावके कारण तब दिवा-रात्रिका ज्ञान न था, तब सर्ववेदान्त-प्रसिद्ध ब्रह्मतत्त्व प्राणितवत् विद्यमान था। 'प्राणितवत्' कहनेसे लोग निरवधि ब्रह्मको जीवभावापन्न, जीववत् क्रियाविशिष्ट समझ सकते हैं, इसी आशङ्कासे वेदने 'अवातम्' पदका प्रयोग किया है। उस समय (सत्त्व, रज और तम) त्रिगुणात्मिका प्रकृति या माया अपने आधार ब्रह्मके साथ अविभागापन्न होकर साम्यावस्थामें विद्यमान थी। तब क्रियाशील रजोगुणकी अनभिव्यक्तिके कारण किसी प्रकारकी क्रिया नहीं थी।

इससे तुम माँकी व्यवस्थापनके पदकी अवस्थाका कुछ अनुमान लगा सकते हो।

> श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदानन्दकारिणी ।
> उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम् ॥
>
> (सीतोपनिषद् ४)

परमात्माकी शक्ति हैं, इसलिये सर्वदा ये उनके सांनिध्यमें रहती हैं। आनन्दराघवके समीप, उनके साथ नित्ययुक्त होकर विद्यमान हैं, अतः ये भी आनन्दमयी होंगी—इसमें संदेह ही क्या है। आनन्दमयके साथ रहकर फिर ये ही जगत्‌को आनन्द देती हैं। माँके लिये ही जगत् आनन्द पाता है।

जिज्ञासु—यहाँ 'राम' शब्दके प्रयोग करनेकी आवश्यकता क्या है?

वक्ता—यहाँ 'राम' शब्दके प्रयोगकी विशिष्ट सार्थकता है। अखण्ड सच्चिदानन्दमय परमात्माका बोध करानेके लिये ही यहाँपर 'राम' शब्दका प्रयोग हुआ है। 'आनन्द' जो वस्तु है, वह परमात्माका निजी रूप है। माँका निजी रूप है—सृष्टिस्थितिलयात्मक रूप। माँ जब भगवान्‌से पृथक् रूप धारण करती हैं, तब वह 'असीता' (असिता) या काली-रूप धारण करती हैं। माँ जब पिताके पास रहती हैं, तब वे माया होती हैं (जिसे 'उत्तमा अविद्या' कहते हैं)। नहीं तो वे 'अविद्या' (अर्थात् 'अधमा अविद्या') रूपमें अवस्थान करती हैं।

पूर्ण कोई एक है—यह मानना ही पड़ता है। अब प्रश्न यह उठता है कि पूर्ण तो सिवा एकके दो हो नहीं सकते, फिर 'राम' और 'सीता' दो तत्त्व क्यों माने जाते हैं। वे वस्तुतः एक ही हैं। शक्ति शक्तिमान्‌से वास्तवमें भिन्न पदार्थ नहीं है। शक्तिमान् सदा ही शक्तियुक्त रहते हैं। बिना किसी विशेष प्रयोजनके शक्ति शक्तिमान्‌से पृथक् नहीं होती।

माँका स्वरूप बतलानेके लिये फिर कह रहे हैं—वे सब देहियोंकी सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी हैं। इसलिये सीता ही काली हैं। पुराणमें तो जो कुछ है, वह वेदकी ही व्याख्या है। पुराणमें लिखा है—उन्होंने सीतारूपसे कालीरूप धारण किया था। इसका अर्थ यही है कि 'काली'[1] जो पदार्थ है 'सीता' भी वही पदार्थ है। (बालक अपने बच्चेको अपनी गोदमें ले लेती हैं, इसलिये इनकी 'काली' आख्या हुई है।) 'कालीके बीजका अर्थ भी यही है। क=सृष्टि, ल=संहार, ईं=पालन।

सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता—जब इन तीन शक्तियोंकी समष्टिका चिन्तन किया जाता है, तब उस समय सत्त्व-रज-तमकी साम्यावस्थामें जो रूप होता है, उसी रूप अर्थात् मूल-प्रकृतिके रूपका चिन्तन होता है। प्रणव इसीका वाचक है। प्रणवका जो अर्थ है, सीताका भी वही अर्थ है—अ-उ-म् या सृष्टि-स्थिति संहार।

'प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिन इति। अथातो ब्रह्मजिज्ञासेति च। सा सर्ववेदमयी' इत्यादि—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' यह नित्य-सूत्र है। ब्रह्मसूत्र नित्य-पदार्थ है। महर्षि वेदव्यास ब्रह्मसूत्रके स्मारक हैं, रचयिता नहीं। (जिज्ञासा होनेसे ही ज्ञानकी अभिव्यक्ति होती है। जिज्ञासा ज्ञानका ही पूर्वरूप है। जिज्ञासा ज्ञानके अन्तर्भूत है।) प्रणव जो (वस्तु) है, ब्रह्म जो (वस्तु) है, वही सीता है। यदि किसीको ब्रह्मजिज्ञासा हो तो क्या उन्हें सीताकी तत्त्व (ब्रह्म-तत्त्व)-जिज्ञासा हुए बिना रह सकती है? जो ब्रह्मवादी होते हैं, वे इस तत्त्वको समझ सकते हैं और वे ही इस तत्त्वको व्यक्त किया करते हैं।

जिज्ञासु—यहाँपर अकस्मात् 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' इस सूत्रकी बात क्यों छेड़ी गयी?

वक्ता—बात यह है कि ब्रह्म जो वस्तु है, यदि उसे जानना हो तो प्रणवका स्वरूप जानना होगा और यदि प्रणवका स्वरूप जानना हो तो सीताका स्वरूप जानना पड़ेगा। इसीलिये यहाँ 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' सूत्रका उल्लेख किया गया है।

सर्ववेदमयी—सब देवता प्रणवनिष्पन्न हैं (सर्वे देवाः प्रणवनिष्पन्नाः)। ऋग्वेदके 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः।' (१।१६४।३९) इत्यादि मन्त्रका स्मरण करो। यहाँ अक्षर् प्रणव स्वरूपमें है।

सर्वलोकमयी—अर्थात् सर्वलोकस्वरूपिणी।

सर्वकीर्तिमयी, सर्वधर्ममयी—पहले ही कहा गया है कि सत्, चित् और आनन्दका जो कोई रूप या अवस्था हो, वह सीताका ही रूप है।

सर्वाधारकार्यकारणमयी—आधार-शक्ति जो वस्तु है, वह विष्णुकी ही शक्ति है। आधारशक्ति=पृथ्वीशक्ति। इसलिये सीता भूशक्ति अर्थात् पृथ्वीरूप होकर अवतीर्ण हुई थीं।

---

[1] १. सीताने ही कालीका रूप धारण करके सहस्रस्कन्ध रावणका वध किया था।

देवेशस्य—परमात्मा विष्णुकी।

महालक्ष्मीदेवेशस्य—वेदके 'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च' इस मन्त्रको स्मरण करो।

भिन्नाभिन्नरूपा—ये परमात्मासे भिन्न तथा अभिन्न दोनों रूपोंमें ही प्रतिभात होती हैं। किसीकी दृष्टिमें शक्ति और शक्तिमान्‌का भेद है और किसीकी दृष्टिमें नहीं।

चेतनाचेतनात्मिका—ये चेतन तथा अचेतन—दोनों रूपोंमें ही प्रतिभात होती हैं। पहलेकी तरह दृष्टि-भेद ही इसका भी कारण है।

ब्रह्मस्थावरात्मा—ये जड़ और जङ्गम दोनों ही हैं।

ब्रह्मस्थावरात्मा तद्गुणकर्मविभागभेदाच्छरीररूपा—ब्रह्मासे स्थावरतक सभी उनके रूप हैं। ये जो सीतादेवी हैं, उनके जो गुण और कर्म हैं और उनके जो विभिन्न विभाग हैं, उन्हींसे जगत्‌में नाना रूप हुए हैं। जो कुछ जगत्‌में तुम देख रहे हो, ये सभी सीताके गुण-भेद और कर्म-भेदसे उन्हींके रूप हैं। यहाँपर गीताके उपदेशको स्मरण करो। (गुण यहाँपर हैं—सत्त्व, रज और तम; कर्म हैं—ब्राह्मणादिवर्णोचित शम-दमादि कर्म। यहाँपर 'कर्म'-शब्दका प्रयोग करके अनादि कर्मकी ही ओर लक्ष्य किया गया है।)

देवर्षिमनुष्य""विभागरूपे—इसके द्वारा प्रकृतिके सारे परिणाम दिखाते हुए यह दिखाया गया है कि ये ही सर्व-परिणामरूपा हैं और ये ही इन सारे परिणामोंका मूल हैं।

भूतादि—अर्थात् अहंकार। यह त्रिविध है—सात्त्विक, राजस और तामस।

देवर्षि—यह सात्त्विक परिणाम है।

जो कुछ होता है, शक्तिद्वारा ही होता है। सर्वशक्तिकी मूल ये ही हैं, अब यह बात स्पष्ट की जा रही है।

ये (सीता) देवी तीन प्रकारसे विवर्तित होती हैं। ये तीन प्रकार शक्त्यात्मामें हैं—इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति, और साक्षात्-शक्ति। इच्छा-शक्तिके तीन भेद हैं। ये जो वृक्षादि उत्पन्न होते हैं, ये सोम-शक्तिके रूप हैं। सोम-शक्ति ही उद्भिद्-प्रवर्तिनी शक्ति है। सोम-शक्ति आप्यायनशक्ति—पोषण-शक्ति है। सूर्य-शक्तिद्वारा क्रिया होती है, क्षय होता है (Work must have waste)। उसका सोम-शक्ति पोषण किया करती है। माँकी सोमशक्ति ही विश्व-जगत्‌का अमृतस्वरूप है। सोम अन्न हैं और सूर्य अन्नाद।

औषध भी सोम-शक्तिसे ही उत्पन्न है। रोग क्षय कर देता है, औषध उस क्षयका पोषण कर देती है। आप्यायन-शक्तिका अभाव होनेसे ही तो रोग होता है। 'प्यायस्व सोम' इत्यादि मन्त्रद्वारा भेषजको अभिमन्त्रित करना पड़ता है। यह सोम-शक्ति ही अमृत-रूपमें वर्तमान है, जिसे सेवन करके देवता तृप्ति-लाभ किया करते हैं।

(अब सूर्य-शक्तिकी बात कह रहे हैं—) माँ ही सकल-भुवनप्रकाशिनी दिवा या प्रकाश-शक्ति हैं।

माँ ही रात्रि हैं। दिनमें सौर-शक्तिद्वारा नाना प्रकारके कर्म करके जब लोग श्रान्त हो जाते हैं, तब आरामके लिये इनके चरणोंमें शरण प्राप्त करनेकी प्रार्थना करते हैं (प्रलयपति भूतानि इति 'रात्रिः')। ये ही श्रान्त पुत्रको गोदमें लेकर सुलाती हैं।

(इसके द्वारा सृष्टि-तत्त्व दिखाया गया है। इन 'दिवा' और 'रात्रि-शक्तिद्वारा 'सृष्टि' और 'लय'-शक्तिका रूप दिखाया गया है। 'रात्रि' तमोगुणात्मिका है। इसके बाद फिर 'दिन' होता है, सृष्टि होती है।)

इसके बाद माँके कालरूपका वर्णन किया गया है। हम कालके जितने प्रकारके रूप प्रत्यक्ष किया करते हैं, यथा—क्षण, निमेष, घटिका, याम, दिवस, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, मनुष्यकी आयु अथवा शतसंवत्सर—ये सभी माँके रूप हैं। हमलोग कहा करते हैं—यह कार्य शीघ्र सम्पन्न हुआ, यह विलम्बसे हुआ। ये जो कालके भेद हैं, ये सीताके ही रूप-भेद हैं। निमेषसे लेकर परार्धतक कालचक्र, जगच्चक्र-प्रभृति चक्रवत् परिवर्तमान जिन पदार्थोंकी उपलब्धि होती है, ये कालके ही विभाग-विशेष हैं। काल-शक्ति प्रकाशरूपा हैं। [सीतारूपिणी (अखण्ड)-काल-शक्ति पूर्वोक्त सारे (खण्ड) कालचक्रोंको प्रवर्तित किया करती हैं।]

(इसके बाद माँके अग्निरूपकी बात कह रहे हैं—) 'अग्निरूपा अन्नपानादिप्राणिनाम्' इत्यादि। माँकी यह अग्नि-शक्ति अन्नाद-रूपमें, प्राणियोंकी क्षुधा-रूपमें, देवगणके मुखरूपमें, वनोषधियोंके शीतोष्णरूपमें, काष्ठमें अन्तर्बहिःरूपमें प्रकाशित होती है। उष्णता दो प्रकारकी है, एक 'व्याप्त' और दूसरी 'अव्याप्त' (बाहरसे नहीं मालूम होता कि इसमें ताप है, परंतु वर्तमान ...

रूपका नाम)। यह अग्नि-शक्ति नित्यानित्यस्वरूपा है। अग्नि भोक्तृ-शक्ति है, वही अन्नाद है। यही प्रकृति है, वही पुरुष है। प्राण ही अग्नि है (वेदकी भाषामें)। मैत्र्युपनिषद्में अन्न और अन्नाद या भोग्य-भोक्तृत्वका जो वर्णन है, उसे स्मरण करो। जिस तरफसे देखो, उन्हींका रूप देखोगे। प्राण-रूपसे यदि देखो तो भी सीताका ही रूप देखोगे।

(इसके पश्चात् श्रीशक्तिके त्रिविध रूपकी बात कही गयी है।) श्रीदेवी भगवान्के संकल्पानुसार लोकरक्षाके लिये रूप धारण करती हैं। ये 'श्री' या 'लक्ष्मी' रूपमें सबकी स्वरूपभूता होती हैं। ऐश्वर्यके लिये (जिसे देखनेसे लोगोंकी दृष्टि आकृष्ट होती है, लोग आकृष्ट होते हैं) लोग जिनको लक्ष्य करते हैं, जिनको पाना चाहते हैं, जिनका आश्रय ग्रहण करना चाहते हैं, वे 'लक्ष्मी' हैं, वे 'श्री' हैं।

तदनन्तर भूशक्तिकी बात कही गयी है। आधार-शक्तिका नाम ही 'भूदेवी' है। भूदेवी ससागराम्भःसप्तद्वीपा वसुंधरा-रूपा हैं। (इसीलिये माँ पृथिवीसे उठी थीं।) ये ही चतुर्दश भुवनके आधार तथा आधेयरूपमें स्थित प्रणवात्मिका शक्ति हैं। (प्रणवमें अ-उ-मकार हैं, 'भूः' में भी केवल 'भूः' ही नहीं रहता, बल्कि 'भुवः' और 'स्वः' भी रहते हैं।) 'नीलात्मिका' शक्ति सब प्राणियोंकी पोषणरूपा है।

(इसके बाद क्रियाशक्तिकी बात कह रहे हैं।) भगवान् हरिके मुखसे पहले जो नादकी उत्पत्ति होती है, वही क्रिया-शक्तिका स्वरूप है। (इसके द्वारा वेदका स्वरूप दिखाया जा रहा है।) उससे बिन्दु, उससे ओंकार और उससे रामवैखानस-पर्वतकी उत्पत्ति होती है। उससे कर्म-ज्ञानमयी बहुशाखाओंका आविर्भाव होता है। बहुशाखाएँ होनेपर भी प्रधान तीन ही शाखाएँ हैं, जिनका नाम 'त्रयी' है। यही आद्यशास्त्र है। इससे सभी अर्थोंका दर्शन होता है। अतः वेद ही सब विज्ञानोंके विज्ञान हैं, सब अर्थोंके अर्थ हैं। विशिष्ट कार्य-सिद्धिके लिये माँ चतुर्वेदका रूप धारण करती हैं (अर्थात् अतिरिक्त अथर्ववेदका आविर्भाव होता है)। नहीं तो 'त्रयी'के अंदर ही 'अथर्व' है। जिस दृष्टिसे ऋक्, यजुः, साम—ऐसा भाग किया गया है, उस दृष्टिसे अथर्वको पृथक् करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। अथर्ववेदका कुछ अंश अभिचारादिव्यापारविषयक है, अथर्व भी साम ऋक्-यजुरात्मक है। ऋग्वेदकी २१, यजुर्वेदकी १०९ और सामवेदकी सहस्र शाखाएँ हैं। अथर्ववेदकी पाँच शाखाएँ हैं।

जिज्ञासु—रामवैखानस-पर्वत और त्रयी—इन दोनों शब्दोंका अर्थ अच्छी तरह मेरी समझमें नहीं आया है।

वक्ता—सब शक्तियाँ 'रामवैखानस-पर्वत'का आश्रय लेकर रहती हैं। 'रामवैखानस'-शब्दद्वारा सगुण ब्रह्म लक्षित होते हैं। जिसमें पर्व हैं, वह 'पर्वत' है। यह शब्द समस्त वेद-पर्वोंका बोध कराता है। वेदमें काण्ड हैं, इसलिये इसकी तुलना पर्वतके साथ की गयी है। कर्म-काण्डके लिये 'अथर्व' नामक वेदके चतुर्थ भागकी कल्पना की गयी है। सामान्य व्यवस्थाके अनुसार विभाग करनेपर ऋक्, यजुः और साम—तीन ही विभाग होते हैं। जिस तरह ओंकारसे वेद उत्पन्न हुए हैं, उसी तरह ओंकारसे भगवान्के सगुण रूपका आविर्भाव हुआ है।

प्रकृतिके तीन रूप हैं। चतुर्थ अवस्था साम्यावस्था है। वेदकी भी चार अवस्थाएँ हैं। जब तीन लोकोंको लेकर (अर्थात् तीन लोकोंके रूपमें) चिन्तन किया जाता है, तब वह 'त्रयी' है। 'सोऽयमात्मा चतुष्पात्'—इस उक्तिके अर्थका चिन्तन करो। प्रणव=वेद=ब्रह्म। वेदके कर्मदृष्टिसे तीन प्रकार हैं—ऋक्, यजुः और साम। जहाँ सब कुछ जाकर सम्मिलित हो जाता है, जहाँ फिर परस्पर भेद नहीं रह जाता, वही गीत है। जहाँ इतरता नहीं रहेगा, वैषम्य नहीं रहेगा। सम=साम=संमिलन। वैषम्य नहीं रहनेसे क्रिया नहीं होती।

पहले कर्म। ऋग्वेद कर्म है (ऋग्वेद प्रधानतः कर्मात्मक है)। भूलोक ऋग्वेदका रूप है। ऋग्वेदके न रहनेपर किसी वेदकी स्थिति नहीं रहती। पहले कर्मद्वारा चित्तशुद्धि करनी होगी। छन्दके अनुसार जो कर्म है, वही 'ऋक्' है। चक्षुरादि इन्द्रियोंके द्वारा जो कर्म हो रहे हैं, वे ऋक्के रूप हैं। उसके बाद यजुर्वेद या भुवर्लोक है अर्थात् (बाह्य जगत्से) संस्कार लेकर मनकी अवस्थामें प्रवेश करना। यह उपासना-काण्ड है। इसके बाद ज्ञानकाण्ड है। ज्ञानकाण्डके उपासनाके साथ मिल जानेपर 'संगीत' होता है। वही 'साम' है। तभी 'सांहित्य' होती है।

'विखनस्'-शब्दसे 'वैखानस'-पद उत्पन्न हुआ है। विगत हुआ है खनन जिससे, अर्थात् एक केन्द्र-अवस्था, जो जागतिक त्रिगुणोंद्वारा परिच्छिन्न नहीं है।

इसके बाद उस वेदका अङ्ग-विभाग किया गया । शिक्षा या वेदके कौन-कौनसे अङ्ग हैं, यह कहा गया है । तत्पश्चात् उपाङ्ग बताये गये हैं । षड्दर्शन (मीमांसा, न्याय-प्रभृति) वेदके उपाङ्ग हैं । वेदद्रष्टा (जिन्होंने पूर्णरूपसे वेदका ही अवलम्बन किया था) महर्षियोंसे ही स्मृति-शास्त्र निर्गत हुआ है । इतिहास-प्रभृति भी वेदके उपाङ्ग हैं ।

तदनन्तर 'साक्षात्-शक्ति' की बात विशेषरूपसे कही जाती है । (भावभेदसे 'साक्षात्-शक्ति'के कई प्रकारके अर्थ होते हैं ।) परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रके स्मरण-मात्रसे ही—उनका ध्यान करते-करते जो उनका आविर्भाव होता है, वह इस साक्षात्-शक्तिकी क्रियासे होता है । निग्रहानुग्रहरूपा, शान्ति-तेजोरूपा प्रभृति इनके अनेक रूप हैं । ये भगवत्-सहचारिणी, अनपायिनी हैं । 'सृष्टि', 'स्थिति', 'संहार', 'तिरोधान' और 'अनुग्रह' आदि सब इन्हीं शक्तिके रूप हैं, इसलिये इनको 'साक्षात्-शक्ति' कहा जाता है ।

जिज्ञासु—साक्षात्-शक्तिका स्वरूप कुछ और विशदरूपसे समझा दीजिये ।

वक्ता—पहले 'साक्षात्' शब्दको समझ लो । ये 'साक्षात्' शक्ति हैं, और कोई शक्ति नहीं; ये इच्छा, ज्ञान, क्रिया आदि सब शक्तियाँ नहीं हैं । ये 'साक्षात्' शक्ति हैं । साक्षात्-शक्ति चैतन्यशक्ति या चित्-शक्ति है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर जिनसे उत्पन्न हुए हैं, ये साक्षात्-शक्ति हैं । 'साक्षात्-शक्ति' वह शक्ति है, जो और किसी शक्तिसे उत्पन्न नहीं हुई है । इस अपरिच्छिन्न ब्रह्मशक्तिसे ही इच्छा, ज्ञान और क्रियाशक्ति निर्गत हुई हैं, अथवा ब्रह्म, यज्ञ और साम 'आविर्भूत' हुए हैं । 'महालक्ष्मी', 'महाविष्णु', 'सदाशिव'-प्रभृति शब्दोंके द्वारा जो लक्षित होती हैं, वही 'साक्षात्-शक्ति' हैं । जो सबके ऊपर हैं, उन्हींको 'साक्षात्-शक्ति' कहते हैं ।

फिर 'इच्छाशक्ति'की बात कह रहे हैं । इच्छाशक्ति त्रिविध है । ये इच्छाशक्ति प्रलयावस्थामें विश्रामार्थ भगवान्‌के दक्षिण वक्षःस्थलमें श्रीवत्साकृतिरूपमें अवस्थान करती हैं । ये परमात्मा या भगवान्‌का आश्रय करके उनके हृदयमें रहती हैं, इसलिये इनका 'श्री' नाम पड़ा है । सीताकी जो इच्छाशक्ति है, वे ही प्रलयकालमें संक्रमण करके भगवान्‌के हृदयमें जाकर आश्रय ग्रहण करती हैं । ये ही 'योगशक्ति' हैं । बहिर्मुखवृत्ति जो (सृष्टि) शक्ति है, उससे जो (लय) शक्ति उनकी ओर ले जाती है, वही 'योगशक्ति' है । सीतादेवी सर्वदा जो कार्य कर रही हैं, वही इन बातोंद्वारा व्यक्त किया जा रहा है । वे सृष्टिकालमें बाहर निकल आती हैं, फिर (लयकालमें) भीतर प्रवेश कर जाती हैं, वहीं जाकर विश्राम करती हैं । तुम जो योग-साधन करोगे, वह भी यही वस्तु है । तुम भगवान्‌से बहिर्मुख होकर (निकल) आये हो, तुमको वृत्ति-निरोध करके फिर जाकर उनके साथ मिलना पड़ेगा । यही 'योग' है ।

भोगशक्ति जो वस्तु है, वह भी वे ही हैं । वे ही भोगरूपा हैं । कल्पवृक्षादि जो कुछ हैं, वे भोगके ही उपलक्षण हैं । धनादि जो कुछ हैं, वे भगवान्‌के उपासकोंके पास आप ही आकर उपस्थित हुआ करते हैं । जो भगवान्‌की यथार्थ उपासना किया करते हैं, उनकी इच्छामात्रसे ही शङ्खादि निधियाँ उत्पन्न होती हैं । 'चिन्तामणि' उनके करतलगत हुआ करता है ।

जिज्ञासु—'चिन्तामणि'का स्वरूप क्या है ?

वक्ता—कहा जाता है—'चिन्तामणौ स्वरूपेण न किञ्चिदुपलभ्यते ।' परंतु उसमें सब किसीको अपना-अपना वाञ्छित रूप दिखायी पड़ता है । भगवान् सर्वाकार हैं; तुम उनको भिन्न-भिन्न रूपमें देखनेकी इच्छा करोगे, वे तुमको उसी-उसी रूपसे दर्शन देंगे । जो भक्तियुक्त होकर साधन करेंगे, वे चाहे इच्छा करें या न करें, विभूतियाँ आप ही उनके समीप आ पहुँचेंगी ।

इसके बाद 'वीरशक्ति'की बात कही जाती है । वीर-लक्ष्मी जो हैं, वे भी सीताका ही रूप हैं ।

वक्ता—विरहावस्थासे वियुक्त होनेपर प्रकृतिकी कैसी अवस्था होती है, ज्ञानमय परमात्मासे विच्छिन्न होनेपर जीवकी कैसी व्याकुलता होनी चाहिये, अज्ञान या अविद्याद्वारा ज्ञानके अपहृत होनेपर पुनः ज्ञान-प्राप्तिके लिये कैसी चेष्टा होनी चाहिये, किस प्रकार निरन्तर स्मरण होना चाहिये—जगत्‌को इस बातकी शिक्षा देना ही सीताके द्वितीय व्यक्त (अर्थात् दशममें जानकी-रूपमें) अवतारका मुख्य प्रयोजन है ।

[रावणके अंदर ज्ञान तथा भक्तिका बीज था, परंतु पहले वह सम्यक्‌रूपसे अङ्कुरित नहीं हुआ था ।] शिव-ध्यानपरायण और तपस्यासम्पन्न होनेपर भी रावणके हृदयमें पहले 'देवताओंपर आधिपत्य करूँगा' ऐसी ही वासना थी । तब उसे ब्रह्मविद्याकी

(सीता) की कामना की, तब वह धर्म (अर्थात् रावण)-निर्जित हुआ (अर्थात् धर्मद्वारा अभिभूत हुआ, अर्थात् स्वयं धर्ममय हुआ), तभी श्रीरामके हाथसे उसकी मुक्ति हुई। जब उसने ब्रह्मविद्या (सीता) को देखा, तभी उसके अंदर ज्ञानका कुछ उदय हुआ। [तब वह इस ब्रह्मविद्याको प्राप्त करनेके लिये, मुक्ति-प्राप्तिके लिये उद्योगशील हुआ।] धर्मीने कहा—'(सीताको) छोड़ दो, नहीं तो सर्वनाश होगा।' परंतु उसने छोड़ना न चाहा, कहा—'सर्वनाश होनेपर भी मैं नहीं छोड़ूँगा।' रावणकी इस अवस्थाके साथ भक्तकी अवस्थाकी तुलना करो। जब भक्तके हृदयमें यथार्थ भक्तिका आविर्भाव होता है, जब भगवान्‌का रूप कुछ उसकी समझमें आता है, तब फिर सर्वनाश होनेपर भी वह उनको छोड़ना नहीं चाहता। यहाँ 'सर्वनाश' का अर्थ है—सांसारिक जो कुछ है, उसका नाश।

जगज्जननी जनक-नन्दिनी श्रीसीतादेवी

(लेखक—राष्ट्रपति-पुरस्कृत पं० श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज, शास्त्री, वेदान्ताचार्य, एम्०ए०, पी-एच्० डी०)

मङ्गलाचरण

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तित्रयं यद्भावसाधनम्।
तद् ब्रह्मसत्तासामान्यं सीतातत्त्वमुपास्महे॥
(सीतोपनिषद् १)

सीताजीकी परमतत्त्वता

उपनिषदोंका वैदिक वाङ्मयमें मूर्धन्य स्थान है। उपनिषद् अनेक हैं, जिनमेंसे 'सीतोपनिषद्' सीतामाताकी महिमाका प्रख्यापक है। उसमें यह प्रतिपादन किया गया है कि 'भगवती सीता समस्त प्राणियोंकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी सम्पादिका हैं। वे मूल-प्रकृति हैं'—

उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्।
सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता॥
(सीतोपनिषद्)

इस लक्षणसे लक्षित सीताजी वही 'ब्रह्म' हैं, जिसके विषयमें तैत्तिरीयोपनिषद्‌में कहा गया है—'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म'। (३ । १ । १)

वेदान्त-दर्शनने जिस दृष्टिसे ब्रह्मको 'प्रकृति' बताया है, ('प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्।'—ब्रह्मसूत्र १ । ४ । २३), उसी दृष्टिसे उपनिषद्‌के उपर्युक्त वचनमें सीतामाताको भी 'मूलप्रकृति' कहा गया है।

सीताजीका अवतार

वेदावतार वाल्मीकि-रामायणमें लोक-पितामह ब्रह्माजीका वचन है—'सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुः' (६ । ११७ । २७), ... अभिप्राय यह है कि जब विष्णुभगवान् रामरूपसे दशरथकी राजधानीके प्रासादमें अवतीर्ण हुए थे, तब भगवती लक्ष्मी महाराज जनककी राजधानी मिथिलाकी पावन भूमिपर अवतीर्ण हुई थीं। जो सहस्रशिरसमयी परमा शक्ति निखिल ब्रह्माण्डोंकी जननी हैं, वे ही जगत्‌पर अपना अनुग्रह प्रदर्शित करनेके लिये महाराज जनककी सुकुमार नन्दिनी बनीं। परात्पर परमात्माका, जिनके रोम-रोममें अनेक कोटि लोक-लोकान्तर विद्यमान हैं, किसी एक भाग्यवान् व्यक्तिके पुण्यसदनमें पुत्र या पुत्रीके रूपमें प्रकट होना सदासे आश्चर्यमयी घटना रही है। अध्यात्मरामायणमें श्रीरामावतारके प्रसङ्गमें माता कौसल्याका वचन है—

उदरे तव दृश्यन्ते ब्रह्माण्डाः परमाणवः।
त्वं ममोदरसम्भूत इति लोकान् विडम्बसे॥
(१ । ३ । २५-२६)

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णावतारके प्रसङ्गमें माता देवकीकी उक्ति है—

विश्वं यदेतत् स्वतनौ निशान्ते
यथावकाशं पुरुषः परो भवान्।
बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभू-
दहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत्॥
(१० । ३ । ३१)

यही लोक-विडम्बना भगवती सीताके अवतारके प्रसङ्गमें है कि अखिल-भुवन-माता किसी एक व्यक्तिके घरमें पुत्री बनकर आयीं।

सीता और राममें अनन्यता

शक्ति और शक्तिमान् अपृथक्-सम्बन्धसे सम्बद्ध हैं। वे अनन्य हैं। अतएव भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मी, किंवा सीता और राम एक ही हैं। विष्णुसे श्री (लक्ष्मी) भिन्न नहीं है—

अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः ।
(श्रीमद्भा० १२।११।२०)

विष्णु भगवान् सर्वव्यापक हैं और उनकी शक्ति जगन्माता श्री भी सर्वव्यापिका हैं—

(अ) नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी ।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम ॥
(विष्णुपुराण १।८।१७)

(आ) त्वयैतद् विष्णुना चाम्ब जगद् व्याप्तं चराचरम् ।
(अग्निपुराण २१७।१०)

अवतारलीलामें भी श्रीलक्ष्मीदेवी विष्णुभगवान्‌की सहायिका होती हैं । रामरूपमें वे सीता हैं और कृष्ण-रूपमें वे रुक्मिणी हैं । जब भगवान् देवताओंमें अवतीर्ण होते हैं, तब श्री भी देवी-रूप धारण कर लेती हैं और जब भगवान् मनुष्यलोकमें मानवाकृति धारण करते हैं, तब श्री भी मानवाकृतिमयी बन जाती हैं—

एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः ।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी ॥
राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि ।
(विष्णुपुराण १।९।१४२, १४४)

श्री और श्रीमान् अनन्य और एक तत्त्व होनेपर भी भक्तानुग्रह-विग्रहरूपमें भिन्न प्रतीत होते हैं । लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधा-कृष्ण आदि रूप परब्रह्मके ही लीलानिमित्तक दो-दो रूप हैं। किंतु युगलरूपमें अनन्यता है । श्रीरामने अग्निदेवके प्रति सीताजीके साथ अपनी अनन्यताका प्रतिपादन करते हुए कहा था—

अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा ॥
(वा० रा० ६।११८।१९)

'प्रभा एवं प्रभा-युक्त सूर्य जिस प्रकार अनन्य और अभिन्न हैं, उसी प्रकार सीतादेवी मुझ रामचन्द्रसे अनन्य और अभिन्न हैं ।' स्वयं श्रीसीतादेवीने रावणके प्रति श्रीरामसे अपनी अनन्यताकी स्थापना इन्हीं शब्दोंमें की थी—

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा ।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा ॥
(वा० रा० ५।२१।१५)

'अरे रावण ! अपने धन और वैभवका प्रलोभन करके तेरा मुझे लुभाना वृथा है । मैं तो राघव—रामसे उसी प्रकार अनन्य हूँ, जिस प्रकार सूर्यसे उसकी प्रभा अनन्य होती है ।'

विलक्षण प्रादुर्भाव

एक दिन राजर्षि जनक खेत जोत रहे थे । इसी बीच एक स्थानपर उनके हलकी फाल रुकी, तो उन्होंने देखा कि फालके निकट पृथ्वीके अभ्यन्तरमें एक कन्या पड़ी हुई है । महाराजने उस दिव्य-जन्मा कन्याको गोदमें ले लिया और अपनी पुत्री मानकर उसका लालन-पालन करने लगे । संस्कृतमें हलकी फालको 'सीता' कहते हैं । दिव्य-मूर्ति कन्याका प्रादुर्भाव फालके समीप होनेके कारण उसका नाम महाराजने 'सीता' ही रख दिया । इसी नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई—

(अ) अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः ॥
क्षेत्रं शोधयता लब्ध्वा नाम्ना सीतेति विश्रुता ।
(वा० रा० १।६६।१३-१४)

(आ) तस्य लाङ्गलहस्तस्य कृषतः क्षेत्रमण्डलम् ।
अहं किलोत्थिता भित्त्वा जगतीं नृपतेः सुता ॥
(वा० रा० २।११८।२८)

सीतामाताका इस प्रकारसे प्रादुर्भाव दिव्य एवं परम अलौकिक था । किसी माताके गर्भसे उत्पन्न न होनेके कारण वे 'अयोनिजा' कहलाती थीं। जनकजीने विश्वामित्रजी से जब सीताजीके बारेमें चर्चा की थी, तब उन्हें 'अयोनिजा' बताया था—

वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा ।
(वा० रा० १।६६।१५)

अर्थात् 'मेरी इस कन्याका जन्म किसी माताके गर्भसे नहीं हुआ है । यह दिव्यजन्मा है । मैंने यह निश्चय किया है कि इसका विवाह किसी शूर-वीरसे ही करूँगा ।'

स्वयं सीताजीने भी महर्षि अत्रिकी धर्मपत्नी अनसूया-जीको अपना परिचय देते हुए अपनेको 'अयोनिजा' ही कहा था—

अयोनिजां हि मां ज्ञात्वा नाध्यगच्छद् विचिन्तयन् ।
सदृशं चाभिरूपं च महीपालः पतिं मम ॥

'मुझे अयोनिजा कन्या समझकर वे भूपाल मेरे लिये योग्य

और परम सुन्दर पतिका विचार करने लगे। किंतु किसी निश्चयपर नहीं पहुँच सके।'

(वा० रा० २ । ११८ । १७)

माता-पितासे उत्पन्न न होना

सीताजीका किसी माता-पितासे उत्पन्न न होना वेदान्तशास्त्र सम्मत है। 'स्मर्यतेऽपि च लोके'— इस ब्रह्मसूत्र (३ । १ । १९) के भाष्यमें आचार्य शंकरका वचन है—

'अपि च स्मर्यते लोके। द्रोणधृष्टद्युम्नप्रभृतीनां सीता-द्रौपदीप्रभृतीनां चायोनिजत्वम्। तत्र द्रोणादीनां योषिद्-विषयैकाहुतिर्नास्ति। धृष्टद्युम्नादीनां तु योषित्पुरुषविषये द्वे अप्याहुती न स्तः।'

इसका भाव यह है कि द्रोणाचार्य बिना माताके ही उत्पन्न हुए थे तथा सीताजी, द्रौपदी और धृष्टद्युम्न बिना माता-पिताके ही प्रकट हुए थे। सीताजीका भूतलसे प्रादुर्भाव रामायणके अनुसार ऊपर बताया जा चुका है। द्रौपदी और धृष्टद्युम्न, महाभारतके अनुसार, महाराज द्रुपदके यज्ञानलसे प्रकट हुए थे। यहाँपर यह प्रतिपादन अप्रासंगिक न होगा कि ईश्वरका मानवाकृतिरूपमें जन्म भी अलौकिक ही होता है। उस समय वे अपनी मायासे (जीवोंकी दृष्टिमें) भौतिक-देहधारी-से प्रतीत होते हैं, किंतु वस्तुतः वे प्रादुर्भाव-वेलामें कोई प्राकृत देह धारण नहीं करते। गीताके 'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा (४ । ६)' इत्यादि श्लोककी व्याख्यामें आचार्य शंकरने श्रीभगवान्‌का इस रूपमें अभिप्राय समझाया है—

'स्वां प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय वशीकृत्य सम्भवामि देहवानिव भवामि, जात इव, आत्ममायया आत्मनो मायया, न परमार्थतो लोकवत्।'

अर्थात् 'मैं (श्रीकृष्ण) अपनी त्रिगुणात्मिका प्रकृतिको वशमें करके अपनी मायासे देहधारी-सा और उत्पन्न हुआ-सा हो जाता हूँ; वस्तुतः अन्य लौकिक व्यक्तियोंके समान न तो देह धारण करता हूँ और न जन्म लेता हूँ।''

इस शास्त्रीय दृष्टिसे भगवती सीताका आविर्भाव अलौकिक था और उनका रूप पाञ्चभौतिक न होकर शुद्धसत्त्वमय (पद्मपुराणके शब्दोंमें 'चाङ्गुण्यमय') ही था।

अलौकिक तिरोभाव

सीताजीका तिरोभाव भी अलौकिक था। अयोध्यामें गंगेरतटी भगवान्‌के लोकापवादका निवारण करनेके लिये जब उन्होंने शपथ लेनेका विचार किया, तब सहसा दिव्य गन्ध सुरभित मनोरम पवन प्रवाहित हो उठा। सीता माताने कहा—

> यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
> तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
> मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
> तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
> यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च।
> तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥

(वा० रा० ७ । ९७ । १४-१६)

'मैंने श्रीरामके अतिरिक्त किसी अन्य मनुष्यका मनसे भी चिन्तन नहीं किया है; मैंने मनसा-वाचा-कर्मणा श्रीरामका ही आराधन किया है; मेरा यह वचन सत्य है कि श्रीरामके अतिरिक्त मेरा किसी परपुरुषसे परिचय भी नहीं है; इन तीनों सत्योंके प्रतापसे माधवी पृथ्वी देवी मुझे अपने में लीन कर लें।'

भगवती सीताके इस आदर्श वचनका उच्चारण करते ही एक चमत्कार हुआ। भूतलसे एक परमोत्तम दिव्य सिंहासन प्रकट हो गया, जिसे अमित विक्रम-सम्पन्न दिव्य-रत्न-विभूषित नागराजोंने अपने मस्तकोंपर धारण कर रखा था। उस सिंहासनपर श्रीधरणी देवी विराजमान थीं। उन्होंने भगवती सीता देवीका स्वागतद्वारा अभिनन्दन करते हुए उन्हें अपनी गोदमें लेकर सिंहासनपर बिठा लिया, तत्पश्चात् वे भूतलमें विलीन हो गयीं। सीताजीके इस दिव्य और अद्भुत तिरोभावको देखकर समस्त प्रेक्षक जगत् अत्यन्त क्षुब्ध हो गया—

> तन्मुहूर्तमिवात्यर्थं समं सम्मोहितं जगत्॥

(वा० रा० ७ । ९७ । २६)

नारी-जगत्‌के लिये आदर्शकी स्थापना

दिव्य अवतारका प्रयोजन धर्मका संस्थापन होता है। एवं वेद-शास्त्रोक्त कर्तव्यका पालन ही 'धर्म' है। उसीके अन्तर्गत पत्नी-धर्मका स्वरूप भगवती सीताजीने लोकमें धारण करके जगत्‌के सम्मुख पति-व्रतका आदर्श स्थापित किया था।

वन-यात्राके [illegible] कष्टों और संकटोंकी कोई चिन्ता न करते हुए [illegible] साथ वन-गमन ही [illegible]

किया । वे मिथिलेशनन्दिनी थीं, जनकजीके प्रासादके आमोद-प्रमोदमय वातावरणमें पली थीं और विवाहके अनन्तर अयोध्याके वैभवमय प्रासादमें रही थीं । वे चाहतीं तो श्रीरामके वन-वासके दिनोंमें, समय-समयपर अयोध्या और मिथिलाके राजभवनोंमें रह सकती थीं, किंतु उन्होंने पतिसेवाके लिये उस सुखका परित्याग करके अरण्य-जीवन को सहर्ष अङ्गीकार किया—

सर्वलक्षणसम्पन्ना नारीणामुत्तमा वधूः ।
सीताप्यनुगता रामं शशिनं रोहिणी यथा ।

(वा० रा० २ । १ । २७-२८)

'समस्त शुभ लक्षणोंसे विभूषित तथा स्त्रियोंमें उत्तम सीता भी रामचन्द्रजीके पीछे चलीं, जैसे चन्द्रमाके पीछे रोहिणी चलती है ।'

सम्पत्तिमें साथ रहनेके लिये परिवारके सभी सदस्य लालायित रहते हैं, किंतु विपत्तिके समयमें ही सच्चे सौहार्द-की परीक्षा होती है ।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहिं चारी ॥

(मानस० ३ । ४ । ४)

सीताजीसे मिलकर पति-सेवा-परायणा अनसूयाजीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई थी । उन्होंने कहा था—

त्यक्त्वा ज्ञातिजनं सीते मानमृद्धिं च मानिनि ।
अवरुद्धं वने रामं दिष्ट्या त्वमनुगच्छसि ॥

(वा० रा० २ । ११७ । २१)

'हे सीते ! बन्धु-बान्धवोंका परित्याग करके एवं सब प्रकारके आदर-सम्मान और धन-वैभवको भी अकिंचित्कर मानकर पिता दशरथके आदेशका पालन करनेके लिये प्रतिज्ञाबद्ध वनवासी रामका तुम अनुगमन कर रही हो—यह देखकर मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है ।'

अनसूयाजीने अपने वार्तालापमें नारी धर्मकी विशेष चर्चा की थी, जिसका संदेश है—

स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः ॥

(वा० रा० २ । ११७ । २४)

'उदात्त स्वभाववाली महिलाओंके लिये पति ही परमोत्तम देवता है ।' इसपर सीताजीने भी कहा कि 'हे, माताजी ! यह बात तो मुझे बचपनसे ही विदित है'—

विदितं तु ममाप्येतद् यथा नार्याः पतिर्गुरुः ॥

(वा० रा० २ । ११८ । २)

फिर वे बोलीं कि वनको प्रस्थान करते समय माता कौसल्याके उपदेश मुझे याद हैं और जब पिता जनकजीने वरकी योजक-नामक अग्निकी संनिधिमें मेरा पाणि पतिदेवको ग्रहण कराया था, तब मेरी माताजीने जो उपादेय उपदेश मुझे दिया था, उसका भी मुझे स्मरण है । मेरी माताने बताया था—

पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद् विधीयते ॥

(वा० रा० २ । ११८ । ९)

'पतिदेवकी सेवा-शुश्रूषाके अतिरिक्त नारीके लिये अन्य किसी तपश्चर्याका विधान शास्त्रमें नहीं है ।'

सीता-रामके परस्पर स्नेहमय अनेक प्रसङ्ग हैं, जिनमेंसे एक इस प्रकार है—ऋषियोंकी रक्षाके लिये युद्धमें राक्षसोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा श्रीरामभद्रने की थी और इसी उद्देश्य-की पूर्तिके लिये रघोद्वह दण्डकारण्यकी ओर उन्होंने प्रस्थान किया था । जनकनन्दिनीको दण्डक-वनमें जाना रुचिकर नहीं था । उनकी अरुचिका कारण वन्य पशुओं अथवा राक्षसोंसे भय नहीं था, अपितु यह था कि श्रीराम अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये कहीं उन राक्षसोंका भी वध करना प्रारम्भ न कर दें, जो हमसे वैर नहीं करेंगे । अपने मनके इसी संशयका निवारण करनेके लिये और श्रीरामको अकारण राक्षस-वधसे निवृत्त करनेके लिये एक दिन, समय पाकर, उन्होंने 'इत्यया स्निग्धया वाचा भर्तार-मिदमब्रवीत् ।' (वा० रा० ३ । ९ । १) रामचन्द्रसे कहा—'नाथ ! संसारमें तीन व्यसन प्रमुख हैं—मिथ्याभाषण, परदाराभिगमन और बिना वैरके रोष।

मिथ्यावाक्यं तु परमं तस्माद् गुरुतरावुभौ ॥
परदाराभिगमनं विना वैरं च रौद्रता ।

(वा० रा० ३ । ९ । ३-४)

जहाँतक मिथ्या-भाषणका प्रश्न है, वह दोष तो आपमें न कभी हुआ और न कभी होगा । पर-स्त्रियोंके प्रति अनुराग भी, जो कि धर्मनाशक मनोविकार है, आपमें न तो है और न होगा । आप सत्यवादी और धर्म-निष्ठ हैं, किंतु जो तीसरा व्यसन (बिना वैरके रोष) है, वह आपमें आना चाहता है; क्योंकि आपने दण्डकारण्य-वासी राक्षसोंके वधका प्रण ले लिया है । इसी कारण मेरे मनमें चिन्ता हो रही है और मैं नहीं चाहती कि आप

दण्डक-वनमें प्रवेश करें । यदि बिना अपराधके ही आप राक्षसोंका संहार करने लगेंगे तो जनता क्या कहेगी ।'

सीताजीके ये वचन सुनकर श्रीरामने कहा—'हे धर्मज्ञे जानकि ! हमलोग क्षत्रिय हैं और धनुषको इसीलिये धारण करते हैं कि दुराचारियोंसे निरीह और निर्दोष जनताको आर्त न हो । दण्डक-वनके राक्षस यहाँ तपश्चर्यामें निरत निरपराध ऋषि-मुनियोंके यज्ञ-यागमें निरन्तर विघ्न ही नहीं करते रहते, अपितु उन महात्माओंको वे नरमांसभोजी मारकर खा जाते हैं । राक्षसोंसे संत्रस्त होकर ये महात्मा लोग मेरी शरणमें आये थे और मैंने उनकी रक्षाकी प्रतिज्ञा की है। अतएव दुर्दान्त दैत्योंका संहार करके ऋषि-रक्षा करना उस व्यसनके अन्तर्गत नहीं है, जिसकी मुझमें सम्भावना करके तुम चिन्तित हो रही हो । तुमने अच्छा किया, जो अपने मनकी बात मुझसे कह दी । तुम्हारा मुझमें स्नेह है, सौहार्द है। तभी तो तुमने अपने दृष्टिकोणको मेरे सम्मुख रखा । प्रिय व्यक्तिको ही समझानेका प्रयत्न किया जाता है, जैसा कि तुमने अभी किया है । तुम्हारे इस प्रीति-भावसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ । हे शोभने ! तुमने अपने कुलके अनुकूल ही मुझे समझानेका उपक्रम किया है । तुम मेरी सहधर्मचारिणी हो, अतएव तुम मेरे लिये अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो—

> मम स्नेहाच्च सौहार्दादिदमुक्तं त्वया वचः ॥
> परितुष्टोऽस्म्यहं सीते न ह्यनिष्टोऽनुशास्यते ।
> सदृशं चानुरूपं च कुलस्य तव शोभने ।
> *सधर्मचारिणी मे त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥*
>
> (वा० रा० ३ । १० । २०-२१)

इस प्रसङ्गसे सीताजीकी यह भावना प्रकट होती है कि श्रीराम किसी भी अंशमें धर्मके मार्गसे विमुख न हो जायँ । यही सभी स्त्री-साध्वी पत्नियोंका कर्तव्य होना चाहिये कि वे पतिको धर्म-कर्ममें प्रोत्साहित ही प्रवृत्त करती रहें ।

वन-वास-सम्बन्धमें पति-परायणा सीताजीके हृदयमें सदा यही कामना रहती थी कि श्रीरामचन्द्रजी अपने पिताजीकी आज्ञाका पालन कर सकें । समय-समयपर उनके उद्गार इस भावनाके द्योतक हैं । नौकामें गङ्गा पार करते समय उन्होंने गङ्गाजीसे प्रार्थना की—

> पुत्रो दशरथस्यायं महाराजस्य धीमतः ।
> निदेशं पालयत्वेनं गङ्गे त्वदभिरक्षितः ॥
> चतुर्दश हि वर्षाणि समग्राण्युष्य कानने ।
>
> (वा० रा० २ । ५२ । ८१-८४)

'हे गङ्गा माता ! दशरथनन्दन ये मेरे प्राणनाथ वनमें पूरे चौदह वर्ष रहकर अपने पिताजीके आदेशका पालन कर सकें । आप इनकी रक्षा करती रहें ।'

इसी प्रकार यमुना-पार करते समय वे बोलीं—

> स्वस्ति देवि तरामि त्वां पारयेन्मे पतिर्व्रतम् ॥
>
> (वा० रा० २ । ५५ । १९)

'हे यमुना माता ! मैं तुम्हारे पार जा रही हूँ । मेरी कामना है कि मेरे पतिदेव अपने पितादेश-पालनरूप व्रतका अच्छी तरह निर्वाह कर सकें ।'

वट-वृक्षकी छायामें विश्राम करते समय भी उन्होंने कहा—

> नमस्तेऽस्तु महावृक्ष पारयेन्मे पतिर्व्रतम् ॥
>
> (वा० रा० २ । ५५ । २४)

'हे वनस्पते ! मैं आपका अभिवादन करती हूँ । मेरी इच्छा है कि मेरे पतिदेव सफलतापूर्वक अपने व्रतका पालन कर सकें ।'

द्वितीय वन-निर्वासनके समय भी श्रीरामसे अपने वियोगके कष्टको सहन करती हुए सीताजीने लक्ष्मणजीके द्वारा श्रीरामके लिये जो संदेश भेजा था, वह स्वर्णाक्षरोंमें लिखे जाने योग्य है—

> यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा ।
> परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात् कीर्तिरनुत्तमा ॥
>
> (वा० रा० ७ । ४८ । १५)

'राजन् ! अपनी प्रजाके प्रति वही स्नेह-भाव रखियेगा, जो आप अपने छोटे भाइयों—भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके प्रति रखते आये हैं । यही आपका परम धर्म है । इसका पालन करते रहनेसे आपकी उत्तम कीर्तिका विस्तार होगा ।' अपने बारेमें सुनाते हुए वे बोलीं—

> अहं तु नानुशोचामि स्वशरीरं नरर्षभ ॥
> पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः ॥
> प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः ।
>
> (वा० रा० ७ । ४८ । १६-१८)

'हे राजन् ! मुझे अपने शरीरकी चिन्ता नहीं है; क्योंकि नारीके लिये पति ही देवता है, पति ही बन्धु है, पति ही गुरु है । अतएव उसे अपने प्राण निछावर करके भी विशेष ध्यान रखकर वही कार्य करना चाहिये, जो पतिको प्रिय हो ।'

इस प्रकार उदात्त एवं परमोत्तम पतिभक्तिकी चर्चा करते हुए सीताजीने स्वयं भी उसीका आचरण करते हुए जगत्के सम्मुख भारतीय पत्नीका अनुकरणीय आदर्श स्थापित किया था । यही वेदोक्त प्राच्य सनातन आदर्श अद्यतन नारीके लिये भी पथ-प्रदर्शक हो, मङ्गलमय हो ।

श्रीसीता—परात्परा शक्ति

(लेखक—श्रीप्रियरामीय श्रीमधुरदासजी महाराज)

सकलकुशलदात्रीं　　भक्तिमुक्तिप्रदात्रीं
　　त्रिभुवनजनयित्रीं　　दुष्टधीनाशयित्रीम् ।
जनकधरणिपुत्रीं　　दर्पिदर्पप्रहर्त्रीं
　　हरिहरविधिकर्त्रीं नौमि सद्भक्तभर्त्रीम् ॥

'मैं उन भगवती सीताजीकी स्तुति करता हूँ, जो सर्व-मङ्गलदायिनी हैं—यहाँतक कि भक्ति और मुक्तिको भी दान करती हैं, जो त्रिभुवनकी जननी हैं तथा दुर्बुद्धिका नाश करनेवाली हैं, जो राजा जनककी यज्ञभूमिसे प्रकट हुई थीं तथा जो अभिमानियोंके गर्वको चूर्ण-विचूर्ण कर देनेवाली हैं, ब्रह्मा-विष्णु-महेशकी भी जननी हैं एवं भक्तोंका पोषण करनेवाली हैं ।'

श्रीमज्जगज्जननी भगवती श्रीसीताजीकी महिमा अपार है । वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास तथा धर्म-ग्रन्थोंमें इनकी अनन्त लीलाओंका शुभ वर्णन पाया जाता है । ये भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणप्रिया आद्याशक्ति हैं । इनके भ्रुकुटि-विलासमात्रसे उत्पत्ति स्थिति-संहारादि कार्य हुआ करते हैं । श्रुतिका वाक्य है—

　　उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी　　सर्वदेहिनाम् ।
　　सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता ॥
　　　　　　　　　　　　(श्रीरामोत्तरतापनी०)

'समस्त देहधारियोंकी उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाली आद्या-शक्ति मूलप्रकृतिसंज्ञक श्रीसीताजी ही हैं ।' पुनः—

निमेषोन्मेषाभ्यां सृष्टिस्थितिसंहारतिरोधानानुग्रहादिसर्वशक्ति-सामर्थ्यात्साक्षाच्छक्तिरिति गीयते ।
　　　　　　　　　　　　(श्रीसीतोपनिषद्)

'जिनके नेत्रोंके निमेष-उन्मेषमात्रसे ही संसारकी सृष्टि स्थिति संहारादि क्रियाएँ होती हैं, वह श्रीसीताजी हैं । तिरोधान अनुग्रहादि सर्वसामर्थ्यसे सम्पन्न होनेके कारण श्रीजानकीजी साक्षात् आद्या परात्परा शक्ति कहलाती हैं ।' पुनः—

भूर्भुवः स्वः स्वस्त्रयी वसुमती द्यावो लोका अन्तरिक्षं सर्वे त्वयि निवसन्ति । आमोदः प्रमोदो विमोदः सम्मोदः सर्वांस्त्वं संधत्से । आञ्जनेयाय ब्रह्मविद्याप्रदात्रि धात्रि त्वां सर्वे वयं प्रणमामहे प्रणमामहे ।
　　　　　　　　　　　　(श्रीमैथिलीमहोपनिषद्)

'श्रीजनकराजललने ! पृथिवी, पाताल तथा स्वर्ग—ये तीनों लोक, रत्नगर्भा वसुंधरा तथा आकाश—ये सब आपमें प्रतिष्ठित हैं । आमोद, प्रमोद, विमोद, सम्मोद—इन सबको आप धारण करती हैं । अञ्जनीनन्दन पवनपुत्रको आपने ही ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया था । हे जननि ! हम सब महर्षिगण आपके चरणोंमें बारंबार नमस्कार करते हैं ।' पुनः—

　　अर्वाची सुभगे भव सीते ! वन्दामहे त्वा ।
　　यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥
　　　　　　　　　　　　(ऋ० ४ । ५७ । ६)

'हे अभीष्ट प्रदान करनेवाली श्रीसीते ! हम सब आपके चरणोंकी वन्दना करते हैं, आप हमारा कल्याण करें ।'

अथर्व शिरोपनिषद्की श्रुति है—

जनकस्य गृहे भगवति सीतेत्याख्या सा सर्वेषामात्म-मूर्तिरासन्नासीत् । सुभगेऽपि देवाश्च । कार्यकारणात्मत्वमेव परा तथैव कार्यकारणार्थे शक्तिर्वस्याः, विष्णुश्रीभोगेश्वरी सैव कत्री रामानन्दस्वरूपिणी सैव जनकस्य योगप्रकाशिका भाति ।

भगवान् जनकके यज्ञमण्डपमें　　　　प्रकट हुई हैं, वे सर्वेश्वरी, आनन्दमूर्ति हैं ।

उनका गान करते हैं। वे कार्य-कारणसे परे और कार्य-कारणके निमित्त शक्तिसम्पन्ना हैं। ब्रह्माणी, लक्ष्मी और गौरी आदि अनन्त शक्तियोंकी उत्पादिका हैं। श्रीरामके आनन्दकी मूर्ति हैं। वे ही श्रीजानकीजीके मेघरूपके समान परम शोभा देती हैं।'

—इत्यादि अनन्तानन्त श्रुतियाँ भगवती श्रीसीताजीके परत्वका मुक्तकण्ठसे प्रतिपादन करती हैं। वाल्मीकिसंहितामें तो श्रीजानकीजीको श्रुतियोंकी भी माता बतलाया गया है। एक बार जब श्रुतियोंको यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि 'हमारे माता-पिता कौन हैं?' इसके जाननेके लिये बहुत कुछ प्रयास किया गया। पर जब पता न लगा, तब श्रुतियाँ श्रीब्रह्माजीके पास गयीं और बोलीं—

> कास्माकं जननी देव कः पितेति निवेदय।

इसके उत्तरमें श्रीब्रह्माजी कहते हैं—

> तामेव जानकीं वित्त जननीमात्मनः पराम्।
> श्रीरामं पितरं वित्त सत्यमेतद्ब्रुवे मम॥

'उन्हीं श्रीजानकीजीको तुम अपनी जननी समझो और श्रीरामजीको ही अपना पिता समझो, यह मैं तुमसे सत्य सत्य वचन कहता हूँ।' इससे यह सिद्ध होता है कि श्रीसीताजी सकलश्रुतिवन्दिता परात्पर शक्ति हैं।

> नित्यां निरञ्जनां शुद्धां रामाभिन्नां महेश्वरीम्।
> मातरं मैथिलीं वन्दे गुणग्रामां रमापराम्॥
> आद्यां शक्तिं महादेवीं श्रीसीतां जनकात्मजाम्।

'नित्या, परमनिर्मला, परमविशुद्धा, गुणसागरी, श्रीकी भी परम श्री, आद्याशक्ति, महेश्वरी, श्रीरामजीसे अभिन्ना, श्री जनकात्मजा, मैथिली, माता श्रीसीताजीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

श्रीशंकरजीका भी वाक्य है—

> सीताकटाक्ष पातैश्च लीलामात्रमिदं जगत्।

'यह चराचरोंसे परिपूर्ण जगत् परात्परा देवी श्रीसीताजीका लीलामात्र ही है।'

सदाशिवसंहितामें श्रीसाकेतधामके वर्णनमें आया है—

> तन्मध्ये जानकी देवी सर्वशक्तिसमावृता।

'उस दिव्यधामके परमरमणीय मण्डपके सिंहासनके मध्य भागमें समस्त शक्तियोंद्वारा समावृता श्रीसीताजी विराजमान हैं।'

श्रीबृहद्विष्णुपुराणान्तर्गत श्रीमिथिला माहात्म्यमें भी कहा गया है—

> जगद्धात्रीं महामायां महारूपां सनातनीम्।
> दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे देवताप्सरकिन्नराः॥

'जगन्माता, महामाया, महारूपा, सनातनी शक्ति श्रीसीताजीको देखकर ब्रह्मादि देवगण, नारदादि मुनिगण, गन्धर्व, किन्नर और अप्सरागण परम हर्षित हुए।'

श्रीमहारामायणमें भी शिव-वाक्य है—

> जानक्यंशात्समुद्भूतानेकब्रह्माण्डकारिणी।
> सा मूलप्रकृतिर्ज्ञेया महामायास्वरूपिणी॥

'श्रीजानकीजीके अंशोंसे ही अनेकानेक ब्रह्माण्डोंको उत्पन्न करनेवाली शक्तियाँ प्रादुर्भूत होती हैं। वह तो एक प्रकृतिस्वरूपिणी महामाया आद्याशक्ति हैं।'

महाशम्भुसंहितामें श्रीअगस्त्यजीने अपने शिष्य श्रीसुतीक्ष्णजीसे कहा है—

> सीताकटाक्षाद् बहवश्च शक्तयः सम्भवन्ति हि।

'श्रीसीताजीके कटाक्षसे बहुत-सी शक्तियाँ उत्पन्न होती रहती हैं।'

श्रीसम्प्रदायाचार्य श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराजने भी भगवतीकी अपरिमित शक्तिका वर्णन करते हुए लिखा है—

> ऐश्वर्यं यदपाङ्गसंश्रयमिदं भोग्यं दिगीशैर्जग-
> द्दिव्यं चाखिलमद्भुतं शुभगुणा वात्सल्यसीमा च या।
> विद्युद्भासमानकान्तिरमितैस्ताभिः सुपद्मेक्षणा
> दद्यान्नोऽखिलसम्पदो जनकजा रामप्रिया सा श्रियम्॥

'दिक्पालादि और लोकपालादिके ऐश्वर्य भोग तथा आश्चर्यमय अद्भुत ब्रह्माण्ड जिनके कृपाकटाक्षपर ही सर्वथा अवलम्बित हैं, जो अशेष वात्सल्यगुणसे पूर्ण हैं, वे शुभ गुणोंसे युक्त, विद्युत्के समान तेजःसम्पन्ना, परम कमलात्मजा, कमलनयना, श्रीरामप्रिया, आद्याशक्ति माता श्रीसीताजी निरन्तर हमें मोक्षादि सर्वार्थ प्रदान करें।'

श्रीगोस्वामीजीने भी श्रीसीताजीका बड़ा ही महिमामय गुणगान किया है। यथा—

> उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
> सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥
>
> (मानस १।५ श्लोक)

'उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय करनेवाली, सर्वशक्ति-सम्पन्ना, क्लेशहारिणी, समस्त कल्याणकारिणी, श्रीरामवल्लभा भगवती श्रीसीताजीको मैं नमस्कार करता हूँ।'

पुनः

जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥
(मानस० १ । १४८ । ४)

लखा न मरमु राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ॥
(वही, २ । २५२ । २)

जयति श्रीस्वामिनी सीय सुभ भामिनी
दामिनी कोटि निज देह दरसै।
इंदिरा आदि दै मत्त-गज-गामिनी
देव-भामिनि सबै चँवर करसै॥
(विनय-पत्रिका)

एक भक्तने जगन्माताकी स्तुति करते हुए क्या ही अच्छा कहा है—

सुराः सर्वे यत्रोत्तम चरणमूले सुरपती-
स्त्वमस्मीया मूर्ध्नस्तुतिमिति मत्वा सुरगणः।
भवत्सम्यग्भक्तावपि विविधयत्नेषु बहुधा
विधत्ते प्रायश्चित्तं चरति बहुकृत्यैः परतमे॥
(श्रीजानकीचरणचामरस्तोत्र १०९)

'हे परमेश्वरी! आपके सामने बड़े-बड़े देवगण परम तुच्छ हैं। अतः वे जब आपके दरबारमें आते हैं, तब आपके श्रीचरण-मूलमें आकर नम्र-भावसे बैठते हैं। यह देखकर ब्रह्माजीने सोचा कि जिनके चरणोंकी महान् देवतागण वन्दना करते हैं, वे भगवती सीताजी मेरी छायामें बैठती हैं, मैं उनके ऊपर हो जाता हूँ—यह मेरी बड़ी भारी धृष्टता है। हे अम्ब! इस अपराध अपराधको क्षमा करानेके लिये ही इस रत्न-मण्डपकी स्वच्छभूमिमें छायारूपेण प्रविष्ट होकर आपके चरणोंका बारंबार स्पर्श करके बारंबार अपने अपराधकी क्षमा-याचना करता है।'

श्रीजनकीजीकी जो अतुलनीय शक्ति है, उनकी तुलनामें अनन्त ब्रह्माण्डमें कोई भी प्राप्त नहीं हो सकता। ठीक ही कहा है—

यस्या विश्वहितेप्सया न तुलना यत्ने प्रभुत्वा क्षमा
वाणी चापि रमा च मन्यत इयं निस्संशयं निश्चया।
इन्द्राणी गिरिजाम्बिका च सकला देवाङ्गना रूपसा
मन्ये स्वेऽप्सरसोऽपि रूपरसिका भक्ता हि दासीसमाः॥

'श्रीजनकीजीकी अप्रतिम महिमाने संसारकी सभी उपमाओंको तिरस्कृत कर रखा है। इनकी तुलनामें न उमा आ सकती है न वाणी, न लक्ष्मी और न ब्रह्माणी फिर अन्य श्रेष्ठ देवाङ्गनाओंकी तो बात ही क्या! ये देवियाँ तथा अप्सरादि तो इनके रूपपर मुग्ध दासीके समान बन पड़ती हैं।'

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी इसी आशयपर कहा है—
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही॥
(मानस० १ । २४७ । २-४)

वेदान्तके प्रकाण्डवेत्ता महात्मा श्रीकाष्ठजिह्वदेव स्वामीने भी श्रीकिशोरीजीकी अद्भुत महिमा वर्णन की है—

अगम-अनी-नय-बुधि-सरित निज बुधि कहँ ना जोय।
मज्ज-ज्योति समरथ नहीं, कबहुँ कलित होय॥
ललित पद-अँगुरिन की, सोभा अति सरसाय।
पंचदेव मानौ समुझि, बैठे पद ठहराय॥
सिव-मन सुखदायक समुझि, हियरे अति सुख पाय।
तीनों देवी देह-मिस पहुँची पहुँचन ध्याय॥
सची-सिवानी-इंदिरा मध्य माहिं निज भाय।
सिय की सिवरनि अमित छबि, कासु देत निहाय॥

इस प्रकार शास्त्र और महात्माओंने श्रीसीताजीको ही आद्याशक्ति, परात्परा शक्ति तथा सर्वशक्तिशिरोमणि कहकर वर्णन किया है। वाल्मीकि-रामायणमें तो महर्षिजीने प्रारम्भमें ही 'सीतायाश्चरितं महत्' कहकर श्रीजनकीजीकी महत्ताका पूर्ण परिचय दिया है। इसलिये यह सिद्ध होता है कि जगदम्बा, श्रीजनकराजपुत्री, श्रीरामप्रिया, श्रीसीताजी परात्परा आद्याशक्ति हैं।

भगवती श्रीसीता

(लेखक—श्रीयुत श्रीरामशरण मजूमदार, एम्० ए०)

श्रीराम-तत्त्व अथवा श्रीसीता-तत्त्वका पूर्णतया वर्णन कौन कर सकता है। भगवान् सनत्कुमारने ब्रह्मनन्दसे कहा था—

'आकाशमें स्पन्दित उस मायाबीजका रूप कहता हूँ। वह समस्त वृक्षों तथा पर्वतोंमें एवं नद-नदियोंमें विद्यमान है। वही ओंकार है, वही सत्य है, वही सावित्री (गायत्री देवी) और वही पृथ्वी है। सारे जगत्‌के आधारभूत शेषनागका रूप भी वही धारण किये हुए है। सारे देवता, समुद्र, काल, सूर्य, चन्द्रमा, सूर्यके अतिरिक्त अन्य ग्रह, महोरग, यमराज, वायु, अग्नि, रुद्र तथा मृत्यु, मेघ तथा आदित्य-ब्रह्मा रुद्र आदि प्रधान देव एवं अन्य गौण देव तथा दानव भी उसीके रूप हैं। बिजलीके रूपमें वही कौंधता है, अग्निके रूपमें वही प्रज्वलित होता है, वही विश्वको उत्पन्न करता है, वही उसका पालन करता है और वही भक्षण करता है। इस प्रकार यह सनातन अविनाशी विष्णु अनेक प्रकारसे लीला करता है। उसीने इस समस्त चराचर विश्वको व्याप्त कर रक्खा है। वे भगवान् विष्णु नील कमलके समान श्यामवर्ण हैं और बिजलीके समान पीताम्बरको धारण किये हुए हैं। उनके वामाङ्कमें तपाये हुए सोनेके समान आभावाली अविनाशिनी देवी लक्ष्मीजी विराजमान हैं, जिनकी ओर वे सदा देखते रहते हैं और जिन्हें आलिङ्गन किये रहते हैं।'

सीताराम ऐसे हैं। इनका वर्णन कौन करेगा? क्या कोई इनका वर्णन कर सकता है? श्रीमद्भागवतके प्रारम्भमें ही देवर्षि नारद महर्षि व्यासदेवसे कहते हैं—

> इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो
> यतो जगत्स्थाननिरोधसम्भवाः।
> तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि ते
> प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम्॥
>
> (श्रीमद्भा० १ । ५ । २०)

'यह विश्व भगवान्‌का ही रूप है और भगवान् इससे विलक्षण भी हैं; उन्हींके द्वारा इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार होता है। आप इसे निश्चयरूपसे जानते हैं, तथापि आपको दिङ्मात्र-निर्देश—परिचय कर दिया।'

'आप मुझे भगवान्‌की लीलाका वर्णन करनेके लिये कहते हैं। किंतु ये भगवान् कौन हैं? उनकी लीला क्या है? श्रीकृष्ण जो माने गये हैं, अब इस अवस्थामें उनकी लीला क्या है?' इसके उत्तरमें देवर्षि कहते हैं—'यह जो विश्व है, यह भगवान् ही हैं। परंतु भगवान् इस विश्वसे इतर—भिन्न हैं, इस विश्वसे विलक्षण हैं।' विश्वसे भगवान् भिन्न क्यों हैं? इसीलिये कि भगवान्‌से ही इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहार होते हैं। यह सृष्टि, स्थिति और संहार ही उनकी लीला है।

इसे समझनेके लिये स्थूल विश्व, सूक्ष्म संस्कार या वासना एवं बीजस्वरूप स्पन्दन—इनसे ऊपर उठकर चित्स्वरूपका अनुसंधान करना पड़ता है।

यह विश्व जबतक रहेगा, तबतक भगवान्‌की सच्चिदानन्दकी मूर्ति ब्रह्मा भी रहेंगे, अर्थात् ब्रह्माके रूपमें श्रीरामचन्द्रजी सदा ही सृष्टि-कार्यमें रत रहेंगे। वे ही बीजसे वृक्ष उत्पन्न करते हैं, वृक्ष वृक्षमें फूल खिलाते हैं, फल भी वे ही लगाते हैं। संसारमें असंख्य नर-नारी, पशु-पक्षी, कीट-पतंगोंको वे ही रचते हैं और विष्णुरूपमें वे ही सब जीवोंका पालन करते हैं। पुनः विश्वमें प्रतिदिन जो सबकी लीला चल रही है, उसे भी वे ही परमात्मा श्रीरामचन्द्र अपनी रुद्रमूर्तिद्वारा करते हैं। इन श्रीभगवान्‌का और इनसे अभिन्न ज्योतिःस्वरूपिणी उनकी शक्तिका एकान्तमें आत्माकी मूर्ति इष्टदेव या इष्टदेवीके रूपमें ध्यान करना होगा और साथ ही-साथ हृदयमें या भ्रूमध्यमें उनके चरणारविन्दोंमें मन एकाग्र करके बाहर उसी शक्तिसमन्वित शक्तिमान्‌का विश्वरूपमें चिन्तन करना होगा; तभी उपासना होगी और तभी उनके दर्शन मिलेंगे। परंतु उनके दर्शन कैसे होंगे? कहा जाता है—

> द्रष्टुं न शक्यते कैश्चिद्देवदानवपन्नगैः।
> यस्य प्रसादं कुरुते स चैनं द्रष्टुमर्हति॥

'देव, दानव, नाग—कोई उन्हें नहीं देख सकता। फिर उपाय क्या है? वह जिसके ऊपर कृपा करते हैं, वही उन्हें देख सकता है।' श्रीचण्डीमें जगन्माता कहती हैं कि मैं ही विद्वान्‌को भी मोहयुक्त कर देती हूँ—

> सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।
>
> (दुर्गासप्तशती १ । ५७)

पूजा, स्तवन, प्रार्थना, प्रणति करनेसे वे प्रसन्न होकर मनुष्यको संसार-सागरसे मुक्त कर देती हैं। सर्वदा नाम-जप करना, मानस पूजा करना, बाह्य-पूजा करना, स्तवन-प्रार्थना-नमस्कार करना आदि सब भी वे ही हैं, सब कुछ उनका ही है, मेरा कुछ भी नहीं—इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे माँको प्रसन्न किया जा सकता है। श्रीसीतातत्त्वका प्रथम सोपान यह है कि जो सीता हैं, वही श्रीराम हैं। शास्त्र यही कहते हैं—

'राम साक्षात् परमज्योति, परमधाम और परात्पर पुरुष हैं। सीता और रामकी आकृतिमें ही भेद है, वास्तवमें नहीं। राम ही सीता हैं और सीता ही राम हैं। इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है। संत लोग इसी तत्त्वको बुद्धिके द्वारा भलीभाँति जानकर जन्म-मरणरूपी संसारके पार पहुँच सके हैं।' (अद्भुतरामायण)

श्रीसीता श्रीरामकी ज्योति हैं—उसी प्रकार, जिस प्रकार सविताकी भर्ग है। राहुके सिरके समान सविता और 'वरेण्यं भर्गः' एक ही वस्तु हैं। इसी प्रकार शिवकी ज्योति अन्नपूर्णा हैं और श्रीकृष्णकी ज्योति राधा हैं।

श्रीचण्डीमें जो महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीरूपमें असुरनाशिनी हैं, वही रामायणमें सीतारूप असुरनाशिनी काल-रात्रि हैं। रावणकी सभामें श्रीहनुमान्‌ने कहा था—

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे।
कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम्॥
(वा० रा० ५। ५१। ३४)

'हे रावण! जिन्हें तुम सीता समझते हो, जो आज तुम्हारे घरमें अवस्थित हैं, उन्हें तुम कालरात्रि ही समझो। वह सर्वलङ्काविनाशिनी हैं।' श्रीचण्डी भी वही कालरात्रि हैं। श्रीचण्डीके समान ये सीता ही योगमाया, महामाया, जगद्धात्री हैं।

जिस प्रकार भगवान् वाल्मीकिके समान दूसरा कवि इस जगत्‌में नहीं हुआ, उसी प्रकार समस्त जगत्‌में सीता भी अद्वितीय थीं, हैं और सदा रहेंगी। रामायणमें श्रीसीतारामका यशोवर्णन करके भगवान् वाल्मीकि पूर्ण हो गये। भगवान् ब्रह्माने जब वर उपदान देकर आदिकविसे महाभारत-रचनाके लिये कहा, तब आदिकवि बोले—'मैं तो पूर्ण हो गया हूँ, अब किसलिये परिश्रम करूँ। परंतु आपके आज्ञानुसार मेरे पश्चात् जब व्यासदेव आयेंगे, तब मैं उन्हें काव्यका बोझ प्रदान करूँगा।' यह बात बृहद्धर्मपुराणमें मिलती है। 'मैं भगवान्‌का यशोवर्णन कर पूर्ण हो गया हूँ,' यह बात आधुनिक जगत्‌में किसी भी कवि अथवा ग्रन्थलेखकके मुखसे नहीं सुनी गयी। इसीलिये मैंने कहा है कि वाल्मीकिके समान ही श्रीसीता भी एक ही हैं। समस्त जगत्‌के साहित्य या धर्ममें ऐसी दूसरी कोई नहीं है। रूप, गुण और शीलमें ऐसी दूसरी नहीं है। स्वरूपकी तो बात ही निराली है। मैं कहता हूँ कि श्रीसीता रूपमें अतुलनीया हैं। इससे अधिक कहना अनावश्यक है। अकम्पन रावणसे कहता है—

'उनकी सीता नामकी सुन्दर भार्या है, जो संसारभरकी नारियोंमें श्रेष्ठ है। उसका कटिप्रदेश अत्यन्त सुन्दर है, उसके सारे अवयव सुडौल हैं। वह स्त्रियोंमें रत्नके समान है और रत्नोंसे सुसज्जित है। मनुष्यलोककी स्त्रियोंकी तो कौन कहे, देवाङ्गनाओं, गन्धर्वियों, नागपत्नियों और अप्सराओंमें भी कोई ऐसी स्त्री नहीं है, जो उसकी समता कर सके।' (वा० रा०, ३। ३१। २९-३०)

शूर्पणखा भी रावणसे कहती है—

'रामकी धर्मपत्नी विशाल नेत्रोंवाली, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली तथा अपने पतिको अत्यन्त प्रिय है और सदा उसके अनुकूल आचरण एवं हितसाधनमें तत्पर रहती है। उसके सुन्दर केश हैं, सुन्दर नासिका और सुन्दर भुजाएँ हैं। वह अप्रतिम सुन्दरी है और उसका बड़ा यश है। राक्षसेश्वर! वह इस वनकी मानो दूसरी लक्ष्मी है। वर्ण उसका तपाये हुए सोनेके समान है। सीता उसका नाम है, विदेहकी वह पुत्री है, उसके स्तन बहुत सुन्दर हैं और कटिप्रदेश अत्यन्त क्षीण है। मैंने वैसी सुन्दर नारी पृथ्वीतलपर कहीं नहीं देखी। और तो क्या, देवाङ्गनाओं, गन्धर्वियों, यक्षपत्नियों तथा किन्नरियोंमें भी कोई ऐसी सुन्दरी नहीं है।' (वा० रा० ३। ३४। १५-१८)

इससे बढ़कर रूपका वर्णन और क्या होगा। तथापि श्रीभवभूतिने जो कुछ कहा है, वह बहुत ही सुन्दर है—

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः॥
(उत्तररामचरित १। ३८)

'यह साक्षात् गृहलक्ष्मी है, मेरे नेत्रोंको जुड़ानेके लिये यह अमृतकी वर्ति (सलाका) है, इसका स्पर्श शरीरके लिये प्रचुर चन्दनरसके समान शीतल है, इसकी भुजलता मेरे कण्ठमें शीतल और चिकने मोतियोंके हारकी शोभाको धारण करती है। इसका सब कुछ मुझे अतिशय प्रिय है, केवल इसका वियोग मेरे लिये असह्य है।'

भगवान् पुनः कहते हैं—

मध्यं केशरिभिः स्थितं च कुसुमैर्नेत्रं कुरङ्गीगणैः
कान्तिश्चम्पककुड्मलैः कलरुतं हा हा हृतं कोकिलैः।
वल्लीभिर्ललितं गतं करिवरैरित्थं विभक्त्याङ्गस
कान्तारे सकलैर्विलासपटुभिर्नीतासि किं मैथिलि॥
(महानाटक ४। २१)

'प्रिये मिथिलेशकुमारी, जान पड़ता है जंगलमें रहनेवाले क्रीडाकुशल जानवर सब मिलकर तुम्हें हर ले गये हैं और उन्होंने अपने बीच तुम्हारे विविध अङ्गोंको बाँट लिया है। लगता है, सिंहोंने तो तुम्हारी क्षीण कटि छुपा ली है, पुष्पोंने मुस्कान, हरिणियोंने नेत्र, चम्पाकी कलियोंने कान्ति, पिकोंने मीठी बोली, लताओंने विलास और गजराजोंने तुम्हारी चालको छुपा लिया है।'

गुणोंका मैं अधिक उल्लेख नहीं करूँगा। स्त्रियोंका जो रमणीय गुण है, उसे ही कहकर विश्राम लूँगा। जगन्माता जगदेकनाथके परमधामको व्यथित होकर श्रीलक्ष्मणसे कहती हैं—'हे सुमित्रानन्दन! मेरे लिये चिता तैयार करो। मेरे रोगकी अब यही दवा है। इस झूठे कलङ्कका टीका सिरपर लगाये मैं जीवित नहीं रह सकती।' माता उस समय भी अधोमुखस्थित पति-देवताकी प्रदक्षिणा और प्रणाम करना नहीं भूलतीं। केवल स्वामीको ही नहीं, देवता और ब्राह्मणोंको भी नहीं भूलतीं।

उन्होंने देवताओं तथा ब्राह्मणोंको प्रणाम करके, हाथ जोड़कर अग्निके समीप इस प्रकार कहा—'यदि मेरा हृदय रघुकुलनन्दन श्रीरामके चरणोंसे क्षणभरके लिये भी दूर नहीं होता तो सम्पूर्ण जगत्के साक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें। यदि रघुनन्दन मुझ निर्दोष चरित्रवालीको भी दूषित समझते हैं तो वे लोकसाक्षी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्षा करें।' (वा० रा० ६। ११६। २५-२६)

'मेरा हृदय मेरे स्वामीसे यदि क्षणभरके लिये भी न हटा हो—इससे अधिक स्त्रीके लिये शरीर धारण करनेका गुण शायद और कोई नहीं है। यदि और भी कहें तो कह सकते हैं कि मिथ्या लोकापवादके कारण जब श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणके द्वारा सीताका त्याग किया, तब भी इस विदेहनन्दिनीने स्वामीके प्रति किसी कठोर शब्दका प्रयोग नहीं किया। मनमें रोते रोते यह बोलीं—

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः॥
(वा० रा० ७। ४८। १७-१८)

'स्त्रीके लिये उसका पति ही देवता है, पति ही बन्धु है और पति ही गुरु है। इसलिये स्वामीका कार्य उसके लिये प्राणोंसे भी प्यारा है।'

रूप और गुणके विषयमें कुछ बातें कही गयीं। अब शीलके विषयमें कुछ कहकर मैं संक्षेपमें कुछ निवेदन करूँगा। सुन्दरकाण्डके आधारपर यह आलोचना की जा रही है।

भगवान् वाल्मीकिने इस काण्डका नाम 'सुन्दरकाण्ड' क्यों रखा? बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, युद्धकाण्ड, उत्तरकाण्ड—इन नामकरणोंका कारण समझनेमें कोई कठिनाई नहीं होती; परंतु सुन्दरकाण्डके नामकरणमें मानो कुछ विशेषता है।

'रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यम्।'

'रामायण लोगोंको बहुत प्रिय है और यह आदिकाव्य है।' अध्यात्मरामायणके अन्तिम श्लोकके प्रथम चरणमें रामायणको 'जनमनोहर आदिकाव्य' कहा गया है। समस्त रामायण ही मनोहर है, उसके अंदर सुन्दरकाण्ड अत्यन्त मनोहर है। इसके श्रेष्ठ होनेका कारण बताते हुए कहा गया है—

सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किं न सुन्दरम्॥

"'सुन्दरकाण्ड'में राम सुन्दर हैं, 'सुन्दर'की कथाएँ सुन्दर हैं, 'सुन्दर'में सीता सुन्दरी हैं, 'सुन्दर'में क्या सुन्दर नहीं है!" सुन्दरमें रामके सौन्दर्यका विस्तारसे वर्णन तो है ही। (द्रष्टव्य—सर्ग ३५। १—५०)

राम ही श्रीराम सीता अभिन्न भी हैं—

'गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।'
(मानस० १। १८)

रामतापनीयोपनिषद्में कहा गया है—

'यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्, या जानकी भूर्भुवः सुवस्तस्मै वै नमो नमः।' (१५)

'श्रीरामचन्द्र साक्षात् भगवान् हैं और देवी जानकी भूर्भुवः स्वःरूप व्याहृति हैं। इसलिये उन्हें नमस्कार है, नमस्कार है।'

राम ही जानकी हैं, इसीसे रामके सौन्दर्यमें ही राम-मानस सरोमरालिकाका सौन्दर्य है। सुन्दरकाण्डमें जिस कुन्दकुसुम-कमल-सुन्दर सीताके रूप और गुणका विकास है, वह क्या जाग्रत् और क्या स्वप्न, सर्वदा श्रीरामके चरण-कमलोंमें सब कुछ समर्पण किये हुए है—इसलिये भी कहा गया है—'सुन्दरे सुन्दरो रामः।'

हनूमान्ने रावणको अति तुच्छ मानकर कहा था—

> न मे समा रावणकोटयोऽधम
> रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः।
> (अध्यात्मरामा० ५।४।२१)

'अरे अधम! करोड़ों रावण मेरी समता नहीं कर सकते। मैं श्रीरामका दास हूँ, अतः मेरे पराक्रमका कोई थाह नहीं पा सकता। रामका दास होनेके कारण मुझमें अपार विक्रम है।' दास होनेसे जहाँ इतना शौर्य-वीर्य प्रस्फुटित हो उठता है, वहाँ स्वरूप सौन्दर्य भगवान्का ही है—यह कहनेमें अतिशयोक्ति क्या है! इसीसे 'सुन्दरे सुन्दरो रामः' कहा गया है। 'सुन्दरे सुन्दरो रामः' का अर्थ तो समझमें आया, परंतु सुन्दरमें सब कुछ सुन्दर है, इसका क्या अभिप्राय है?

क्या सुन्दरमें सब सुन्दर नहीं है? शतयोजनविस्तीर्ण, भीमदर्शन, महोन्नततरङ्गसमाकुल, भीमनक्रभयंकर, अगाध गगनाकार सागरका उल्लङ्घन, मारुतिकी बल-परीक्षाके लिये सुरसाका विघ्न पैदा करना, मैनाककी अभ्यर्थना याचनापर श्रीहनूमान्का यह कथन कि मैं रामकार्य करने जा रहा हूँ, इस समय मुझे भोजन करने या विश्रामके लिये कहाँ अवसर है? मुझे तो अत्यन्त शीघ्र जाना है, सिंहिका राक्षसीके हनूमान्की छायाका आक्रमण कर समुद्रमें मारुतिका मार्ग रोकनेपर उसका विनाश, समुद्रके दक्षिण-किनारे त्रिकूटशिखरपर लङ्कापुरीका दर्शन, संध्याकालमें सूक्ष्म देह धारणकर लङ्कामें प्रवेश करते समय राक्षसी-वेशधारिणी लङ्किनीपर हनूमान्का चरण-प्रहार, हनूमान्के वाममुष्टि-प्रहारसे लङ्किनीका रक्त-वमन, लङ्किनीके द्वारा सीताका संवाद, सीताका अन्वेषण, फिर शिंशपा पेड़के नीचे, 'देवतामिव भूतले'—

> एकवेणीं कृशां दीनां मलिनाम्बरधारिणीम्।
> भूमौ शयानां शोचन्तीं रामरामेति भाषिणीम्॥
> (अध्यात्मरामा० ५।२।९-१०)

'श्रीहनूमान्जीने जगदम्बा जानकीजीको इस प्रकार देखा, मानो पृथिवीतलपर कोई देवाङ्गना उतर आयी हो। वे एक वेणी धारण किये हुए थीं। उनका शरीर दुर्बल था, आकृति दीन थी, मलिन वस्त्र पहने हुए थीं, पृथ्वीपर लेटी हुई थीं, शोचमें पड़ी हुई थीं और राम-रामकी रटन लगाये हुए थीं।'

—जनकनन्दिनीका दर्शन, रात्रिकालमें स्त्रीजनपरिवारित, दस मुख, बीस भुजावाले, नीलाञ्जन-राशिके समान रावणका सीता-दर्शन, रावण और सीताका उत्तर-प्रत्युत्तर, जानकीके परुष वाक्य श्रवणकर उनका वध करनेके लिये रावणका खड्ग उठाना, मन्दोदरीका निवारण करना, रावणके प्रस्थान करनेपर उसकी दासियोंका तर्जन-गर्जन और उत्पीड़न, त्रिजटाका स्वप्न-वृत्तान्त, राक्षसीवृन्दका भयभीत तथा निद्रित होना, सीताका रुदन और प्राणत्याग करनेकी चेष्टा, वृक्षके ऊपरसे श्रीहनूमान्का राम-वृत्तान्त-वर्णन, सीता और हनूमान्का कथोपकथन, अँगूठी प्रदान करना, अशोक-वाटिकाका विध्वंस, रावणकी सेना और अक्षयकुमारका वध, इन्द्रजित्के ब्रह्मपाश बन्धनमें हनूमान्का रावणके समीप लाया जाना, रावणको उपदेश, रावणका क्रोध, पूँछमें अग्निप्रदान, लङ्कादहन, पुनः सीतासे बातचीत करके सागरका लाँघना, वानरोंके साथ मिलना, मधुवनके फल खाना और उसे उजाड़ना, राम और सुग्रीवको सीताका संवाद सुनाना, रामके द्वारा हनूमान्का आलिङ्गन—सुन्दरकाण्डकी ये सभी कथाएँ बड़ी सुन्दर हैं।

इनके पश्चात् 'सुन्दरे सुन्दरी सीता'के विषयमें तो कहना ही क्या है! सीताके सतीत्वका तेज, सीता और हनुमान्‌के कथोपकथनमें सीताके चरित्रकी रमणीयता—इसीसे 'सुन्दरे सुन्दरी सीता' कहा गया है और इसलिये कहा गया है—'सुन्दरे किं न सुन्दरम्—सुन्दरकाण्डमें क्या सुन्दर नहीं है?'

(२)

नाम, रूप, गुण और लीलाकी आलोचनासे हमारे विचारमें यह आता है और तत्त्वस्वरूपको आरम्भ नहीं करनेसे नाम ...

आदिमें गम्भीरता नहीं आती । हम जिनके स्वरूपकी आलोचना करते हैं, वे ही सर्वव्यापिनी चैतन्यरूपसे भूर्भुवः-स्वर्लोकमें व्याप्त हो रही हैं तथा इन सर्वव्यापी सर्वानुस्यूत चैतन्यकी घनीभूत मूर्ति ही उपासनाकी वस्तु है—इसे जाने बिना उपासना ठीक-ठीक नहीं होती । हम जिनकी उपासना करते हैं, वे ही सर्वप्रधान हैं—यह धारणा न होनेसे अथवा हमारी उपासनाकी वस्तुसे बढ़कर भी कुछ और है, ऐसी धारणा होनेसे उपासनाका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता ।

(३)

श्रीसीतामाताका तत्त्व क्या है, इसपर मैं श्रीसीतोपनिषद् तथा श्रीअध्यात्मरामायणसे उल्लेख कर इस लेखका उपसंहार करता हूँ । 'का सीता किं रूपमिति—सीता कौन हैं, उनका रूप कैसा है ?—देवतालोग प्रजापतिसे पूछते हैं । ब्रह्मा कहते हैं कि मूलप्रकृतिरूपा होनेसे सीताको प्रकृति कहते हैं ।'

मूलप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिः स्मृता ।

(सीतोपनिषद्)

प्रणव (अ, उ, म्), नाद, बिन्दु, कला और कलातीत—इन पञ्चाक्षरोंसे ग्रथित होनेके कारण सीता ही प्रणवरूपिणी हैं । वे ही सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका प्रकृति हैं । वे ही त्रिवर्णात्मा साक्षात् माया हैं । 'सी' में जो ईकार है, वह प्रणव बीज है, वही माया है । विष्णु संसारके बीज हैं और ईकार माया है । त्रिगुणात्मिका सीता साक्षात् मायामयी हैं, वे अविद्यास्वरूपिणी हैं । साथ ही वे ही विद्यास्वरूपिणी भी हैं । सकार सत्यका नाम है, वही अमृतप्राप्ति और सोम हैं । और तकार है रत्नमण्डित विराजमान महालक्ष्मी शक्तिविशेष ।

सीता ईकाररूपिणी अव्यक्तरूपिणी महामाया हैं—सोमके अमृत अवयवरूप दिव्य अलंकारद्वारा तथा माल्य मुक्तादि अलंकारसे भूषिता होकर प्रकाशित होती हैं ।

माताका प्रथम रूप शब्दब्रह्म प्रणव है, यही वेदपाठके समय प्रसन्न होकर उत्पन्न हुआ था । माताका द्वितीय रूप है भूतलरूप—जो पृथ्वीसे हलके अग्रभागसे उद्घाटित हुआ था । तृतीय रूप है ईकाररूपिणी अव्यक्तस्वरूपा । इनका श्रुति प्रतीक रूपमें सीता इसी रूपमें वर्णित हुई हैं ।

फिर श्रीसीतामाताका और कैसा रूप है ? श्रीरामके निकट रहनेके कारण वे जगदानन्ददायिनी हैं और जो कुछ देहविशिष्ट है, उसकी उत्पत्ति-स्थिति-संहारकारिणी भी वे ही सीतादेवी हैं । सीता ही भगवती मूलप्रकृति हैं । ब्रह्मवादी कहते हैं कि सीता ही प्रणव होनेके कारण प्रकृति हैं । तब सीता क्या नहीं हैं ? श्रुति कहती है—

'वे सर्ववेदमयी हैं, सर्वदेवमयी हैं, सर्वकीर्तिमयी हैं, सर्वधर्ममयी हैं, सबका आधार और कार्य-कारण दोनों हैं । वे ही महालक्ष्मी हैं, देवाधिपति भगवान्से भिन्न और अभिन्न दोनों हैं । चेतन भी वे ही हैं और अचेतन भी वे ही हैं । ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सबकी आत्मा वे ही हैं । वे ही प्रकृतिके गुण-कर्मविभागके यथार्थ-हेतु शरीर बनी हुई हैं । देव, ऋषि, मनुष्य और गन्धर्व—सब उन्हींके रूप हैं । दैत्य, राक्षस, भूत, प्रेत आदि भूतोंका आदिशरीर वे ही हैं । पञ्चमहाभूत, इन्द्रिय, मन और प्राण भी उन्हींके स्वरूप हैं ।'

श्रुति फिर कहती है—'सीता शक्ति हैं, वे इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति और साक्षात्-शक्ति हैं । वे ही इच्छा-शक्तिके तीन भेद भी हैं, अर्थात् श्रीभूमि-नीलास्वरूपमें वे भद्ररूपिणी हैं, प्रभावरूपिणी हैं और सोम-सूर्य-अग्नि-स्वरूपिणी हैं । सोमात्मिका होनेके कारण सीता ओषधियोंके ऊपर प्रभाव विस्तार करनेवाली हैं । वे कल्पवृक्ष पुष्प फल लता-गुल्मस्वरूपा हैं । फिर ओषधिसे उत्पन्न औषधरूपमें वे अमृतस्वरूप होकर देवताओंको यज्ञफल प्रदान करनेवाली हैं ।

'वे ही सीता अमृतद्वारा देवताओंको, अन्नद्वारा पशुओं-को, तृणद्वारा तृणभोजी जीवोंको तृप्त करती हैं । वे सूर्यादि सब लोकोंको प्रकाश देती हैं । वे ही दिन रात्रिस्वरूपिणी हैं, समयका जो प्रकाश भेद है, सब ये ही हैं । निमेषसे आरम्भ करके परार्धपर्यन्त जो कालचक्र है, वही जगच्चक्र है और इस प्रकारसे सीता ही चक्रवत् परिवर्तमाना हैं ।' श्रुतिके कहनेमें कुछ भी शेष नहीं रहता ।

'वे अग्निरूप होकर समस्त जीवधारियोंकी क्षुधा और पिपासाके रूपमें स्थित हैं, देवताओंका मुखस्वरूप हैं, वनकी ओषधियोंमें शीत और उष्णरूपसे व्याप्त हैं तथा काष्ठोंके भीतर और बाहर नित्यानित्यरूपसे स्थित हैं ।

'श्रीदेवी लोकरक्षाके लिये रूप भी धारण करती हैं । पृथ्वीरूपसे वे त्रिभुवनको आश्रय देती हैं, प्राणरूप भी वे ही हैं । समस्त ओषधियाँ और प्राणियोंके पोषणके निमित्त वर्तमाना हैं । वे ही क्रिया-शक्तिस्वरूप श्रीहरिके मुखसे उत्पन्न नाद हैं । नादसे उत्पन्न ओंकार इत्यादि हैं ।

ऋग्यजुःसामरूप वेदत्रयी हैं। इक्कीस शाखाओंवाला ऋग्वेद, एक सौ नौ शाखाओंवाला यजुर्वेद तथा सहस्र शाखाओंवाला सामवेद वे ही हैं। इसके अतिरिक्त पाँच शाखाओंवाला अथर्ववेद भी वे ही हैं।'

सीतोपनिषद्में और भी बहुत-सी बातें हैं। मूलग्रन्थमें उन्हें देखना चाहिये। अब यहाँ अध्यात्मरामायणमें कुछ सीता-तत्त्वका उल्लेख किया जा रहा है—

एको विभासि राम त्वं मायया बहुरूपया।

तथा—

'योगमायापि सीतेति।'

'एकमात्र सत्यवस्तु श्रीराम ही बहुरूपिणी मायाको स्वीकारकर विश्वरूपमें भासित हो रहे हैं और सीता ही वह योगमाया है।' लोकविमोहिनी हरिनेत्रकृतालया श्रीसीताने श्रीरामचन्द्रजीके अभिप्रायानुसार श्रीहनुमानके एक सर्वश्रेष्ठ भक्तको ज्ञानका पात्र जानकर एक बार तत्त्वज्ञान प्रदान किया था। श्रीसीताजी कहती हैं कि रामको परब्रह्म सच्चिदानन्द ही जानना चाहिये—

मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य संनिधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता॥
(अध्यात्मरा० १। १। ३४)

'मुझ सीताको सर्ग, स्थिति और अन्त करनेवाली मूलप्रकृति जानो। उनके संनिध्यसे ही मैं प्रमादशून्य होकर सब कुछ सृजन करती हूँ।'

एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि।
आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि॥
(अध्यात्मरामा० १। १। ४४)

'इस प्रकारके सारे कर्म मैं ही करती हूँ। उन्हें लोग श्रीराममें, जो वास्तवमें निर्विकार एवं अखिल विश्वकी आत्मा हैं, आरोपित करते हैं।' राम कुछ भी नहीं करते। जो कुछ होता है, सब मायिक गुणोंके अनुसार होता है।

कलिमें अधिकांश मनुष्य हाथीके अन्धोंके समान श्रीभगवान्‌के एक-एक भागको ही देखते हैं। समग्र ब्रह्मको जाननेकी इच्छा न होनेके कारण इतना दंगा-फसाद मचा रहता है। श्रीगीता कहती है—

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥
(५। १३)

'इस नौ दरवाजोंवाले शरीररूपी घरमें रहता हुआ आत्मा न तो कुछ करता है और न करवाता है।'

इस निर्गुण ब्रह्मकी बात ऐसी ही है। फिर—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥
(गीता १८। ६१)

'अर्जुन! ईश्वर समस्त भूत-प्राणियोंके हृदयमें स्थित होकर देहरूपी यन्त्रपर आरूढ हुए उन सारे भूतोंको अपनी योगमायासे घुमाते हैं।'

तथा—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
(गीता १२। ७)

'मैं उन्हें मृत्युरूप संसारसागरसे पार कर देता हूँ।'

एवं—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
........न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
(गीता २। २०)

'यह आत्मा न उत्पन्न होता है न मरता है।'........'शरीरका वध करनेसे आत्माका वध नहीं होता।' एक ही कालमें यह सब कुछ वे ही हैं, अर्थात् समकालमें वे आप ही निर्गुण ब्रह्म, सगुण ब्रह्म, विश्वरूप, सर्वहृदिस्थ आत्मा तथा निराले होकर सबोंके नाशपर्यन्त सर्वमौन्दर्यमार हैं। जो साधक पूर्ण ईश्वरभावनाके द्वारा सांसारिक भावनाको मिटाने रहनेमें समर्थ होते हैं, वे सहज ही इस मृत्युसंसारसागरको पारकर निरन्तर श्रीभगवान्‌के पदारविन्दमें स्थित रहते हैं।

सुमित्रानन्दवर्धन विश्वभावन श्रीलक्ष्मणजी, उकाराक्षरसे तैजसात्मक श्रीशत्रुघ्नजी, मकाराक्षरसे प्राज्ञात्मक श्रीभरतजी एवं प्रणवकी अर्धमात्रासे ब्रह्मानन्दमात्रैकविग्रह श्रीरामका प्रतिपादन है—

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः ।
उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः ॥
प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः ।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः ॥
(श्रीरामोत्तरतापनी १ । १-२)

प्रणवकी अर्धमात्रामें विद्यमान बिन्दुद्वारा श्रीसीताजीका प्रतिपादन है।

ब्रह्मनिष्ठ-भाष्यकार स्वामी श्रीहरिदासजीने अपने तापनी-भाष्यमें लिखा है—

'अथ श्रीरामसंनिहितायाः सीतायाः श्रीरामप्रतिपादकार्धमात्रासंनिहितबिन्दुप्रतिपाद्यत्वमाह—

श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदानन्दकारिणी ।
सा सीता भगवती ज्ञेया··················

यहाँ श्रीरामजीके प्रतिपादक अर्धमात्रासंनिहित बिन्दुद्वारा श्रीजानकीजीका प्रतिपादन किया गया है। श्रीरामजीकी संनिधिमें सदा विद्यमान रहकर श्रीसीताजी जगत्‌के जीवोंको आनन्द प्रदान किया करती हैं, ऐसा कहा गया है।'

श्रीराम पूर्वतापनीमें श्रीसीताजीको 'चित्स्वरूपा' कहा गया है—

हेमाभया द्विभुजया सर्वालंकृतया चिता ।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोसलजात्मजः ॥
(४ । ९)

महर्षि वाल्मीकिने स्थल-स्थलपर श्रीसीतारामजीको चित्स्वरूप कहा है। साथ ही दोनोंका अभेद भी स्वीकार किया है—

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ।
× × × ×
अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा ।

प्रभाके साथ जिस प्रकार सूर्यका अभेद सम्बन्ध है, उसी प्रकार श्रीसीताजीका श्रीरामजीके साथ अभेद सम्बन्ध है।

जिस प्रकार पुरुष-सूक्तमें भगवान्‌की महिमाका वर्णन है, उसी प्रकार 'हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्' आदि मन्त्रोंसे श्रीसूक्तमें श्रीजीकी महिमाका विशद वर्णन है।

श्रीपराशरभट्ट स्वामी 'श्रीगुणरत्नकोश'में लिखते हैं—

व्याहुस्त्वामुपनिषदयावाह नैका नियन्त्रीं
श्रीमद्रामायणमपि परं प्राणिति त्वच्चरित्रैः ।
स्मर्तारोऽस्मज्जननि यतमे सेतिहासैः पुराणै-
र्निन्युर्वेदानपि च यतमे त्वन्महिम्नि प्रमाणम् ॥
(१४)

'हे हमारी जननी! केवल श्रीसूक्त अथवा—रामतापिनी-उपनिषद् ही भुजा उठाकर हमारी शपथपूर्वक आपको जगत्‌की एकमात्र नियन्त्री—स्वामिनी नहीं कहती, श्रीमद्रामायण भी आपके चरित्रका प्रतिपादन करती हुई उत्कर्षपूर्वक जीवित है। जितने भी स्मृतियोंके प्रणेता पराशरादि हैं, वे सभी इतिहास-पुराणोंसहित वेदोंको आपकी महिमामें प्रमाण मानते हैं।' इस श्लोकसे सुस्पष्ट है कि श्रीमद्रामायणका परमोत्कर्ष श्रीसीता-चरित्रके कारण ही है—

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।

अर्थात् 'समग्र श्रीरामायण महाकाव्य श्रीसीताजीका महान् चरित है।' इस श्लोकमें श्रीसीता-चरित्रका जो 'महत्' विशेषण है, वह उनके चरित्रकी श्रेष्ठताका बोधक है। श्रीगोविन्दराज अपने भाष्यमें लिखते हैं—'श्रीराम धीरोदात्त नायक हैं।' 'जो अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं सुने तथा समीपस्थ समानरूपसे कृपा करे, वही धीरोदात्त नायक है'—

* 'कृपावानविकत्थनः।'

श्रीलव-कुशके मुखसे श्रीरामचन्द्रने श्रीरामायणका श्रवण किया। यदि श्रीरामायण केवल श्रीरामपरक होती, तब अपनी ही राज-सभामें श्रीरामचन्द्र उसका श्रवण किस प्रकार करते। श्रीसीताचरित्रकी प्रधानता होनेसे श्रीरामद्वारा श्रीरामायणका श्रवण उनके स्वरूपानुरूप सिद्ध हुआ। शत-श्लोकीके टीकाकार (श्रीरामानुज) कहते हैं—'भगवान् श्रीराम शरणागत भक्तोंपर कृपा करते हैं, किंतु श्रीसीताजी तो अपराधियोंपर भी कृपा करती हैं, इसलिये उनका चरित्र भगवान्‌की अपेक्षा भी महान् है'—

मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता ।
काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः
सा नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी ॥

'हे माता श्रीमैथिलि! राक्षसपुरी लङ्कामें अपने प्रति नित्य नवीन अपराध करनेवाली उन राक्षसियोंको,

निर्दोष कौन है ! अर्थात् कोई भी नहीं। अतः जीवपर कोप न करके सर्वशक्त, सर्वशरण्य, सर्वाराध्य आदि अपनी वेद-प्रसिद्ध विरुदावलीपर ध्यान रखते हुए इस जगत्‌के जीवोंपर कृपा ही करें।' अतएव पराशरभट्ट माता सीतासे कहते हैं—'इस प्रकार अनेक अपराध-क्षमापनयोग्य उपायोंसे प्रभुके समक्ष जीवको निर्दोष सिद्ध करके आप जीवोंको अपना लेती हैं, इसलिये आप माता हैं।' विश्वरूप प्रभुकी हितैषिता एवं मातारूप आपकी प्रियपरता सुप्रसिद्ध ही है। 'उचितैरुपायैर्विस्मार्य स्वजनयसि' उचित उपायोंसे जीवके दोषोंकी स्मृतिको प्रभुके मनसे निकालकर, प्रभुको उनके प्रति अनुकूल बनाकर जीवोंको अपनाती हैं।

इस प्रकार जगज्जननी श्रीजानकीजीके साथ भगवान् श्रीरामचन्द्रका स्वरूप-गुण-लीला-विभूति आदिका अभेद सर्वप्रमाणप्रतिपन्न है। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—

भगवान् श्रीराम सूर्यके सूर्य (प्रकाशक), अग्निके अग्नि एवं प्रभुके भी प्रभु हैं—

सूर्यस्यापि भवेत्सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः।
(वा० रा० २।४४।१५)

जनकनन्दिनी श्रीजानकीजी श्रीलक्ष्मीजीकी भी कारण हैं—

'श्रियः श्री भर्तृवत्सलाम्'　　　　(वाल्मीकि०)

शरणागतवत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्रने श्रीविभीषणजीसे जिस प्रकार अभयप्रद वचन कहा, उसी प्रकार श्रीजनकनन्दिनीने भी श्रीहनुमान्‌जीके समक्ष जीवमात्रको अभय देनेवाली वाणी कही है। श्रीरामचन्द्र कहते हैं—'जो मनुष्य एक बार भी मेरी शरणमें आकर 'मैं आपका हूँ, मेरी रक्षा करें'—ऐसी प्रार्थना करता है, उसको मैं सभी प्रकारसे अभय कर देता हूँ—ऐसा मेरा व्रत है।'—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वा० रा० ६।१८।३३)

श्रीकिशोरीजी श्रीहनुमान्‌जीसे कहती हैं—'कोई पापी हो या पुण्यात्मा, वधके योग्य ही क्यों न हो, श्रीहनुमान्‌जी! बड़ोंको (सर्वसमर्थको) तो ऐसे जीवोंपर कृपा ही करनी चाहिये। क्योंकि ऐसा एक भी जीव नहीं मिलेगा, जिसने कभी न कभी कुछ न-कुछ अपराध न किया हो'—

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं करुणमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥
(वा० रा० ६।११३।४५)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने मानसमें श्रीसीताराम-तत्त्वका तत्त्व-स्वरूप विशद विवेचन किया है। भगवान् श्रीरामचन्द्रके अंशसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रकट होते हैं तथा श्रीजनकनन्दिनी श्रीजानकीजीके अंशसे अनन्त उमा, रमा, ब्रह्माणी प्रकट होती हैं—

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥
(श्रीरामच० मा० १।१४४।३)

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
(वही, १।१४०।१३)

मानसमें एवं अन्य ग्रन्थोंमें कहीं-कहीं श्रीसीताजीके लिये जो 'माया' शब्दका प्रयोग मिलता है, उसका अर्थ त्रिगुणात्मिका चित्र विचित्र सर्गकरी, स्वरूप-तिरोधानकरी जडप्रकृति (माया) नहीं है, किंतु कोष-प्रमाणानुसार कृपाशक्ति एवं ज्ञानशक्ति है। माया जब जीव-ब्रह्मके बीचमें आ जाती है, तब जीवको ब्रह्मसे विमुख कर देती है; किंतु श्रीजनकनन्दिनी जब दोनोंके बीचमें प्रकट होती हैं, तब जीवको प्रभुसे मिला देती हैं।

गौडीय मध्वसम्प्रदायके उद्भट विद्वान् श्रीमद्भागवतपर भक्तिरसमयी व्याख्यादि अनेक ग्रन्थोंके रचयिता आचार्य श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीजी महाराज प्रथम स्कन्ध, १९वें अध्यायके पाँचवें श्लोक—'सर्वोवतारसिद्ध अर्पयीज्ञाणाय्' की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

'एकमेव परमतत्त्वं चिच्छक्तिवृत्तिभेदेन महाम्बरेण प्रेमाकर्षेणाप्यवरित एव द्विधा विभक्तं तिष्ठति, ह्लादवदैश्वर्यमयं केवलं ह्लादमयं च प्रथमं परमेश्वरतत्त्वं द्वितीयं भक्तारव्यम्।'

अर्थात् एक ही परमतत्त्व चित्-शक्ति-वृत्तिके भेदसे महाकार प्रेमके नामसे अनादिकालसे दो भागोंमें विभक्त होकर युगलस्वरूपसे विराजमान है। एक षडैश्वर्यसे युक्त ह्लादमय है, दूसरा केवल ह्लादमय है। प्रथम तत्त्वको परमेश्वर कहते हैं तथा द्वितीय तत्त्वको भक्ति कहते हैं।

तात्पर्य यह है कि श्रीराम परमेश्वर हैं एवं श्रीसीताजी भक्ति हैं। पुनः यही श्रीसीतारामरूप प्रेमतत्त्व दास्य-सख्य-वात्सल्य मधुर आदि भावोंद्वारा भक्तोंके हृदयमें प्रकट होकर ब्रह्म-रसका रसास्वादन कराता है। विभाव, अनुभाव आदिद्वारा स्वयं रसस्वरूप रसमय, श्रीसीताराम तत्त्व पुनः उत्तरमें विरस भावपर बनाकर संयोग-वियोगद्वारा अपने अपार माधुर्यका रसास्वादन भक्तोंको प्रदान करते हैं।

रूप प्रसन्न होता है। नामद्वारा मुहूर्त शोधकर कार्य करनेसे रूपका कल्याण होता है, इत्यादि।

यही एकता अन्यत्रके प्रमाणोंमें भी पायी जाती है—

द्वौ च मिथ्यं द्विधा रूपं तत्त्वतो नित्यमेकता।
राममन्त्रे स्थिता सीता सीतामन्त्रे रघूत्तमः॥*
(बृहद्विष्णुपुराण)

इसमें भी तत्त्वतः रूपकी एकता दिखाते हुए मन्त्र एवं नामकी भी एकता कही गयी है।

(२) 'गिरा अरथ' इसमें गिरा-बीचि और अर्थ-जल उपमान हैं, क्रमशः सीता और राम उपमेय, 'कहिअत भिन्न न भिन्न' धर्म और 'सम' वाचक है। अतः पूर्णोपमा है। इसमें ग्रन्थकारका प्रयोजन धर्मके द्वारा दोनों रूपोंको तत्त्वतः अभिन्न दिखानेका है। वाणी और अर्थ तत्त्वतः एक हैं, जैसे 'पय' वाणी और दूध उसका अर्थ है। इसमें 'पय' और दूध एक ही वस्तु हैं। इसी प्रकार सीता और राम एक ही वस्तु हैं। दोनों मिलकर एक अखण्ड ब्रह्म-तत्त्व हैं।

कालिदासकृत रघुवंशके मङ्गलाचरणमें भी यही कहा गया है— 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ'। यही बात मनु-शतरूपा-प्रकरण (दो० १४१–१५२) में खोलकर दिखायी गयी है। वहाँपर स्वायम्भुव मनु और शतरूपा प्रथम सच्चिदानन्द ब्रह्मका स्मरण करते थे। फिर उसीकी 'हरि' (क्लेशहर्ता) रूपसे मानिके लिये तप करने लगे और यह अभिलाषा करने लगे कि "हम उसी परम प्रभुको अपने नेत्रोंसे देखें, जो निर्गुण, अखण्ड, अनन्त और अनादि है। जिसका चिन्तन परमार्थवादी करते हैं, वेद 'नेति-नेति' कहकर जिसका निरूपण करते हैं; जो स्वयं आनन्दस्वरूप और उपाधिरहित एवं अनूप है। जिसके अंशसे अनेक शिव, ब्रह्मा और विष्णुभगवान् उपजते हैं। ऐसा प्रभु भी सेवकके वशमें है और वह भक्तोंके लिये लीला-को अपने शरीरमें ग्रहण करता है। (लीलाका अर्थ यह कि अपने दिव्य शरीरमें ही प्राकृत मनुष्योंकी तरह बाल्य-पौगण्ड आदि अवस्थाओंको धारण करता है, वैसी बात करता एवं वैसा ही देख पड़ता है।) यदि हमारे सम्बन्धमें वेदोंका यह वचन वेदने सत्य कहा है तो हमारी अभिलाषा पूरी होगी।" ऐसा दृढ़ संकल्प करके वे तप कर रहे थे। इसी बीच विधि-हरि-हर बहुत बार आये तथा उन्होंने बहुत प्रकारके वरोंका प्रलोभन दिया। पर इनकी अखण्ड वृत्ति परब्रह्ममें लगी थी। अतः उनके वचन ही उन्होंने नहीं सुने। तब परब्रह्म परमात्माने मनुको अपना अनन्य दास जानकर आकाशवाणीद्वारा वर माँगनेको कहा। उस वाणीके श्रवणसे ही इनका क्षीण शरीर पहलेकी भाँति (हृष्टपुष्ट) हो गया। तब इन्होंने कहा कि "जो शिवजीके मनमें रहता है, जिसके लिये मुनि यत्न करते हैं और जो भुशुण्डिजीके मन-मानसका हंस है, वेद जिसकी प्रशंसा सगुण-निर्गुण कहकर करते हैं, हम वही रूप नेत्र भरकर देखें। अर्थात् हम देखकर ही जानेंगे कि उस अखण्ड ब्रह्मका कैसा रूप है।" तब भक्तवत्सल भगवान् युगल (सीताराम)-रूपसे ही प्रकट हुए। यही अखण्ड ब्रह्मका रूप है। ब्रह्म नित्य सर्वशक्तिमान् है। अतः शक्तिसहित ही यह अखण्ड है। यही भाव सभी दार्शनिकोंका सिद्धान्त है। सभी शक्ति और शक्तिमान्‌को अभिन्न मानते हैं।

इस सम्बन्धमें श्रीरामतापनीयोपनिषद्‌के हरिदास भाष्य (पृ० १५७ १६९) के अन्तर्गत 'उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना' (१।७) की व्याख्या देखें। भगवान्‌के सभी शरीरोंके भाव नित्य हैं। जैसे कोई स्फटिक मणि नील-पीतादि पुष्पोंके बीचमें रक्खी हो तो उस उस ओर नील-पीतादि रूपसे देख पड़ती है, वैसे ही भगवान् उपासकोंके ध्यानके अनुसार अपने आदि विग्रहमें लीलाओं द्वारा अनेक रूपों और भावोंके साथ दीखते हैं। यथा—

यदि मिथि रहा सो है रूप मातु। देहिं तस देखेउ कौसल्यातु॥
(श्रीरामच० मा० १।१४१।४)

शङ्का—एक ही दृष्टान्तसे एकता सिद्ध हो जाती तो दो क्यों दिये गये? और स्त्रीलिङ्ग पुँल्लिङ्गकी उपमाओंका हेर-फेर क्यों किया गया?

समाधान—'गिरा-अर्थ' मात्र कहे गये होते तो 'गिरा' शब्दके स्त्रीलिङ्ग होनेसे सीताजीका कारण होना और अर्थरूप श्रीरामजीका कार्य होना सिद्ध होता; क्योंकि गिरा से अर्थ होता है। ऐसे ही 'जल-बीचि' में भी 'जल' संस्कृतमें नपुंसकलिङ्ग होते हुए भी भाषामें पुँल्लिङ्ग है। अतः 'जल' श्रीरामजीके लिये है और स्त्रीलिङ्गवाचक 'बीचि' श्रीसीताजीके

* एक-एक दोनों दो मिलते हैं, किंतु दोनोंकी एकता भी मिलती है। जिस प्रकार राममन्त्रमें सीताजी स्थित हैं, उसी प्रकार सीतामन्त्रमें राम स्थित हैं।

किये है। उसका कार्य शीघ्र है। अतः श्रीरामजी कारण और श्रीसीताजी कार्य समझे जाते। इन दो दृष्टान्तोंमें दोनोंमें कार्य-कारणत्वका निराकरण किया गया है।

और भी, राजा दशरथको फरमान था कि वे श्रीरामजीके दर्शनोंके बिना 'जल बिनु मीना' की तरह जी नहीं सकते थे। उन्होंने श्रीसुमन्त्रजीसे कहा है कि 'यदि जानकी फिरे तो मेरे प्राणोंका अवलम्ब हो।' (अयो०, दो० ८२) यदि श्रीजानकीजी श्रीरामजीसे भिन्न तत्त्व होतीं तो राजा कैसे जी सकते थे?

यहाँ संकेतसे श्रीराम तथा श्रीसीताजीकी अभिन्नता बतलाते हुए उनके ब्रह्म होनेका भी संकेत किया गया है। जैसे कार्यब्रह्म और कारणब्रह्म एक ही हैं, उसी प्रकार श्रीराम और श्रीसीताजी भी एक ही हैं, जिसका कि निदर्शन श्रीतुलसीदासजी महाराजने स्थान-स्थानपर श्रीरामचरितमानसमें किया है। इस एकत्वके अनेक प्रमाण भारतीय साहित्यमें विभिन्न रूपोंमें दृष्टिगोचर होते हैं। यथा—

श्रीसीतारामजीकी नित्य अभिन्नता यहाँके 'गिरा अरथ' की भाँति अन्यत्र भी कही गयी है।

यथा—

नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम॥
अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम्॥

× × ×

किं चातिबहुनोक्तेन संक्षेपेणेदमुच्यते॥
देवतिर्यङ्मनुष्याद्यो पुन्नामा भगवान् हरिः।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम्॥

(विष्णुपुराण १।८।१७-१८ से ३४-३५ तक)

श्रीपराशरजीने मैत्रेयजीसे कहा है—'हे द्विजोत्तम! जिनका कभी वियोगभाव नहीं होता, वे जगन्माता श्रीलक्ष्मीजी (एवं श्रीजानकीजी) तो नित्य ही हैं। जिस प्रकार विष्णुभगवान् (श्रीरामजी) सर्वव्यापक हैं, उसी प्रकार ये (श्रीजी) भी सर्वव्यापिका हैं। विष्णु अर्थ हैं और ये (श्रीजी) वाणी हैं। हरि न्याय हैं और ये नीति हैं। विष्णुभगवान् (श्रीरामजी) बोध हैं और ये बुद्धि हैं, वे धर्म हैं और श्रीसीताजी सत्क्रिया।''''' अधिक कहनेसे क्या (प्रयोजन), संक्षेपमें यही कहा जाता है कि देवता, तिर्यक् और मनुष्य आदिमें 'पुरुष' नामवाले भगवान् हरि हैं और 'स्त्री' नामवाली श्रीजी हैं। इनसे परे और कोई नहीं है।'

यहाँ पुराणरत्न विष्णुपुराणमें महर्षि पराशरजीने दोनोंको एक तत्त्व स्पष्ट कहा है। दोनोंको 'सर्वगत' और 'सर्वव्यापिका' भी कहा है। व्यापक तत्त्व तो एक ही होता है।

यथा—

त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम्॥

(विष्णुपुराण १।९।१२६)

इन्द्रने श्रीजीकी स्तुति करते हुए कहा है कि 'आप सर्वलोकोंकी माता हैं और देवाधिदेव श्रीहरि पिता हैं। आपसे और श्रीविष्णुसे द्वारा चराचर जगत् व्याप्त है।'

श्रुतियोंमें जहाँ केवल ब्रह्मका वर्णन कहा गया है, वहाँ श्रीतत्त्वको ब्रह्ममें ही अन्तर्भूत समझना चाहिये। यथा—

तदन्तर्भावान्न पृथगभिधत्ते श्रुतिरपि। (१८)

(श्रीगुणरत्नकोश—पराशरभट्ट)

अर्थात् श्रुतियोंने श्रीजीको भगवत्तत्त्वके अन्तर्भूत मानकर ही पृथक् नहीं कहा।

(४) ब्रह्मसूत्रमें ब्रह्मजिज्ञासासे प्रारम्भ कर प्रथम ही उसका असाधारण लक्षण 'जन्माद्यस्य यतः।' (१।१।२) बताया गया है। इस सूत्रमें इस प्रकार कहा है—'जिससे जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार होता है, वही ब्रह्म है।'

यथा—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति॥

(तैत्ति० ३।१)

ये तीनों जैसे श्रीरामजीके द्वारा होते कहे गये हैं, वैसे ही श्रीजीसे भी। उदाहरणार्थ, जैसे—'जगपति पतन प्रसन्न तमीदा॥' (मानस १।१४।१)—यह श्रीरामजीके प्रति कहा गया है, उसी प्रकार—'उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं''''सीतां''' (मानस, बाल०, मङ्गलश्लोक ५)। जैसे श्रीरामजी जगत्‌के ईश्वर हैं, यथा—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति॥

(गीता १८।६१)

—वैसे ही श्रीजीका भी महत्त्व है। यथा—

ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।
(श्रीसूक्त ९)

श्रीजी हरिवल्लभा हैं; यथा—'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ ...' (तै० आ० ३। १३। ४२; शु०य० सं० ३१। २२) —अर्थात् श्रीजी और लक्ष्मीजी हरिकी पत्नियाँ हैं। पत्नी पतिकी अर्द्धाङ्गिनी कही जाती है।

यथा—

विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्ता सा स्मृताङ्गना ॥
(मनु० ९। ४५)

अर्थात् वेदज्ञ ब्राह्मण कहते हैं कि जो भर्ता है, वही भार्या है। भर्ता और भार्यामें अन्तर नहीं है।

इन दृष्टियोंसे दोनों एक हैं, ब्रह्मतत्त्व हैं। इनका कभी वियोग नहीं होता, यथा—

एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः।
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी ॥
× × ×
राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी ॥
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषाऽऽत्मनस्तनुम् ॥
(विष्णुपुराण १। ९। १४२, १४४-१४५)

'भगवान् जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब श्रीजी उनके साथ रहती हैं। ...श्रीहरिके रामरूप होनेपर ये श्रीसीताके और कृष्ण जन्ममें श्रीरुक्मिणीके रूपमें रहती हैं। ऐसे ही अन्य अवतारोंमें ये कभी भगवान्से पृथक् नहीं रहतीं। भगवान्के देव होनेपर देवी-रूप और मनुष्य होनेपर मानुषी-रूप धारण करती हैं। भगवान्के अनुरूप ही ये भी शरीर बना लेती हैं।'

परधाममें भी दोनोंका नित्य संयोग रहता है; यथा—

स्वर्गे ते संगमो भूयो भविष्यति न संशयः ॥
(वा० रा० ७। ९८। १५)

श्रीसीताजीके पाताल-प्रवेशपर श्रीब्रह्माजीने श्रीरामजीसे कहा है कि 'स्वर्ग (त्रिपाद्विभूति श्रीसाकेत धाम)-में पुनः आपका (श्रीसीताजीसे) साथ होगा, इसमें संशय नहीं है।' आचार्योंने कहा भी है—'नारायणं सलक्ष्मीकं प्रपद्ये' अर्थात् श्रीलक्ष्मीजीके साथ ही श्रीनारायण प्राप्य हैं।

मानस, बाल०, दो० ५१-५४ के बादकी चौपाइयोंमें दोनोंका नित्य संयुक्त रहना ही सतीजीने देखा है।

(५) श्रीसीताजी और श्रीरामजी दोनों मिलकर पूर्ण (अखण्ड) ब्रह्म हैं, यह इस प्रकार भी समझना चाहिये—

ककारसे लेकर २४ 'स्पर्श' वर्ण प्रकृतिसहित चौबीस तत्त्वोंके वाचक कहे जाते हैं तथा पचीसवाँ वर्ण 'म' पचीसवें तत्त्व जीवका वाचक कहा जाता है। ईश्वर छब्बीसवीं संख्यासे कहा जाता है;

यथा—

षड्विंशं विमलं बुद्धमप्रमेयं सनातनम्।
स तु तं पञ्चविंशं च चतुर्विंशं च बुध्यते ॥
(महा०, शान्ति० ३०८। ७)

—इस प्रसङ्गमें ब्रह्म २६, जीव २५ और प्रकृति २४ की संख्यासे कही गयी है। 'ब्रह्म'—इस शब्दमें चार अक्षर हैं—ब, र, ह, म। इन्हें प्रथम 'स्पर्श' वर्ण ककारसे* गिनना चाहिये। 'ब' 'क' से २३ वाँ, 'र' २७ वाँ, 'ह' ३३ वाँ और 'म' २५ वाँ है। इनको जोड़नेपर २३ + २७ + ३३ + २५ =१०८ संख्या आती है। जपमें १०८ मणियोंकी माला रखनेका यह भी हेतु है तथा जिनमें परमभेद, ब्रह्मरूप मानते हैं, उन्हें भी लोग 'श्री १०८' लिखते हैं।

यही १०८ की संख्या 'सीता-राम' इस पूरे पदमें भी उसी रीतिसे जोड़नेपर आती है—

सीता= स, ई, त, आ। इनमें 'स' 'क' से ३२ वाँ, 'ई' 'अ' से ४ था, 'त' 'क' से १६ वाँ और 'आ' 'अ' से २ रा है। ३२ + ४ + १६ + २= ५४, इस प्रकार 'सीता' में (१०८ की) आधी संख्या है।

'राम'=र, आ, म। इसमें 'र' 'क' से २७ वाँ, 'आ' 'अ' से २ रा और 'म' 'क' से २५ वाँ है। २७+२+२५= ५४। इस प्रकार 'राम' में भी १०८ की आधी संख्या है। अतः दोनोंकी संख्या मिलकर (५४+५४=१०८) ही पूर्ण अखण्ड ब्रह्मकी संख्या है, यह सिद्ध है।

उपर्युक्त रीतिसे स्पष्ट हो गया कि जो गणना 'ब्रह्म' इस शब्दमें है, वही 'सीताराम' इस नाममें आती है।

इसी प्रकार 'राधा-कृष्ण'में भी (५४+५४) संख्या आती है।

इस प्रकार यहाँ 'गिरा अरथ' ... की व्याख्याने श्री-गोस्वामीजीके भावाधारसे 'सीताराम'-तत्त्वका भी विवेचन हो गया और अखण्ड ब्रह्मका परिचय भी यथामति कुछ

* व्यञ्जनोंको ककारसे और स्वरोंको अकारसे गिनना चाहिये।

भारतीय संस्कृतिके शाश्वत धर्मस्कन्ध भगवान् श्रीराम

(लेखक—विद्यामार्तण्ड डा० श्रीमङ्गलदेवजी शास्त्री)

छान्दोग्य-उपनिषद् (२ । २३ । १) का वचन है—

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः ।

अर्थात् 'धर्मके तीन स्कन्ध या आधार-स्तम्भ हैं । उनमें यज्ञ, अध्ययन और दान—यह पहला स्तम्भ है।' इसका यही अभिप्राय है कि धर्मके साथ यज्ञ आदि तीनोंका वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा किसी प्रासाद या महलके साथ उसके प्रधान स्तम्भका होता है । तात्पर्य यह है कि मनुष्यके जीवनमें धर्मके प्रासादको खड़ा करनेके लिये यज्ञ, अध्ययन और दानकी अनिवार्यरूपसे आवश्यकता है ।

उक्त श्रुतिमें यज्ञ, अध्ययन और दानसे क्रमशः देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण—इन तीन ऋणोंका भी संकेत हो सकता है । इसीलिये धर्मशास्त्रका कथन है—

'ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।'

(मनु० ६ । ३५)

धर्मशास्त्रोंमें जहाँ द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के धर्मोंको बतलाया गया है, वहाँ यज्ञ, अध्ययन और दानका पहले तीनों वर्णोंके लिये आवश्यक कर्तव्यरूपसे विधान किया गया है ।

ऐसी ही बात बहुत करके अन्य श्रुतियोंके विषयमें भी कही जा सकती है ।

ऊपरकी व्याख्यासे स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वोक्त श्रुति-वचन आर्यजातिके ऊपरके तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) को ही दृष्टिमें रखकर, उनके लिये ही कहा गया है । सारी जनता उसका लक्ष्य नहीं है । जनता मात्रके लिये कर्तव्यका निर्देश उसमें नहीं है । साथ ही शुद्ध वैदिक संस्कृतिसे ही उसका सम्बन्ध है ।

परंतु 'भारतीय संस्कृति' और 'वैदिक संस्कृति' समानार्थक शब्द नहीं हैं । वैदिक संस्कृतिसे भारतीय संस्कृति अधिक व्यापक है । भारतीय संस्कृति भारतीय तत्तत् सम्प्रदायोंको, तत्तत् सांस्कृतिक धाराओंको एकमें मिलानेवाली समन्वित संस्कृति है । भारतीय संस्कृति उस महान् गम्भीर गङ्गाकी धाराके समान है, जिसमें अनेकानेक छोटी संस्कृति-रूप नदियोंकी धाराएँ मिलकर एक हो जाती हैं ।

रामचरितका प्रधान वैशिष्ट्य

भगवान् रामके चरितका सबसे बड़ा वैशिष्ट्य तो यह और है कि वह भारतवर्षकी समस्त सांस्कृतिक धाराओंको मिलानेवाला, समस्त जनता, समस्त वर्णों और वर्गोंके सम्पूर्ण जीवन-यात्राके लिये प्रेरणा देनेवाला (आदर्श उपस्थित करनेवाला) रहा है । वह अमीर-गरीब, बड़ा-छोटा, स्त्री-पुरुष अर्थात् जनताके सभी अङ्गोंके लिये सदासे मार्गदर्शक और प्रेरणाप्रद रहा है । वह प्रत्येक मनुष्यको मानवताकी दृष्टिसे न कि अवान्तर कृत्रिम वर्गीकरणोंकी दृष्टिसे देखता है । उसमें किसी प्रकारकी एकदेशीयता या एकाङ्गिता नहीं है । इसीलिये वाल्मीकि-रामायणके प्रारम्भमें ही नारद ऋषि महर्षि वाल्मीकिको संक्षिप्त राम-कथा सुनानेके अनन्तर रामचरितकी महिमाका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम् ।
यः पठेद् रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
एतदाख्यानमायुष्यं पठन् रामायणं नरः ।
सपुत्रपौत्रः सगणः प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥
पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्
स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात् ।
वणिग्जनः पण्यफलत्वमीया-
ज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात् ॥

(वा० रा० १ । १ । ९८—१००)

अर्थात् जो मनुष्य इस पवित्र, पापोंको नाश कर देनेवाले, पुण्यके साधन और वेदोंके समान आदरणीय रामचरितको पढ़ेगा, वह सब पापोंसे मुक्त हो जायगा । आयुको बढ़ानेवाले रामायणके इस आख्यानको पढ़नेवाला मनुष्य पुत्र, पौत्र तथा दास-दासीके सहित, मृत्युके पश्चात् स्वर्ग-लोककी महिमाको प्राप्त होता है । (रामचरितको) पढ़नेवाला ब्राह्मण विद्वानोंमें श्रेष्ठताको प्राप्त करेगा, क्षत्रिय पृथ्वीपति हो जायगा, वैश्य अपने व्यापारमें समृद्धिको प्राप्त करेगा और शूद्र भी महत्त्व प्राप्त करेगा ।

इस महिमाके वर्णनमें रामचरितको वेदोंके समान कहा गया है और बतलाया गया है कि उसने शूद्रके सहित समाजका प्रत्येक अङ्ग स्वाभीष्ट महत्ताको प्राप्त कर सकता है । ये दोनों बातें अत्यन्त गंभीर महत्त्व रखती हैं ।

इसी प्रकार वाल्मीकि-रामायण, उत्तरकाण्डके १११वें सर्गके १२ वें श्लोकमें भी रामायण (रामचरित) महिमाका वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'उसके पढ़नेमें साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, इसके सुननेमें देवलोकस्थित देव, गन्धर्व, सिद्ध और परमर्षि भी अत्यन्त रुचि लेते हैं'—

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
नित्यं शृण्वन्ति संहृष्टाः काव्यं रामायणं दिवि॥

यह ठीक है कि शुष्क उपदेशकी अपेक्षा किसी चरित्रमें अनुप्रविष्ट उपदेश अत्यधिक रोचक हो जाता है। पर रामचरितकी विशेषता केवल इसी कारणसे नहीं है। उसकी परम विशेषताका कारण, जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है, यह है कि रामचरितमें मानवमात्रकी दृष्टिसे मानवके पूरे जीवनको, जीवनमें घटित होनेवाली विभिन्न परिस्थितियोंको सामने रखकर, चरित्रकी आदर्शवादिता और उत्कृष्टताको दिखलाया गया है।

पुराणों तथा महाभारतमें हरिश्चन्द्र,परशुराम,भीष्मपितामह-जैसे अनेकानेक महान् पुरुषोंके चरित्रोंका बड़ा रोचक वर्णन आया है। पर उनमेंसे किसीमें भी न तो रामचरितकी-सी व्यापकता है, न विभिन्न परिस्थितियोंमें आदर्शका पालन।

इन्हीं कारणोंसे तत्तत् सम्प्रदायोंमें, तत्तत् प्रदेशों और विदेशोंमें साहित्यके अत्यन्त व्यापक विस्तारमें रामकी गुण-गाथाकी जैसी लोकप्रियता, जैसा माहात्म्य देखनेमें आता है, वैसा किसी अन्य महापुरुषके गुण वर्णनका नहीं।

अपने इन्हीं लोकोत्तर मानवीय गुणोंके कारण रामको 'मर्यादापुरुषोत्तम' की विशिष्ट उपाधि चिरंतनकालसे भारतीय जनताकी ओरसे दी गयी है। इसका मुख्य कारण यही है कि जीवनकी अत्यन्त विषम परिस्थितियोंमें भी राम कभी चारित्र्यके आदर्शकी या मर्यादाकी दृष्टिको नहीं भूलते।

अपने वनवासमें अयोध्या लौटनेके लिये भरतके आग्रह करनेपर, ब्राह्मणोत्तम जाबालिद्वारा अनेकानेक युक्तियोंके साथ राज्यको स्वीकार करो—यह अनुरोध करनेपर रामने जो वचन कहे थे, वे उनके चरित्रके वैशिष्ट्यको स्पष्ट करनेके लिये पर्याप्त हैं। रामने कहा था—

भवान् मे प्रियकामार्थं वचनं यदिहोक्तवान्।
अकार्यं कार्यसंकाशमपथ्यं पथ्यसंनिभम्॥
निर्मर्यादस्तु पुरुषः पापाचारसमन्वितः।
मानं न लभते सत्सु भिन्नचारित्रदर्शनः॥

(वा० रा० २।१०९।२-३)

आपने मेरा प्रिय करनेकी इच्छासे जो कुछ मुझसे कहा है, वह यद्यपि कर्तव्यरूपमें और पथ्यरूपमें दिखायी देता है, वास्तवमें न तो वह कर्तव्य है और न पथ्य; क्योंकि पापयुक्त आचारवाला और सदाचारका उल्लङ्घन करनेवाला पुरुष निर्मर्याद (आदर्शहीन) होता है और सत्पुरुषोंमें उसको सम्मान नहीं मिलता।

इससे स्पष्ट है कि भगवान् रामके जीवनमें मर्यादाका क्या स्थान था।

इसी प्रसङ्गमें बड़ी दृढ़ताके साथ राम कहते हैं—

नैव लोभान्न मोहाद्वा न चाज्ञानात्तमोऽन्वितः।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः॥

(वा० रा० २।१०९।१७)

मेरा यह दृढ़ निश्चय है कि मैं न तो लोभसे, न मोहसे और न तमोगुणसे युक्त हो अज्ञानसे पूज्य पिताके सत्यकी मर्यादाका भङ्ग करूँगा; क्योंकि इस विषयमें मैं अपनी प्रतिज्ञाका पालन करना चाहता हूँ।

रामका यही आदर्श चरित्र है, जिसके कारण वे सबके, अयोध्याकी समस्त जनताके, आश्रमोंमें तपमें निरत ऋषि-मुनियोंके, वनवासी वानरोंके, देवों, गन्धर्वों और सिद्ध-साध्योंके प्रिय दिखलाये गये हैं।

रामचरितमें मानवताका आदर्श

वाल्मीकि-रामायणमें जिस रामचरितका गुण-गान किया गया है, उसमें मानवताके आदर्शको ही प्रधानता दी गयी है। प्रारम्भमें ही महर्षि वाल्मीकि नारदजीसे यह पूछते हैं—

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।
× × ×
महर्षे त्वं समर्थोऽसि ज्ञातुमेवंविधं नरम्॥

(वा० रा० १।१।२,३,५)

वर्तमान कालमें इस लोकमें ऐसा कौन-सा मनुष्य है, जो गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी और दृढ़व्रत होनेके साथ-साथ चारित्र्यसे युक्त हो और जो ... प्राणियोंका हितैषी हो? महर्षे! आप ... जाननेमें समर्थ हैं।

... नारदजी कहते हैं—

अपराजिता तथा ब्रह्मचर्यके तेजसे उद्दीप्त है। दशरथ ही प्राणस्वरूप हैं। उन प्राणोंको सुख देनेवाले एवं आनन्दकी वृद्धि करनेवाले श्रीराम आत्माराम हैं। वे ही चराचर विश्वकी सृष्टि करनेवाले परब्रह्मके पूर्णावतार हैं।

वे ही विश्वका पालन करनेवाले तथा धर्मके रक्षक हैं। रामायणमें यथार्थ ही कहा गया है—'रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता।' श्रीराम धर्मके क्षीण हो जानेपर साधुओंकी रक्षा, दुष्टोंका विनाश और भूतलपर शान्ति एवं धर्मकी स्थापना करनेके लिये अवतार धारण करते हैं। पृथ्वीका भार अपहरण करनेके लिये उन्होंने श्रीरामरूपमें अवतार लिया था, जैसा कि अध्यात्मरामायणमें वर्णन आता है—

यः पृथ्वीभरवारणाय दिविजैः सम्प्रार्थितश्चिन्मयः
संजातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः।
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां
कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे॥
(१।१।१)

'जिन चिन्मय अविनाशी प्रभुने पृथ्वीका भार निवारण करनेके लिये देवताओंद्वारा प्रार्थना किये जानेपर भूतलपर सूर्यवंशमें माया-मानवरूपसे अवतार धारण किया तथा जो राक्षसोंके समूहका संहार करके और त्रिलोकीमें अपनी पापहारिणी अविचल कीर्ति स्थापित करके पुनः अपने आद्य ब्रह्मस्वरूपमें लीन हो गये, उन जानकीवल्लभका मैं भजन करता हूँ।'

काम-क्रोध आदि शत्रुरूपी मकर-समूहोंसे व्याप्त एवं दुःखोंसे भरे हुए इस भवसागरको पार करनेके लिये राम-भक्ति ही एक भयरहित नौका है। इसीलिये अध्यात्मरामायण-में शान्तिके अभिलाषी जनोंको श्रीरामका भजन करनेके लिये उपदेश दिया गया है। यथा—

भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे
लोकाः कामदुघाङ्घ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः।
नानाज्ञानविशेषमन्त्रविततिं त्यक्त्वा सुदूरे भृशं
रामं श्यामतनुं स्मरारिहृदये भान्तं भजध्वं बुधाः॥
(३।१०।४४)

'अरे लोगो! जो भगवान् रामचन्द्रकी भक्ति करते हैं, उन्हें मुक्ति प्राप्त होती है। भगवान् श्रीरामचन्द्रका चरण-युगल सभी अभिलषित फलोंको प्रदान करनेवाला है। उन चरणोंकी सेवा उत्सुकतापूर्वक करनी चाहिये। सज्जनो! तुमलोग अनेक प्रकारकी ज्ञानचर्चा तथा विविध मन्त्रसमूहोंका परित्याग करके नवीन जलधरके समान श्याम छविवाले एवं शंकरजीके हृदय-कमलमें सुशोभित श्रीरामका भजन करो।'

श्रीरामचन्द्र अभयदाता, शरणागतवत्सल, सत्यप्रतिज्ञ, धर्मज्ञ और शत्रुदमन हैं। वे स्वयं मेघ-गम्भीर वाणीसे रामायणमें प्रतिज्ञा करते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वा० रा० ६।१८।३३)

'जो एक बार भी मेरी शरण होकर 'मैं तुम्हारा हूँ' —यों कहता हुआ मुझसे अभयदानकी याचना करता है, उसे मैं सम्पूर्ण प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा व्रत है।'

जो उनके गुणसमूहोंका चिन्तन करता है, मनन करता है और निदिध्यासन करता है, वह सौभाग्ययुक्त होकर शान्ति-लाभ करता है। उसका मानव-जन्म सार्थक हो जाता है।

धर्म पृथ्वीको धारण करनेवाला, समाजका रक्षक, सम्पूर्ण सद्गुणोंका प्रकाशक एवं दुर्गुणोंका नाश करनेवाला तथा मोक्षद्वारके किवाड़को खोलनेवाला है। महाभारतमें कहा गया है—

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यस्माद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥
(कर्ण० ६९।५८)

'धारण करनेके कारण ही 'धर्म' कहा जाता है। धर्मके आधारपर सारी प्रजा टिकी हुई है। जो धारण धर्मसे संयुक्त है, वही 'धर्म' है—ऐसा सिद्धान्त है।'

अतः पृथ्वीका धारण-पोषण, समाजका संरक्षण और सद्गुणविभूषित व्यक्तियोंका परित्राण करनेके कारण श्रीराम स्वयं धर्म ही हैं। महर्षि मनुके मतानुसार—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥
(६।९२)

'धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी (बुद्धि), विद्या, सत्य और क्रोधहीनता—ये दस धर्मके लक्षण हैं।' ये समस्त सद्गुण श्रीराममें सर्वदा विद्यमान रहे

थे, इसलिये वे साक्षात् धर्म ही थे । वाल्मीकि-रामायणमें उनकी धर्म-विग्रहताका यथार्थ वर्णन मिलता है ।

महर्षि वाल्मीकिद्वारा विरचित रामायण-काव्य भगवान् श्रीरामचन्द्रके सर्वाङ्ग-सुन्दर सर्वश्रेष्ठ उत्तम चरित्रोंका गान करनेवाला है । यह काव्य संस्कृत-वाङ्मयमें भारतका नीति-शास्त्र तथा अद्वितीय व्यक्तिगौरवका विधायक प्रसिद्ध है । धर्मपरायण हिंदू बालक-वृद्ध एवं स्त्रियोंतकका विश्वास है कि रामायणका पाठ महान् पुण्यप्रद है—किं बहुना, वे रामायणको वेदस्वरूप मानते हैं ।

राजर्षि मनुने ठीक ही कहा है—'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' (२।६) अर्थात् सम्पूर्ण वेद धर्मका मूल है । मानवोंके आत्माके प्रकाशके लिये जो नीति-नियम और व्यवहार आवश्यक हैं, वे सभी वेदोंसे प्राप्त हुए हैं । वेद उपदेश देते हैं—

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च । तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च । दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च ।

× × ×

सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि । यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि ।

(तैत्तिरीयारण्यक ७ । ९ । ११ । १-२)

'ऋतम्'=शास्त्रीय नियमोंका अनुसरण अथवा यथार्थ भाषणका ज्ञान । सत्यम्=सत्यभाषण, सत्यका चिन्तन, मनन और निदिध्यासन; दमः=इन्द्रियोंका दमन; शमः=मनकी शान्ति; तपः=मानसीय विकारके शमनमें तत्परता—ये पुरुषार्थ वेदोंके अध्ययन अध्यापनके साथ करने चाहिये । ··· सदा सत्य बोलना चाहिये । धर्मका आचरण करना चाहिये । ··· वेदाध्ययनको नहीं छोड़ना चाहिये । आचार्यका सम्मान करना चाहिये । धर्ममार्गद्वारा गृहस्थी धारण करनी चाहिये । कभी सत्यसे विचलित नहीं होना चाहिये । धर्मसे च्युत नहीं होना चाहिये । श्रेयस्कर कर्मोंका त्याग नहीं करना चाहिये । उन्नतिके साधनोंमें प्रमाद नहीं करना चाहिये । वेदोंके अध्ययन अध्यापन त्याज्य नहीं हैं । देवताओं, पितरों तथा गुरुजनोंकी सेवा करनी चाहिये । माता तुम्हारी परम देवता है, उनकी आराधना करो । पिता तुम्हारे परम देव हैं, उनकी भलीभाँति पूजा करो । आचार्यकी देवताके समान सेवा करो । अतिथिको देव-तुल्य मानो और सेवा करो । जितने अनिन्द्य एवं श्रेयस्कर कर्म हैं, उन्हींका सेवन करना चाहिये । जो उत्तम आचरण हैं, उन्हींको तुम्हें ग्रहण करना चाहिये ।'

अथर्ववेद मानव-धर्मके संरक्षण तथा सम्यक् पालनके लिये संज्ञानसूक्तमें कल्याणप्रद एवं अनुपम मनोहर भावोंसे युक्त वचनोंद्वारा उपदेश दे रहा है—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥

× × ×

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा
नाभिमिवाभितः ॥

(काण्ड ३, सूक्त ३०, १-३, ५-६)

'सहृदयम्'=संवेदनशीलता, सांमनस्यम्=निर्मल दोष भावोंसे युक्त संस्कारसम्पन्न मन, अविद्वेषम्=द्वेषरहित निष्ठा, वः=तुम लोगोंको, कृणोमि=प्रदान करता हूँ । अघ्न्या=गाय—जो जैसे स्नेहपूर्वक अपने बछड़ेसे अनुराग करती है, उसी प्रकार तुमलोग परस्पर अनुराग रखो । पुत्र पिताकी आज्ञाका पालन करे और माताके प्रति भक्तिभाव रखे । पत्नी अपने पतिसे मीठी एवं शान्तियुक्त वाणी बोले । भाई भाईसे द्वेष न करे, बल्कि उससे अनुराग रखे । बहिन भी बहिनसे द्वेष न करे । सभी लोग भद्रतापूर्वक कर्ममें तत्पर तथा व्रतवान् होकर धारण करके परस्पर प्रेम-व्यवहार करें ।' 'बड़ोंकी सुश्रूषा सेवा करो । मनमें उत्तम विचार धारण करो । उन्नतिके

सिद्धिके लिये प्रयत्न करो। विलग मत होओ, बल्कि एकताकी रक्षा करो। परस्पर मधुर वार्तालाप करो। पुरुषार्थ दिखलाओ। प्रसन्नचित्त होओ। तुमलोगोंका जलपान, अन्नभोजन आदि भेदभावरहित हो। संगठित रहो। जैसे नाभिके चारों ओर लगे हुए अरे चक्रकी सेवा करते हैं, उसी प्रकार तुमलोग ज्योतिर्मय अग्निस्वरूप परमात्माकी एकनिष्ठ भक्तिसे भली-भाँति पूजा करो। शान्ति एवं सौभाग्यलक्ष्मी तुमलोगोंका वरण करे।'

ये वेदोंके उपदेश-समूह मूर्तरूपमें शरीर धारण करके अयोध्याके राजपरिवारको सुशोभित कर रहे थे। कौसल्या, सुमित्रा और सीता आदर्श नारीशिरोमणि, उत्तम चरित्रसे विभूषित, महिमाशालिनी तथा धर्मपरायणताकी प्रतिमूर्तियाँ थीं। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न वैदिक धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनमें श्रीराम श्रेष्ठ थे। महर्षि वाल्मीकिने यथार्थ ही कहा है कि 'श्रीरामचन्द्र साक्षात् शरीरधारी धर्म हैं।' (३ । ३७ । १३) वे ही सत्यके आधार और सत्यको सर्वस्व माननेवाले थे। सत्यका निदिध्यासन ही उनका सर्वश्रेष्ठ व्रत था। शरीर-मन-वचनसे किस प्रकार सत्यका पालन करना चाहिये, इसके वे सर्वोत्कृष्ट उदाहरण थे। 'रामो द्विर्नाभिभाषते'— (२ । १८ । ३०) श्रीराम अपनी बातको बदलते नहीं—उनकी यह ख्याति विश्वमें व्याप्त थी। दण्डकारण्यमें निवास करते समय उन्होंने ऋषियोंको राक्षसोंसे अभय-दान देकर यों प्रतिज्ञा की थी—

तपस्विनां रणे शत्रून् हन्तुमिच्छामि राक्षसान्।
पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः॥
(वा० रा० ३ । ६ । २५)

'तपोधनो! मैं तपस्वियोंके शत्रु राक्षसोंका युद्धमें संहार करना चाहता हूँ। आप सभी महर्षि भाईसहित मेरे पराक्रमको देखें।'

उक्त प्रतिज्ञाको सुनकर सीताको भारी विपत्तिकी आशङ्का दीख पड़ी। तब वे ऋषियोंके चले जानेके बाद अनुनय-पूर्वक श्रीरामसे बोलीं—

प्रतिज्ञातस्त्वया वीर दण्डकारण्यवासिनाम्।
ऋषीणां रक्षणार्थाय वधः संयति रक्षसाम्॥
... ...
न कथंचन सा कार्या गृहीतधनुषा त्वया॥
बुद्धिर्वैरं विना हन्तुं राक्षसान् दण्डकाश्रितान्।
अपराधं विना हन्तुं लोकान् वीर न कामये॥
(वा० रा० ३ । ९ । १०, २४-२५)

'वीर! आपने दण्डकारण्यनिवासी ऋषियोंकी रक्षाके लिये युद्धमें राक्षसोंका वध करनेकी प्रतिज्ञा की है।... परंतु आपको धनुष धारण करके किसी तरह बिना वैरके ही दण्डकारण्यवासी राक्षसोंके वधका विचार नहीं करना चाहिये। वीरवर! बिना अपराधके ही लोगोंको मारना मुझे पसंद नहीं है।'

तब सत्यप्रतिज्ञ श्रीराम अपनी सहधर्मिणी सीताके उक्त स्नेहगर्भित हितवचनको सुनकर यों बोले—

संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम्।
मुनीनामन्यथा कर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा॥
अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥
(वा० रा० ३ । १० । १७—१९)

'ऋषियोंके समक्ष प्रतिज्ञा करके अब मैं जीते-जी इस प्रतिज्ञाको मिथ्या नहीं कर सकूँगा; क्योंकि सत्यका पालन मुझे सदा ही इष्ट है। सीते! मैं अपने प्राण छोड़ सकता हूँ, तुम्हारा और लक्ष्मणका भी परित्याग कर सकता हूँ; किंतु अपनी प्रतिज्ञाको, विशेषतः ब्राह्मणोंके लिये की गयी प्रतिज्ञाको नहीं तोड़ सकता।'

जीवनका परित्याग करके भी सत्यकी रक्षा करनी चाहिये—यह उनका दृढ़ मत था। सत्यके आधारपर चलनेवाले तथा सत्यको ही सर्वस्व माननेवाले श्रीरामने सर्वदा सत्यका पालन किया। उनके मुखकमलसे निकली हुई निम्नलिखित वाणी उनके जीवनका परिचय देती है तथा धर्मविचारी महत्ताको भलीभाँति प्रकट करती है—

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्॥
दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत्॥
(वा० रा० २ । १०९ । १३-१४)

'जगत्‌में सत्य ही ईश्वर है। धर्म ... आधारपर रहता है। सत्य ही सबका मूल ... दूसरा कोई परमपद नहीं है।

थे—इन सबका आधार सत्य ही है, अतः सबको सत्यपरायण होना चाहिये ।'

उन्होंने केवल सत्यकी महिमा ही नहीं उद्घोषित की, प्रत्युत सभी समय और सभी क्षेत्रमें सत्यका ही आचरण किया । वे साक्षात् सत्यधर्मा थे ।

कर्तव्य-ज्ञानकी शिक्षा देना ही रामावतारकी विशेषता थी । जहाँ-कहीं एवं जिस किसी दशा अथवा परिस्थितिमें पड़नेपर भी मनुष्यको अपने धर्मका आचरण करना चाहिये, अपने धर्मका कभी त्याग नहीं करना चाहिये । अपने कर्तव्यका पालन ही कल्याणकारक होता है, क्योंकि उसीमें मानवता निहित है । इसका दृष्टान्त उन्होंने अपने कर्मद्वारा कर दिखाया । वे आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श पति, आदर्श मित्र, आदर्श स्वामी, आदर्श वीर, आदर्श देशसेवक और सर्वश्रेष्ठ आदर्श महामानव थे । उनकी पितृ-मातृ भक्ति प्रत्यक्ष थी । पिताके सत्यकी रक्षाके लिये वे प्रसन्नमनसे आनन्दपूर्वक राज्यका त्याग करके वनको चले गये । उनकी पितृ-भक्ति कैसी सर्वोत्कृष्ट तथा अनुपमेय थी—इसे उन्हींका निम्नलिखित वचन-समूह प्रकट कर रहा है—

अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके ॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे ।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च ॥
(वा० रा० २ । १८ । २८-२९)

'मैं महाराजके कहनेसे आगमें भी कूद सकता हूँ, तीव्र विषका भी भक्षण कर सकता हूँ और समुद्रमें भी गिर सकता हूँ । महाराज मेरे गुरु, पिता और हितैषी हैं; मैं उनकी आज्ञा पाकर क्या नहीं कर सकता ?'

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम ।
(वा० रा० २ । २१ । ३०)

'मुझमें पिताजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेकी शक्ति नहीं है ।'

पितुर्हि वचनं कुर्वन् न कश्चिन्नाम हीयते ॥
(वा० रा० २ । २१ । ३७)

'पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाला कोई भी पुरुष धर्मभ्रष्ट नहीं होता ।'

संश्रुत्य च पितुर्वाक्यं मातुर्वा ब्राह्मणस्य वा ।
न कर्तव्यं वृथा वीर धर्ममाश्रित्य तिष्ठता ॥
(वा० रा० २ । २१ । ४१)

'वीर ! धर्मका आश्रय लेकर रहनेवाले पुरुषको पिता, माता अथवा ब्राह्मणके वचनोंका पालन करनेकी प्रतिज्ञा करके उसे मिथ्या नहीं करना चाहिये ।'

गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धः
क्रोधात् प्रहर्षाद् यदि वापि कामात् ।
यद् व्यादिशेत् कार्यमवेक्ष्य धर्मं
कस्तं न कुर्यादनृशंसवृत्तिः ॥
न तेन शक्नोमि पितुः प्रतिज्ञा-
मिमां न कर्तुं सकलां यथावत् ।
स ह्यावयोस्तात गुरुर्नियोगे
देव्याश्च भर्ता स गतिश्च धर्मः ॥
(वा० रा० २ । २१ । ५९-६०)

'महाराज हमलोगोंके गुरु, राजा और पिता होनेके साथ ही बड़े-बूढ़े हैं । वे क्रोधसे, हर्षसे अथवा कामसे प्रेरित होकर भी जिस कार्यके लिये आज्ञा दें, उसे धर्म समझकर हमें करना चाहिये । जिसके आचरणमें क्रूरता नहीं है, ऐसा कौन पुरुष पिताके आज्ञापालनरूप धर्मका आचरण नहीं करेगा । इसलिये मैं पिताकी इस सम्पूर्ण प्रतिज्ञाका यथावत् पालन करनेसे मुँह नहीं मोड़ सकता । तात ! वे हम दोनोंको आज्ञा देनेमें समर्थ गुरु हैं और माताजीके तो वे ही पति, गति तथा धर्म हैं ।'

सोऽहं वनमिदं प्राप्तो निर्जनं लक्ष्मणान्वितः ।
सीतया चाप्रतिद्वन्द्वः सत्यवादे स्थितः पितुः ॥
भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम् ।
कर्तुमर्हति राजेन्द्र क्षिप्रमेवाभिषेचनात् ॥
ऋणान्मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम् ।
पितरं त्राहि धर्मज्ञ मातरं चाभिनन्दय ॥
× × ×
पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः ।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितॄन् यः पाति सर्वतः ॥
(वा० रा० २ । १०७ । ८-१०, १२)

'यही कारण है कि मैं सीता और लक्ष्मणके साथ इस निर्जन वनमें चला आया हूँ । यहाँ मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है । यहाँ मैं पिताजीके सत्यकी रक्षामें तत्पर रहूँगा । राजेन्द्र ! तुम भी उनकी आज्ञा मानकर शीघ्र ही राज्यपद

अपना अभिषेक करा लो और पिताजीको सत्यवादी बनाओ—यही तुम्हारे लिये उचित है। भरत! तुम मेरे लिये पूज्य पिता राजा दशरथको कैकेयीके ऋणसे मुक्त करो, उन धर्मज्ञको नरकमें गिरनेसे बचाओ और माताको भी आनन्दित करो।' 'बेटा 'पुत्' नामक नरकसे पिताका उद्धार करता है, इसलिये वह 'पुत्र' कहा गया है। वही पुत्र है, जो सब ओरसे पितरोंकी रक्षा करता है।'

विक्रीतमाहितं क्रीतं यत् पित्रा जीवता मम।
न तल्लोपयितुं शक्यं मया वा भरतेन वा॥
(वा॰ रा॰ २।१११।२८)

'पिताजीने अपने जीवनकालमें जो वस्तु बेच दी है या धरोहर रख दी है अथवा खरीदी है, उसे मैं अथवा भरत—कोई भी पलट नहीं सकता।'

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद् वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः॥
(वा॰ रा॰ २।११२।१८)

'चन्द्रमासे उसकी शोभा अलग हो जाय, हिमालय हिमका परित्याग कर दे, अथवा समुद्र अपनी सीमाको लाँघकर आगे बढ़ जाय; किंतु मैं पिताकी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता।'

श्रीरामकी मातृ-भक्ति भी अनिर्वचनीय थी। जो कैकेयी उनके वनगमनका कारण थी, वही उनकी मातृ-भक्तिकी प्रशंसा करती हुई कहती है—

रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
(वा॰ रा॰ २।७।३५)

'मैं राम और भरतमें कोई भेद नहीं समझती।'

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु॥
(वा॰ रा॰ २।८।१८)

'मेरे लिये जैसे भरत आदरके पात्र हैं, वैसे ही—बल्कि उनसे भी बढ़कर श्रीराम हैं; क्योंकि वे कौसल्यासे भी बढ़कर मेरी बहुत सेवा किया करते हैं।'

श्रीरामके द्वारा सीताके प्रति कही हुई निम्नाङ्कित वाणी उनकी मातृ-भक्तिकी महिमा प्रदर्शित करती है—

माता च मम कौसल्या वृद्धा संतापकर्शिता।
धर्ममेवाग्रतः कृत्वा त्वत्तः सम्मानमर्हति॥
वन्दितव्याश्च ते नित्यं याः शेषा मम मातरः।
स्नेहप्रणयसम्भोगैः समा हि मम मातरः॥
(२।२६।३१-३२)

'मेरी माता कौसल्या एक तो बूढ़ी हो गयी हैं, दूसरे संतापने उन्हें दुर्बल कर दिया है; अतः धर्मको ही सामने रखकर तुमसे वे विशेष सम्मान पानेके योग्य हैं। जो मेरी शेष माताएँ हैं, उनके चरणोंमें भी तुम्हें प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिये; क्योंकि स्नेह, उत्कृष्ट प्रेम और पालन-पोषणकी दृष्टिसे सभी माताएँ मेरे लिये समान हैं।'

धर्मपरायण पुरुषोत्तम श्रीरामके वन चले जानेपर राजाके अन्तःपुरमें निवास करनेवाली सभी रानियाँ बछड़ेसे वियुक्त हुई गौकी भाँति हो गयीं। वे दुःखार्त होकर रोती हुई श्रीरामके उन गुणोंका, जो एक सुपुत्रके आचरणमें सुलभ होते हैं, स्मरण करने लगीं। उस समय उनके मुखसे जो वचन निकले थे, वे पाठकोंके हृदय-नेत्र-पटपर परम आदर्श मातृ-भक्तिका चित्र यथार्थरूपसे अङ्कित करते हैं—

न क्रुद्ध्यत्यभिशप्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्जयन्।
क्रुद्धान् प्रसादयन् सर्वान् समदुःखः क्व गच्छति॥
कौसल्यायां महातेजा यथा मातरि वर्तते।
तथा यो वर्ततेऽस्मासु महात्मा क्व नु गच्छति॥
कैकेय्या क्लिश्यमानेन राज्ञा संचोदितो वनम्।
परित्राता जनस्यास्य जगतः क्व नु गच्छति॥
(वा॰ रा॰ २।४१।३—५)

'जो किसीके द्वारा झूठा कलङ्क लगाये जानेपर भी क्रोध नहीं करते थे, क्रोध दिलानेवाली बातें नहीं कहते थे और रूठे हुए सभी लोगोंको मनाकर प्रसन्न कर लेते थे, वे दूसरोंके दुःखोंमें समवेदना प्रकट करनेवाले राम कहाँ जा रहे हैं? जो महातेजस्वी महात्मा श्रीराम अपनी माता कौसल्याके साथ जैसा बर्ताव करते थे, वैसा ही बर्ताव हमारे साथ भी करते थे, वे कहाँ चले जा रहे हैं? कैकेयीके द्वारा क्लेशमें डाले गये महाराजके वन जानेके लिये कहनेपर हमलोगोंकी अथवा समस्त जगत्की रक्षा करनेवाले श्रीराम कहाँ चले जा रहे हैं?'

श्रीरामके मातृप्रेमका श्रेष्ठ उदाहरण वनगमनके पूर्व सीताके प्रति कहे हुए धर्मयुक्त वचनोंसे स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'देवरोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये'—इसकी शिक्षा देते हुए श्रीराम सीताको समझाते

भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः ।
त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम ॥
(वा० रा० २ । २६ । ३३)

'भरत और शत्रुघ्न मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। अतः तुम्हें उन दोनोंको विशेषतः अपने भाई और पुत्रके समान देखना और मानना चाहिये।'

श्रीराम सभी भाइयोंकी मङ्गल-कामना करते हुए सदा कर्तव्यपरायण रहते थे। उनके समान भ्रातृ-प्रेमी दूसरा कोई नहीं दिखायी पड़ता। भ्रातृ-समूहके प्रति उनका कैसा अनुराग था, इसका प्रमाण नीचे लिखी हुई पद्य-पंक्तियाँ दे रही हैं—

धर्ममर्थं च कामं च पृथिवीं चापि लक्ष्मण ।
इच्छामि भवतामर्थे एतत् प्रतिशृणोमि ते ॥
भ्रातृणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण ।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे ॥···
यद् विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं चापि मानद ।
भवेन्मम सुखं किंचिद् भस्म तत् कुरुतां शिखी ॥
(वा० रा० २ । ९७ । ५-६, ८)

'लक्ष्मण! मैं तुमसे प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि धर्म, अर्थ, काम और पृथ्वीका राज्य भी मैं तुम्हीं लोगोंके लिये चाहता हूँ। लक्ष्मण! मैं भाइयोंकी रक्षा और सुखके लिये ही राज्यकी भी इच्छा करता हूँ। इसके प्रमाणस्वरूप मैं अपना धनुष छूकर शपथ खाता हूँ।··· मानद! भरतको, तुमको और शत्रुघ्नको छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिलता हो तो उसे अग्निदेव जलाकर भस्म कर डालें।'

श्रीराम एकपत्नीव्रती थे। उनकी प्रेमपरायणताकी कहीं तुलना नहीं है। उन्होंने राजधर्ममें सुरक्षित होनेवाले परम आदर्शोंकी रक्षा, प्रजा-रञ्जन तथा अपवादका निराकरण करनेके लिये अपनी प्राणप्रिय सीताको, जो गङ्गाके समान पावन और अनिन्द्यचरित्रा थीं, राज्यसे बाहर भेजकर बहुत दूर वनस्थलीमें छुड़वा दिया। परंतु सीता श्रीरामके हृदय-कमलकी सिंहासनपर समासीन होकर सदा उनके प्रेमरूपी अमृतसे संसिक्त रहीं। सीताके प्रति श्रीरामकी निम्नलिखित वाणी अत्यन्त सार्थक थी—

त्वं देवि चित्तनिहिता गृहदेवता मे
स्वप्नान्तरा [illegible] त्वमेव ।
दाराम्परग्रहरुचिर्न मम [illegible]
धर्मे तव प्रतिकृतिर्मम धर्मपत्नी ॥
(कुन्दमाला ६-२४)

'देवि! तुम मेरे चित्तमें प्रतिष्ठित गृहदेवी हो और तुम्हीं शयन-कालमें मेरी एकमात्र शय्याकी सहचरी रही हो। मेरे मनमें दूसरी पत्नी ग्रहण करनेकी किंचिन्मात्र भी स्पृहा नहीं है, अतः इस यज्ञमें तुम्हारी प्रतिमूर्ति ही मेरी धर्मपत्नीके स्थानापन्न है।'

श्रीरामकी धर्मसम्मत राज्यशासन-प्रणाली अद्वितीय है। आजतक कोई भी ऐसा धर्मपरायण उत्तम शासक भूपाल नहीं पैदा हुआ। 'ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति' (अथर्व० ११ । ५ । १७)—ब्रह्मचर्य और तपस्यासे राजा राष्ट्रकी रक्षा करता है।'—इस वेद-वाणीको सार्थक करते श्रीराम जितेन्द्रिय, धर्मपरायण तथा न्यायपरायण होकर प्रतिदिन प्रजाको प्रसन्न करनेमें तत्पर रहते थे।

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥
(उत्तररामचरित० १ । १२)

'यदि प्रजा-रञ्जनके लिये मुझे स्नेह, दया, सुख अथवा जानकीको भी छोड़ देना पड़े तो मुझे कोई पीड़ा नहीं होगी।'—यह प्रतिज्ञा श्रीरामके आचरणमें साकार थी।

'अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थाद्
यशोधनानां हि यशो गरीयः।'
(रघुवंश १४ । ३५)

'यशस्वी पुरुषोंका यश अपने शरीरकी अपेक्षा भी अधिक महत्त्वपूर्ण होता है, फिर इन्द्रिय विषयोंकी तो बात ही क्या है।' यह कवि-कथन उन यशोधन एवं सत्यपरायण श्रीराममें चरितार्थ था।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥

'जहाँ ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों मिलकर समन्वयसे आचरण करते हैं, उस पुण्यलोकमें अग्निसहित सभी देवता निवास करनेकी इच्छा करते हैं।'

उपर्युक्त वेद-मन्त्रसे साकार मूर्तिमान् होकर श्रीरामने राज्यमें निरन्तर सुशोभित होते हुए, प्रजाके कल्याण-साधनमें तत्पर रहकर रामराज्यकी महिमाको त्रिलोकीमें फैला दिया। सत्ययुगके प्रभावसे सम्पूर्ण [illegible] रामचन्द्रका आश्रय लेकर कृतार्थ हो गये। महर्षि वाल्मीकिने ठीक ही लिखा है—

[illegible] पूर्णं [illegible] ।
[illegible] सम्पन्नैः [illegible] ॥
([illegible])

'आनृशंस्यम्=अनृशंसता अथवा कोमलता, अनुक्रोश=दया, श्रुतम्=ज्ञान, शीलम्=श्रेष्ठ स्वभाव, दम=इन्द्रिय-निग्रह, शम=मनकी पूर्ण शान्ति—ये छः सद्गुण पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रकी शोभा बढ़ाते थे।'

श्रीरामके चरित्र एवं आचरणकी साङ्गोपाङ्ग समालोचना असम्भव है। वे किस प्रकार सभी लोगोंके प्रिय, प्रजाके हितकारक और सर्वश्रेष्ठ शासक थे, इसका प्रमाण निम्नलिखित श्लोक दे रहा है—

न हि तद् भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः।
तद् वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति॥
(वाल्मीकि-रामायण)

"जहाँ राजा रामचन्द्र नहीं हैं, वह देश 'राष्ट्र' नहीं हो सकता; बल्कि वह वन ही 'राष्ट्र' होगा, जहाँ श्रीराम निवास करेंगे।"

श्रीरामकी सुग्रीवके साथ अविचल मित्रता, विभीषणको परमाभयका दान, दुर्धर्ष रावणके साथ उनका धर्मसम्मत युद्ध-कौशल, अपने आश्रित वानरोंके साथ सद्व्यवहार आदि गुण उनके धर्माचारकी महिमाके निदर्शक थे।

जैसे नीले रंगकी ऊँची-ऊँची तरंगमालाओंसे व्याप्त रत्नाकर समुद्रके गाम्भीर्ययुक्त सौन्दर्यको देखकर भावुक जन विस्मित, स्तब्ध और आनन्दपूर्ण हो जाते हैं, किंतु समुद्रके भीतर स्थित अनन्त बहुमूल्य रत्न-समूहोंको प्राप्त करना सबके लिये दुष्कर है, उसी प्रकार सद्गुणके सागर, धर्मावतार और तत्पूत आचरणकी महिमावाले श्रीरामचन्द्रके विश्वम्भ-दर्शनसे भावुक भक्त, जिसका हृदय अनिर्वचनीय तथा परम सुन्दर एवं समुज्ज्वल भावधारासे आप्लुत है, अपनेको कृतार्थ मानता है। किंतु श्रीरामके महनीय चरित्रके सम्यक् वर्णनमें सरस्वतीकी लेखनी भी असमर्थताका अनुभव करती है। श्रीरामने सुचारुरूपसे निपुणतापूर्वक विविध कर्मोंके क्षेत्रमें अपने कर्तव्यके पालनद्वारा जनताके समक्ष कर्मयोगकी महिमा प्रदर्शित की है। निम्नलिखित गीतके माध्यमसे उनके संक्षिप्त जीवन-परिचयका वर्णन किया जाता है—

धर्मरक्षणं सदा
कर्मभावना मुदा
कार्यकलापसंहतिविराजितजन्म पुण्याः ! (ध्रुवम्)

निर्जरं पुनातु वा जीवनं प्रयातु वा
सम्पदः प्रयान्तु यान्तु दुर्दशास्तुदन्तु वा
सत्यमेव पाल्यताम्
मानवत्वमर्ज्यताम्
स्थीयतां च धैर्यधीरचेतसा हि संविदा॥१॥
संस्कृतिर्हि सेव्यतां दुष्कृतिर्विनाश्यताम्
दैववागधीयतां च मातृभूः समर्च्यताम्
राष्ट्रकीर्तिगौरवम्
धर्मसारवैभवम्
रक्षितुं च वीरता विधीयतां हि मोक्षदा॥२॥

'विवेकीजनो! सदा हर्षपूर्वक अपने शरीरके द्वारा धर्मकी रक्षा करो और सदाचारके तेजसे असदाचरणका निवारण करो। अमृत तुम्हारे शरीरको नीरोग कर दे अथवा प्राण ही चले जायँ, सम्पदाएँ आयें अथवा विपत्तियाँ कष्ट पहुँचायें; ज्ञानवान्का चित्त धैर्यसे उदात्त रहना चाहिये। उसे सत्यका ही पालन करना चाहिये तथा मानवताका अर्जन करना चाहिये। संस्कृतिका सेवन, दुष्कृतियोंका विनाश, देव-वाणी संस्कृतका अध्ययन और मातृभूमिकी सेवा करनी चाहिये। राष्ट्रकी कीर्ति एवं गौरवकी तथा धर्मके सार-सर्वस्वकी रक्षाके लिये मोक्षदायिनी वीरता धारण करनी चाहिये।'

कर्म, ज्ञान और भक्तिरूपी त्रिवेणीकी धारा प्रवाहित करनेवाले पुरुषोत्तम श्रीरामका अतुलनीय पुरुष-धर्म विश्व-वन्दनीय है। धर्मके सर्वविध लक्षणोंसे सम्पन्न होनेके कारण वे स्वयं मूर्तिमान् धर्म ही थे, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि संस्कृतिके प्रेमी, स्वाधीनताके अभिमानी, समुन्नतिके अभिलाषी, धर्मानुरागी, राष्ट्र-भक्तिशाली भारतीय नागरिक श्रीरामके माहात्म्यके स्मरण-कीर्तनमें तत्पर रहनेवाले कर्मयोगी बनकर अपनी पुण्यभूमिके गौरवकी रक्षा करें। अन्तमें धर्मस्वरूप श्रीरामचन्द्रका मनमें ध्यान करके विनयपूर्वक उनकी स्तुति करते हुए इस लेखका उपसंहार किया जाता है—

धर्मो वै भगवान् स्वधामनिरतैर्धर्मं भजेत् सर्वदा
धर्मेणैव निवार्यतेऽघनिवहो धर्माय तस्मै नमः।
धर्मात्प्राप्तिपरं पदं त्रिभुवने धर्मस्य सत्स्थितिः प्रिया
धर्मे तिष्ठति [illegible] सुभगं मम धर्म भो वर्धय॥

भगवान् श्रीरामका सौन्दर्य

(लेखक—पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

जिन अँखियन में तुव रूप बस्यो, उन अँखियन सौं अब देखिये का।

जहाँतक मानव सौन्दर्यका सम्बन्ध है, अन्तःसौन्दर्य ही सौन्दर्य है; परंतु भगवान् रामके सम्बन्धमें ऐसी बात नहीं है। जीवके समान उनमें अन्तर-बाहर दो नहीं हैं। वे जैसे स्वरूपतः सच्चिदानन्दघन हैं, वैसे ही शरीरतः। उनका शरीर नित्य निर्विकार एवं सच्चिदानन्दमय है—

'चिदानंदमय देह तुम्हारी।'

(रा० च० मा० २। १२६। ३)

इसीसे उनके बाह्य कहे जानेवाले भागमें भी वही सौन्दर्य है और वह इतना है कि कवि स्वयं उसके वर्णनमें, नहीं नहीं कल्पनामें भी सकुचाता है।

विदेह-नगरके राजपथपर भगवान् श्रीराम अपने छोटे भाई श्रीलक्ष्मणके साथ राशि-राशि सौन्दर्य बिखेरते हुए मन्थर गतिसे आगे बढ़ रहे हैं। 'लोक-लोचन-सुखदाता', 'गुणनिधान' दोनों भाइयोंकी अत्यन्त सुहावनी मूर्ति देखकर 'बालक बृन्द' साथ लग गये हैं और वे उनके सौन्दर्य-रसका पान कर रहे हैं। बात-की-बातमें यह समाचार सारे नगरमें फैल गया। सब लोग अपने-अपने काम-धाम त्यागकर दौड़ पड़े—अपने लोचनोंका लाभ लेनेके लिये। श्याम-गौर युगल राजकुमारोंकी सहज-सौन्दर्य-सुधाका पान करके सब अनिर्वचनीय आनन्दमें डूब गये। सब-के-सब विस्मित, चकित और मौन हो गये। युवतियाँ अपने-अपने भवनोंके झरोखोंपर आ लगीं। हृदय अनुरागके रंगमें रँग गया। आँखें निर्निमेष होकर रूप-रसका पान करनेमें संलग्न हो गयीं। वाणी स्वयं ही हृदयके गुप्त भाव सखियोंपर प्रकट करने लगी—'मेरी प्यारी सखी! इन्होंने तो कोटि-कोटि कामकी शोभाको भी मात कर दिया। क्या किसी लोकमें, किसी युगमें ऐसा सौन्दर्य देखा सुना गया है?'—

'सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं।'

(वही, १। २१९। १)

किसी सखीने कहा—'सुना है, सब देवताओंमें ब्रह्मा-विष्णु महेश सर्वश्रेष्ठ हैं और परम सुन्दर भी हैं।' दूसरीने कहा—'अरी पगली! कहीं चार हाथ, चार मुख या पाँच मुखवाले भी सुन्दर हो सकते हैं? किसीके हाथमें पाँच उँगलियोंके स्थानमें छः हो जायँ तो क्या वह सुन्दर लगता है? इनके सौन्दर्यके सामने वे क्या होते हैं?'

बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी॥
अपर देउ अस कोउ न आही। यह छबि सखी पटतरिअ जाही॥

(वही, १। २१९। ४)

सखियोंने 'कोटि-कोटि सत काम' को एक-एक अङ्गपर निछावर कर दिया और चुनौती दे दी—

कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥

(वही, १। २२०। १)

जान पड़ता है, विदेहनगरके नागरिकोंकी यह आलोचना संभवतः देवताओंतक पहुँच गयी। उन लोगोंमें खलबली मच गयी। 'क्या कहीं मानव सौन्दर्य भी ऐसा हो सकता है? अवश्य ही मनुष्यका आन्तर सौन्दर्य देवताओंसे श्रेष्ठ हो सकता है, परंतु बाह्य सौन्दर्य तो हम देवताओंका ही श्रेष्ठ होता है। क्या राम मानव हैं? कदापि नहीं, वे साक्षात् परिपूर्णतम ब्रह्म हैं। अच्छा, चलें, आज इस बातका निर्णय ही हो जाय कि उनका सौन्दर्य किस कोटिका है।' देवसमाजने सर्वसम्मतिसे पाँच प्रतिनिधि, यों कहिये कि पाँच पंच चुन लिये। भगवान् विष्णु, भगवान् शंकर, प्रजापति ब्रह्मा, देवराज इन्द्र और देवसेनापति कार्तिकेय—सब अपनेमें साज सँवारकर, वाहनोंपर बैठ विदेहनगरमें पहुँचे। उस समय पालकी निकल रही थी। भगवान् श्रीराम भुवनमोहन, कामाभिराम, परम सुन्दर अश्वको नचाते हुए आगे बढ़ रहे थे। भगवान् शंकरकी दृष्टि पड़ी। रोम-रोम आनन्दसे पुलक उठा। पाँचों मुखोंके दसों नेत्र छककर स्तब्ध हो गये। अन्य पाँच नेत्र संहारक होनेके कारण पहले तो बंद ही रखे। इन्होंने ही तो परम सुन्दर कामको भी भस्म कर दिया था। परंतु रामरूपकी मंदाकिनी उनपर भी चढ़ गयी। वे खुले और सम्पूर्ण अपनी अपनी गतियोंको समाप्त कर ठहर हो गये। ऐसे सौन्दर्यका क्या अनुमान करें?'

तिन्ह की ओट न देखिअ बारी । मगन भए हरि रूप निहारी ॥
(वही, ६ । ४ । ३, ४)

भगवान्‌ने वानरोंको आज्ञा दी, 'आपलोग इन जलचरोंके ऊपरसे पार हों।' बड़े बड़े विशालकाय वानर उनके शरीरपरसे होते हुए पार हो गये । पर उन्हें इस रूपदर्शनमें इतना आनन्द आ रहा था कि उन्हें पता भी न चला कि कोई इसपरसे पार हुआ—

सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं ।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं ॥
(वही, ६ । ४)

यह है सौन्दर्यका जादू ।

अब आइये कुछ मानवोंकी दशा देखिये

जो लोग सौन्दर्यको सत्य मानते हैं, उन साधारण मानवोंकी बात हम नहीं करते; हम तो उनकी चर्चा करते हैं, जो इस नाम रूपात्मक सम्पूर्ण विश्वको मिथ्या मानते हैं । बड़ा-से-बड़ा लोभ या भय भी उन्हें अपनी निष्ठासे विचलित करनेमें समर्थ नहीं होता । पर रामके सौन्दर्यने इस असम्भव कार्यको भी सम्भव कर दिखाया ।

जनकजी अपने समयके सर्वश्रेष्ठ ज्ञानियोंमें एक थे । सारा दृश्य जगत् उनकी दृष्टिमें मिथ्या था । अत्यधिक आत्मलीन रहनेके कारण उन्हें अपने देहकी भी स्मृति नहीं रहती थी और इसलिये उन्हें देह होते हुए भी 'विदेह' कहा जाता था । किसी भी इन्द्रियका विषय उन्हें अपनी ओर आकर्षित करनेमें असमर्थ था । बड़े-बड़े अध्यात्मवादी तत्त्वज्ञ भी [illegible] उनके यहाँ ज्ञानोपदेश लेने आते थे । उनकी महत्ताको मानसमें इस प्रकार अङ्कित किया गया है—

जे बिरंचि निरलेप उपाए । पदुम पत्र जिमि जग जल जाए ॥
(वही, २ । ३१६ । ४)

जनकु ग्यानु रबि भव निसि नासा । बचन किरन मुनि कमल बिकासा ॥
(वही, १ । २०९ । ३)

किंतु गोरे रामकुमारकी एक झाँकीने ही उन्हें अपनी निष्ठासे च्युत कर दिया । [illegible] सहित आये हुए इन राजकुमारोंको एक बार आँख उठाकर देखा। फिर क्या था—दृष्टि बँध गयी, हृदयसे ब्रह्मानन्दने निकलकर न जाने कब इस परमानन्द-समुद्रमें डेरा डाल दिया । राजाने अपने विचारसे अपनेको बचानेकी बड़ी चेष्टा की, पर नेत्र उनके आदेशको सुनते ही न थे । उनका सहज विरागी मन रागी बनकर बेकाबू हो गया । उन्हें लग रहा था—'यह सौन्दर्य मिथ्या नहीं, सत्य है।' और इधर सभी लोग जनककी इस चापलपर मुस्करा रहे थे । विश्वामित्रने एक व्यङ्ग्यभरी मुस्कानसे पूछा—'ज्ञानिराज ! तुम्हारी यह क्या अवस्था ?' और तब उन्होंने स्वयं अपनी अवस्थाका वर्णन कर दिया—

सहज बिरागरूप मनु मोरा । थकित होत जिमि चंद चकोरा ॥

× × ×

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥
(वही, १ । २१५ । २-३)

इस रूपानन्दके सामने, भला, यह ब्रह्मसुख है भी किस गणनामें !

सोइ सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जन सुमति ॥
(वही, ७ । ८८ ख)

पर यह प्रवृत्तिमार्गके ज्ञानाचार्यकी बात है । आइये, हम परमनिवृत्तिपरायण सनत्कुमारादिकी ओर चलें । वे तो साक्षात् भगवान् ही हैं । चारों महर्षि बहुकालीन होते हुए भी बालकों-सी अवस्थामें दिन-रात घूमा करते थे । उनकी महत्ता मानसमें इस प्रकार बतायी गयी है—

ब्रह्मानंद सदा लयलीना । देखत बालक बहुकालीना ॥
रूप धरें जनु चारिउ बेदा । समदरसी मुनि बिगत बिभेदा ॥
(वही, ७ । ३२ । ३-४)

एक बार जब वे दण्डकारण्यमें भगवान्‌की [illegible]
भ्रमण कर रहे थे, एक भक्तने उन्हें [illegible]
दिया—रामके सौन्दर्यको [illegible]
च्युत हो गये।' [illegible]
ही नहीं होता [illegible]

दूल्हा-वेषमें श्रीराम

श्रीरामभद्रजूकी श्यामता

(लेखक—मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी 'रामायणी')

[illegible]मिवचैव मेचककेकिकण्ठवत् ।
तमालकम्बुनाश्यामं रामभद्रमहं भजे ॥
'सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः ।'

श्रीरामभद्रजूकी लीलाएँ माधुर्यमय, ऐश्वर्यमय और माधुर्यैश्वर्यमिश्रित होती रही हैं। उनमें माधुर्यमय लीला नितान्त ऐकान्तिक भक्तोंके परमानन्दवर्धनार्थ ही होती है और ऐश्वर्यमय लीलाएँ, जो—

'मनुज बिमोहनि जन सुखकारी ।'
(श्रीरा० च० मा० ७ । ७२ । १)

—होती हैं, कभी-कभी होती हैं, जब कि माधुर्यैश्वर्यमिश्रित लीलाएँ जन मनमें नित्य होती ही रहती हैं। उन लीलाओंमें श्रीरामभद्रजूके श्रीविग्रहकी दिव्य श्यामताका चिन्तन भावुक भक्तगण विभिन्नरूपसे किया करते हैं। श्रीरामचरितमानसमें श्रीगोस्वामीजीने मधुरलीलाके आकर दिव्य श्रीविग्रहकी विभिन्न श्यामताके वर्णनमें भिन्न भिन्न स्थलोंपर छः प्रकारकी उपमाएँ दी हैं—१. मेघ, २. मरकतमणि, ३. मयूरकण्ठ, ४. कमल, ५. यमुना और ६. तमाल। अन्य लोगोंने उन्हें दूर्वादल, अतसीपुष्प एवं आकाशादिकी तरह श्याम कहा है। श्रीरामभद्रजूके माधुर्यमय लीलाविग्रहको जो कई तरहके श्याम रंगोंकी उपमा दी गयी है, इसका क्या कारण हो सकता है—इसपर विचार किया जाता है।

गोस्वामीजीने जो छः प्रकारकी श्यामताएँ कही हैं, उनमेंसे कोई भी दो श्यामता एकतुल्य नहीं है। क्या श्रीरामजी हरदम रंग बदला करते थे अथवा गोस्वामीजीने अपनी काव्य प्रतिभा दिखलानेके लिये भिन्न भिन्न श्यामताओंका उल्लेख किया है? ऐसा तर्क तबतक स्थान पा सकता है, जबतक कि इन उपमाओंके यथार्थ कारण समझमें न आ जायँ। उनके अनेक कारण हो सकते हैं, जिनमेंसे कुछ ये हैं—

(क) १—मेघकी उपमा वार्षकालिक है। इसके लिये वह अधिकतर दी जाती है। यथा—

[illegible] बरीसा राम [illegible] ।
(वही, १ । १९ । ?)

'भगत नयन बारिद तनु स्यामा ॥'
(वही, ६ । ८५ । ५)

२—राजस प्रकरणमें किंवा राजसमाजमें मणिकी उपमा दी जाती है। यथा—

रामकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह तें लही दुति मरकत सोने ॥
(वही, २ । ११५ । ४)

मरकत कनक बरन बर जोरी ।
(वही, १ । ३१४ । ४)

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा ।
(वही, ७ । ७५ । १)

इसमें एकरूपता दिखायी गयी है।

३—मानसमें प्रायः विजयश्री-प्राप्तिके पश्चात् ही केकिकण्ठकी उपमा दी गयी है, जैसे कि मिथिलामें शिव-धनुर्भङ्गके बाद—

बिलसत बिजय प्रभु जानकि पाई ।
(वही, १ । २५२ । ३)

—यही उपमा दी गयी—

केकि कंठ दुति स्यामल अंगा ।
(वही, १ । ३१५ । १)

इसी तरह लङ्कामें भी जब रावणको मारकर—

बिलसत बिजय प्रभु जानकि पाई ।

तब कहा गया—

'केकीकण्ठाभनीलम्' (वही, ७ । १ श्लोक)

मेघ वर्षणकारक होता है, अतः तदनुसारक प्रसंगोंमें मयूरकण्ठपर श्याम रामका ध्यान अधिक उपयुक्त होता है। कई जगह श्रीरामजी वर्षणकारक रूपमें कहे भी गये हैं। यथा—

'[illegible] ।'
(वही, ३ । १० । ५)

'[illegible] ।'
(वही, ६ । ५५ । ४)

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें।

(वही, ५ । १०१ । ४)

२-मद (अविद्यान्धकार)—इसके नाशके लिये मणिवत् श्यामशरीरवाले श्रीरामजीका ध्यान करना चाहिये। यथा—

प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई।

(वही, ७ । ११९ । १)

३-काम सर्प है। यथा—

काम भुअंग डसत जब जाही।

(विनयपत्रिका १२७ । १)

और सर्पभक्षक तो केकी प्रसिद्ध ही है। अतः—

केकि कंठ दुति स्यामल अंगा।

(वही, १ । ३१५ । १)

—श्रीरामरूपका ध्यान करनेसे कामका नाश हो जाता है।

४-मोह सब रोगोंकी जड़ है। यथा—

'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।'

(वही, ७ । १२० । १५)

और मोहका पर्याय मूर्च्छा है—

'मूर्च्छा तु कश्मलं मोहः।'

(अमरकोष)

वैद्यकका कहना है—

कमलं मधुरं पथ्यं शीतलं कफपित्तजित्।
तृष्णादाहविस्फोटविषसर्पविनाशनम्॥

'कंजो मूर्च्छाविनाशकः।'

—तो शास्त्रप्रसिद्ध ही है। अतः मोहनाशार्थ कमलवत् श्याम रामजीका ध्यान करना चाहिये।

५-क्रोध अग्नि है, जो नित्य उरमें दाह किया करता है। यथा—

'क्रोध पित्त नित छाती जारा।'

(वही, ७ । १२० । १५)

और तमाल पित्तनाशक वृक्ष है। यथा—

तमालः शाखवृक्षो दाहपित्तकोपहपुनः।
..............................श्रमकुष्ठास्रपित्तजित्॥

(भावप्रकाशनिघण्टु)

अतः क्रोधनाशार्थ—

'स्याम तमाल बरन तनु सोहा।'

(वही, १ । ११४ । १)

—रामजीका ध्यान करना चाहिये। यथा—

तुलसिदास नँद स्याम सहित निरखि रिसि मनो रहति उर पैन॥

(कृष्णगीतावली)

६-मत्सर भी एक प्रकारकी अग्नि है। यथा—

परसुख देखि जरनि सोइ छई।

(वही, ७ । १२० । १७)

इस जरनि (दाह) की नाशक शीतलकारी यमुना है—

जमुना कलिमल हरनि सुहाई।

(वही, २ । ११९ । १)

इससे यमुनावत् श्याम रामरूपका ध्यान मात्सर्य-नाशार्थ करना चाहिये।

(ख) श्रीरामरूपकी विभिन्न श्यामताका ध्यान करते हुए षडूर्मियोंका नाश किया जाता है। छः ऊर्मियाँ ये हैं—

बुभुक्षापिपासाशोकमोहजरामृत्यवः षडूर्मयः।

१. बुभुक्षा—भूख एक ऊर्मि है। भूखनाशक अन्न है और अन्न वर्षासे उत्पन्न होता है, वर्षा मेघसे होती है—

पर्जन्यादन्नसम्भवः। (गीता ३ । १४)
जीवन दायक हरनि। (दोहावली)

अतः बुभुक्षानाशके लिये मेघवत् श्याम रामका ध्यान करे।

२. मृत्युरूप ऊर्मिका उल्लतासे नाश करनेवाली मणि है—

'हरइ गरल दुख दारिद दहई॥'

(वही, १ । १८१ । ४)

गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥

(वही, ७ । ११९ । ४)

अतः—

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा।

(वही, ७ । ७५ । १)

—का ध्यान करना चाहिये।

३. शोकका पर्याय चिन्ता है। चिन्ताको साँपिनि कहा गया है। यथा—

चिंता साँपिनि को नहिं खाया।

(वही, ७ । ७१ । १)

साँपिनीका भक्षक है केकी। अतः केकिकण्ठवत् श्याम रामका ध्यान करे—

भाव)का द्योतक है और वारिद—मेघ ऐश्वर्यसूचक है, अर्थात् वे कृपा चाहती हैं—

अब जनि कबहुँ ब्यापै प्रभु मोहि माया तोरि॥
(बा०, १। २०२)

और कृपा हुई भी—

मातु बिबेक अलौकिक तोरें। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरें॥
(बा०, १। १५०। २)

३—महर्षि श्रीविश्वामित्रजीके प्रसङ्गमें दो उपमाएँ दी गयीं—

नील जलद तनु स्याम तमाला। (बा०, १। २०८। २)

—क्योंकि आप कृपा चाहते थे। इसलिये जलदकी उपमा दी गयी और वनवासी मुनि थे, इससे तमालकी उपमा दी गयी।

निष्कर्ष—

१—भगवत्कृपाप्राप्त्यर्थ, गाम्भीर्यप्राप्त्यर्थ, रस पिपासा-तृप्तिके लिये, लोभ एवं दारिद्र्यके नाशार्थ, बुभुक्षानाशार्थ और ऐश्वर्यप्राप्त्यर्थ सजल मेघवत् श्यामविग्रहवाले श्रीरामभद्रजूका ध्यान करना चाहिये।

२—रूपदर्शनाकाङ्क्षापूर्त्यर्थ, अविद्यान्धकारनाशार्थ, धैर्य-वीरत्व-काठिन्य-प्राप्त्यर्थ, दिव्यदर्शनप्राप्त्यर्थ, संसार-विषनाशार्थ अर्थात् जीवनमुक्त्यर्थ और मृत्युनाशार्थ किये जानेवाले अनुष्ठानोंमें परम प्रकाशयुक्त मरकत (इन्द्रनील)-मणिके सदृश श्यामविग्रहवाले श्रीरामभद्रजूका ध्यान करना चाहिये।

३—शत्रुनाशार्थ, यशःप्राप्त्यर्थ, बंधननाशार्थ, कान्ति-मधुर-सौन्दर्यप्राप्त्यर्थ, सम्पत्तिविषयक इच्छाके पूर्त्यर्थ, कामना-शार्थ, शोकनाशार्थ हरिताभ-नील—चमकते हुए मयूरकण्ठके समान श्यामविग्रहवाले श्रीरामजीका ध्यान करना चाहिये।

४—कोमलता, सरलता एवं सर्वचित्ताकर्षक सौन्दर्यके प्राप्त्यर्थ, मनःनिर्मलत्वार्थ, गन्धविषयपूर्त्यर्थ, मोहनाशार्थ, मूर्च्छा एवं विषयव्याकुलताके नाशार्थ तथा अनन्यभक्तिप्राप्त्यर्थ सुगन्धमय नीलकमलके समान श्याम रंगवाले श्रीरामजीके श्रीविग्रहका ध्यान करना चाहिये।

५—सुलभतापूर्वक सर्वोपरस्यकप्रासादके प्राप्त्यर्थ, सर्व-विषयक इच्छाके पूर्त्यर्थ, शरीरकी सुचिक्कणता एवं सायुज्यमुक्तिके प्राप्त्यर्थ, क्रोध, मद एवं विषके नाशार्थ और दिव्यशरीरप्राप्त्यर्थ तमालवत् श्याम रामजीका ध्यान करना चाहिये।

६—सर्वाधिकारप्राप्त्यर्थ, अन्तःकरणशुद्ध्यर्थ, रसविषयक इच्छाके पूर्त्यर्थ, मात्सर्यनाशार्थ, पितामानाशार्थ और कृतकर्मसिद्ध्यर्थ अगाध-सलिल यमुनाके समान हरितिमा-मिश्रित-श्यामतासम्पन्न विग्रहवाले श्रीरामभद्रजूका ध्यान करना चाहिये।

उपर्युक्त प्रकारके विभिन्न अनुष्ठानोंमें श्रीरामजीका ध्यान करनेसे तत्तदनुष्ठानोंमें स्वतः सफलता मिलती है। अन्य अनेक सद्ग्रन्थोंमें दूर्वादल, अतसीपुष्प, गगन, सिन्धु, कदली-पत्र और कृष्णसर्प आदि अनेक वस्तुओंके रंगके साथ श्यामरङ्गकी तुलना की गयी है। परंतु यहाँ श्रीरामचरितमानसमें दी गयी उपमाओंपर ही विचार किया गया है।

स्मरण रखना चाहिये कि किसी भी कार्यके लिये श्रीरामजी-की किसी भी प्रकारकी श्यामताका ध्यान किया जाय, वह ध्यान अकेलेका न होकर श्रीजानकी महारानीके सहित हो—

भाव भाव सोभनि अनूपा।
अतिरसिक रुचिनिधि सरूपा॥
(बा०, १। १४०। १)

गौरतेजं विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत्।
न स सिद्धिमवाप्नोति स भवेत् पातकी शिवे॥
(गौतमीतन्त्र)

बिना श्रीसीताके श्रीरामभजनकी यथार्थ सिद्धि नहीं होती, इसलिये श्रीरामभजनके इच्छुकोंको श्रीजानकीसहित श्रीरामजीके स्वाभिमत श्यामविग्रहका ध्यान करना चाहिये।

किंतु जो समदर्शी हैं (सबको देखता है), अन्तर्यामी हैं, उन्हें थोड़े-से देखनेवाले, वे भी जिन्हें आप ही अपने स्वरूपको बताकर दिखानेकी कृपा करें, क्या दृष्टि लगा सकते हैं! दिव्यको देखनेके लिये दृष्टि भी तो दिव्य ही होनी चाहिये। प्राकृत नेत्र प्राकृत पदार्थोंको ही देख सकते हैं। जो कण-कणमें व्याप्त हैं, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, स्थावर-जंगम, जड़-चेतन, सभीमें जिनकी सत्ता है, ऐसे जनार्दनको देखनेकी जिन नेत्रोंमें दृष्टि नहीं, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' के साक्षात्कारकी शक्ति उनमें कहाँसे आयी। उनकी आँखें तो मोरपंख-जैसी—नाममात्रकी हैं। वे नारायणको क्या नजर लगा सकते हैं। त्रिकालदर्शीपर सहज किसकी दृष्टि लग सकती है। उल्टे आप ही सबको नजर लगा दें। परंतु यह माँका ममत्व है, पुत्र-स्नेह है। माधुर्यानुराग और वात्सल्यभावका साम्य है। यह मानसाम्य होता ही विचित्र है। प्रेममें निश्चिन्तता और धैर्य रहते ही नहीं।

मानवोचित मर्यादा-स्थापनार्थ श्रीरामने शरीर ही मनुष्य-जैसा बना लिया है, किंतु आप मनुष्य थोड़े हैं। मनुष्य-देहमें ऐसी सुन्दरता सम्भव ही नहीं, जो शिव-विरंचि आदि देवताओंसे लेकर दानव, यक्ष, गन्धर्व, मुनि, मनुष्य—सबको मोहित कर दे। शम्भु भी सुन्दरताकी सरितामें डुबकी लगाने लगें। सखी! औरोंको छोड़ो, आप स्वयं भी काले-काले घुँघराले केशोंको सँभालनेके लिये खंभोंमें लगे मणि-माणिक्य अथवा दर्पणोंमें, शारदीय कमल तथा पूर्णचन्द्र आदिको तुच्छ और तिरस्कृत करनेवाले अपने श्रीमुखारविन्दको निरखने लगते तो विस्मित हो जाते और देखते-देखते आश्चर्यसे कहने लगते—'यह इतना सुन्दर कौन है! देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व है अथवा किंपुरुष है—कौन है! ऐसी सुन्दरता तो मैंने कभी देखी ही नहीं।' जब विस्मयसे आप हाथ हिल जाता, तब सोचते—'अरे! यह, यह तो मेरा ही प्रतिबिम्ब है। क्या मेरा मुख इतना सुन्दर है?' आश्चर्यके साथ फिर देखते और फिर मुग्ध हो जाते।

जो रूप रूपके आगरको, सुन्दरताके सदनको, सच्चिदानन्द, योगीन्द्र श्रीरामचन्द्रको ही विस्मित बना दे, उसकी महिमाका क्या कहना। अलौकिक जितना ही वर्णन किया जाय, पार हो नहीं। इस रूपको जितना देखा जाय, उतनी ही लालसा बढ़ेगी। यह सौन्दर्य, अनुपम लावण्य ब्रह्माकी रचना, शेष शारदादिके वर्णन एवं योगीन्द्र-मुनीन्द्र-ध्यानियोंके अनुमानसे भी परेकी वस्तु है।

थोड़े दिनोंमें श्रीराम बड़े हो गये। किंतु जो अनादि हैं, विराट् हैं, जिनका आदि-मध्य-अन्त नहीं है, जो सर्वदा सबसे बड़े हैं, उनके लिये छोटा-बड़ा क्या। केवल लीलाके लिये अम्बाको वय बढ़ानी थी, बढ़ा ली। अल्पकालमें ही शास्त्र-शस्त्र आदि सर्वविद्याओंमें पारंगत हो गये। समस्त द्वीपोंके ज्ञानोंमें सर्वश्रेष्ठ उत्तीर्ण हुए। इधर-उधर ख्याति हुई। सर्वत्र यश छा गया।

प्रशंसा सुनते ही सूखी-सूखी-सी दाढ़ी-जटावाले, अत्यन्त घोर कठोर तपस्याके कारण जिनके मनमें कठोरता, स्वभावमें रूखापन आ गया था, वे महामुनि विश्वामित्र कैसे-वैसे अयोध्यामें पहुँचे। विश्वविमोहन श्रीरामको देखते ही देहकी सुधि भूल गये। श्रीमुखारविन्दकी शोभा निहार ऐसे मग्न हुए, मानो चकोर पूर्णचन्द्रको देखकर लुभा गया हो। अब तपस्या कौन करे। मनको कैसे समझाया जाय। अब तो बड़ेके बन्धनमें बँध गये। यह बन्धन भी ऐसा है, जो कभी न टूटे, न छूटे। कई दिनोंतक खींच-तान रही।

मुनिने अपने स्वार्थको लोककल्याणमें जोड़कर देखा तो उसकी पूर्ति करनेवाले श्रीराम और लक्ष्मणके अतिरिक्त संसारभरमें अन्य कोई वस्तु नहीं थी। संसारी वस्तुओंके इच्छुक भिक्षुओंको तो जिधर भी दृष्टि उठाकर देखोगे, उधर ही वे दीख जायँगे; किंतु परमार्थके उपासक और श्रीरामके याचक तो अन्वेषण करनेपर ही मिलेंगे। मुनिराजने अयोध्यानरेशसे श्रीरामानुज और श्रीरामकी याचना की थी। श्रीरामके दरबारसे किसीकी झोली कभी खाली नहीं गयी, पापीको भी हृदयसे की हुई पुकार टाली नहीं गयी; फिर मुनिवर विश्वामित्रकी तो ऐसी उत्तम याचना थी, जो प्रभु और प्रभुके प्रेमियोंके लिये परम महत्त्व रखती है, कल्याणकारी है। स्वीकार हो गयी।

रघुवंशी तथा दानके महत्त्वको समझनेवाले महाभाग पुरुष याचकोंसे भेंटना प्यार समझते हैं। जिनके यहाँसे भिक्षुक खाली हाथ—निराश नहीं लौटते, ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति संसारमें थोड़े ही होते हैं।

रूपके भूप जनकपुर पहुँचे। वहाँ क्या था, केवल इनके नाम—शैवधनुषकी धूम थी। यहाँ तो इन्होंने रूपकी ऐसी मोहनी डाली कि घर, नगर, डगरके सभी नर-नारी नेत्रोंसे श्रीरामके रूपसुधाका पान करनेमें मग्न—मग्न हो गये, इन्हींके बन गये।

कहहु सखी अस को तनुधारी।
जो न मोह यह रूप निहारी॥
(रा० च० मा० १।२२०।१)

मधुर, मनोहर मूर्तिको निहारकर विदेह विशेषरूपसे विदेह हो गये। उनकी दशा ही विलक्षण हो गयी। श्रीरामकी अलौकिक सुन्दरता देखते ही मन अत्यन्त प्रेमके वश होकर इतना आनन्दित हुआ कि कभी ब्रह्मानन्दमें भी यह आनन्द न मिला होगा। फिर तो मनने बरबस उस ब्रह्म-सुखको त्याग ही दिया। जब ब्रह्म साक्षात् सम्मुख ही खड़े हैं, तब और क्या चाहिये—

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥
(वही, १।२१४।४)

सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
(वही, १।२१५।२)

जनककी यह दशा! सीताजी तो तबतक श्रीरामको देखी भी नहीं थीं, केवल सखियोंद्वारा श्रीरामका नाम और उनकी मधुरातिमधुर कथा ही तनिक सुनी थीं कि बस, आकर्षित हो गयीं। जब श्रीश्यामसुन्दर उनके नवल नयनोंके सम्मुख आये, तब तो मामला ही कुछ और हो गया। वे श्रीरघुवेन्द्रके मुखारविन्दकी अद्भुत शोभाको अवलोकन करके ऐसी मोहित हुईं, मानो उनके मनको कोई बरबस चोर रहा है।

श्रीरामके इन स्वरूपोंसे लोग उन्हें 'चितचोर' कहने लगे तो क्या आश्चर्य! वैसे आप चितचोर नहीं हैं। क्योंकि तो श्रीराम प्रभु हैं, किंतु जिन महात्माओंका अन्तःकरण निर्मल है, उनका यह चित्त स्वयं ही आनन्दघन सच्चिदानन्दके नाम, रूप, लीला, धामकी ओर आकृष्ट हो जाता है। सत्-चित्-आनन्द-घन परम पिता परमात्माकी प्राप्ति ही जीवका धर्म है। मनुष्यका मन सच्चिदानन्दको प्राप्त कर ले तो फिर कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता। संसारके सभी पदार्थ श्रीरामरूप हैं, केवल इस भावनासे वह जगत्को देखता है। उसे कण-कण और क्षण-क्षणमें भगवान् श्रीरामके दर्शन होते रहते हैं।

भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, धाममें क्या अद्भुत आकर्षण, उनकी क्या महिमा है और क्यों है—इसे कभी कोई पूर्णतया न जान सका है न कह सका। यह वाणीसे परेकी गाथा है। जो इन्हें भावकी दृष्टिसे देखते हैं, इनपर श्रद्धा-विश्वास करते हैं अथवा जिनपर श्रीभगवान् तनिक-सी कृपादृष्टि डाल देते हैं, वे पुण्यात्मा उन्हें स्वयं जान जाते हैं। उनका जीवन सफल हो जाता है। वे सदा प्रेमानन्दमय रूपमें मग्न रहते हैं।

शोभासिन्धु भगवान् श्रीराम

(लेखक—श्रीरघोसिंहजी चौहान 'प्रेमी')

हमारी आँखें उसे देखना चाहती हैं, जिसे देख लेनेके बाद और कुछ देखना न रह जाय। जागतिक सौन्दर्यके जहाँ-कहीं प्रसङ्ग आते हैं, उन्हें देखनेके लिये हमारी आँखें सहसा दौड़ पड़ती हैं, किंतु तुरंत ही उस नश्वर सौन्दर्यसे निराश होकर लौट आती हैं और देखनेकी भूख इनकी ज्यों-की-त्यों बनी ही रह जाती है। अन्तमें निरुपायमें यहाँतक कह दिया जाता है—

यह तमाशा देखिये, वह तमाशा देखिये।
दी हैं दो आँखें खुदा ने, इन से क्या-क्या देखिये॥

—दाग

बात यह है कि आँखें अपने अभीष्ट सौन्दर्यको सभी भाँति पहचानती हैं, इसलिये संसारकी किसी भी सुन्दरताको देखकर चैन नहीं पातीं। इन्हें तो एकमात्र प्रभुके चिर-सुन्दर, [illegible] की भीख चाहिये। ऐसे दिव्य सौन्दर्य-दर्शनकी भिक्षाके लिये आँखें मानो दो ठीकरे (भिक्षा-पात्र) हैं—

आँखें नहीं हैं चेहरे पर तेरे फकीर के।
दो ठीकरे हैं भीख के दीदार के लिये॥

—[illegible]

सौन्दर्य-सुधा निधि भगवान् श्रीरामका सरल, तरल, रसमय रूप ही इन आँखोंकी दर्शन-पिपासाको तृप्त करनेमें समर्थ है। जब-जब किसी भक्तकी बड़भागिनी आँखोंने उन्हें देखा है—

देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥
(रा० च० मा० १।२३२।२)

वे अपनी निधिको आप पहचानती हैं। मनुष्यकी ही क्या, समस्त प्राणियोंकी आँखें अभिराम रामके जगत्-मन-विमोहन अद्भुत सौन्दर्यसे विमोहित हैं—

कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥
(वही, १।२२०।१)

भगवान् रामके ऐसे अद्भुत सौन्दर्यका वर्णन भक्त कवीश्वर गोस्वामी तुलसीदासजीने एवं अन्यान्य राम-भक्तोंने अपने ग्रन्थोंमें यथासम्भव किया है और साथ ही युक्तिपूर्वक अपनी विवशता और सामर्थ्याभाव भी प्रकट कर दिया है—

स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥
(वही, १।२२८।१)

विश्वविमोहन-चितचोर रामचन्द्रका सौन्दर्य सुन्दरताकी चरमावधि है—

राम सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।
(वही, १।३०९)

उनका सौन्दर्य मानवके प्राण-घाती दानवोंतकको हठात् विमोहित कर देता है। उनकी घोर घातक वृत्ति और वासनाएँ अनुपम रूप-राशिके समक्ष कुण्ठित हो जाती हैं।

विधाताकी समस्त सृष्टिमें ऐसी सुन्दरता कहीं नहीं है। क्योंकि ये तो—

जनु प्रगट भए बिधि न बनाए।
(वही, २।११९।२)

विधाताको तो इनसे ईर्ष्या हो गयी है—

इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए॥
(वही, २।११९।३)

रामका सहज सौन्दर्य प्रत्येक स्थितिमें सौन्दर्य ही है। परिस्थिति-परिवर्तनसे उसमें कोई परिवर्तन नहीं आता। वल्कल-वेशमें विचरते हुए, जबकि उनके मस्तकपर आज राजमुकुट नहीं है, जटा-मुकुटकी छटा कैसी निराली है! दिव्य कान्ति विकीर्ण करनेवाले मणि-मुक्ताओंके अभावमें स्वेद-कण जाल कैसी शोभा पा रहा है—

जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल॥
(वही, २।११५)

यही नहीं, पञ्चवटीमें दशाननके युद्ध करते हुए रामके श्याम शरीरपर रुधिरकी बूँदें—जो अन्यत्र जुगुप्सा ही उत्पन्न करती हैं—कैसी सुन्दर लग रही हैं। बाबा तुलसीदासजीकी कवितावलीमें उत्प्रेक्षा देखिये—

मानो मरकत सैल बिसाल में, फैलि चलीं बर बीरबहूटीं॥
(६।५१)

प्रकृतिका नैसर्गिक सौन्दर्य इस अनुपम सौन्दर्यके समक्ष गर्व नहीं कर सकता—

मोरे को बनु देखें सोनो न सलोनो लागे,
साँवरे बिलोके गर्व घटत घटनि के॥
(कवितावली, अयोध्या० १९)

अब एक झाँकी दूल्हे रामकी भी देखिये। दूल्हा-वेशमें राम कोटिकाम-छबिका निरादर करते हुए कैसे अलौकिक सुन्दर हैं, मानो सौन्दर्य-माधुर्यार्णव ही उमड़ पड़ा हो—

रूप-सुधा आनन्द-सिंधु में लहलहात तरुनाई।

उनके चरण महावर-मण्डित हैं। पीत पुनीत मनोहर धोती है। पीले जनेऊकी अच्छी शोभा है। पाणि-पल्लवमें पद्मरागजटित मुद्रिका है और—

पिअर उपरना काखासोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती॥
(रा० च० मा० १।३२७।४)

—धारण किये हुए हैं। कानोंमें कल कुण्डल झलमल-झलमल कर रहे हैं और मुखमण्डलका क्या कहना—

बदनु सकल सौंदर्ज निधाना॥
(वही, १।३२७।४)

सुन्दर भृकुटि है। मनोहर नासिका है। विलक्षण शोभाकी धरोहर भाल है। तिलक-रेखापर तो भक्तोंका मन ललककर चला जाता है। गोसाईंजीकी तिलकपर कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा है—

तिलक रेख सोभा जनु चाँकी।
(वही, १।२४३।४)

तिलककी रेखाएँ ऐसी सुन्दर हैं, मानो [मूर्तिमती] शोभापर मुहर लगा दी गयी हो।

ऐसे रूप-सुधा सिन्धु रामको वधू सीताने करकमलोंसे वरण किया। राम-रूप मोहिता सीताकी विमुग्ध दशाका कवितावलीमें कितना मार्मिक वर्णन है—

राम को रूपु निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
याते सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारत नाहीं॥
(बाल० १७)

भगवान् रामका अद्भुत सौन्दर्य केवल दर्शनमात्रसे ही मनोहारी नहीं है, बल्कि उनका अखिल विश्वके हितार्थ कल्याणकारी मङ्गलमय स्वरूप भी है। इसके लिये भक्त-मूर्धन्य तुलसीदासजी अपने विश्व-विश्रुत ग्रन्थ रामचरित-मानसमें कहते हैं—

नील सरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥
(१।१४६)

भगवान् रामके सौन्दर्य-वर्णनमें यहाँ तीन उपमान—नील कमल, नील मणि और नील घन एक साथ लाये गये हैं, जो काव्य-कलाकी दृष्टिसे मालोपमाका बोध कराते हैं; किंतु लोक-मङ्गल और लोक-कल्याणकी दृष्टिसे कुछ और गहराईमें जाकर देखें। भगवान् रामका सौन्दर्य नीले कमलके समान कोमल और सरस है। भक्तोंके लोचन-भ्रमर उसका मकरन्द-पान किया करते हैं। वह भक्तोंके अनाविल मानस-सरोवरमें सुशोभित होता है। वह नीलमणिके सदृश है अर्थात् कोमल ही नहीं, दुष्टोंके लिये कठोर भी है। मोहान्धकारको मिटानेके लिये मणिमें दिव्य प्रकाश भी विद्यमान है। फिर इसमें विशेष अर्थ (धन) भी संनिहित है, जो दीन दुखीके लिये दरिद्रता-विनाशनका मुख्य हेतु है और वह नील नीरदके समान विश्वके समस्त अभावोंको मिटाकर सम्पूर्ण जगत्‌को रसमय कर देनेमें समर्थ है।

सच तो यह है कि भगवान् रामके अद्भुत सौन्दर्य-सुधा-रसार्णवके समक्ष जगत्‌का कोई नश्वर उपमान उपमान नहीं लाया जा सकता—

ये उपमान सबै रस-रीते।

और उपमानके अभावमें कहा ही क्या जा सकता है। अतः फिर गोस्वामीजीके शब्दोंमें उनका वर्णन करनेके लिये यही कहना उचित है—

गिरा अनयन नयन बिनु बानी।
(वही, १।२२८।१)

तुलसीके रामकी बाल-छवि

(लेखक—पं० श्रीकेसरीजी साहित्यालंकार)

बालक स्वभावतः चित्ताकर्षक होता है। मानव ही नहीं, वरं पशु-पक्षियोंके बच्चे भी हमारे मनको बरबस हर लेते हैं। जब हम बछड़ेको छलाँग भरते देखते हैं, उस समय हृदयमें एक विचित्र प्रकारके आनन्दका अनुभव होता है। चिड़ियाँ जब अपने बच्चोंकी चोंचमें दाना डालती हैं और उनके साथ फुदकती हैं, उस समय उन्हें अवलोकन करते ही भावुक व्यक्तिका हृदय अपार आनन्दसे भर जाता है। इतना ही नहीं, हिंसक जानवरों—व्याघ्र, सिंह आदिके शावकको भी देखकर हम क्षणभरके लिये भूल जाते हैं कि यह प्राण-घातक जीव है। यहाँतक कि सर्पके बच्चेको भी मारनेमें हिचक-सी होती है, इसलिये कि वह भी परम मनोहर प्रतीत होता है।

जब हम अपने या पराये बच्चेको खाटपर लेटे अथवा प्राङ्गणमें जानु-पाणि चलते पाते हैं, उस समय सब काम छोड़कर उसे प्यार करने एवं छेड़नेमें अवश्य ही कुछ समय व्यतीत कर देते हैं।

बच्चोंका केवल हँसना-खेलना ही चित्ताकर्षक नहीं होता, वरं मचलना, बोलना-रोना आदि सारे क्रिया-कलाप ही परम मनोहर होते हैं। यहाँतक कि उनके खेल-कूदके सामान भी हृदयवान्‌के लिये आनन्दप्रदायक हुआ करते हैं।

काव्य-जगत्‌के स्रष्टा भी बाल-छवि, बाल-क्रीडा, बाल-सौन्दर्यके चित्रणमें रस लेते हैं और उसमें अपनेको तन्मय कर देते हैं। कविवर सूरदासजी प्रभृतिका बाल-लीला-वर्णन अनूठा है। संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने भी अपने उपास्य-देव श्रीरामचन्द्रके बाल-छवि-चित्रणमें कमाल किया है। आपके रामके अङ्ग-अङ्गमें कोटि-कोटि कामदेवोंकी आभा है—

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा॥
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥

चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥
पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहिं देखा॥
(रा० च० मा०, बा० का० १९८। १—२)

बाल-सौन्दर्यका इतना स्वाभाविक और सुन्दर चित्रण सामान्यतया अन्यत्र दुर्लभ है। रामके उपयोगमें आनेवाली वस्तुओंका चित्रण भी अद्वितीय प्रतीत होता है। रामके पालने भी प्राकृतिक काठकार नहीं बनाते, उसकी रचना भी कामदेवद्वारा ही होती है—

कनक रतन मनि पालनो, रच्यो मनहुँ मार सुतहार।
बिबिध खिलौना किंकिनी, लागे मंजुल मुकुता हार॥
(गीतावली, बाल० १२। १)

मार सुतहारद्वारा निर्मित पालनेपर जब राम लेटकर झूलने लगते हैं, तब वे कैसे लगते हैं—यह गोस्वामीजीसे सुनिये—

मदन मोर के चंद की, झलकनि निदरति तनु जोति।
नील कमल मनि जलद की उपमा कहे लघु मति होति॥
मातु सुकृत फल राम लला॥
लघु लघु लोहित ललित हैं पद पानि अधर एक रंग।
को कबि जो छबि कहि सकै, नख सिख सुंदर सब अंग॥
परिजन रंजन राम लला॥
(गीतावली, बाल० ११। १-४)

गोस्वामीजीके राम केवल नहा-धोकर ही सुन्दर नहीं लगते, बल्कि धूलि-धूसरित अङ्ग भी कामदेवकी शोभाको परास्त करते हैं—

....

अति सुंदर सोहत धूरि भरे, छबि भूरि अनंग की दूरि धरे॥
(कवितावली, बाल० ३)

आपके राम इतने सुन्दर हैं कि उनके साथ जिनकी उपमा दी जाती है, वे भी लघुतासे लजाते हैं—

खंजन मीन कमल सकुचत तब,
जब उपमा चाहत कबि देन॥
(गीतावली, बाल० १५। १)

माताके साथ बालकका चिर सम्बन्ध रहता है। माताकी गोदमें बालक जितना सुशोभित होता है, उतना अन्यके गोदमें नहीं। सामान्यतया बाल-सौन्दर्य चित्रकार कवि बालकको माताकी गोदमें ही देखना चाहते हैं। पर बालक राम अपने पिताकी गोदमें भी अनुपमनीय शोभा पाते हैं। सबेरे अलसाये हुए राम महाराज दशरथकी गोदमें कैसे लगते हैं, यह देखिये—

अवधेस के द्वारें सकारें गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच बिमोचन को, ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक-से॥
तुलसी मन-रंजन रंजित-अंजन, नैन सुखंजन जातक-से।
सजनी ससि में समसील उभै, नवनील सरोरुह-से बिकसे॥
(कवितावली, बाल० १। १)

अब भगवान् रामको अजिर-बिहारीके रूपमें अवलोकन कीजिये। अन्य बालकोंकी भाँति ही बालक राम भी आँगनमें धूल-धूसरित होकर खेलते हैं। पर अन्य बालकोंसे उनकी शोभा न्यारी ही है—

बालबिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई॥
मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥
ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई॥
(रा० च० मा० ७। ७५। १-४)

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई॥
धूसर धूरि भरें तनु आए। भूपति बिहसि गोद बैठाए॥
भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥
(रा० च० मा०, बा० का० १। २०२। ४-५, २०३)

गोस्वामीजीने रामलल्लाकी सभी अवस्थाओंका वर्णन करते हुए बाल-शैशवपर विशेष ध्यान दिया है। रामचरित-मानस, कवितावली, बरवै-रामायण, गीतावली आदिमें आपने रामके बाल-स्वरूपका अलौकिक ढंगसे वर्णन किया है। रामके अङ्ग प्रत्यङ्गकी शोभा-वर्णनमें आपने अपार प्रतिभाका परिचय दिया है। बालक रामके दाँत, लटें, अधर, ग्रीवाकी माला, कुण्डल, कपोल आदिका चित्रण कविताओंमें इस प्रकार पाया जाता है—

वर दंत की पंगति कुंदकली, अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकैं घन बीच जगै छबि मोतिन माल अमोलन की॥
घुँघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलन की॥
(बाल० ५)

चौपाई, दोहे, कवित्त, सवैये आदिके अतिरिक्त गेय पदोंमें भी आपने [illegible] चित्र प्रस्तुत

किये हैं, जो सूरके ऐसे (बाल-लीला सम्बन्धी) पदोंसे कम स्थान नहीं रखता। ऐसे पदोंका बाहुल्य गीतावलीमें है। यथा—

आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए॥
नील-जलद तनु स्याम राम सिसु जननि निरखि मुख निकट बोलाए।
बंधुक सुमन अरुन पद पंकज अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए॥
नूपुर जनु मुनिबर कलहंसनि रचे नीड़ दै बाँह बसाए।
कटि मेखल बर हार ग्रीव दर रुचिर बाँह भूषन पहिराए॥
उर श्रीवत्स मनोहर हरिनख हेम मध्य मनिगन बहु लाए।
सुभग चिबुक, द्विज, अधर, नासिका, स्रवन, कपोल मोहि अति भाए॥
भ्रू सुंदर करुनारस पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जलजाए।
भाल बिसाल ललित लटकन बर, बालदसा के चिकुर सुहाए॥
मनु दोउ गुर सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए।
उपमा एक अभूत भई तब, जब जननी पट पीत ओढ़ाए॥
(गीतावली १ । २८ । १—९)

अब कुछ बड़े होकर राम अपने भाइयों एवं सखाओंके साथ साकेतकी गलियोंमें विचरने लगे। नगरवासी उनका रूप निरखकर निहाल तो होते ही हैं, पर कौसल्या भी अपने किशोर रामको इस रूपमें अवलोकन करती हैं—

करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥
(रा० च० मा०, बा० का० २०३ । ४)

धनुबाण पहने सरयूतट, विहारी राघवेन्द्रके दर्शन कीजिये—

पद कंजनि मंजु बनीं पनहीं, धनुहीं सर पंकज-पानि लिएँ।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं सरजू तट चौहट हाट हिएँ॥
(कवितावली १ । ९)

सखाओंके साथ नौका-विहार करते हुए प्रभुजीके दर्शन अवलोकन कवितावलीमें कीजिये—

सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं रघुबीर सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसें कटि पीत दुकूल नवीन फबै॥
(वही, १ । ७)

इस प्रकार हम पाते हैं कि गोस्वामीजीने रघुकुल-कमल-दिवाकर रामकी शिशु-अवस्थासे किशोरावस्थातकका क्रमबद्ध ढंगसे और परम मनोहर रूपमें वर्णन किया है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

धनुषधारीके प्रति

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

कहो, मेरे धनुषधारी! मेरे बारेमें क्या सोचा? मेरा भी कुछ ख्याल है तुम्हें?

कोटि-कोटि जन्म बीत गये हैं मेरे चित्तको तुम्हारे चितवनकी चौखटपर सिर पटकते। हाँ, कोटि-कोटि जन्म! पर तुम टस-से-मस नहीं हुए। तुम्हारे कानोंपर जूँतक नहीं रेंगी। आखिर इतनी लापरवाही क्यों? ऐसा कौन भारी अपराध बन गया है मुझसे? कौन-से मैंने तुम्हारे हाथी-घोड़े खोल लिये हैं? कुछ तो बोलो। तनिक तो विचार करो। बात तो यह है कि जीतेजी जब गोद बसाते हैं, देखके मारे हाथ जोड़ते हैं। तुम कौन दुनियासे निराले हो। जिसने तुम्हारी हृदय-निधिका अपहरण किया, उसे तो मुक्ति प्रदान की और मैं जो तुमपर अपना सर्वस्व निछावर कर रही हूँ, उसके साथ यह व्यवहार! बाततक नहीं करते।

विकल हो-होकर बार-बार मैं पुकार रही हूँ, पर तुम नहीं सुनते। सारी शर्म-हया उतारकर रख दी क्या? मेरा चित्त तो खैर, पत्थरसे कठिन है ही। तनिक भी इसमें पानी होता तो अबतक कभीका तुमसे विमुख हो गया होता। पर तुम अपनी कहो, तुम्हीं कितने पानीमें हो? तुम्हारी आँखोंमें भी तो पानीका नाम-निशान नहीं। तनिक भी पानी होता तो तुम इस तरह पत्थरकी मूरत नहीं बने रहते। सच, तुम तो जड़ हो गये हो—एक सिरेसे जड़। जो जड़से पत्थरको चेतन नारी-रूप प्रदान कर दे, वही मेरे लिये स्वयं जड़-पत्थर होकर रह जाय—भाग्यकी विडम्बना इससे बढ़कर क्या होगी।

सुनती आयी हूँ—गजकी पुकारपर तुम नंगे पैर दौड़कर आये दौड़ आये थे। अजामिलके मुखसे 'नारायण'का 'ना' निकलते-निकलते ही प्रकट हो गये थे। बुरा न मानना, मुझे तो यह सब गप मालूम होती है। यों ही झूठके पुल बाँध दिये गये हैं। अपने दिलकी सच कहती हूँ, मुझे तो विश्वास नहीं होता। विश्वास हो भी कैसे? ऐसे होते, तो मेरी बेर यों चुप्पी साधते कैसे बनता। इस तरह कानोंमें उँगली दिये कैसे रहते। युग बीत गये हैं, युग—अरज गुजारते। यों ही उलाहना नहीं दे रही।

और फिर माँग-माँग भी तो देखी जाती है। मेरी माँग मेरी चाह तो एकदम साधारण है। मैं मुक्ति नहीं चाहती।

तुम्हारी नित्य-चरण-किंकरी भी नहीं बनना चाहती। मेरी कामना तो केवल इतनी-सी है कि तुम्हारा धनुर्धारी रूप एक बार मेरे लिये, मुझपर सक्रिय हो—बस, एक बार।

वह प्राणी प्राणी नहीं, जिसे किसीपर मरना नहीं आता। वह जीवन जीवन नहीं, जिसमें किसीपर मरा न जाय। प्राण-धारणकी सार्थकता—जीवनकी कृतार्थता इसीमें है। मरना मैंने सीख लिया है, मेरे जीवनेश्वर! मरण-सुधाओंकी रसभिनी 'गाथा' पाठ पढ़ा गयी है। प्रीतिकी सरिता बनी, मचलती वेगसे प्रियतम सागरकी ओर दौड़ी चली जाती, भक्ताग्रणी मीराने पाठ पक्का करा दिया है—एकदम पक्का, न जाने कितनी-कितनी बार दुहरवाकर। अब तो कसर केवल मर जानेकी है। मर जाऊँ तो जीवन कृतार्थ हो जाय। यह काम तुम्हें करना होगा, मेरे परमेश्वर! मुझे मार डालो और मेरा जीवन जीवन बना दो।

सच, मुझे मार डालो, मेरे धनुर्धर! मरे बिना मुझे कल नहीं पड़नेकी। यह काम तुम्हें छोड़ और कौन करेगा। तुम-सा श्रेष्ठ धनुर्धर मैं कहाँ पाऊँगी। कह रहे हो मुस्कराकर, 'किसीसे भी करा ले, मुझमें ही कौन लाल लगे हैं।' खाल कहा करो—मैं बहकावेमें थोड़े आ सकती हूँ। तुम्हारे धुर्यत्वके परीक्षा मुझे भलीभाँति पता है। कण-कणके मर्मको जाननेवाली गीता गुरुआनी पहिले ही मेरे कानमें मन्त्र फूँक गयी है—'रामः शस्त्रभृतामहम्।' (१०।३१) गीताकी शिष्याको मुलावेमें डालना सरल नहीं, भले ही तुम मायापति हुआ करो—समझे!

कैसी विचित्र बात है!—विस्मयमें भरी जाती हूँ। मैं ही क्या, जगत् भरेगा। जिस रावण और रावणके कुलने—एकाध विभीषण-जैसेकी बात जाने दो—सदा आपकी छोह छीनी, कदम-कदमपर आप और आपके कुलसे बैर किया, उसे तो आपने अपने कृपा-बाणोंकी अनन्त बौछार कर अपने लोकमें पठा दिया और इधर जो तुम्हारे गुन गाते, हाथने बेहाल हुई जा रही है, उस असरहानादान, भोली-भाली को न-कुछ-सी बातपर कान भी नहीं देते। उसे फुटकियोंमें उड़ा रहे हो।

सचमुच, मेरे राजा, मेरी तो माँग भी अम्यथा है। फिर भी……मेरे भंडारी होकर भी जाने क्यों तुम इस तरह रहे हो। मैं करुणाके भाव नहीं चाहती। तुम्हारी कृपाके तीरोंसे मुझे कोई सरोकार नहीं। तुम्हारे मोटे-मोटे अस्त्र-शस्त्र तुम्हें सलामत रहें। मुझे तो, बस, न-कुछ-सा कुछ चाहिये।

'ओह, फिर क्या चाहती है आखिर?' ओह! गनीमत है, पूछा तो आपने। किन्हें तो सही! रामके रामत्वमें कसर तो आयी। तुम मुझसे पूछ रहे हो। मेरी पूछ कर रहे हो। मुझ न-कुछको कुछ मान रहे हो। मैं तो इतनेसे ही भरी जा रही हूँ। बताऊँ क्या लाऊ, कुछ माँगा भी तो हो! फिर भी तुम पूछ रहे हो, बताना तो पड़ेगा ही।

तो लो, सुनो, मेरे सर्वस्व! मेरी माँग। आँखें मीच लो, कान मेरे होठोंसे सटा लो, तब कहूँगी, यों नहीं। हाँ!—बस, इस तरह। ठीक!—अब सुनो। दिलके तरकससे निकाल,—एकचित्त होकर सुनो, अनमने होकर नहीं—नयनोंकी कमानपर चढ़ाकर चितवनका एक तीर मुझपर छोड़ दो—बस, एक ही। एकाधिक मैं नहीं चाहती। अनन्त अनन्तोत्सुक चाह। मेरा काम तो एकसे ही बन जायगा। मैं निहाल हो जाऊँगी। तुम्हारा बाण अमोघ है—क्या मैं नहीं जानती! वह एक ही मुझे बींध जायगा। सार्थक हो जायगा मेरा जीवन। मैं मर जाऊँगी अपने रामपर, जी जाऊँगी नित्य जीवनमें।

कह रहे हो—'यह क्या माँग रही है! बड़ा भयानक है यह तीर। इस एकसे ही अनन्त रस-घावोंकी वर्षा हो जायगी। मर जायेगी तू बेमौत, बुरी तरह—तड़प-तड़पके। किये। भरी जायगी! मर-मरके जियेगी; जी-जीके मरेगी!—कर क्या रही है तू!' चिन्ता न करो, मेरे देव! मरना तो मैं चाह ही रही हूँ। और फिर ऐसा मरना तो कोई निपट मूढ़ गँवारिन भी न छोड़ेगी, जैसा तुम कह रहे हो। मुझे क्या समझ रक्खा है तुमने! मतिके नाते एकदम गयी-बीती नहीं हूँ। इसने तो उलटे चार चाँद लगा जायेंगे मेरे सौभाग्यको। ऐसे अद्भुत जीने-मरनेके घुट-मिलकर एक-से हुए रसका आस्वादन, सच, भाग्यका छींका टूटनेपर ही सुलभ होता है। मरम यहाँ भरा है यह!

हाँ, तो कहो, करोगे मेरे मनकी! मानोगे मेरी बात! बोलो, क्यों नहीं, मेरे धनुर्धर, मेरे धनुर्धारी!

भगवान् श्रीरामके जीवनका आदर्श स्वरूप

(लेखक—ब्रह्मलीन परमश्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

जिन मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके नाम, रूप, गुण, लीला, प्रेम और प्रभावकी अमृतमयी कथाओंका श्रवण, पठन और मनन ही परम कल्याण करनेवाला है, उन प्रभुके स्वरूपको हृदयमें रखकर, उनके गुण और चरित्रोंको सर्वथा आदर्श मानकर और उनके वचनोंको परमधर्म समझकर जो मनुष्य तदनुसार आचरण करता है, उसकी तो बात ही क्या है, ऐसे पुरुषके दर्शन स्पर्श-भाषण आदिका सौभाग्य जिस मनुष्यको प्राप्त है, वह भी अत्यन्त धन्य है।

कुछ भाई कहा करते हैं कि 'हम भगवान्‌के नामका जप बहुत दिनोंसे करते हैं, परंतु जितना लाभ बताया जाता है, उतना हमें नहीं हुआ।' इसका उत्तर यह है कि भगवान्‌के नामकी महिमा तो इतनी अपार है कि उसका जितना गान किया जाय, उतना ही थोड़ा है। नाम-जप करनेवालोंको लाभ नहीं दीखता, इसमें प्रधान कारण है दस नामापराधोंको छोड़कर जप न करना। दस* अपराधोंका त्याग करके जप करनेपर नाम-जपका शास्त्रवर्णित फल अवश्य प्राप्त हो सकता है। दस अपराधोंको सर्वथा त्यागकर नाम-जप करनेवालेको प्रत्यक्ष महान् फल प्राप्त होनेमें तो संदेह ही क्या है, केवल श्रद्धा और प्रेम—इन दो बातोंपर ख्याल रखकर जो अर्थपर ध्यान रखते हुए नामका जप करता है, उसे भी प्रत्यक्ष परमानन्दकी प्राप्ति बहुत शीघ्र हो सकती है। नाम-जपके साथ-साथ परमात्माके अमृतमय स्वरूपका ध्यान होते रहनेसे क्षण-क्षणमें उनके दिव्य गुण और प्रभावोंकी स्मृति होती है और वह स्मृति अपूर्व प्रेम और आनन्दको उत्पन्न करती है। यदि यह कहा जाय कि 'श्रीरामचरितमानसमें नाम-महिमाके अन्तर्गत यह कहा गया है—

भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥
(१।२७।१)

—फिर श्रद्धासहित नाम जपनेसे ही फल हो, ऐसे ही जपनेसे फल न हो, यह बात कैसे हो सकती है?' तो इसका उत्तर यह है कि 'भावसे, कुभावसे,—किसी प्रकार भी नाम जपनेसे दसों दिशाओंमें कल्याण होता है, इस बातपर तो श्रद्धा होनी ही चाहिये। इसपर भी श्रद्धा न हो, तब वैसा फल कैसे हो सकता है?' इसपर यदि कोई कहे कि 'विचारद्वारा तो हम श्रद्धा करना चाहते हैं, परंतु मन इसे स्वीकार नहीं करता, इसके लिये क्या करें?' तो इसका उत्तर यह है कि बुद्धिके विचारसे विश्वास करके ही नाम-जप करते रहना चाहिये। भगवान्‌पर विश्वास होनेके कारण तथा नाम-जपके प्रभावसे आगे चलकर पूर्ण श्रद्धा और प्रेम अपने-आप ही प्राप्त हो सकते हैं। परंतु यदि अर्थपर ध्यान रखते हुए जप किया जाय तो और भी शीघ्र परमानन्दकी प्राप्ति हो सकती है।

बहुत-से भाई कहते हैं कि 'हमलोग बरसोंसे मन्दिरोंमें भगवान्‌के दर्शन करने जाते हैं, परंतु हमें विशेष कोई लाभ नहीं हुआ—इसका क्या कारण है?' इसका उत्तर यह है कि 'विशेष लाभ न होनेमें एक कारण तो है, श्रद्धा और प्रेमकी कमी तथा दूसरा कारण है भगवान्‌के विग्रह-दर्शनका रहस्य न जानना।' मन्दिरमें भगवान्‌के दर्शनका रहस्य है—उनके रूप, लावण्य, गुण, प्रभाव और चरित्रका स्मरण मनन करके उनके चरणोंमें अपनेको अर्पित कर देना। परंतु ऐसा नहीं होता, इसका कारण रहस्य और प्रभाव जाननेकी त्रुटि ही है। मन्दिरमें जाकर भगवान्‌के स्वरूप और गुणोंका स्मरण करना चाहिये और भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये, जिससे उनके मधुर स्वरूपका चिन्तन सदा बना रहे और उनकी आदर्श लीला तथा आज्ञाके अनुसार आचरण होता रहे। जो ऐसा करते हैं, उन्हें भगवत्कृपासे बहुत ही शीघ्र परम शान्ति प्राप्त होती है, देह-त्यागके बाद परमगति मिलनेमें तो संदेह ही क्या है।

श्रीभगवान्‌के अनन्त गुण हैं, उनका वर्णन कोई नहीं कर सकता। वे भगवान् जीवोंपर दया करके अवतार ग्रहण करते हैं और ऐसी लीला करते हैं, जिसके श्रवण, गायन और अनुकरणसे जीवोंका परम कल्याण होता है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजी ऐसे ही परम दयालु अवतार हैं।

* १. सत्पुरुषोंकी निन्दा, २. असत्पुरुषोंके बीच नाम-महिमाका कथन, ३. विष्णु और शिवमें भेदबुद्धि, ४. वेदमें अश्रद्धा, ५. शास्त्रोंमें अश्रद्धा, ६. गुरुमें अश्रद्धा, ७. नाममहिमामें अर्थवादकी कल्पना, ८. शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंका आचरण, ९. नामके बलपर शास्त्रविहित कर्मोंका त्याग तथा १०. अन्य धर्मोंसे नामकी तुलना—ये दस नामापराध हैं।

इनके गुण, प्रभाव, आचरण, लीला आदिकी महिमा शेष, महेश, गणेश और सरस्वती भी नहीं गा सकते, तब मुझ-सरीखा एक साधारण मनुष्य तो क्या लिख सकता है। तथापि जिन सज्जन महापुरुषोंने अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये महाराजके कुछ गुण शास्त्रोंमें गाये हैं, उन्हींके आधार-बलपर बालककी भाँति मैं भी कुछ लिखनेकी चेष्टा करता हूँ।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके गुण और चरित्र परम आदर्श थे और उनका इतना प्रभाव था कि जिसकी तुलना नहीं हो सकती। उनकी अपनी तो बात ही क्या है, उनके गुणों और चरित्रोंका प्रभाव उनके शासनकालमें सारी प्रजापर ऐसा विलक्षण पड़ा कि रामराज्यमें त्रेतायुग सत्ययुगसे भी बढ़कर हो गया। रामराज्यके वर्णनमें आता है—

'सब लोग अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुकूल वेदमार्गपर चलते हैं और सुख पाते हैं। भय, शोक, रोग तथा दैहिक, दैविक और भौतिक ताप कहीं नहीं हैं। राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह, छल-कपट, प्रमाद-आलस्य आदि दुर्गुण देखनेको भी नहीं मिलते। सब लोग परस्पर प्रेम करते हैं और स्वधर्ममें दृढ़ हैं। धर्मके चारों चरणों—सत्य, शौच, दया और दानसे जगत् परिपूर्ण है। स्वप्नमें भी कहीं पाप नहीं है। स्त्री-पुरुष सभी रामभक्त हैं और सभी परमगतिके अधिकारी हैं। प्रजामें न छोटी उम्रमें किसीकी मृत्यु होती है न कोई पीड़ा है। सभी सुन्दर और नीरोग हैं। दरिद्र, दुःखी, दीन और मूर्ख कोई भी नहीं है। सभी नर-नारी दम्भरहित, धर्मपरायण, सदाचारपरायण, पुण्यात्मा, चतुर, गुणवान्, गुणोंका आदर करनेवाले, पण्डित, ज्ञानी और कृतज्ञ हैं।—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥

(मानस ७।२०; २१।१–४)

'सभी उदार, परोपकारी, ब्राह्मणोंके सेवक और तन, मन, वचनसे एकपत्नीव्रती हैं। स्त्रियाँ सभी पतिव्रता हैं। ईश्वरकी भक्ति और धर्ममें सभी नर-नारी ऐसे संलग्न हैं मानो भक्ति और धर्म साक्षात् मूर्तिमान् होकर उनमें निवास कर रहे हों। पशु-पक्षी सभी सुखी और सुन्दर हैं। भूमि सदा हरी-भरी और वृक्षादि सदा फूले-फले रहते हैं। सूर्य-चन्द्रमादि देवता बिना ही माँगे समस्त सुखदायी वस्तुएँ प्रदान करते हैं। सारे देशमें सुख-सम्पत्तिका साम्राज्य छाया हुआ है। श्रीसीताजी और तीनों भाई तथा सारी प्रजा श्रीरामकी सेवामें ही अपना सौभाग्य मानते हैं और श्रीरामजी सदा उनके हितमें लगे रहते हैं।'

रामराज्यकी यह व्यवस्था महान् आदर्श है। आज भी संसारमें जब कोई किसी राज्यकी प्रशंसा करता है या महान् आदर्श राज्यकी बात कहता है तो सबसे ऊँची प्रशंसामें यह यही कहता है कि बस, यहाँ तो 'रामराज्य' है।

जिनके गुणोंसे प्रभावित राज्यमें प्रजा ऐसी हो, उनके अपने गुण और चरित्र कैसे होंगे, इसका अनुमान करते ही हृदय भक्तिसे गद्गद हो उठता है। भगवान्के अनन्त गुणों और चरित्रोंका जरा-सा भी स्मरण-मनन महान् कल्याणकारी और परम पावन है।

रघुकुलभूषण भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान मर्यादा-रक्षक आजतक दूसरा कोई नहीं हुआ—यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है। श्रीराम साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा थे। वे धर्मकी रक्षा और लोगोंके उद्धारके लिये ही अवतीर्ण हुए थे। किंतु उन्होंने सदा सबके सामने अपनेको एक सदाचारी आदर्श मनुष्य ही सिद्ध करनेकी चेष्टा की। उनके आदर्श लीला-चरित्रोंके पढ़ने, सुनने और स्मरण करनेसे हृदयमें अत्यन्त पवित्र भावोंकी लहरें उठने लगती हैं और मन मुग्ध हो जाता है। उनका प्रत्येक कर्म अनुकरण करनेयोग्य है। श्रीराम सद्गुणोंके समुद्र थे। सत्य, सौहार्द, दया, क्षमा, मृदुता, धीरता, वीरता, गम्भीरता, अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान, पराक्रम, निर्भयता, विनय, शान्ति, तितिक्षा, उपरति, संयम, निःस्पृहता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, त्याग, मर्यादापालन, एकपत्नीव्रत, प्रजारञ्जकता, ब्राह्मणभक्ति, मातृ-पितृभक्ति, गुरुभक्ति, भ्रातृप्रेम, मैत्री, शरणागतवत्सलता, सरलता, व्यवहारकुशलता, प्रतिज्ञापालन, साधुरक्षण, दुष्टदलन,

निर्वैरता, लोकप्रियता, अभिज्ञता, बहुश्रुतता, धर्मज्ञता, धर्म-परायणता, पवित्रता आदि-आदि सभी गुणोंका मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराममें पूर्ण विकास था। संसारमें इतने महान् गुण एक व्यक्तिमें कहीं नहीं पाये जाते। वाल्मीकीय रामायणके बालकाण्ड और अयोध्याकाण्डके आदिमें भगवान् रामके गुणोंका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। उसे अवश्य पढ़ना चाहिये।

माता-पिता, बन्धु-मित्र, स्त्री-पुत्र, सेवक-प्रजा आदिके साथ उनका कैसा असाधारण आदर्श बर्ताव था, उसे स्मरण करते ही मन आनन्दमग्न हो जाता है। श्रीराम-जैसी लोक-प्रियता कहीं देखनेमें ही नहीं आती। उनकी लीलाके समय ऐसा कोई भी प्राणी नहीं था, जो श्रीरामके प्रेमपूर्ण मधुर बर्तावसे मुग्ध न हो गया हो।

कैकेयीका रामके साथ अप्रिय एवं कठोर बर्ताव भगवान्की इच्छा और देवताओंकी प्रेरणासे लोक-हितार्थ हुआ था। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि कैकेयीको श्रीराम प्रिय नहीं थे; क्योंकि जिस समय मन्थराने रानी कैकेयीको रामके विरुद्ध उकसानेकी चेष्टा की है, उस समय स्वयं कैकेयीने ही उसे यह उत्तर दिया है—

> धर्मज्ञो गुणवान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवाञ्छुचिः।
> रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति॥
> भ्रातॄन् भृत्यांश्च दीर्घायुः पितृवत् पालयिष्यति।
> संतप्यसे कथं कुब्जे श्रुत्वा रामाभिषेचनम्॥
>
> × × ×
>
> यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः।
> कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु॥
> राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि तत्तदा।
> मन्यते हि यथाऽऽत्मानं तथा भ्रातॄंस्तु राघवः॥
>
> (वा० रा० २। ८। १४-१५, १८-१९)

'कुब्जे! राम धर्मके ज्ञाता, गुणवान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी और पवित्र होनेके साथ ही महाराजके बड़े पुत्र हैं; अतः युवराज होनेका अधिकार उन्हींको है। वे दीर्घजीवी होकर अपने भाइयों और नौकरोंका पिताकी भाँति पालन करेंगे। भला, उनके अभिषेककी बात सुनकर तू इतना क्यों जल रही है? ... मेरे लिये जैसे भरत आदरके पात्र हैं, वैसे ही, बल्कि उनसे भी बढ़कर राम हैं। वे कौसल्यासे भी बढ़कर मेरी बहुत सेवा किया करते हैं। यदि रामको राज्य मिल रहा है तो उसे भरतको ही मिला समझ; क्योंकि राघव सभी भाइयोंको अपने ही समान समझते हैं।'

कैसा सुन्दर वात्सल्य-प्रेम है! श्रीरामपर कैकेयीका कितना प्रेम, विश्वास और भरोसा था! इससे यह स्पष्ट समझमें आ जाता है कि कैकेयीका कठोर बर्ताव उनके स्वभावसे नहीं हुआ, भगवदिच्छासे ही हुआ था।

श्रीरामकी मातृभक्ति

भगवान्की मातृभक्ति बड़ी ही ऊँची है। जन्म देनेवाली माता कौसल्याके प्रति तो आपका महान् आदरभाव है ही। विशेष बात तो यह है कि उनसे भी बढ़कर आदर आप माता कैकेयीजीका करते हैं, जिन्होंने आपको कठोर वचन कहे तथा वनमें भेजा। माता कौसल्याने आपसे जब कहा कि 'पिताकी अपेक्षा माताकी आज्ञा बढ़कर होती है, इससे तुम वनमें न जाओ' तब आपने उन्हें माता कैकेयीकी आज्ञा बतलायी। तब कौसल्याने उसे स्वीकार किया और कहा—

> जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥
>
> (मानस, अ० का० २। ५५। १)

श्रीभरतजीके साथ जब कैकेयीजी वनमें पहुँचती हैं, तब श्रीरामचन्द्रजी सबसे पहले उन्हींसे मिलते हैं और उन्हें समझा-बुझाकर उनका संकोच दूर करते हैं—

> प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई॥
> पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥
>
> (वही, २। २४४। ४)

'सबसे पहले रामजी कैकेयी मातासे मिले और अपने सरल स्वभाव तथा भक्तिसे उनकी [दबी हुई] बुद्धिको तर (शीतल) कर दिया। फिर चरणोंमें गिरकर काल, कर्म और विधाताके सिर दोष मढ़कर उनको सान्त्वना दी।'

पञ्चवटीमें एक दिन बात-ही-बातमें लक्ष्मणजीने भरतजीकी बड़ाई करते हुए माता कैकेयीकी निन्दा कर दी। उन्होंने कहा—

> भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः।
> कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी॥
>
> (वा० रा०, अर० १६। ३५)

'जिसके पति महाराज दशरथजी और पुत्र साधुस्वभाव भरतजी हैं, वह माता कैकेयी ऐसी निर्दय स्वभाववाली कैसे हुई!'

यह सुनते ही भगवान् श्रीरामने कहा—

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन ।
तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥
(वा० रा०, अर० १६ । ३७)

'हे तात ! तुमको मझली माता कैकेयीकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये । इक्ष्वाकुकुलनाथ भरतकी ही बात करो ।'

और तो क्या, लङ्का-विजयके पश्चात् जब दिव्यधामसे महाराज दशरथजी आये, तब उनसे भी हाथ जोड़कर यह प्रार्थना करते हैं—'हे धर्मज्ञ ! आप मेरी माता कैकेयी और भाई भरतपर प्रसन्न हों । आपने जो कैकेयीको यह शाप दिया था कि मैं तुम्हारा पुत्रसहित त्याग करता हूँ, यह भयंकर शाप, हे प्रभो ! पुत्रसहित माता कैकेयीको स्पर्श भी न करे'—

इति ब्रुवाणं राजानं रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च ॥
सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता कैकयी त्वया ।
स शापः कैकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत् प्रभो ॥
(वा० रा०, युद्ध० ११९ । २५-२६)

जब आप अयोध्या लौटते हैं, तब भी पहले माता कैकेयीसे मिलते हैं और समझा-बुझाकर उन्हें सुखी करते हैं । इससे बढ़कर मातृभक्तिका और क्या उदाहरण होगा !

पितृभक्ति

मर्यादापुरुषोत्तमकी पितृभक्ति भी अनूठी है । पिताकी स्पष्ट आज्ञाके पालन करनेकी तो बात ही क्या, पिताका संकेतमात्र पाकर आपने प्रसन्नतापूर्वक १४ वर्षके लिये अयोध्याका त्याग कर दिया । श्रीदशरथजीने वन-गमनके लिये इन्हें स्पष्ट शब्दोंमें आज्ञा नहीं दी थी । कैकेयी माताके द्वारा ही आपको जब दशरथजीकी मौन सम्मतिका पता लगा था, उसीको आपने स्वीकार किया । मातासे सुनी पिताकी सम्मति मानकर उसे शिर चढ़ा लिया । जब माता कैकेयीने बड़ी कठोरताके साथ सब बातें आपको सुनायीं, तब आपने बड़े हर्षके साथ विनयपूर्ण शब्दोंमें उत्साह दिखलाते हुए कहा—

अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके ॥
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे ।
(वा० रा० अयो० १८ । २८,२९)

'हे माता ! मैं महाराज पिताजीकी आज्ञासे आगमें भी कूद सकता हूँ, तीक्ष्ण विष भी खा सकता हूँ और समुद्रमें भी कूद सकता हूँ ।'

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ॥

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर ।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर ॥

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा । प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा ॥
(श्रीरा० च० मा० २ । ४० । ४; २ । ४१, ४१ । १)

माता कौसल्याजीके पास जब आप विदा माँगने गये, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने अपना दुःख सुनाकर इन्हें रोकना चाहा, तब आपने कहा—

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम ।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥
(वा० रा०, अयो० २१ । ३०)

'हे माता ! पिताजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है । मैं सिरसे प्रणाम करता हूँ, तुम प्रसन्न होओ, मैं वनको जाना चाहता हूँ ।'

इसी प्रकार आपने लक्ष्मणजीको धर्मकी महिमा और बड़ोंकी आज्ञाके पालनका महत्त्व समझाते हुए कहा—

धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् ।
धर्मसंश्रितमप्येतत् पितुर्वचनमुत्तमम् ॥
सोऽहं न शक्ष्यामि पुनर्नियोगमतिवर्तितुम् ।
पितुर्हि वचनाद् वीर कैकेय्याहं प्रचोदितः ॥
(वा० रा०, अयो० २१ । ४१, ४२)

'लोकमें धर्म ही श्रेष्ठ है, धर्ममें ही सत्य (सत्यस्वरूप परमात्मा) प्रतिष्ठित है । पिताजीका यह वचन भी धर्मसे युक्त है, इसलिये श्रेष्ठ है ।……अतः मैं पिताजीकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकूँगा । हे भाई ! पिताजीके कथनानुसार माता कैकेयीने मुझे वन जानेकी आज्ञा दी है ।'

सत्यः सत्याभिसंधश्च नित्यं सत्यपराक्रमः ।
परलोकभयाद् भीतो निर्भयोऽस्तु पिता मम ॥
(वा० रा०, अयो० २२ । ९)

'हे भाई ! मेरे पिताजी नित्य सत्यवादी, सत्यप्रतिज्ञ और सत्यपराक्रमी हैं । वे [illegible]

डर रहे हैं। मेरेद्वारा उनका यह भय दूर हो, वे निर्भय हो जायँ। अर्थात् मैं वनको चला जाऊँ, जिससे उनके वचन मिथ्या न हों।'

राम अपने शोकग्रस्त पिताजीसे कहते हैं—'महाराज! इस बहुत ही छोटी-सी बातके लिये आपने इतना दुःख पाया! मुझे पहले किसीने यह बात नहीं जनायी। महाराजको इस दशामें देखकर मैंने माता कैकेयीसे पूछा और उनसे सब प्रसङ्ग सुनकर हर्षके मारे मेरे सब अङ्ग शीतल हो गये। अर्थात् मुझे बड़ी शान्ति मिली। पिताजी! इस मङ्गलके समय स्नेहवश सोच करना त्याग दीजिये और हृदयमें हर्षित होकर मुझे आज्ञा दीजिये'—

अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता। सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता॥

मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात॥
(श्रीरा० च० मा० २ । ४४ । ४; २ । ४५)

इतना कहते-कहते प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके सभी अङ्ग पुलकित हो गये। धन्य है आपकी पितृभक्तिको, जिसके कारण स्नेहवश होकर सत्यसंध दशरथजीने आपका स्मरण करते हुए ही शरीरका त्याग कर दिया!

गुरुभक्ति

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी गुरुभक्ति भी आदर्श है। गुरुके प्रति कितनी आदरबुद्धि, कितना विश्वास, उनकी सेवामें कैसी प्रसन्नता और उनके साथ बोलचालमें कैसी विनय होनी चाहिये, इन भावोंका आदर्श श्रीरामकी गुरुभक्तिमें मिलता है। मुनि विश्वामित्रजी आपके शिक्षागुरु हैं। 'विद्यानिधि' भगवान्‌ने उनसे विद्या ग्रहण की है। मुनिके साथ श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई जनकपुरमें पधारते हैं और गुरुकी आज्ञासे नगरकी शोभा देखनेके बहाने नगरनिवासी नर-नारियोंको नेत्रोंका परम लाभ प्रदान करनेके लिये जनकपुरमें जाते हैं। वहाँ कुछ देर हो जाती है, तब मनमें संकोच करते हैं कि गुरुजी कहीं नाराज तो न होंगे। इस प्रसङ्गमें श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

कौतुक देखि चले गुर पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥
जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई॥
... ...

समय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥
(वही, १ । २२४ । ८-२२५)

रातको दोनों भाई नियमपूर्वक मानो प्रेमसे जीते हुए प्रेमपूर्वक श्रीगुरुजीके चरणकमल दबाते हैं—

तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
(वही, १ । २२६ । १)

मुनि श्रीवसिष्ठजी आपके कुलगुरु हैं। आप सब प्रकारसे गुरुकी सेवा करनेमें मानो अपना सौभाग्य समझते हैं। वनमें जब वसिष्ठजी भरतजीका पक्ष लेकर आपसे कहते हैं—

सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ॥
(वही, २ । २५७)

—तब भगवान् श्रीभरतजीपर गुरुका स्नेह देखकर भरतजीके भाग्यकी सराहना करते हुए कहते हैं—

जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥
(वही, २ । २५८ । १)

'जो मनुष्य गुरुके चरणकमलोंके प्रेमी हैं, वे लोक और वेद दोनोंमें बड़भागी हैं। फिर जिसपर आपका ऐसा स्नेह है, उस भरतके भाग्यका तो कौन बखान कर सकता है।' और इसी प्रसङ्गमें वसिष्ठजीसे फिर कहते हैं—

... ... । नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥
सब कर हित रुख राउरि राखें। आयसु किएँ मुदित फुर भाषें॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथें मानि करौं सिख सोई॥
(वही, २ । २५७ । १-२)

'हे नाथ! उपाय तो आपके ही हाथ है। आपका रुख रखनेमें और आपकी आज्ञाको सत्य कहकर प्रसन्नतापूर्वक पालन करनेमें ही सबका हित है। पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षाको सिर चढ़ाकर करूँ।'

एक बार वसिष्ठजी भगवान्‌से उनके चरणकमलोंमें जन्म-जन्मान्तरतक प्रेम बना रहे, यह वर माँगने आते हैं और भगवान्‌से एकान्तमें मिलते हैं, उस समय भी मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् गुरुभक्तिका आदर्श स्थापित करनेके लिये—

अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा॥

(वही, ७। ४७। १)

—उनका अत्यन्त आदर करते हैं और चरण धोकर चरणामृत लेते हैं। धन्य!

भ्रातृ-प्रेम

श्रीरामका भ्रातृ-प्रेम भी अनुकरणीय था। लड़कपनसे ही श्रीराम अपने भाइयोंके साथ बड़ा प्रेम करते थे। सदा उनकी रक्षा करते और उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे। चारों भाई एक साथ ही घोड़ोंपर चढ़कर विचरण किया करते थे। रामचन्द्रजीको जो भी कोई उत्तम भोजन या वस्तु मिलती थी, उसे वे पहले अपने भाइयोंको देकर पीछे स्वयं खाते या उपयोगमें लाते थे। यद्यपि श्रीरामका सभी भाइयोंके साथ समानभावसे ही पूर्ण प्रेम था, उनके मनमें कोई भेद नहीं था, तथापि लक्ष्मणका श्रीरामके प्रति विशेष स्नेह था। वे थोड़ी देरके लिये भी श्रीरामसे अलग रहना नहीं चाहते थे। श्रीरामका वियोग उनके लिये असह्य था, इसी कारण विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिये भी वे श्रीरामके साथ ही वनमें गये। वहाँ राक्षसोंका विनाश करके दोनों भाई जनकपुरमें पहुँचे। धनुर्यज्ञ हुआ। तदनन्तर विवाहकी तैयारी हुई और चारों भाइयोंका विवाह साथ-साथ ही हुआ। विवाहके बाद अयोध्यामें आकर चारों भाई प्रेमपूर्वक रहे।

कुछ दिनोंके बाद अपने मामाके साथ भरत शत्रुघ्न ननिहाल चले गये। श्रीराम और लक्ष्मण पिताके आज्ञानुसार प्रजाका कार्य करते रहे। श्रीरामके प्रेमभरे बर्तावसे, उनके गुण और स्वभावसे सभी नगरनिवासी और बाहर रहनेवाले ग्रामवासि जनोंके मनुष्य मुग्ध हो गये। फिर राजा दशरथने मुनि वसिष्ठकी आज्ञा और प्रजाकी सम्मतिसे श्रीरामके राज्याभिषेकका निश्चय किया। राजा दशरथजीके मुखसे अपने राज्याभिषेककी बात सुनकर श्रीराम माता कौसल्याके महलमें आये। माता सुमित्रा और भाई लक्ष्मण भी वहीं थे। उस समय श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मणसे कहते हैं—

> लक्ष्मणेमां मया सार्धं प्रशाधि त्वं वसुंधराम्।
> द्वितीयं मेऽन्तरात्मानं त्वामियं श्रीरुपस्थिता॥
> सौमित्रे भुङ्क्ष्व भोगांस्त्वमिष्टान् राज्यफलानि च।
> जीवितं चापि राज्यं च त्वदर्थमभिकामये॥
>
> (वा० रा० २। ४। ४३-४४)

'लक्ष्मण! तुम मेरे साथ इस पृथ्वीका शासन करो। तुम मेरे दूसरे अन्तरात्मा हो। यह राजलक्ष्मी तुम्हें ही प्राप्त हुई है। सुमित्रानन्दन! तुम मनोवाञ्छित भोग और राज्य-फलका उपभोग करो। मैं जीवन और राज्य भी तेरे लिये ही चाहता हूँ।'

इसके बाद इस लीला नाटकका पट बदल गया। माता कैकेयीके इच्छानुसार राज्याभिषेक वन-गमनके रूपमें परिणत हो गया। सुमन्त्रके द्वारा बुलाये जानेपर जब श्रीराम महलमें गये और माता कैकेयीसे बातचीत करनेपर उन्हें वरदानकी बात ज्ञात हुई, तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। तदनन्तर वे माता कौसल्यासे विदा माँगने गये, वहाँ भी बहुत बातें हुईं परंतु श्रीरामने एक भी शब्द भरत या कैकेयीके विरुद्ध नहीं कहा, बल्कि भरतकी बड़ाई करते हुए माताको धैर्य दिया और कहा कि 'भरत मेरे ही समान आपकी सेवा करेंगे।' उसी समय सीताको धरपर रहनेके लिये समझाते हुए वे कहते हैं—

> भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः।
> त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम॥
>
> (वा० रा० २। २६। ३३)

'सीते! मेरे भाई भरत शत्रुघ्न मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। अतः तुम्हें उनको अपने भाई और पुत्रके समान या उससे भी बढ़कर प्रिय समझना चाहिये।'

वन-गमनका समाचार सुनकर लक्ष्मणके मनमें भारी दुःख और क्षोभ हुआ। उसे भी श्रीरामने नीति और धर्मसे परिपूर्ण बहुत ही मधुर और कोमल वचनोंसे शान्त किया। फिर जब लक्ष्मणने साथ चलनेके लिये प्रार्थना की, उस समय उनको यहीं रहनेके लिये समझाते हुए श्रीरामने कहा है—

> स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे स्थितः।
> प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे॥
>
> (वा० रा० २। ३१। १०)

'लक्ष्मण! तुम मेरे स्नेही, धर्मपरायण, धीर और सदा सन्मार्गमें स्थित रहनेवाले हो। मुझे प्राणोंके समान प्रिय, मेरे वशमें रहनेवाले, आज्ञापालक और सखा हो।'

बहुत समझानेपर भी जब लक्ष्मणने अपना प्रेमाग्रह नहीं छोड़ा, तब भगवान्ने उनको संतुष्ट करनेके लिये अपने साथ ले जाना स्वीकार किया। उन्होंने वहाँ समय भी श्रीरामको सब प्रकारसे आराम और संतोष पहुँचानेकी चेष्टा किया करते थे।

भरतके सेनासहित चित्रकूट आनेका समाचार पाकर जब श्रीरामप्रेमके कारण लक्ष्मण क्षुब्ध होकर भरतके प्रति न कहने योग्य शब्द कह बैठे, तब श्रीरामने भरतकी प्रशंसा करते हुए कहा—

'लक्ष्मण! मैं सत्यसे अपने आयुधकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम और सारी पृथ्वी—सब कुछ तुम्हीं लोगोंके लिये चाहता हूँ। लक्ष्मण! मैं राज्यको भी भाइयोंके संग्रह और सुखके लिये ही चाहता हूँ तथा मेरे विनयी भाई! भरत, तुम और शत्रुघ्नको छोड़कर यदि मुझे कोई भी सुख होता हो तो उसमें आग लग जाय। मैं समझता हूँ कि मेरे वनमें आनेकी बात कानमें पड़ते ही भरतका हृदय स्नेहसे भर गया है, शोकसे उसकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयी हैं; अतः वह मुझे देखनेके लिये आ रहा है। उसके आनेका कोई दूसरा कारण नहीं है।'

इसके सिवा यहाँ यह भी कहा है कि 'भरत मनसे भी मेरे विपरीत आचरण नहीं कर सकता। यदि तुम्हें राज्यकी इच्छा है तो मैं भरतसे कहकर दिला दूँ।'

लक्ष्मणका भरतके प्रति जो संदेह था, वह उपर्युक्त बातें सुनते ही नष्ट हो गया।

उसके बाद जब भरत आश्रममें पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें लोट गये, तब श्रीरामने उनको देखा। अपने हाथोंसे उठाकर भरतका हृदयसे आलिङ्गन किया। उनको गोदमें बैठाकर और उनका सिर सूँघकर आदरपूर्वक सब समाचार पूछे और कहा—'भाई! तुम चीर और जटा धारण करके यहाँ क्यों आये?' इसपर भरतने श्रीरामको अयोध्या लौटनेकी बहुत चेष्टा की। भरत तथा रामके प्रेम और बर्तावको देखकर सारा समाज चकित हो गया। अन्तमें जब भरतने यह बात समझ ली कि श्रीराम अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ेंगे, तब उन्होंने श्रीरामसे उनकी पादुकाएँ माँगीं। उनकी प्रार्थना स्वीकार करके श्रीरामने अपनी पादुका देकर उनको विदा कर दिया। वे उन पादुकाओंको आदरपूर्वक सिरपर धारण करके अयोध्या लौट आये। उन पादुकाओंका राज्याभिषेक करके उनके आज्ञानुसार राज्यका शासन करने लगे और स्वयं श्रीरामकी ही भाँति मुनिवेश धारण करके नन्दिग्राममें रहे।

उसके बाद सीता-हरण हुआ। लङ्कापर चढ़ाई की गयी। रावणके साथ भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। वहाँ एक दिन रावणके शक्ति-बाणसे लक्ष्मणके मूर्च्छित हो जानेपर श्रीरामने जैसी विलापलीला की, उससे छोटे भाई लक्ष्मणपर उनका कितना प्रेम था, इसका पता चलता है। वहाँ श्रीरामने कहा है—

> यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
> अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥
> इष्टबन्धुजनो नित्यं मां च नित्यमनुव्रतः।
> इमामवस्थां गमितो राक्षसैः कूटयोधिभिः॥
> (वा० रा० ६ । १०१ । १३-१४)

'महातेजस्वी लक्ष्मणने वन आते समय जिस प्रकार मेरा अनुसरण किया था, उसी प्रकार अब मैं भी इसके साथ यमलोकको जाऊँगा। यह सदा-सर्वदा ही मेरा प्रिय बन्धु और अनुगामी रहा है। हाय! कपटयुद्ध करनेवाले राक्षसोंने आज इसे इस अवस्थामें पहुँचा दिया।'

जो भाई अपने लिये सब कुछ छोड़कर मरनेको और सब तरहका कष्ट सहनेको तैयार हो, उसके लिये चिन्ता और विलाप करना तो उचित ही है; परंतु श्रीरामने तो इस प्रसङ्गमें विलापकी पराकाष्ठा दिखाकर भ्रातृ-प्रेमकी बड़ी ही सुन्दर शिक्षा दी है।

श्रीहनुमान्‌जीद्वारा संजीवनी-बूटी मँगवाकर सुषेणने लक्ष्मणको स्वस्थ कर दिया। युद्धमें रावण मारा गया। लङ्कापर विजय हो गयी। भगवान् राम अयोध्या लौटनेके लिये तैयार हुए। उस समय विभीषणने श्रीरामको बड़े आदर और प्रेमसे विनयपूर्वक कुछ दिन रुकनेके लिये कहा। तब श्रीरामचन्द्रजीने उत्तर दिया—

> न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।
> तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः॥
> मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः।
> शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया॥
> (वा० रा० ६ । १२१ । १८-१९)

'राक्षसेश्वर! मैं तुम्हारी बात न मानूँ—ऐसा कदापि सम्भव नहीं; परंतु मेरा मन उस भाई भरतसे मिलनेके लिये छटपटा रहा है, जिसने चित्रकूटतक आकर मुझे लौटा ले जानेके लिये सिर झुकाकर प्रार्थना की थी और मैंने जिसके वचनोंको स्वीकार नहीं किया था। [उस भ्रातृप्रेमी भाई भरतसे मिले बिना मैं अब कैसे विलम्ब कर सकता हूँ।]'—इत्यादि।

इसके बाद विमानमें बैठकर श्रीराम सीता, लक्ष्मण और सब मित्रोंके साथ अयोध्या पहुँचे। वहाँ भी भरतसे मिलते समय उन्होंने अद्भुत भ्रातृ-प्रेम दिखलाया है।

राज्य करते समय भी श्रीराम हर एक कार्यमें अपने भाइयोंका परामर्श लिया करते थे। जिस किसी प्रकारसे उनको सुख पहुँचाने और प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे।

एक समय लवणासुरके अत्याचारोंसे घबराये हुए ऋषियोंने उसे मारनेके लिये भगवान्से प्रार्थना की। भगवान्ने सभामें प्रश्न किया कि 'लवणासुरको कौन मारेगा? किसके जिम्मे यह काम रक्खा जाय?' तुरंत ही भरतने उसे मारनेके लिये उत्साह प्रकट किया। इसपर शत्रुघ्नने कहा कि 'भरतजीने तो और भी बहुत-से काम किये हैं, आपके लिये भारी-से-भारी कष्ट सहन किये हैं। फिर भरतजी बड़े भी हैं, मुझ सेवकके रहते हुए यह परिश्रम इनको नहीं देना चाहिये। इस कार्यके लिये तो मुझे ही आज्ञा मिलनी चाहिये।' तब श्रीरामजीने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके कहा कि 'वहाँका राज्य भी तुम्हींको भोगना पड़ेगा, मेरी आज्ञाका प्रतिवाद न करना।' शत्रुघ्नको राज्याभिषेककी बात बहुत बुरी लगी। उन्होंने बहुत पश्चात्ताप किया। परंतु रामाज्ञा समझकर उसे स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार वचनोंसे बाँधकर उनकी इच्छा न रहनेपर भी छोटे भाईको राज्य सुख देना राम-सरीखे बड़े भाईका ही काम था।

इसके बाद प्रतिज्ञामें बँध जानेके कारण जब आपको भाई लक्ष्मणका त्याग करना पड़ा, उस समय श्रीरामके लिये लक्ष्मणका वियोग असह्य हो गया। वहाँपर कविने कहा है—

> विसृज्य लक्ष्मणं रामो दुःखशोकसमन्वितः।
> पुरोधसं मन्त्रिणश्च नैगमांश्चेदमब्रवीत्॥
> अद्य राज्येऽभिषेक्ष्यामि भरतं धर्मवत्सलम्।
> अयोध्यायाः पतिं वीरं ततो यास्याम्यहं वनम्॥
> प्रवेशयत सम्भारान् मा भूत् कालात्ययो यथा।
> अद्यैवाहं गमिष्यामि लक्ष्मणेन गतां गतिम्॥
>
> (वा० रा० ७। १०७। १—३)

'लक्ष्मणका त्याग करके श्रीराम दुःख और शोकमें निमग्न हो गये तथा पुरोहित, मन्त्री और शास्त्रज्ञोंको बुलाकर उनसे कहने लगे—मैं आज ही धर्मपर प्रेम रखनेवाले वीर भरतका अयोध्याके राज्यपर अभिषेक करूँगा और उसके बाद वनमें जाऊँगा। शीघ्र ही समस्त सामग्रियाँ इकट्ठी की जायँ, देरी न हो; क्योंकि मैं आज ही जिस जगह लक्ष्मण गया है, वहाँ जाना चाहता हूँ।'

इसपर भरतने राज्यकी निन्दा करते हुए कहा—'मैं आपके बिना पृथ्वीका राज्य तो क्या, कुछ भी नहीं चाहता; अतः मुझे भी साथ ही चलनेकी आज्ञा दीजिये।' इसके बाद भरतके कथनानुसार शत्रुघ्नको भी मथुरासे बुलाया गया और मनुष्य-लीलाका नाटक समाप्त करके अपने भाइयों-सहित श्रीराम परमधाम पधार गये।

श्रीरामके भ्रातृ-प्रेमका यह केवल दिग्दर्शनमात्र है। भाइयोंके लिये ही राज्य ग्रहण करना, भाई भरतके राज्याभिषेकके प्रस्तावसे परमानन्दित होकर अपना हक छोड़ देना, जिसके कारण राज्याभिषेक रुका, उस भाईकी माता कैकेयीकी पहलेकी भाँति ही भक्ति करना; मुक्तकण्ठसे भरतका गुण-गान करना, भरतपर शङ्का और क्रोध करनेपर लक्ष्मणको समझाना, लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर प्राणत्याग करनेके लिये तैयार हो जाना, समय-समयपर भाइयोंको पवित्र शिक्षा देना, स्वार्थ छोड़कर उनपर प्रेम करना, शत्रुघ्नसे जबरदस्ती राज्य करवाना, लक्ष्मणके वियोगको न सहकर परमधाममें पधार जाना—इत्यादि श्रीरामके आदर्श भ्रातृ-प्रेमपूर्ण कार्योंसे हम सबको यथायोग्य शिक्षा लेनी चाहिये।

पत्नीप्रेम और एकपत्नीव्रत

भगवान् श्रीरामका सीताजीके प्रति जो आदर्श प्रेम था, वह उनके महान् एकपत्नीव्रतका साक्षात् उदाहरण है। सीताजीकी प्रसन्नताके लिये ही आप उनको वनमें साथ ले जाते हैं और वहाँ नाना प्रकारके इतिहास, धर्मशास्त्र आदि सुनाकर उनको सुख पहुँचाते हैं। जब रावणद्वारा सीताजीका हरण हो जाता है, तब साधारण मानवकी तरह 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' (गीता ४। ११) (जो मुझे जैसे भजता है, उसको मैं वैसे ही भजता हूँ)—इस नीतिके अनुसार भाँति-भाँतिसे विलाप करते हुए अपनी विरह-वेदना प्रकट करते हैं—यहाँतक कि उनकी उस विरहदशाको देखकर जगज्जननी सतीतकको मोह हो जाता है। श्रीरामजी उन्मत्तकी भाँति—

> हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥
>
> (श्रीरा० च० मा० ३। २९। ४)

—आदि पुकारते हुए लताओं, वृक्षों, पक्षियों, पशुओं और भ्रमरोंकी पंक्तियोंसे सीताजीका पता पूछते हैं। आराधनपदे

लिये हुए सीताजीके वस्त्राभूषण जब सुग्रीवजी आपको देते तब आप उन्हें हृदयसे लगाकर चिन्ता करने लगते हैं—

'पट उर लाइ सोच अति कीन्हा ॥'

(वही, ४ । ४ । १)

जब हनुमान्‌जी लङ्का जाते हैं, तब उनके द्वारा आप जो सन्देश भेजते हैं, वह तो इतना सुन्दर और इतना ऊँचा है कि उसमें प्रेमका समस्त स्वरूप ही आ जाता है। वे कहते हैं—'हे प्रिये! मेरे और तुम्हारे प्रेमका तत्त्व जानता है एक मेरा मन और वह मन सदा रहता है तुम्हारे पास। बस, इतनेमें ही मेरे प्रेमका सार समझ लो।'

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

(वही, ५ । १४ । १—४)

महारानी जानकीजीके पातिव्रत धर्मके गौरवको और भी उज्ज्वल करनेके लिये प्रजारञ्जनके ब्याजसे जब राम उन्हें वनमें भेज देते हैं, तब पीछेसे अश्वमेधयज्ञमें सीताजीकी स्वर्ण-प्रतिमा बनवाकर आप अपने एकपत्नीव्रतका बड़ा ही पवित्र आदर्श उपस्थित करते हैं। धन्य!

सखाओंसे प्रेम

यों तो भगवान् सभीके परम सुहृद् तथा स्वाभाविक ही मित्र हैं। परंतु लीलामें वे मित्रोंके साथ कैसा व्यवहार करते हैं—यहाँ आज यही देखना है। मनुष्योंको तो सभी अपना मित्र बनाते हैं, भगवान्‌ने राक्षस और वानर-भालुओंतकको अपना सखा बनाकर उन्हें धन्य किया। हनुमान्‌जीकी प्रेरणासे दुःखमें डूबे हुए सुग्रीवको अग्निकी साखी देकर आप अपना मित्र बनाते हैं और उनका दुःख सुनते ही आपकी भुजाएँ फड़क उठती हैं और आप कहते हैं—

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥

(वही, ४ । ६)

तदनन्तर मित्रका धर्म बतलाते हुए आप कहते हैं—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥
जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

(वही, ४ । ६ । १—८)

मित्रके ये लक्षण सदा ध्यानमें रखनेयोग्य हैं। इसके बाद भगवान् सुग्रीवको आश्वासन देते हुए कहते हैं—

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

(वही, ४ । ६ । ५)

मित्र सुग्रीवके सुखके लिये बड़ा भारी उलाहना सहकर भी भगवान् उसके शत्रु भाई वालीका वध कर डालते हैं और सुग्रीवकी मैत्रीको निबाहते हैं।

निषादको सखा बनाकर इतना ऊँचा बना दिया कि स्वयं वसिष्ठजी महाराज उसे हृदयसे लगाकर मिलने लगे—

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू॥
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥

(वही, २ । २४१ । १)

जब भगवान् स्वयं किसी प्रकारका विचार न करके सखा-भावसे निषादको हृदयसे लगाकर मिलते हैं, तब वसिष्ठजी इस प्रकार मिले, इसमें क्या आश्चर्य है—

[illegible] निपट तामस अघ पसु समान बनचारी।
भेंट्यो हृदय लगाय प्रेमबस नहिं कुल जाति बिचारी॥

(विनयपत्रिका १६६ । १)

लङ्काविजय करके अयोध्या लौटनेपर अपने इन वानर-भालु और विभीषणादि सखाओंको बुलाकर उनसे गुरुजीके चरणोंमें प्रणाम कराते हैं और परिचय देते हुए आप कहते हैं—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥

(श्रीरा० च० मा० ७ । ७ । ४)

राज्याभिषेकके पश्चात् अपने इन सब मित्रोंको बुलाकर आपने कहा—

अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥
सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहउँ मोर यह बाना॥

(वही, ७ । १५ । ३-४)

फिर वस्त्राभूषण मँगवाकर तीनों भाइयोंसहित स्वयं भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने हाथोंसे उनको वस्त्राभूषण पहनाकर विदा किया।

भगवान्‌के उन बालसखाओंकी महिमा तो कह ही कौन सकता है, जिन्होंने श्रीअवधपुरीमें चारों भाइयोंके साथ खेलने-खानेका सौभाग्य प्राप्त किया था।

प्रजावत्सलता

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने सुन्दर बर्ताव और वात्सल्यपूर्ण क्रियाओंसे प्रजाके कितने अधिक प्रेमभाजन हो गये थे, इसका पता तब लगता है, जब उनके वनगमनकी तैयारी होती है। राज्याभिषेकके उत्सवसे तमाम प्रजामें आनन्द छा रहा है। प्रजामें हर्षका सागर उमड़ उठता है। अचानक दृश्य बदल जाता है। श्रीराम लक्ष्मण और सीताजीको साथ लेकर मुनिवेषमें वनको पधार रहे हैं। प्रजा इस दृश्यको देख न सकी। प्रजा उनके वियोगदुःखको सहनेमें अपनेको असमर्थ पाकर उनके साथ हो ली। श्रीरघुनाथजीने उन्हें बहुत प्रकारसे समझाया, परंतु प्रेमवश कोई भी अयोध्यामें रहना नहीं चाहता।

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं॥
जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥
(वही, २ । ८२ । १)

यह निश्चय करके बालक और बूढ़ोंको घरोंमें छोड़कर सब लोग उनके साथ हो लिये—

बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ।
(वही, २ । ८४)

आखिर श्रीरामजीको उन्हें सोते छोड़कर ही आगे बढ़ना पड़ा। जब श्रीभरतजी चित्रकूट जाने लगे, तब प्रजामें श्रीरामदर्शनकी इतनी उत्सुकता बढ़ी कि घरोंकी रखवालीके लिये किसीने घर रहना स्वीकार नहीं किया। जिसको घर रहनेके लिये कहा जाता, वही समझता मानो मेरी गर्दन कट रही है—

जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी॥
(वही, २ । १८४ । १)

प्रायः लोग भरतजीके साथ चित्रकूट गये।

जब श्रीरघुनाथजी लङ्का विजय करके लौटे, तब तो प्रजाके हर्षका पार न रहा। समाचार पाते ही वे सब-के-सब नर-नारी, जो जैसे बैठे थे, वैसे ही उठकर दौड़ पड़े। श्रीभगवान्‌को लक्ष्मणजी और जानकीजीसहित देखकर सब अयोध्यावासी हर्षित हो गये। उनकी वियोगजनित विपत्ति नष्ट हो गयी। सब लोगोंको प्रेमविह्वल तथा मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर देखकर भगवान् श्रीरामजीने एक चमत्कार किया। उसी समय कृपालु श्रीरामजी असंख्य रूपोंमें प्रकट हो गये और सबसे एक ही साथ यथायोग्य मिले। श्रीरघुवीरजीने कृपा-दृष्टिसे देखकर सब नर-नारियोंको शोकरहित कर दिया। इस प्रकार भगवान् क्षणमात्रमें सबसे मिल लिये। शिवजी कहते हैं—हे उमा! यह रहस्य किसीने नहीं जाना—

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना। उमा मरम यह काहुँ न जाना॥
(वही, ७ । ५ । २-४)

सच पूछिये तो प्रजाके सुख और संतोषके लिये ही श्रीरामजीने राज्यपद स्वीकार किया। वास्तवमें यही आदर्श है। जो प्रजाके सुखके लिये ही राजा बनता है, वही राजा यथार्थ राजा है। अवधवासियोंके भाग्यका तो कहना ही क्या है, जिनके प्रेम-परवश स्वयं भगवान् राजा बने हैं। शिवजी कहते हैं—

उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप॥
(वही, ७ । ४७)

आपकी प्रजावत्सलताका एक ऐसा उदाहरण है, जिसकी तुलना जगत्‌में कहीं नहीं है। जिन सीताजीके लिये आप वन-वनमें विलाप करते भटके, जिनके लिये रावणसे घोर युद्ध किया, उन्हीं सीताजीको निर्दोष समझते हुए भी केवल प्रजारञ्जनके लिये हृदयको अत्यन्त कठोर बनाकर आपने वनमें भेज दिया।

भक्तवत्सलता

भक्तवत्सलता तो भगवान्‌का विरुद जाना ही है। ऐसा कोई काम नहीं, जो भगवान् अपने भक्त या प्रेमीके लिये नहीं कर सकते। वस्तुतः भगवान्‌के अवतारका प्रधान हेतु भक्तोंपर अनुग्रह करना ही होता है—'परित्राणाय साधूनाम्' (गीता ४ । ८) जब भक्त भगवान्‌से मिलनेके लिये व्याकुल होकर उन्हें पुकारता है, तब भगवान्‌को स्वयं पधारना पड़ता है। दण्डकारण्यमें सुतीक्ष्ण नामक अगस्त्यजीके शिष्य एक मुनि रहते थे। वे श्रीरामजीके बड़े ही अनन्य भक्त थे। उन्हें

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भगवान्‌ने राजा दशरथके घर मनुष्यरूपमें अवतार लेना स्वीकार किया । फिर वहीं अन्तर्धान हो गये ।

श्रीरामचन्द्रजीका विवाह होनेके बाद जब वे अयोध्याको लौट रहे थे, उस समय रास्तेमें परशुरामजी मिले । श्रीराम विष्णुके अवतार हैं या नहीं, इसकी परीक्षा करनेके लिये उन्होंने श्रीरामसे भगवान् विष्णुके धनुषपर बाण चढ़ानेके लिये कहा तब श्रीरामचन्द्रजीने तुरंत ही उनके हाथसे दिव्य धनुष लेकर उसपर बाण चढ़ा दिया और कहा—'यह दिव्य वैष्णव बाण है । इसे कहाँ छोड़ा जाय ?' यह देख-सुनकर परशुरामजी चकित हो गये । उनका तेज श्रीराममें आ मिला । उस समय श्रीरामकी स्तुति करते हुए परशुरामजी कहते हैं—

अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम् ।
धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परंतप ॥
(वा० रा० १ । ७६ । १७)

'महाबाहु राम ! आपका कल्याण हो । इस धनुषके चढ़ानेसे मैं जान गया कि आप मधु-दैत्यको मारनेवाले, देवताओंके स्वामी, साक्षात् अविनाशी विष्णु हैं ।' इस प्रकार श्रीरामके प्रभावका वर्णन करके और उनकी प्रदक्षिणा करके परशुरामजी चले गये ।

रावणका वध हो जानेके बाद जब ब्रह्मासहित देवतालोग श्रीरामचन्द्रजीके पास आये और उनसे बातचीत करते हुए श्रीरामने यह कहा कि 'मैं तो अपनेको दशरथजीका पुत्र राम नामक मनुष्य ही समझता हूँ । मैं जो हूँ, जहाँसे आया हूँ—यह आपलोग ही बतावें ।' इसपर ब्रह्माजीने उनके सामने सम्पूर्ण रहस्य खोल दिया । वहाँ रामके महत्त्वका वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं—

भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः ।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित् ॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः ।
अजितः खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः ॥
(वा० रा० ६ । ११७ । १३-१५)

'आप साक्षात् चक्रपाणि लक्ष्मीपति प्रभु श्रीनारायणदेव हैं । आप ही भूत भविष्यके शत्रुओंको जीतनेवाले और एक शृङ्गधारी वराहभगवान् हैं । राघव ! आप आदि, मध्य और अन्तमें सत्यरूप अविनाशी ब्रह्म हैं । आप सम्पूर्ण लोकोंके परमधर्म चतुर्भुज विष्णु हैं । आप ही अजित पुरुष, पुरुषोत्तम, हृषीकेश तथा शार्ङ्ग-धनुष एवं खड्ग धारण करनेवाले विष्णु हैं और आप ही महाबलवान् कृष्ण हैं ।'

इसी तरह और भी बहुत कुछ कहा है । वहीं राजा दशरथ भी लक्ष्मणके साथ बातचीत करते समय श्रीरामकी सेवाका महत्त्व बतलाकर कहते हैं—

एतत् तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मनिर्मितम् ।
देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परंतपः ॥
अवाप्तं धर्मचरणं यशश्च विपुलं त्वया ।
एवं प्रमुदिताम्यां वैदेह्या सह सीतया ॥
(वा० रा० ६ । ११९ । ३१-३२)

'सौम्य ! ये परंतप राम साक्षात् वेदवर्णित अविनाशी अव्यक्त ब्रह्म हैं । ये देवोंके हृदय और परम रहस्यमय हैं । जनकनन्दिनी सीताके सहित इनकी सावधानीसे सेवा करके तुमने पवित्र धर्मका आचरण और बड़े भारी यशका लाभ किया है ।'

इसके सिवा और अनेक बार ब्रह्माजी, देवता और महर्षियोंने श्रीरामके अमित प्रभावका यथाशक्य वर्णन किया है । मनुष्य-लीला समाप्त करके परमधाममें पधारनेके प्रसङ्गमें भी यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि श्रीराम साक्षात् पूर्णब्रह्म परमेश्वर थे । अतः वाल्मीकीय रामायणको प्रामाणिक ग्रन्थ माननेवाला कोई भी मनुष्य श्रीरामके ईश्वर होनेमें शङ्का कर सके, ऐसी गुंजाइश नहीं है ।

उपसंहार

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंकी गाथा गाकर कौन पार पा सकता है । वे परम दयालु, परम प्रेमी, परम सुहृद्, परम संयमी, परम शरणागतवत्सल, महान् वीर्यवान्, महान् बुद्धिमान्, शस्त्रविद्याविशारद, सौन्दर्य-माधुर्यके निधि, कान्तिमान्, धृतिमान्, जितेन्द्रिय, अत्यन्त गम्भीर, परम विनयी, महान् धीर, अनुपम प्रियदर्शन, मधुरभाषी, महान् क्षमाशील, परम उदार, परम ब्रह्मण्य, संगीतशास्त्रनिपुण, आदर्श सत्यवादी और सत्यव्रती, कुसुमसे भी कोमल, किंतु धर्मसंरक्षणमें वज्रसे भी कठोर, परम यशस्वी, महान् वाग्मी, सर्वशास्त्र-सम्पन्न, महान् प्रतिभाशाली, आदर्श पुत्र, आदर्श शिष्य, आदर्श पति, आदर्श भाई, आदर्श स्वामी, आदर्श राजा, आदर्श मित्र, आदर्श शूरवीर, आदर्श आश्रमधर्मी, आदर्श गुणवान्, आदर्श सदाचारी, आदर्श धर्मव्रती, आदर्श त्यागी, नीतिशास्त्रज्ञ, साधुजनप्रिय, परम कृतज्ञ, धर्मज्ञ, सर्वप्रिय, सर्वान्तर्यामी और सर्वशक्तिमान् हैं ।

सत्यवादिताके सम्बन्धमें तो उन्होंने स्वयं घोषणा की है—'रामो द्विर्नाभिभाषते' (वा० रा०, अयोध्या० १८ । ३०)—राम दो बार नहीं बोलते । अर्थात् एक बार जो कह दिया, वही प्रमाण हो गया ।'

धर्मपरायणताका क्रियात्मक उदाहरण तो उनका समस्त जीवन ही है । साक्षात् भगवान् होनेपर भी आप धर्मकी मर्यादारक्षाके लिये नियमितरूपसे संध्या-अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं, वर्णाश्रमके अनुसार ब्राह्मणों, ऋषियों तथा गुरुजनोंका पूजन करते हैं, यज्ञ-यागादि करते हैं, मन्दिरोंकी स्थापना और मूर्तिपूजन करते हैं तथा श्राद्ध-तर्पणादि क्रियाएँ सावधानीसे करते हैं ।

चित्रकूटमें भरतजीके साथ गये हुए ऋषियोंमें जाबालि नामक एक ऋषि थे । वे महाराज दशरथजीकी सभाके एक प्रधान सदस्य थे । श्रीरामजीको अयोध्या लौटनेकी बात समझाते हुए उन्होंने कुछ ऐसी बातें कहीं, जो नास्तिकवादका समर्थन करनेवाली थीं । उनकी बातोंको सुनकर मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम उनपर रुष्ट हो गये और उन्होंने मुनिको फटकारकर बहुत कुछ कहा—

> निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्
> यस्त्वामगृह्णाद् विषमस्थबुद्धिम् ।
> बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं
> सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम् ॥
>
> (वा० रा०, अयो० १०९ । ३३)

'इस प्रकारकी बुद्धिसे प्रेरित होकर आचरण करनेवाले तथा पक्के नास्तिक एवं धर्ममार्गसे हटे हुए आपको जो मेरे पिताजीने अपना याजक बनाया, मैं उनके इस कार्यकी निन्दा करता हूँ, क्योंकि आपकी बुद्धि गलत रास्तेपर है ।'

इन वचनोंसे पता लगता है कि महाराज श्रीरामचन्द्रजी नास्तिकवादको कितना बुरा समझते थे । नास्तिकवादकी निन्दामें आपने अपने उन पिताके कार्यकी भी निन्दा की, जिनके वचनोंकी रक्षाके लिये आप वनवासी हुए थे ।

अन्तमें जाबालि मुनिके यह कहनेपर कि मैं नास्तिक नहीं हूँ । मैंने तो केवल आपको लौटानेके लिये तर्कके तौरपर ये बातें कही थीं, यह मेरा मत नहीं है ।' और गुरु वसिष्ठके द्वारा जाबालिजीके इस कथनका समर्थन होनेपर भगवान् श्रीरघुनाथजी शान्त हुए ।

भगवान् श्रीरामजीके सभी भाव विलक्षण हैं । आपका जन्म, बालभाव, कुमारभाव, मिथिलाका मधुरभाव, वनका तपस्भाव, लङ्काका वीरभाव, राजभाव, प्रेमभाव—सभी आदर्श और महान् अनुकरणीय हैं । आपके आदर्श जीवनसे जो लाभ नहीं उठाता, वह बड़ा ही मन्दभागी है ।

श्रीरामचन्द्रजीके सभी गुण और आचरण आदर्श हैं । उनमें एक भी ऐसी बात नहीं है जो परम आदर्श और अनुकरण करनेयोग्य न हो । कहीं कोई बात असंगत या अपने मनके प्रतिकूल प्रतीत होती है तो उसमें प्रधान कारण है श्रद्धाकी कमी । श्रद्धा कम होनेसे भगवान्के तत्त्व, रहस्य, गुण और प्रभावका ज्ञान नहीं होता, इसी कारण उनकी लीलामें भ्रमवश मनमें शङ्का हो जाती है । कोई लीला न समझमें आवे तो उसके अतिरिक्त अन्यान्य आचरणोंका अनुकरण और उनके उपदेशोंका पालन अवश्य ही करना चाहिये । भगवान्ने अपने भाइयोंको तथा प्रजाको जो परम सुन्दर उपदेश दिये हैं, उनका अक्षरशः पालन करनेकी चेष्टा करनी चाहिये और प्रभुकी आज्ञा या उनके आचरणके अनुसार यत्किंचित् भी चेष्टा होने लगे तो इसमें प्रभुकी ही कृपा समझनी चाहिये । तथा भगवान्की इस कृपाका बारंबार दर्शन और अनुभव करते हुए क्षण-क्षणमें मुग्ध होना चाहिये । महाराजकी प्रत्येक लीलामें प्रेम, दया, क्षमा, सत्य आदि गुण भरे हैं, उनका अपरिमित प्रभाव सब लोकोंमें व्याप्त है—यह निश्चय करके प्रत्येक क्रियामें उनके आदर्श व्यवहार, उनके महान् गुण, उनके प्रभाव, तत्त्व और रहस्यका चिन्तन करते हुए तथा उनकी अमृतमय रूपमाधुरीसे युक्त मनोमोहिनी मूर्तिका अनवरत ध्यान करते हुए सदा प्रसन्न होना चाहिये । वे पुरुष धन्य हैं, जो साक्षात् पूर्णब्रह्म परमेश्वर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी महाराजके नाम, रूप, गुण, चरित्र, प्रभाव, तत्त्व और रहस्यको समझ-समझकर प्रेम और आनन्दमें तन्मय हुए संसारमें उनका अनुकरण करते हुए विचरते हैं । वह भूखण्ड धन्य है, जहाँ ऐसे पुरुष निवास करते हैं । ऐसे साक्षात् कल्याणमय पुरुषोंका जो दर्शन, भाषण, स्पर्श, स्मरण और चिन्तन करते हैं, वे भी पवित्र हो जाते हैं । ऐसे पुरुषोंके जहाँ चरण टिकते हैं, वह देश तीर्थ बन जाता है और वहाँ प्रेम, आनन्द और शान्तिका स्रोत बहने लगता है । वह कुल धन्य, जगत्पूज्य और परमपवित्र है, जहाँ ऐसे भगवत्परायण पुरुषरत्न उत्पन्न होते हैं । भगवान् शिवजी महाराज कहते हैं—

> सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत ।
> श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत ॥
>
> (श्रीरामच० मा० ७ । १२७)

भुवनमङ्गल भगवान् श्रीराम

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥
(मानस १ । १११ । २)

१—'मङ्गल' शब्दका अर्थ तथा परिभाषा

कल्याण, मङ्गल, शिव, भद्र, शुभ, श्रेयस्, निःश्रेयस्, स्वस्ति आदि शब्द पर्यायवाची हैं—'श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम्।' यद्यपि इन शब्दोंसे 'मङ्गल' शब्दका भाव एवं अर्थ सर्वथा सुस्पष्ट हो जाता है, तथापि शब्दोंकी स्वतन्त्र गतियाँ भी होती हैं। 'मगि—सर्पणे मङ्गयरे च।' (भ्वा० से० १४५) धातुसे उणादि 'अलच्' (५ । ७०, दशपादी ८ । १२२) प्रत्यय लगानेसे 'मङ्गल' शब्द निष्पन्न होता है*, तब इसके भाग्यकर, शोभाकर, सुख-प्राप्ति-धन-वृद्धिकारी एवं अभीष्टसिद्धिकारी आदि अर्थ भी होते हैं।† पर एक साथ ये सब अशेष भावनाएँ—परमात्मा, ईश्वर एवं भगवान् राममें ही पूर्णतया घटित होते हैं, अन्यत्र तो इन पदार्थोंकी माङ्गलिकता गौणतः ही है—

सुनु सखा रघुबंसमनि मंगल मोद निधान।
(श्रीरामच० मा० ७ । १००)

यों लोकमें ५ तथा ८ मङ्गलकी वस्तुएँ परम प्रसिद्ध हैं। यथा—

लोकेऽस्मिन् मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः।
हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः॥
(मत्स्यपुराण २०५ । ७४-७५)

अथवा—

मृगराजो वृषो नागः कलशो व्यजनं तथा।
वैजयन्ती तथा भेरी दीप इत्यष्टमङ्गलम्॥
(आदित्यपुराण, शब्दकोषादिविविध)

—इत्यादि (श्लोकों) के अनुसार गौ, ब्राह्मण, अग्नि, राजा, दधि, दूर्वा, घृत, सुवर्ण, शङ्ख, जल, सिंह, पक्षी, हाथी, बैल, जलपूर्ण कलश, पंखा, पुष्प-माला, दीपक, ध्वज, भेरी आदि प्रायः इस लोकके मङ्गल पदार्थ हैं। किंतु सर्वमङ्गल, लोक-परलोक—सर्वत्र मङ्गलमयी तो परमात्मा ही हैं। इसीलिये गौरीसहस्रनाम, ललितासहस्रनाम, देवी-सहस्रनाम, कालिकासहस्रनाम, दुर्गा-सप्तशती आदिमें भगवती पार्वतीका नाम 'सर्वमङ्गला'‡ आया है। इसी प्रकार सीतासहस्रनाम, रामसहस्रनाम, वासुदेवसहस्रनाम आदिमें सीता एवं रामका नाम क्रमशः 'सर्वमङ्गल' एवं 'सर्वमङ्गला' आया है। इसी प्रकार भगवान् गणपतिदेव भी आदि-पूज्य तथा परम मङ्गलदेव हैं। इनकी पूजा-वन्दना-स्तुति सभी मङ्गलकार्यों, ग्रन्थारम्भ आदिमें की जाती है। प्रायः 'श्रीगणेशाय नमः' पद-लिखकर भी पत्र-पुस्तकादिका मङ्गल होता है।

२—मङ्गल-सार-सर्वस्व

किंतु वेद-पुराणोंमें यह प्रसिद्ध है कि ये भगवान् गणपति भी श्रीरामाराधनसे ही—श्रीरामनामके स्मरणमात्रसे प्रथम पूज्य, परममङ्गलमयस्वरूप, आदिपूज्य हो गये—

महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥
(श्रीराम० १ । १८ । २)

इस तरह भी सब मङ्गलोंके मूलमें परममङ्गल भगवान् राम ही दीखते हैं। भगवान्‌के गर्भमें आते ही विश्व मङ्गल प्रकाशोंसे युक्त हो गया था—

जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥
(वही, १ । १८८ । १)

उनके जन्मोत्सव-प्रकट होने समय सम्पूर्ण विश्व मङ्गलमय हुआ। भवभूतिके शब्दोंमें भगवान् राम दोनों कुलों (जनक एवं रघु) के मङ्गलमूल थे—

जनकानां रघूणां च यत् कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्॥
(उत्तररामचरित १ । ४१)

---

* 'मङ्गलच्।' ध्यान रहे, यही सूत्रसे 'मन्दिकोल्कल'ने अपने ग्रन्थको पूर्णकर समाप्तिमें मङ्गल-पाठ भी किया है। (कुछ लोग उणादिके सभी प्रत्ययोंको (महाभाष्य तथा वैयाकरण 'प्रदीप' ३ । १ । १) और कुछ लोग पाणिनिको ही ('प्रक्रियासर्वस्व', 'उणादिगण' तथा 'सिद्धान्तकौमुदी' १२ । ७५ आदि) इसका रचयिता मानते हैं।

† अंग्रेजी कोषकारोंने भी इस शब्दके—auspicious, lucky, propitious, prosperous, bliss, happiness आदि अर्थ किये हैं। इसके अतिरिक्त मङ्गल ग्रह, भौमवार, दही अक्षत एवं सर्षप, रौद दूर्वा आदि इसके अन्य विभिन्न अर्थ भी होते हैं।

‡ (क) सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके॥
(सप्तशती, अ० ११)

(ख) मंगल भवानी। (पार्वती मङ्गल १८)

—यहाँतक कि भगवान् जब वनमें पहुँचते हैं, तब सारे दोषों—अमङ्गलोंका घर वह वन भी मङ्गल-मूल बन जाता है—

मंगलरूप भयउ बन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते॥
(राम० मानस ३।१४।१)

सिद्ध महात्मा लोग भी मङ्गलमय पशु, पक्षी, भ्रमर आदिका रूप धारणकर मङ्गलमय प्रभुकी सेवा करने लग जाते हैं—

मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु कै सेवा॥
(वही, ४।१२।२)

फिर तो उस वनकी मङ्गलमयताका किसी प्रकार वर्णन ही सम्भव नहीं—

सो बनु सैलु सुभायँ सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन॥
महिमा कहिअ कवनि बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू॥
(वही, २।१३८।२)
—इत्यादि।

इसी प्रकार भगवान्‌की पूजा, स्तुति, कथा, ध्यान, प्रणाम, दर्शन—सभी एक-से-एक बढ़कर मङ्गलमूल हैं—

'मंगल मूल प्रनाम जासु जग, मूल अमंगल के खने।'
(गीतावली ५।४०।२)

'तुलसी सुमिरत नाम सबनि को मंगलमय नभ जल थली।'
(वही, ५।४१।४)

'देखेउँ राम सुमंगल मूल।'
(श्रीरा० च० मा० २।२२९।२)

इसीलिये पार्वतीसहित भगवान् शंकर इनका सदा ही ध्यान करते हैं—

मंगल* भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥
(वही, १।९।१)

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥
(वही, १।११४।१)

३–निष्कर्ष

सच बात तो यह है कि यह सारा जगजाल ही अमङ्गल है। इसमें केवल संत एवं भगवान्, भगवन्नामादि ही मङ्गलरूप हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥
(वही, ७।४६।१)
—आदि

यदि यह बात किसीके मनमें ठीक तरहसे बैठ जाय तो सचमुच उसका सदा मङ्गल सम्पन्न हो गया और उसका वास्तविक कार्य सिद्ध हो गया। अतः बुद्धिमान् मनुष्यको निरन्तर तदर्थ ही प्रयत्न करना चाहिये।

अस्तु! कौसल्या, सीता, वाल्मीकि एवं तत्तत्सम्प्रदायाचार्यों एवं टीकाकारों आदिके मङ्गलाचरण तो प्रसिद्ध हैं ही, हम भी अब निम्न श्लोकसे मङ्गल करते हुए इस वाक्य-पुष्पोपहारको मङ्गलमय भगवान् श्रीरामके ही चरणोंमें समर्पितकर इसका उपसंहार करते हैं—

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणात्मने।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम्॥

---

* यह 'मङ्गल' शब्द 'मानस'में २५० बारके लगभग आया है। देखिये डा० श्रीसूर्यकान्तकी 'रामायण-शब्दानुक्रमणी' तथा श्रीरघुराज भगवानदास संकलित 'मानस-शब्द-सागर', पृ० ५७६-७७ और ७१४-१५ आदि। पर इनमें भी इस शब्दका अधिकांश प्रयोग तो मङ्गलमय प्रभु श्रीराम, उनके नाम, चरित्र आदिके लिये ही हुआ है।

यथा—

'मंगल मूल राम सुत जासू।' (मानस० १।१।१) रामकथा कलि मंगल करनी॥ (वही, १।९।१०)
—आदि

ऐसे ही गीतावली, विनयपत्रिका आदिमें भी प्रयोग भरे पड़े हैं और 'पार्वती-मंगल' 'जानकी-मंगल' आदि ग्रन्थोंके तो नाम ही 'मंगल' शब्दसे युक्त हो रहे हैं। 'जपहि नाम सुमंगल हेतु सकल मंगल किये।' ([illegible], ११८) आदि अनेक प्रयोग तो स्वाभाविक ही हैं।

भगवान् श्रीरामका दिव्य आदर्श

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम्० ए०, साहित्याचार्य)

'नहि रामात् परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः ॥'

(अयोध्याकाण्ड ४४ । २६)

वाल्मीकि-रामायणमें सुमित्राजीकी यह उक्ति रामचन्द्रके शीलका उज्ज्वल दृष्टान्त प्रस्तुत करती है । रामसे बढ़कर सन्मार्गमें स्थित कोई दूसरा व्यक्ति संसारमें नहीं है । सच्ची बात तो यह है कि रामचन्द्रके द्वारा आचरित, समादृत तथा प्रतिष्ठापित पन्थ ही 'सत्पथ' है और उससे पृथक् तथा विभिन्न इतर मार्ग 'कुपथ' है—'कुपथं तं विजानीयाद् गोविन्दरहितागमम् ।' लोकदृष्ट्या विरुद्ध प्रतीत होनेवाला भी, सामान्य दृष्टिसे अनाचरणीय भी मार्ग यदि रामचन्द्रके द्वारा अनुसृत तथा अनुगत हो, तो वह कथमपि अनाचरणीय और विरुद्ध नहीं माना जा सकता । रामचरितके गम्भीर अनुशीलन करनेवाले आलोचकोंसे यह तथ्य कथमपि निगूढ़ नहीं रह सकता । इस लेखमें वाल्मीकि-रामायणमें अङ्कित रामचन्द्रके शील तथा सौन्दर्यके कतिपय तथ्य संक्षेपमें प्रस्तुत किये जाते हैं ।

वाल्मीकिने अपने रामायणमें रामचन्द्रके सौन्दर्य तथा शारीरिक सम्पत्तिका समग्र वर्णन बड़ी पूर्णता, स्निग्धता तथा वैशद्यके साथ किया है; परंतु आश्चर्यसे कहना पड़ता है कि उन्होंने भगवती जनकनन्दिनीके दैहिक सौन्दर्यका वर्णन कहीं भी नहीं किया है । सीताके उस कमनीय सौन्दर्यकी एक झाँकी भी झाँकी देनेमें स्थित होनेवाला यह महाकवि उसकी अगाधता, गम्भीरता तथा अनाख्येयताकी ओर स्पष्ट संकेत करता है । उस अनाख्येय सौन्दर्यकी यह अपनी शाब्दिक अभिव्यक्तिके द्वारा आख्या देना उचित नहीं समझता । तो क्या वाल्मीकि-रामायणमें भगवती जानकीकी रूपमाधुरीकी छवि पाठकोंके माध्यमद्वारा चर्चित नहीं होती ? होती है; परंतु कविद्वारा नहीं, जानकी-द्वारा ही । युद्धकाण्डके ४८वें सर्गमें मायारचित निहत राम-चन्द्रका मुण्डद्वारा अपने नेत्रोंसे साक्षात् कर दुःखिनी सीता रामने रूपका स्वयं वर्णन करती है—'जिन शुभलक्षणोंके द्वारा नारी वैधव्य भोगती है, उनका तो मेरे शरीरमें नितान्त अभाव है । मेरे शरीरके शुभ लक्षण मेरे सौभाग्य, कीर्ति-मत्त्व तथा सिंहासनाधिरोहणके परम परिचायक हैं—ऐसी बात कन्या-लक्षणोंके ज्ञाता सामुद्रिकोंने बतायी है'—

केशाः सूक्ष्माः समा नीला भ्रुवौ चासंहते मम ।
वृत्ते चारोमके जङ्घे दन्ताश्चाविरला मम ॥
स्तनौ चाविरलौ पीनौ मामकौ मग्नचूचुकौ ।
मग्ना चोत्सेधिनी नाभिः पार्श्वोरस्कं च मे चितम् ॥
मम वर्णो मणिनिभो मृदून्यङ्गरुहाणि च ।
प्रतिष्ठितां द्वादशभिर्मामूचुः शुभलक्षणाम् ॥
समग्रयवमच्छिद्रं पाणिपादं च वर्णवत् ।
मन्दस्मितेत्येव च मां कन्यालक्षणिका द्विजाः ॥

(वाल्मीकि०, युद्ध० ४८ । ९, ११—१४)

'मेरे सिरके बाल महीन, बराबर और काले हैं । भौंहें परस्पर जुड़ी हुई नहीं हैं । मेरी पिंडलियाँ (घुटनोंसे नीचेके भाग) गोल-गोल तथा रोमरहित हैं और मेरे दाँत भी परस्पर सटे हुए हैं । ××मेरे दोनों स्तन परस्पर सटे हुए और स्थूल हैं । इनके अग्रभाग भीतरको ओर दबे हुए हैं । मेरी नाभि गहरी और उसके आसपासके भाग ऊँचे हैं । मेरे पार्श्वभाग तथा छाती मांसल हैं ⋯ । मेरी अङ्गकान्ति सरावी हुई मणिके समान उज्ज्वल है । शरीरके रोएँ कोमल हैं तथा पैरोंकी दसों अँगुलियाँ और दोनों तलवे—ये बारहों पृथ्वीसे अच्छी तरह सट जाते हैं । इन सबके कारण लक्षणज्ञोंने मुझे शुभलक्षणा बताया था । मेरे हाथ-पैर लाल एवं उत्तम कान्तिसे युक्त हैं । उनमें जौकी लम्बी रेखाएँ हैं तथा मेरे हाथोंकी अँगुलियाँ जब परस्पर सटी होती हैं, उस समय उनमें तनिक भी छिद्र नहीं रह जाता है । कन्याके शुभलक्षणोंको जाननेवाले विद्वानोंने मुझे मन्द-मुसकानवाली बताया था ।'

सीताद्वारा दैन्य प्रसङ्गमें यह वर्णन क्या किसीके चित्तमें किसी प्रकारकी विरक्ति उत्पन्न करनेमें समर्थ हो सकता है ? महाकविके इस मनोवैज्ञानिक सूझकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है । वे स्वयं मौन रहकर सीताके सौन्दर्यकी सूक्ष्मता तथा रिक्तताकी रुचिर अभिव्यक्ति यहाँ कर रहे हैं ।

परंतु रामचन्द्रके शारीरिक सौन्दर्यके वर्णनमें वाल्मीकि मौन नहीं, मुखर हैं; अपने हार्दिक भावकी अभिव्यक्तिके लिये उन्होंने बहुत कुछ लिखा है । रामकी महत्ताके

वर्णनका कोई भी अवसर वे हाथसे जाने नहीं देते । बालकाण्डका प्रथम सर्ग ही, जो 'मूलरामायण'के नामसे प्रख्यात है, विपुलांस, कम्बुग्रीव, महाहनु, महोरस्क, गूढजत्रु, आजानुबाहु, पीनवक्षा आदि विशेषणोंद्वारा रामचन्द्रकी दैहिक सम्पदाका संकेत करता है । इसका विस्तृत रूप हमें सुन्दरकाण्डके ३५वें सर्गमें उपलब्ध होता है, जब अशोकवाटिकामें एकाकिनी जानकीको अपने रामदौत्यकी प्रतीतिके लिये मारुतनन्दन हनुमान्ने रामचन्द्रके शरीरका सामुद्रिकशास्त्रकी दृष्टिसे विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है (श्लोक ८ से लेकर श्लोक २२ तक) । एक-दो श्लोक उद्धृतकर उस दैहिक सम्पत्का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

> त्रिस्थिरस्त्रिप्रलम्बश्च त्रिसमस्त्रिषु चोन्नतः ।
> त्रिताम्रस्त्रिषु च स्निग्धो गम्भीरस्त्रिषु नित्यशः ॥
> त्रिवलीवांस्त्र्यवनतः..............
>
> (सुन्दरकाण्ड ३५ । १७-१८)

"भगवान् रामके तीन अङ्ग (ऊरु, मणिबन्ध तथा मुष्टि) स्थिर थे । तीन अङ्ग प्रलम्ब थे (भ्रू=भौंह, मुष्क=अण्डकोष तथा बाहु) । तीन अङ्ग—बराबर थे, न कोई ऊँचा था, न नीचा (केशाग्र=केशका सिरा, वृषण=अण्डकोष और जानु) । तीन अङ्ग उन्नत—उठे हुए थे (नाभिका भीतरी भाग, कुक्षि तथा वक्षःस्थल) । तीन अङ्ग रक्तवर्णके थे (नेत्रान्त=आँखका कोना, हाथका तलवा तथा पैरका तलवा); तीन अङ्ग स्निग्ध—चिकने थे (पादरेखा, केश तथा लिङ्गमणि) । तीन वलियाँ (रेखा) रामके शरीरमें थीं—उदरमें तथा गलेमें । तीन अङ्गोंमें निम्नता भी अर्थात् इन अङ्गोंमें झुकाव था । पादतलका मध्यभाग निम्न था (जिसके पदतलमें निम्नता नहीं होती, वह व्यक्ति 'चमरपद' कहलाता है तथा [illegible] दौड़नेके लिये—पुलिस तथा सेनामें—सर्वथा अयुक्त समझा जाता है)। पादरेखाकी निम्नता भी तथा स्तनचूचुक निम्न थे ।" इस प्रकार शरीरके 'विग्रह' का यह व्यापक वर्णन दृष्टान्तके लिये पर्याप्त है । सामुद्रिक लक्षणकारोंद्वारा व्याख्यात शरीरके समस्त लक्षणोंका पुञ्ज रामचन्द्रके देहको उद्दीप्त बना रहा था । फलतः रामचन्द्रका शरीर सुन्दरतामें, सुडौलपनमें, बनावटमें सर्वथा आदर्श था—वाल्मीकिके वर्णनका यही तात्पर्य है ।

रामचन्द्रकी अलौकिक सुन्दरताका अनुमान इसी बातसे लगाया जा सकता है कि रामके दूर चले जानेपर, आँखसे ओझल हो जानेपर भी, कोई भी व्यक्ति न तो अपने मनको उनसे खींच सकता था और न अपने नेत्रोंको । जिसने रामको न देखा और रामने जिसे नहीं देखा—ये दोनों सब लोकोंमें निन्दाके पात्र होते हैं । इतना ही नहीं, दूसरोंद्वारा की गयी निन्दाको हम सह सकते हैं, परंतु न देखनेपर अपनी ही आत्मा धिक्कारने लगती है—हाय ! हम ऐसे अभागे निकले कि उन रामचन्द्रको देखकर हमने न अपने नेत्रोंको धन्य बनाया, न जीवनको सफल बनाया । सफलताकी कुंजी 'रामदर्शन' में संनिहित है—'रामदर्शन' दोनों अर्थोंमें जीवनके साफल्यका हेतु है—रामकर्तृक दर्शन तथा रामकर्मक दर्शन । इन मञ्जुभावोंकी झाँकी प्रस्तुत करनेवाले इन पद्योंको पढ़िये—

> न हि तस्मान्मनः कश्चिच्चक्षुषी वा नरोत्तमात् ।
> नरः शक्नोत्यपाक्रष्टुमतिक्रान्तेऽपि राघवे ॥
> यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति ।
> निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हते ॥
>
> (वा० रा० २ । १७ । १३-१४)

वाल्मीकिके द्वारा चित्रित रामचरित्र [illegible] करके ही साहित्य-जगत्में नायक तथा उसके [illegible] गुणोंकी कल्पनाका प्रथम प्रबोध हुआ । भरतके [illegible] आठ सात्त्विक गुणोंका सामञ्जस्य [illegible] है—शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, स्थैर्य, तेज, [illegible] तथा औदार्य (दशरूपक २ । १०-१४) । ये [illegible] आदर्श नायक श्रीरामचन्द्रके गुणोंके [illegible] परिणाम हैं । राज्याभिषेकके लिये [illegible] तथा [illegible] ही ओर जंगलमें निवासके लिये निर्देश [illegible] किसी प्रकारकी विक्रिया लक्षित नहीं हुई । [illegible] उनके चित्तमें उल्लास था और न [illegible] विषाद था । कारण होनेपर [illegible] निर्देश साहित्यकारोंने [illegible] द्वारा किया है । 'गाम्भीर्यं यत्प्रभावेन विकारो नोपलक्ष्यते' ([illegible] २ । १२) । इसी प्रकार [illegible] है । तात्पर्य यह है कि [illegible] है और [illegible] काव्यके नायक हैं—[illegible] । वे [illegible] नायकके प्रतिनिधि हैं । [illegible] रामायणके विवेचनसे [illegible] उदित हुई, उसके [illegible] के गुणोंका [illegible] हुई है ।

रामके दिव्य गुणोंकी झाँकी कितनी मधुर और सुन्दर है—

> स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं च भाषते ।
> उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥
> कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति ।
> न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया ॥
> बुद्धिमान् मधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः ।
> वीर्यवान्न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः ॥
>
> (वा० रा० २ । १ । १०-११, १३)

तात्पर्य है—रामचन्द्र सर्वदा शान्तचित्त रहते थे। वे बड़ी कोमलता—मृदुताके साथ बोलते थे। वे भेंट होनेपर पहले ही बोलते थे—दूसरेके बोलनेकी प्रतीक्षा नहीं करते थे। उनसे कोई कितना भी रूखा और कड़ा क्यों न बोले, वे उसका उत्तर ही नहीं देते थे।

वे किसी प्रकार किये गये—भूलचूकमें किये गये—*एक भी उपकारसे तुष्ट हो जाते थे, परंतु* सैकड़ों अपकारोंकी भी उन्हें स्मृति नहीं रहती थी; क्योंकि उन्होंने अपने आपको वशमें कर रखा था।

वे बुद्धिमान् थे तथा बोलनेकी कलामें दक्ष थे—मधुर तथा प्रिय बोलते थे। वीर्यसे सम्पन्न थे, किंतु अपने महान् वीर्यके कारण वे कभी गर्वका अनुभव नहीं करते थे। वे कभी झूठ नहीं बोलते थे। रामकी अपनी प्रतिज्ञा थी—'रामो द्विर्नाभिभाषते ।' (अयोध्या०, १८ । ३०)—'राम कोई बात दो बार नहीं कहते थे।' एक बार जो कह दिया, कह दिया। वह अमिट हो गया—पाषाणके ऊपर खिंची रेखाकी तरह। इसीलिये प्रजाओंके साथ उनका सम्बन्ध बड़ा ही मधुर था। स्वाभाविक उभयमार्गी थी। रामका अनुराग प्रजाजनके ऊपर जैसा था, वैसा ही प्रेम प्रजाजनका रामके ऊपर था—

> अनुरक्तः प्रजाभिश्च प्रजाश्चाप्यनुरज्यते ॥
>
> (वही, २ । १ । १४)

रामचन्द्रमें दूसरोंके मनोभावको समझनेकी विलक्षण शक्तिका परिचय हमें मिलता है। सुमन्त्र रामचन्द्रसे उनके साथ वन-गमनके लिये जब आग्रह करने लगे, तब रामचन्द्रने अपनी मनोवैज्ञानिकताका सूक्ष्म परिचय देते हुए यह वचन कहा था—

> नगरीं त्वां गतं दृष्ट्वा जननी मे यवीयसी ।
> कैकेयी प्रत्ययं गच्छेदिति रामो वनं गतः ॥
> विपरीते तु दृष्टेऽस्मिन् वनवासं गते मयि ।
> राजानं मन्येत मिथ्यावादीति धार्मिकम् ॥
>
> (वा० रा० २ । ५२ । ६१-६२)

सुमन्त्र ! आपकी सद्भावनाको मैं जानता हूँ, तथापि आपको साथ ले चलना मैं उचित नहीं समझता। मेरी कनिष्ठ माता कैकेयी जब अयोध्यामें तुम्हें लौटकर आया देखेंगी, तब उन्हें विश्वास होगा कि राम यथार्थतः वन गये हैं। अन्यथा मेरे वन जानेपर भी उन्हें संतोष नहीं होगा और राजा दशरथको मिथ्यावादी ही मानती रहेंगी। यह नहीं होना चाहिये।' कैकेयीके मनोभावका यह यथार्थ परिचय है।

इतना होनेपर भी वे कैकेयीकी निन्दा कथमपि सह नहीं सकते थे। अरण्यकाण्डका एक प्रसङ्ग है। १६वें सर्गमें हेमन्तकी रमणीय ऋतुके समय लक्ष्मण रामचन्द्रके साथ अयोध्याकी चर्चा बड़ी आत्मीयताके साथ कर रहे थे। उसी समय उन्होंने भरतके सच्चरित्र तथा कैकेयीके दुष्ट स्वभावका स्पष्ट उल्लेख करते समय एक मार्मिक बात कह दी—

> न पितरमनुवर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति ।
> ख्यातो लोकप्रवादोऽयं भरतेनान्यथा कृतः ॥
> भर्ता दशरथो यस्याः साधुश्च भरतः सुतः ।
> कथं नु साम्बा कैकेयी तादृशी क्रूरदर्शिनी ॥
>
> (वा० रा० ३ । १६ । ३४-३५)

'लोकमें प्रवाद प्रचलित है कि मनुष्य पिताके स्वभावका अनुवर्तन न कर माताके स्वभावका अनुवर्तन करता है। इस लोकप्रवादको भरतने अपने व्यवहारसे एकदम उलट दिया। दशरथ-जैसे सौम्य पति तथा भरत-जैसे साधु-स्वभाव पुत्रके होनेपर भी अम्बा कैकेयी इस प्रकार क्रूरदर्शिनी कैसे हुई ? यह बड़ा अचंभा है।'

इस संकेतसे रामचन्द्र मर्माहत हुए और उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा—

> न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन ।
> तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरु ॥
>
> (वा० रा० ३ । १६ । ३७)

'हे तात लक्ष्मण ! मध्यमा अम्बाकी निन्दा तुम्हें कभी नहीं करनी चाहिये। इक्ष्वाकुनाथ भरतकी ही कथा करो।' अयोध्याके सम्राज्ञपर काल्पनिके समान अशुभ परिणामोंका पुष्प लानेवाली कैकेयीके प्रति रामके हृदयमें कितनी सहानुभूति है, कितना असामान्य आदर है—यह स्पष्ट शब्दोंमें वाल्मीकिने संकेतित किया है।

रामके चरित्रमें शीलका प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है। अपने शीलकी दृष्टिसे वे अपने किसीके चरित्रकी आलोचनामें न लिप्त होते हैं और न आत्मचरितके विश्लेषणमें तत्पर।

अस्वार्थिके प्रयोगसे दोषके स्थानोंको देखनेसे विवेकी पुरुष कभी पीछे नहीं हटता। दशरथके चरित्रका विश्लेषण उन्हें कामके प्राधान्यका संकेत देता है—

इदं व्यसनमालोक्य राज्ञश्च मतिविभ्रमम्।
काम एवार्थधर्माभ्यां गरीयानिति मे मतिः॥
को ह्यविद्वानपि पुमान् प्रमदायाः कृते त्यजेत्।
छन्दानुवर्तिनं पुत्रं तातो मामिव लक्ष्मण॥

(अयोध्या० ५३। ९-१०)

'इस विपत्तिको और राजाके मतिविभ्रमको देखकर मुझे अर्थ और धर्मकी अपेक्षा कामकी प्रबलता दृष्टिगोचर हो रही है। कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो उसके मनोऽनुकूल आचरण करनेवाले पुत्रको प्रमदाके लिये छोड़ देगा। परंतु विद्वान् होकर भी मेरे पिताने वैसा ही किया।'

कौशल्या-जैसी जननीकी आज्ञा न माननेका अन्तःक्लेश रामचन्द्रके हृदयको हमेशा व्यथित करता था। तभी तो वे कह रहे हैं कि कोई भी नारी मेरे-जैसा पुत्र उत्पन्न न करे—मैं तो अपनी माताको अनन्त दुःख दे रहा हूँ। कौशल्याके प्रति मुझसे बढ़कर प्रीति रखनेवाली तो यह मैना है, जो अपने पिंजरेमें बैठी हुई कहती रहती है—'ए सुग्गे! (मुझे पालनेवाली कौशल्याके) शत्रुके पैरको काट ले।' मैं अपनी माताका किसी प्रकारका उपकार न कर सका—

मा स्म सीमन्तिनी काचिज्जनयेत् पुत्रमीदृशम्।
सौमित्रे योऽहमम्बाया दद्मि शोकमनन्तकम्॥
मन्ये प्रीतिविशिष्टा सा मत्तो लक्ष्मण सारिका।
यत्तस्याः श्रूयते वाक्यं शुक पादमरेर्दश॥

(अयोध्या० ५३। २१-२२)

रामकी आत्मग्लानि स्वचरित्रके विश्लेषणका परिणाम है।

मैत्रीके निर्वाहकी पराकाष्ठा रामके चरित्रमें दृष्टिगोचर होती है। आर्तप्रकृति सुग्रीवके साथ मैत्री कर रामचन्द्रने उसकी कामनाकी समग्रतया पूर्ति की। मित्रका आदर्श है—

आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा।
निर्दोषश्च सदोषश्च वयस्यः परमा गतिः॥

(किष्किन्धा० ८। ८)

'मित्र धनी हो या दरिद्र, सुखी हो या दुःखी अथवा निर्दोष हो या सदोष, पर मित्रके लिये सबसे बड़ा सहायक होता है।'

मित्रके निमित्त दोषको देखकर अपना त्याग, सुखका त्याग और देहका त्याग भी करना न्याय्य है। इस आदर्शको रामने अपने जीवनमें पूरा कर दिखाया। इसी मित्रताके निर्वाहके लिये रामके चरित्रमें एक दोषाभास भी दीखता है, जिसे आलोचकोंने बड़ा ही तूल दिया है। इसका सम्बन्ध बालिवधसे है। रामने प्रतिज्ञा की थी कि बालीको बाण ही मारूँगा और एक ही बाणसे मारूँगा—

बाणेनैकेन तं हत्वा राज्ये त्वामभिषेचये।

(अध्यात्म०, किष्किन्धा० २। ५)

वाल्मीकि-रामायणमें भी ऐसी ही प्रतिज्ञा रामने की है—बालीको एक ही बाणके द्वारा मारनेकी। फलतः एक ही बाणके द्वारा बालीका संहार करना रामको अभीष्ट था, उसके साथ पैंतरेबाजी नहीं करनी थी। बाली रावणकी अपेक्षा कहीं अधिक पराक्रमी तथा शूर था। जिस रावणके मारनेके लिये रामको अनेक दिनोंतक घोर व्यवसाय करना पड़ा, उससे भी अधिक बलशाली बालीका निधन क्या एक दिनकी लड़ाईके द्वारा किया जा सकता था? नहीं, कभी नहीं। तब मित्रके समक्ष कृत प्रतिज्ञाका निर्वाह कैसे हो? इसीलिये रामको यह युक्ति करनी पड़ी, जिसके लिये उनका नाम बदनाम किया जाता है।

रामके हृदयकी उदारताका परिचय तब मिलता है, जब वे मारुतनन्दन हनुमान्से उनके उपकारका बदला चुकानेमें अपनेको नितान्त असमर्थ पाते हैं। वे कहते हैं—'हनुमान्! तुमने जो मेरे साथ उपकार किया है, वह मेरे अंदर ही जीर्ण हो जाय, गल-पच जाय; मेरे लिये उसका प्रत्युपकार करनेका कोई कभी अवसर ही न आये।' ऐसी कामना क्यों? बात यह है कि प्रत्युपकार चाहनेवाला व्यक्ति अपने उपकारीके लिये विपत्तिकी कामना करता है, जिससे उपकारका बदला चुकानेकी इच्छा रखनेसे उसे अपने प्रत्युपकार करनेका उचित अवसर मिले। धन्य हैं राम! वे कभी सोचते भी नहीं थे कि हनुमान्के ऊपर विपत्ति आये, जिससे उनके प्रति प्रत्युपकार करनेका कभी अवसर मिले। वाल्मीकिकी कमनीय सूक्तिपर ध्यान दें—संक्षिप्त सुन्दर उक्तिपर—

मय्येव जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥

(वा० रा० ७। ४०। २४)

रामचन्द्रमें वीर्य तथा तेज, शक्ति तथा सामर्थ्यका अनुरूप पुञ्ज विद्यमान था। शक्तिके साथ क्षमाका योग मणिकाञ्चनयोगके समान स्पृहणीय तथा आदरणीय होता है। शक्तिका दुरुपयोग करनेवाले वीर तो अधिक देखे गये हैं, परंतु राममें शौर्य एवं बलके साथ संयमता, विनय तथा क्षमाका इतना सुन्दर सामञ्जस्य था कि उनकी शक्ति पाशविक शक्ति न होकर देवशक्तिके समान मङ्गल तथा कल्याणकी सम्पादिका थी।

उनकी शक्तिका चमत्कार तो पूरे रामायणमें ...

होता है, परंतु रावणके साथ उसके भीषण संघर्षके समय वह शक्ति अलौकिक रूप धारणकर आकाशचारी देव तथा गन्धर्वोंकी प्रशंसाका विषय बन गयी। रावणके साथ आरम्भिक युद्धमें (वा० रा० युद्धकाण्डका ५९ सर्ग) रामचन्द्रने जब अपने बाणोंसे उसके धनुष तथा किरीट-मण्डलको नष्ट कर दिया, तब रावणकी दशा बड़ी दीन और दयनीय बन गयी थी। धनुषके अभावमें योद्धा ही कैसा ? इस समय रामचन्द्रने शत्रुके प्रति जो महनीय अनुकम्पा दिखलायी, उससे उनकी शक्तिकी महत्ता स्पष्टरूपसे प्रमाणित होती है। वे चाहते तो उसी समय रावणको अपने तीव्र शरोंसे धराशायी कर देते, परंतु निरस्त्र तथा निरायुध शत्रुके ऊपर शस्त्रका प्रहार नितान्त अनुचित होता है। रामचन्द्र रावणको लङ्कामें जाकर आराम करने तथा पुनः रथ तथा आयुधोंसे सुसज्ज होकर लौटनेकी सलाह देते हैं। उनके मार्मिक वचनोंपर ध्यान दीजिये—

> कृतं त्वया कर्म महत् सुभीमं
> हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम्।
> तस्मात् परिश्रान्त इति व्यवस्य
> न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि॥
> प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं
> प्रविश्य रात्रिंचरराज लङ्काम्।
> आश्वास्य निर्याहि रथी च धन्वी
> तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः॥
> (वही, ६। ५९। १४१-४२)

आशय है कि 'रावण! तुमने आज भयंकर कार्य किया है; क्योंकि मेरी सेनाके प्रधान वीरोंको तुमने मार डाला है। इतनेपर भी थका हुआ समझकर मैं बाणोंसे तुम्हें मृत्युके अधीन नहीं कर रहा हूँ। तुम युद्धसे पीड़ित हो, जानता हूँ। लङ्कामें जाकर कुछ देरतक विश्राम कर लो। रथ और धनुषसे सुसज्जित होकर पुनः आना, तब मेरा बल देखना।'

इस घटनाकी सत्यताकी पुष्टि अध्यात्मरामायण (युद्धकाण्ड ६। २९-३०) के द्वारा भी होती है। यह था रामचन्द्रका शत्रुके प्रति व्यवहार—शक्तिके साथ क्षमाका मणिकाञ्चनयोग।

× × ×

राम-रावणका अन्तिम संग्राम तो प्रख्यात ही है। रामचन्द्रने पर्याप्त परिश्रम तथा संघर्षके बाद दशाननको मृत्युके अधीन कर दिया। अब युद्धमें पराजित और मृत शत्रुके प्रति विजेताके व्यवहारकी दैवी मर्यादा देखनी हो तो रामचन्द्रके इस व्यवहारकी ओर दृष्टिपात करें।

रावणकी मृत्युके अनन्तर उसके देह-संस्कारकी समस्या सामने आकर खड़ी हुई। विभीषण रामके आदेशसे रावणका संस्कार करनेको उद्यत नहीं था। उसका कथन है—'मैंने अपनी बुद्धिसे भलीभाँति विचार कर लिया है। धर्मका त्याग करनेवाले, क्रूर, नृशंस, असत्य बोलनेवाले, दूसरेकी स्त्रीका धर्षण करनेवाले रावणका संस्कार कथमपि उचित नहीं है। मेरा भाई होनेपर भी यह शत्रु था; क्योंकि यह प्राणियोंके अहितमें निरत था। फलतः पूज्य होनेपर भी यह मुझसे पूजा पानेके योग्य नहीं है।' (युद्धकाण्ड १११ सर्ग, ९२-९५ श्लोक) इसपर रामने विभीषणकी बड़ी भर्त्सना की और उसे समझाया—'यह ठीक है कि यह अधर्म और असत्यसे युक्त था, परंतु साथ ही-साथ यह तेजस्वी, शूर, संग्रामोंमें सदैव बलवान् था। इन्द्रादि देव भी उसे पराजित नहीं कर सके थे। फलतः समस्त जगत्‌को रुलानेवाला रावण बल-पराक्रमसे सम्पन्न तथा महामनस्वी था। उसका संस्कार अवश्य करना होगा तुम्हें। यह मेरा आदेश है। जानते नहीं—वैर मरनेतक ही रहता है। मरनेके बाद वैरका अन्त हो जाता है। अब मेरा प्रयोजन भी सिद्ध हो चुका। अतः जैसे यह तुम्हारा भाई है, वैसे ही यह मेरा भी है। अतएव उसका दाह-संस्कार करो'—

> तेजस्वी बलवान् शूरः संग्रामेषु च नित्यशः।
> शतक्रतुमुखैर्देवैः श्रूयते न पराजितः॥
> महात्मा बलसम्पन्नो रावणो लोकरावणः।
> मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्॥
> क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।
> (युद्ध० १११। ९९—१०१)

यह है रामका शत्रुके प्रति व्यवहार। हजार दोष होनेपर भी रावण मृत्युके अनन्तर श्लाघनीय है, उपेक्षणीय नहीं। फलतः उसके दाह-संस्कारमें कोई कमी न होनी चाहिये। यह है शौर्यका अप्रतिम आदर्श, वीरताका चूडान्त निदर्शन तथा क्षमाशीलताका महनीय उत्कर्ष !!!

भगवान् रामचन्द्रमें सौन्दर्य, शीलता और शक्तिका विलक्षण सामञ्जस्य था। उन महामहिमामण्डितके चरित्रमें इन तीनोंका अद्भुत सामञ्जस्य विराजमान था। इसीलिये समग्र संसार श्रीरामचन्द्रको मर्यादापुरुषोत्तम मानकर उनके द्वारा स्थापित धर्मराज्यके लिये आज भी लालायित है। वस्तुतः रामचन्द्र साक्षात् भगवान् थे। अतएव उनके द्वारा प्रतिष्ठित सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था मानवमात्रके लिये मङ्गलमयी है—यही सर्वथा सत्य है।
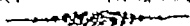
भगवान् श्रीरामका आदर्श चरित्र

(लेखक—पण्डितप्रवर पं० श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड़, वेदाचार्य)

भारतीय पुराणों एवं काव्योंमें भगवदवतारकी अनेकविध कथाएँ वर्णित हैं। निराकार ईश्वरकी साकारव्याप्तिको ही 'अवतार' कहा जाता है। 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' (तैत्तिरीयोप० २।६)—इस मन्त्रोक्तिके अनुसार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि ही ईश्वररूप है। सामान्यतः सम्पूर्ण संसारके अवतार होनेपर भी कुछ विशिष्ट विभूतियाँ अवताररूपमें परिगणित हुई हैं, जिनके द्वारा—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

—इस भगवद्वचन (गीता ४।८) की चरितार्थता सुस्पष्टतः मानव-जीवनको सदासे प्रभावित करती आ रही है। उन विशिष्ट अवतारोंमें भी मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका अवतार सर्वप्रमुख एवं नितान्त जगत्-कल्याणकारक है।

आज भारतमें अन्य अवतार सम्भवतः कुछ विस्मृत अथवा लोगोंकी दृष्टिसे दूर हो गये हैं, परंतु राम एवं कृष्णका अवतार तो प्रत्येक भारतीयके मानसमें ओतप्रोत हो चुका है। यह अवतार भारतकी उस भयंकर वेलामें हुआ था, जिसका वर्णन आदिकवि वाल्मीकि, व्यास तथा अन्यान्य मनीषियोंने पुष्कल मात्रामें किया है। किंतु फिर भी वे नास्तिकोंको संतोष प्रदान नहीं कर सके। अपने कालमें धर्म, अर्थ एवं कामके क्षेत्रमें सामाजिक अस्त-व्यस्तताको सुव्यवस्थित रूप प्रदान करनेका समस्त श्रेय श्रीरामावतारको ही है। ये तीनों पुरुषार्थ उस कालमें निर्मर्याद हो चुके थे। शक्ति ही नियामक थी। भारतके सम्राट् चारसौ वर्ष विभूषित दशरथ वृद्धावस्थामें भी राज्य संचालन करते रहे। भारतके अधिकांश दक्षिण-प्रदेश तथा विहारके कुछ भूभाग लङ्काधिपति रावणके अधीन हो गये थे। दण्डकारण्य, नासिक आदिपर रावण अपने सैन्य शिविर स्थापितकर भारतीय शासनको चुनौती दे रहा था। इस विकराल राष्ट्रीय संकटमें, जब कि ब्राह्मण-वध, स्त्री-अपहरण तथा लूट-खसोट आदिकी घटनाएँ उग्र रूपसे नग्न ताण्डव कर रही थीं, उस समय श्रीरामने साम्राज्य अभिषिक्त होनेके कारण महर्षि विश्वामित्रके नेतृत्वमें उत्तर भारतके भूखण्ड (बक्सर सिद्धाश्रम आदि) को ताड़काका वध करके उन्मुक्त किया। ताड़का रावणकी स्थानीय प्रतिनिधि थी। महर्षि विश्वामित्रसे युद्धकी शिक्षा प्राप्तकर अपने पिता दशरथकी वृद्धावस्थाके कारण राम युवराजोचित अधिकारोंद्वारा प्रशासनिक स्थितिको प्रायः सारा भारतवर्ष सुव्यवस्थित करते रहे। इस कालमें उनके नैतिक एवं चारित्रिक बलका ही यह महान् प्रभाव था कि महाराज दशरथके जीवनमें ही जनता उनको राज्याभिषिक्त अभिषिक्त देखना चाहती थी। परंतु यह सम्भव न हो सका। दशरथद्वारा दिये हुए आश्वासनमय वचनोंका महारानी कैकेयीने लाभ उठाना चाहा। गृह-युद्धकी आशङ्कासे आशङ्कित होकर श्रीरामने धार्मिक दृष्टिसे सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओंका समाधान करते हुए 'पितृ-आज्ञा ही सर्वोपरि है'—इस सर्वमान्य सिद्धान्तसे राज्य-तन्त्रका अस्तित्व सुरक्षित कर दिया। रामायणका यह रूप तत्कालीन राज्य-तन्त्रपर धर्मका स्पष्ट प्रभाव प्रदर्शित करता है। यह धर्म, नैतिकता, सहिष्णुता एवं वीरतापर आधारित था। भगवान् श्रीरामने राज्यविहीन होकर भी वीरोचित स्वभावके कारण अपनी धर्मपत्नी (सीता) और अपने भाई (लक्ष्मण) के साथ दण्डकारण्यमें निवास करके अवशिष्ट राष्ट्रीय कार्य (दक्षिणी भूभागकी निर्मुक्ति) सम्पन्न किया।

श्रीरामने जनस्थानके निवासियोंसे जब यह प्रतिज्ञा की—'मैं यहाँसे राक्षसवंशका उन्मूलन कर दूँगा', तब सीताने कहा—'आप वनमें तो आप निर्लोभि हो ही गये हैं, फिर भी यहाँ वनमें आकर भी शान्तिसे रहना नहीं चाहते। राक्षसोंने आपका क्या बिगाड़ा है?' यह सुनकर भगवान् श्रीरामने उत्तर दिया—'सीते! मैं लक्ष्मणके सहित तुम्हें त्याग सकता हूँ, मृत्युका भी आलिङ्गन करनेको उद्यत हूँ, परंतु अपनी की हुई प्रतिज्ञा नहीं छोड़ सकता और यह प्रतिज्ञा, जो ब्राह्मणोंसे कर चुका हूँ, उसे कदापि नहीं छोड़ सकता।'

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीकी यह दिव्य मर्यादा परिलक्षित होती है, जो वर्तमान कालके महापुरुषोंमें बहुत कम पायी जाती है। आज विश्वमें—जहाँ भौतिक, वैज्ञानिक एवं आर्थिक सम्पन्नता सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है और सब वस्तुएँ सुलभ हो रही हैं—केवल एक ही वस्तु दुर्लभ है। वह है—'चरित्रनिष्ठा'।

श्रीरामका जीवन मानव-जीवनका मूल प्रेरणात्मक स्रोत है। वे मानवता, सभ्यता एवं आदर्श मर्यादापूर्ण जीवनके प्रतीक हैं। रामत्वका लोप ही लौकिक मर्यादाका विनाश है।

मानवताका सबसे सुन्दर उदाहरण श्रीरामका वह व्यक्तित्व है, जिसे रावणकी मृत्युके पश्चात् महर्षि वाल्मीकिने उपस्थित किया है। रावण मारा जा चुका था। उस समय भगवान् राम ध्यानमग्न होकर सीताके सम्बन्धमें कुछ चिन्तन करने लगे। उन्होंने विभीषणको आज्ञा दी—'शीघ्र ही सीताको मेरे समक्ष उपस्थित करो।' विभीषणने सीताको लानेकी व्यवस्था की। श्रीरामके समक्ष उपस्थित करनेके लिये जब सीता शिबिका (पालकी) पर लायी जा रही थीं, उस समय विभीषण सीताके दर्शनार्थ एकत्रित हुई भीड़को तितर-बितर करने लगे। तब रामने विभीषणसे कहा—''सीताके आनेके उद्देश्यसे लोगोंको हटाना मेरा अनादर करना है। सभी लोग मेरे आत्मीय हैं, इनके समक्ष आनेमें सीताको कोई दोष नहीं। स्त्रियोंके लिये गृह, वस्त्र तथा अन्यान्य आवरण 'आवरण' नहीं, अपितु स्त्रियोंका चरित्र ही उनका सच्चा 'आवरण' है। युद्धस्थल, स्वयंवर, यज्ञ, विवाह तथा विपत्काल आदिमें स्त्रीका बाहर निकलना निन्द्य नहीं है, विशेषकर मेरे सांनिध्यमें तो कदापि अनुचित नहीं है। अतः सीताको पालकीसे न लाकर पैदल ही मेरे सामने लाओ, जिसमें सभी लोग उन्हें देखें।'' (वा० रा० ६ । ११४) विभीषणने वैसा ही किया और सीताको पैदल चलकर ही रामके सम्मुख आना पड़ा। यह सामाजिक जीवन एवं राजनीतिक संघटनशक्तिकी परिचायक कैसी सुन्दर अभिव्यक्ति है।

अपने चरणोंमें स्थित, रावणगृहसे आयी हुई, कल्याणी मानसमुखी सीताको देखकर भगवान् रामके मनमें रोष, हर्ष और दैन्यके भाव उत्पन्न होने लगे। अन्तमें उन्होंने सीताके समक्ष अपना हार्दिक भाव जिन शब्दोंमें प्रकट किया, उनसे प्रजावत्सल मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके आदर्श चरित्रका परिचय प्राप्त होता है। यह रामकी उच्च लोकमर्यादा है। राजाका अनुसरण ही प्रजा करती है। यदि रामने अपने जीवनमें किसी प्रकार भी अमर्यादाको प्रश्रय दिया होता तो वे 'मर्यादापुरुषोत्तम' न कहे जाते।

अन्ततः अग्निपरीक्षाद्वारा शुद्ध सीताको देवगणसे प्रबोधित होकर श्रीरामने ग्रहण किया, परंतु अयोध्या पहुँचनेपर मूर्ख नागरिकोंकी भ्रान्तिको दूर करनेके लिये भगवान् रामने व्यक्तिगत स्वामीके रूपमें अत्यन्त मर्माहत होते हुए भी राजाके कर्तव्य-पालनके उद्देश्यसे गर्भिणी सीताको पुनः निर्वासित कर दिया।

महाकवि भवभूतिने 'उत्तररामचरित'में भगवान् रामका चरित्र चित्रित करते हुए बड़ा ही स्पष्ट सुन्दर निर्देश किया है—

> वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
> लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥
> (२।७)

अर्थात् 'लोकोत्तर महापुरुषोंका मन एक साथ वज्रसे भी कठोर और पुष्पसे भी कोमल हुआ करता है, वह साधारण जनोंके लिये दुरवबोध है।'

इस प्रकार राजधर्मका प्रजानुरञ्जनके लिये प्रयोग श्रीरामके ही दृढ़ मनकी बपौती वस्तु हो सकती थी। जनतामें वैरभावकी वृद्धि रोकने तथा मतविभिन्नताको शान्त करनेके लिये उन्हीं मर्यादापुरुषोत्तम रामने राजधर्मका मौलिक विवेचन करते हुए राजनीतिक समन्वय स्थापित करनेमें भी अपूर्व सफलता प्राप्त की थी।

श्रीरामने वन-निर्गमनके समय लक्ष्मणसे कहा था—

> एतदर्थं हि राज्यानि प्रशासति नराधिपाः।
> यदेषां सर्वकृत्येषु मनो न प्रतिहन्यते॥
> (वा० रा० २ । ५२ । ९९)

अर्थात् 'राजालोग इसीलिये राज्यका शासन सँभालते हैं कि किसी भी काममें उनका मनोविघात न हो।'

महाराज अत्यन्त दुःखी हैं, अतः वे जो कुछ चाहते हैं, उन्हें कर लेने दो।

इस समय यदि राम लोकव्यवहारद्वारा अनुमोदित लक्ष्मणके* परामर्शको मानते तो अधिक सम्भव था कि राज्यक्रान्ति हो जाती, क्योंकि जनता भी उनके साथ थी, परंतु श्रीरामने अपनी हार्दिक क्रान्तिभावनाको एक दूसरा ही मोड़ दिया और उन्होंने राजधर्मको प्रजातन्त्रके रूपमें परिणत किया। यह कार्य क्रमशः होकर उनके

---

* गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम्॥
इत्यादि—
(वा० रा०, अयोध्याकाण्ड २१ । १३ इत्यादि)

जीवनके पश्चिमांशमें ही सुस्पष्ट हुआ, जब कि उन्होंने अपने पुत्रों तथा भ्रातृपुत्रोंमें राज्यका समविभाजन कर दिया था। इस प्रकार 'त्रेतायुगमें भी सर्वप्रथम प्रजातन्त्रका आदि संस्थापक मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामको ही कहना चाहिये।

जिस समय जंगलमें भरत श्रीरामको मनानेके लिये आ रहे थे, उस समय लक्ष्मणने दूरसे ही भरत और भरतकी सेनाको आते देखकर संदेह किया कि 'कहीं हमलोगोंको सर्वथा निर्मूल करनेके लिये ही तो भरत सेना लेकर नहीं आ रहे हैं।' लक्ष्मण युद्धके लिये तत्पर होने लगे, परंतु श्रीरामने उनसे कहा—'भरतसे मैं कह दूँगा कि तुम अपना राज्य लक्ष्मणको ही दे दो।' भगवान् श्रीरामके वाक्यको सुनकर लक्ष्मण लज्जित होकर चुप हो गये। यह भ्रातृप्रेमका अनूठा उदाहरण तो है ही, साथ ही आत्मनिर्भरताकी भी पराकाष्ठा है।

भगवान् श्रीरामके अलौकिक गुणोंसे सारा भारतीय वाङ्मय सुशोभित है। भगवान् रामका वास्तविक ज्ञान कराना ही वाल्मीकीय रामायणका प्रधान उद्देश्य है।

'रामादिवद्वर्तितव्यं न क्वचिद्रावणादिवत्' की विशिष्ट शिक्षा रामावतारसे ही जगत्को प्राप्त होती है।

श्रीरामका शील-स्वभाव

सुनि सीतापति-सील-सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल, सो नर खेहर खाउ॥ १॥
सिसुपन तें पितु, मातु, बंधु, गुरु, सेवक, सचिव, सखाउ।
कहत राम-बिधु-बदन रिसोहैं सपनेहुँ लख्यो न काउ॥ २॥
खेलत संग अनुज बालक नित, जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ॥ ३॥
सिला साप-संताप-बिगत भइ परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुए को पछिताउ॥ ४॥
भव-धनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गये ताउ।
छमि अपराध, छमाइ पाँय परि, इतौ न अनत समाउ॥ ५॥
कह्यो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गयो राउ।
ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तन मरम कुघाउ॥ ६॥
कपि-सेवा-बस भये कनौड़े, कह्यो पवनसुत आउ।
देबे को न, कछू रिनियाँ हौं, धनिक तूँ पत्र लिखाउ॥ ७॥
अपनाये सुग्रीव बिभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ॥ ८॥
निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत, सुनत कहत फिरि गाउ॥ ९॥
समुझि समुझि गुनग्राम राम के, उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पाइहै प्रेम-पसाउ॥ १०॥

(विनय-पत्रिका, १००)

इक्ष्वाकुके कुलमें हुआ था। अपनी अभिरामताके कारण ही वे जनतामें 'राम' नामसे प्रख्यात हुए थे। वे आत्मवशी, महापराक्रमी, द्युतिमान् और धृतिमान् थे। उनका व्यक्तित्व सहज ही सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेता था। वे बुद्धिमान्, नीतिमान्, वाग्मी, श्रीमान् और शत्रुताके दूर थे। वाल्मीकिने उनके शरीरका वर्णन करते हुए लिखा है—

> विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः ॥
> महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिंदमः ।
> आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः ॥
> समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान् ।
> पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवान् शुभलक्षणः ॥
> (वा० रा० १।१।९-११)

'उनके विशाल कंधे थे, विशाल भुजाएँ थीं, शङ्खके समान ग्रीवा थी, ठोढ़ी चौड़ी थी, विशाल वक्षःस्थल था, ग्रीवाकी हँसली मांसलतामें दबी हुई थी, घुटनोंतक लटकती हुई बाँहें, सुन्दर सिर, शोभन ललाट, विक्रमसे ओतप्रोत, समानरूपसे विभाजित अवयव, सचिक्कण शरीर, पीन वक्ष, विशाल आँखें और शोभासम्पन्न समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त उन प्रतापशालीका शरीर था।'

मानसिक गुण

> वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः ॥
> सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभानवान् ।
> (वही, १।१।१४-१५)

'वे वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्वको जाननेवाले हैं, धनुर्विद्यामें निष्णात हैं, समस्त शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं, उनकी स्मृति और प्रतिभाशक्ति महान् है।'

धार्मिकता

> धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां च हिते रतः ।
> यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ॥
> प्रजापतिसमः श्रीमान् धाता रिपुनिषूदनः ।
> रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ॥
> रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ।
> (१।१।१२—१४)

'वे धर्मज्ञ हैं, सत्यप्रतिज्ञावाले हैं, प्रजाओंके हितमें संलग्न हैं, यशस्वी हैं, ज्ञानी हैं, पवित्र हैं, आत्मवशी हैं और एकाग्रचित्तवाले हैं। प्रजापतिके समान वे श्रीसे सम्पन्न, सबका पोषण करनेवाले, शत्रुदमनकर्ता, प्राणिमात्रके रक्षक, मर्यादाके पालक एवं रक्षक और स्वजनोंकी पीड़ाको दूर करनेवाले हैं।'

सर्वप्रिय

> सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ॥
> सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।
> आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥
> स च सर्वगुणोपेतः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
> (वही, १।१।१५—१७)

'वे सभी जनोंको प्रिय थे, उनके स्वभावमें सरलता थी, दीनता उनसे कोसों दूर भागती थी, वे सर्वथा जागरूक रहते थे; जैसे नदियाँ सदैव समुद्रकी ओर जाती हैं, वैसे ही सज्जन सर्वदा उनके दर्शन जाते रहते थे। वे सच्चे अर्थोंमें आर्य थे; सबके प्रति समानभाव रखते थे, सदैव प्रियदर्शन थे और समस्त सद्गुणोंके निधान थे। कौसल्याके आनन्दको बढ़ानेवाले राम सभीके लिये आनन्दवर्धनकारी थे।'

समत्व

> समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ॥
> विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः ।
> कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ॥
> धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः ।
> ....
> न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुंधराम् ॥
> सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया ।
> (वही, १।१।१७—१९।२।१९।३३)

'वे एक ओर समुद्रके समान गम्भीर थे तो दूसरी ओर हिमालयके समान दृढ़ धैर्यवाले थे। वे एक ओर पराक्रममें त्रिविक्रम विष्णुके समान थे तो दूसरी ओर चन्द्रमाके समान सौम्य और प्रियदर्शन थे। क्रोधके समय वे यदि कालाग्निके समान दिखलायी देते थे तो क्षमामें पृथ्वीके समान भी थे। त्यागमें वे कुबेरके समान थे तो सत्य-पालनमें मानो धर्मके ही अवतार थे।............चाहे वनगमन हो और चाहे राज्यका परित्याग हो, उनके चित्तमें कभी विकार नहीं देखा गया। उनकी यह अनुपमेय उच्च समत्व मानवोंके ऊपर स्थित कर रही थी।'

प्रतिज्ञापालन

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥
(वा०, ३ । १० । १८-१९)

अरण्यकाण्डमें राम कहते हैं—'सीते! मैं तुम्हें छोड़ सकता हूँ, लक्ष्मणको छोड़ सकता हूँ, अपने प्राणोंका भी परित्याग कर सकता हूँ; परंतु जो मैंने प्रतिज्ञा की है, विशेषतः ब्राह्मणोंके प्रति, उसे मैं कभी नहीं छोड़ सकता।'

इसी प्रकार वाल्मीकिने अन्यत्र लिखा है कि 'राम सत्य पराक्रमवाले हैं। उनके प्राण भले चले जायँ, वे कभी झूठ नहीं बोलते, सदा सत्यभाषण करते थे। वे ऐसा ही मानते थे। ऐसा नहीं'—

दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम्।
अपि जीवितहेतोर्वा रामः सत्यपराक्रमः॥
(वा०, ५ । ३३ । २५)

रामके धर्मशील स्वरूपका वर्णन करते हुए वाल्मीकि लिखते हैं—

नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन।
हन्त्येव नियमाद् वध्यानवध्येषु न कुप्यति॥
(वा०, २ । २ । ४५-४६)

'रामका क्रोध या प्रसन्नता निरर्थक नहीं होती थी। जो हन्तव्य है, उसका वे निश्चितरूपसे वध करते थे, परंतु जो अवध्य है, उसपर कभी क्रोध भी नहीं करते थे।'

रामके ऐसे ही देवोपम चरित्रोंको देखकर महर्षि वाल्मीकिने लिखा है—

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥
(वा०, १ । २ । ३६-३७)

'जबतक धराधामपर पर्वत और सरिताएँ स्थित हैं, तबतक श्रीराम-कथा लोकमें प्रचलित रहेगी।'

दीनहितकारी राम

ऐसे राम दीन-हितकारी।
अतिकोमल करुनानिधान बिनु कारन पर-उपकारी॥ १॥
साधन-हीन दीन निज अघ-बस, सिला भई मुनि-नारी।
गृह तें गवनि परसि पद पावन घोर साप तें तारी॥ २॥
हिंसारत निषाद तामस बपु, पसु-समान बनचारी।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेमबस, नहिं कुल-जाति बिचारी॥ ३॥
जद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत, कहि न जाय अति भारी।
सकल लोक अवलोकि सोकहत, सरन गये भय टारी॥ ४॥
बिहँग जोनि आमिष अहारपर, गीध कौन ब्रतधारी।
जनक-समान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी॥ ५॥
अधम जाति सबरी जोषित जड़, लोक-बेद तें न्यारी।
जानि प्रीति, दै दरस कृपानिधि, सोउ रघुनाथ उधारी॥ ६॥
कपि सुग्रीव बंधु-भय ब्याकुल, आयो सरन पुकारी।
सहि न सके दारुन दुख जन के हत्यो बालि, सहि गारी॥ ७॥
रिपु को अनुज बिभीषन निसिचर, कौन भजन अधिकारी।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यो भुजा पसारी॥ ८॥
असुभ होइ जिन्ह के सुमिरे ते बानर रीछ बिकारी।
बेद-बिदित पावन किये ते सब, महिमा नाथ! तुम्हारी॥ ९॥
कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्ह कीं तुम बिपति निवारी।
कलिमल-ग्रसित दास तुलसीपर, काहे कृपा बिसारी॥ १०॥
(विनय-पत्रिका, १६६)

अगणित-गुणगण-निलय भगवान् श्रीराम

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

१—गुणकी परिभाषा और संख्या

भेद पर कृपा करहिं मन मानी। कवि उर अजिर नचावहिं बानी॥

(श्रीरा० च० मा० १। १०४। १)

'गुण' शब्द किसीके मतसे 'गुण—आमन्त्रणे' (१०। १५२ सेट् उभयपदी) से 'भावे घञ्' (३।३।१९) लगाकर, अथवा पा० सू० ३। १। १३४ के अनुसार अथवा 'परच्' (३।३।५६) के अनुसार अच् प्रत्यय तथा किसीके मतसे 'ग्रह—उपादाने' (९।६०) के आगे उणादि प्रत्यय लगनेपर निष्पन्न होता है। (Monier-Williams)। अमरकोशमें यह शब्द कम-से-कम ६ बार आया है और यद्यपि मुख्य अर्थमें इसका कोई पर्याय भी नहीं, तथापि इस शब्दके १० अर्थ होते हैं (Monier-Williams), और धर्म, विद्या, कला, ज्ञान-विज्ञानादि सैकड़ों वस्तुएँ इसके अन्तर्गत आती हैं। अतः भारतीय दर्शन, राजनीति, साहित्य, अलंकार, काव्य-नाटक-ग्रन्थों तथा धर्मग्रन्थोंमें गुणोंके सम्बन्धमें बहुत सी बातें कही गयी हैं। प्राचीन विद्वानोंका कहा हुआ न्याय-वैशेषिक ('सिद्धान्त-मुक्तावली'की 'प्रकाश' या 'दिनकरी' टीका)-का यह श्लोक इस सम्बन्धमें बहुत ही प्रसिद्ध है—

> वायोर्नवैकादश तेजसो गुणा
> जलक्षितिप्राणभृतां चतुर्दश।
> दिक्कालयोः पञ्च षडेव चाम्बरे
> महेश्वरेऽष्टौ मनसस्तथैव च॥
>
> (इति प्राचः, मुक्तावलीकी १० की टीकामें)

अर्थात् वायुके नौ, अग्निके ग्यारह तथा जल, पृथ्वी एवं चेतन जीवोंके चौदह गुण कहे गये हैं। दिशा एवं कालके ५, आकाशमें ६, महेश्वरमें ८ तथा मनके भी आठ ही गुण निर्दिष्ट हैं।' इसी प्रकार कहीं-कहीं सांख्य-न्यायादिके अनुसार प्रकृतिके भी २४-२५ गुण कहे गये हैं। (द्रष्टव्य—Monier-William's Sanskrit Dictionary)

वायुपुराण एवं शिवपुराणमें भगवान् शंकरके सर्वज्ञता, अलुप्तशक्तिमत्ता आदि ६ दिव्यगुण,* भागवत १। १६ में भगवान् श्रीकृष्णके ३० गुण, भक्तिरसामृतसिन्धु, पृष्ठ १५०में उनके प्रायः ५० गुण, सिद्धान्तकौमुदी, पृष्ठ १५७ (बम्बई सं०)-में वैयाकरणोंकी दृष्टिमें ८ गुण, भागवत ७। ९। ९ में ब्राह्मणके १२ गुण, सनत्सुजातीय ४ में भी विद्वान् ब्राह्मणके इनसे भिन्न १२ गुण तथा उनपर व्याख्याताओंद्वारा अन्य बहुत-से गुण निर्दिष्ट हैं। चाणक्यनीति १२। १५ में सज्जनोंके १२ गुण, जैमिनीय अश्वमेध ५६। २५ (गीताप्रेस का संस्करण, पृष्ठ ३१४)-में बत्तीस गुण एवं महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय ६६ में भीष्मपितामहने राजाके ३६ गुण बतलाये हैं। भर्तृहरिने भक्ति, जितेन्द्रियता आदि द्वादश गुणोंसे सम्पन्न सज्जनको प्रणाम किया है। शुक्रनीति २१। १२१ में मनुष्यके प्रधान आठ गुण कहे गये हैं। ये सभी श्लोक प्रायः एक ही समान हैं। जैसे—

(१) धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयिता चित्तेऽतिगम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽतिविज्ञातृता
रूपे सुन्दरता हरौ भजनिता येषां गुणा राघवे॥

(चाणक्य० १२। १५)

(२) वाञ्छा सज्जनसंगतौ परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद् भयम्।
भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले
एते येषु वसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः॥

* सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥
(वायुपुराण १२। ३३; शिवपुराण १। १८। ११)

१ ये श्लोक यद्यपि अत्यन्त सरल हैं, तथापि संक्षेपमें इनका यह भाव है कि मनुष्यमात्रको सदा धर्ममें तत्पर, सम्भाषणमें मधुर, दानमें उत्साहसम्पन्न तथा मित्रोंसे निश्छल रहना चाहिये। साथ ही गुरुजनों (माता-पिता) के प्रति सदा विनयका भाव, चित्तमें कुछ गाम्भीर्य, आचारमें शुचिता, गुणोंके प्रति रुचि, शास्त्रोंमें निपुणता तथा भगवद्भजनमें प्रेम एवं रूपको भी सुन्दर बनाये रखनेकी चेष्टा होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त सत्संगतिकी आकाङ्क्षा, दूसरे गुणोंको देखकर प्रसन्नता, केवल अपनी ही स्त्रीके प्रति प्रेम, भगवान् शंकरमें भक्ति, आत्मसंयमकी शक्ति तथा दुष्टोंसे—दुष्टोंके संसर्गका त्याग—ये सभी गुण मनुष्यको वन्दनीय बनाते हैं और ये सब गुण श्रीरामजीमें थे।

इसके अतिरिक्त उपदेशपञ्चिका (श्लोक १५), मनोऽहमन्त्रिका (१०)तथा योगवासिष्ठ (२। २। ३४। ७। ६। १। २। ७५। ४। ४। ३३। ४१-४९) आदिने भी बहुत-से गुणोंके पर्वों और वृत्तियोंको अलंकृत किया गया है।

सर्वश्रेष्ठ अवतार भगवान् राम

(लेखक—श्रीमोहनलालजी महाराजजी, सभापति, सनातन-धर्म महासभा, गायना, दक्षिण अमेरिका)

राम राजकुमारके रूपमें उत्पन्न हुए और अवतारोंमें सर्वश्रेष्ठ थे। वे अयोध्याके राजा दशरथके पुत्र थे। उनकी जीवन-कथाको लिखकर वाल्मीकिने रामायण महाकाव्यकी रचना की। हजारों शताब्दियोंसे मानव-जातिने ठीक-ठीक सोचने और काम करनेकी प्रेरणा राम-कथासे प्राप्त की है।

रामका एक निराला अवतार था। दूसरे अनेक धर्मोपदेशक भागवत पुरुषोंके समान उन्होंने प्रचारार्थ एक शब्द भी मुँहसे नहीं निकाला। भगवान् श्रीकृष्णके समान किसी विशिष्ट सिद्धान्तके प्रणेता बननेका गौरव उनको प्राप्त न था। राम जीवन-मर्यादाके नियमोंमें ही आस्था व्यक्त करते थे। वे धर्मोपदेश देनेके बदले धर्मानुकूल आचरण बनानेमें परिनिष्ठित थे। भगवान् आपके कर्मोंको देखते हैं, पर भगवान् राम स्वयं कर्मरत हैं। वे कर्म करते हैं। 'मैं तुमसे जो करने के लिये कहता हूँ, उसे करो। मैं क्या करता हूँ, इसकी चिन्ता मत करो'—इस नीतिके वे समर्थक नहीं थे। उनका सारा जीवन कर्मका आदर्श था।

वात्सल्यतामें वे एक आदर्श पुत्र थे। उनकी मातृ-पितृ-भक्ति तथा भ्रातृप्रेम आज भी आदर्शरूप बने हुए हैं। उन्होंने माता-पिताकी आज्ञाका पालन करने तथा उनमें श्रद्धा-प्रेम रखनेका एक कीर्तिमान स्थापित किया था। धनुर्धरतामें वे एक आदर्श धनुर्धारी थे। शस्त्रविद्या और शास्त्रविद्यामें उनकी प्रगति आज भी धनुर्धरोंके लिये स्पृहणीय वस्तु है। वे एक अद्वितीय धनुर्धर थे और आज जो हिंदीमें 'राम बाण'का मुहावरा प्रचलित है, उसका अर्थ है—अमोघ, कभी व्यर्थ न जानेवाला।

अनिन्द्य था। उनके दाम्पत्यजीवनमें वैवाहिक आदर्श इतना उच्चकोटिका था कि उनका संयुक्त नाम 'सीता-राम' हिंदी भाषामें सर्वोच्च अभिवादनके रूपमें व्यवहृत होने लगा। आज हम परस्पर एक दूसरेको आदर तथा सम्मान प्रदर्शित करनेके लिये हाथ जोड़कर 'जय सीताराम' (सीता और रामकी जय हो) कहते हैं।

पारिवारिक व्यक्तिके रूपमें रामने आदर्श पारिवारिक सम्बन्धका पालन किया। उनका भ्रातृप्रेम वस्तुतः अगाध था। जब उनकी विमाता कैकेयीने अपने पुत्र भरतके लिये उनको राज्यत्याग करनेके लिये कहा, तब राम प्रसन्नतापूर्वक तत्पर हो गये। उन्होंने कहा—'प्रत्येक वस्तु जो हमारे पास है, हम सबकी है। अपने भाईको उसका और अपना हिस्सा प्रदान कर देनेमें शोक और ईर्ष्या क्योंकर हो सकते हैं।' रामने राज्यशासनका जो कीर्तिमान स्थापित किया, वह आज भी शासकों और राजाओंके लिये अनुसरण करनेयोग्य है। वे अपने राज्यकी प्रजाको अपना परिजन समझते थे। अयोध्यामें धनवान्-धनहीनमें भेदभाव न था। परम दरिद्र प्रजाकी भी उनके पास पहुँच थी और उनसे न्यायोचित सुनवाई होनेका विश्वास था। क्या उन्होंने एक धोबीको राजमहलमें आने और रावणके कारागारमें बहुत दिन रहनेके कारण सीताकी पवित्रता और चरित्रके विषयमें अपनी शङ्काएँ व्यक्त करने की छूट नहीं दी थी? उसपर रामकी प्रतिक्रिया क्या हुई थी? क्या रामने उस आदमीको धुत्कार अप्रसन्नता व्यक्त की? नहीं, वे जानते थे कि उनकी प्रजा उनकी रानी (सीता) को आदरकी दृष्टिसे देखती है। रामको सीताके

सकता है तथा इस जन-मत शिक्षणके लिये जो भी कीमत चुकानी पड़े, चाहे वह कीमत पटरानीकी निष्ठा, ईमानदारी और पवित्रताको कसौटीपर रखकर ही क्यों न चुकानी पड़े, बहुत बड़ी कीमत नहीं समझी जा सकती। यही कारण था कि महात्मा गांधीने राम-राज्यके आदर्शको राजनीतिज्ञोंके सम्मुख रखा। मुझे आशा है कि हम भगवान् रामके जीवनसे प्रेरणा प्राप्त करके उनके आदर्शोंके अनुसार जीवन बितायेंगे और तभी इस भूतलपर हमारे लिये राम-राज्य लाना सम्भव होगा।

अतएव हमको रामके जीवनसे नम्रताकी शिक्षा लेनी चाहिये, उनके द्वारा दिखाये रास्तेपर चलना चाहिये, उनके जीवनके दृष्टान्तको प्रकाश-स्तम्भ बना लेना चाहिये और उनकी जीवन-कथासे अपने दिन-प्रतिदिनके जीवनमें प्रेरणा लेनी चाहिये।

रघुवीर गरीब-निवाज

एक सनेही साँचिलो केवल कोसलपालु।
प्रेम-कनौड़ो राम-सो नहिं दूसरो दयालु॥ १॥
तन-साथी सब स्वारथी, सुर ब्यवहार-सुजान।
आरत अधम अनाथ हित को रघुवीर समान॥ २॥
नाद निठुर, समचर सिखी, सलिल सनेह न सूर।
ससि सरोग, दिनकरु बड़े, पयद प्रेम-पथ कूर॥ ३॥
जाको मन जासों बँध्यो, ताको सुखदायक सोइ।
सरल सील साहिब सदा सीतापति सरिस न कोइ॥ ४॥
सुनि सेवा सही को करै, परिहरै को दूषन देखि।
केहि दिवान दिन दीन को आदर अनुराग बिसेषि॥ ५॥
खग-सबरी पितु-मातु ज्यों माने, कपि को किये मीत।
केवट भेंट्यो भरत-ज्यों, ऐसो को कहु पतित-पुनीत॥ ६॥
देह अभागेहिं भागु को, को राखै सरन सभीत।
बेद-बिदित बिरुदावली, कबि-कोबिद गावत गीत॥ ७॥
कैसेउ पाँवर पातकी, जेहि लई नाम की ओट।
गाँठी बाँध्यो दाम तो, परख्यो न फेरि खर-खोट॥ ८॥
मन मलीन, कलि किलबिषी होत सुनत जासु कृत-काज।
सो तुलसी कियो आपुनो रघुवीर गरीब-निवाज॥ ९॥

(विनयपत्रिका १९१)

मर्यादा-पुरुषोत्तमकी मर्यादा

(लेखक—स्वर्गीय राजा श्रीदुर्जनसिंहजी)

श्रीअवधेशकुमार, कौसल्या-प्राणाधार, जानकी-जीवन, दैत्य-निषूदन, भक्तमन-रञ्जन, दुष्टनिकन्दन, मङ्गलकारी, शरणागत-भय-हारी भगवान् श्रीरामचन्द्र महाराजके परम मङ्गलमय, श्रीजनककुमारी-हृदय-कंज भ्रमर, श्रीसौमित्रि-कर-सरोज-लालित, श्रीसुरधुनी-प्रसवित-धाम पद-पद्मोंसे जो इस देव-दुर्लभ वसुंधराको पावन होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उसका मुख्य प्रयोजन मर्यादा सास्त्रद्वारा कर्तव्याकर्तव्य विमूढ़ संसारको पथ प्रदर्शन कराना था और इसी कारण श्रीभगवान् 'मर्यादा-पुरुषोत्तम'के शुभनामसे अलंकृत किये जाते हैं।

इस महत्त्वपूर्ण और आदर्श अवतारका यह निमित्त प्रसिद्ध है और इसके मुख्य-मुख्य कल्याणमय चरित्रोंमें भी, जो मर्यादा-प्रतिष्ठार्थ उदाहरणीय समझे जाते हैं, साधुओंके परित्राण और दुष्टोंके विनाशद्वारा धर्मकी संस्थापना, गुरु-भक्ति, मातृ-पितृ-भक्ति, भ्रातृ-प्रेम, एक-पत्नीव्रत, वर्णाश्रमधर्म-पालन, राजनीति और प्रजारक्षा इत्यादिकी शिक्षारूप प्रयोजन स्पष्ट प्रकट है। परंतु प्रत्येक चरित्रका क्या रहस्य है और उनके मार्मिक सीमा कहाँतक है, जो आदर्शरूपसे मर्यादा-प्रतिष्ठार्थ ग्रहण किये जा सकें—इसका परिचय बहुत थोड़े लोगोंको है। अतः यहाँ मुख्य-मुख्य चरित्रोंका अनुक्रमसे किंचित् प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया जायगा।

(१) ऐसे उदाहरणीय पावन चरित्रोंका श्रीगणेश उस लोकहितकारिणी लीलासे होता है, जिसमें उस प्रतिज्ञाकी पूर्तिका आरम्भ हुआ है, जो भगवान्के प्रत्येक अवतारके लिये अनादि कालसे चली आ रही है—

> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
> धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
> (गीता ४ । ८)

इसीके साथ इसमें प्रजापालन आदर्श भी प्रकट होगा।

जब श्रीविश्वामित्रजी अपने यज्ञकी रक्षाके लिये दोनों रघुकुल-भूषण भ्राताओंको साथ लिये आश्रमकी ओर यात्रा कर रहे थे, तब मार्गमें ताड़का नामकी विकराल राक्षसी अपने घोर गर्जनसे समस्त वनको गुंजारित करती हुई इनकी ओर झपटी। उस समय श्रीभगवान्के सम्मुख धर्मसंकट उत्पन्न हो गया। एक ओर अपने उत्पन्न साधु महात्माओंका

मक्षण और प्रजाका सर्वस्व करनेवाली आततायिनी पिशाचिनीको—जिसके द्वारा देशके चौपट होनेमें स्वयं श्रीविश्वामित्रजीसे अभी सुन चुके हैं—तथा इस ओर दूसरी ओर स्त्री-जातिपर हाथ उठानेके लिये रीति-नीतिका प्रतिबन्ध, जिसका भाव भी पूर्ण प्रचार देखनेमें आ रहा है। किंतु साधु महात्माओंके परित्राण और प्रजाकी रक्षाके भावका उस समय भगवान्के हृदयमें इतना आवेश हुआ कि उन्होंने उसी क्षण उस दुष्टाके संहारका कर्तव्य अभ्रान्तरूपसे निश्चित कर लिया। श्रीविश्वामित्रजी महाराजके निम्नलिखित उपदेशसे भगवान्के निश्चयकी पुष्टि भी हो गयी—

> नहि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम।
> चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना ॥
> (वा० रा० १ । २५ । १७)

'नरोत्तम! तुमको स्त्रीवध करनेमें ग्लानि करनी उचित नहीं। राजपुत्रको चारों वर्णोंके कल्याणके लिये ऐसे समयपर (आततायिनी) स्त्रीका वध भी करना चाहिये।'

> नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात्।
> पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा ॥
> (वा० रा० १ । २५ । १८)

'प्रजारक्षाके लिये क्रूर-सौम्य, पातकयुक्त और दोषयुक्त कर्म भी प्रजा-रक्षकको सदा करने चाहिये।'

जब साधु महात्मा सताये जायँ और प्रजा पीड़ित की जाय, तब उस सतानेवाली और पीड़ा देनेवाली स्त्रीका वध भी आवश्यक हो जाता है। पुरुष आततायी हो तो उसके लिये तो किसी विचारकी भी आवश्यकता नहीं।

इस चरित्रमें एक और गहरा रहस्य भरा हुआ है—श्रीभगवान्ने जो प्रथम ही स्त्रीका वध किया, इससे उन्होंने संसारको यही शिक्षा दी कि जो कोई भी प्राणी मनुष्य जन्म धारण करके जगत्में धार्मिक जीवन व्यतीत करनेकी इच्छा करे, उसके लिये प्रथम और प्रधान कर्तव्य यही है कि वह भगवद्भक्तिके सत्सङ्गद्वारा यथाशक्ति मायाका दमन करे; क्योंकि मायाके संसारमें फँसनेके बाद धर्मकी वेदीपर अपने प्रेमकी आहुति दे सकना मनुष्यके लिये असम्भव सा है।

(२) क्षात्र-धर्मका क्या रहस्य है, इसका आदर्श इस विचित्र चरित्रसे प्रकट होगा । परम माङ्गलिक विवाहोत्सवके पश्चात् जब श्रीविदेहराजसे विदा लेकर श्रीकोशल-नरेश दल-बलसहित अपनी राजधानी जगत्-पावनी अयोध्यापुरीको पधार रहे हैं, तब रास्तेमें क्या देखते हैं कि प्रज्वलित नेत्र और फड़कते हुए होठोंवाले भयंकर वीरवेषधारी ब्रह्मकुल-विख्यात श्रीपरशुरामजी उग्ररूप धारण किये श्रीरामके शिव-धनुर्भङ्ग करनेपर अपना तीव्र क्रोध प्रकट करते हुए श्रीरामसे कह रहे हैं कि 'यदि तुम इस वैष्णव-धनुषपर शर चढ़ानेमें समर्थ हो तो तुमसे मैं द्वन्द्वयुद्ध करूँगा ।'

यहाँ भी विकट परिस्थिति उपस्थित है । एक ओर तो ऐसे पुरुषकी ओरसे—जिसने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया था और इस समय भी वैसे ही उग्रकर्मके लिये जिसकी प्रवृत्ति हुई थी—इस प्रकारका युद्धाह्वान कि जिसको तनिक भी क्षात्र-तेजवाला पुरुष एक क्षण भी सहन नहीं कर सकता और दूसरी ओर ब्राह्मण-वंशके प्रति हृदयमें पूज्यभाव । अब यहाँ यदि एक भाव दूसरेको दबाता है, अर्थात् यदि युद्धाह्वानको स्वीकारकर उनसे द्वन्द्वयुद्धकर अथवा उनपर प्रहारकर उनके प्राण लिये जाते हैं तो पूज्यभाव नष्ट होता है और यदि पूज्यभावके विचारसे युद्धाह्वानके उत्तरमें उनके चरणोंपर मस्तक रक्खा जाता है तो क्षात्रतेजकी हानि होती है । अतः यहाँ ऐसी विचित्र क्रिया होनी चाहिये, जिससे दोनों भावोंकी रक्षा होकर दोनों पक्षोंका महत्त्व स्थिर रहे और एक भावका इतना आवेश न हो जाय कि वो दूसरेको दबा दे । अतः सर्वशक्तिमान् श्रीभगवान्‌ने इस कठिन समस्याके समाधानरूपमें कहा—

वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव ।
अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥
(वा० रा० १ । ७६ । ३)

'हे भृगुवंशशिरोमणि ! यद्यपि मैं क्षत्रियधर्मसे युक्त हूँ, फिर भी आपने मुझे वीर्यहीन और असमर्थ सा समझकर जो मेरे तेजकी अवज्ञा की है, इसके लिये आज मेरा पराक्रम देखिये ।' इतना कहकर श्रीरामने उनसे धनुष ले उसी क्षण चढ़ा दिया । तदनन्तर क्रोधयुक्त होकर कहा—

ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्रकृतेन च ।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम् ॥
इमां वा त्वद्गतिं राम तपोबलसमर्जितान् ।
लोकानप्रतिमान्वापि हनिष्यामीति मे मतिः ॥
(वा० रा० १ । ७६ । ६-७)

'आप ब्राह्मण होनेके कारण मेरे पूज्य हैं तथा विश्वामित्र-जीकी बहिन सत्यवतीके पौत्र हैं, इसलिये मैं आपके प्राण हरण करनेवाला बाण नहीं छोड़ सकता । किन्तु मैं आपकी गतिका अथवा तपोबलसे प्राप्त होनेवाले अनुपम लोकोंका विनाश करूँगा ।'

इस अभिप्रायभावान्वित चरित्रका मुख्य उद्देश्य यही है कि जब हृदयमें दो भावोंका एक ही साथ संघर्ष हो, तब दोनोंको इस प्रकारसे सँभालनेमें ही बुद्धिमानी है, जिसमें एकका दूसरेके द्वारा पराभव न हो जाय, दोनोंकी रक्षा हो, साथ ही धर्मका भी नाश न होने पावे । यहाँ सामान्यतया सभी वर्णोंके लिये और विशेषतया क्षत्रियोंके लिये इस मर्यादाकी रक्षाका उपदेश है । वह यह है कि चित्तमें कितने भी उग्रभाव उत्पन्न हों, कितनी ही क्रोधाग्नि धधके, विरोधी-के प्रति जो पूज्य या आदरबुद्धि है, वह नष्ट नहीं होनी चाहिये; साथ ही अपना क्षात्रतेज भी बचा रहना चाहिये । इस मर्यादाका अनुकरण किसी अंशमें महाभारत-युद्धमें भी हुआ था । यहाँ शङ्का उत्पन्न होती है कि रावण भी तो ब्राह्मण ही था, फिर श्रीभगवान्‌ने उसको कुलसहित क्यों मार डाला ? उसने तो केवल धर्मपत्नीका ही हरण किया था, श्रीपरशुरामजीने तो इक्कीस बार क्षत्रियोंका विनाश किया था और इस समय भी वे स्वयं भगवान्‌का संहार करनेकी बुद्धिसे ही यहाँ आये थे । द्वन्द्वयुद्धका यही तो प्रयोजन था ।'

इस शङ्काका समाधान करनेके लिये श्रीपरशुरामजीके चरित्रका कुछ परिचय आवश्यक है । एक बार श्रीपरशुरामजी-के पिता अरण्यगामी ब्रह्मनिष्ठ तपस्वी श्रीजमदग्निजीकी सर्वस्वरूप हविर्धानी गौको सहस्रबाहु अर्जुन बलात्कारसे छीनकर ले गया । परशुरामजीने युद्धमें उसका वध करके अपनी गौ छुड़ा ली । तदनन्तर सहस्रार्जुनके पुत्रोंने एकान्त पाकर जमदग्निका वध कर डाला । पूज्य पिताकी इस प्रकार हत्या होनेपर परशुरामजीकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और इन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेका संकल्प कर लिया ।

परशुरामजी भी श्रीभगवान्‌के ही अवतार थे, इस कार्यको करके उन्होंने दुष्टक्षत्रियोंको ही दण्ड दिया था, अतः दुष्प्रकृति रावणके साथ इनकी तुलना नहीं हो सकती ।

तत्काल उत्तेजित होकर श्रीरामने प्यारे भाई श्रीलक्ष्मणके खिन्न होनेकी कुछ भी परवा न कर ये वचन कह ही डाले—

"भाई लक्ष्मण! धर्म, अर्थ, काम और पृथिवी—जो कुछ भी मैं चाहता हूँ, वह सब तुम्हीं लोगोंके लिये, यह तुमसे मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ। भरतने तुम्हारा कब क्या अहित किया है, जो तुम आज ऐसे भयाकुल होकर भरतपर संदेह कर रहे हो? तुमको भरतके प्रति कोई अप्रिय या क्रूर वचन नहीं कहना चाहिये। यदि तुम भरतका अपकार करोगे तो वह मेरा ही अपकार होगा। यदि तुम राज्यके लिये ऐसा कह रहे हो तो भरतको आने दो, मैं उनसे कह दूँगा—'तुम लक्ष्मणको राज्य दे दो।' भरत मेरी बातको अवश्य ही मान लेंगे।"

यहाँ यह शङ्का नहीं करनी चाहिये कि श्रीभगवान्‌का श्रीलक्ष्मणजीमें उतना प्रेम नहीं था; उनका तो प्राणिमात्रमें प्रेम है, फिर अपने अनन्यसेवक प्यारे कनिष्ठ भ्राता लक्ष्मणके लिये तो कहना ही क्या है। यहाँ जो क्षोभ हुआ है, वह वास्तवमें लक्ष्मणजीपर नहीं है। उनके हृदयमें विकृति उत्पन्न हो गयी थी, उसीको निकालनेके लिये श्रीभगवान्‌का यह कठोर यत्न है। भगवान्‌के वचन सुनते ही श्रीलक्ष्मणजीका मनोविकार नष्ट हो गया। इसी प्रकार अन्य प्राणियोंके साथ भी किया जाता है। श्रीभगवान्‌को किसीसे तनिक भी द्वेष नहीं है। सबके आत्मा होनेके कारण वे तो सबके आत्मरूप हैं, केवल अंकुरित विकृतियोंको ही यथोचित दण्डादि विधियोंके द्वारा नष्ट किया करते हैं।

(५) अब नास्तिकवादको किसी प्रकार भी न सह सकनेका एक अभ्रान्त दृष्टान्त सुनिये—श्रीभरतजीने जब चित्रकूट पहुँचकर श्रीभगवान्‌से अवधपुरी लौटाकर राज्याभिषेक करानेके अनेक यत्न किये, अनेक प्रार्थनाएँ कीं और श्रीवसिष्ठजी आदि ऋषियोंने भी अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार परामर्श दिया, तब उन ऋषियोंमें जाबालि ऋषिका मत सनातनधर्मसे नितान्त विरुद्ध प्रकट हुआ। नमूनेके लिये एक श्लोक लीजिये—

तस्मान्माता पिता चेति राम सज्जेत यो नरः।
उन्मत्त इव स ज्ञेयो नास्ति कश्चिद्धि कस्यचित्॥
(वा० रा० २।१०८।४)

'हे राम! अतएव यह माता है, यह पिता है—यों समझकर जो इन सम्बन्धोंमें लिप्त होता है, उसे उन्मत्त-जैसा जानना चाहिये; क्योंकि कोई भी किसीका नहीं है।' ऐसी ही और भी धर्मविरुद्ध बातें कहीं। श्रीभगवान्‌के लिये यह अतिशय जटिल प्रश्न था। एक पक्षमें था घोर नास्तिकवाद और दूसरेमें उसको प्रकट करनेवाले अपने कुलपूज्य ऋषि। श्रीभगवान् बड़े ही ब्रह्मण्य थे, फिर जाबालि ऋषि तो कुलके आदरणीय एवं उपास्य हैं। ऐसे महानुभावके प्रति श्रीरामके अगाध हृदयमें विरुद्धभाव कब उत्पन्न हो सकते थे। परंतु धर्मके नितान्त विरुद्ध शब्दोंने, जिनका आशय श्रीभगवान्‌को सत्यसे विचलित करना था, हृदयमें परिवर्तन कर दिया। श्रीभगवान्‌ने उस समय मर्यादारक्षार्थ नास्तिकवादका तीव्र विरोध करना ही उचित समझा और तिरस्कारपूर्वक ऋषिके प्रति जो कुछ कहा, उस अंशका एक वचन यह है—

निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्
यस्त्वामगृह्णाद्विषमस्थबुद्धिम्।
बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं
सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम्॥
(वा० रा० २।१०९।३३)

'इस प्रकारकी बुद्धिसे आचरण करनेवाले तथा परम नास्तिक और धर्ममार्गसे हटे हुए आपको जो मेरे पिताजीने याजक बनाया, मैं उनके इस कार्यकी निन्दा करता हूँ; क्योंकि आप अवैदिक, दुर्मार्गस्थित बुद्धिवाले हैं।'

आखिर जाबालिके यह कहनेपर कि 'मैं नास्तिक नहीं हूँ, केवल आपको वनसे लौटानेके लिये यों कह रहा था' और वसिष्ठजीके द्वारा इसका समर्थन किये जानेपर भगवान् शान्त हुए। धर्म और सत्यके उत्कट भावोंके आवेशमें नास्तिकवादकी असहनीयता यहाँतक पहुँची कि विनयभक्तिसे बँधे हुए श्रीरामने, जो पूज्य पिताके वचनकी रक्षाके लिये आज अनेक संकट सहन कर रहे हैं, पिताके कार्यमें भी अश्रद्धा प्रकट कर दी। इससे जो मर्यादा स्थिर की गयी, उसका स्पष्ट उद्देश्य है कि मनुष्यको अन्य सब विचार त्यागकर नास्तिक मतोंका उग्र विरोध करना चाहिये।

(६) अब गुरुभक्तिके सद्-व्यवहार, शासन प्रणालीपर विचार कीजिये।

यों तो कुल उपास्य श्रीवसिष्ठ भगवान्‌का महत्त्व जन-जनपर प्रकट ही है, प्रत्येक धार्मिक और आस्ति-

'मैंने सुग्रीवको जो वचन दिया था, उस प्रतिज्ञाको कैसे टाल सकता हूँ ?'

विचारिये, वालीने साक्षात् श्रीभगवान्‌का कोई अपराध नहीं किया था, किंतु वह उनके मित्र सुग्रीवका शत्रु था। अतः उसको अपना भी शत्रु समझकर उसके वधकी तत्काल प्रतिज्ञा की गयी। यही तो मित्र-धर्मकी पराकाष्ठा है। मित्रका कार्य उपस्थित होनेपर अपने निजके हानि-लाभका सारा विचार छोड़ उसका कार्य जिस प्रकार भी सम्पन्न हो, साधना चाहिये। इसीलिये मित्रके सुख-सम्पादनार्थ उसके शत्रुरूप भ्राताका वध किया गया। इस बातके समझनेमें तो अधिक कठिनता नहीं है; किंतु जिस बातपर मुख्य आक्षेप होता है, वह यह है कि 'वालीको युद्धाह्वानद्वारा सम्मुख होकर धर्मपूर्वक क्यों नहीं मारा गया ?' इस शङ्काका समाधान श्रीवाल्मीकीय या मानस, दोनों रामायणोंके मूलसे नहीं होता। टीकाओंके निर्णयानुसार यथार्थ बात यह थी कि वालीको एक मुनिका वरदान था कि सम्मुख युद्ध करनेवालेका बल उसमें आ जायगा, जिससे उसके बलकी वृद्धि हो जायगी। इस दशामें भगवान्‌के लिये एक जटिल समस्या आ खड़ी हुई। वालीको प्रतिज्ञा पालनार्थ अवश्य मारना है। यदि अपनी ऐश्वर्य-शक्तिसे काम लेते हैं तो उस वरदानकी महिमा घटती है, जो आपकी ही भक्तिके वशपर मुनिने दिया था और यदि वरदानकी रक्षा की जाती है तो धर्मपूर्वक युद्ध न होनेसे पापकी प्राप्ति और जगत्‌में निन्दा होती है। इस समस्याके उपस्थित होते ही स्वामिधर्मके भाव हृदयमें इतने दृढ़ हो गये कि भगवान्‌ने अपने धर्माधर्म और निन्दा-स्तुतिके विचारको हृदयसे तत्काल निकाल, अपने भक्तका मुख ऊँचा करना ही मुख्य समझ, उस सुग्रीवसे लड़ते हुए वालीको बाणसे मारकर गिरा ही तो दिया।

इससे यही मर्यादा निश्चित हुई कि स्वामीको कोई ऐसी चेष्टा नहीं करनी चाहिये, जिससे अपनी स्वार्थ सिद्धिके द्वारा अपने दास या सेवकका महत्त्व घटे। इस विषयपर तटस्थरूप और निष्पक्षबुद्धिसे विचार करना चाहिये कि श्रीभगवान्‌का धर्मयुक्त कार्य वरदानकी महिमाको क्षीण करते हुए सम्मुख धर्मयुद्ध करना होता या अब हुआ है, जिसमें अपने निजका विचार हृदयसे निकालकर केवल अपने भक्तके वरकी प्रतिष्ठा रक्खी गयी।

(९) अब शरणागत-वत्सलताके महत्त्व निरूपणका प्रसङ्ग देखिये—

जिस समय विभीषणजी अपने भ्राता रावणसे तिरस्कृत होकर श्रीरामदलमें आये, उस समय श्रीभगवान्‌ने अपने सभी सभासदोंसे सम्मति ली। उनमें हनुमान्‌को छोड़कर अन्य किसीका मत विभीषणके अनुकूल नहीं हुआ। बात भी ऐसी ही थी। अकस्मात् आये हुए साक्षात् शत्रुके भाईका सहसा कैसे विश्वास हो। किंतु इन सब विचारोंको हृदयमें किंचित् भी स्थान न दे, शरणागत-वत्सलताके भावसे श्रीरामने सहसा अपना निश्चय इस वचनके द्वारा प्रकट कर दिया, जो महावाक्य समझा जाता है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वा० रा० ६।१८।३३)

(१०) लोकमतका क्या मूल्य है और राजाको लोक-हितका कितना आदर करना चाहिये, इस प्रमुख विषयपर यह हृदयद्रावक लीला पूर्ण प्रकाश डालेगी; इसी चरित्रसे पातिव्रत धर्म और एकपत्नीव्रतका आदर्श भी सिद्ध होगा। वालि-वध-लीलामें कहा गया था कि भगवान्‌की तीन लीलाओं-पर आक्षेप होता है। उनमें दूसरी यह है। किंतु ये आक्षेप ऐसे मनुष्योंके द्वारा होते हैं, जिनमें इस कराल कालके कारण पूर्ण विकृतियाँ आ गयी हैं। इस परम गंभीरताके युगमें ऐसे राजाओंके दर्शन तो हों ही कहाँसे, जो प्रजाके आन्तरिक भाव जाननेका यत्न करके उनके कष्ट-क्लेश या अपवादोंको यथाशक्य दूर करनेकी चेष्टा करें। ऐसे भी तो नहीं हैं, जो खुले रूपसे धर्मपूर्वक आन्दोलनके द्वारा प्रकट होनेवाले लोकमतका भी आदर करें। आजकल तो ऐसे प्रयासोंका उल्टा दमन होता है। आजकलकी नीतिके अनुसार तो न्यायका पथ वही समझा जाता है, जो अपने प्रबल संगठनद्वारा राजको बाध्य करे। बस, ऐसी ही क्षुद्र नीतियोंका अनुभव करके लोग इन उदार चरित्रोंपर तुरंत कुतर्क करनेको संनद्ध हो जाते हैं और यह नहीं सोचते कि उस रामराज्यमें लोकमतके आदरकी सीमा इतनी ऊँची थी कि यह आजकलके संकीर्ण विचारवालोंकी कल्पनामें भी नहीं आ सकती; प्रत्युत वे तो उसमें उल्टे दूषण लगाते हैं। उस समय प्रजाके अपने हितके लिये कैसा भी कठिन साधन उठाकर नहीं रक्खा जाता था। इसीका एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण यह है। एक दिन कुछ लोग विनय आदिद्वारा श्रीभगवान्‌को प्रसन्न करनेकी चेष्टा कर रहे थे। उसी प्रसङ्गमें श्रीभगवान्‌ने उनसे पूछा कि नगरमें हमारे सम्बन्धमें क्या चर्चा होती

पुष्पकविमानमें विराजित हो स्वयं उसकी खोजमें निकले। जब दक्षिण दिशामें पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि एक पुरुष कठोर तपमें प्रवृत्त है। उससे प्रश्न करनेपर उसने स्पष्ट और सत्य उत्तर देते हुए कहा कि 'मैं मिथ्या कभी नहीं बोलूँगा। मैं शम्बूक नामक शूद्र देवलोककी प्राप्तिके लिये तप कर रहा हूँ।' इतना सुनते ही श्रीभगवान्ने खड्गसे उसका मस्तक छेदन कर दिया। इधर इसका वध हुआ और उधर वह बालक सजीव हो उठा।

संक्षेपमें कथा इतनी ही है, किंतु इसमें रहस्य भरा हुआ है। जो केवल रूढ़ि-सड़ियासपर ही तुले हुए हैं, अर्थात् जिनकी संकुचित बुद्धि प्रत्यक्षके बाहर जाती ही नहीं, उनको कैसी भी युक्ति और प्रमाणोंसे समझाया जाय, वे उस तत्त्वतक पहुँच ही नहीं सकते। आज स्थान-स्थानपर हृदय विदीर्ण करनेवाले दृश्य देखनेमें आ रहे हैं कि पिता पितामह अपने बेटे-पोते—सबको श्मशानभूमिके अर्पण कर पूर्वजन्मके घोर अनिष्ट संस्कारोंको भोगते हुए अपना शेष दुःखद जीवन बिता रहे हैं। इसके विपरीत जब यह बात सुनी जाती है कि उस कालमें अकाल-मृत्यु ही नहीं होती थी, अर्थात् प्राणी अपनी पूर्ण आयु समाप्त करके ही कालको प्राप्त होते थे और ऐसा अवसर ही नहीं आता था कि पिताके सामने पुत्र मरे, तब यह बात परम आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। परंतु वास्तवमें बात ऐसी ही है। वर्तमान नयी सभ्यताकी चकाचौंधसे विकृत हुई दृष्टिवाले भले ही इसकी दिल्लगी उड़ायें, किंतु जिनको चारों युगोंके भिन्न-भिन्न धर्मोंका ज्ञान है, उनको इसपर आपत्ति नहीं हो सकती। इस सम्बन्धमें सामान्य आस्तिक बुद्धिवाले मनुष्योंके हृदयमें भी जो प्रबल शङ्काएँ उत्पन्न हो सकती हैं, वे ये हैं—

(क) ब्राह्मणने बालकके मृतक शरीरको राजद्वारपर लाकर डाला और वहाँ उसका निर्णय होकर वह बालक फिरसे जीवित हो गया। आज ऐसा क्यों नहीं होता? यदि ऐसी बात भी राजाके अधिकारमें हो तो आज तो राजद्वारोंपर मृतक शरीरोंके ढेर लग जायँ और राजद्वारका नाम परिवर्तन होकर वह मृतश्मशान ही हो जाय।

(ख) तप करना तो धर्मका काम है, उसको गर्हित क्यों समझा गया? और यदि वह गर्हित था भी तो उस शूद्रके तप करनेसे ब्राह्मणबालककी मृत्युका क्या सम्बन्ध? कोई मनुष्य तप करे कहीं और कोई मरे कहीं, यह बात कुछ समझमें नहीं आती।

(ग) यदि दूसरी शङ्काका कुछ समाधान हो भी जाय तो ऐसा उग्र दण्ड क्यों दिया गया, जो अति घृणित या निर्दयतापूर्ण कार्य समझा जा सकता है?

आधुनिक युगमें, जब कि धर्मपर श्रद्धाकी पूर्ण शिथिलता हो रही है, ये शङ्काएँ अनुचित नहीं समझी जा सकतीं। अब अपनी बुद्धिके अनुसार क्रमसे इनका समाधान किया जाता है।

(क) धर्मशास्त्रों (स्मृतियों) से यह बात सिद्ध है कि धर्म वस्तुतः दृष्टादृष्टार्थ-साधक है, अर्थात् उसके दो विभाग हैं—एक अदृष्ट-अर्थसाधक और दूसरा दृष्ट-अर्थ-साधक। यद्यपि दोनों ही धर्मानुशासनके अन्तर्गत हैं और दोनोंका ही मुख्य उद्देश्य आत्मोन्नति है एवं दोनोंकी रक्षाका दायित्व भी राजापर ही है, फिर भी जो भाग अदृष्टार्थ-साधक है, उसमें प्रधानता योगबलविशिष्ट और दिव्यदृष्टिसम्पन्न महर्षि, ब्रह्मर्षि, राजर्षि आदि परमश्रेष्ठ आत्माओंकी है। इसके विपरीत दूसरे दृष्ट-अर्थ-साधक भागका—जिसका पृथक् नाम व्यवहार हो गया है—सम्पादन मनुष्य-जातिके अधिकारी कर्मचारी-गणोंके द्वारा भी हो सकता है और यही व्यावहारिक कहलाता है। अदृष्टार्थ भागमें ऐसे विषयोंका सम्बन्ध है, जिनका परिणाम प्रत्यक्षमें कुछ नहीं दीखता। इसी भागके साधनार्थ प्रकृति-नियमानुसार वर्ण और आश्रमोंके नियमोंकी व्यवस्था की गयी थी। उस समय वैसी उच्च आत्माओंके विद्यमान रहनेसे दोनों भागोंका परिपूर्णतासे साधन होता था और राजद्वारपर केवल जनताके परस्परके विवाद ही नहीं आते थे, किंतु दैवी अनिष्ट घटनाओंद्वारा होनेवाले कष्टोंकी भी पुकार सुनी जाती थी और उनका यथोचित न्याय किया जाता था। यही रामराज्यका महत्त्व था। आज वह दृष्टि और दिव्य सामग्री नहीं है। न वैसी उच्च आत्माएँ ही हैं और न वैसे राजा ही हैं, जो अदृष्ट-विभागका पूर्ण निरूपण कर सकें। इसी कारण वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्मका लोप होता जा रहा है। अब तो केवल दृष्ट भाग (व्यवहार) शेष रह गया है। किंतु उसकी दशा भी स्वार्थियोंके हाथमें आ जानेसे परम शोचनीय है। जब व्यवहारमात्रकी व्यवस्थाकी ही दुर्दशा है, तब अदृष्ट-विभागके द्वारा न्याय कहाँ सम्भव है?

आजकल विज्ञानकी इस चरमोन्नतिके कालमें तो ऐसी शङ्काओंका अवसर ही नहीं आना चाहिये; क्योंकि जब हम भौतिक जगत्‌में भी बिना तारके सहस्रों कोसकी दूरीपर क्षणमात्रमें समाचार पहुँचानेका सूक्ष्मसूत्रोंका चमत्कार देखते हैं—जो चक्षु-इन्द्रियका विषय नहीं है तो अध्यात्म-जगत्‌के चमत्कारोंपर हमें क्यों संदेह होना चाहिये ? अब यह कि उस बालककी ही मृत्यु क्यों हुई, अन्य उपद्रव क्यों नहीं हुए ? इसके लिये अधिक दूर न जाइये। यह बात प्रसिद्ध है कि अनेक रोगोंके कीटाणु सदैव आकाश-मण्डलमें फिरा करते हैं; किंतु न सब रोगोंकी ही उत्पत्ति एक साथ होती है और न सब मनुष्य ही किसी रोगसे एक साथ ग्रस्त होते हैं। विशेष देश, काल और पात्र ही उनके आह्वानके हेतु होते हैं। बस, यही दशा सूक्ष्म जगत्‌की है। अतः ऐसी ही विशेषताओंसे उस क्षणमें वह बालक ही अनिष्ट परिणामका पात्र हुआ।

इस उपर्युक्त परिस्थितिपर दृष्टि डालनेसे यह प्रकट होगा कि उस समय भी भीभगवान्‌के सम्मुख कैसी जटिल समस्या उपस्थित थी। एक ओर विप्र ब्राह्मण-बालकका मृत-शरीर उसके माँ-बापने द्वारपर डाल रक्खा है, उसके लिये न्याय करनेकी उत्कट जिज्ञासा और दूसरी ओर एक पवित्र कार्यमें प्रवृत्त मनुष्यका वध, जिसका हृदयमें संकल्प आते ही इस प्रकारकी शङ्काएँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिनका निरूपण ऊपर किया गया है। किंतु वर्णाश्रम-धर्मकी रक्षा और न्यायपरायणताके मार्गोंके सम्मुख भीरामने अन्य किसी भी विचारको स्थान नहीं दिया*।

(ग) अब यही ऐसे उग्र दण्डवाली तीसरी शङ्का, सो यह एक बात तो प्रत्यक्ष ही है, (आजकी न्यायपद्धतिमें भी देखा जाता है) कि किसीका वध करनेपर अपराधीको वधका ही दण्ड दिया जाता है। इसके अतिरिक्त जिस राज्यके प्रत्येक प्रान्तमें परम शान्तिका डंका बज रहा हो और समस्त प्रजा पूर्ण सुख और आनन्दका भोग कर रही हो, वहाँ यदि किसीका उस शान्तिमें बाधक होना सिद्ध हो जाय तो न्याय यही चाहता है कि उसे ऐसा उदाहरणीय दण्ड दिया जाय कि जिससे पुनः किसीको ऐसा अपराध करनेका साहस ही न हो और उस शान्तिके साम्राज्यमें अन्तर न पड़े।

(१२) उपर्युक्त न्याय्य पवित्र चरित्रोंसे जो मर्यादा स्थिर की गयी है, उसका यथामति दिग्दर्शन कराया गया।

अन्तमें इतनी बात और प्रदर्शित करनी आवश्यक है कि सामूहिकरूपसे इस लेखमें प्रतिपादित समस्त चरित्रोंसे या अन्योंसे भी, जिनका उल्लेख यहाँ नहीं हुआ है, यह परम अनुकरणीय मर्यादा भी निश्चित होती है कि प्रारब्ध-वशात् जितनी भी आपत्तियोंके आनेपर भी मनुष्यको पुरुषार्थ-हीन होकर हतप्रभ नहीं होना चाहिये। विचारिये, श्रीरामकी परम दारुण आपत्तियाँ राज्यसिंहासनके त्याग या वनवासमें ही समाप्त नहीं हुईं, किंतु यहाँतक पीछे पड़ीं कि प्राणसे प्यारी धर्मपत्नीका भी वियोग हो गया और वह भी सामान्यरूपसे नहीं, एक विकट और प्रबल राक्षसके द्वारा हरण होकर। परंतु जितनी-जितनी अधिक भीषण आपत्तियाँ आयीं, उतने ही-उतने अधिकाधिक पुरुषार्थके लिये उत्साह होता गया। अतः प्राणिमात्रके जीवनकी सफलताके लिये भीभगवान्‌के द्वारा यह सर्वोच्च शिक्षारूप मर्यादा स्थिर की गयी है कि जितनी अधिक आपत्तियाँ आवें, उतना ही अधिक पुरुषार्थ किया जाना चाहिये।

---

* भगवान् श्रीरामने मर्यादा-रक्षाके लिये शम्बूकका वध किया, परंतु उसको स्वधामगमनका फल भी उन्होंने दे दिया। वह स्वर्गके लिये तप कर रहा था, अतएव भगवान्‌ने उसका वध करके उसे परमोत्तम स्वर्गमें भेज दिया। अध्यात्मरामायणमें कहा गया है कि 'प्राप्तस्तत्‌ स्वर्गमनुत्तमम्।' (७।४।२६)। उसको परम उत्तम स्वर्ग प्रदान किया। इससे विश्व-मर्यादा-रक्षाके साथ ही भगवान्‌की दयालुता और उसके तपकी सफलता भी प्रकट होती है। —सम्पादक

३—भगवदवतारका प्रयोजन

भगवदवतारकी श्रीमद्भगवद्गीतोक्त पार्श्वभूमि धर्मका ह्रास तथा अधर्मकी वृद्धि है। ऐसे समय श्रीभगवान् दुष्टोंका विनाश, साधु सत्पुरुषोंकी रक्षा तथा धर्मकी संस्थापना करनेके लिये अवतार लेते हैं। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तनुधारी॥
(श्रीरा० च० मा० ५।३९।२)

वे धर्म-संस्थापना और अपने प्रत्यक्ष आचरणद्वारा मानव-समाजके सम्मुख उज्ज्वल जीवनादर्श स्थापित करते हैं। श्रीहनुमान्‌जी-जैसे अनन्य रामभक्त आपके अवतारकार्यका रहस्य निम्न श्लोकमें प्रकट करते हैं—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥
(श्रीमद्भागवत ५।१९।५)

'प्रभो! आपका मनुष्यावतार राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है। अन्यथा, अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वरको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था?'

जीवनकी अच्छी-बुरी सब तरहकी परिस्थितियोंमें किस प्रकारका व्यवहार करना चाहिये, इसका आपने अपने आदर्श आचरणके द्वारा सामान्य मानवोंको वस्तुपाठ या सक्रिय उपदेश ही दिया है। आपके उपदेशोंसे हम जितना सीख सकते हैं, उससे कहीं अधिक हम आपके प्रत्यक्ष जीवनकी ओर देखकर सीख सकते हैं। आप यदि जीवनके उदात्त मूल्योंको प्रत्यक्ष आचरणद्वारा साकार करके न दिखाते तो सामान्य भक्त तथा अल्पशक्ति मानवको इनके आचरणकी सम्भावनाका ज्ञान न होता। आनन्दरामायणमें श्रीरामप्रभुकी सम्पूर्ण दिनचर्याका वर्णन किया गया है। उसमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि आपकी यह दिनचर्या लोकशिक्षणके लिये ही थी—

शृणु नित्यं यदाश्चर्यं रामराज्ञः शुभव्रत।
दिनचर्यां राजधान्यां कृतां लोकान् हि शिक्षितुम्॥
(७।१९।१)

श्रीअरविन्दने अपने गीता-प्रबन्धमें यथार्थताके साथ कहा है कि 'भगवान् मनुष्यमें इसी हेतुसे अवतार लेते हैं कि वह भगवत्स्वरूपमें आरोहण कर सके।' यह किस प्रकार जाय, इसका सक्रिय पाठ हमें श्रीभगवान् अपने प्रत्यक्ष आचरण द्वारा देते हैं। आपके गुणोंका परिचय प्राप्त करनेके लिये अब हम आपका स्वरूप देख लें।

४—श्रीभगवान्‌का तात्त्विक स्वरूप—'रामस्तु भगवान् स्वयम्'

योगमायासे समावृत होनेके कारण श्रीभगवान्‌का यथार्थ स्वरूप सबके प्रति प्रकट नहीं होता। अतएव उनके विषयमें अज्ञजन अनेक प्रकारकी कुकल्पनाएँ करके तर्क-वितर्क करते रहते हैं। इस विषयमें आपके ज्ञानवान् ज्ञानी तथा भक्तगण और आपकी निःश्वासरूप श्रुतियाँ तथा तन्मूलक स्मृति पुराणेतिहासादि ही प्रमाण हो सकते हैं। इनके अनुसार श्रीरामचन्द्रजी अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक, नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त, निर्विशेष, परात्पर, परब्रह्म, सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। आदिमायास्वरूपा जगज्जननी श्रीजानकीजीने परम रामभक्त श्रीहनुमान्‌जीको श्रीरामादेशका पालन करते हुए श्रीरामप्रभुका तथा अपने स्वयंका स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्॥
मां विद्धि मूलप्रकृतिं सर्गस्थित्यन्तकारिणीम्।
तस्य संनिधिमात्रेण सृजामीदमतन्द्रिता॥
(अध्यात्मरामायण १।१।३२-३४)

'हे हनुमन्! तुम रामको साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म समझो। ये निःसंदेह समस्त उपाधियोंसे रहित, सत्तामात्र, मन तथा इन्द्रियोंके अविषय, आनन्दघन, निर्मल, शान्त, निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयंप्रकाश और पापहीन परमात्मा ही हैं। और मुझे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाली मूलप्रकृति जानो। मैं ही निरालस्य होकर इनकी संनिधिमात्रसे इस विश्वकी रचना किया करती हूँ।'

श्रीमहादेवजी आपके सम्बन्धमें कहते हैं—

सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण
एकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।
मायातनुं लोकविमोहनीयां
धत्ते परानुग्रह एष रामः॥
(अध्यात्मरामायण [illegible])

है, पृथ्वीके रजःकणोंको किसी प्रकार किसी समय कोई गिन भी ले; किंतु सर्वशक्तिमान् श्रीभगवान्‌के गुणोंका कोई पार नहीं पा सकता।'

आपके अनन्त गुणोंका वर्णन करना स्वयं शारदा तथा शेषसे भी सम्भव नहीं। तथापि हमारी मर्यादित दृष्टिसे जो गुण विशेषरूपसे आपके अवतारकालमें प्रकट हुए दीखते हैं और जो हमारे अज्ञानग्रस्त अवगुणयुक्त जीवनके लिये दीपस्तम्भकी तरह मार्गदर्शक हैं, उन्हींका निरन्तर स्मरण, चिन्तन तथा अनुसरण करके हम अपना उद्धार कर सकते हैं। आपके गुण आपसे भिन्न नहीं हैं। अतएव आपके दिव्य गुणोंका चिन्तन आपका ही चिन्तन है। इस प्रकारके चिन्तनका लाभ अवर्णनीय है। इसका व्यावहारिक सुफल तत्काल हमारे पल्ले पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य अनेक दुर्गुणोंका पुतला होता है। ऐसा दुर्गुणी, किंतु अपने इन दुर्गुणोंसे सम्यक् परिचित आत्मजागृत मानव इन्हें दूर करनेका प्रयत्न करता है। किंतु अनेक जन्मोंके कुसंस्कार-मूलक ये दुर्गुण उसे पुनः-पुनः घेर ही लेते हैं। वह अपने बलसे इन्हें दूर करनेमें अपने-आपको असमर्थ पाता है—क्योंकि इनको दूर करनेके प्रयासमें इनका जो चिन्तन होता है, उससे ये और भी अधिक पुष्ट हो जाते हैं। अतएव मानसशास्त्रकी दृष्टिसे भी इन्हें दूर करनेका सुगम उपाय इन दुर्गुणोंके विरोधी पूर्णातिपूर्ण, गुणसागर श्रीभगवान्‌के दिव्य गुणोंका स्मरण, चिन्तन तथा निदिध्यासन करना है। इसका महान् लाभ यह होता है कि दुर्गुणोंको हटानेके हेतु हमारा सारा परिश्रम और संघर्ष बच जाता है और अभिलाषित गुण हममें सहज ही प्रकट होने लगते हैं। निरन्तर अभ्याससे कालान्तरमें ये हमारे जीवनमें स्थायी रूप धारण कर लेते हैं, हमारे स्वभाव और स्वरूपके अङ्गभूत बन जाते हैं। यह चिन्तन जितना ही उत्कट होगा, उतना ही शीघ्र फलदायी होगा। इस विषयमें श्रीमद्भागवतके श्रीअवधूतोक्त निम्न श्लोक नितान्त बोधप्रद हैं—

> यत्र यत्र मनो देही धारयेत् सकलं धिया।
> स्नेहाद् द्वेषाद् भयाद् वापि याति तत्तत्स्वरूपताम्॥
> कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यां तेन प्रवेशितः।
> याति तत्सात्मतां राजन् पूर्वरूपमसंत्यजन्॥
> (११।९।२२-२३)

'राजन्! मैंने भृङ्गी एवं कीड़ेसे यह सीखा है कि देहधारी जीव स्नेहसे, द्वेषसे अथवा भयसे भी जिस किसीमें सम्पूर्ण रूपसे अपने चित्तको लगा देता है तो उसे उसी वस्तुका स्वरूप प्राप्त हो जाता है। यथा भृङ्गीद्वारा दीवारमें बंद किया हुआ कीड़ा भयसे उसीका ध्यान करते-करते अन्तमें अपने पूर्वरूपको न छोड़ता हुआ भी उसीके समान रूपवाला हो जाता है।'

अतएव हम आराध्य प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके कतिपय दिव्य गुणोंके सहित आपका स्मरण और चिन्तन कर लें।

६—धर्मपरायणता

'रामो विग्रहवान् धर्मः'

आजके इस भौतिकवादप्रधान तथा नास्तिकवादप्रधान युगमें, जब कि हर समय धर्मनिरपेक्ष राज्यकी दुहाई दी जाती है, धर्म सर्वत्र उपेक्षित हो रहा है। इसीके दुष्परिणाम सर्वत्र दिखायी दे रहे हैं। ऐसे समय हमें धर्मका तथा उसे अपने जीवनमें साकार करनेवाले श्रीरामप्रभुका और उनके धर्ममय जीवनका निरन्तर स्मरण रखना चाहिये। भगवान् श्रीराम मूर्तिमन्त धर्म ही हैं। यह धर्माचरण कोई साधारण बात नहीं है। अतीन्द्रिय तथा अलौकिक ज्ञानका विषय होनेके कारण धर्मके विषयमें अच्छे-अच्छे शास्त्रवेत्ताओंकी बुद्धि भी चक्करमें पड़ जाती है—'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।' (गीता ४।१६) इसीलिये श्रीभगवान् मानवतनु धारण करके अपने उपदेशों तथा प्रत्यक्ष आचरणद्वारा धर्माचरणकी सीख देते हैं। जब जाबालि ऋषि श्रीरामप्रभुको धर्मकी ओरसे हटाकर नास्तिकतामय उपदेश करने लगे, तब आपने इसके महाभयंकर परिणामोंको दिखाकर कठोर शब्दोंमें भर्त्सना करते हुए उनकी आँखें खोलीं और धर्मका महत्त्व बतलाया। यह धर्म सत्यसे अभिन्न है और सत्य साक्षात् ब्रह्मस्वरूप ही है—'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।' स्वयं श्रीरामप्रभु उक्त संदर्भमें कहते हैं—

> धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते॥
> सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
> सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्॥
> दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
> वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत्॥
> (वा० रा० २।१०९।१२—१३)

कहनेसे आगमें भी कूद सकता हूँ, तीव्र विष भी खा सकता हूँ और समुद्रमें भी गिर सकता हूँ। महाराज मेरे गुरु, पिता और हितैषी हैं; मैं उनकी आज्ञा पाकर क्या नहीं कर सकता। मैंने भी ऋषियोंकी भाँति निर्मल धर्मका आश्रय ले रखा है। पूज्य पिताजीका जो भी कार्य मैं कर सकता हूँ, उसे प्राण देकर भी करूँगा। पिताजीकी सेवा अथवा उनकी आज्ञाका पालन करना जैसा महत्त्वपूर्ण धर्म है, उससे बढ़कर संसारमें दूसरा कोई धर्माचरण नहीं है'[1]। विमाता कैकेयीने आपके प्रति इतने कटु और कठोर शब्द कहे, जिन्हें सुनकर स्वयं कठोरता भी व्याकुल हो उठी—

निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
(वही, २।४०।१)

इन्हें सुनकर श्रीभगवान्‌की प्रतिक्रिया देखनेयोग्य है—

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन॥
सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥
(वही, २।४०।१-४)

श्रीरामप्रभु स्वयं ही एक अत्यन्त दुर्लभ तनय थे।

आपका भ्रातृप्रेम भी देखनेयोग्य है। सब भाई खान-पान, खेल-कूद, सब बातें साथ ही करते थे, किंतु कुल-परम्पराके अनुसार राज्यका अधिकारी बड़ा भाई ही हो सकता था। यह बात आपको अच्छी नहीं लगी—

बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
(वही, २।९।४)

युद्धके प्रसङ्गमें मूर्च्छित लक्ष्मणजीके लिये आपका विलाप ध्यान देने योग्य है—

सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥
(वही, ६।६०।४)

आप आदर्श पत्नीप्रेमी थे।

आपका यह गुण निम्न चौपाईमें भलीभाँति व्यक्त होता है—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥
(वही, ५।१४।७-८)

आप लोकाराधनतत्पर एक आदर्श राजा थे। लोकाराधन-रूप राजधर्मका पालन करनेके लिये आप सर्वस्वका त्याग कर सकते थे—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥
(उ० रामच० १।१२)

इस प्रकार व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजकीय भिन्न-भिन्न विभिन्न रूपोंमें हम आपको देखते हैं, उन-उन रूपोंमें हमें आपकी धर्ममूलक आदर्श गुणसम्पदा अत्यन्त वैभवशाली रूपमें दिखायी देती है।

७—भविष्यमें धर्मसेतुके पालनकी चिन्ता

लोककल्याणके लिये ही अवतीर्ण भगवान् श्रीरामप्रभुने अपने जीवनकालमें अपने प्रत्यक्ष आचरण और उपदेशोंके द्वारा बड़े प्रयत्नके साथ धर्मसेतु बाँधा। अपने पश्चात् भी इसकी रक्षा होती रहे, इसकी आपको चिन्ता थी; इसलिये आपने भावी भूमिपालोंसे जो सविनय प्रार्थना की, वह आपके चरित्रका एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। आप कहते हैं—

भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला
नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां
काले काले पालनीयो भवद्भिः॥
(स्क० पु०, ब्र०, धर्म० १४।४०)

‘हे भविष्यमें होनेवाले भूमिपालो! यह रामचन्द्र आप लोगोंसे अत्यन्त विनम्रतापूर्वक बारंबार प्रणाम कर याचना करता है कि आपलोग मेरेद्वारा बाँधे हुए धर्मसेतुकी सुरक्षा सदा करते रहें।’

आज लोकतन्त्र राज्यमें प्रजा ही सर्वाधिकारी है। इसलिये प्रत्येक मनुष्यपर इस धर्मसेतुकी रक्षाका दायित्व है। इस दायित्वकी पूर्तिद्वारा ही हम श्रीभगवान्‌के आदेशका पालन करके उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं।

---

१. अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके।
भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे॥
नियुक्तो गुरुणा पित्रा नृपेण च हितेन च।
करिष्ये प्रतिजाने च ……………………॥
(वा० रा० २।१८।२८—३०)

अन्ततक शान्त बने रहे । महाकवि कालिदासने ठीक ही कहा है—

'विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ॥'

(कुमारसं॰ १ । ५९)

'सच्चा धीर पुरुष वही है, जिसके कि चित्तमें विकारोंके निमित्त उपस्थित होनेपर भी विकार उत्पन्न न हों।' श्रीभगवान्‌ने परशुरामजीसे अत्यन्त शान्तभावसे कहा—

नाथ संभुधनु भंजनिहारा । होइहि केउ एक दास तुम्हारा ॥

(मानस १ । २७१ । १)

मर्यादाकी रक्षाके लिये ही आपने पिताकी अनुचित आज्ञाका पालन करते हुए राज्य छोड़कर वनवास स्वीकार किया । वनवासके समय धर्ममर्यादाका पालन करनेके लिये ही आपने महापराक्रमी बालीकी सहायता न लेकर उसे बाणसे मारा (क्योंकि उसने धर्ममर्यादाका उल्लङ्घन किया था) और उसके अन्यायपीड़ित अल्पशक्तियुक्त भाई सुग्रीवके साथ अग्निसाक्षिक मित्रता की ।

एक अन्य प्रसङ्ग लीजिये । रावणका वध होनेपर विभीषण अपने पापात्मा भाईका अन्त्य संस्कार करनेमें हिचकिचाने लगे, किंतु उस समय श्रीभगवान्‌ने उनसे जो कुछ कहा, वह श्रीभगवान्‌के मर्यादापालनका, इतना ही नहीं, सर्व भारतीय संस्कृतिका भी परमोच्च मानबिन्दु है—

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम् ।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥

(वा॰ रा॰ ६ । १११ । १००-१०१)

'मरणपर्यन्त ही वैरभावकी परिसीमा है । वैरभाव भी सप्रयोजन होना चाहिये, निष्प्रयोजन नहीं । प्रयोजनकी पूर्तिके साथ ही वैरभावकी समाप्ति हो जानी चाहिये । इसलिये हे विभीषण ! तुम निःसंकोच होकर इसका अन्त्य संस्कार करो । अब तो यह जैसा तुम्हारा आत्मीय है, वैसा ही मेरा भी है ।'

दीर्घ वनवासके अनन्तर राज्याधिकार प्राप्त करनेपर आपने धर्ममर्यादा निर्वाह हेतु ही अपराधी शम्बूकको देहान्त-शासन दिया । मर्यादानिर्वाहके हेतु ही आपने प्राणप्रिय जनकनन्दिनीका और अपने प्रियतम अनुजका भी परित्याग किया ।

इस प्रकार श्रीभगवान्‌ने अपने जीवनमें पग-पगपर मर्यादाका पालन करके मानव-समाजके सम्मुख एक बहुत ही उत्तम और दिव्य आदर्श उपस्थित किया है ।

९—भक्तवत्सलता और शरणागतपरित्राणपरायणता

अपनी तथा पापके भारसे दबे हुए और पापके अनिवार्यफल तापत्रयसे पीड़ित मानवोंके लिये तो भगवान्‌के चरण और भगवच्चरणारविन्दोंमें प्रीतिरूपा भगवद्भक्ति ही एकमात्र सुगम-से-सुगम उपाय है । पशु, पक्षी, वृक्ष, नारी, राक्षस इत्यादि कोई भी भगवत्कृपाके अयोग्य नहीं । शरणागतवत्सल, करुणानिधान श्रीभगवान्‌ने इन जीवोंको रक्षाके लिये सनद दे रखी है । श्रीभगवान् कहते हैं—

(१) सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

(वा॰ रा॰ ६ । १८ । ३३)

एक बार शरणागत होकर जो कहता प्रभु ! मैं तेरा ।
कर देता मैं अभय उसे सब भूतोंसे यह व्रत मेरा ॥

(२) मम पन सरनागत भय हारी ॥

(श्रीरामच॰ मा॰ ५ । ४३ । ४)

(३) कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू । आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥

(वही, ५ । ४४ । १)

जौं सभीत आवा सरनाई । रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं ॥

(वही, ५ । ४४ । ४)

(४) सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ । जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही । आवै सभय सरन तकि मोही ॥
तजि मद मोह कपट छल नाना । करउँ सद्य तेहि साधु समाना ॥

(वही, ५ । ४८ । १-२)

पक्षिराज जटायु, सुग्रीव हनुमदादि वानर, विभीषणादि राक्षस, निषादराज गुह, शबरी इत्यादि सब आर्त उक्त वचनोंका हृदयसे समर्थन करते हैं । आज भी हम इनकी उक्तियोंका अनुसरण करके स्वयंको कृतार्थ कर सकते हैं ।

१०—स्थितप्रज्ञता

साधारण मानव अपने सुखसे फूल उठता है और अपने दुःखसे उद्विग्न हो उठता है । इतना ही नहीं, कभी-कभी सुख-दुःख दोनोंके उत्कट आवेग उसके लिये प्राणघातक भी बन जाते हैं । किंतु स्थितप्रज्ञ पुरुष सुख-दुःखमें हर्ष-शोकको नहीं प्राप्त होता । ऐसे महापुरुषोंके चित्तमें किसी प्रकारका भाव नहीं होने पाता । हाँ ही

आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽतिविज्ञानिता
वैराग्ये परमा शिवे मज्जनिता त्वय्यस्ति भो राघव॥

'धर्ममें तत्परता, मुखमें माधुर्य, दानमें अत्यन्त उत्साह, मित्रोंके साथ निष्कपटता, गुरुजनोंके प्रति नम्रता, चित्तमें अत्यन्त गम्भीरता, आचारमें पवित्रता, गुणीजनोंके प्रति रसिकता, शास्त्रमें अत्यन्त निपुणता, वैराग्यमें तत्परता, शिवस्मरणमें ध्यान, हे राघव! ये नव गुण आपमें पाये जाते हैं।'

नाटककार शूद्रकने अपने 'मृच्छकटिक' नाटकमें नायक चारुदत्तके निमित्त आदर्श मानवके निम्न गुण दिखाये हैं। अल्पशक्ति मानवोंमें प्रत्यक्ष रूपमें इन गुणोंको परिपूर्णरूपसे पाना असम्भवप्राय ही है। किंतु श्रीभगवान्ने अपने जीवनमें इन्हें परिपूर्ण रूपमें साकार कर दिखाया है। ये दिव्य गुण निम्न श्लोकमें ग्रथित हैं—

दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
आदर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो
ह्येकः श्लाघ्यः स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये॥
(१।४८)

'दीनजनोंके लिये अपने गुणरूपी फलोंसे नम्र हुआ कल्पवृक्ष, सज्जनोंका कुटुम्बी, शिक्षाप्राप्त लोगोंके लिये आदर्श, चारु चारित्र्यकी कसौटी, शीलरूपी सीमासे युक्त समुद्र, सत्कर्मोंका या सत्कारका करनेवाला, किसीका भी तिरस्कार न करनेवाला, पौरुष गुणोंका आकर, सुसभ्य एवं औदार्यसे युक्तात्मा—इस प्रकारकी गुण-सम्पदासे सम्पन्न व्यक्ति ही एकमात्र आदरणीय और प्रशंसनीय है। उससे अन्य तो केवल साँस लेते और छोड़ते हैं।'

श्रीवाल्मीकि-रामायणमें, अयोध्याकाण्डके प्रथम सर्गमें आठवें श्लोकसे लेकर चौंतीसवें श्लोकतक श्रीभगवान्के दिव्य गुणोंका सविस्तर वर्णन किया गया है। किंतु स्थान संकोचवश हम यहाँ उनका केवल निर्देश ही कर देते हैं।

अन्तमें हम स्वनामधन्य ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाजीके शब्दोंमें इस विवेचनका उपसंहार करते हैं— 'श्रीराम सर्वगुणाधार थे, सत्य, सुहृदता, गम्भीरता, क्षमा, दया, मृदुता, शूरता, धीरता, निर्भयता, विनय, शान्ति, तितिक्षा, उपरामता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, मर्यादा, संरक्षकता, एकपत्नीव्रत, प्रजारञ्जकता, ब्रह्मण्यता, मातृ-पितृ-भक्ति, गुरुभक्ति, भ्रातृप्रेम, सरलता, व्यवहारकुशलता, प्रतिज्ञातत्परता, शरणागतवत्सलता, त्याग, साधुसंरक्षण, दुष्टविनाश, निर्वैरता, सख्य एवं लोकप्रियता आदि सभी सद्गुणोंका श्रीराममें विलक्षण विकास था। इतने गुणोंका एकत्र विकास जगत्में कहीं नहीं मिलता। माता-पिता, बन्धु-मित्र, स्त्री-पुत्र, सेवक-प्रजा आदिके साथ उनका जैसा आदर्श बर्ताव है, उसकी ओर ध्यान करते ही मन मुग्ध हो जाता है। श्रीराम-जैसी लोकप्रियता तो आजतक कहीं नहीं देखनेमें आयी।'

मनोहर मुख-कंज

रामचन्द्र-मुख-कंज मनोहर भक्त-भ्रमर-मन-हारक।
मंगल-मूल मधुर मंजुल मृदु दिव्य सहज सुख-कारक॥
नित्य निरामय निर्मल अविरल ललित कलित शुभ सोभित।
पाप-ताप-मद-मोह-हरन, मुनि-मन-सुचि-करन सुसोभित॥
नील-स्याम तनु, धनु कर सोहत, परम दुसह भय नासन।
सुमन-माल सुरभित, मुक्ता-मनि-हार लसत, द्युति भासन॥
पीत-वसन सौंदर्य-सील-निधि भाल तिलक अति भ्राजत।
अखिल-भुवनपति, सुषमा-श्री छवि, काम कोटि-सत लाजत॥

—श्रीहर्षजी हनुमानचन्द्रजी पंड्या

जाते थे। विवाह हो जानेके बाद राजाने उन्हें युवराज बनाना चाहा, किंतु मंथरा दासीके बहकानेसे विमाता कैकेयीने जब उन्हें १४ वर्षका वनवास देनेका वर राजासे माँगा तो विरोधमें एक शब्द भी न कहकर वे तुरंत वन जानेको तैयार हो गये। उन्होंने कैकेयीसे कहा—

'सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥'
(वही, २।४०।४)

निदान समस्त राजवैभव, उत्तुङ्ग प्रासाद और बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंका परित्याग कर लक्ष्मण तथा सीताके साथ वे सहर्ष वनके लिये चल पड़े। जानेके पहले उन्होंने गुरुसे कहलाकर ब्राह्मणों तथा विद्वानोंके वर्षाशनकी व्यवस्था करा दी और भरतके लिये संदेश दिया कि—'नीति न तजिअ राजपदु पाएँ।' (रामच० मा० २।१५१।२) पिता और माताओंकी सुख सुविधाका ध्यान रखनेकी प्रार्थना पुरजनों और हितैषुओंसे करते हुए उन्होंने कहा—

सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जातें रह नरनाहु सुखारी॥
(वही, २।१५१।२)

तथा—

मातु सकल मोरे बिरहँ जेहिं न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाउ तुम्ह करेहु सब पुरजन परम प्रबीन॥
(मा० २।८०)

राम जानते थे कि सीता अत्यन्त सुकुमार हैं, अतः उन्होंने उन्हें अयोध्यामें ही रहनेको बहुत समझाया। पर जब वे नहीं मानीं, तब उन्होंने उन्हें अपने साथ ले लिया और गर्मी, वर्षा, थकान आदिका बराबर ध्यान रखते हुए सहृदय, स्नेही पतिके रूपमें उन्हें भरसक कोई कष्ट नहीं होने दिया। इसी तरह लक्ष्मणको भी पिता, माता और बड़े भाईका अनुराग देकर इस तरह आप्यायित करते रहे कि उन्हें अयोध्या तथा परिजनोंके वियोगका दुःख तनिक भी खलने न पाया। मेघनादके शक्तिबाणसे लक्ष्मणके आहत होनेपर रामको मर्मान्तक पीड़ा हुई और वे फूट-फूटकर रो पड़े। नारीके पीछे भाईका प्राण जानेकी आशङ्कासे उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। धैर्यवान् होते हुए भी वे इस समय परम व्याकुल हो उठे। किंतु उसी समय संजीवनी बूटी लेकर हनुमान्‌के लौट आनेसे किसी तरह लक्ष्मणकी प्राणरक्षा हो सकी।

भरतपर भी रामका वैसा ही स्नेह था। उनकी साधुता एवं निश्छलतापर रामका पूरा विश्वास था। इधर भरत भी उनका पूर्ण सम्मान करते थे और सदा उनकी आज्ञाका पालन करते थे। भरत जब इन्हें लौटा लानेके लिये चित्रकूट पहुँचे, तब रामने उन्हें सत्य और कर्तव्यनिष्ठाका उपदेश देते हुए बड़े प्रेमसे समझाया और सहारेके लिये अपनी खड़ाऊँ देकर सहृदयतापूर्वक विदा किया। वनवासकी अवधि बीतनेमें केवल एक दिन शेष रहनेपर भरतकी दशाका स्मरण कर राम अत्यन्त व्याकुल हो उठे और उन्होंने विभीषणसे पुष्पकविमानकी याचना की, जिससे वे यथासमय अयोध्या पहुँच सकें।

रामके इन्हीं गुणोंके कारण समस्त अयोध्यावासी और पशु-पक्षीतक उनमें अनुरक्त थे। वनवासके लिये प्रस्थान करनेपर भारी संख्यामें लोग तमसा नदीतक उनके साथ दौड़े गये। रामको आधी रातके समय उन्हें सोते छोड़कर छुप-छिपकर वहाँसे कूच कर देना पड़ा। जागनेपर लोगोंको बड़ा पछतावा हुआ। अत्यन्त दुःखित होकर वे अयोध्या लौट आये और वनवासमें अवधिभर रामकी मङ्गलकामनाके उद्देश्यसे नेम, व्रत, देवाराधना आदि करते रहे। उधर नावमें बैठकर रामके गङ्गापार चले जानेपर सुमन्त्र मूर्छित हो गये और उनके रथके घोड़े भी रामवियोगमें व्याकुल हो उठे। उस समय यदि कोई व्यक्ति राम-लक्ष्मणका नामोल्लेख कर देता था तो वे पशु विस्फारित नेत्रोंसे उसकी ओर देखने लगते थे—

जो कह रामु लखनु बैदेही। हिकरि हिकरि हित हेरहिं तेही॥
(वही, २।१४२।४)

पिता दशरथने तो पहले ही कह दिया था कि रामके बिना मेरा जीना सम्भव नहीं और यही हुआ भी। माता कौसल्याको इस बातका उतना दुःख नहीं था कि राम वनगमनकी बात सुनकर भी [illegible] वज्रकी छाती विदीर्ण नहीं हुई, जितनी उन्हें इस बातकी ग्लानि थी कि राम जैसे आज्ञाकारी सुशील पुत्रकी सुखभोगी माता हुई। मतिभ्रमके पूर्व कैकेयीका भी राममें पूर्ण विश्वास था। इसीसे उनके राज्याभिषेककी बात सुनकर उसने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा था—

रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
तस्मात्तुष्टास्मि यद्राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति॥
([illegible])

'मैं भी राम और भरतमें कोई भेद नहीं मानती। अतः यह जानकर कि राजा श्रीरामका अभिषेक करनेवाले हैं, मुझे बड़ी खुशी हुई है।'

[illegible] इस तरहके गुणोंसे [illegible] राम [illegible] मानते थे। उनकी धारणा थी कि जिस [illegible] प्रजा दुःखी रहती है, वह [illegible] अवश्य [illegible] अधिकारी

श्रीरामकी रूपसुधाका आँख मूँदकर पान करती हुई सीताको झकझोरकर उन्हें उस सौन्दर्यको नेत्रोंसे देखनेके लिये विवश किया।[11] श्रीरामका रूप ऐसा अपूर्व है कि उसे स्वयं तो लोग देखते ही हैं, दूसरोंको भी देखकर नेत्रोंका लाभ लेनेकी शिक्षा देते हैं।[12] विवाहके अवसरपर तो श्रीरामके त्रिभुवन-मोहन रूपके दर्शनार्थ शिव, विष्णु, ब्रह्मा, कार्तिकेय, इन्द्र आदि देवगण जनकपुरमें जुट गये थे।[13] सीता-स्वयंवरमें उपस्थित सभी नागरिक अपलक नयनोंसे श्रीरामकी रूप माधुरीका पान कर रहे थे।[14] वनमार्गके पथिकगण एवं ग्रामीण उनके सौन्दर्यको देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। ग्रामीण वधुएँ उत्कण्ठित होकर सीतासे 'स्यामल गौर-किसोर' राजकुमारोंका परिचय प्राप्त करती हैं।[15] और उनके चले जानेपर भी उनकी सुकुमारताका स्मरण करती हुई खिन्न होकर विधिको उलाहना[16] देती हैं तथा यही चाहती हैं—

'जौं मागा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं॥'[17]

तुलसीने भगवान् श्रीरामकी अद्वितीय शक्तिका भी उद्घाटन किया है। उनकी शक्तिके अवलम्बसे तीनों लोकोंके चराचरपर विजय प्राप्त की जा सकती है।[18] जिस समय भगवान् श्रीरामका अवतार हुआ था, उस समय रावण, बाली और परशुराम—ये तीन विश्वविश्रुत योद्धा विद्यमान थे। किष्किन्धाका सम्राट् बाली राक्षसराज रावणसे भी अधिक बली था। उसने उसे बुरी तरह परास्त ही नहीं किया था, अपि तु एक आख्यानके अनुसार अपनी काँखमें छः मासतक दबाये भी रखा था। क्षत्रियोंके जन्मजात शत्रु महामुनि परशुरामने तो कौतुकमें ही रावणको बंदी बनानेवाले महावीर सहस्रबाहुको भी मारकर इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियविहीन किया था। श्रीरामने रावण और बालीका तो वध किया ही, उन्होंने सीता स्वयंवरमें परशुरामका भी मानमर्दन कर उन्हें तपस्याके लिये वनका रास्ता दिखलाया। ये सारे कार्य श्रीरामकी अतुलित शक्ति और अपूर्व वीरताकी पराकाष्ठाके ही परिचायक हैं। उनके बाण खींचते ही समुद्रके हृदयमें ज्वाला उठने लगी थी।[19] उन्होंने करकोंका ही बाण अवसर छोड़ा था[20] और मारीचको 'बिनु फर सर'[21] ही मारा था, जिसकी प्रतिक्रियाएँ अवर्णनीय हैं। उनके बाणोंमें ऐसी अद्भुत शक्ति है कि वे क्षणमात्रमें ही भयंकर राक्षसोंको काटकर रख देते हैं और वे सब लौटकर उनके तरकसमें घुस जाते हैं।[22] श्रीरामकी शक्तिके बलपर ही, रावणके सामने आँख उठाकर भी न देख सकनेवाला विभीषण कालके समान उससे युद्ध करने लगा था।[23] श्रीराममें अनन्त कोटि दुर्गाओंके समान शत्रुओंके संहारकी शक्ति विद्यमान है।[24] श्रीरामने अपनी अपूर्व शक्तिसे ताड़का, खर-दूषण, कुम्भकर्ण, मारीच आदि अत्याचारियोंका भी वध किया। रावण, मारीच आदि राक्षसोंने उनकी अतुलित शक्तिसे ही उन्हें परमात्माके रूपमें पहचाना था।[25] भला, भगवान् श्रीरामसे भी अधिक शक्तिसम्पन्न कौन हो सकता है, जिनके लव, निमेष, परमाणु, वर्ष, युग और कल्प प्रचण्ड बाण हैं और साक्षात् काल जिनका धनुष है।[26]

तुलसीने भगवान् श्रीरामके शीलका ऐसा मार्मिक अङ्कन किया है कि भक्तोंका हृदय स्वतः उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। उनके मनोहर शील-स्वरूपको देखकर, उसका अनुसरण कर मनुष्य अपनी वृत्तियोंको भी उसीके साँचेमें ढालनेके लिये प्रयत्नशील हो जाता है। श्रीरामकी नम्रता एवं सुशीलताके अनुसरणसे ही उसकी कुटिलता एवं दुष्टता धीरे-धीरे दूर होने लगती है और इस तरह वह भक्तिका अधिकारी बनता जाता है। अयोध्यामें श्रीरामराज्याभिषेकका आयोजन हो रहा है। कुलगुरु वसिष्ठ अभिषेककी सफलताके लिये श्रीरामको संयम करनेका आदेश देने आये हैं। भगवान् श्रीराम उनके प्रति जिस असाधारण शिष्टाचार एवं नम्रताका निर्वाह करते हैं, उसे देखकर वे प्रेमसे पुलकित हो जाते

११. मा० १. ३११. १-२।
१२. मा० १. ३११. ६।
१३. मा० १. ३१४. १—८।
१४. मा० १. २४१. १।
१५. मा० २. ११६। २-११ २. ११६।
१६. मा० २. १२०. १-८।
१७. मा० २. १२०. ५।
१८. मा० ५ ४१।

१९. मा० ५ ५७. ६।
२०. मा० ३ [illegible]
२१. मा० ३ २८. ५।
२२. मा० ६. ९८।
२३. मा० ६. ९४।
२४. मा० ७ ९०. ७ ([illegible])।
२५. मा० ३. २९।
२६. मा० १ [illegible] दोहा।

सौन्दर्य, शक्ति एवं शीलकी झाँकी पाकर साधक स्वार्थमय सांसारिक तुच्छ प्रलोभनोंका सर्वथा परित्याग कर देता है। यही कारण है कि उनकी इस झाँकीका दर्शन कर संतमी कोल-भील भी अनायास ही मनकी उसी पवित्र भावभूमिपर पहुँच जाते हैं, जिसपर तपस्वियोंको भी अपनी कठोर साधनाके पश्चात् ही पहुँचनेका सौभाग्य उपलब्ध होता है।

श्रीरामका स्वभाव

(लेखक—आप्त-वैराग्य-मूर्ति महात्मा श्रीरामचन्द्रदासजी शास्त्री)

यस्सेवेन कृतेन किञ्चिदुप कारेणापि संतुष्यति
चित्ते स्मरति कदापि नोऽपकृतयम् नापकाराम् बहून्।
तं वन्दे रघुवंशरत्नमनिशं श्रीरामचन्द्रं प्रभुं
तत्संस्कारविशोधनाय हि मनाग् दिव्यं स्वभावं ब्रुवे॥

'जो एक बार किये हुए स्वल्पमात्र उपकारसे भी भलीभाँति प्रसन्न हो जाते हैं; किंतु इसके विपरीत, लोगोंके द्वारा किये हुए असंख्य अपराधोंको भी कभी मनमें नहीं लाते, उन रघुवंश-तिलक श्रीरामचन्द्र प्रभुके चरणोंमें बारंबार प्रणाम करके आत्मशुद्धिके लिये उन्हींके दिव्य स्वभावका यत्किंचित् वर्णन करता हूँ।'

प्राकृतिक-समस्त-दोष-गन्धशून्य, अशेष-कल्याण-गुणगण भाजन, अहैतुककरुणावरुणालय, भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान् श्रीरामचन्द्र सरकारके अभिषेकार्थ बुलाये हुए राजमण्डलसे मण्डित सभामण्डपमें विराजमान मानवहित पर्यन्तहितसाधक नृपशिरोमणि श्रीदशरथने यह प्रस्ताव रखा कि 'मैं वृद्ध हो गया हूँ, अतः राज्यभार वहन करनेमें असमर्थ होकर श्रीरामजीको युवराजपदपर अभिषिक्त कर देना चाहता हूँ; आप सब सभासदोंकी क्या सम्मति है।'

समस्त सभासद् एक स्वरसे बोले—'हम सब तो श्रीरामजीके राज्याभिषेककी प्रतिदिन प्रतीक्षा करते हैं; अतः आप उनको राज्याभिषिक्त करके हमारे चिराकाङ्क्षित मनोरथको परिपूर्ण कर दीजिये।'

सभासदोंके आन्तरिक भावकी परीक्षा लेते हुए दशरथजी बोले—'सभासदो! मैं धर्मपूर्वक इस पृथ्वीका निरन्तर पालन कर रहा हूँ, समस्त प्रजाको पुत्रके समान मानता हूँ; अतः अनुशासनमें रहते हुए मुझ भूपतिको छोड़कर आपलोग श्रीरामको राजाके रूपमें क्यों देखना चाहते हैं?'

उत्तर देते हुए सभासद् बोले—'श्रीरामजीका स्वभाव लोकोत्तर है। देखिये, वे जब भगवान् नगरकी रक्षाके लिये लक्ष्मणके साथ जब संग्रामभूमिमें जाते हैं, उस समय वहाँ जाकर विजय प्राप्त किये बिना पीछे नहीं लौटते और संग्रामभूमिसे लौटकर पुरवासियोंसे सम्बन्धोंकी भाँति प्रतिदिन उनके पुत्र, अग्निहोत्र, कलत्र, भृत्य, बन्धुवर्ग आदिका कुशल-समाचार पूछते रहते हैं। जैसे पिता अपने औरस पुत्रोंका मङ्गल चाहते हैं, उसी प्रकार मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम समस्त जनताका मङ्गल चाहते रहते हैं। ब्राह्मण आदि वर्णोंसे सदा पूछते रहते हैं कि तुम्हारे सेवकवर्ग तुम्हारी सेवामें तो संलग्न रहते हैं न? और वे श्रीरामजीके दुःखमें दुखी एवं सुखमें सुखी रहते हैं तथा उनके स्वभावमें एक बड़ी विचित्र लोकोत्तरता यह है कि—

कथंचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥

(वा० रा० २।१।११)

"कोई व्यक्ति उनका कभी एक बार भी उपकार कर देता है तो वे उसके उस एक ही उपकारसे सदा संतुष्ट रहते हैं और अपने मनको वशमें रखनेके कारण किसीके सैकड़ों अपराध करनेपर भी उसके अपराधोंका स्मरण नहीं करते।"'

सभासदोंकी अनुमतिसे श्रीरामाभिषेककी तैयारियाँ होने लगीं, किंतु कुब्जाकी कुचालसे प्रभावित कैकेयीकी प्रेरणासे श्रीरामका वनवास हो गया। ननिहालसे आये हुए भरतजी अपनी माताके कुकृत्यसे असन्तुष्ट होकर श्रीरामजीको प्रसन्न करनेके लिये गुरुजन एवं पुरवासियोंके सहित, जब चित्रकूटपर पहुँचे, तब उनकी सेना-सम्पत्तिको पहिचानकर श्रीरामानुज लक्ष्मणजीने भरतके क्रोधमें भरतजीसे कुछ खरी-खोटी बातें सुनानी आरम्भ कर दीं। तब श्रीरामजीने कहा—

न हि ते निष्ठुरं वाच्यो भरतो नाप्रियं वचः।
अहं ह्यप्रियमुक्तः स्यां भरतस्याप्रिये कृते॥

(वा० रा० २।९७।१५)

'देखो, लक्ष्मण! भरतके आनेपर तुम उनसे कोई कठोर या अप्रिय वचन न बोलना। यदि तुमने भरतके प्रति कोई भी प्रतिकूल व्यवहार किया तो वह मेरे ही प्रति किया हुआ समझा जायगा।'

श्रीरामजीने इस कथनसे यह ध्वनि निकलती है कि उनमें और उनके भक्तमें किंचित् भी भेद नहीं समझना

बदलेमें उनके साथ स्वयं भी पापपूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहते। अतः श्रेष्ठ पुरुषको अपनी प्रतिज्ञा एवं सदाचारकी रक्षा ही करनी चाहिये; क्योंकि साधु पुरुष अपने उत्तम चरित्रसे ही विभूषित होते हैं। सदाचार ही उनका आभूषण है। श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि कोई पापी हो या पुण्यात्मा अथवा वधके योग्य अपराध करनेवाले ही क्यों न हों, उनपर दया ही करते रहें; क्योंकि संसारमें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जिससे कभी अपराध होता ही नहीं।'

हनुमान्जी माताके इस लोकोत्तर उत्तरसे प्रसन्न एवं पुलकित होकर बोले—'माताजी! आप रघुवंशभूषण श्रीरामकी धर्मपत्नी हैं। अतः आपका ऐसे लोकोत्तर स्वभावसे सम्पन्न रहना उचित ही है।'

भगवान् श्रीरामका शील

(लेखक—पं० श्रीजगदीशजी शुक्ल, साहित्यालंकार, काव्यतीर्थ)

स्वभावकी सर्वोत्कृष्टता और स्वाभाविक सुकुमारताको 'शील' कहते हैं। यह चमत्कार उत्कृष्टतम रूप तो है ही, हृदयकी स्थायी स्थिति भी है। प्रयत्न करके भी शीलवान् पुरुष अपने स्वभावगत शीलका त्याग नहीं कर सकता। विरोधीके दुर्व्यवहार और अत्याचारसे भी जिसमें विकार नहीं आ सके, मानवताका वही सर्वोच्च गुण 'शील' कहलाता है। इसलिये भगवान्के शीलका सरोवर, नाला, नहर या नद नहीं होता; शीलका सागर ही होता है। ग्रीष्मके कठोर तापसे सारे जलाशय सूख जाते हैं; किंतु समुद्र ज्यों-का-त्यों और जैसा-का-तैसा ही बना रहता है। इसी प्रकार शील भी किसी भी विरोधी या शत्रुके भारी-से-भारी अत्याचार और दुर्व्यवहारसे भी विकृत या प्रभावित नहीं होता—बना-का-बना रह जाता है। इसलिये गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान् रामको 'शीलसिन्धु' ही कहते हैं। चित्रकूटमें भगवान् राम जब अपने गुरु वसिष्ठजीसे मिलनेके लिये चलते हैं, तब गोस्वामीजी कहते हैं—

सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू॥
(मानस २।२४२।१)

धृतराष्ट्रने अपने पुत्र दुर्योधनको शीलका स्वरूप बतलाया था—

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा।
अनुग्रहश्च दानं च शीलमेतत् प्रशस्यते॥
(महाभारत, शान्ति० १२४, शीलनिरूपणाध्याय)

'शरीरसे, मनसे और वचनसे भी किसी जीवका अनिष्ट न करना, सबके ऊपर कृपादृष्टि रखना और यथाशक्ति दान करना 'शील' कहलाता है।' अद्रोह एक [illegible] भाव है। इसका [illegible] स्वरूप है—प्रेम! दूसरोंके प्रति प्रेम होना शीलकी पहली स्थिति है। जब प्रेमोत्कर्ष होता है, तब उसपर दया होना स्वाभाविक है। यही 'दया' शीलकी दूसरी स्थिति है। जिसपर दया आती है, उसके लिये संचय भावनाका क्षुद्र बाँध टूट जाता है और त्याग-वृत्तिका सहज ही उदय हो जाता है। इसलिये 'दान' शीलकी तीसरी स्थिति है। 'प्रेम', 'करुणा' और 'दान' शीलके सहज स्वरूप हैं। प्रेम, करुणा और त्यागका महासमुद्र भगवान् रामके स्वभावमें सदा ही उफनता और लहराता रहता है। अतएव गोस्वामी तुलसीदासका कथन अक्षरशः सत्य है कि 'भगवान् राम शीलके सिन्धु हैं।'

भगवान् रामको पाकर शील भी समर्थ और लोकोत्तर बन गया। केवल व्यवहारमें रहनेवाला शील 'शील' न होकर शिष्टाचार है। दुर्बलका शील भी शीलका साधारण और दुर्बल रूप है; क्योंकि वह मनके अन्तर्द्वन्द्व और विद्रोहके कारण टूट जाता है। शीलका विशेष निखार और चमत्कार तब होता है, जब शील स्वभावमें आ जाता है।

'स्वभाव' वह भाव है, जो किसी भी प्रभावसे प्रभावित न हो। अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होनेवाला और अपनी निन्दा सुनकर क्रुद्ध होनेवाला वस्तुतः प्रशंसक और निन्दकके भावसे प्रभावित होनेके कारण 'प्रभाव'का ही शिकार बनता है; उसमें 'स्वभाव' नामक भाव रहता ही नहीं। 'स्व'का ज्ञान और भान हुए बिना 'स्वभाव' भावका उदय हो नहीं सकता। हम प्रायः अपनी मनोवृत्तियोंको 'स्वभाव' समझते हैं; किंतु 'स्व'का यह स्वरूप [illegible] और [illegible] है। 'स्व' तो एकमात्र भगवान् ही हैं, जो कभी भी [illegible] नहीं हो सकते। भगवान् सत्य और सनातन हैं, अतः उनका भाव भी सत्य और सनातन है। इस प्रकार [illegible] हैं, [illegible] नहीं। [illegible]

भगवान् रामके शैशवके शीलका चमत्कार आप देख चुके। अब किशोर रामके शीलकी अनोखी और मोहक झाँकियाँ लीजिये।

राजा जनककी यज्ञशालामें भगवान् रामने जब शिव-धनुषको तोड़ डाला, तब परशुराम इस घटनामें अपने गुरु शंकरजीका और शिव-भक्त होनेके नाते अपने आपका भी अपमान मानकर आग-बबूला हो गये और घटना-स्थलपर पहुँच गये। परशुरामके कालके समान कराल वेषको देखते ही भयभीत राजा उठ खड़े हुए और अपने अपने पिताके नामके साथ अपना अपना नाम लेकर दण्डवत्-प्रणाम करने लगे—

देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥
(मानस १। २६८। १)

आतङ्कके इसी कठिन वातावरणमें विश्वामित्रजीकी प्रेरणासे रामजी और लक्ष्मणजीने परशुरामके चरणोंमें प्रणाम किया। राम लक्ष्मणकी सुन्दर जोड़ीको परशुरामने देखा और आशीर्वाद दिया। रामजीके अनुपम रूपको देखकर उनकी आँखें स्तम्भित रह गयीं—

रामु लखनु दसरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥
(मानस १। २६८। ४)

टूटे हुए शिव-धनुषके टुकड़ोंको देखकर परशुराम क्रोधातिरेकसे तिलमिला उठे और उन्होंने राजर्षि जनकको 'जड़' कहकर अपमानित करते हुए उनसे पूछा—'मूर्ख जनक! बता, धनुष किसने तोड़ा? उसे शीघ्र दिखा, नहीं तो अरे मूढ़! आज मैं जहाँतक तेरा राज्य है, वहाँतककी पृथ्वी उलट दूँगा'—

अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू॥
(मानस १। २६९। १)

अत्यधिक भयभीत राजा जनक मौन थे। देवता, मुनि, नाग और नगरके सारे स्त्री-पुरुष भयभीत और चिन्तामग्न हो गये। जनकनन्दिनीका एक-एक क्षण एक-एक कल्पके समान लंबा हो गया। रामजीको तो न कोई हर्ष था न विषाद। रामजीने देखा कि सभी लोग भयभीत हो गये हैं, जानकीकी आँखें भर आयी हैं। जनक भयकम्पित हो गये हैं। इसलिये वे नम्र भावसे बोले—

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥
(मानस १। २७१। १)

'शिव-धनुषका तोड़नेवाला आपका कोई सेवक ही होगा।' परशुराम धनुर्भङ्ग करनेवालेको अपना शत्रु समझ रहे थे और उसका वध करनेके लिये कमर कसकर आये थे। जनकजीसे वे कह चुके थे कि उस अपराधीको मुझे दिखा दो, नहीं तो तुम्हारे राज्यकी पृथ्वीको ही उलट दूँगा। रामजी कहते हैं कि धनुर्भञ्जक आपका सेवक है, शत्रु नहीं, रक्ष्य है, वध्य नहीं।'

परशुरामजी रामजीके लोकोत्तर सौन्दर्यसे तो अत्यन्त आकर्षित थे ही, इनके लोकोत्तर शीलसे भी विमुग्ध हो गये। परशुरामको यह विश्वास तो था नहीं कि धनुषको तोड़नेवाला यही दशरथ-कुमार राम है। भयभीत राजा बाहरी शीलका प्रदर्शन करके परशुरामको झुक-झुककर प्रणाम कर रहे थे और रामने भी विनयपूर्वक प्रणाम किया था। राजाओंकी नम्रता भय-प्रेरित थी और रामकी नम्रता शील-प्रेरित, किंतु दोनोंका बाहरी रूप एक ही था। परशुराम सोचते होंगे कि शिवधनुषका भञ्जक तो विश्व-विजयके अभिमानमें मस्तक तानकर कहीं खड़ा होगा—अपने आगे सारे विश्वको तुच्छ समझ रहा होगा। यह सामने खड़ा सौन्दर्य और शीलका सिन्धु राम तो इतना भोला-भाला है कि यह समझ ही नहीं पा रहा है कि शिव-चाप-भञ्जक मेरा सेवक हो सकता है या शत्रु। इसलिये रामजीको समझाते हुए परशुरामजी क्रोधपूर्वक कहते हैं—

सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई॥
सुनहु राम जेहि सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा॥
(मानस १। २७१। ३-४)

परशुराम और रामका संवाद मूर्तिमान् क्रोध और विनयका संवाद है। रामके अतिशय विनयको देखकर यह भ्रम हो सकता है कि राम निर्बल और असमर्थ हैं। जिस शिव-धनुषको उठानेमें पृथ्वीके सारे वीर असमर्थ रह गये, उस धनुषको रामजीने अनायास ही तोड़ डाला, फिर भी दुर्दान्त परशुरामके उग्र क्रोधका रामके मनपर लेश-मात्र कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनकी दृष्टिमें धनुर्भङ्गकी घटना कोई अनोखी घटना हो नहीं। इसलिये वे शिष्ट भाषा विनय और सहज भावसे परशुरामजीसे निवेदन कर रहे थे।

तलवार खूँ से रंग है, अरमान रह न जाय।
बिस्मिल के मन में कोई अरमान रह न जाय॥

और—

कातिलका रास्ता है, बिस्मिलके सिर देंगे।
बिस्मिलका तकाजा है, कातिलको दुआ देंगे॥

शीलका ऐसा सच्चा और पक्का चित्र संसारकी चित्रशाला-में कहीं मिल नहीं सकता। धन्य हैं हमारे प्रभु राम और धन्य है उनका लोकोत्तर शील! भगवान् रामके लोकोत्तर शील और गूढार्थमय संवादसे परशुरामका भ्रम धीरे-धीरे मिटने लगा। भगवान् विष्णुका शार्ङ्गधनुष परशुरामके कंधेसे लटक रहा था, जिसे भगवान् विष्णुके अतिरिक्त अन्य कोई चढ़ा नहीं सकता था। परशुरामने उसी धनुषको रामजीके पूर्ण पुरुषत्वकी परीक्षाके लिये उनके हाथमें दिया। रामजीके हाथका स्पर्श पाते ही वह धनुष स्वयमेव अनायास चढ़ गया और रामजी अवतारी परमपुरुष प्रमाणित हो गये। सच है—

न रुकने की जरूरत है न कोई रोक सकता है।
जिसीमें जितनी मैटर जो है, वह खुद चमकता है॥

अब परशुरामको यह विश्वास हो गया कि राम परम पुरुष हैं, मानव नहीं। अब उन्होंने राम-लक्ष्मणकी सविनय स्तुति की, बार बार उनसे क्षमा माँगी और उनका जय-जयकार करते हुए उन्होंने तपस्याके लिये वनकी राह ली। ब्राह्मण होकर भी क्षत्रियकर्मा होनेका अभिमान उनके सिरपरसे उतर गया और सारे शस्त्रास्त्र त्यागकर वे अब सच्चे ब्राह्मण बन गये। क्रोध पराजित होकर विदा हो गया और शीलकी स्थायी विजय हुई।

रामने अपने शीलके द्वारा परशुरामके हृदयमें अपनी विजयका झंडा गाड़ दिया। सर्वसमर्थ राम भी परशुरामके ढेलेका उत्तर पत्थरसे देने लगते तो यह दो भैंसोंका युद्ध होता और इसमें जो पराजयी होता, वह तो विजयी होता ही, किंतु रामके शीलका लोकोत्तर चमत्कार और विनय-शील लोकजीवनके सामने नहीं आता।

भगवान् रामके शीलकी सबसे बड़ी कसौटी लङ्कामें थी। शत्रुओंका उद्धार करना उतना आश्चर्यकारी नहीं होता, जितना हृदयस्पर्शी और विस्मयकारी होता है सामने नहीं आये हुए विरोधी और आक्रमणकारी दुष्टोंका उद्धार। राम और रावणकी सेनाओंने परस्पर घमासान युद्धका आरम्भ कर दिया है। निर्हेतुक कृपालु राम हनुमान् और अङ्गदको बुलाकर कहते हैं—'तुमलोग युद्ध-मृत राक्षसोंकी लाशोंको मेरे पास रख देना।' योद्धाओंको आश्चर्य होता है कि भगवान् राक्षसोंकी लाशोंको लेकर क्या करेंगे! हनुमान् और अङ्गद छोटे-छोटे राक्षसोंका वध तो करते नहीं थे, वे तो बड़े-बड़े सेनापतियोंका ही सफाया करते थे। कृपालु भगवान्की आज्ञाका पालन आरम्भ हो गया। देखिये—

महा महा मुखिआ जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं॥
(मानस ६ । ४४ । १)

अब उन मृतक शरीरोंका उपयोग प्रभु क्या करते हैं!

कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा॥
(मानस ६ । ४४ । २)

मृतक शरीरोंको पहचानकर विभीषण उनका नाम बतलाते हैं और प्रभु कृपापूर्वक उनको अपना धाम दे रहे हैं। अपना धाम तो अपने ही भक्तमित्रोंको दिया जाता है। यह धाम अपने प्रत्यक्ष अपकारी स्वधर्मसंहारी शत्रुओंको दिया जा रहा है! प्रभुकी कृपासे नरभक्षी, द्विज मांस-भोजी दुष्ट राक्षस उस परमपदको प्राप्त कर रहे हैं, जो योगियोंको भी दुर्लभ है! प्रभुके जिस शीलका खजाना इन अपकारियोंके लिये भी पूरा का पूरा खुल गया है, उस शीलकी समता किससे हो सकती है, कहीं हो सकती है। प्रभुके इस लोकोत्तर शीलसे प्रभावित होकर भगवान् शंकर राम भक्त पार्वतीको सप्रेम समझा रहे हैं—

उमा राम मृदुचित करुनाकर। बयर भाव सुमिरत मोहि निसिचर॥
देहिं परम गति सो जियँ जानी। अस कृपाल को कहहु भवानी॥
अस प्रभु सुनि न भजहिं भ्रम त्यागी। नर मतिमंद ते परम अभागी॥
(मानस ६ । ४४ । ३-४)

शंकरजी पूछते हैं—'हे पार्वति! अपकारी दुष्ट शत्रुको भी भगवान् परमपद प्रदान करनेवाला ऐसा कृपालु इस भारतके सिवा दूसरा है कौन!' इसी प्रकारके शीलके दर्शन मिलते हैं भगवान् श्रीकृष्णमें भी। राक्षसी पूतनाने अपने स्तनोंमें विष लपेटकर दूध पिलाया, किंतु कृष्णको हराकर मारनेके लिये और कृपालु कृष्णने उसे माताकी गति दे डाली। इस

कैकेयीके कारण उन्होंने भरतके लिये युवराजपद त्याग दिया और चौदह वर्षका वनवास ग्रहण किया ।

वन-प्रस्थानके अन्तिम समयमें रामने सुमन्त्रको संदेश देते हुए कहा था—

'मेरी कामना है कि मेरी माता सदैव धर्मका पालन करें और मेरे पिताजीके प्रति श्रद्धाभाव रखें। कैकेयीके प्रति भी उनका व्यवहार हितकर हो और युवराज भरतके प्रति भी वह अपने कर्तव्यको कभी न भूलें।'

भगवान् रामका अपार प्रेम निरपेक्ष कर्तव्यकी प्रेरणा देता है।

भगवान् राममें मानवीय गुण कूट-कूटकर भरे हुए थे। वे सात्त्विक गुणोंके आगार थे। उनका भ्रातृ-प्रेम वास्तवमें अनुकरणीय है।

भगवान् श्रीरामका वानरोंके साथ सख्य-भाव

(लेखक—पं० श्रीजनार्दनजी शुक्ल, साहित्यालंकार, काव्यतीर्थ)

भगवान् श्रीराम और सुग्रीवकी मैत्री तो मैत्रीके आकाशमें सबसे ऊँची उड़ान है। महाकवि भारविने बहुत सोच-विचारकर यह लिखा होगा कि हाथियोंके मित्र सियार नहीं होते—

भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः ।

इस नीतिवाक्यका अर्थ केवल इतना ही है कि बड़ों और छोटोंकी मैत्री नहीं होती—मैत्री बराबरीके लोगोंकी ही होती है। किंतु भारविकी इस उक्तिसे भी सौगुनी सच्ची उक्ति यह है कि मनुष्योंके मित्र बंदर नहीं हुआ करते—

भवन्ति वै कीशसखा न मानवाः ।

हाथी और सियार कम-से-कम समानीय तो हैं—चार पैरोंवाले जानवर तो हैं; किंतु यहाँ तो एक नर है तो दूसरा वानर। एक मानव है तो दूसरा पशु। विनयपत्रिकाकी एक पंक्तिने वानरका कितना अच्छा परिचय दिया है—

कौन सुभग सुसील बानर, जिनहिं सुमिरत हानि ।
(विनय० २१५ । ६)

विनयमूर्ति श्रीहनुमान्‌ने भी अपनी जातिकी अच्छी विशेषता बतलायी है—

प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा ॥
(रामचरितमानस ५ । ६ । १)

नर और वानरकी घनिष्ठ मैत्री देखकर विभीषणको भी बड़ा आश्चर्य हुआ था। तभी तो उन्होंने हनुमान्‌जीसे पूछा था—

नर बानरहि संग [illegible] (राम [illegible]
कहु [illegible] बा[illegible]

सुग्रीवका यह सख्य-भाव रामावतारकी एक बहुत बड़ी विशेषता है। रामके व्यक्तित्वमें—रामकी महामानवतामें यह चमत्कार था, जिसने बंदरोंके ऊपर भी अपना प्रभाव डाल दिया और उनके आचार-विचारको भी अत्यन्त ऊँचा, अत्यन्त विशुद्ध और ज्योतिर्मय बना दिया। किसीने सच कहा है—'जादू वह, जो सिरपर चढ़कर बोले।'

जिस दुनियामें 'आदमीको भी मयस्सर नहीं है इन्साँ होना', उस दुनियामें पशुको भी मानव-धर्ममें दीक्षित करके मानव ही नहीं, महामानव बना देना कोई हँसी-खेल नहीं है—यह तो अनहोनी बात है—नहीं चलनेवाली गाड़ी है। फिर भी महावीर हनुमान्‌को देवत्वके भी ऊँचे सिंहासनपर बैठाकर और सुग्रीवको अपना महामन्त्री बनाकर महामानव रामने उनके काठमें भी पंख लगा दिये और असम्भवको भी सम्भव बनाकर दिखा दिया।

हनुमान्‌जीको जब सीता-हरणकी बात ज्ञात हुई, तब उन्होंने वानरोंके द्वारा सीताजीका पता लगानेके लिये रामजीकी सुग्रीवके साथ मैत्री करा दी। इस मैत्रीका उद्देश्य रामजीके द्वारा बालीका वध कराकर सुग्रीवको आतङ्क-मुक्त करनेका भी था।

हनुमान्‌ने राम और सुग्रीवके बीच आग प्रज्वलित की और अग्निको साक्षी बनाकर राम और सुग्रीव—दोनों ही दृढ़ हृदयसे भुजा फैलाकर आपसमें एक-दूसरेसे मिले। इसके बाद सुग्रीव रामके पास बैठ गये। इस प्रकार दोनोंका सख्य-[illegible] हुआ—

प्रदक्षिणं ततोऽग्निं [illegible] ।
[illegible] स्थिति ॥

"शरीर वासनारूप है । वासनाके बलसे ही यह स्थित है । पुत्र, भाई, बन्धु, स्त्री इत्यादि सब वासनारूप हैं और उसीके पाप और पुण्यकी वासनासे स्थित हैं । वास्तवमें न कोई किसीका पुत्र है, न बन्धु है और न बान्धव इत्यादि है । वासनाओंका क्षय आत्मज्ञानके द्वारा ही होता है ।

"बाल्यावस्था जड और महादुःखदायिनी है । इस अवस्थामें विवेकशून्य होनेके कारण जीवको बड़ा क्लेश होता है । बालक कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी कहता है—'बर्फका टुकड़ा भून दो, मैं खाऊँगा ।' कभी कहता—'चन्द्रमा उतार दो, मैं खेलूँगा ।' और गुरुजीसे तो वह ऐसा डरता है, जैसे गरुडको देखकर सर्प डरता है ।

"युवावस्था परम शत्रु है । इस अवस्थामें जीवको कामरूपी पिशाच आ घेरता है । उसको शान्त करनेके हेतु स्त्रीकी कामना होती है । स्त्री देखनेमें तो बड़ी सुन्दर लगती है, परंतु यथार्थमें वह अस्थि, मांस, रुधिर, मल-मूत्र, विष्ठा इत्यादिका पञ्जर है, जो एक दिन या तो भस्म हो जायगा या पशु-पक्षी आदिका आहार बनेगा । जिस प्रकार सँपेरा सर्पको बिलसे निकालकर मार डालता है, उसी प्रकार स्त्री कामान्ध पुरुषोंको अभिमानसे विमुखकर चौरासी लाख योनियोंमें भ्रमण कराती है । स्त्री विषकी गाँठ है (इसी प्रकार कामासक्त स्त्रीके लिये पुरुष विषकी ग्रन्थि है) ।

विराम मना चञ्चल जैसे ।

"जरावस्था महादुःखदायिनी है । सम्पूर्ण दुःखोंका आक्रमण इसी अवस्थामें होता है । शरीर दुर्बल हो जाता है । इन्द्रियोंकी शक्ति क्षीण पड़ जाती है, कमर झुक जाती है, कूबड़ निकल आता है । स्त्री-पुत्रादि उसे देखकर हँसते हैं और उसका अपमान करते हैं, यहाँतक कि वृद्ध बैलकी तरह उसे त्याग देते हैं और मौत तो सदैव उसके सामने खड़ी रहती है ।

"काल महाबली, महाक्रूर और महापराक्रमी है । यह जो दिखायी दे रहा है, सब उसका आहार है । उसके सामने कोई नहीं ठहरता और न वह किसीपर दया करता है । यह सम्पूर्ण विश्वको एक क्षणमें भक्षण कर लेता है । उसके हाथसे बचना बड़ा कठिन है ।

"मुनीश्वर ! स्त्री पुत्र धन इत्यादि सब अनित्य, मिथ्या हैं । जबतक यह शरीर स्थिर रहता है, तभीतक ये अपने हैं । शरीरके नाश होते ही सब ये सब न जाने कहाँ विला जाते हैं ।

"जगत्‌के पदार्थोंके संसर्गसे बुद्धि मलिन हो जाती है । इस मलिनताको दूर करनेके लिये आत्मज्ञानरूपी चन्द्रमाको प्राप्त करनेकी आवश्यकता है । मुनीश्वर ! जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, उसपर संसारी कामना अपना प्रभाव नहीं डाल सकती । इसलिये मैंने राज्य-वैभव और कुटुम्बादिको त्याग दिया है और निरहंकार तथा विरागी होकर भवसागर पार करनेका विचार किया है ।"

श्रीरामचन्द्रजीके उपर्युक्त सर्वोत्तम वचनोंको सुनकर सम्पूर्ण सभासदों और नर-नारियोंको वैराग्य हो गया—यहाँतक कि पशु और पक्षी भी संसारको असत्य समझने लगे ।

यह प्रत्यक्ष चमत्कार देख विश्वामित्रजीने कहा—"श्रीरामचन्द्रजी ! आपने सब कुछ जान लिया है और मेरे कहनेयोग्य कुछ भी शेष नहीं छोड़ा । अब आपको केवल मार्जनकी आवश्यकता है । इसलिये जो कुछ कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो । श्रीरामचन्द्रजी ! भोगकी इच्छा सबको होती है । इसीका नाम 'बन्धन' है । भोगोंकी वासना त्याग देनेका नाम 'मोक्ष' है । ज्यों-ज्यों जीवको भोगकी अभिलाषा होती है, त्यों-ही-त्यों वह नीचा होता जाता है । भोगकी वासना शान्त होते ही जीव वरिष्ठ हो जाता है, उस समय उसको आत्मानन्दकी प्राप्ति होती है ।

"ज्ञानी लोग किसी फलकी इच्छा नहीं करते, इसीलिये भोगोंका त्याग करते ही उनकी विषयवासना आप-से-आप दूर हो जाती है । जिस प्रकार सूर्योदय होनेसे अन्धकारका अभाव हो जाता है, उसी प्रकार हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपको भोगकी इच्छा नहीं रही । अब तो आप शान्ति चाहते हैं । भगवान् वसिष्ठजी रघुवंशकुलके गुरु और त्रिकालदर्शी तथा परमज्ञानी हैं । उनके उपदेशसे आपको शान्ति मिलेगी । अब वे ही आपको उपदेश देंगे ।"

विश्वामित्रजीके आदेशसे वसिष्ठजीने महाराज दशरथको मोक्षमार्गका उपदेश दिया । उसका सारांश यह है—

"राजन् ! यह सम्पूर्ण जगत् संकल्पमात्र तथा कल्पनामय है । जैसी इसकी भावना होती है, वैसे ही रूप इसे मिलते हैं । पुत्र-कलत्र, बन्धु-बान्धव इत्यादि अनेक पाप और पुण्यकी वासनाओंसे मिले हुए हैं । वास्तवमें न कोई किसीका पुत्र है, न बन्धु है, न बान्धव । यह सब कल्पनामात्र है ।

"जगत्‌के सब पदार्थोंसे ही ममता [illegible] हो गयी है । इसलिये विवेक [illegible] और अन्तर्मुख करके आत्मस्वरूपका [illegible]

मुनिवर विश्वामित्रके ये वाक्य वास्तवमें तो प्रत्येक जिज्ञासुके चित्तकी दशाका दिग्दर्शन कराते हैं। अपना वास्तविक स्वरूप, सच्चा, किसीसे ज्ञात नहीं है; क्योंकि वस्तुतः जीव ज्ञानस्वरूप ही है। और ज्ञानके बिना अन्वेषक और जिज्ञासुकी पहुँच भी नहीं है। साक्षात् अन्वेष्य तो केवल वही है। वास्तवमें तो इस ओर किसीने ही उस ज्ञानमात्रकी उपाधि बनकर उसे आच्छादित कर लिया है। यदि चित्त इससे विमुख हो जाय, इसकी ओरसे उसे परवैराग्य हो जाय, तो यह अनहुआ होनेके कारण अपनी मौत मर जाय। फिर तो उसे यह सत्ताशून्य भासने लगे और इससे मुक्त होनेपर ज्ञान अपने विशुद्ध रूपमें अवशिष्ट रह जाय। फिर तो प्रत्येक ज्ञानमें इस ज्ञानमात्रकी ही झाँकी होने लगे। इसीसे श्रुतिने 'प्रतिबोधविदितम्' कहा है और इसीसे 'अमृतत्वकी प्राप्ति' बतायी है—

'प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।'

(केनोप० २।४)

अतः तत्त्वज्ञानके लिये यह परम आवश्यक है कि साधककी सम्पूर्ण अनात्मवस्तुओंमें अनास्था हो जाय। अनात्म-वस्तुओंमें रमणीयता और महत्ता होनेके कारण ही तो जीव जगज्जालमें फँसा हुआ है। इनका मोह और प्रलोभन ही तो उसे अपने परमाराध्य परमार्थ-तत्त्वकी ओर नहीं देखने देता। इसीसे श्रुति कहती है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

(ईश० १५)

'सत्यका मुख सुवर्णमय पात्रसे (अर्थात् आपात रमणीय भोग्य पदार्थोंसे) ढँका हुआ है। हे जगत्पोषक प्रभु! सत्यधर्मके दर्शनके लिये आप उसे उघाड़ दीजिये।'

इस रमणीयताके भ्रमसे मुक्त होनेपर जिसे ऐहिक और पारलौकिक—किसी भी प्रकारके भोगोंकी लालसा नहीं रहती, उसी भाग्यवान्के विशुद्ध अन्तःकरणमें सहसा ही जिज्ञासा जाग्रत् होती है। इस अवस्थामें आहार-निद्रादिका भी नियम नहीं रहता, शरीरका अनुसंधान छूट जाता है, आगे-पीछेकी कोई चिन्ता नहीं रहती और चित्त सब ओरसे सिमटकर एकमात्र अपने ध्येयके अनुसंधानमें संलग्न रहता है। ऐसी स्थिति अनेकों जन्मोंके सदाचार—विमल पुण्योंके प्रतापसे ही प्राप्त होती है—

'अनेकजन्मसम्भवात् स्वविचारं चिकीर्षति।'

भगवान् रामकी नवकिशोर अवस्था है। वे भारतके सम्पूर्ण तीर्थोंके दर्शन करके लौटे हैं। इसी समय मुनिवर विश्वामित्र अपने यज्ञकी रक्षाके लिये उन्हें ले जानेके उद्देश्यसे महाराज दशरथके पास पधारते हैं। उनके याचना करनेपर एक बार तो महाराज रामके सम्भावित विरहकी व्यथासे व्याकुल हो जाते हैं; परंतु गुरुवर वसिष्ठजीके समझानेपर उन्हें बुलानेके लिये वे दूतोंको भेजते हैं, तब दूत लौटकर इन शब्दोंमें उनकी दशाका वर्णन करते हैं—

देव क्षोणीक्षिताशेषरिपो रामः स्वमन्दिरे।
विमनाः संस्थितो रात्रौ षट्पदः कमले यथा॥
आगच्छामि क्षणेनेति वक्ति ध्यायति चैकधा।
न कस्यचिच्च निकटे स्थातुमिच्छति खिन्नधीः॥

(योग०, वैराग्य० १०। ४-५)

"अपने बाहुबलसे सम्पूर्ण शत्रुओंका मानमर्दन करनेवाले महाराज! रामजी तो इस समय अपने महलमें इस प्रकार अनमने-से बैठे हैं, जैसे रात्रिके समय भौंरा कमलमें बंद हो जानेपर रहता है। 'मैं अभी क्षणभरमें आता हूँ'—यों कहकर वे एकाग्र होकर ध्यान करने लगते हैं और अत्यन्त खिन्नचित्त होनेके कारण किसीके समीप नहीं रहना चाहते।"

तब महाराज दूतोंको सान्त्वना देकर उनसे श्रीरामकी मनोदशाका विशेष विवरण पूछते हैं तो वे बड़े करुणापूर्ण शब्दोंमें उसका इस प्रकार विवरण करते हैं—

रामो राजीवपत्राक्षो यतः प्रभृति चागतः।
सविप्रस्तीर्थयात्रायास्ततः प्रभृति दुर्मनाः॥
यत्नप्रार्थनयास्माकं निजव्यापारमाह्निकम्।
सोऽयमास्पदमाभ्रं करोति न करोति वा॥
स्नानदेवार्चनादानभोजनादिषु दुर्मनाः।
प्रार्थितोऽपि हि नाश्नाति जननाथ यथेप्सितम्॥
लोलान्तःपुरनारीभिः कृतदोलाधिरोहणैः।
न च धारागृहैर्लीलाभिर्धारागृहयन्त्रकैः॥
मणिरत्नमुक्तालेप केयूरकटकावलिः।
नानन्दयति मां राजन् द्यौः पतद्विहगं यथा॥
[illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible]॥
तृष्णामुदितं [illegible] नेत्रं विलपति च।
[illegible] इव [illegible]॥

वाणीसे अतीत है। शब्दके द्वारा उनके तत्त्व और रहस्यका परिचय कौन करा सकता है। अतः उन्होंने स्वयं ही अपने आचरणद्वारा हमें यह बता दिया कि 'यदि तुम सम्पूर्ण अनात्मप्रसंगसे विमुख हो जाओगे तो स्वयं ही तुम्हारा मुख आत्माकी ओर हो जायगा। यदि विश्वमात्रमें तुम्हारी अनास्था हो जायगी तो सर्वसाक्षीमें स्वयं ही आस्था हो जायगी। यदि भोगोंमें तुम्हें कोई आकर्षण नहीं रहेगा तो योग स्वयं तुम्हें आकर्षित कर लेगा। बस, संसारसे मुख मोड़ लो; फिर मैं तो तुम्हारा स्वागत करनेके लिये हर समय ही प्रस्तुत हूँ।'

आत्मविजयी श्रीराम

(लेखक—आचार्य डा० श्रीविश्वम्भुजी)

अयोध्यापुरीमें घोषणा हो चुकी थी कि दूसरे दिन प्रातः ही महाराज दशरथकी आज्ञाके अनुसार श्रीरामचन्द्रको युवराजके पदपर अभिषिक्त किया जायगा। जनता श्रीरामचन्द्रकी वीरता, धीरता, गम्भीरता, नम्रता, धर्म-परायणता आदि आर्यगुणोंको जानती और नित्यके व्यवहारसे पहचानती थी; अतः वह उन्हें हृदयसे चाहती थी। इस शुभ समाचारसे नर-नारियोंके हृदयमें प्रसन्नता और भी बढ़ रही थी। यद्यपि रात्रिमें पहलेसे-पहले घर-घरमें सजावट हो चुकी थी और इधर-उधर सब जगह खुशीसे भरे हुए लोग अगले दिन होनेवाले उस महत्कार्यकी ही चर्चा कर रहे थे। श्रीरामचन्द्रने पिताके इस निश्चयको बहुत ही गम्भीरतासे सुना और शान्त एवं नम्रभावसे स्वीकार किया। वे जानते थे कि राज्यभार उठाना और योग्यतापूर्वक धारण करना अतिकठिन कार्य है। वे हृदयमें भावनामयी शक्तिका आवाहन करनेमें मग्न थे, ताकि जिस परीक्षाके लिये वे बचपनसे तैयारी करते रहे थे, अब उसका समय आ जानेपर उसमें सफलताके साथ उत्तीर्ण हो सकें।

उधर वही मङ्गल विघातिनी आसुरी माया रातमें बैठी थी। उसने हठको शस्त्रकर रात ही-रातमें कपटाग्निकी उग्रज्वाला कैकेयीरूपिणी महामायाको प्रज्वलित करके काम मोहित, वचनबद्ध महाराज दशरथके स्वर्गसम निवासको नरकधाम बना डाला। सूर्योदयके पश्चात् श्रीरामचन्द्रको वहाँ बुलाया गया और जब वे वहाँ पहुँचे, तब उन्हें महाराजकी ओरसे यह आज्ञा सुनायी गयी कि 'तुम्हें वन चौदह वर्षोंके लिये वनवासको जाना होगा और तुम्हारे स्थानपर यहाँ भरतको युवराज बनाया जायगा।'

उन्होंने इस क्षेम-आपत्तिनी एवं सर्वनाशिनी आज्ञाको माता कैकेयीके मुखसे सुना तो वे एकटक पिताकी ओर निहारने लगे। परंतु महाराज उनकी आँखसे आँख मिलानेमें सफल न हो पाये। इसलिये वे समझ गये कि पिताजीकी यह आज्ञा तो सर्वथा अनिष्ट है, परंतु वे मुझसे खिन्न हैं और इसीलिये चुप हैं। हाँ, उनके मुखकी आकृतिसे ऐसा लगता था कि वे यह जानना चाहते हैं कि श्रीरामचन्द्र उनके वचन-बन्धनको सत्य बनाये रख सकेंगे या नहीं। साथ ही कुछ ऐसा भी लगता था कि वे अपने अंदर-ही-अंदर यह चाहते हैं कि रामचन्द्र उस आज्ञाका उल्लङ्घन कर दें और अपने भार राज्यका कार्य सँभाल लें।

परंतु श्रीरामचन्द्रजी अपनी स्वाभाविक गम्भीर मुद्रामें स्थिर थे। उनकी मुखश्रीमें कोई कुम्हलाहट नहीं आयी। उन्होंने माता कैकेयीको इसी भी मुस्कानसे केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझा—'मुझे पिताजीकी और आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। मैं छोटे-सी पिताजीके वचनको कभी झूठा न होने दूँगा। उनका मुझपर पूर्ण अधिकार है। मैं अपने सुख-स्वार्थकी कामनासे कभी भी उनके इस अधिकारका तिरस्कार न करूँगा न होने दूँगा। मैं पितृ-चरणोंमें समर्पित हो चुका हूँ। वे जहाँ चाहेंगे, वहीं रहूँगा और जो चाहेंगे, वह करूँगा। बस, मुझे अब जानेकी अनुमति दीजिये।' इतना कहनेके पश्चात् पिता तथा कैकेयीके चरणोंमें मस्तक झुकाकर श्रीरामचन्द्र बाहर निकल गये।

माता कौसल्याने प्रसन्नताके समयमें श्रीरामचन्द्रसे यह समाचार सुना तो वह बेसुध हो गयी। उन्होंने अपने अधिकारोंको जिनके अधिकारसे सुरक्षा करते हुए श्रीरामको प्रेरणा करनी चाही कि श्रीरामचन्द्र वनको जानेका विचार न करें। श्रीरामने किसी भी मोहकी आसक्ति न अपनी

भगवान् श्रीरामकी लोकप्रियता

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी शर्मा)

यदि हम विश्वके समस्त ग्रन्थों—इतिहास पुराण आदिका अवलोकन करें और प्रत्येक महापुरुषके चरित्रपर विशुद्ध हृदयसे विचार करें तो हम यही पायेंगे कि भगवान् श्रीरामके समान लोकप्रिय जननायक दूसरा कोई नहीं हुआ। मनुष्यकी तो बात ही क्या, उन अजन्मा, निर्विकार, सर्वान्तर्यामी, सर्वव्यापक परम सच्चिदानन्द भगवान्‌के नाना अवतारोंका चरित्र पढ़नेपर भी जन सामान्यके हृदयमें जैसा प्रेमसागर श्रीरामके प्रति उमड़ता दीखता है, वैसा भगवान्‌के अन्य अवतारोंका वर्णन पढ़नेपर नहीं उमड़ता।

अध्यात्म, वाल्मीकि, श्रीतुलसीकृत मानस तथा अन्य सभी रामायणोंमें रामकी लोकप्रियतामें कहीं अपवाद नहीं मिलता। लोकप्रियता प्राप्त होनेके कई कारण तथा साधन होते हैं। कोई अपनी शारीरिक पूर्णता तथा सुन्दरता एवं व्यक्तित्वके कारण लोगोंमें प्रिय होता है तो कोई अपने चरित्रसे, तीसरा अपने ज्ञानसे, चौथा अपनी जन कल्याणकी भावना या परोपकारसे। कोई अपने सगे सम्बन्धियोंमें, कोई अपने आश्रितों अथवा सेवकोंमें, कुछ लोग अपने राष्ट्रमें और कुछ महापुरुष सारे विश्वमें प्रिय होते हैं। परंतु भगवान् श्रीराम इन सबमें ही नहीं, समस्त चेतन तथा जड़ पदार्थोंमें भी प्रिय थे। पृथ्वीपर ही नहीं, वे देवलोकतकमें प्रिय थे।

पत्थर जैसे जड़ पदार्थ भगवान् रामके सम्पर्कमें आनेपर सदेह होकर उनका गुणानुवाद करते देखे जाते हैं—

गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
(मानस, १ । २१० । छं०)

श्रीरामके प्रभावसे पत्थर अपने गुरुत्व गुण गुरुताको छोड़कर जलमें तैरकर उनके लिये मार्ग बनानेमें सहायक होते हैं—

'श्रीरघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।'
(वही, ६ । ३)

पुरुषोत्तम श्रीरामकी लोकप्रियताका वर्णन पूर्णरूपसे करना असम्भव है। यह तो अनन्तकी वस्तु है। जब देखा जाता है कि भगवान् रामको सेतुपरसे जाते जानकर जलचर भी उनके दर्शनकी लालसासे किस उमंग-उत्साहसे उमड़ पड़ते हैं तो हृदय गद्गद हो जाता है—

देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भए सब जलचर बृंदा॥
(वही, ६ । ४ । २)

जड़ पदार्थों तथा जलचरोंमें श्रीरामकी लोकप्रियता देखनेके बाद वनस्पतियोंपर उनका प्रभाव देखें तो स्पष्ट दिखायी देता है कि यहाँ भी वे सर्वत्र समानरूपसे प्रिय हैं—उदाहरण हैं। यथासामर्थ्य वनस्पति-वर्ग—पेड़-पौधे आदि भगवान् श्रीरामके उपकारके लिये, समय असमय उनकी इच्छापूर्तिमें तत्पर मिलते हैं। श्रीरामजीके चित्रकूटमें आ जानेसे यहाँके वृक्ष-लता आदि सभी स्वतः फलयुक्त और फूलयुक्त हो गये—

जब तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयउ बनु मंगलदायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना॥
(वही, २ । १३६ । १)

पुनः देखिये कि जब श्रीराम सेतु रचना करके अपनी सेनाके साथ पार पहुँचकर वानरोंको फल मूल खानेकी आज्ञा देते हैं, तब—

सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी॥
(६ । ४ । २३)

वन्य पशु-पक्षी भी उनके प्रभावसे अछूते नहीं रहे हैं। यह समुदाय भी रामको इतना मानता था कि इनके कारण ही सब प्राकृतिक गुणोंको भी त्यागकर, आपसमें शत्रुभावका त्याग करके, प्रेम और सद्भावसे जीवन व्यतीत करने लगे—

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगतबैर बिचरहिं सब संगा॥
(वही, २ । १३७ । २)

प्रेमकी पराकाष्ठा देखिये कि ये पशु भी भगवान्‌को प्रेमके साथ देखते हैं, जिन्हें मारनेके लिये वे आखेटक रहे हैं—

[illegible]॥
(वही, [illegible])

क्या इस कोटिकी लोकप्रियता किसीकी सम्भव थी ?

रुचिर चौतनीं सुभग सिर मेचक कुंचित केस ।
नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस ॥

(श्रीरामच० १ । २१८ । २-४; २१९)

अर्थात् लक्ष्मणसहित श्रीरामके वस्त्र पीले रंगके हैं, कमरके पीले दुपट्टोंमें तरकस बँधे हैं । हाथोंमें सुन्दर धनुष और बाण शोभायमान हैं । श्याम और गौर वर्णके शरीरोंके अनुरूप क्रमशः सुन्दर श्वेत और रक्त चन्दनके आड़े टीके हैं । गोरे और साँवले रंगकी मनोहर जोड़ी है । सिंहके समान पुष्ट गर्दन (गलेका पिछला भाग) है, विशाल भुजाएँ हैं । चौड़ी छातीके ऊपर अत्यन्त सुन्दर गजमुक्ताकी माला है । सुन्दर लाल कमलके समान नेत्र हैं । तीनों तापोंसे मुक्ति देनेवाला चन्द्रमाके समान मुख है । कानोंमें सोनेके कर्णफूल शोभायमान हैं, जो दृष्टिगोचर होते ही देखनेवालोंके चित्तको मानो चुरा लेते हैं । उनकी चितवन (दृष्टि) बड़ी मनोहर है और भौंहें तिरछी एवं सुन्दर हैं । मस्तकके ऊपर तिलककी रेखाएँ ऐसी सुन्दर हैं, मानो मूर्तिमती शोभापर मुहर लगा दी गयी हो । सिरपर चौतनी—चौकोनी टोपियाँ हैं, काले और घुँघराले बाल हैं । दोनों भाई मस्तकसे लेकर शिखातक (एड़ीसे चोटीतक) सुन्दर हैं और सारी शोभा जहाँ जैसी चाहिये, वैसी ही है ।

वर्णनसे यह स्पष्ट है कि लक्ष्मणके साथ-साथ श्रीरामने शरीर-सौन्दर्यपर भी ध्यान दिया । प्राकृतिक शोभाके साथ-साथ वस्त्राभरण तथा शृङ्गार दोनोंके शरीरके सौन्दर्यको द्विगुणित कर देते हैं ।

विवाहके समय श्रीरामका रूप-वर्णन—

स्याम सरीर सुभायँ सुहावन । सोभा कोटि मनोज लजावन ॥
जावक जुत पद कमल सुहाए । मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए ॥
पीत पुनीत मनोहर धोती । हरति बाल रबि दामिनि जोती ॥
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर । बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर ॥
पीत जनेउ महाछबि देई । कर मुद्रिका चोरि चितु लेई ॥
पिअर उपरना काखासोती । दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती ॥
नयन कमल कल कुंडल काना । बदनु सकल सौंदर्ज निधाना ॥
सुंदर भृकुटि मनोहर नासा । भाल तिलकु रुचिरता निवासा ॥

(श्रीरामच० १ । ३२६ । १-४)

अर्थात् श्रीरामका साँवला शरीर स्वभावसे ही सुन्दर है । उसकी शोभा करोड़ों कामदेवोंको लज्जित करनेवाली है । महावरसे युक्त चरण-कमल बड़े सुहावने हैं, जिनपर मुनियोंके मन-भ्रमर छाये रहते हैं । पीले रंगकी पवित्र और सुन्दर धोती प्रातःकालके सूर्य और बिजलीकी ज्योतिको हर लेती है । कमरमें सुन्दर किङ्किणी और कटिसूत्र हैं । विशाल भुजाओंमें सुन्दर आभूषण हैं । पीले रंगका जनेऊ महान् शोभा दे रहा है । हाथकी अँगूठी चित्तको चुराये लेती है । पीला दुपट्टा काँखासोती (जनेऊकी तरह) शोभित है, जिसके दोनों छोरोंपर मणि और मोती लगे हुए हैं । कमलके समान सुन्दर नेत्र हैं, कानोंमें सुन्दर कुण्डल हैं और मुख तो सारी सुन्दरताका घर ही है । सुन्दर भौंहें और मनोहर नासिका है । ललाटपर जो तिलक है, वह सुन्दरताका घर है ।'

महावर, पीली धोती, किङ्किणी, कटिसूत्र, करभूषण, अँगूठी, पीला दुपट्टा, कुण्डल, तिलक आदिसे श्रीरामका वस्त्रप्रेम स्पष्टरूपमें यहाँ प्रतिभासित होता है । श्रीराम अपने शरीरके प्रति निश्चय ही उदासीन नहीं थे, अपितु लौकिक मान्यताके अनुसार उन्होंने अपनेको सजाया और सँवारा ।

श्रीरामने मोददायक सुखद आकृति प्रदान करनेके प्रयत्नमें कलाको अधिष्ठित देखा (Art is an attempt to create pleasing forms—Herbert Read) और अपने क्रीडा-कौतुकके माध्यमसे कलाके विभिन्न रूपोंका प्रदर्शन किया । शास्त्रवर्णित कलाके सभी भेदों (राम-कथाके प्रसङ्गोंमें कौतुक, प्रबन्धकोंमें वर्णन, धर्मोपदेशोंमें [illegible]) का उन्होंने [illegible] अभ्यास किया अथवा नहीं—यह गोस्वामी तुलसीदासकी रचनाओंसे स्पष्ट नहीं है; पर कलाके अधिकांश भेदोंका उन्हें ज्ञान था—यह हम निर्विरोध स्वीकार कर सकते हैं । पेंटिंग कहना यदि कला है तो श्रीराम इस कलामें पारंगत थे—

[illegible] कुँअर कर [illegible] ।
[illegible] बिरचहिं [illegible] ॥

(गीतावली० १ । १०७)

अर्थात् श्रीराम आदि राजकुमार सुन्दर और [illegible] घोड़ोंको [illegible] अनुसार [illegible] नहीं । [illegible] हैं ।

[illegible] यदि कला है तो श्रीरामने [illegible] अनुजोंके साथ [illegible]

को सुख प्रदान करे, वह कला है।' इस स्वरूपमें कलाका व्यापक रूप हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। श्रीराम कलाके इस व्यापक रूपको स्वीकार करते हैं। विवाहके अवसरपर भिन्न भिन्न प्रकारके बाजोंका वादन सुनते हैं और आनन्द प्राप्त करते हैं, भिन्न भिन्न प्रकारके दृश्य देखते और सुख पाते हैं, इत्यादि। श्रीराम शिल्प और संगीतके निष्णात पंडित हों अथवा नहीं, पर शिल्प और संगीतसे श्रीरामका विरागभाव कहीं भी सिद्ध नहीं होता।

धार्मिक युद्धके प्रवेशकारके रूपमें श्रीराम कला-प्रेमीकी संज्ञा पा सकते हैं। वाल्मीकि मुनिने इनके सम्बन्धमें कहा है—वेदवेदान्ततत्त्वज्ञो धनुर्वेदे च निष्ठितः। (वा० रा० १।१।१४) अर्थात् श्रीराम सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ थे, पर धनुर्वेदमें वे असाधारण निष्णात थे। गोस्वामी तुलसीदासके राम इससे भिन्न नहीं हैं। विनयशील आदर्श कलाप्रेमीके रूपमें श्रीरामने धनुर्भङ्गके पश्चात् आये हुए परशुरामको सम्बोधित कर कहा—

देखि कुठार बान धनु धारी। भै लरिकहि रिस बीर बिचारी॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभायँ उतरु तेहिं दीन्हा॥
जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी॥
हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥
देव एकु गुनु धनुष हमारें। नव गुन परम पुनीत तुम्हारें॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥
(रा० च० मा० १।२८१।१-४)

अर्थात् हे प्रभो! आपके कुठार, बाण और धनुष धारण किये देखकर और वीर समझकर बालकको क्रोध आ गया। वह आपका नाम तो जानता था, पर उसने आपको पहचाना नहीं। अपने वंशके स्वभावके अनुसार उसने उत्तर दिया। यदि आप मुनिकी तरह आते तो हे स्वामी! बालक आपके चरणोंकी धूलि सिरपर रखता। अनजानेमें जो भूल हुई, उसको क्षमा कर दीजिये। ब्राह्मणके हृदयमें बहुत अधिक दया होनी चाहिये। नाथ! हमारी और आपकी बराबरी कैसी? कहिये न, कहाँ चरण और कहाँ मस्तक! कहाँ मेरा राममात्र छोटा-सा नाम और कहाँ आपका परशुसहित बड़ा-सा नाम। हे देव! हमारे तो एक ही गुण (डोरी) से युक्त धनुष है और आपमें परम पवित्र शम, दम, तप, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता—ये नौ गुण हैं। हमारे अपराधोंको आप क्षमा कीजिये।

स्पष्ट है, श्रीरामने शालीनतापूर्वक यहाँ परशुरामके क्रोधको शमित करनेका प्रयास किया है—अपनेको नीचा दिखलाकर और परशुरामको ऊँचा बतलाकर। कुशल व्यक्ति ही ऐसे वचनका प्रयोग कर सकता है।

श्रीरामने कलाको स्थूल मनःस्थितिकी उत्पत्तिके रूपमें स्वीकार नहीं किया, अपितु उसे सात्त्विक मनःस्थितिकी उत्पत्तिके रूपमें माना। श्रीरामकी दृष्टिमें कला परम विचार (Idea) का व्यवहार रूप है। यह उत्तरोत्तर उत्कर्षको प्राप्त होती है। स्थूल और सूक्ष्म—दो मुख्य रूपोंमें यह हमारे सामने आती है। आकांक्षा (Aspiration), अशान्ति (Disquiet), अस्पष्टता—रहस्यमयता (Mystery) तथा परिणति (Sublimation) के सोपानसे होता हुआ विचार कलारूपमें हमारे मन-प्राणोंको छूता है। कला सुन्दरका आवरण है, प्राकृतिक सौन्दर्यका मनुष्यकृत प्रतिरूप है, पर वास्तविक पदार्थोंसे बढ़कर हम उसका रस लेते हैं और ग्रहण करते हैं। विनम्रता, सरलता, शालीनता आदि आन्तरिक गुणोंके साथ यह मोहक भी होती है। कलाका यह व्यापक रूप निःसंदेह श्रीरामको अस्वीकार नहीं होगा, जब कि वे सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ, नीतिनिपुण, आचार-कुशल, धर्म-वेत्ता, धर्मवीर पुरुषोत्तमके रूपमें स्वीकार किये जाते हैं। श्रीराम स्वरूपसे कलानिधानके प्रतिरूप नहीं कहे जा सकते, पर विभिन्न उपदेशों तथा कार्योंसे कलाप्रेमक अवश्य सिद्ध किये जा सकते हैं। उनका युद्ध-प्रेम, पुष्पकविमान-प्रेम, चित्र-प्रेम, वर्ण-प्रेम, वस्त्र-प्रेम आदि इसी सन्दर्भमें विचार और विवेचनके विषय हैं।

भगवान् श्रीरामकी आदर्श राजनीति

(लेखक—श्रीशंकरदयालजी श्रीवास्तव)

भगवान् रामके सम्बन्धमें प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। रामकथा तथा रामचरितका आश्रय लेकर अनेक ग्रन्थोंका प्रणयन हुआ। गोस्वामी तुलसीदासने रामचरितमानसमें लिखा है—

> राम कथा कै मिति जग नाहीं ।..................॥
> नाना भाँति राम अवतारा । रामायन सत कोटि अपारा ॥
> (१ । ३३ । ३)

अर्थात्—'संसारमें रामकथाकी कोई सीमा नहीं, वह अनन्त है। श्रीरामके अनेक प्रकारके अवतार हुए हैं, अतः रामायण भी अगणित हैं।' वाल्मीकिरामायण एवं अध्यात्म-रामायणके अतिरिक्त योगवासिष्ठ एवं महाभारतमें तथा अग्निपुराण, नरसिंहपुराण आदि कई पुराणोंमें रामचरितका वर्णन मिलता है। तुलसीकृत रामायण भी बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित है। अन्य अनेक काव्य ग्रन्थ भी हिंदीमें लिखे गये हैं। संस्कृत और हिंदीमें ही नहीं, अन्य कई भारतीय भाषाओंमें भी राम-काव्योंकी रचना की गयी है। वाल्मीकिमुनि भगवान् रामके समकालीन थे। नारदसे ही उन्होंने रामकथा और राम-महिमा-गाथा सुनी थी, बल्कि राम और उनके परिवारके अनेक सदस्योंसे भी उनका सम्पर्क हुआ था। महाभारतके प्रणेता महर्षि वेदव्यास त्रिकालदर्शी थे। अतः उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह तथ्यपूर्ण और विश्वसनीय ही कहा जायगा। गोस्वामीजीने नानापुराण निगमागमके आधारपर अपनी लोकप्रिय रामायणकी रचना की। रामायण, रामकाव्य तथा रामकथाने वियमाण हिंदू-जातिको बड़ा बल दिया। हिंदू-धर्म, हिंदू-संस्कृति, हिंदुओंके आचार-विचार तथा जीवन-परम्पराको सुरक्षित रखनेमें भी उनसे बड़ी सहायता प्राप्त हुई।

श्रीरामकी राजनीति

यद्यपि भगवान् रामकी राजनीतिका सम्बन्ध है, कोई ऐसा ग्रन्थ देखने-सुननेमें नहीं आया, जिसमें रामके राजनीतिक विचार तथा सिद्धान्त संगृहीत हों, अथवा जिसमें उनकी शासनव्यवस्थाका विशद वर्णन हो। वाल्मीकिमुनि तथा गोस्वामी तुलसीदासने रामराज्यका जो वर्णन किया है, उससे सामाजिक व्यवस्था ही अधिक प्रकट होती है, राजनीतिक व्यवस्था बहुत कम। श्रीरामकी राजनीति विषयकी सामग्री रामायणों तथा राम-साहित्यसे सम्बन्धित अन्य ग्रन्थोंमें यत्र-तत्र बिखरी हुई पायी जाती है। इस प्रसङ्गमें हम एक बात और कहेंगे। रामका राज्याभिषेक वैदिक मन्त्रोंके साथ सम्पन्न हुआ था। इससे स्पष्ट है कि वेद राम-कालसे भी पहलेके हैं। वैदिक कालमें जो राजधर्म, राजनीतिक परम्परा तथा शासन-पद्धति प्रचलित थे, उनका प्रचलन दीर्घकालतक रहा। रामराज्यके समयमें भी वे बातें चलती रही हों तो इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं है। ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा यजुर्वेदके कतिपय मन्त्रों तथा मनुस्मृति, शुक्रनीतिसार, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थोंमें इस बातका प्रचुर प्रमाण मिलता है कि प्राचीन कालमें लोकतन्त्रकी पद्धति प्रचलित थी। किंतु उस लोकतन्त्रमें राजा भी होता था—और उस राजाको राज्य-व्यवस्थामें आदर एवं सम्मानका स्थान प्राप्त होता था। केवल राजाके अस्तित्वके आधारपर यह तर्क नहीं दिया जा सकता कि वह लोकतन्त्र नहीं, राजतन्त्र था। राजतन्त्रमें राजाको अनियन्त्रित अधिकार प्राप्त होते हैं किंतु प्राचीन भारतमें ऐसा नहीं था। राजा अपने अमात्यों (मन्त्रियों), सभासदों तथा प्रजाजनोंके परामर्शसे राजकाज चलाता था। राजाका अस्तित्वमात्र राजतन्त्रका द्योतक माना जाय तो इंग्लैंड भी राजतन्त्र ही कहा जायगा। किंतु राजाके रहते हुए भी इंग्लैंड लोकतन्त्रीय राज्य ही माना जाता है। जापान भी एक लोकतन्त्रीय राज्य है, किंतु वहाँ भी सम्राट्का पद बना हुआ है।

धर्म और नैतिकता

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामकी राजनीति धर्म और नैतिकतापर आधारित थी। उसमें सदाचार और सत्याचरणकी प्रधानता थी। आधुनिक राजनीतिमें धर्मको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा जाता है और कहा जाता है कि राजनीतिको धर्मसे बिलकुल पृथक् रखना चाहिये। धर्मको संघर्ष और विग्रहका कारण माना जाता है, इसीलिये राजनीतिक मामलोंमें उसे कोई महत्त्व नहीं दिया जाता। उसे राजनीतिसे अलग रखनेमें ही समाजका कल्याण समझा जाता है। स्वतन्त्र भारतके संविधानमें भी राज्यका कोई धर्म नहीं माना गया है। उसे 'धर्म-निरपेक्ष राज्य'की संज्ञा दी गयी है। सभी नागरिकोंको अपने-अपने धर्मके अनुसार चलने तथा पूजा-उपासना

परम धर्म समझा। उनकी उस समयकी मनःस्थिति अत्यन्त उदात्त थी। उस सम्बन्धमें उनके मुखारविन्दके सम्बन्धमें गोस्वामीजीने बहुत ही ठीक लिखा है—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत-
स्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
(मानस २। २ श्लोक)

—अपना राज्याभिषेक होनेकी बात सुनकर न तो श्रीरामचन्द्रजी हर्षसे फूल उठे और न वनवाससे उनका मुख मलीन हुआ—वे कितने बड़े स्थितप्रज्ञ थे, समबुद्धियुक्त एवं द्वन्द्वातीत थे। उन्हींकी तरह भाई भरतको भी राज्यका कोई लोभ नहीं था। तभी तो अपने राज्याभिषेककी बात स्वीकार न करके रामचन्द्रजीको वनसे लौटा लाने और राजसिंहासनपर बैठानेके लिये वे दल-बलसहित चित्रकूट पहुँचे, किंतु किसीका आग्रह-अनुरोध श्रीरामको उनके संकल्पसे डिगा नहीं सका। यह भलीभाँति स्पष्ट हो जानेपर भी, कि वे चौदह वर्षकी वनवास-अवधिके समाप्त होनेके पूर्व अयोध्या कदापि नहीं लौटेंगे, भरतजी सिंहासनपर बैठकर शासन करनेके लिये सहमत नहीं हुए। रामजीकी पादुका लेकर वे चित्रकूटसे लौट गये और राजधानी अयोध्याके समीप नन्दिग्राममें उसकी स्थापना करके बड़े भाईकी ओरसे राजकाज चलाने लगे। वे राज्यको भगवान् रामकी धरोहर, पराई वस्तु मानते थे और एक संन्यासीकी भाँति वल्कल और मृगचर्म धारणकर कुटीमें रहते थे। चौदह वर्ष बितनेके पश्चात् श्रीरामचन्द्रके वापस आते ही भरतजीने उनके चरणोंमें पादुका पहना दी और राज्यसूत्र उन्हें सौंप दिया। बड़ी धूमधामके साथ उन्होंने श्रीरामजीका राज्याभिषेक सम्पन्न कराया। वाल्मीकिरामायणके अनुसार वनगमनकी अवधिमें भरतने राजकोषकी दसगुनी वृद्धि की।

श्रीरामचन्द्रजीको राज्य और धनके लिये लोभ होता तो बालिवधके बाद राज्य सुग्रीवको न देकर स्वयं ले सकते थे। इसी प्रकार लङ्काके पतनके बाद उसका राज्य भी अधिकृत कर सकते थे। किंतु श्रीरामने पहले ही विभीषणको लङ्काधिप बनानेका वचन दे रखा था। वचन ही नहीं दिया था, अभिषेक भी करवा दिया था। रावणके वधके बाद श्रीरामने अपने वचनको पूरा किया और विधिवत् विभीषणका राज्याभिषेक कराया। सत्ताके प्रति अनुचित मोह और आसक्ति न होनेका एक बड़ा कारण कुलकी परम्परा, संस्कार, शिक्षा, सदाचार आदि था। त्याग भारतीय संस्कृतिका एक महामन्त्र रहा है और त्यागके लिये संयम आवश्यक होता है। आर्य संस्कृति, जो आध्यात्मिक संस्कृति थी, परमार्थपरक ही अधिक रही है, स्वार्थपरक नहीं। आग्नेय महापुराणमें श्रीरामचन्द्रजीद्वारा लक्ष्मणको जो राजनीति उपदिष्ट की गयी है, उसमें कहा गया है कि 'बाहर और भीतरसे शुद्ध रहकर, सब आस्तिकता (ईश्वर तथा परलोकपर विश्वास) द्वारा अन्तःकरणको पवित्र बनाये, गुरुजनोंका ऐकान्तिक भक्तिसे सम्मान करे।' यह भी कहा गया है कि 'राजा जितेन्द्रिय सम्पन्न होकर आत्मज्ञानका चिन्तन करे।' ऐसी शिक्षा और आचारके होते हुए राज्यलोभके लिये मोह कैसे उत्पन्न हो सकता है। महाराज दशरथका परिवार एक आदर्श संयुक्त परिवार था और सभी भाइयोंमें परस्पर प्रगाढ़ प्रेम था, फिर उसमें राज्यका लोभ और संघर्ष हो ही कैसे सकता था। आजके राजनीतिज्ञ सत्ताके पीछे पागल हैं। उनका अपना कोई स्थिर सिद्धान्त और आदर्श नहीं है। वे सत्तामें आने और पद पानेके लिये निर्लज्जतापूर्वक निम्नस्तरपर उतर सकते हैं। जबतक शिक्षा-पद्धतिमें आमूलचूल परिवर्तन नहीं किया जाता, आर्य-संस्कृतिके आधारपर उसका पुनर्गठन नहीं किया जाता और शिक्षाक्रममें धर्मको समुचित स्थान नहीं दिया जाता और राजनीतिमें त्याग, सदाचार और धर्मको सर्वोपरि महत्त्व नहीं दिया जाता, तबतक स्वार्थ, मोह, पद-लोलुपता, सर्वस्वलिप्सा, भ्रष्टाचारिता, स्वार्थपरता तथा सिद्धान्तहीन पद-परिवर्तनकी अनुचित राजनीति बदल नहीं सकती।

रामराज्यमें लोकतन्त्र

यद्यपि कहनेके लिये उस समय राजतन्त्र स्थापित था और वंशानुगत शासनका क्रम चलता था, तथापि शासनमें लोकतन्त्रके लोकतन्त्रीय भावनाओंसे ओतप्रोत होता था। यद्यपि शासनका आधुनिकरूपमें निर्वाचन नहीं होता था, किंतु मन्त्रियों, पुरवासी आदिके परामर्शसे राजपदपर नियुक्ति की जाती थी। श्रीरामचन्द्रजीका राज्याभिषेक करनेका निर्णय भी गुरु वसिष्ठ तथा अन्य मन्त्रियोंके परामर्शसे किया गया था। सभासदों एवं पुरवासियोंकी उसमें सहमति भी थी। श्रीरामजी अपने गुण, स्वभाव, व्यवहार तथा अपनी धर्मपरायणताके कारण सबके लोकप्रिय बन चुके थे। इसलिये विरोध या असहमतिका कोई प्रश्न ही नहीं था। रामके वनवास-कालमें उनकी ओरसे भरतजी राजकाज देखते, पर निर्णय चित्रकूटमें भरी सभामें किये

गया था। वाल्मीकिरामायणके अनुसार जब अपने बड़े भाई बालीका वध हुआ समझकर सुग्रीव उनकी जगह राजपदपर प्रतिष्ठित हो गये, तब उन्होंने भी रामसे बताया कि 'मन्त्रियोंने एक सभा करके मुझे राजा बना दिया।' बादमें बाली जब जीवित लौट आये, तब विनीतभावसे सुग्रीवने कहा कि 'अराजकता बचानेके लिये मैंने राजमुकुट ग्रहण करना स्वीकार किया।' किंतु बालीने जनसभा बुलाकर सुग्रीवपर विश्वासघात करनेका आरोप लगाया और उन्हें राज्यसे निष्कासित कर देनेका आदेश जारी करवाया। इससे स्पष्ट है कि राजा स्वेच्छाचारी नहीं होते थे। वे राजसभा तथा मन्त्रियोंसे परामर्श करके कोई निर्णय करते थे। लङ्काधीश रावणने भी आक्रमणका भय उपस्थित होनेपर राजसभा बुलाकर परामर्श किया था कि क्या किया जाय।

भगवान् राम कितने बड़े लोकतन्त्रवादी थे और जनमतका कितना अधिक आदर करते थे, यह उस प्रकरणसे स्पष्ट हो जाता है, जब उन्होंने पुरवासियोंकी एक महती सभा बुलाकर प्रजाको उपदेश दिया। उन्होंने कहा—

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥
....
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥
(मानस ७ । ४२ । २-६)

इस कथनसे कितनी विनम्रशीलता, कितनी निरहंकारता, कितनी निश्छलता और उदारता प्रकट होती है। अपनी प्रभुता और राजसत्ताका भगवान् रामको लेशमात्र भी गर्व नहीं था। उन्होंने सभामें उपस्थित सभी सभासदों तथा पुरवासियोंको इस बातकी स्वतन्त्रता दे दी कि यदि उनके कथनमें कोई बात अनुचित या नीति विरुद्ध जान पड़े तो बिल्कुल भयरहित होकर वे उन्हें टोक दें, रोक दें और अपनी असहमति प्रकट कर दें। आज तो अपनेआप निर्वाचित मन्त्री भी, जो सिद्धान्ततः जनताका सेवक माना जाता है, यही भावना करते या ऐसेसे दूर रहते हुए अपने भ्रष्टाचारोंको नहीं देख पाता। इसीलिये हम निःसंकोचभावसे यह कहते हैं कि राजा होते हुए भी श्रीरामचन्द्रजी पूरे लोकतन्त्रवादी थे, जनताके और लोकतन्त्रके सच्चे रूपमें सेवक बनकर काम करते थे।

भगवान्के शासनमें भी इस बातका प्रचुर प्रमाण मिलता है कि भगवान् रामके राज्यमें धर्म और लोककल्याणका वातावरण व्याप्त था और सर्वसाधारणकी सुख सुविधाका पूरा ध्यान रखा जाता था। लोगोंके जीवन निर्वाहका स्तर ऊँचा था। निपट निर्धनता और असहायताकी स्थिति कहीं नहीं थी। कोई कष्टमय जीवन बितानेके लिये विवश नहीं था। समाजमें अधिक भेद-भाव और विषमता नहीं थी। जनतामें किसी प्रकारकी अशान्ति अथवा असंतोष नहीं था। सभी सुखी थे। सभी शान्तिके साथ सदुपयोगपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। लोगोंमें (आजकलकी तरह) पारस्परिक कलह या संघर्ष नहीं था। वैर-वैमनस्य लोगोंमें नहीं था। रामचरितमानसमें रामराज्यके वर्णनका कुछ अंश उद्धृत करनेका लोभ हम संवरण नहीं कर सकते—

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥
(७ । १९ । ४; ७ । २०; ७ । २० । १)

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
(७ । २० । ३)

रामराज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥
सब उदार सब पर उपकारी।.........................॥
(७ । २१ । १-२)

जिस शासनके अन्तर्गत सम्पूर्ण प्रजावर्ग सुखी एवं संतुष्ट हो, जिसमें अर्थाभाव और [illegible] हो, सभी नागरिकोंमें पारस्परिक सद्भाव और [illegible] हो, उसे आदर्श शासन ही कहा जायगा। जिस राज्यमें [illegible] सम्पूर्ण समाजकी ऐसी सुव्यवस्था हो, [illegible] सुलभ हो, अनावृष्टि या [illegible] नहीं हो, उसे हम आदर्श राज्य [illegible] शासनमें लोकतन्त्रवादी [illegible] कही जाती है। [illegible] किंतु वे उपलब्धियाँ [illegible] होते हुए भी [illegible] और [illegible] [illegible] है। [illegible]

बावजूद बहुतसे लोग अभावग्रस्त-जीवन व्यतीत करनेके लिये विवश होते हैं। किंतु इसके विपरीत रामराज्यमें तुरन्त दैन्यता, गरीबी और बेकारीका कहीं चिह्नतक नहीं दिखायी पड़ता था। शोषण, भ्रष्टाचार, दमन, अत्याचार, उत्पीड़न और संघर्ष आदिका (जिनकी इतनी शिकायतें वर्तमान राज्योंमें पायी जाती हैं) रामराज्यमें एकदम अभाव था। यही कारण है कि रामराज्य आदर्श राज्य माना जाता है। महात्माजीने स्वतन्त्र भारतमें उसी तरहका रामराज्य स्थापित करनेकी कल्पना की थी। सर्वोदयी विचारक भी वैसे ही रामराज्यकी स्थापनाका स्वप्न देखते हैं, किंतु भारतके चिन्तकों और विचारकोंका स्वप्न कभी पूरा हो सकेगा, इसकी सम्भावना बहुत कम है। राजा रामचन्द्रजी राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रमें एक ऐसा ऊँचा आदर्श छोड़ गये हैं, जिसको प्राप्त करना आधुनिक कालकी परिस्थितियोंमें असम्भव-सा जान पड़ता है। उसके लिये लोगोंको पहले धर्मपरायण, सत्यनिष्ठ तथा सच्चरित्र बनना होगा। शासकों तथा राजनीतिज्ञोंको भगवान् राम और भरतजीकी तरह त्याग और तपस्याका जीवन बितानेके लिये तैयार होना चाहिये।

ऊँच-नीचका भेदभाव नहीं

श्रीरामकी राजनीतिमें ऊँच-नीचका बहुत भेदभाव नहीं था। शूद्र तो थे, किंतु वे घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखे जाते थे। कुछ लोगोंके मनमें ऐसी धारणा थी, किंतु उनके अगाध भक्तिभाव और प्रेमसे प्रभावित होकर श्रीरामचन्द्रजीने उनके आश्रममें पधारनेकी ही कृपा नहीं की, वरं उनके हाथसे बेर ग्रहण करके प्रसन्नतापूर्वक खानेमें भी कोई संकोच नहीं किया। गोस्वामीजीका कथन है कि भक्ति-भावमें विभोर शबरी रामजीको बढ़िया और मीठे-मीठे बेर खिलानेके उद्देश्यसे पहले उन्हें स्वयं चख लेती थी। केवल मीठे बेर ही रामजीको खानेके लिये देती थी। निषादराज भी शूद्र वर्णका था, किंतु उसकी सेवा और भक्तिको देखकर रामचन्द्रजीने उसके हाथके दिये कंद-मूल-फल ग्रहण करनेमें कोई संकोच-विलम्ब नहीं किया। निषादके साथ भगवान् राम और लक्ष्मणने बड़ा ही प्रेमपूर्ण व्यवहार किया। उसे सखाकी तरह माना। चित्रकूट जाते समय राम-लक्ष्मणके अपने परिवार इत्यादि, भरतजी और वसिष्ठ मुनि भी जब आकर निषादसे मिले थे। जब श्रीरामजी लङ्कापर विजय प्राप्त करके अयोध्या वापस आ रहे थे, तब शृङ्गवेरपुरमें उसका प्रेम और भक्ति देखकर, निषादराजको भी साथ ले लिया और राज्याभिषेक हो जानेके बाद कुछ दिनों तक उसे भी वस्त्र-आभूषण आदिकी भेंट देकर अयोध्यासे प्रेमपूर्वक विदा किया। यही नहीं, अपना प्रेम प्रकट करते हुए उससे यह भी कहा—

तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥
(मानस ७। १९। [illegible])

चित्रकूटमें अपने निवास-कालमें कोल किरात तथा वनवासियोंके साथ भी श्रीरामचन्द्रजीने प्रेमभाव दिखाया। इस प्रसङ्गमें यह बात भी उल्लेखनीय है कि पक्षिराज तथा स्वयं हरिके वाहन होते हुए भी शिवजीकी सलाहसे कथा सुनने तथा आत्मज्ञान और तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिये अपनेसे हीन कोटिके पक्षी काकभुशुण्डिके पास गये। महिमा सुननेके बाद गरुडजीने विनीत-भावसे कहा—

नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी॥
(मानस ७। १२०। [illegible])

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उन दिनों बड़प्पनका अभिमान त्यागकर अपनेसे छोटोंसे भी शिक्षा और ज्ञान ग्रहण करनेमें कोई संकोच नहीं किया जाता था।

लङ्कापर आक्रमण

श्रीरामजीका कुसुम-सा कोमल स्वभाव होते हुए भी दानवों, दैत्यों तथा राक्षसोंका दमन करनेके लिये कठोर-से कठोर रूप अपना लेते थे। दुष्टोंका दलन कर जनता—प्रजाकी रक्षा करना आवश्यक राजधर्म माना जाता था। तभी तो राक्षसोंसे यज्ञकी रक्षा करनेके लिये विश्वामित्रजी महाराज दशरथसे राम-लक्ष्मणको माँगकर अपने साथ ले गये थे। महाराज दशरथको मोहमें पड़ते देखकर गुरु वसिष्ठने उन्हें कर्तव्यका ज्ञान कराया और दोनों राजपुत्रोंको जाने देनेका परामर्श दिया। यज्ञारम्भ-कालमें और उसके पूर्ण होनेके ही पहले राक्षसों और दानवोंका राम-लक्ष्मणने वध किया। रावणने मारीचको साथ [illegible] कर और छद्मवेश धारणकर जब सीताजीको धोखा दिया और उनका अपहरण किया, तब तो अनीतिकी हद हो गयी। यह अपहरण ऐसा अक्षम्य और असहनीय था, जिसे श्रीराम सहन नहीं कर सके। रावणके लिये ही गुप्तचर आर्यदेशमें घुस आते थे। वाल्मीकिरामायणके अनुसार दण्डकवनमें रावणने अपनी भारी फौज एकत्रित कर रखी थी और खर-दूषणके नेतृत्वमें यहाँ राक्षसोंकी चौदह सहस्र सेना भी थी। रामचन्द्रजीने वानरराज सुग्रीवसे मैत्री कर ली और हनुमान्जीके द्वारा यह पता लगानेका कि

श्रीसीताजीका हरण लङ्काधीश रावणने किया है और उसने उन्हें एक वाटिकामें अवरुद्ध कर रखा है, श्रीरामचन्द्रजीने लङ्कापर आक्रमण करने और जानकीका उद्धार करनेका दृढ संकल्प कर लिया। उनका स्वाभिमान तथा राष्ट्राभिमान जाग्रत् हो गया था, अतः उन्होंने वैर-शोधन करनेकी ठान ली।

सर्वप्रथम समुद्रके पार सेना उतारनी थी। अतः उससे मार्ग देनेकी प्रार्थना की गयी; किंतु तीन दिनकी प्रतीक्षाके बाद भी जब समुद्रने उनका अनुरोध स्वीकार नहीं किया, तब रामचन्द्रजी बहुत ही क्रुद्ध हो उठे। उनका यह रौद्ररूप प्रकट करता था कि अपने संकल्पको पूरा करनेके लिये वे कितने दृढ थे। उन्होंने कहा—

अद्य मे मरणं वाथ मरणं सागरस्य वा ॥
(वा० रा० ६।२१।८)

पुनः बोले—

चापमानय सौमित्रे शरांश्चाशीविषोपमान्।
समुद्रं शोषयिष्यामि पद्भ्यां यान्तु प्लवंगमाः ॥
(वही, ६।२१।२२)

इस प्रकार शर-संधान कर सागर सोख लेनेकी धमकी दी गयी। प्रचण्ड अग्निबाण छोड़नेसे जब सागरका जल आन्दोलित हो उठा और जीव-जन्तु जलने लगे, तब समुद्रदेव विनत होकर प्रकट हुए और उन्होंने विनीतभावसे अपनेको पार करनेका उपाय बताया, जिसके अनुसार नल-नील आदिने पुल तैयार किया और अपनी सम्पूर्ण सेनासहित रामचन्द्रजीने उस पार पहुँचकर सुवेल पर्वतपर डेरा डाल दिया। 'बिनु भय होइ न प्रीति' वाक्य रामजीका सिद्धान्त आज भी अनुकरणीय है।

यह बात उल्लेखनीय है कि आक्रमण प्रारम्भ करनेके पूर्व श्रीरामचन्द्रने हनुमान्जीसे यह पता लगा लिया था कि रावणका सैन्यबल कितना है, व्यूह-रचना और दुर्ग आदिकी व्यवस्था कैसी है। रावणका पक्ष त्यागकर जब विभीषण श्रीरामजीके दलके साथ आ मिले, तब पूछनेपर उनसे भी अनेक रहस्य ज्ञात हुए। अन्तमें अङ्गदको दूतरूपमें भेजा गया और उनके लौटनेपर परपक्षके मन्त्रबलके सम्बन्धमें अनेक बातें मालूम हुईं। उस कालकी राजनीतिमें दूतों तथा गुप्तचरोंका भी स्थान था। रावणने शुक-शार्दूल आदि अपने अनेक गुप्तचरोंको भेद लेनेके लिये उस सेनामें भेजा था, जहाँ रामजीकी सेना पड़ाव डाले पड़ी थी। इन दोनों गुप्तचरोंने लौटकर रावणसे वानर-सेनाकी व्यूह-रचनाका वर्णन किया। शार्दूलने बताया कि उधर गरुड-व्यूहकी रचना की गयी है। वर्तमान कालकी तरह राजदूत दूसरे देशोंमें रखे जाते थे और राज-दूतावास या दूतावास होते थे या नहीं, इसका ठीक-ठीक पता नहीं है। न तो लङ्कामें कोशलराज्य अथवा किष्किन्धाका कोई राजदूत था और न रावणका ही कोई राजदूत इन दोनों राज्योंमें था। सम्भवतः आवश्यकता पड़नेपर दूत भेजनेकी प्रथा थी, स्थायी दूतावास नहीं होते थे। दूतोंको उस समय कदाचित् कुछ अधिक अधिकार और स्वतन्त्रता प्राप्त थी, तभी तो अङ्गदने और उनके पहले हनुमान्ने रावणके दरबारमें उनसे बराबरीके स्तरपर बातें कीं। उस तरहकी बातें आज कोई दूत या राजदूत नहीं कर सकता; कारण कि उसके अधिकार सीमित होते हैं और उसे मर्यादाके अंदर रहकर राजा या शासकसे वार्ता करनी होती है।

विधि-विधानकी दृष्टिसे दूत अवध्य होते थे। तभी तो जब हनुमान्जी वाटिका-विध्वंस करने तथा वाटिका-रक्षकों एवं अन्य निशाचरोंका वध करनेके पश्चात् पकड़कर रावणके सामने लाये गये और रावणने क्रोधमें आकर उनके वधका आदेश दिया, तब मन्त्रियोंसहित विभीषणने विरोध करते हुए समझाया कि दूतका वध करना नीतिके विरुद्ध है। वानर-सेनाने शुक और शार्दूलके साथ भी अच्छा व्यवहार नहीं किया। शुकको पकड़कर गिरफ्तार कर लिया और शार्दूलको बहुत मारा-पीटा गया। अन्तमें श्रीरामके कहनेके बादमें उसे छोड़ दिया गया। किंतु शुक और शार्दूल वस्तुतः रावणके गुप्तचर थे, दूत नहीं।

आग्नेयमहापुराणके 'राजधर्मकथन' नामक अध्यायमें श्रीराम लक्ष्मणसे कहते हैं कि स्वामी (राजा), अमात्य (मन्त्री), राष्ट्र (जनपद), दुर्ग, कोष, बल (सेना) और सुहृद्—ये राज्यके सात अङ्ग कहे गये हैं।' प्राचीन हिंदू-शास्त्रमें इन सात अङ्गोंकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। हो सकता है कि श्रीरामचन्द्रजी और उनके पूर्ववर्ती राजाओंके समयमें भी इन सब अङ्गोंका महत्त्व रहा हो। दुर्ग, कोष और सेनाका बड़ा महत्त्व था—यह स्पष्ट ही है। अमात्य भी अपरिहार्य थे। वाल्मीकि-रामायणके बालकाण्डके सप्तम सर्गमें जहाँ अमात्योंका वर्णन किया गया है, वहाँ 'संधिविग्रहतत्त्वज्ञाः', 'नीतिशास्त्रविशेषज्ञाः'-जैसे विशेषणोंका प्रयोग मन्त्रीके लिये किया गया है। महाराज दशरथ और रामचन्द्रजीको मन्त्रणा देनेके लिये अमात्य थे और ऐसा प्रतीत होता है कि वसिष्ठ मुनि, जो गुरुपदपर प्रतिष्ठित थे, प्रधान मन्त्रीके रूपमें मान्य थे।

अकम्पन जो रावणका एक गुप्तचर था तथा जिसने जनस्थानमें श्रीरामका रणकौशल देखा था, उसने रावणको यह सलाह दी कि 'आप युद्धद्वारा श्रीरामको कदापि नहीं जीत सकेंगे। अतः उनके साथ युद्धका विचार त्याग दीजिये।' अपने विचारोंकी पुष्टिमें अकम्पनने निम्न तथ्य प्रस्तुत किये—

'यदि महायशस्वी श्रीराम कुपित हो जायँ तो उन्हें कोई भी काबूमें नहीं कर सकता। वे सम्पूर्ण लोकोंका संहार करके पुनः नये सिरेसे प्रजाकी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं। जैसे पापी पुरुष स्वर्गपर अधिकार नहीं कर सकता, उसी प्रकार आप अथवा समस्त राक्षस जगत् भी युद्धमें श्रीरामका मुकाबला नहीं कर सकता। मेरी समझमें तो सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी उनका वध नहीं कर सकते—'

न तं वध्यमहं मन्ये सर्वैर्देवासुरैरपि।
अयं तस्य वधोपायस्तन्ममैकमनाः शृणु॥
(वा० रा० ३। ३१। २८)

अकम्पनके विचारोंसे प्रेरित हो श्रीरामके रण-कौशलसे घबराकर रावणने युद्धके स्थानपर कूट उपायका सहारा लिया। अन्यथा ऐसे योद्धाको, जो इन्द्र, वरुण, कुबेर और यमादि समस्त लोकपालोंको पराजित कर चुका हो, उसे चोरीसे सीताका अपहरण करनेकी क्या आवश्यकता होती। युद्धनीतिका ज्ञाता रावण भी श्रीरामकी युद्धनीतिके आगे झुक जाता है और वह कूट उपायसे ही अपनी भगिनी तथा राक्षसोंके विनाशका प्रतिशोध लेना चाहता है। विद्वानोंका मत है कि जब सीधे युद्धमें किसीको अपनी विजयमें संदेह हो, या कोई अत्यधिक बलवान् योद्धा सम्मुख हो तो वहाँ धोखा, छल-बल, इन्द्रजालका सहारा लेकर अपने विरोधीको पराजित करनेका उपक्रम करना चाहिये। रावणने श्रीरामके द्वारा जनस्थानमें बड़े-बड़े योद्धाओंके मारे जानेसे यह अनुमान लगा लिया कि निस्संदेह श्रीराम कोई साधारण योद्धा नहीं हो सकते—

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं॥
खर दूषन मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥
(रा० च० मा० ३। २३। १)

अतः यह श्रीरामकी युद्धनीति और रणदक्षताका ही प्रतिफल था कि रावण-जैसा विश्वविजेता और [illegible] अप्रतिम योद्धा समराङ्गणसे पलायन कर कूट [illegible] अवलम्बन लेनेके लिये विवश हुआ। श्रीरामकी युद्धनीतिकी अनेक विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं। युद्धके सम्बन्धमें उनकी अत्यन्त उदार नीति थी। वे धोखा देकर युद्ध जीतनेके पक्षमें कभी नहीं रहे। अतः यह कहा जा सकता है कि उनकी युद्धनीति हमेशा आदर्शको सम्मुख रखते हुए आगे बढ़ती है। उनके युद्धसम्बन्धी आदर्शकी एक झलक उन्हींके एक संदर्भमें इस प्रकार उपलब्ध होती है—

बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप॥
आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः।
अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना॥
(वा० रा० ६। १८। २७-२८)

श्रीरामकी शरणमें जब शत्रु भ्राता विभीषण आया, तब (हनुमान्को छोड़कर) सबने राक्षस होनेके कारण उसको शरण न देनेका आग्रह किया, किंतु श्रीरामने एक सच्चे योद्धाका नीतिसम्मत कर्तव्य समझाते हुए कहा—'हे परंतप! यदि शत्रु भी शरणमें आये और दीनभावसे हाथ जोड़कर दयाकी याचना करे तो उसपर प्रहार नहीं करना चाहिये। शत्रु दुःखी हो या अभिमानी, यदि वह अपने विपक्षीकी शरणमें जाता है तो शुद्ध हृदयवाले श्रेष्ठ पुरुष अपने प्राणोंका भी मोह त्यागकर शरणागतकी रक्षा करते हैं।' उन्होंने अपने इसी उदार सिद्धान्तके आधारपर विभीषणको, जो कि शत्रु-शिविरसे आया था, बिना हिचकके शरण दे दी। सुग्रीवके तीव्र विरोधपर उन्होंने उन्हें साफ-साफ कह दिया—'वह विभीषण हो या स्वयं मेरा शत्रु रावण ही क्यों न हो, मेरी शरणमें आनेके कारण उसे मैं अपना चुका हूँ। मेरा तो सदा यह मत ही रहा है कि जो एक बार भी शरणमें आकर—'मैं तुम्हारा हूँ'—यों कहकर मुझसे अभय चाहता है, उसे मैं सब प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ'—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥
(वा० रा० [illegible])

सभी युद्ध अथवा दण्डका प्रयोग करना उन्हें अच्छा लगता था। इसके विपरीत रावण साम, दान और भेदकी अपेक्षा दण्डको सर्वाधिक महत्त्व देता था। हनुमान्‌जीने लङ्का प्रवेशके पश्चात् इस बातका अनुभव किया था कि 'राक्षसोंपर साम, दान और भेदका प्रयोग सफल नहीं हो सकता। यहाँ तो केवल दण्डके ही अवलम्बनद्वारा कार्य बन सकता है।'

दण्डका प्रमादरहित होकर प्रयोग करना ही उनकी युद्धनीतिका सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष था। वे युद्धमें कम-से-कम हिंसाका प्रदर्शन तथा कम-से-कम शक्तिका प्रयोग करना वाञ्छित समझते थे। युद्धमें क्रोध या प्रतिशोधकी भावनाको भी वे महत्त्व नहीं देते थे। इस प्रकार श्रीरामकी युद्धनीति धर्म-सम्मत और मर्यादासे संचालित थी। श्रीरामचन्द्रजीको गुरु वसिष्ठ, महर्षि विश्वामित्र और महर्षि अगस्त्यजीसे ऐसे अनेकानेक अस्त्र-शस्त्रोंकी विद्या प्राप्त थी, जिनके प्रयोगद्वारा बहुत ही कम प्रयत्नसे आततायियोंका सरलतापूर्वक सफाया किया जा सकता था किंतु श्रीरामने उनका प्रयोग नर-संहारक कार्यके लिये कभी नहीं किया। इसके विपरीत रावण तथा मेघनादने उनपर अनेक अवसरोंपर भीषण मारक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया था। इन्द्रजित् तो प्रायः कूटयुद्ध-विशारद था ही। इन्द्रको भी उसने इन्हीं ऐन्द्रजालिक उपायोंसे ही पराजित किया था। एक समय वानरोंके भीषण संग्राममें कुपित होकर उसने इसी कूट अदृश्य युद्धका सहारा लेकर वानरदलसहित श्रीराम और लक्ष्मणको भी मूर्च्छित कर दिया। अन्तमें लक्ष्मणजीने अपने भाईको स्मरण दिलाया कि ऐसी स्थितिमें हमें भी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कर समस्त राक्षसोंका एक साथ ही विनाश कर देना चाहिये। अतः उन्होंने श्रीरामसे ब्रह्मास्त्रके प्रयोगकी अनुमति चाही।

श्रीरामने प्रत्युत्तरमें युद्धनीतिका विवेचन तथा उपदेश स्पष्ट करते हुए कहा था—

नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि ॥
अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम्।
पलायमानं मत्तं वा न त्वं हन्तुमिहार्हसि ॥
अस्यैव तु वधे यत्नं करिष्यामि महाभुज।
(वा० रा० ६।८०।३९—४०)

अर्थात् एक रावणके कारण भूमण्डलके समस्त राक्षसोंका वध करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। महाबाहो! जो युद्ध न करता हो, छिपा हो, हाथ जोड़कर शरणमें आया हो, युद्धसे भाग रहा हो अथवा पागल हो गया हो, ऐसे व्यक्तिको तुम्हें नहीं मारना चाहिये।'

उपर्युक्त कथनसे श्रीरामने युद्धनीतिके महान् आदर्शकी ओर संकेत करता है। उनके मतसे शक्तिका कम-से-कम प्रयोग किया जाना चाहिये। शक्तिका प्रयोग केवल अपराधीके विरुद्ध किया जाना चाहिये। निरपराध एक भी व्यक्तिको उससे किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँचनी चाहिये। इसी कारण लक्ष्मणको उन्होंने ब्रह्मास्त्रके प्रयोगसे मना किया क्योंकि उससे भीषण नर-संहारका भय था। यदि वे चाहते तो रथमें छिपे इन्द्रजित्‌को अपने श्रेष्ठ अस्त्रसे नष्ट कर सकते थे किंतु इससे युद्धके नियमोंका उल्लङ्घन होनेका भय था। अस्तु, केवल मनमाना अस्त्र प्रयोग कर शत्रुको नष्ट कर देना उनके मतमें युद्धनीतिका अङ्ग नहीं बन सकता। वे असभ्य-से-असभ्य अपराधी शत्रुको भी अस्त्र-शस्त्रसे हीन होनेपर निहत्थे मार डालना भी पसंद नहीं करते। श्रीराम-रावण युद्धमें ऐसे कई प्रसङ्ग आते हैं, जिनमें रावणके पास धनुष, रथ और आयुधोंका अभाव देखकर श्रीरामने रावणको छोड़ दिया तथा उसे पुनः नवीन धनुष-बाण, रथ और आयुधोंसे सज्जित होकर संग्राम करनेका अवसर दिया। उदाहरणार्थ जब एक बार श्रीरामने देखा कि रावणके धनुष-बाण नष्ट हो चुके हैं, मुकुट वह युद्धभूमिमें विषहीन सर्पके समान प्रभावहीन हो गया है, तब श्रीरामने उससे कहा—

कृतं त्वया कर्म महत् सुभीमं
हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम्।
तस्मात् परिश्रान्त इति व्यवस्य
न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि ॥
प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं
प्रविश्य रात्रिंचरराज लङ्काम्।
आश्वास्य निर्याहि रथी च धन्वी
तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः ॥
(वा० रा० ६।५९।१४२-४३)

अर्थात् आज तुमने बड़ा ही भयंकर कर्म किया है, मेरी सेनाके प्रधान-प्रधान वीरोंको मार डाला है। इतनेपर भी तुम्हें थका हुआ समझकर मैं तुम्हें बाणोंके द्वारा मारना नहीं चाहता; क्योंकि तुम युद्धके कारण पीड़ित हो गये हो। जाओ, लङ्कामें जाकर कुछ देर विश्राम करके फिर रथ और धनुषके साथ निकलना। फिर तुम मेरे बलको देखना।

श्रीरामने धर्मयुद्धको ही सर्वश्रेष्ठ युद्ध समझा और उसका ही आश्रय लिया था। इस प्रकारके युद्धमें शत्रु,

को सचेत और सावधान कर पराक्रमके द्वारा पराजित करना अभीष्ट होता है। श्रीरामने सावधान करके रावणको युद्धमें पराजित किया था। उन्होंने उसे धोखा देकर मारना उचित नहीं समझा था, जब कि रावण उन्हें धोखेसे भी पराजित करना चाहता था।

श्रीरामने लङ्का-अभियानके पूर्व विधिवत् रावणको तत्सम्बन्धी सूचना दी थी। उन्होंने अपने दूत अङ्गदके द्वारा रावणको स्पष्टतः कहला दिया था कि 'यदि वह सीताजी-को आदरसहित आगे करके, मुँहमें तृण दबाकर सामने आता है तो उसे क्षमा किया जा सकता है; अन्यथा जिस बलका सहारा लेकर उसने यह दुष्कर्म किया, उसका समरभूमिमें आकर प्रदर्शन करे।' वाल्मीकिजीके शब्दोंमें श्रीरामने रावणको इस प्रकारका संदेश प्रेषित किया था—

'राक्षसराज! तुमने मोहवश घमंडमें आकर ऋषि-मुनि, देवता, गन्धर्व, नाग, यक्ष और राजाओंका बड़ा भारी अपमान किया है। मैं अपराधियोंको दण्ड देनेवाला शासक हूँ। तुमने वरदानके मदमें आकर मेरी भार्याका अपहरण किया है। अतः तुम्हें दण्डित करनेके लिये अब मैं लङ्काके द्वारपर खड़ा हूँ। राक्षस! यदि तुम युद्धमें स्थिरतापूर्वक लड़ना चाहते हो तो सचेत हो जाओ तथा जिस बलके भरोसे तुमने माया (कूट उपाय)-से सीताका अपहरण किया है, उसे युद्धके मैदानमें दिखाना। यदि तुम मेरी पत्नीको लेकर शरणमें नहीं आये तो मैं अपने बाणोंसे संसारको राक्षसोंसे शून्य कर दूँगा तथा निश्चय ही लङ्काके राज्यपर विभीषणको प्रतिष्ठित कर दूँगा। अब धैर्यका आश्रय लेकर युद्धके लिये कटिबद्ध हो जाओ।'

(वा० रा० ६। ४१। ६९—७०)

उपर्युक्त तथ्योंसे ध्वनित होता है कि श्रीरामने रावणको युद्धके कारण तथा उसके निवारणका भी विधिवत् संदेश दिया। वे शान्तिपूर्ण बातोंसे भी समस्याको हल करनेके हेतु तैयार हो गये थे, किंतु रावणने उनकी इस नीतिको कमजोरी समझकर अभिमानवश कहला भेजा—

जौं रे समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा॥
तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥

(श्रीरामच० मा० ६। २७। ३-३½)

रावणके दृष्टिकोणमें शान्तिपूर्णवार्ता अर्थात् सामनीति तो शत्रुकी कमजोरी थी, जब कि श्रीरामने सामनीतिको युद्धनीति का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग माना था तथा युद्धको अन्तिम साधनके रूपमें। वे युद्धमें विजयके लिये भी भौतिक बलको महत्त्व न देते हुए आत्मबलको सबसे अधिक महत्त्व देते थे। एक बार युद्धभूमिमें श्रीरामको रथहीन और पैदल देखकर विभीषणको यह शङ्का हो गयी कि ऐसे साधन-सम्पन्न दुर्जय रावणको वे कैसे जीत सकेंगे। इसका प्रत्युत्तर देते हुए श्रीरामने विभीषणको कहा था—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥

(श्रीरामच० मा० ६१। २-५½। ८० क)

अर्थात् मित्र सुन—जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है। शौर्य और धैर्य—उस रथके पहिये हैं। सत्य और शील उसकी मजबूत ध्वजा और पताका हैं। बल, विवेक, दम (इन्द्रियोंको वशमें करना) और परोपकार—ये चार उसके घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समतारूपी डोरीसे रथके साथ जुड़े हुए हैं। ईश्वरका भजन ही चतुर सारथि है। वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है। शम-यम नियम—ये बहुत-से बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरुका पूजन अभेद्य कवच है। इसके समान दूसरा कोई उपाय नहीं है। हे सखे! ऐसा धर्ममय रथ जिसका सहायक हो, उसके लिये जीतनेको कहीं भी शत्रु नहीं है। जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसाररूपी महान् दुर्जय शत्रुको भी जीत सकता है।

श्रीरामकी युद्धनीतिका यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है कि उसमें जय-पराजयको गौण, किंतु नीतिको सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। निरा भौतिक युद्धमें विजय पाने या दिलानेमें सहायक नहीं हो सकता, उसके लिये तो … और सात्त्विक साधनोंका होना अनिवार्य है। … सीमित साधनोंके साथ शास्त्रोंमें वर्णित …

तभी युद्ध अथवा दण्डका प्रयोग करना उन्हें अच्छा लगता था। इसके विपरीत रावण साम, दान और भेदकी अपेक्षा दण्डको सर्वाधिक महत्त्व देता था। हनुमान्‌जीने लङ्का प्रवेशके पश्चात् इस बातका अनुभव किया था कि राक्षसोंपर साम, दान और भेदका प्रयोग सफल नहीं हो सकता। यहाँ तो केवल दण्डके ही अवलम्बनद्वारा कार्य बन सकता है।'

दण्डका प्रमादरहित होकर प्रयोग करना ही उनकी युद्धनीतिका सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू था। वे युद्धमें कम-से-कम हिंसाका प्रदर्शन तथा कम-से-कम शक्तिका प्रयोग करना वाञ्छित समझते थे। युद्धमें क्रोध या प्रतिशोधकी भावनाको भी वे महत्त्व नहीं देते थे। इस प्रकार श्रीरामकी युद्धनीति धर्मसम्मत और मर्यादासे संचालित थी। श्रीरामचन्द्रजीको गुरु वसिष्ठ, महर्षि विश्वामित्र और महर्षि अगस्त्यजीसे ऐसे अनेकानेक अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा प्राप्त थी, जिनके प्रयोगद्वारा बहुत ही कम समयमें आततायियोंका सरलतापूर्वक संहार किया जा सकता था, किंतु श्रीरामने उनका प्रयोग नर-संहारक कार्यके लिये कभी नहीं किया। इसके विपरीत रावण तथा मेघनादने उनपर अनेक अवसरोंपर भीषण मारक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया था। इन्द्रजित् तो प्रायः कूटयुद्ध-विशारद था ही। इन्द्रको भी उसने इन्हीं ऐन्द्रजालिक उपायोंसे ही पराजित किया था। एक समय वानरोंके भीषण संग्राममें कुपित होकर उसने इसी कूट माया-युद्धका सहारा लेकर वानरसमूहसहित श्रीराम और लक्ष्मणको भी मूर्च्छित कर दिया। अन्तमें लक्ष्मणजीने अपने अग्रजको स्मरण दिलाया कि ऐसी स्थितिमें हमें भी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कर समस्त राक्षसोंका एक साथ ही विनाश कर देना चाहिये। अतः उन्होंने श्रीरामसे ब्रह्मास्त्रके प्रयोगकी अनुमति माँगी।

श्रीरामने प्रत्युत्तरमें युद्धनीतिका उपदेश करते हुए कहा था—

महाबाहो! जो युद्ध न करता हो, छिपा हो, हाथ जोड़ शरणमें आया हो, युद्धसे भाग रहा हो अथवा पागल हो गया हो, ऐसे व्यक्तिको तुम्हें नहीं मारना चाहिये।'

उपर्युक्त कथनसे श्रीरामने युद्धनीतिके महान् आदर्शकी ओर संकेत करता है। उनके मतसे शक्तिका कम-से-कम प्रयोग किया जाना चाहिये। शक्तिका प्रयोग केवल अपराधीके विरुद्ध किया जाना चाहिये। निरपराध एक भी [illegible] को उससे किसी प्रकारकी क्षति नहीं पहुँचनी चाहि[illegible] इसी कारण लक्ष्मणको उन्होंने ब्रह्मास्त्रके प्रयोगसे मना [illegible] क्योंकि उससे भीषण नर-संहारका भय था। यदि [illegible] तो रथमें छिपे इन्द्रजित्‌को मारने भेज सकते [illegible] थे, किंतु इससे युद्धके नियमोंका उल्लङ्घन था। अस्तु, केवल मनमाना अस्त्र प्रयोग कर [illegible] देना उनके मतसे युद्धनीतिका अङ्ग नहीं [illegible] अल्प-से-अल्प अपराधी शत्रुको भी अल्प निहत्थे मार डालना भी पसंद नहीं कर[illegible] युद्धमें ऐसे कई प्रसङ्ग आये हैं, जिनमें [illegible] रथ और आयुधोंका अभाव देखकर दिया तथा उसे पुनः नवीन धनुष [illegible] सज्जित होकर संग्राम करनेका [illegible] जब एक बार श्रीरामने देखा [illegible] हो चुके हैं, मुकुट गिर [illegible] प्रभावहीन हो गया है, तब [illegible]

[illegible] रथवा कर्म [illegible]

तत्काल [illegible]

प्रवाहि [illegible]

आयध [illegible]

को सचेत और सावधान कर पराक्रमके द्वारा पराजित करना अभीष्ट होता है। श्रीरामने सावधान करके रावणको युद्धमें पराजित किया था। उन्होंने उसे धोखा देकर मारना उचित नहीं समझा था, जब कि रावण उन्हें धोखेसे भी पराजित करना चाहता था।

श्रीरामने लङ्का-अभियानके पूर्व विधिवत् रावणको तत्सम्बन्धी सूचना दी थी। उन्होंने अपने दूत अङ्गदके द्वारा रावणको स्पष्टतः कहला दिया था कि 'यदि वह सीताजीको आदरसहित आगे करके, मुँहमें तृण दबाकर सामने आता है तो उसे क्षमा किया जा सकता है। अन्यथा जिस बलका सहारा लेकर उसने यह कुकर्म किया, उसका संग्रामभूमिमें आकर प्रदर्शन करे।' वाल्मीकिजीके शब्दोंमें श्रीरामने रावणको इस प्रकारका संदेश प्रेषित किया था—

'राक्षसराज! तुमने मोहवश घमंडमें आकर ऋषि-मुनि, देवता, गन्धर्व, नाग, यक्ष और राजाओंका बड़ा भारी अपमान किया है। मैं अपराधियोंको दण्ड देनेवाला शासक हूँ। तुमने वरदानके मदमें आकर मेरी भार्याका अपहरण किया है। अतः तुम्हें दण्डित करनेके लिये अब मैं लङ्काके द्वारपर खड़ा हूँ। राक्षस! यदि तुम युद्धमें स्थिरतापूर्वक लड़ना चाहते हो तो सचेत हो जाओ तथा जिस बलके भरोसे तुमने माया (कूट उपाय)-से सीताका अपहरण किया है, उसे युद्धके मैदानमें दिखाना। यदि तुम मेरी पत्नीको लेकर शरणमें नहीं आये तो मैं अपने बाणोंसे संसारको राक्षसोंसे शून्य कर दूँगा तथा निश्चय ही लङ्काके राज्यपर विभीषणको प्रतिष्ठित कर दूँगा। अब धीरताका आश्रय लेकर युद्धके लिये कटिबद्ध हो जाओ।'

(वा० रा० ६ । ४१ । ६१—७०)

उपर्युक्त तथ्योंसे ज्ञात होता है कि श्रीरामने रावणको युद्धके कारण तथा उसके निवारणका भी विधिवत् संदेश दिया। वे शान्तिपूर्ण वार्तासे भी समस्याको हल करनेके हेतु तैयार हो गये थे, किंतु रावणने उनकी इस नीतिको कमजोरी समझकर अभिमानवश कहला भेजा—

जौं पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा॥
तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥

(श्रीरामच० मा० ६ । १० । १-२½)

रावणके दृष्टिकोणमें शान्तिपूर्णवार्ता अर्थात् सामनीति तो उसकी कमजोरी थी, जब कि श्रीरामने सामनीतिको युद्धनीतिका एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग माना था तथा युद्धको अन्तिम साधनके रूपमें। वे युद्धमें विजयके लिये भी पशुबलको महत्त्व न देते हुए आत्मबलको सबसे अधिक महत्त्व देते थे। एक बार युद्धभूमिमें श्रीरामको रथहीन और पैदल देखकर विभीषणको यह शङ्का हो गयी कि ऐसे साधन-सम्पन्न दुर्जय रावणको वे कैसे जीत सकेंगे। इसका प्रत्युत्तर देते हुए श्रीरामने विभीषणको कहा था—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर॥

(श्रीरामच० मा० ७९ । २–५½; ८० क)

अर्थात् मित्र सुन—जिससे जय होती है, वह रथ दूसरा ही है। शौर्य और धैर्य—उस रथके पहिये हैं। सत्य और शील उसकी मजबूत ध्वजा और पताका हैं। बल, विवेक, दम (इन्द्रियोंको वशमें करना) और परोपकार—ये चार उसके घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समतारूपी डोरीसे रथके साथ जुड़े हुए हैं। ईश्वरका भजन ही चतुर सारथि है। वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है। शम-यम नियम—ये बहुत-से बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरुका पूजन अभेद्य कवच है। इसके समान दूसरा कोई उपाय नहीं है। हे सखे! ऐसा धर्ममय रथ जिसका व्यापक हो, उसके लिये जीतनेको कहीं भी शत्रु नहीं है। जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसाररूपी महान् दुर्जय शत्रुको भी जीत सकता है।

श्रीरामकी युद्धनीतिका यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त कि उसमें जय-पराजयको गौण, किंतु नीतिको [illegible] महत्त्व दिया गया है। निरा पशुबल युद्धमें विजय [illegible] दिलानेमें सहायक नहीं हो सकता, उसके लिये तो [illegible] और सात्त्विक साधनोंका होना अनिवार्य है। [illegible] सीमित साधनोंके साथ वानरोंसे सज्जित [illegible]

बालकोंके आदर्श भगवान् श्रीराम

(लेखक—स्वर्गीय पं० श्रीरामसनेहीजी त्रिपाठी)

श्रीराम यद्यपि राजाके पुत्र थे, तुलसीदासजीने उनके बाल्यचरित्रका जो चित्रण किया है, वह एक साधारण गृहस्थके बालकोंके लिये भी उपयोगी है। वे लिखते हैं—

गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

× × ×

बिद्या बिनय निपुन गुन सीला। खेलहिं खेल सकल नृप लीला॥

× × ×

बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥

(मानस १।२०३।२, ३; १।२०४।१)

साधारण भी लड़के यदि विद्या-विनय निपुण और गुणशील हों तो मृगया न सही, क्रिकेट खेलें, फुटबाल और हाकी खेलें, इससे कोई हानि नहीं हो सकती।

रामकी दिनचर्या सुनिये—

अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं॥
जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥

(मानस १।२०४।२-४)

इस तरह राम साधारण बालकोंकी तरह खेलते-कूदते भी थे और स्वाध्याय भी बराबर करते थे। माता-पिता और गुरुके आज्ञानुगामी रहकर नगरके लोगोंको सुखी करनेके उपाय भी सोचते और उपस्थित करते रहते थे। अपनी विनय, नम्रता, सुशीलता और सरल स्नेहसे राम बाल्यपनमें ही लोकप्रिय हो गये थे।

इसके बाद वे मुनि विश्वामित्रके साथ जनकपुर जाते हैं। वहाँ नगर देखने निकलते हैं, तब नगरके बच्चे उनको घेर लेते हैं। राम उनसे ऐसा हिल-मिल जाते हैं कि बच्चे उनको सुख देते हैं और वे उनके साथ उनके घर भी चले जाते हैं—

पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना॥

(मानस १।२२१।४)

× × ×

निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥

(मानस १।२२४।१)

बच्चोंके साथ घूमने फिरनेमें देरी हो गयी, तब इसे डर भी लगा कि कहीं गुरुजी नाराज न हो जायँ। उन्होंने मधुर बातें कहकर बच्चोंको जबरदस्ती लौटाया—

कौतुक देखि चले गुरु पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥

× × ×

करि बातें मृदु मधुर सुहाईं। किए बिदा बालक बरिआईं॥

(मानस १।२२५।१, ४)

एक प्रसङ्ग और लीजिये—

रातमें गुरुजी सोने लगे, तब राम-लक्ष्मण दोनों भाई उनके पैर दबाने लगे। उन्हें इस बातका अभिमान नहीं था कि वे राजाके लड़के हैं, किसीके पैर क्यों छूएँ। शिष्यका जो धर्म है, वे निरभिमान होकर उसे ही पालते थे।

मुनिने बार-बार कहा, तब राम सोने गये। लक्ष्मण राम के पैर दबाने लगे। रामने उन्हें पुनः-पुनः कहा, तब वे भी उठे—

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥

× × ×

बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥
चापत चरन लखनु उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥

(मानस १।२२५।६, १०)

यह अनुकरणीय है। और इससे छोटा, यह भाईके बड़ेके पीछे ही सोनेमें निवृत्त होगा। पहले मुनि सोये, फिर राम और फिर लक्ष्मण; किंतु जागनेमें यह क्रम बदल गया। लक्ष्मण पहले जागे, ताकि अपनेसे बड़ोंकी सेवाके लिये वे तैयार मिलें। उनके बाद राम जागे और फिर मुनि। लक्ष्मणको सोनेका समय कम मिला, पर शिष्टाचारके नाते उन्होंने शिथिलता नहीं दिखायी—

उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।
गुर तें पहिलेहिं जगतपति जागे रामु सुजान॥

(मानस १।२२६)

भाइयोंके प्रति रामके हृदयमें कैसा प्रेम था, इसकी कुछ झलक चित्रकूटमें हमें भरतके शब्दोंमें देखनेको मिलती है। भरतको स्मरण आ रहा है कि खेलमें हारें या जीतें, रामको कभी क्रोध नहीं आता था। उनका स्वभाव ही ऐसा था कि वे अपराधीपर भी क्रोध नहीं करते और भरतको तो हारा हुआ खेल भी जिता देते थे। हारनेसे भरतके मनको कुछ चोट न लग जाय, यह विशेष ध्यान वे रखते थे—

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥
सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही॥
(मानस २ । २५९ । १-४)

रामके विनम्र स्वभाव और बड़ोंके प्रति आदरभावका एक सात्त्विक चित्र हमें उस समय भी देखनेको मिलता है, जब राज्याभिषेककी सूचना देनेके लिये गुरु वसिष्ठजी रामके भवनमें जाते हैं। उस समय शिष्टाचारके पालनमें रामने बराबर भी त्रुटि नहीं होने दी। वर्णन यह है—

गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायउ माथा॥
सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाईं॥
(मानस २ । ८ । १—४)

गुरुजीकी सिखायी नीतिका प्रयोग रामने उलटे गुरुजी-पर ही किया—पर ऐसी मधुर उक्तिके साथ कि गुरुजीको अपमान नहीं लगा, बल्कि उसमें उनका अति सम्मान लक्षित हुआ। यह उत्तम कोटिके सात्त्विक शिष्टाचारका एक बहुत ही सुन्दर नमूना है।

पिताके प्रति रामकी कैसी भक्ति थी, यह उनके ही शब्दोंमें सुनिये। चित्रकूट पहुँचकर भरतने बहुत चाहा कि राम वापस चलकर अयोध्याका राज्य करें।

इसपर रामने कहा—

निज कर खाल खैंचि या तनु तें जौ पितु पग पनहीं करावौं।
होउँ न उरिन पिता दसरथ तें, कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं॥
(गीतावली २ । ७२)

इससे अधिक कोई क्या कर सकता है। महाराज दशरथके मनमें जो प्रेम पुत्रके लिये था, उससे अधिक पिताके वचनका मान पुत्रके मनमें था। आज हमारे युवकोंके मनमें भी रामके सब गुण घर जाते तो हम घर घरमें राम पाते, देशमें सच्चा रामराज्य कायम हो जाता और तब तुलसीदासजीका यह प्रणाम कैसा सार्थक होता—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥
(मानस १ । ७ । १)

श्रीरामकी बाल-लीला

करतल सोभित बान-धनुहियाँ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरें लाल पनहियाँ॥
दसरथ-कौसिल्या के आगें, लसत सुमन की छहियाँ।
मानौं चारि हंस सरबर तें बैठे आइ सदेहियाँ॥
रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि, प्रगटे भूतल महियाँ।
आए आप देन रघुकुल कौं, आनँद-निधि सब कहियाँ॥
यह सुख तीनि लोक मैं नाहीं, जो पाए प्रभु पहियाँ।
'सूरदास' हरि बोलि भक्त कौं, निरबाहत गहि बहियाँ॥

ग्रामोंकी स्त्रियोंका श्रीजानकीजीके साथ प्रेमपूर्ण वार्तालाप और व्यवहार तो और भी चित्तमें आनन्द देनेवाला होता है। गोस्वामी तुलसीदासजीने इसका कैसा सुन्दर वर्णन किया है—

सीय समीप ग्रामतिय जाहीं। पूँछत अति सनेहँ सकुचाहीं॥
बार बार सब लागहिं पाएँ। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ॥
राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं॥
स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गवाँरी॥
कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥
(वही, २ । ११५ । १-२; ११६ । १)

'श्रीसीताजीके समीप गाँवकी स्त्रियाँ जाती हैं, पर अति स्नेहके कारण पूछते सकुचाती हैं। सब बार-बार पैरों लगती हैं और सहज स्वभावसे मधुर वचन कहती हैं—'राजकुमारी! हम सब आपसे विनती करती हैं, पर स्त्री-स्वभावसे कुछ पूछते डरती हैं। हे स्वामिनि! हमारी ढिठाईको क्षमा करना, हमें गँवारिन जानकर बुरा न मानना—करोड़ों कामदेवोंको लजानेवाले ये तुम्हारे कौन हैं?' सीताजीने भी सकुचाकर और मुस्कराकर उनको प्रेमपूर्वक ही उत्तर दिया। वे ग्रामवधूटियाँ उनके उत्तरको सुनकर ऐसी प्रसन्न हुईं, मानो किसी कंगालने राजाका कोष लूट लिया हो।

जब श्रीराम वहाँसे चलने लगे, तब ग्रामवासियोंको ऐसा दुःख हुआ, मानो उनका सर्वस्व ही जा रहा हो। श्रीराम सबको बड़ी कठिनाईसे प्रेमपूर्वक समझाकर लौटा पाते थे। श्रीरामको छोड़कर गाँवोंमें वापस जानेसे ग्रामवासियोंको भारी दुःख और पश्चात्ताप होता था, उनकी आँखोंमें जल भर आता था। श्रीरामके थोड़े समयके सहवाससे ही गाँवके लोग प्रेमवश हो जाते थे। श्रीरामको देखकर गाँव-गाँवमें ऐसा ही प्रेमपूर्ण और आनन्ददायी दृश्य उपस्थित हो जाता था।

प्रेमकी मूर्ति श्रीराम सुन्दर ग्रामों और वनोंमें बसनेवाली प्रजाके साथ समान भावसे मिलते थे और सभीको अपनी मधुर वाणीसे संतुष्ट करते थे। चित्रकूटपर कोल-किरात, भील—सभी सदा उनकी सेवामें लगे रहते थे। उन्होंने केवटपर अनुपम कृपा की, भीलोंके राजा गुहको अपना सखा बनाया, वनोंमें बसनेवाले मुनियों और संतोंके साथ सहवास कर उन्हें संतोष और शान्ति दी। वानरोंके राजासे मित्रता की और वानरोंकी संगठित सेना बनाकर असुरोंका अन्त किया। इस प्रकार जंगलोंमें चौदह वर्ष बिताकर आततायी, छली, कपटी, दुष्ट राक्षसोंको मारकर श्रीरामने दीन वनवासी प्रजाकी सब प्रकारसे रक्षा की।

महाबली और अभिमानी रावण और उसके दुष्ट साथियों-को समाप्तकर, अयोध्यापुरीमें वापस आकर आदर्श रामराज्यकी स्थापना की। राजगद्दीपर बैठनेपर श्री महाराज रामचन्द्रने प्रजाकी इच्छा और भावनाको सदा पहला स्थान देकर माना। उनके राज्यमें पुरजनोंकी सभा थी, जिससे वे सदा परामर्श किया करते थे। एक साधारण धोबीके कहनेमात्रसे उन्होंने अपनी जीवनसङ्गिनी सतीशिरोमणि जानकीको त्याग दिया।

प्रजाके कष्टकी भनक कानमें पड़ते ही वे अधीर हो जाते थे और उसे तुरंत दूर करते थे। लवणासुरके अत्याचारोंसे दुःखी मधुप्रदेशकी प्रजाकी पुकारपर श्रीरामने अपने छोटे भाई शत्रुघ्नको भेजकर उसका वध कराया। वहाँकी प्रजाको निर्भय करके मधुपपुरीकी स्थापना करायी।

इस प्रकार प्रजाको प्रसन्न रखनेवाले राजा राम सदा प्रजाको निर्भय और सुखी रखनेमें ही लगे रहे। उन्हीं रामकी और उनके रामराज्यकी यादमें, प्रजाके आनन्द, उत्साह, सुख-समृद्धि और शान्तिके युगकी यादमें, श्रीरामके समयसे आजतक इस देशमें रामनवमीका शुभ दिन हम मनाते हैं। श्रीरामके जन्मको लाखों वर्ष हो गये, पर प्रजाका हित चाहनेवाले, लोकोपकारक उनके रामराज्यकी सुख-समृद्धिकी स्मृति भारतकी प्रजाके हृदयमें अमिट है। करोड़ों युग बीत जानेपर भी यह [illegible] रहेगी और [illegible] प्यारे रामकी पवित्र जन्मतिथि रामनवमी [illegible] भावनासे मनायी जायगी।

तथा—

सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस ।
सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस ॥
(वही, ६ । ९१)

महर्षि वाल्मीकिके आदिकाव्यके प्रथम सर्ग, मूल-रामायणमें लिखा है—

विभेद च पुनस्सालान् सप्तैकेन महेषुणा ।
गिरिं रसातलं चैव जनयन् प्रत्ययं तदा ॥
(१ । १ । ६६)

उस समय श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवको अपने पराक्रमका विश्वास दिलानेके लिये एक बाणसे ही सात ताड़-वृक्षों, पर्वत और रसातलतकको बींध डाला । उपर्युक्त सभी प्रसङ्गोंमें केवल एक ही बाणकी अत्यन्त अद्भुत और अलौकिक अमोघ शक्तिका वर्णन है ।

रामबाणकी अत्यन्त आश्चर्यमयी लोकोत्तर अद्भुत तृतीय महत्ता यह है—जो विश्वके इतिहासमें किसी भी महाधनुर्धरमें न तो देखी गयी और न सुनी ही गयी है—कि यह बाण आज्ञापालक विनम्र सेवककी भाँति प्रभुका अभीष्ट कार्य करके पीछेसे पुनः उनके तूणीरमें प्रवेश कर जाता है और इस प्रकार भगवान् राघवेन्द्रका तूणीर निरन्तर अक्षय बना रहता है—

अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग ।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग ॥
(वही, ६ । १३ क)

और भी—

मंदोदरि आगें भुज सीसा । धरि सर चले जहाँ जगदीसा ॥
प्रबिसे सब निषंग महुँ जाई । देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाईं ॥
(वही, ६ । १०२ । ४)

अतः—

'नमस्ते रामबाणाय रामकाज अमोघसु ते ।'

दशवदन-निधनकारी श्रीराम

(लेखक—पं० श्रीशिवकुमारजी शास्त्री, व्याकरणाचार्य)

जयति रघुवंशतिलकः कौसल्याहृदयनन्दनो रामः ।
दशवदननिधनकारी दाशरथिः पुण्डरीकाक्षः ॥
(अध्या० रा० ७ । १ । १)

भारतकी संस्कृति धर्म-प्रधान है । धर्मका सम्बन्ध आचारके साथ है । इस आचारके मूर्तिमान् विग्रह श्रीराम हैं । मानव-जीवनको सर्वाङ्ग-सुन्दर बनानेवाला अनुकरणीय तथा शिक्षाप्रद चरित्र अद्यावधि श्रीरामके चरित्रको छोड़कर और किसीका ढूँढ़नेसे भी नहीं मिलेगा । रामका चरित्र ही रामायणको अमर बना गया है, आज भी आबाल-वृद्ध जनताका इसीलिये यह कण्ठहार बना हुआ है ।

मानव-जीवनके चार पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष । इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धिमें भी आचार ही प्रमुख आधार है । आचारके बिना विचारोंका न कोई मूल्य है और न महत्त्व । आचारके बिना विचार जैसे अंधे हैं, उसी प्रकार विचारके बिना आचार पङ्गु । आचार और विचार—क्रिया और ज्ञान—दोनोंका समन्वय ही मानवको उसके लक्ष्यतक पहुँचा देता है; इसके विपरीत दोनों बेमेल होते ही मानवको पतनके गर्तमें गिरा देते हैं । रावणका जीवन जहाँ आचार तथा विचार—क्रिया एवं ज्ञानके बेमेल होनेकी कहानी है, वहाँ श्रीरामका जीवन उनके सुन्दर समन्वयका आदर्श इतिहास है ।

राम-रावणका युद्ध भिन्न आचारोंका प्रबल संघर्ष है । भारतीय संस्कृतिमें यह देवासुर-संग्रामके रूपमें प्रसिद्ध है । इसीको हम दैवी-सम्पत्ति और आसुरी-सम्पत्तिका संघर्ष भी कह सकते हैं ।

श्रीराम और रावण दोनों ही भगवान् शंकरके अनन्य भक्त थे । दोनों ही परम कुलीन, विद्वान्, बलवान् तथा सम्पन्न थे; लेकिन एकका ज्ञान तथा बल दीनजन-रक्षणके लिये था तो दूसरेका दीनजन-पीडनके लिये । एक सदाचार-सम्पन्न थे तो दूसरा दुराचार-परायण । एक दैवी-सम्पत्तिके उपासक थे तो दूसरा मनसा-वाचा-कर्मणा आसुरी-सम्पत्तिका परम पोषक । श्रीराम यदि निष्पापात्मा, महापराक्रमी, तेजस्वी, धैर्यशाली, जितेन्द्रिय, आर्यधर्मपरायण, सर्वत्र सम-दृष्टि-सम्पन्न, सत्यप्रतिज्ञ, यशस्वी, शास्त्रीय मर्यादाके परम रक्षक और सर्वसद्गुण-सम्पन्न थे तो रावण अनियन्त्रित उच्छृङ्खल, अजितेन्द्रिय, अनार्यकर्मकर्ता, सर्वत्र विषमबुद्धि, शास्त्रीय मर्यादाका विनाशक तथा प्रकाण्ड विद्वान् होते हुए भी परम निन्दित स्वभाववाला एवं दुराचारी था । अतः श्रीराम-रावणका युद्ध जहाँ दो विरुद्ध आचारोंका युद्ध है, वहाँ श्रीरामकी विजय दैवी सम्पत्तिकी, दैवी आचारकी-सदाचारकी विजय है और यह घटना अनावश्य

एवं अनुमानजनित इष्ट प्रयोजनवाले ज्ञान और कर्मसे प्रभावित होनेवाले प्राणी 'असुर' हैं। अपने ही प्राणोंमें रमण करनेके कारण अथवा सुर अर्थात् देवोंसे भिन्न होनेके कारण वे 'असुर' कहलाते हैं।

देवानां चासुराणां च वृत्त्युद्भवाभिभवौ स्पर्धा। कदाचिच्छास्त्रजनितकर्मज्ञानभावनारूपा वृत्तिः प्राणानामुद्भवति। यदा चोद्भवति तदा दृष्टप्रयोजना प्रत्यक्षानुमानजनितकर्मज्ञानभावनारूपा तेषामेव प्राणानां वृत्तिरासुर्यभिभूयते। स देवानां जयोऽसुराणां पराजयः। कदाचित्तद्विपर्ययेण देवानां वृत्तिरभिभूयत आसुर्या उद्भवः। सोऽसुराणां जयो देवानां पराजयः। एवं देवानां जये धर्मभूयस्त्वादुत्कर्ष आ प्रजापतित्वप्राप्तेः। असुरजयेऽधर्मभूयस्त्वादपकर्ष आ स्थावरत्वप्राप्तेः। उभयसाम्ये मनुष्यत्वप्राप्तिः।

अर्थात् दैवी और आसुरी वृत्तियोंका उठना और दबना ही देवता और असुरोंकी स्पर्धा अथवा युद्ध है। कभी प्राणोंकी शास्त्रजनित कर्म-ज्ञानभावनारूपा वृत्ति उठती है। जिस समय यह उठती है, उस समय उन्हीं प्राणोंकी दृष्ट-प्रयोजनवाली प्रत्यक्ष एवं अनुमानजनित कर्म-ज्ञान-भावनारूपा आसुरी वृत्ति दब जाती है। यही देवताओंकी जय और असुरोंकी पराजय है। कभी इसके विपरीत देवताओंकी वृत्ति दब जाती है और आसुरी वृत्तिका उत्थान होता है। यह असुरोंकी विजय और देवोंकी पराजय है। देवताओंकी विजय होनेपर धर्मकी अधिकता होनेके कारण प्रजापति-पद पर्यन्त ऊर्ध्वगमन होता है तथा असुर-वृत्तियोंके बढ़नेपर अधर्मकी अधिकता होनेके कारण स्थावरपर्यन्त अधोगति होती है। दोनोंकी समानता होनेपर मनुष्यत्वकी प्राप्ति होती है।

इससे यह तो प्रमाणित हो ही जाता है कि असुर कामचारी होते हैं, इन्द्रिय-भोग-प्रधान होते हैं, सभी इन्द्रियजन्य भोगोंमें आसक्त होते हैं—

कुरंगमातंगपतंगभृङ्ग-
मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते
यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च॥
(गरुड० २।२।१८)

'एक-एक विषयमें आसक्त होनेसे हिरन, हाथी, पतंग, भौंरा तथा मछली विनाशको प्राप्त करते हैं। फिर यदि किसीकी पाँचों विषयोंमें आसक्ति हो जाय, तब तो कहा ही क्या जा सकता है। पाँचोंके विनाशमें क्या देर लगेगी।' महात्मा प्रह्लादने भगवान्‌के सामने निवेदन किया था—

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति॥
(श्रीमद्भा० ७।९।४०)

'जैसे किसी पुरुषकी बहुत-सी पत्नियाँ उसे अपने-अपने शयन-गृहमें ले जानेके लिये चारों ओरसे घसीटें, वैसे ही कभी न अघानेवाली जीभ स्वादिष्ट रसोंकी ओर, जननेन्द्रिय सुन्दरी स्त्रीकी ओर, त्वचा कोमल स्पर्शकी ओर, पेट भोजनकी ओर, कान मधुर संगीतकी ओर, नासिका भीनी-भीनी सुगन्धकी ओर, चपल नेत्र सौन्दर्यकी ओर तथा कर्मेन्द्रियाँ मुझे विभिन्न कर्मोंकी ओर खींचती हैं।'

रावण इसी प्रकार दस इन्द्रियोंके द्वारा अप्रतिहत कामाचारपरायण हो चुका था। इसीलिये उसे दशवदन, दशानन कहना उचित लगता है। जिस प्रकार 'कश्चिद् धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्' कठोपनिषद्(४।१)के इस वाक्यमें 'आवृत्तचक्षुः'के 'चक्षुः' शब्दसे अन्य इन्द्रियोंका भी ग्रहण किया जाता है, उसी प्रकार 'दशानन' में 'आनन' शब्दसे इन्द्रियोंके ग्रहणके साथ-साथ दसों इन्द्रियोंकी कामासक्तिका बोध भी होता है।

कठोपनिषद्‌में कहा गया है—

पराचः कामाननुयन्ति बाला-
स्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा
ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते॥
(४।२)

'अज्ञानी पुरुष बाह्य विषयोंमें आसक्त हो मृत्युके फैले हुए पाशमें फँस जाते हैं, पर धीर—ज्ञानी पुरुष अपने अमृत-भावको यथार्थरूपमें समझकर निश्चय ही अनित्य बाह्य सुखको नहीं चाहते।'

भक्त श्रीराम भूभार उतारनेके लिये अवतरित हुए थे; उन्होंने आसुरी शक्तियोंपर विजय करनेके लिये अपने सदाचारकी शक्तिका आदर्श उपस्थित किया था और

राम-चरित्रमें निहित मूल्य शाश्वत हैं, प्रत्येक देश-कालके लिये उपयोगी हैं; ये मानवोत्कर्षके साथ सामाजिक विकासके निर्माणमें पूर्ण समर्थ हैं । इसीलिये 'रामादिवद् वर्तितव्यं न क्वचिद्रावणादिवत्'—यह सूत्र मानव-समाजके लिये सदा, सर्वत्र मननीय है । जिस 'धर्म'का इस देशके जीवनमें सर्वोपरि महत्त्व रहा है, श्रीराम उसीके मूर्तिमान् रूप हैं—'रामो विग्रहवान् धर्मः' (३ । ३७ । १३) । वाल्मीकिने 'धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम् ।' (२ । २१ । ४१) के अनुसार श्रीरामको स्थान स्थानपर धर्मज्ञः, धर्मस्य परिरक्षिता (१ । १ । १२-१३), धर्मनित्य. (२ । ३७ । १९), धर्मात्मा (२ । २८ । २), धर्मवत्सलः (२ । २८ । १), धर्मभृतां वरः (४ । १७ । १४) आदि कहा है । धर्म प्राण भारतीय जीवन-दृष्टि, महान् चरित्र और मानवीय आदर्श सबसे अधिक श्रीरामके जीवनमें ही प्रत्यक्ष देखे गये हैं । उनका व्यक्तित्व भारतीय लोक-चेतनायें, हृदयकी धड़कनोंमें अजर, अमर तथा अमिट है ।

वाल्मीकि उनके महान् गुणोंकी संक्षिप्त झलक बताते हुए लिखते हैं—'भारी बलमेंभी उनकी समता कहीं नहीं थी । वे सभीसे मधुर वचन बोलते थे । यदि कोई कठोर बात भी कहता तो वे उसका उत्तर नहीं देते थे । मनपर नियन्त्रण रखनेके कारण वे दूसरोंद्वारा किये गये सौ-सौ अपराधोंको भी याद नहीं रखते थे; परंतु यदि किसी प्रकार कोई एक बार भी उपकार कर देता तो उसीसे सदा संतुष्ट रहकर सर्वदा उस एक ही उपकारको याद रखते थे । वे बाहर-भीतरसे समानरूपसे शुद्ध थे । असाधारण वक्ता, अतुलनीय पराक्रमी, परम रूपवान् तथा समस्त गुणोंके समुद्र थे । उन्हें सत्पुरुषोंके संग्रह, दीनोंपर अनुग्रह और दुष्टोंके निग्रहके अवसरका भी ठीक-ठीक ज्ञान था । क्रोधमें भरकर आये हुए देवता और असुर भी उन्हें पराजित नहीं कर सकते थे, फिर भी उनमें लेशमात्र भी घमंड और द्वेष नहीं था । वे कालके वशमें होकर उसके पीछे चलनेवाले नहीं थे, काल ही उनके पीछे चलता था ।'

(वा० रा० २ । १ । १—३१)

विश्वके इतिहासमें खोजनेपर भी कोई ऐसा देश नहीं मिलेगा, जहाँ राजकुमार यह कहता हुआ सुना गया हो कि मैं भाइयोंको छोड़कर किसी प्रकार राज्याभिषेक नहीं कराऊँगा—

विमल बंस यहु अनुचित एकू । बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥

इसके विपरीत इतिहासके पन्नोंमें यह देखनेको तो अवश्य मिलता है कि राज्यकी व्यवस्थाके लिये राजकुमारने अपने पिताकी हत्या कर दी अथवा राज्यके उम्मीदवार अपने भाइयोंको कैदमें डाल दिया अथवा मरवा दिया हो । काश, आज सत्ता पानेके लिये सभी प्रकारका गोरखधंधा रचनेवाले लोकनेताओंके मनमें इसका स्वल्पांश भी अनासक्त भाव होता ?

'सत्य ही ईश्वर है'—इसका दर्शन करनेवाले गांधीजीको श्रीरामकी इस सत्य निष्ठासे कितनी प्रेरणा मिली होगी, जिससे प्रेरित होकर वे कहते हैं—'अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन ।—मैं न तो पहले कभी झूठ बोला हूँ और न भविष्यमें बोलूँगा । 'रामो द्विर्नाभिभाषते ।' (वा० रा० २ । १८ । ३०)—राम एक बार जो उन्होंने कह दिया, उसीका प्राणपणसे पालन करते हैं अर्थात् राम कभी अपनी बातको बदलते नहीं, जब कि आजका अपनेको नेता कहनेवाला व्यक्ति क्षुद्र स्वार्थके लिये एक दिनमें ही तीन-तीन बार अपनी निष्ठा बदलता है । इससे कितनी भयंकरतासे राष्ट्रीय चरित्रका पतन होता है, इस बातसे सब बेखबर हैं । श्रीरामके वियोगसे शोकाभिभूत दशरथ जब यह कहते हैं—'बेटा राम ! तुम मुझे कैद करके अयोध्याके सिंहासनपर बैठ जाओ, किंतु वन जानेका विचार छोड़ दो', तब श्रीराम उत्तर देते हैं—'मुझे न तो इस राज्यकी न सुखकी, न पृथ्वीकी न इन सम्पूर्ण भोगोंकी, न स्वर्गकी और न जीवनकी इच्छा है । पुरुषशिरोमणे ! मेरे मनमें यदि कोई इच्छा है तो यही कि आप सत्यवादी बने रहें, आपका वचन मिथ्या न होने पावे । यह बात मैं आपके सामने सत्य और शुभकर्मोंकी शपथ लेकर कहता हूँ । तात ! अब मैं यहाँ एक क्षण भी नहीं ठहर सकता । अतः आप इस शोकको अपने भीतर ही दबा लें । मैं अपने निश्चयके विपरीत कुछ नहीं कर सकता ।' (वा० रा० २ । ३४ । ४७—४९) । एक स्थानपर उन्होंने बड़े आग्रहसे कहा कि 'लोभ, मोह, अज्ञान आदिसे किसी भी स्थितिमें मैं सत्यका सेतु भङ्ग नहीं कर सकता' (वा० रा० २ । १०९ । १७) और यह भी कि 'चन्द्रमासे उसकी प्रभा अलग हो जाय, हिमालय हिमका परित्याग कर दे अथवा समुद्र अपनी सीमाको लाँघकर आगे बढ़ जाय, किंतु मैं पिताकी प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता' (वा० रा० २ । ११२ । १८)

(कुमार० १ । ५९) के अनुसार हम उन्हें प्रत्येक अवस्थामें शान्त, गम्भीर और पूर्ण धैर्यशाली पाते हैं। उनमें वह उच्च मनोबल था, जिसको बड़ेसे बड़े किसी तरहके भी झोंपी-तूफान हिला सकनेमें असमर्थ थे। जीवन केवल दौड़ नहीं है; उसमें धैर्य, संतोष, कर्तव्य निष्ठा, निरालसता और अपने उद्देश्यके *प्रति समर्पणका भाव भी चाहिये। कर्मयोगकी मंज़िल* केवल उन्हींको मिलती है, जो पूर्ण निष्ठाके साथ इस राहपर चलता है।

राम राज्य के भूखे नहीं थे; राम यह स्वप्न नहीं चाहते थे, राज्यक्रान्ति भी नहीं। यदि वे चाहते अथवा अपने अधिकारोंके प्रश्नेमनमें पड़ जाते तो यह कुछ कठिन नहीं था; क्योंकि *जनता भी उनके साथ थी।* उनके व्यक्तित्वके असाधारण प्रभावके कारण ही तो जनता महाराज दशरथके जीवनमें ही उनको राज्यासनपर ही अधिष्ठित देखना चाहती थी; किंतु यह सब नहीं हुआ, उन्होंने राज्य तन्त्रको प्रजा तन्त्रके रूपमें परिणत कर दिया। अधिकारकी अपेक्षा उनके सामने कर्तव्यपालन अधिक महत्त्व पूर्ण था। तैमूरलंग या अधिकार बलसे गद्दीपर बैठनेवाले राजा रामके प्रति जन मनमें वह आदर और आस्था नहीं होती। *औरंगज़ेबने शाहजहाँको साथ बंदीगृह कैद करके रखा।* मअज्ज़मशुने पितृघातको सही बनाया था। श्रीरामने पिताको सत्यप्रतिज्ञ सिद्ध करनेके लिये वनयात्रा की। कदाचित् यह *रामकी परम कर्तव्यपरायणता ही थी कि जिसके प्रभावसे* भरतने भी माँकी मोहान्धतासे मिलनेवाले राज्याधिकारको अस्वीकार कर, उनकी अनुपस्थितिमें चरणपादुकाओंको ही उनका प्रतीक मानकर एक प्रतिनिधिके *रूपमें* शासनका संचालन किया।

यद्यपि त्यागके प्रति यह निष्ठा रघुवंशियोंकी परम्परा रही है—'*त्यागाय सम्भृतार्थानाम्*' (रघु० १ । ७), तथापि 'त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' (कैवल्योप० ३), 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' (ईशोप० १ । १ । १)—ये महान् वैदिक आदर्श श्रीरामके जीवनमें ही अपनी पूर्णताके *साथ मूर्तिमान्* हुए हैं। त्यागका यह आदर्श राम चरितका मुख्य प्रमाण है। *रामायणोंमें प्रमुखरूपसे इसी प्रसंगका वर्णन है।* उसके पश्चात् उन्होंने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया, उसका कुछ वर्णन नहीं। *सर्वस्व* त्यागकर क्षणभरमें वनवासी बन गये, यही उनका महान् आदर्श था। *त्यागी वैरागी रामके उसी रूपके उपासक* हैं। वे जटा बढ़ाकर, भस्म रमाकर भारतके उसी रूपको बनाते हैं और वनवासी रामका ध्यान करते हैं। निम्नाङ्कित चारों दुर्लभताएँ श्रीराममें एकत्रित हुई थीं—

> दानं प्रियवाक्यसहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
> वित्तं त्यागनियुक्तं दुर्लभमेतच्चतुष्टयं लोके॥
>
> (हितो० १ । १४१)

*श्रीरामके जीवनमें नाना प्रकारके मनोविकारोंसे उभारने*वाले अवसरोंका तांता सा लगा हुआ है। उनके कारण उनका महान् चरित्र अनेक स्थानोंपर असाधारण ऊँचाइयोंका स्पर्श करता है। भागवतकारके शब्दोंमें सीताके हाथोंके स्पर्शको भी सह सकनेमें असमर्थ 'पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम्' (९ । १० । ४) अतिसुकुमार चरणोंसे श्रीराम वनकी ओर चल पड़े—'राजिवलोचन रामु चले तजि बाप को राजु बटाउ की नाईं।' (कवित्ता० २ । १) उनके वियोगमें केवल पौर एवं जानपद ही नहीं, अपितु पशु-पक्षी, वृक्ष लता और नदी-सरोवर भी विकल हो उठे, सब श्रीहीन हो गये—

> चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥
>
> (मानस २ । ८३ । १)
>
> लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधिआरी॥

> बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥
>
> (वही, २ । ८३ । ४)

सारी अयोध्या ही यह संकल्प लेकर श्रीरामके पीछे चल निकली—'यत्रायं भविता तत्र रामो निवत्स्यति।' (वा० रा० २ । ४७ । २९), वह वन ही हमारा राष्ट्र होगा, जहाँ राम रहेंगे—'जहाँ राम तहँ अवध निवास्।' यह है लोक-नायककी दुर्लभ लोकप्रियता, राष्ट्र भी जिसके पीछे पीछे फिरता है। कहाँ आजके लोकनायकोंकी *स्थिति, जो विज्ञापन-विस्तारकर* आत्मप्रशंसाद्वारा और हजारों बार अपने गुणोंका बखान करते हुए, रो-रोकर भिखारीकी तरह जनतासे वोट माँगते हैं और वोट प्राप्त करनेके लिये हर श्रेष्ठ गुण और मानवताकी हत्या करनेमें भी उन्हें संकोच नहीं होता। तुलसीदासजी तो और आगे बढ़कर उनकी इस लोकप्रियताकी चर्चा करते हैं—

> अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं॥
>
> (मानस २ । १९२ । १)

उनको वन भेजनेवाली कैकेयी भी (कुब्जाके बहकानेसे पहले भी) रामकी प्रशंसा करती है—

> कौसल्यातोऽतिरिक्तं च स तु शुश्रूषते हि माम्॥
> राज्यं यदि हि रामस्य भरतस्यापि ...
>
> (वा० रा० २ ।

अन्यायी वालीका दमन कर दीन सुग्रीवको अपना योग्य और सहायक मित्र बनाया। यह उनकी परम राजनीतिक कुशलता और सफलता भी है कि प्रबल राक्षसी और वानरी शक्तियाँ, जो परस्पर संधिके कारण दुर्जय बन चुकी थीं और जिनसे कभी भी अयोध्याके राजसिंहासनको खतरा पैदा हो सकता था, आपसमें ही प्रतिद्वन्द्वी बन गयीं। जो शक्ति-संतुलन राक्षसोंके हाथमें पहुँच गया था, वह श्रीरामके पक्षमें हो गया।

यहाँ यह ध्यान देनेयोग्य है कि श्रीरामने वानर-दलमें प्रचलित और सम्मानित छुपे-छुपे गुरिल्ला आक्रमणकी नीतिसे वालीका वध किया था, फिर भी वालीने श्रीरामपर व्यङ्ग्य किया—

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं॥
(मानस ४।८।२½)

श्रीरामने इसका जो उत्तर दिया, वह बड़ा मर्मस्पर्शी तथा नीतिपूर्ण है। उन्होंने कहा—'जो स्वयं अधर्माचरण करता है, उसे दूसरोंसे धर्मानुसार आचरण चाहनेका कोई अधिकार नहीं है। तूने राजधर्म त्यागकर अनीतिका आश्रय लिया, पुत्रवधू-जैसी बन्धुपत्नीको बलपूर्वक अपने घरमें रख लिया। इसलिये तेरा वध धर्म ही है। धर्म अति सूक्ष्म है वह इस प्रकार स्थूल दृष्टिसे नहीं जाना जा सकता। वेदोंसे, स्मृतियोंसे, बड़े-बड़े ऋषियोंके आचरणसे और अपने शुद्ध अन्तःकरणसे धर्मका निर्णय किया जाता है। मैं सब प्राणियोंका सुहृद् हूँ। मेरे हाथसे तुम्हारी भी सद्गति होगी। फिर भी तुम मरना चाहो तो सुखपूर्वक मरो। जीना चाहते हो तो अभी अपना बाण निकालकर तुम्हें जीवित कर सकता हूँ।'

श्रीरामका यह उत्तर सुनकर, वालीने अपने वधकी धर्मसङ्गतिके विषयमें जो आपत्ति उठायी थी, उसे वापस ले लिया। ऐसे थे सर्वभूत सुहृद् लोकनायक श्रीराम! महाभारत-युद्धमें भी कर्णके द्वारा धर्म-नीतिकी माँग करनेपर श्रीकृष्णने यही उत्तर दिया था।

अरविन्द इसका समाधान इस प्रकार करते हैं कि "'विभूति', 'अवतार' ऐसे शब्द हैं, जिनका अपना अर्थ और मर्यादा है और तुच्छ मानवीय मानदण्डोंके अनुसार निश्चित नैतिकता और अनैतिकता ''''के साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।' वे मानदण्ड भी तो देश या युगके अनुसार बदलते रहते हैं, अतः आधुनिक नैतिक मनकी चीरफाड़ करनेवाली बुद्धिके द्वारा किया गया उनके कार्योंका विश्लेषण अपना सम्पूर्ण महत्त्व खो देगा।"

लोकनायकको उपकारियोंके प्रति किस प्रकार कृतज्ञ होना चाहिये, इसके लिये दो उदाहरण देना पर्याप्त होगा। सीताके अपहरणको रोकनेके प्रयत्नमें जटायुके प्राणोत्सर्गपर श्रीरामने जो मर्मवेदना प्रकट की और जिस भावनासे उसका अन्त्येष्टि-संस्कार किया, उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है। मृतक-मांसभोजी गीधको श्रीरामने पिता-जैसा सम्मान दिया। वे सीताका पता लगाकर लौटे हुए हनुमान्‌जीके विषयमें भावुक कह उठते हैं—'आज हनुमान्‌जीने सीताका पता लगाकर धर्मानुसार मेरी, समस्त रघुवंशकी तथा लक्ष्मणकी भी रक्षा कर ली है। मैं दीन हूँ, असमर्थ हूँ। मेरे मनमें तो यही बात कसक रही है कि जिसने मुझे ऐसा प्रिय संवाद सुनाया, उसका मैं कोई वैसा ही प्रिय कार्य नहीं कर सका।' एक स्थानपर, उनके उपकारोंका स्मरण करते हुए, वे आत्म विभोर होकर कह उठते हैं—'कपिश्रेष्ठ! मुझपर तुम्हारे ऐसे महान् उपकार हैं कि उनमेंसे एक-एकके बदले अपने प्राणतक दे सकता हूँ। फिर भी शेष उपकारोंके लिये मुझे सदा तुम्हारा ऋणी बनकर ही रहना पड़ेगा। मैं चाहता हूँ कि तुमने जो भी उपकार किये हैं, वे सब मेरे शरीरमें ही विलीन हो जायँ, मुझे उनका बदला चुकानेका कभी अवसर न मिले, अर्थात् तुमपर कभी कोई विपत्ति आये ही नहीं; क्योंकि मनुष्य विपत्तियोंमें पड़नेपर ही प्रत्युपकारका पात्र बनता है।' (वा० रा० ७।४०। २१-२४)

स्वार्थी और कृतघ्न लोगोंको श्रीरामके इस कृतज्ञ भावसे कुछ सीखना चाहिये। नीच समझे जानेवाले निषादसे भी उनका मिलन देखिये—

हिंसारत निषाद तामस बपु, पसु समान बनचारी।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेम बस, नहिं कुल जाति बिचारी।
(विनय० १६६।१)

वानरों और भालुओंको गले लगानेवाले, सुग्रीव और निषादके मित्र श्रीरामका चरित्र ही ऐसा है, जिसकी सम्पूर्ण कहानी आदिवासियों, वनवासियों और ऐसे लोगोंके बीचसे गुजरी है, जो समाजद्वारा बहिष्कृत या उपेक्षित थे। भीलनीके बेरोंको भी प्रेमसिक्त मनसे खानेवाले तथा जीवन-भर उनके मिठासकी याद रखनेवाले श्रीरामके मधुर सरस स्वभाव और चरित्रको याद कर मन पुलकित हो उठता है—

गौरवपूर्वक तथा प्रबल प्रतिरोधके साथ तिरस्कार कर देता है। वह चाटुकारोंसे घिरा हुआ एक अहंकारी शासक है। उसकी लङ्का भौतिक सम्पन्नतामें अयोध्याको भी पछाड़ देती है। हनुमान् उसकी समृद्धिसे चकाचौंध हो जाते हैं। किंतु यह समृद्धि एक आक्रामक, क्षणभंगुर भोगवादका फल थी। रावणकी लङ्का इन्द्रियसुख-प्रधान सभ्यताका प्रतिनिधित्व करती है, जहाँका सम्पूर्ण समाज अपने नेताद्वारा अपनाये गये भ्रामक मार्गपर चल पड़ा था। इसके विपरीत श्रीरामकी अयोध्या भौतिक दृष्टिसे पूर्ण सम्पन्न होते हुए भी उस आदर्श सभ्यताकी प्रतीक है, जहाँपर भौतिक विकास और बौद्धिक शक्तिको नैतिकता प्रदान करते हुए उसे त्यागकी पवित्रता और निष्ठाकी चरम आदर्शवादिताके अधीन कर दिया गया था; यद्यपि असाम्प्रदायिक (आधुनिक प्रचलित अर्थमें), किंतु धर्मसापेक्ष (यहाँ धर्म-सापेक्षका अर्थ है सभी श्रेष्ठ धर्मोंके श्रेष्ठ नियमोंका सम्मान) समाजमें सदाचारमय जीवनकी पावन धारा सदैव प्रवाहित रहती थी; जहाँ जीवनमें सर्वत्र मानवीय मूल्योंकी चरम प्रतिष्ठाके कारण सुखी, सम्पन्न, समृद्ध और संतुष्ट नागरिक बसते थे।

आततायी रावण अपने ही चरित्र-दोषसे नष्ट हो गया। उसीके कारण अपनी समस्त कला, संस्कृति और समृद्धि सहित हाहाकारोंसे भरी हुई लङ्का भी नष्ट हो गयी। यहाँ भी श्रीरामका उदार चरित उस समय अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है, जब रावणके मर जानेके बाद उन्होंने उस विभीषणको, जो रावणके कुकर्मोंके कारण अब भी क्रोध, संक्षोभ और विषादमें डूबा हुआ था, और जो उसे शत्रु समझकर उसके दाह-संस्कारमें रुचि नहीं दिखा रहा था, समझाते हुए कहा—'विभीषण! वैर विरोध मृत्युतक ही हुआ करते हैं, अब हमारा सम्पूर्ण प्रयोजन समाप्त हो गया। अब यह जैसा तुम्हारा भाई है, वैसा ही मेरा भी। इसलिये अब तुम इसका संस्कार करो।'

विजितको अपमानित या जलील करना श्रीरामकी राजनीतिमें नहीं है। अन्यान्य शासकों और आक्रामकोंकी तरह प्रतिशोधकी कटु और विद्वेषपूर्ण भावना भी उनकी राजनीतिमें आदर नहीं पाती। वैदेशिक इतिहासमें जिस प्रकार पेरिक्लीजद्वारा हेक्टरको रथके पहियोंके साथ बाँधकर शहरमें घसीटा गया था, इंग्लैंडके बादशाह चार्ल्स द्वितीयके सत्तारूढ होनेपर ऑलिवर क्रॉमवेलकी हड्डियोंको जिस प्रकार कब्रसे निकालकर पीटा गया, या तथा रूसमें भी, जिस क्रेमलिनके चौराहेपर, जिस रेड स्क्वायरपर 'जिंदगी-भर स्वामी सी थी स्टैलिनने, उसी स्क्वायरसे उनकी गड़ी हुई लाशको उखाड़कर किस प्रकार हटा दिया गया—यह इतिहासकारोंसे छिपा नहीं है। इन सारे उदाहरणोंकी तुलनामें हम श्रीरामके उस महत्तम उदार भावका मूल्य कुछ आँक सकते हैं।

वस्तुतः संसारकी शौर्यगाथाओंमें रामके शौर्यकी कथा निराली है, जो केवल युद्ध-कौशलतक सीमित न रहकर सम्पूर्ण मनुष्य चरित्रके विकासतक विस्तृत है। रामका शत्रु-विजय-अभियान सैन्यबलका नहीं, चरित्र-विकासका अभियान है। यही कारण है कि सीजर, सिकन्दर और नेपोलियन-जैसे विजेता रामकी तेजस्विता और प्रताप महत्ताके सामने तृणवत् प्रतीत होते हैं। इसीलिये महाकविने राक्षसोंका वध करते हुए भी उनको स्थान-स्थानपर 'परमोदार'* कहा है। विश्वामित्र आदि महर्षियोंसे प्राप्त जिन दिव्य अमोघ अस्त्रोंके प्रक्षेपसे महाराक्षसों, मायावियों, दुर्जेय राक्षसोंको संहारकको सेना देनेवाली शक्ति भी पृथ्वीमें मिल गयी, भारत उनको खोजके द्वारा एक अपराजेय शक्तिसम्पन्न राष्ट्र बन सकता है। श्रीराम इस राकेट और परमाणुके युगमें भी इस दिशामें भारत राष्ट्रका पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं।

एक आदर्श लोकनायकके सभी गुण श्रीराममें हैं। लोकनायकके द्वारा किसीकी भी उपेक्षा करना उचित नहीं है। वे सेनाके हर भटसे कुशल-प्रश्न पूछते हैं—

अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूछी नाहीं॥

(मानस ४। २१। १½)

इतना ही नहीं, गुरु वसिष्ठको उनका परिचय देते समय वे विजयका सारा श्रेय भी उन्हींको देना चाहते हैं—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥

(वही, ७। ७। ४)

कितनी बड़ी उदारता और व्यवहार-कुशलता है यह! अयोध्यावासियोंसे भी वे सदैव सम्बन्धियोंके समान कुशल-प्रश्न पूछते हैं—

पौरान् स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति।

(वा० रा० २। २। ३८)

* देखिये वा० रा० ३। ३०। ३१-३२।

इन्हीं गुणोंके कारण तो वे बाहर विचरनेवाले मूर्तिमान् प्राणके समान जनताके अत्यन्त प्रिय थे—

बहिश्चर इव प्राणो बभूव गुणतः प्रियः।
(वा०, २।१।१९)

समुद्रके 'कम्ब-रामायण'में विभीषणके राज्याभिषेकके बाद श्रीरामके कथनमें उनकी आत्मीयताका विस्तार कितना प्रिय है—

गुहनोडुम् ऐवरानोम् मुन्बु, पिन् कुन्रु सूल्वान्।
मकनोडुम् अरुवरानोम्, एम्मुळै अन्बिन् वन्द॥
अकन् अमर् कादल् ऐय! निन्नोडुम् एळुवर् आनोम्।
पुकल् अरुं कानम् तन्दु पुदल्वराल् पोलिन्दान् नुन्दै॥
(युद्धकाण्ड)

अर्थात् प्रथमतः हम चार भाई थे, फिर गुहके साथ पाँच भाई हुए। तदनन्तर सुग्रीवके साथ हम छः भाई हुए और अब तो तुम्हें भी मिलाकर हम सात भाई हो गये हैं। स्नेही बन्धु! मुझे निबिड़ काननमें भेजकर हमारे पिता भाग्यान्वित ही हुए। श्रीरामका यह मैत्रीभाव विश्व-मैत्रीकी भावनाका निर्माण करनेके लिये कितना सहायक हो सकता है।

लोकनायकका व्यक्तित्व सभी प्रकारसे तेजस्वी, प्रभावशाली और आकर्षक होना चाहिये। व्यक्तित्वको चमकानेवाले सभी गुण श्रीराममें किस प्रकार एकत्रित हुए थे, यह जानना हो तो वाल्मीकिके पूछनेपर नारदजीके द्वारा—

समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षा विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्शुभलक्षणः॥
(१।१।११)

—आदिके रूपमें दिया गया उत्तर अवश्य देखने योग्य है। लोकनेतामें प्रत्युत्पन्न वक्तृत्व शक्तिका होना भी आवश्यक है—'प्रियंवदः' और 'मृदुपूर्वं च भाषते।' (वा० रा० २।१।१३, १०)। श्रीराममें यह गुण भी अपनी सम्पूर्ण श्रेष्ठताके साथ प्राप्त होता है। वाल्मीकिने उनको बार-बार 'वदतां वरम्' कहा है और उनके सामने महाबुद्धिमान् और अपनी वक्तृताके लिये प्रसिद्ध बृहस्पति आदिको भी तुच्छ माना है—

न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम्।
अतिवाययितुं शक्तो बृहस्पतिरपि ध्रुवम्॥
(वा०, ६।१०।५१)

यहाँ तुलसीदासजीके ये कथन भी स्मरणीय हैं—

प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ॥
सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना॥
(मानस ७।८७।१-२)

उनके हृदयकी विशालता उस समय अपनी चरम सीमा पर पहुँचती है, जब वे जिन कैकेयीने उन्हें वनवास दिया है, उनके प्रति भी अपनी मातृभक्ति अणुमात्र भी शिथिल नहीं करते। चित्रकूटसे भरतको अयोध्या लौटाते समय वे भरतसे तथा जानकीजीकी शपथ देकर कहते हैं—

मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति।
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन॥
(वा० रा०, २।११२।२७-२८)

'रघुनन्दन! मैं तुम्हें अपनी और सीताकी शपथ देकर कहता हूँ कि तुम माता कैकेयीकी रक्षा करना, उनके प्रति कभी क्रोध न करना।'

स्नेह, उत्कट प्रेम और पालन-पोषणकी दृष्टिसे सभी माताएँ उनके लिये समान हैं—

स्नेहप्रश्रयसम्भोगैः समा हि मम मातरः॥
(वा० रा० २।११।११)

रामको प्राणोंसे भी अधिक प्यार करनेवाली, किंतु मन्थराकी दुर्मन्त्रणासे रामके वन-गमनका वर माँगनेवाली कैकेयी, राम-विरहके कारण परिवार, अयोध्या और सम्पूर्ण राज्यमें क्षोभ, विषाद और करुणाके उमड़ते हुए अपरिसीम तूफानको देखकर, अपने इस द्रोहके कारण अत्यन्त कुण्ठित हुई थीं और जीवनभर इस पापमें कुढ़ती, जलती और घुटती रहीं। किंतु श्रीराम ही थे, जिन्होंने चित्रकूटमें तीनों माताओंसे मिलते पहले—

'प्रथम राम भेंटी कैकेई।'
(रा० च० मा० २।२४४।३)

—कैकेयीसे ही मर्माहत भेंट की और जब अयोध्या लौटे, तब भी सबसे पहले—

'कैकेई कहँ पुनि पुनि मिले'
(वही, ७।४)

—कैकेयीसे ही बार-बार मिले, जिससे उन्हें मनमें श्रीरामकी ओरसे अणुमात्र भी अपराधबोधका दंश और गर्हणीयताका अनुभव न हो। श्रीरामकी यह उदारता अनुपम है।

वे समस्त साहित्यमें एक अलौकिक चरित्र नहीं हैं, तेजोमयता, पवित्रता और गम्भीर भक्तिकी अभिव्यक्तिके

मान है, श्रीराम स्वयं जिनके लिये 'स्वया जयन्ति पुण्यानि' (उत्तरराम० १ । ४१) कहते हैं, दीपशिखा की ज्योतिर्मयी, निष्कलङ्क अपनी उस प्रिया सीताका भी लोककी प्रसन्नताके लिये राजा राम ('राजा प्रकृतिरञ्जनात्' रघु० ४ । १२) परित्याग कर देते हैं । क्या आज बड़े-से-बड़े नेताके जीवनमें भी लोक और समाजके प्रति इतनी निष्ठा है ? क्या आज सैकड़ों लोगोंके बलिदानके बावजूद और लाखों लोगोंद्वारा जेल भर देनेपर भी नम्रता और ईमानदारीसे जनताकी आकाङ्क्षाओंका आदर किया जाता है ?

कौटल्यके अनुसार राजाका अपना कोई हित या सुख नहीं होना चाहिये । वह तो प्रजाकी सुख-सुविधाओं एवं प्रजाके अभीष्टोंकी व्यवस्था करनेवाला व्यवस्थापकमात्र है—

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम् ।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥
(कौ० अ०, अधि० ११९ । १४)

कालिदासने भी यही कामना की है—

'प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः ।'
(अभि० शा० ७ । २४)

श्रीराम इस आदर्शके मूर्तिमान् रूप हैं । क्या आजके लोकनायकोंको भी कभी अपने स्वार्थोंके सुख-दुःखोंकी चिन्ता सताती है, जब कि 'श्रीराम प्रजाजनोंके दुःखोंमें उनसे भी अधिक दुःखका अनुभव करते हैं और उनके उत्सव तथा प्रसन्नताके समय पिताके समान परितुष्ट होते हैं'—

व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः ।
उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परितुष्यति ॥
(वा० रा० २ । २ । ४०-४१)

एक स्थानपर उन्होंने कहा है कि यह संसार व्यक्तिके इच्छानुसार नहीं चलता । बड़ी-बड़ी [illegible] का जीवन कहीं भी अपने लिये नहीं है । अन्यत्र वे कहते हैं—'लक्ष्मण ! मैं सत्य और आयुधकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम तथा सम्पूर्ण पृथ्वी—सब कुछ तुम्हीं लोगोंके लिये चाहता हूँ । तुम सभी बन्धुओंको छोड़कर यदि मुझे कुछ सुख मिलता हो तो उसमें आग लग जाय, वह जलकर भस्म हो जाय ।' (२ । ९७ । ५—८)

तपस्वी महर्षियोंके उपस्थित होनेपर श्रीराम कहते हैं—'महर्षियो ! जिस कामसे यहाँ आपलोगोंका शुभागमन हुआ है ? मैं सब कुछ छोड़कर आपकी क्या सेवा करूँ ? आदेश मिलनेपर बड़े सुखसे मैं आपकी सभी इच्छाओंको पूर्ण कर सकता हूँ ।' यह सारा राज्य, इस हृदयकमलमें विराजमान 'यह जीवात्मा तथा यह मेरा सारा वैभव आप ब्राह्मणोंकी सेवाके लिये ही है'—

इदं राज्यं च सकलं जीवितं च हृदिस्थितम् ।
सर्वमेतद् द्विजार्थं मे सत्यमेतद् ब्रवीमि वः ॥
(वा० रा० ७ । ६० । १४)

क्या आजके लोकनायक जनप्रतिनिधियोंके पहुँचनेपर इतनी सहृदयता, उदारता और विनम्रता प्रदर्शित करनेकी भावना रखते हैं ? एक ओर अद्भुत गुण था श्रीराममें; वे सभीको कुछ-न-कुछ देना ही चाहते थे, किसीसे कुछ भी लेना—यह उन्हें किसी भी स्थितिमें मंजूर नहीं था—

'दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात्' (वही, १ । ४७ । १७)

आजके लोकनायकोंके जीवनमें केवल लेनेकी ही मुख्यता है और उनके इस आचरणके दुष्प्रभावसे समाजमें भी चारों ओर केवल लेना-ही-लेना सुनायी पड़ता है । श्रीराम तो अपनी जनतासे यह भी कहते हैं कि 'यदि भूलसे मैं कुछ अनीतिपूर्ण वचन कहूँ तो भय छोड़कर मुझे यह कहकर तुरंत रोक देना कि राम ! तुम्हारा यह काम अनुचित है'—

जौं अनीति कछु भाषौं भाई । तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ॥

दुनियाकी सारी मानवताको हिलानेके लिये उनके चरित्रके प्रकाशपुञ्जकी ज्योति देश-देशान्तरों, मानवीय हृदयों, मस्तिष्कों और काव्य-ग्रन्थोंके रूपमें सदैव प्रज्वलित बनी रहेगी, जिसके प्रकाशमें करोड़ों लोगोंकी थकी हुई जिंदगी निश्चित ही सुख और शान्ति प्राप्तकर कृत-कृत्य होगी।

'रामो धर्मस्य विग्रहः'

(लेखक—श्रीदेवीदत्तजी शास्त्री 'मार्तण्ड', एम्० ए०, साहित्यरत्न)

महर्षि वाल्मीकि-जैसे तपःपूत महाकविका कथन है कि 'राम धर्मके मूर्त स्वरूप हैं।' जिस युगमें भगवान् राम इस भारतवर्षमें विद्यमान थे, उसी युगमें महर्षि वाल्मीकि भी हमारे इस देशको अपने तपःसम्भूत काव्यसे ऋषुओंके क्षेत्रमें ऊँचा उठा रहे थे। वे दशरथ और जनक-जैसे लोकमान्य नरपतियोंके सम्मान्य मित्र थे। अपने योगबलसे वे प्रत्येक विषयकी पूर्ण और सम्यक् गवेषणा करनेमें समर्थ थे। आजकल कदाचित् पाठक योगबलकी बात सुनकर चौंक उठनेका अभ्यस्त हो गया है; इसलिये यह बताना भी आवश्यक है कि भारतीय परिभाषाके अनुसार चित्तकी वृत्तियोंका पूर्ण निरोध ही योग है। चित्तवृत्तिके निरोधके चमत्कार आज भी यदा-कदा देखनेको मिल जाते हैं।

इन पङ्क्तियोंका लेखक उस धर्मका अनुयायी है, जिसने सभी सृष्टिको संगठित कर रखा है; और उसका नाम केवल 'धर्म' ही है। जिन लोगोंको धर्मकी यह परिभाषा स्वीकार्य नहीं है और अपने धर्मको एक विशेष नाम देकर पुकारना जिनको रुचता है तथा जो अपनेको धर्मके क्षेत्रमें भारतसे बाहरका समझते हैं, उन्हें भी अपने ऐतिहासिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ज्ञानके संवर्धनके लिये रामके उस अत्यन्त प्राचीन व्यक्तित्वको समझनेका प्रयास करना चाहिये, जिसने सत्यकी प्रतिष्ठाके लिये यावज्जीवन धर्मकी आराधना की थी।

रामके महान् व्यक्तित्वको समझनेके लिये वाल्मीकिका आदिकाव्य सबसे पहला और सबसे अन्तिम आधार है; इस-लिये हम वाल्मीकिके आश्रममें प्रविष्ट हुए बिना, अन्य किसी भी उपायसे रामके सूक्ष्म चरित्रको पूर्णरूपसे न समझ पायेंगे। एक बार एक सज्जनने मुझसे पूछा कि 'यदि भगवान्‌की सत्ताको स्वीकार न किया जाय तो क्या इससे कोई हानि हो सकती है?' मैंने उनसे कहा कि 'इससे भगवान्‌की तो रत्ती-भर भी हानि नहीं हो सकती; क्योंकि भगवान् हानि-लाभसे सर्वथा परे हैं। पर यदि हम भगवान्‌की सत्ताका निषेध करेंगे तो स्वयं जीवनभर सत्यसे विमुख बने रहेंगे।' इसी प्रकार यदि हम अपनेको धर्मतः अभारतीय माननेका दुराग्रह बनाये रखें और रामके चरित्रको पूर्णतया समझनेकी चेष्टा न करें तो इससे रामकी महत्ताको कोई हानि नहीं पहुँचेगी; पर हम स्वयं उनकी महत्ताके उस आदर्शवादसे वञ्चित रह जायँगे, जो सदैव लोकके अभ्युत्थानके अमृत-रसकी वृष्टि करता रहता है।

वाल्मीकिकी रामायण ऐसे रामका चरित्र तो है ही, जो एक महापुरुष थे—इतने बड़े महापुरुष, जिन्हें जन-जीवन कोटि-कोटि कण्ठोंसे 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' कहकर सम्बोधित करता आ रहा है; साथ-ही-साथ यह ऐसे रामका भी चरित्र है, जो विष्णुके अवतार थे। इन दोनों चरित्रोंमें विरोध नहीं है। जो नर है, वही हमारा नारायण है। जो नर नहीं है, वह नारायणत्वका अधिकारी नहीं हो सकता है—ठीक उसी प्रकार, जैसे बिना एम्० ए०की उपाधिके कोई पी-एच्० डी०, डी० लिट्० आदिकी उपाधियाँ नहीं प्राप्त कर सकता। नारायणका स्वरूप हमारे लिये बोधगम्य नहीं है, वह योगियोंके लिये भी सरलतासे बोधगम्य नहीं हुआ करता; इसीलिये वाल्मीकिने नारदसे नररूपी रामके ही महच्चरित्रपर आदिकाव्यके सृजनकी प्रेरणा प्राप्त की थी।

जिन रामके महच्चरित्रसे वाल्मीकिने अपने आदिकाव्य-के सृजनकी प्रेरणा प्राप्त की थी, वे नारायण होते हुए भी लोकके हितके लिये केवल नर थे। वे नारायणसे नर इसलिये बने कि उनके नरत्वसे लोग प्रेरणा प्राप्त करके अपने नरत्वको अधिक संवर्धित कर सकें। इन्हीं रामको वाल्मीकिने 'धर्मका मूर्तिमान् स्वरूप' कहा है। रामको वाल्मीकि-ने अपने रामायणमें सर्वत्र 'आर्य' कहा है। इसलिये संसार-भरके जितने भी देश अपनेको आर्यधर्मावलम्बी मानते हैं, राम उन सबके पूज्य हैं और अपने महच्चरित्रके कारण वे उन सभीके श्रद्धापात्र हैं। जिस प्रकार राम एक असाधारण व्यक्ति थे, उसी प्रकार उनकी रामायणके प्रणेता

उसका अध्ययन सदैव श्रेयस्कर है। वाल्मीकि रामके ऐसे आचरणको जन-जनमें प्रविष्ट करना चाहते थे। वे चाहते थे कि लोग रामके चरित्रका चिन्तन करके श्रेय प्राप्त करें। जब रामके चरित्रका चिन्तन होगा, तभी हमारा आचरण रामवत् होगा; इसीलिये वाल्मीकिने चाहा था कि 'हमारा ब्राह्मणवर्ग लोगोंके कानोंमें नित्य ही रामके चरित्र प्रविष्ट कराता रहे और सारे लोग अपने कल्याणके लिये रामके चरित्रका अध्ययन, मनन और चिन्तन करते रहें।' वाल्मीकि यह भी चाहते थे कि 'हमारी माताएँ उसी प्रकारके पुत्र उत्पन्न करें, जिस प्रकारके पुत्र कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयीने उत्पन्न किये थे'—

> चिन्तयेद् राघवं नित्यं श्रेयः प्राप्तुं च इच्छति।
> श्रावयेदिदमाख्यानं ब्राह्मणेभ्यो दिने दिने॥
> (वा० रा० ७।१११।२०)
>
> राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च।
> भरतेन च कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः॥
> (वही, ६।१२८।११०)

ऊपरके श्लोक यह स्पष्ट बताते हैं कि वाल्मीकि रामके चरित्रसे जनजीवनको क्यों ओतप्रोत बनाना चाहते थे। वे क्यों चाहते थे कि सभी स्त्रियाँ राम, भरत और लक्ष्मण-जैसे पुत्र उत्पन्न करें। निश्चय ही वे ऐसा इसलिये चाहते थे कि देशकी भावी पीढ़ियाँ राम, भरत और लक्ष्मण-जैसे पुत्रोंसे विभूषित हो उठें। रामायणके प्रचारमें वाल्मीकिका यही उद्देश्य था। तुलसीदास, कम्बन और कृत्तिवास-जैसे रामचरितके परवर्ती महाकवि भी यही चाहते थे। उन्होंने हिंदी, तमिळ और बँगला भाषाओंमें इसीलिये रामचरितको काव्यबद्ध किया था कि वाल्मीकिकी यह आशा पूर्ण हो।

व्यास-जैसे तपोनिष्ठ महर्षि कहते थे कि 'मैं दोनों हाथ उठाये हुए, बारंबार सबको श्रेयमार्गपर चलनेको कहता रहता हूँ। पर लोग मेरी नहीं सुनते।' चाहिये यह कि हम वाल्मीकि और व्यास-जैसे महर्षियोंकी सुनें। तुलसीदास, कम्बन और कृत्तिवास-जैसे भक्तोंकी सुनें; और रामके सच्चरित्रके अनुसार अपने चरित्रको ढालनेका प्रयत्न करते रहें। वास्तविक रामभक्ति इसीमें है।

रामका चरित्र धर्ममय था। वे धर्मके मूर्तिमन्त स्वरूप थे—वाल्मीकि-रामायणका यह संदेश हमें सदैव स्मरण रखना चाहिये। वाल्मीकिके परवर्ती महापुरुषोंद्वारा भारतीय भाषाओंमें रामचरित्रका संग्रथन इसीलिये किया गया था कि हम रामके उस मूर्तिमन्त धार्मिक स्वरूपको अपनी आँखोंसे देखें और तद्वत् अपने आचरणका सृजन करें। रामके इस धर्मस्वरूपका वास्तविक दर्शन तभी सम्भव होगा, जब हम अपने आचरणको रामवत् बनानेके संकल्पकी साधनामें श्रद्धा और विश्वासपूर्वक जुटे रहें।

हमारा देश वैदिक सम्पत्तिका धनी था। राम उसी देशमें उपजे थे, जिसके गीत विक्रमकी बीसवीं सदीमें उत्पन्न महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने इन शब्दोंमें गाये थे—

> प्रथम प्रभात उदित तव गगने।
> प्रथम सामरव तव तपोवने॥

वाल्मीकिने रामके जिन गुणोंका वर्णन अपने आदिग्रन्थमें किया है, उनमें एक अक्षर भी अत्युक्तिपूर्ण नहीं है। उन्होंने रामको 'वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञ' कहा है। पर राम हमारी भाँति केवल अखण्ड पाठ करके वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञ नहीं बने थे। वे अपने आचरणको वेदोंकी शिक्षाके अनुरूप बनाकर वेद-वेदाङ्ग-तत्त्वज्ञ बने थे। यजुर्वेदमें कामना की गयी है कि 'हमारे राष्ट्रमें ब्रह्मतेजका वर्चस बढ़े, हमारे राष्ट्रके शत्रुसंहारक क्षत्रियोंमें महारथियोंका पौरुष जाग्रत् हो, हमारे राष्ट्रमें प्रचुर मात्रामें दूध देनेवाली गौएँ समृद्ध हों, हमारे राष्ट्रमें महाभारके वहन करनेवाले बड़े-बड़े बैल उत्पन्न हों, हमारे राष्ट्रके घोड़े शीघ्रगामी हों, हमारे राष्ट्रकी स्त्रियाँ सदाचारिणी हों, हमारे राष्ट्रके रथी विजेता हों, हमारे राष्ट्रके यजमान सभाओंकी मर्यादा बढ़ानेवाले वीर युवक उत्पन्न करें, हमारे राष्ट्रमें समय समयपर वृष्टि हुआ करे, हमारे राष्ट्रमें ओषधियाँ फलवती होकर समृद्ध हों, हमारे राष्ट्रका पूर्ण कल्याण हो।'—

> 'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढा-नड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।'
> (यजु० २२।२२)

रामने वेदोंकी इस शिक्षाका सम्पादन अपने चरित्रमें किस प्रकार किया, इसके ज्ञानके लिये हमें निरन्तर रामचरितका अध्ययन करना चाहिये। वेदोंकी इसी शिक्षासे प्रेरित होकर ही रामने अपनी इस प्रतिज्ञाको आजीवन चरितार्थ किया था—

रनिवासको लेकर अपने राजसभागवहित भाते दीख पड़े। ऐसा समय रामके लिये कितना कठिन होगा, इसकी कल्पना कीजिये। स्वयं दशरथजीने पुकारकर आदेश दिया कि 'रथ रोको।' सुमन्त्रने कहा—'मैं राजाज्ञाका उल्लङ्घन कैसे करूँ।' रामने इस अवसरपर सुमन्त्रसे कहा कि 'इस राजाज्ञाके माननेसे स्वयं महाराजके सत्यको क्षति पहुँचेगी, इसलिये आप शीघ्रतासे रथ हाँकिये।'

चित्रकूटमें जब भरत उनसे लौट चलनेका आग्रह करने लगे और वसिष्ठसमेत अयोध्याका सारा समाज भरतका अनुमोदन और समर्थन करने लगा, तब रामने अपने पक्षमें जो बात कही, वह सारे संसारकी मानवी आचार-संहिताको अलंकृत करनेवाली है। उन्होंने कहा कि 'पिताकी बेची हुई, दानमें दी हुई और धरोहरमें रखी हुई वस्तुको लौटानेका कोई अधिकार पुत्रको नहीं होता। मेरे पिताके दो आदेश अलग-अलग हैं—

१—रामको चौदह वर्षोंके लिये वनोंमें निर्वासन।

२—भरतको उस अवधितक राज्यका हस्तान्तरण।

'इसलिये पुत्रके नाते, पिताको निरस्त करनेका अधिकार रामको जिस प्रकार बिल्कुल ही नहीं है, उसी प्रकार पुत्रके नाते उस आदेशको निरस्त करनेका अधिकार भरतको भी प्राप्त नहीं है।' उन्होंने अपनी भाषणपटुताका पूर्ण प्रभाव प्रदर्शित करते हुए सारी सभासे कहा कि 'भरत-को यह कहनेका कोई अधिकार ही नहीं है कि वे पिताद्वारा चौदह वर्षोंके लिये उनको सौंपी गयी धरोहर नहीं सँभालेंगे। उनका यह कहना बिल्कुल गलत है कि वे मेरे प्रतिनिधि बनकर वन जायँ और मैं उनका प्रतिनिधि बनकर राज्यकी देख-रेख करूँ।' उन्होंने अपनी भाषणपटुताका पूरा चमत्कार दिखाते हुए कहा कि 'पिताने मुझे चौदह वर्षके लिये वनवास दिया है, भरतको नहीं; अतएव वनमें मैं रहूँगा, भरत नहीं। वनके लिये भरतको अपना प्रतिनिधि मैं बना ही नहीं सकता; क्योंकि इससे पिताकी आज्ञाका पूर्ण उल्लङ्घन हो जायगा।' उन्होंने फिर कहा, 'जिस प्रकार मुझे वनका आदेश पितासे प्राप्त हुआ है, ठीक उसी प्रकार भरतको पितासे राज्यकी देख-रेखका आदेश प्राप्त हुआ है। यदि भरत मुझको ही अपना प्रतिनिधित्व सौंपते हैं तो इस कार्यमें भी पिताकी आज्ञाका पूर्णतया उल्लङ्घन हो जायगा; क्योंकि पिताने राज्यभारकी धरोहर उन्हें सौंपी है, मुझे नहीं। पिताने यह कभी आज्ञा नहीं दी कि हम दोनों इस कर्तव्यके लिये अपने प्रतिनिधि भी नियुक्त कर सकते हैं; अतः हम दोनोंके कर्तव्य सर्वथा अलग-अलग हैं और इसलिये सर्वथा अलग-अलग रहकर हम दोनोंको अपने पिताके आदेशोंका पालन करना चाहिये।' ऊपर जिन भेदयुगके कार्ल मार्क्सकी चर्चा की गयी है, उनका वर्चस्वी भाषण भी रामने पूर्ण मनोयोगसे सुना और कह दिया कि 'महर्षि जाबालि मेरे बड़े स्नेही हैं, वे मेरे स्नेहके कारण ऐसा कह रहे हैं; अतएव उनके तर्क अविचारणीय हैं।' उन्होंने स्वयं जाबालिसे कहा कि 'मेरी हितैषिताके कारण जो बातें आप कह रहे हैं, वे कर्तव्य-सी लगती तो हैं, पर हैं वे अकर्तव्य। वे पथ्य-सी प्रतीत तो होती हैं, किंतु हैं वे कुपथ्य।'

> भवान् मे प्रियकामार्थं वचनं यदिहोक्तवान्।
> अकार्यं कार्यसंकाशमपथ्यं पथ्यसंनिभम्॥
>
> (वा० रा० २। १०९। २)

रामके परम प्रभावशाली धर्मनिष्ठ भाषणसे भरत और वसिष्ठसमेत अयोध्याका वह सारा समाज रामके पक्षमें हो गया। इसके उपरान्त जो कुछ हुआ, उससे सभी परिचित हैं। रामकी इसी प्रकारकी धर्मनिष्ठाओंपर रीझकर वाल्मीकिके स्वर-में-स्वर मिलाकर सारे भारतवर्षने उस प्राचीनतम युगमें यह घोषणा प्रसारित की थी—

'रामो धर्मस्य विग्रहः।'

निषादराज गुह रामके एक मित्र थे। वे रामके बड़े पुराने मित्र थे। वाल्मीकीय रामायण रामके जीवनका सम-सामयिक महाकाव्य है, इसलिये उसमें रामके जीवनकी ऐतिहासिकता भी सुरक्षित है। वाल्मीकिके निषादराज गुह एक सम्पन्न राज्याधिकारी थे। उनके यहाँ अनेक आकार-प्रकारकी बड़ी-छोटी और सजी-धजी पाँच सौ नौकाएँ थीं। वे चार पैसे प्रति सवारी उतराई लेकर यात्रियोंको गङ्गापार पहुँचानेवाले निर्धन केवट नहीं थे।

राम जब उनके यहाँ पहुँचे, तब उन्होंने उनके भोजन और शयनका यथोचित प्रबन्ध किया। उन्होंने रामका स्वागत करते हुए उनसे कहा कि 'मेरा यह सारा राज्य आपका है। आप इसके राजा बनें। आप हमारे स्वामी बन-कर यहाँका शासन चलायें। हम सभी लोग आपके सेवक बन-कर आपकी आज्ञाओंका अनुवर्तन करेंगे। ये भक्ष्य, भोज्य, पेय और लेह्य व्यञ्जन प्रस्तुत हैं; पूरी साज-सजावटके

रामकी सेना शत्रुके उपकण्ठोंमें छावनी डाल रही थी। कुछ सेना छावनी डाले पड़ी थी, कुछ डेरे डाल रही थी, कुछ अभी पुल पार कर रही थी। ऐसी अस्त-व्यस्तताके समयमें शत्रुकी सैन्यशक्तिका अनुमान लगानेके लिये रावणने अपने मन्त्रिमण्डलके दो मन्त्रियोंको गुप्तवेषमें रामकी छावनीमें भेजा। वे दोनों मन्त्री थे—शुक और सारण। रामकी छावनीमें वे दोनों-के-दोनों पकड़ लिये गये। इस प्रकार जो लोग पकड़े जाते हैं, वे आजके युगमें भी तुरंत मार डाले जाते हैं और उस युगमें भी वे पूर्णरूपसे वध्य थे। रामके सामने जब वे लाये गये, तब दोनों-के-दोनों अपनी मृत्युकी घड़ियाँ गिन रहे थे। रामसे कहा गया कि 'ये दोनों रावणके मन्त्रिमण्डलके सदस्य शुक और सारण हैं। इन्हें छावनीके अंदर पकड़ा गया है। ये गुप्तचर बनकर आये थे।'

अपने पक्षके प्रतिवेदनको सुननेके बाद रामने जो किया, उसका उदाहरण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। संसारभरके सैनिक इतिहासका यह अकेला ही उदाहरण है। जो शत्रु गुप्तचरके वेषमें पकड़े गये थे, वे रावणके मन्त्रिमण्डलके बड़े प्रभावशाली सदस्य थे। उनकी दी हुई सूचना रामके लिये बड़ी भयावह सिद्ध हो सकती थी; पर यह जानते हुए भी रामने उनसे जो कुछ कहा, उसको सुनिये। उसके श्रवणमात्रसे आपका वक्षःस्थल समुन्नत हो जायगा। रामने उनसे कहा कि 'आपने तो अपने राजाके आदेशका पालन किया है। मुझे आशा है, आप हमारी सैन्यशक्तिका अनुमान लगा चुके होंगे। अब आप स्वतन्त्र हैं; जहाँ चाहें, चले जायँ। पर यदि आप अभी अपने कामको पूरा नहीं समझते और यह समझते हैं कि अभी आपको कुछ और देखना चाहिये या तो विभीषणके साथ जाइये। ये आपको जो भी आप चाहेंगे, पूर्णतया दिखा देंगे'—

> यदि दृष्टं बलं सर्वं वयं वा सुसमीक्षिताः।
> यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम्॥
> अथ किंचिददृष्टं वा भूयस्तद् द्रष्टुमर्हथ।
> विभीषणो वा कार्त्स्न्येन पुनः संदर्शयिष्यति॥
>
> (वा० रा० ६।२५।१८-१९)

वैष्णवी शक्तिकी द्वादश कलाओंसे सम्पन्न भगवान् रामके नारायणत्वका मूल्याङ्कन तो हमारी शक्तिसे बाहरकी बात है। हम ससीम उस असीमका मूल्याङ्कन क्या करें। पर उन रामके चरित्रांशका अनुशीलन हमें अवश्य करना चाहिये, जो हमारे पूर्वज होकर नररूपमें हमारे देशमें जन्मे और हमारे अन्य पूर्वजोंके साथ जिन्होंने घोड़ोंपर चढ़कर चौगानके खेलोंके गेंद अपने बल्लोंसे उछाले; सरयूकी धारामें जिन्होंने तैराकीकी प्रतियोगिताएँ जीतीं और शस्त्रास्त्रोंके प्रशिक्षणोंकी परीक्षाओंमें विशेषताओंसे विभूषित होकर हमारे क्षात्रधर्मको अलंकृत किया; जिन्होंने परम सत्तावान् होकर भी जनताकी इच्छाको अपनी इच्छासे ऊपर स्थान दिया और उसके संतोषके लिये जिन्होंने अपनी उस पुनीता पत्नीको भी त्याग दिया, जिसके शुद्धाचरणके वे स्वयं ही सबसे बड़े समर्थक थे; जिन्होंने अपनी यह महती पीड़ा सदैव अपनेतक ही सीमित रखी और अपना यह पीड़ित हृदय छिपे हुए जिन्होंने अपनी जनताको स्वर्गोपम सुखोंसे परम सम्पन्न बना दिया; जिन्होंने अपने परमशत्रु रावणकी परम प्रशंसा करके उसे भी अपना भाई बनाकर अपनी ही भाँति अजर-अमर बना दिया। रामद्वारा की हुई रावणकी यह प्रशंसा हमें इसलिये अवश्य सुननी और समझनी चाहिये कि हमारे युगमें जनरल डगलस मैकार्थरने अपने विरोधी जनरल तोजोको फाँसीपर लटकाकर उनकी तलवार गलवायी थी और उस गले हुए धातुद्रवसे अपनी दाढ़ी बनानेका शेविंग सेट तैयार करवाया था। रावणकी प्रशंसामें रामने विभीषणसे कहा था कि 'ये प्रचण्ड पराक्रमी युद्धमें असमर्थ होकर नहीं गिरे, वे निर्भीक होकर समराङ्गणमें जूझे हैं। ये उन लोगोंमें हैं, जिनके कारण क्षात्रधर्म व्यवस्थित होता है। ऐसे लोग युद्धभूमिमें अपनेको ऊँचा रखनेका प्रयत्न करते हुए ही मारे जाते हैं। '''युद्धमें सदैव किसीकी विजय-ही-विजय नहीं हुआ करती। आदिकालसे ही यह नियम है कि जब एक हारता है, तभी दूसरा जीतता है। वीर लोग या तो शत्रुको जीत लेते हैं या शत्रुद्वारा मारे जाते हैं। इनको तो पूर्वजोंके महापुरुषोंद्वारा निर्दिष्ट उत्तम गति प्राप्त हुई है। क्षत्रियोंके लिये यह गति बड़े आदरकी वस्तु है। इनके-जैसे क्षत्रियका युद्धमें इस प्रकार हत होना किसी भी प्रकारसे शोचनीय नहीं है।'

> नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः।
> अत्युन्नतमहोत्साहः पतितोऽयमशङ्कितः॥
> नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते क्षत्रधर्मव्यवस्थिताः।
> वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे॥

* * *

समान, वीरतामें विष्णुके समान, क्रोधमें कालाग्निके समान, क्षमामें पृथ्वीके समान और दानमें कुबेरके समान बतलाया गया है। संक्षेपमें, उन्हें मूर्तिमान् धर्म ही (धर्म इवापरः) कहा गया है। इसी प्रकार, तुलसीके काव्यमें रामके गुणोंका विकीर्ण उल्लेख होनेके अतिरिक्त एक ही स्थानपर विनय पत्रिकामें शील स्वभावके अवयवोंको गिनाया गया है—

'सुनि सीतापति सील सुभाउ।'		(पद १००)

वे अवयव इस प्रकार हैं—अक्षोभ (कभी किसीने उनके मुखमण्डलपर रिसकी रेखातक नहीं देखी), औदार्य (खेलमें जीतकर भी हार मान लेना), कृतज्ञता विस्मृत-कर तनिक भी अविनयपर पश्चात्ताप करना (चरणके स्पर्शसे अहल्याका उद्धार), क्षमा और सहिष्णुता (परशुराम-प्रसङ्गमें), औदार्य (कैकेयीके विषयमें), कृतज्ञता (हनुमान्‌के प्रति), अदोषदर्शन एवं गुणग्राहकता (सुग्रीव और विभीषणके प्रसङ्गमें), यशोलिप्सामें अनासक्ति तथा निरहंकारता (भक्तोंद्वारकी प्रशंसासे मुँह छिपाना और शरणागत प्रणामकी बार-बार चर्चा)।

श्रीरामका यह शील अयोध्यासे कलुषतक, कम्पके आँगनसे रणके प्राङ्गणतक, स्वजन-परिजनसे अरिजनतक, सभ्य नागरिकसे असभ्य वनेचरतक, मनुष्योंसे कीटपशु-तक और महात्माओंसे पुण्यात्माओं—सभीको प्रभावित करता है। उन्होंने जंगली जातियों और नरभक्षक राक्षसोंको इसी शीलके प्रभावसे आर्यमार्गमें दीक्षित करते हुए ('कृण्वन्तो विश्वमार्यम्') वन-यात्रा की है। रामकी वन यात्रा वस्तुतः उनके शीलकी ही दिग्विजय है। उनकी लङ्का-विजय भी उनके शीलकी ही जय है, जिसका प्रतिपादन गोस्वामीजीने धर्म-रथके रूपकमें किया है (लङ्काकाण्ड ८०)। इस प्रकार उनका शील ही उनकी आन्तरिक शक्ति या चरित्रकी शक्ति है।

श्रीरामके शीलके रम्य चित्र वाल्मीकिरामायणकी अपेक्षा रामचरितमानसमें हैं। रामायणको 'शक्तिका' काव्य कहा जा सकता है और रामचरितमानसको मुख्यतः 'शील'का। मानसमें चित्रित रामके शीलकी झाँकियाँ हृदयपर अमिट छाप छोड़ती हैं। धनुर्भङ्गके अवसरपर दर्प और अमर्षसे खौलते हुए भृगुवंशके अवतंस परशुरामको रामका यह उत्तर मानस अमृतका छींटा ही था—

राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तोहारा॥
(१।२८१।१)

इसमें अपनी लघुता और प्रतिद्वन्द्वीकी महत्ताको स्वीकारना उनके सहज शीलका प्रमाण है। इसी प्रकार वालीके करुणापूर्ण वचनोंको सुनकर प्राण-दान देनेको उद्यत होना, जटायुकी अन्त्येष्टि पिताके समान करना, प्रबल प्रतिद्वन्द्वी रावणका दाह-संस्कार परम सम्मानके साथ कराना (यह चित्र शीलकी दृष्टिसे वाल्मीकिरामायणमें अधिक प्रभावोत्पादक है) और अयोध्या लौटनेपर सर्वप्रथम कैकेयीसे भेंट करना (मानस, उत्तर० ६।२)—ये श्रीरामके शीलके अविस्मरणीय चित्र हैं। उनके शीलको यदि एक शब्दमें पुकारें तो वह है—विनय (बड़ों एवं पूज्योंके प्रति) अथवा करुणा (छोटों अथवा दीनोंके प्रति)। वे विनयकी मूर्ति हैं और करुणाके आगार। पहला पक्ष उन्हें आदर्श मानव (पुरुषोत्तम) बनाता है और दूसरा लोकरक्षक भगवान्।

२—श्रीरामकी शक्ति

श्रीरामकी शक्तिका विवेचन भौतिक नहीं, आध्यात्मिक आधारोंपर ही किया जा सकता है। शक्तिका वास्तविक केन्द्र आत्मा है, शरीर नहीं। रामके व्यक्तित्वमें शक्तिका यही आदर्श मूर्तिमान् हुआ है। भुजबल और शस्त्रबल उनके लिये नगण्य हैं—ये दोनों ही उनके आत्मबलपर आश्रित हैं। इसी आत्मबलका पर्याय है—'सत्य'। जिस प्रकार उनके शीलकी धुरी है—'करुणा', उसी प्रकार उनकी शक्तिकी धुरी है—'सत्य'। 'रामो द्विर्नाभिभाषते' (राम दो वचन नहीं बोलता) में उनका 'संकल्प सत्य बनकर बोलता है, जिससे उनकी चतुर्विध वीरता परिभाषित होती है।

सत्य क्रियामें पूर्ण होता है। उसे किन्हीं बाहरी उपकरणोंकी अपेक्षा नहीं होती—'क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोप-करणे।' (महानाटक ५।२०) उसकी अभिव्यक्ति जिन गुणोंके रूपमें होती है, वे ही शक्तिके विधायक होते हैं। वे गुण हैं—निर्भीकता, दृढ़ता, स्थिरता, धैर्य, आत्मविश्वास, गाम्भीर्य आदि। रामके शरीर-बल और शस्त्र-बलके आधार ये ही गुण हैं। कथाके सभी वीरता एवं उत्साहपूर्ण प्रसङ्गोंमें इन्हीं गुणोंका चमत्कारपूर्ण प्रकाशन हुआ है—विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षामें, धनुष-यज्ञमें, वन-गमनमें, विराध-कबन्ध-बालि वधमें, सागर-बंधन और दुन्दुभि-अस्थि-क्षेपण प्रसङ्गमें,

जाप करते हैं और वनस्पतियाँ वसन्तमयी बन जाती हैं। विराम विषसे भरे हुए साँप और बिच्छू भी उन्हें देखकर अपना तीक्ष्ण तमस् त्याग देते हैं (अयोध्याकाण्ड २६१।४) और उनके दर्शनार्थ सेतुबन्धके समय मकर-नाक्र-झष-व्याल आदि जलचरोंकी भीड़ लग जाती है। इस प्रकार भगवान् रामकी रूपराशि सौन्दर्यकी विजय-यात्रा बन गयी है। उनके बाणके समान उनका रूप भी अमोघ है। सारे वनवासी उनकी रूप-छविसे चकित और थकित हो उठे थे। महर्षि वाल्मीकिने उस रूप-समाधिका परिचय दिया है अपनी रामायणके ३।१।१३ में।

भगवान् रामके विग्रहकी सौन्दर्यमें कोमलत्वके साथ पौरुषका अद्भुत संगम हुआ है। वे 'सोमवत्प्रियदर्शनः' और 'कोटि मनोज लजावनिहारे' (मानस १।२१९।३) कुसुम-कोमल ही नहीं हैं, अपितु कालाग्निसदृश प्रचण्ड और वज्रकठोर भी हैं। उनके नख-शिख निरूपणमें उनके वृषभकंध, कम्बुकर-सदृश प्रलम्ब भुज और विस्तीर्ण वक्षःस्थल आदिकी ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया है; क्योंकि वे 'रघुतिलक' और 'सूर्यवंशके सूर्य' हैं। इस सौन्दर्यमें एक शासनकारिणी शक्ति है, प्रभुत्व है। बिना राजदण्डके, बिना शस्त्रास्त्रके और बिना स्थूल भौतिक बलके यह सौन्दर्य अपनी आन्तरिक शक्तिसे सम्पूर्ण सृष्टिपर शासन करता है।

लङ्काके महाभियानमें यह बाह्य आकृति और अन्तःप्राकृतिक सौन्दर्य 'कुसुम कठोर मूरत अंतर की' (५।५४।१३) निशाचर-वाहिनीका कोमल निष्क्रमण करता है। विपक्षके रूपसे भाग्य रघु-सिंहके अनुचर उनकी एक ही शीतल चितवनसे अपनी क्रान्ति भूल जाते हैं; क्योंकि उस श्यामल-धवल प्रकाश किरणमें हृदयकी करुणा और समदर्शिताका मिश्रण है।

श्रीरामके शील-शक्ति-सौन्दर्य विश्वकी श्रद्धा-आराधना आकर्षणके केन्द्र हैं। वाल्मीकिसे लेकर आजतकका कवि उनसे उत्तम काव्य-रचनाकी प्रेरणा प्राप्त करता रहा है। स्व० कविवर मैथिलीशरण गुप्तने 'साकेत'की प्रस्तावनामें ठीक ही कहा है—

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय, सहज सम्भाव्य है॥

सभी प्रकारके, सभी प्रवृत्तियोंवाले मनुष्योंको यह विग्रह प्रभावित करता है। तमोगुणी प्रकृतिके लोगोंको उनकी शक्ति, रजोगुणीको उनका सौन्दर्य और सत्त्वगुणीको उनका शील विशेषरूपसे आकृष्ट करता है; पर ये तीनों विभूतियाँ परस्पर गुँथी हुई हैं। इसलिये इनमेंसे किसी एक भी विभूतिका साक्षात्कार [अन्य दो विभूतियोंमें भी अनायास ही प्रविष्ट करा देता है। इस शील शक्ति-सौन्दर्यके मूर्त विग्रहमें अखिल विश्वके कल्याणका संदेश है। करुणा श्रीरामका शील है, सत्य उनकी शक्ति है और प्रकाश उनका सौन्दर्य।

श्रीरघुवीरसे विनय

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरौ जीव-जड़ताई॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि, बिपुल बड़ाई।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ-अंड की नाईं॥
या जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति-प्रतीति, सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं॥

(विनयपत्रिका १०१)

जब वेदवेद्य परम पुरुषने दशरथसुतके रूपमें जन्म लिया, तब वेद भी वाल्मीकिके मुखसे रामायणरूपमें प्रकट हुए।'

क्रियाशील वेद ही रामायण है। इस प्रकार सर्वेश्वर भगवान् दशरथपुत्र श्रीरामके रूपमें जीवनके रङ्गमञ्चपर पधारे और अपने अनन्त कल्याणगुणोंके द्वारा वैदिक जीवनका आचरण किया एवं अपने पिताके माध्यमसे ऐसे शाश्वत आदर्श चरित्रको प्रस्तुत किया, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ीके लिये अनुकरणीय है। महाराज दशरथको पिताके रूपमें स्वीकार करना ही रामावतारके प्रधान उद्देश्य धर्मसंस्थापनको पुष्ट करना है, जैसा कि भगवद्गीतामें कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥
(३।२१)

'श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा आचरण करता है, दूसरे लोग उसका अनुकरण करते हैं। लोग उसीके द्वारा स्थापित आदर्शोंपर चलते हैं।'

अयोध्याके राजपुत्रके रूपमें अवतरित होकर उस मूर्तिमान् धर्मने अपने पिताके माध्यमसे यह प्रदर्शित किया कि अमृतत्वका निवास उस त्यागमें ही है, जिसकी प्रशंसा उपनिषदोंने विस्तार-विस्तारकर की है—

न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः॥
(महानारायणोप० ८।१४)

'न तो कर्मसे, न संततिसे और न धनसे, अपितु एकमात्र त्यागसे ही अमृतत्व-लाभ सम्भव है।'

यशस्वी महाराज दशरथ सोचते थे कि यद्यपि उनके पास सब कुछ था, परंतु उनके दुःखका हेतु था, संतानाभाव। श्रीरामने अपने तीन अनुजोंके साथ उनका पुत्र बनकर न केवल दशरथकी इस धारणाको ही दूर किया, वरं अपने पिता तथा शेष समस्त मानव-जातिके सामने अपने जीवनसे यह स्पष्ट कर दिया कि वास्तविक सुख केवल त्यागमें है। अपने पितृवाक्य-परिपालनसे उन्होंने अपने सत्यपालन तथा दृढ़व्रतत्व-जैसे अनुकरणीय गुणोंको सबके सामने रखा। स्वयं महाराज दशरथसे लेकर कौसल्या, लक्ष्मण, अयोध्याकी जनता, वसिष्ठ आदितक तथा सबके अन्तमें भरतने भी श्रीरामसे अयोध्यामें रहनेके लिये आग्रह किया। किंतु कभी भवफल दे। श्रीमद्रामायणके चौबीस सहस्र श्लोकोंका पारायण करनेवाला साधारण मनुष्य भी आदर्श वीर, कर्तव्यपरायण पुत्र, आदर्श भ्राता, पति एवं सम्राट्के रूपमें मर्यादा-पालन करनेवाले रामके नानाविध उदात्त दिव्य गुणोंसे अभिभूत हो उठता है। इस प्रकार श्रीरामके निम्नलिखित दिव्य, किंतु मानवीय गुण, जिनको अपनाकर व्यक्ति सम्मानित हो सकता है, रामावतारके विभिन्न पात्रोंसे प्रतिबिम्बित होते हैं। इन रूपोंमें मुख्य ये हैं—गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्य एवं दृढ़व्रत, चरित्रवान्, सर्वहितकारी, विद्वान्, समर्थ, प्रियदर्शन, आत्मवान्, जितक्रोध, द्युतिमान्, अनसूयक, रणाजिर-आतङ्कप्रद, नियतात्मा, महावीर्य, धृतिमान्, वशी, बुद्धिमान्, नीतिमान्, वाग्मी, श्रीमान्, शत्रुनिबर्हण, यशस्वी, ज्ञानसम्पन्न, शुचि, श्रीमान्, धाता, धर्मपरीक्षक, वेद-वेदान्त-तत्त्वज्ञ, सर्वशास्त्रार्थ-तत्त्वज्ञ, स्मृतिमान्, प्रतिभानवान्, सर्वलोकप्रिय, साधु, अदीनात्मा, विचक्षण, आर्य, सर्वसम, सदैवप्रियदर्शन, समुद्रगम्भीर, हिमवानिव स्थिर, सोमवत् प्रियदर्शन, कालाग्निसदृश क्रोधी, पृथ्वी-सम क्षमाशील, शरणागतवत्सल, त्यागमें कुबेरके सदृश और सत्यपालनमें दूसरे धर्मराजके समान। उपर्युक्त गुणोंकी एक शाश्वत महत्ता है, जिसका मानवके उत्थानमें और तनावोंसे भरे पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय, अन्ताराष्ट्रिय जीवनमें सार्थक उपयोग है। रामायणके गहन तथा आलोचनात्मक अध्ययनसे न केवल हमारी दैनिक समस्याओंका, अपितु आधुनिक कालकी व्यवस्था, राज्यशासन, राजनीति और मानव-सम्बन्धोंसे सम्बन्धित समस्याओंका सरल एवं स्थायी समाधान प्राप्त होगा। इसका कारण यह है कि रामायण शासक तथा शासित, पति एवं पत्नी, माता-पिता और संतति तथा भ्राताओं, मित्रों और सेवकोंके लिये एक कर्तव्य-दर्पण है। इस प्रकार रामायणकी सार्वभौम प्रियता और उससे आज भी प्राप्त सुख-सान्त्वना ही उसका मुख्य उद्देश्य है। ऋषि वाल्मीकिजीकी स्तुतिके अन्तर्गत—

यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम्।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम्॥

—ध्यान-श्लोकोंमें जब स्वयं कविकी रामामृत-सुधाको सदा अतृप्त बताया गया है, तब हम-जैसे मानव तो इस अवतारकी महानतामें जितनी ही डुबकी लगाते हैं, उतनी ही अधिक अतृप्तिका अनुभव करते हैं। अतएव इस अंशे-

अतः अविवेकी पुरुषोंका उद्धार करनेके अभिप्रायसे भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं।

दूसरी बात है कि भगवान्‌ने अवतार ग्रहणकर अपने आचरणसे लोकशिक्षा दी है। भगवान् विष्णुने आवश्यकतानुसार अनेकों अवतार ग्रहण किये हैं, जिनमें रामावतार और कृष्णावतार प्रधान समझे जाते हैं। भगवान्‌ने महाराज दशरथको अपना पिता बनाया और स्वयं आचरण करके मनुष्यों-को शिक्षा दी कि माता-पिताके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये। साथ ही अपने भाइयोंके साथ, मित्रोंके साथ, शत्रुओंके साथ, अपनी स्त्रीके साथ तथा पर-स्त्रीके साथ, अपने भक्तोंके साथ, भृत्योंके साथ, गुरुजनोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, इसकी भी शिक्षा स्वयं आचरण करके श्रीरामने सभी मनुष्योंको दी है।

सबसे बड़ी शिक्षा तो भगवान् श्रीरामने इन्द्रिय-संयमकी दी है। श्रीरामका सबसे प्रिय वह मनुष्य है, जिसने अपने मनको वशमें करके इन्द्रियोंको संयत रखा है। यही कारण है कि हनुमान्‌जी भगवान्‌के अत्यन्त प्रिय हैं। लोककण्टक दुष्ट रावणको मारकर जब भगवान् राम अयोध्या लौटे, तब उन्होंने युद्धके सहायकोंको पुरस्कार देकर पुनः अपने-अपने स्थानोंपर लौटा दिया, परंतु हनुमान्‌जीको विदा नहीं किया, सदाके लिये अपने सांनिध्यमें रखा।

भगवान् श्रीरामने माता-पिताकी आज्ञासे देवलोकके समान भी समृद्धिशाली राज्यको छोड़कर मनुष्योंको शिक्षा दी कि 'ऐहिक सुखकी सामग्रीमें आसक्ति नहीं रखनी चाहिये; क्योंकि ऐहिक सुख विनाशी है। धर्मका पालन करना अविनाशी है।' स्त्री और बालकपर अत्याचार करनेवाले आततायीका वध करनेमें दोष नहीं है—इसी बातकी शिक्षा रावण-वधसे उन्होंने दी है। मित्रके साथ निष्कपट व्यवहार करना चाहिये, इस बातकी शिक्षा सुग्रीव और विभीषणको राज्य और स्त्री देकर दी है। इसीलिये कहा है—'रामो द्विर्नाभिभाषते।' अर्थात् रामने कभी दो तरहकी बात नहीं की है। जब उन्होंने सुग्रीवके साथ अग्निके समक्ष मित्रता की और प्रतिज्ञा की कि मैं बालीको मारकर तुम्हारी स्त्री और राज्यको वापस दिला दूँगा, तब अपना काम होनेके पहले मित्रका काम कर दिया।

अपने वचनके अनुसार सीताकी खोज करानेके पहले उन्होंने अपने मित्रके लिये वचनकी रक्षा की। इसी तरह जब विभीषण रावणसे अपमानित होकर श्रीरामके पास आया, तब रामने लङ्काका राज्य पहले ही दे दिया, रावणवधके पश्चात् तो देना नाममात्रके लिये था।

भगवान्‌के रामावतार लेनेका प्रयोजन आततायी दुष्ट रावणका वध करना तो था ही, सत्यनिष्ठ एवं धार्मिक महाराज दशरथका महत्त्व बढ़ाना भी था। वाल्मीकि-रामायण-में देवताओं और ऋषियोंने भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करके कहा था कि 'आप परम धार्मिक सत्यसंध महाराज दशरथके पुत्ररूपमें उत्पन्न होकर उस दुष्टका नाश कीजिये।'

> राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥
> धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः।
> अस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च ॥
> विष्णोः पुत्रत्वमागच्छ कृत्वाऽऽत्मानं चतुर्विधम्।
> तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम् ॥
> अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम्।
>
> (वा० रा० १। १५। १९—२१)

'अयोध्याके राजा महर्षियोंके समान तेजस्वी, महादानी और अपने धर्मको जानने तथा पालन करनेवाले हैं। उनकी तीन स्त्रियाँ हैं, जो ह्री (लज्जा), श्री (लक्ष्मी) और कीर्तिस्वरूप हैं। हे विष्णो! आप अपनेको चार रूपोंमें विभक्त करके उन्हीं स्त्रियोंके गर्भसे मनुष्यरूपमें उत्पन्न होकर उस लोककण्टक दुष्ट रावणको मारिये; क्योंकि ब्रह्माजीके वरदानके कारण वह देवताओं और अन्य जीवोंसे अवध्य है।'

भगवान् विष्णुने देवताओंके इस वचनको सुनकर कहा—

> भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम्।
> सपुत्रपौत्रं सामात्यं समित्रज्ञातिबान्धवम् ॥
> हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम्।
> दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥
> वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन् पृथिवीमिमाम्।
>
> (वा० रा० १। १५। २८—३०)

'देवगण! आपका कल्याण हो, आपलोग भयको छोड़ दीजिये। मैं आपलोगोंके हितके लिये उस दुष्ट रावण-को पुत्र-पौत्र, अमात्य-मन्त्री और बन्धु-बान्धवोंके साथ मार डालूँगा। आपलोगोंको भय देनेवाले कठोर और अत्यन्त पराक्रमी रावणको मारकर दस हजार और दस सौ अर्थात् ग्यारह हजार वर्षतक इस पृथ्वीकी रक्षा करते हुए मनुष्यलोकमें रहूँगा।'—यों कहकर भगवान् विष्णु ब्रह्मा आदि देवताओं और महर्षियोंसे पूजित होकर अन्तर्हित हो गये।

इसके पश्चात् भगवान् विष्णुने स्वयं विचारकर संसार-में सबसे श्रेष्ठ और धार्मिक महाराज दशरथको अपना पिता बनाया। परब्रह्म परमात्मा समस्त संसारके माता-पिता हैं। उन त्रैलोक्याधिपति भगवान्‌ने ही जिनको अपने पिता होनेका

(ईसाई मतसे जो ईसाई नहीं हैं तथा मुस्लिम मतसे जो लोग मुसल्मान नहीं हैं, वे इस दलमें न होंगे) दाहिनी ओर पापी लोग और बायीं ओर (सारे हिंदू निस्सन्देह इस दलमें पड़ेंगे; परंतु उनका देह तो रहेगा नहीं, फिर उनका क्या होगा !) खड़े होंगे। पुण्यवान् लोग स्वर्गमें जायँगे—चिरकालके लिये और पापियोंके अदृष्टमें अनन्तकालतक नरक (Hell) या दोजखकी आगमें झुलसना आदि कष्ट अवश्यम्भावी है। इसीलिये देहको सावधानीपूर्वक कफनसे लपेटकर कब्रमें गाड़नेकी प्रथा है। देखा जाता है कि पापी और पुण्यवान्, सबको एक निर्दिष्ट समयतक कब्रमें देहके भीतर या पास रहना होगा; निस्सन्देह यह महाकष्टप्रद है। वर्तमान समयमें स्वर्ग-नरक दोनों खाली हैं। जान पड़ता है दरवाजे बंद हैं।

(३) सेमिटिक दर्शनके अनुसार यहूदी, ईसाई या मुस्लिम—किसी भी मतसे स्वर्गमें देवी नहीं हैं। जुहोवा, गॉड या अल्लाह अकेले स्वर्गमें एकेश्वर हैं। रोमन कैथलिक लोग मेरीकी भक्ति करते हैं, मन्दिरमें उपासना करते हैं, किंतु वह यीशुकी कुमारी माता मात्र हैं; महामाया या जगत्‌का कारण मूलप्रकृति नहीं है।*

(४) चौथी बात यह है कि सेमिटिक दर्शनमें निर्गुण ब्रह्म या मोक्षकी कल्पना ही नहीं है। साधारण जीव शिव तो है ही नहीं, उसकी आत्मा भी नहीं है। सेमिटिक स्वर्गमें एकमात्र देवता हैं—जेहोवा, गॉड या अल्लाह (खुदा), जो पितृपद-वाच्य (our father in heaven) हैं। वे देवदूतोंकी सहायतासे पृथ्वीके ऊपर शासन-संचालन करते हैं। ईसाइयोंके मतसे यीशु उनके पुत्र हैं (only begotten son)। ईश्वर, पुत्र और पवित्र आत्मा (God, the son and the Holy Ghost)—ये त्रित्व (Trinity) देवशक्तियाँ हैं।

(५) सेमिटिक दर्शनमें मनुष्य और दूसरे जीवोंके पुनर्जन्मकी धारणा जैसे नहीं है, वैसे ही उनका ईश्वर कभी अवतार ग्रहण नहीं करता। ईसाई मतसे यीशु उनके पुत्रके रूपमें मानव-जातिका पाप ग्रहण करनेके लिये अवतीर्ण हुए थे। मुसलमान हजरत मुहम्मदको एकमात्र पैगम्बरके रूपमें मानते हैं। उनके मतसे उन्होंने पृथ्वीपर आकर प्रकृत धर्मकी प्रतिष्ठा की थी।

* "Note the absence of mother goddesses in such strongly patriarchal societies as Judea, Islam and Protestant Christendom."—Durant: 'Life of Greece. (p. 178 f. n.)

(६) ईसाई मतसे जगत्‌की सृष्टि ई० पूर्व ४००४ सालमें, अर्थात् आजसे केवल छः हजार वर्ष पूर्व हुई थी। वैज्ञानिक उपपत्तिके फलस्वरूप जो कोटि-कोटि वर्ष प्राचीन प्रस्तर आदि आविष्कृत हुए हैं, इससे विद्वानोंकी सेमिटिक सृष्टिसिद्धान्तके ऊपर अश्रद्धा उत्पन्न हुई है। एक जन्मके कर्म-फलस्वरूप अनन्त नरक या स्वर्ग-भोगकी कल्पना किसी बुद्धिमान् मनुष्यके मनमें नहीं बैठती। इसी कारण आजकल पाश्चात्त्य देशोंमें बुद्धिवादी लोग (Rationalists) ईसाई मतके प्रति और ईश्वरके अस्तित्वमें संदेहयुक्त होकर बहुत संख्यामें निरीश्वरवादी होते जा रहे हैं। बहुतेरे पर्यटकोंके साथ मेलजोलकी बातचीतमें यह बात स्पष्ट ज्ञात हुई है।

भेदनीति और क्रम-विकासवाद

इसी कारण मैं कह रहा था कि पाश्चात्त्य-देशवासियोंके सामने हिंदू-दर्शन, असंख्य देव-देवियाँ, पुनर्जन्म, अवतार-वाद—ये सभी दुर्बोध्य व्यापार हैं; ईश्वर एक है, वह अनेक कैसे हो सकता है !

इसके सिवा ईसाइयोंके, विशेषतः धर्मप्रचारकों (Missionaries) के सामने वैदिक धर्म, देव-देवियोंकी पूजा, यज्ञ, आचार-विचार, ब्राह्मणोंका सत्कार—ये सभी विशेषरूपसे आँखके काँटे हैं।

ये पद-पदपर भेद और विरुद्धवादकी सृष्टि करके शास्त्र और धर्ममें हिंदू-जातिके विश्वासको शिथिल करनेकी चेष्टा करते आ रहे हैं और इसमें बहुत कुछ सफल भी हुए हैं।

इसके ऊपर क्रमविकासवादी वैज्ञानिक हैं। वे लोग उनकी भी सहायता करनेसे नहीं चूकते। प्रत्येक पदमें पाश्चात्त्य लेखक लोग इस क्रमविकासवादकी दुहाई देते हैं। स्थानाभावके कारण इस विषयकी सामान्य आलोचना करना ही बस होगा।

कुछ प्रचलित पाश्चात्त्य सिद्धान्त

(१) मनुष्य और वानर, किसी सुदूर अतीत कालके एक ही पूर्वपुरुष प्राणीके वंशज हैं, गत शताब्दीमें डार्विन साहबने इस मतका प्रचार किया है। पाश्चात्त्य देशोंमें उनका यह सिद्धान्त विश्वस्त हो गया है, किंतु उसका प्रचार चल रहा है। आजकलके वैज्ञानिक लोगोंके विचारसे अमीबा (amoeba) या अणुकीटसे प्राणी-जगत्‌की आदिसृष्टि है तथा उससे क्रमशः मत्स्य, सरीसृप, द्विपद और चतुष्पद स्तन्यपायी जीवोंका विकास हुआ है।

राम-रावण-युद्ध
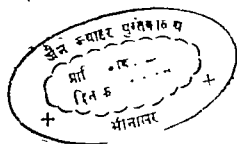
है कि रामायणमें अन्ततः रूपक न होनेपर भी वह वस्तुतः प्राचीन भारतीय उपाख्यानोंके रूपमें प्रतिष्ठित है।

सीता शब्दसे ही ऋग्वेदकी खेतकी हराईकी देवी (Furrow Goddess) थी। राम अवश्य ही इन्द्र अथवा पर्जन्यके देवता थे।

राम-रावणका युद्ध इन्द्र-वृत्रके संग्रामकी कहानीका प्रतीक है। इन्द्रजित् या इन्द्रशत्रु ऋग्वेदमें वृत्रका नाम है, दोनों एक ही हैं।'

इन्द्रकी शुनी सरमा रामायणमें सीताको सान्त्वना देनेवाली राक्षसी-रूपा है। वायुदेवके पुत्र हनूमान् मरुद्गणके सहित इन्द्रके सोमपानकी बात स्मरण करा देते हैं।

मैकडॉनेलके विचारसे प्रोफेसर जैकोबीकी यह कल्पना सम्भव जान पड़ती है कि हनूमानके साथ कृषिकार्यका कुछ सम्पर्क था और वे वर्षाके एक उपदेवता थे।

"His conflict with Ravana would represent the Indra-Vritra myth of the legend. Indrajit is equivalent to Indra-satru, an epithet of Vritra in Riveda. Prof. Jacobi's surmise that he (Hanumat) must have been connected with agriculture and may have been a genius of the monsoon has some probability."—(History of Sanskrit Literature, P. 312-13)

मैकडॉनेलके मतसे रामायणमें शुरूमें केवल पाँच काण्ड (अयोध्याकाण्डसे युद्धकाण्डतक) थे। अतिरिक्त बन्दी-भाट लोगोंने पीछे सब जोड़ा है।

"तात्पर्य यह है कि मूल काव्यका गणजातीय (tribal) नायक आगे जोड़े गये अंशोंमें जातीय नायकके रूपमें परिवर्तित हो गया है। वह समस्त जन-समाजके लिये नैतिक आदर्शका प्रतीक बन गया है और मूल पाँच काण्डों, का (कुछ प्रक्षिप्त वाक्योंके सिवा) मनुष्य-नायक (महाभारतके कृष्णके समान ही) बालकाण्ड और उत्तरकाण्डमें देवताके रूपमें परिणत होकर भगवान् विष्णुके साथ एकाकार हो गया है।' (१०४५)

"For the tribal hero of the former (original poem) has in the latter (additions) been transformed into a national hero, the moral ideal of the people; and the human hero (like Krishna in the Mahabharata) of the five genuine books (excepting a few interpolations) has in the first and last been deified and identified with god Vishnu." (History of Sanskrit Literature, p. 304-5)

(४) प्रो० विन्टर्निट्ज़ (१९२०) ने कुछ दिन कलकत्ता विश्वविद्यालय और शान्तिनिकेतनमें अध्यापन किया था। उनकी पुस्तक 'History of Indian Literature' अंग्रेजीमें अनूदित हुई है और इस देशके कालेजों और विश्वविद्यालयोंमें प्रामाणिक मानी जाती है। उन्होंने अपना मन्तव्य प्रकट किया है कि 'असल रामायणमें अर्थात् अयोध्याकाण्डसे युद्धकाण्डतक रामकी भगवत्ता या विष्णुके अवतार होनेका कोई उल्लेख नहीं है।'

(५) कीथ (Keith) साहबने 'History of Sanskrit Literature' में लिखा है कि 'रामायण दो प्राचीन उपाख्यानोंका सम्मेल है। उनमेंसे दूसरा है सीताहरणके लिये रावणके साथ रामका युद्ध। यह मूलतः एक प्राकृतिक आख्यान (Nature myth) है—इसमें अनेक अलौकिक और काल्पनिक घटनाओंका समावेश है।' (४१५०) यह मत मैकडॉनेलकी ही प्रतिध्वनि है।

श्रीरामकी भगवत्ता और अवतारत्वका उल्लेख

हम अब रामायण, महाभारत हरिवंश, वेद तथा लौकिक प्राचीन साहित्यसे प्रमाण उद्धृत करके दिखलाते हैं कि श्रीरामकी भगवत्ता और अवतारत्व किसी क्रमविकासका फल नहीं है; क्योंकि अति प्राचीनकालसे ही सनातन धर्मशास्त्रादिमें पूर्ण भगवान् श्रीरामकी महिमा सुप्रतिष्ठित है।

(१) वाल्मीकिरामायण—

बालकाण्ड और उत्तरकाण्डके सिवा अनेक स्थलोंमें श्रीरामका भगवत्स्वरूप व्यक्त हुआ है। केवल थोड़े-से उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(क) अर्चितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥

(अयोध्या० १।७)

(ख) दिव्यं च मानुषं चैवमात्मनश्च पराक्रमम्।

(अरण्य० ११।२०)

११८० शाखाएँ हैं और प्रत्येक शाखाका एक उपनिषद् है। श्रीरामने १०८ मुख्य उपनिषदोंका नाम लिया है।

राम त्वं परमात्मासि सच्चिदानन्दविग्रहः। (१।४)
कैवल्यं तु मनुष्याणामस्मिन् मुक्तो मत्तारमाप्नुयात्॥ (१।२९)
वैदेही मामकीं मुक्तिं यान्ति नास्त्यत्र संशयः। (१।४०)

कलिसंतरणोपनिषद्में—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—कलिमें यह प्रसिद्ध तारक-मन्त्र मानवोंके जपके लिये निर्दिष्ट हुआ है। बाहुल्यके भयसे विशेष मन्त्रादि उद्धृत नहीं किये जाते।

(४) प्राचीन साहित्य

(क) कालिदास (प्रथम शताब्दी ई० पूर्व)

इस महाकविने अपने विभिन्न काव्योंमें, विशेषतः रघुवंशमें अनेक स्थानोंमें रामके अवतारत्वकी घोषणा की है।

(ख) कौटल्य—चाणक्य (ई० पू० चतुर्थ शताब्दी)

इनके अर्थशास्त्रमें 'मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छन्' (१।६।९)—में रावण-वधका उल्लेख है।

(ग) भास (ई० पूर्व पाँचवीं शताब्दी)

महाकवि भासका काल मौर्ययुगके पूर्व है; क्योंकि कौटल्यके अर्थशास्त्रमें उनके 'प्रतिज्ञा-यौगन्धरायण' नाटकसे 'नवं शरावं'—इत्यादि श्लोक उद्धृत हुए हैं तथा उनके (१) यज्ञफल, (२) प्रतिमा और (३) अभिषेक नाटकोंका विषयवस्तु रामायण है।

इन सब तथा अन्यान्य नाटकोंमें भी कहीं-कहीं भासने अपनी ओजस्विनी भाषामें श्रीरामचन्द्रका भगवान् विष्णुके अवतारके रूपमें कथन किया है।

अभि० ४। १४, अभि० ६। २८में सीताके साथ रामके माया-मानुष-वेषमें अवतारका स्पष्ट उल्लेख है। अनेक स्थलोंमें वराह, वामन और नृसिंह अवतारोंकी बात भी है। रामको नारायण, वराह, वामन तथा कृष्णके साथ अभिन्न कहा गया है (अभि० १। १; अभि० ६; बाल० १। १)

(५) शंकराचार्य (सातवीं शताब्दी)

विष्णुसहस्रनाम-भाष्यमें भगवत्पादने राम (३९४), राम (४४२), सुमुख (४५६), कपीन्द्र (५०१), विनामित्र (५२४), सुघोष (६२८), शूरसेन (७०४), धनुर्धर (८५७), धनुर्वेद (८५८) तथा क्षमिणां वर (९११)—विष्णुके इन नामोंकी रामके वाचक कहकर व्याख्या की है।

इसके सिवा सीता-रामके माहात्म्यविषयक उनकी बहुत-सी स्तुतियाँ हैं। उनके मतसे राम-कृष्ण-नारायण अभिन्न हैं।

हमने देख लिया कि क्या शास्त्रमें, क्या प्राचीन साहित्यमें, कहीं भी रामके अवतारत्वमें क्रम-विकासका कोई चिह्न परिलक्षित नहीं होता।

'जय-विजय-उद्धारलीला' महानाटकमें नारायणके अवतार-व्यूह

भगवान्की अवतारलीला श्रीमद्भागवतमें विस्तृतरूपमें वर्णित है। इसका तत्त्व गुह्यतम है। स्वयं लोकपितामह ब्रह्माने इस विषयमें देवर्षि नारदको कुछ उपदेश दिया है। (भागवत, स्कन्ध २) भक्ताधीन भगवान् भक्तके उद्धारके लिये युग-युगमें किस प्रकार बारंबार नाना रूपोंमें नाना लीलाएँ करते हैं, कभी-कभी क्रमशः लम्बी भी उनकी लीलाकी अनुसारिणी बनती है—इसका विचार करनेपर स्तम्भित होना पड़ता है।

अनेक युग पूर्वकी कथा है। पाण्ड्य देशके राजा परमविष्णुभक्त इन्द्रद्युम्न अगस्त्यके शापसे महान् गजके रूपमें जन्म लेते हैं। एक ग्राहके द्वारा आक्रान्त होनेपर वे आर्त होकर उद्धारके लिये पूर्वजन्मस्मृत भगवत्स्तुति करते हैं, तब विष्णु तत्काल गरुड़की पीठपर वहाँ पहुँचकर ग्राहको मारकर गजराजकी रक्षा करते हैं और वे भगवान्के करस्पर्शसे अज्ञानसे मुक्त होकर पीतवसन और चतुर्भुजरूप धारणकर नारायणके एक पार्षद बन जाते हैं। (भागवत, स्कन्ध ८)

यह भी विष्णुका एक लीलावतार है (भागवत, स्कन्ध २)। यह दृश्य विश्व-महानाटककी प्रस्तावनारूपमें है। ये चतुर्भुज पार्षद जय हैं। वे विजयके साथ वैकुण्ठके द्वारपाल बनते हैं। एक बार पञ्चवर्षीय बालकके रूपमें स्थित सनकादि मुनियोंको उनके वैकुण्ठमें प्रवेश करते समय बाधा देनेके कारण वे अभिशप्त होकर वैकुण्ठसे च्युत हो गये। (भागवत, स्कन्ध ३) इसके बाद अपने प्रिय भक्त जय-विजयको ब्रह्मशापसे मुक्त करनेके लिये भगवान् बारंबार अवतार धारण करते हैं।

(ख) वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय वि जिहीते मृगाय।
(अथर्वसं० १२ । १ । ४८)

(ग) 'अथ वराहविहतम्'—इत्यादि
(शतप० ब्रा० १४ । १ । २ । ११)

(घ) उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
भूमिर्धेनुर्धरणी लोकधारिणी ॥
(तै० आ० १० । १)

(४) नृसिंह—

(क) 'प्रतद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो *गिरिष्ठाः*'—इत्यादि (ऋक्सं० १ । १५४ । २)

(ख) 'अथ कस्मादुच्यते नृसिंहमिति'—इत्यादि।
(नृसिंहपूर्वतापनी उप० २ । ९)

(ग) वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि।
तन्नो नारसिंहः प्रचोदयात् ॥
(तै० आ० १० परिशिष्ट १ । ६)

(५) वामन—

(क) 'इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।'—इत्यादि
(ऋक्संहिता १ । २२ । १७)

(ख) 'त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।'—इत्यादि
(ऋक्संहिता० १ । २२ । १८-२१)

(ग) 'यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुः'—इत्यादि
(ऋक्सं० ६ । ४९ । १३)

ऋग्वेदमें और भी अनेक मन्त्रोंमें उल्लेख है।

(घ) वामनो ह विष्णुरास। (शत० ब्रा० १ । २ । ५ । ५)

(ङ) त्रेधा विष्णुरुरुगायो विचक्रमे।
(तै० ब्रा० २ । १ । २ । ६)

(६) परशुराम—

ऋक्संहिता १०।११०।११ मन्त्रके ऋषि हैं। उनके सिवा जमदग्निके साथ इह बहुतसे मन्त्र हैं।

(७) राम—पहले उल्लेख किया जा चुका है।

(८) कृष्ण—

(क) कलिकाले नाम सर्वो भवगत्सद्वचनः।
यमुनाहदे ह स जज्ञे यो नारायणवाहनः ॥—इत्यादि
(ऋक्सं० ७ । ५५ । ४ खिल)

(ख) श्रीमन्नीलकण्ठमुनिने कृष्णविषयक बहुतसे वेद-मन्त्रोंको उद्धृत किया है। ('कल्याण' १९४८, पृ० १४३, 'वेदोंमें कृष्णलीला'—श्रीनीरदप्रकान्त चौधुरी प्रदत्त)

पुरातत्त्व-विषयक प्रमाण

गजेन्द्र-मोक्षकी कहानी केवल श्रीमद्भागवत और वामनपुराणमें उपलब्ध होती है। यह उपाख्यान प्राचीन है; क्योंकि भरहुत स्तूपके प्राकारमें 'गज-कुम्भीर-जातक'का चित्र (ई०पूर्व द्वितीय शताब्दी) इसका ही अनुकरण है। मूल उपाख्यान तथा दोनों पुराण अन्ततः ई०पूर्व षष्ठ शताब्दीसे भी प्राचीन हैं, इसमें संदेह नहीं।

कौशाम्बी (ई०पूर्व द्वितीय शतक)में 'रावणके द्वारा सीताहरण' तथा 'अशोकवनमें सीता'की पक्की मिट्टी-की बनी चित्रभित्ति प्राप्त हुई है।

भरहुत और साँची स्तूप (ई०पूर्व द्वितीय शतक)में ऋष्यशृङ्ग और श्याम (सिन्धुराज) जातकके चित्र हैं। ये रामायणकी कहानीकी अनुकृति-स्वरूप हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

रामचरित्र रूपक नहीं है

राम दक्षिणभारतमें आर्यसभ्यता फैलाते हैं, राम-रावण-युद्ध इन्द्र-वृत्रके संग्रामका प्रतीक है, इन्द्रजित् और इन्द्र-शत्रु एक ही व्यक्ति हैं, देवशुनी सरमा ही विभीषणकी पत्नी तथा सीताकी सेविका है, हनुमान् वर्षाके देवता हैं—इत्यादि पाश्चात्त्य सिद्धान्त निराधार हैं। इनको लेकर सिर खपाना समयका दुरुपयोग मात्र है।

हम आर्य बाहरसे नहीं आये, यह मैं अन्यत्र प्रमाणित कर चुका हूँ। (देखिये 'आर्यलोग बाहरसे नहीं आये', गीताप्रेस) वृत्रासुर रावणसे बहुत पहले हो चुका है। उसका इतिहास पृथक् है। वैदिक मन्त्र त्रेतायुगके समकालीन नहीं हो सकते।

पाश्चात्त्य लेखक वेदमें साधारण प्रवेश करके ही जिस प्रकार विजृम्भण करने लगते हैं, वह हास्यास्पद है।

सीतादेवी सीरध्वज जनकके यज्ञ-कर्षणके समय भूमिसे उद्भूत हुई थीं, इसी कारण उनका नाम 'सीता' हुआ। किंतु उनके साथ या रामके साथ कृषिका कोई [illegible]

ब्रह्मपुराणके राक्षसोंके अस्तित्वका प्रमाण मिलता है। भीमने कुछ राक्षसोंको मारा था। उनकी राक्षसी पत्नी हिडिम्बा गर्भधारण करके घटोत्कचको उत्पन्न करती है। घटोत्कच जन्म लेते ही पूर्णवयस्क हो उठा था। यह पाण्डवोंको कंधेपर रखकर आकाश-गमन किया करता था।

अतएव राक्षस असभ्य अथवा काफिर भी नहीं थे। राक्षसराज विभीषण आज भी राक्षसराज्यका शासन कर रहे हैं। कहा जाता है कि चौदहवीं शताब्दीके प्रसिद्ध निबन्ध 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि'के रचयिता, देवगिरि राज्यके मन्त्री हेमाद्रिने विभीषणके प्रसादसे कमार-शास्त्रकी महाराष्ट्रमें सर्वप्रथम लेखी की थी। राक्षसोंमें वर्णाश्रमकी प्रथा थी। आजकलका सिंहलद्वीप (Ceylon) रावणकी लङ्का नहीं है।

उपसंहार

संस्कृत भाषा और साहित्यमें, विशेषतः शास्त्रों और दर्शनोंमें पाश्चात्य गवेषकोंका ज्ञान गम्भीर नहीं है। इसके अतिरिक्त भ्रान्त सेमिटिक दर्शन तथा ग्रीक और रोमके ऐतिह्यके प्रभावसे उनकी बुद्धि मलिन हो गयी है। उसके ऊपर भेदभावका प्रभाव है और विजित जातिके ऊपर प्रभुत्वाकाङ्क्षा है तथा मिशनरी पादरियोंका हिंदूधर्म-विद्वेष भी काम करता है। श्रीराम-सीताकी मानवता और साधारण रूपमें अवतारत्वके विषयमें उन्होंने तथाकथित वैज्ञानिक क्रम-विकासवादका प्रयोग करके जिन सिद्धान्तोंको खड़ा किया है, उनके ऊपर इन सबकी छाया पड़ती है। उनके ये सारे सिद्धान्त मिथ्या, निर्मूल तथा अकिंचित्कर हैं।

इसके अतिरिक्त हमने दिखलाया है कि केवल वेदोंमें ही अवतार-तत्त्व स्पष्टरूपमें वर्तमान हो, इतना ही नहीं है, बल्कि श्रीमद्भागवतके राम तथा अन्यान्य मुख्य अवतार सभी वेदोंमें संक्षेपरूपसे वर्णित हैं। राम रूपक नहीं हो सकते। उनके तथा रामायणके विषयमें पुरातत्त्वसम्बन्धी प्रमाणोंका अभाव नहीं है। वानर और राक्षस असभ्य जातिके मनुष्य हैं, यह धारणा भी भ्रमपूर्ण है। देवताओंने रावणके वधार्थ वानर और भालुओंके वंशमें जन्म लेकर रामकी सहायता करने है। राक्षस एक विशिष्ट असुर जाति है। उनकी विशेषता देखनेसे ही ज्ञात हो जाता है कि ये कोई नरभक्षक असभ्य आदिवासी मनुष्य-जाति नहीं हैं। ये सब अलौकिक घटनाएँ हैं, यह विश्वास किये बिना गति नहीं है। भारतका वैदिक साक्षी है कि वही एक पूर्ण-पुरुषोत्तम अनेक बनकर जगत्के कण-कणमें अनुप्रविष्ट है। प्रत्येक जीव शिव होनेके लिये जन्म लेता है, जन्म-जन्मान्तरमें उसी दिशामें अग्रसर होता है। इस देशमें सभी मानो पहलेसे ही पूर्ण हैं। वर्णमाला ही इसका प्रमाण है। सृष्टिके आदिसे ही यह भेद वैज्ञानिक रीतिसे सुसम्बद्ध और स्वयं परिपूर्ण है।

दूसरी ओर हिब्रू भाषामें कोई स्वर-व्यञ्जक नहीं है। अंग्रेजीमें केवल २६ अक्षर हैं, जो ग्रीककी अपेक्षा दो अधिक हैं। छन्द, व्याकरण, स्वर आदिसे अति उच्च स्तरके निर्दोष वाक्योंकी कल्पना अन्य देशोंमें की भी नहीं जा सकती। उधर, ग्रीक भाषामें सिकन्दरके समय भी विशेष्य और क्रियाके अतिरिक्त कोई दूसरे पद न थे—यहाँ तक कि सर्वनाम, अव्यय आदिका व्यवहार उसके बाद भी बहुत दिनोंतक वहाँ अज्ञात था।

अतएव भारतमें क्रमविकासवादका मेल नहीं खाता। ऋषिगण पूर्ण पुरुष थे, उनके वंशज हम भले ही क्रमशः अवनतिकी ओर जा रहे हैं। मर्यादापुरुषोत्तम राम और जगन्माता सीता जय-विजय-उद्धाररूप एक महाविश्वनाटकके महानायक और महानायिकाकी भूमिकामें अवतीर्ण हैं। उन्होंने नराके लिये अद्भुत आदर्श स्थापित किया। वे पितृभक्ति, गुरुभक्ति, भ्रातृस्नेह, मित्रस्नेह, पातिव्रत, प्रजानुराग तथा भवसागरसे उद्धारकी तरी राम-नामको जगत्के जीवोंके उद्धारार्थ दे गये।

हम गोस्वामीजीकी स्तुतिके द्वारा श्रीरामके चरण-कमलोंमें भक्तिपूर्वक वन्दना करते हैं —

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

(मानस १। ...)

इतिहासमें असम्भव है। जैसा इस लेखके प्रारम्भमें ही कहा जा चुका है, उनके जीवनसे सम्बद्ध स्थानोंमें प्रतिवर्ष मेले लगते हैं, उनके नामसे इस देश तथा परदेशमें सहस्रों मन्दिर हैं तथा जन-जीवनके प्रत्येक क्षेत्रपर उनके आदर्शका अतुल प्रभाव है।

२—चौबीस सहस्र श्लोकोंमें ग्रथित आदिकवि महर्षि वाल्मीकिद्वारा रचित रामायण उनके जीवन-वृत्तका ही वर्णन करती है। योगिराज श्रीअरविन्द घोषने तो यहाँतक लिखा है कि 'सृष्टिके प्रारम्भसे लेकर आजतक संसारके किसी भी साहित्यमें वाल्मीकि-रामायण-जैसा सर्वाङ्गसुन्दर ग्रन्थ नहीं लिखा गया।'

३—वाल्मीकि-रामायणके बाद संस्कृत-साहित्यके सभी परवर्ती ग्रन्थोंमें मर्यादापुरुषोत्तमके सम्बन्धमें अनेक प्रसङ्ग आये हैं। स्कन्दपुराणादि अनेक पुराणोंमें तो श्रीरामचन्द्रकी कथा बड़े विस्तारके साथ कही गयी है। महाभारत-जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण महाग्रन्थमें भी श्रीरामचन्द्रके जीवन-सम्बन्धी अनेक प्रसङ्ग आये हैं। उदाहरणार्थ, हिमालयके किसी दुर्गम स्थानमें जब पवनतनय श्रीहनुमान् तथा महाबली भीमकी भेंट होती है तथा भीम अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे भी रास्तेमें पड़े वानरके रूपमें सोये हुए महावीर-की पूँछ उठानेमें असमर्थ हो जाते हैं, तब वे हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं तथा उन्हें प्रणाम करके पूछते हैं, 'महाराज! आप साधारण वानर नहीं हैं। कृपया मुझे बतलाइये कि आप कौन हैं। यदि कोई गुप्त बात न हो और मेरे सुननेयोग्य हो तो कृपया बतलाइये। मैं यह शिष्य-भावसे पूछता हूँ और आपकी शरणमें आया हूँ।'

महावीर हनुमान्ने उत्तर दिया—'मैं केसरीके घरमें उत्पन्न पवनतनय हनुमान् हूँ। पूर्वकालमें सभी वानर यूथपति इन्द्रतनय बाली तथा सूर्यकुमार सुग्रीवकी सेवामें उपस्थित रहते थे। सुग्रीवसे मेरी वैसी ही मित्रता थी, जैसी वायुकी अग्निके साथ।'

इसके उपरान्त श्रीहनुमान्ने बाली एवं सुग्रीवके विरोधकी चर्चा करते हुए श्रीरामचन्द्रजीकी समस्त कथा तथा उन प्रसङ्गोंमें अपने पराक्रम आदिका संक्षेपमें वर्णन किया।*

पाण्डवोंके वनवासके समय द्वैतवनमें महाराज युधिष्ठिरसे भेंट करनेके लिये दीर्घायु महर्षि मार्कण्डेय पधारे। महाराजने उनका समयानुकूल यथोचित स्वागत किया। सहसा महर्षि द्रौपदी, युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुनको देखकर मुसकराने लगे। तब धर्मराज युधिष्ठिरने उनसे पूछा, 'मुने! ये सब तपस्वी तो मेरी दुर्दशा देखकर दुखी हैं, किंतु आप प्रसन्नता-पूर्वक मुसकराते-से दीख रहे हैं। इसका क्या कारण है?' 'महर्षिने उत्तर दिया, 'महाराज! न तो मैं हर्षित ही हो रहा हूँ न मुसकरा रहा हूँ। आज आपकी यह विपत्ति देखकर मुझे सत्यप्रतिज्ञ दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रका स्मरण हो आया। पिताकी आज्ञासे लक्ष्मणके साथ धनुष हाथमें लेकर वनमें घूमते हुए श्रीरामचन्द्रको ऋष्यमूक पर्वतके शिखरपर मैंने देखा था।' (महाभारत, वनपर्व अध्याय २५ श्लोक ६ से ९ तक)

महर्षि मार्कण्डेयने 'मैंने देखा था।' कहा। यह नहीं कहा कि 'मैंने महर्षि वाल्मीकिविरचित एक उपन्यास पढ़ा था, जिसमें प्रमुख पात्र श्रीरामचन्द्रजी उसी प्रकार दुःखमय जीवन व्यतीत करते हुए दिखाये गये हैं, जैसे आप कर रहे हैं।'

श्रीमद्भगवद्गीताके दशम अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनकी प्रार्थनापर अपनी विभूतियोंका वर्णन करते हुए कहते हैं—

'रामः शस्त्रभृतामहम्।' (गीता १०। ३१)

'मैं शस्त्रधारियोंमें राम हूँ।'

इस श्लोककी व्याख्यामें स्वामी शंकराचार्यने अपने भाष्यमें लिखा है, 'रामो दाशरथिः।' अर्थात् यहाँ रामका अर्थ है—महाराज दशरथके पुत्र श्रीरामचन्द्र (परशुराम या बलराम नहीं)।

इस प्रकार महाभारत, भागवत एवं अन्य पुराणोंमें श्रीरामचन्द्रके सम्बन्धमें अनेकों प्रसङ्ग संक्षेप या विस्तारसे आये हैं। उनके जीवन-सम्बन्धी परवर्ती काव्य-नाटक-चम्पू-ग्रन्थोंकी चर्चा इस प्रसङ्गमें असंगत है।

४ तथा ५—यह गयी बात सिक्कों तथा भवनों आदिकी। इस सम्बन्धमें उल्लेखनीय है कि अनेक प्रसिद्ध हिंदू एवं मुसलमान राजाओंके सिक्के अब भी … हो सकते हैं और उनके द्वारा निर्मित

* देखिये, महाभारत, वनपर्व, अध्याय १४७।

अतः यह कोई ऐसी असामान्य बात नहीं है, जिसके कारण श्रीरामचन्द्रकी ऐतिहासिकतापर संदेह उत्पन्न हो।

मेरी समझमें श्रीरामचन्द्रजीके जीवनवृत्तसे सम्बद्ध वास्तवमें असामान्य (अर्थात् असम्भाव्य) बात श्रीहनूमान्‌से उनकी भेंटकी घटनासे प्रारम्भ होती है। श्रीहनूमान्‌ने श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मणका परिचय पूछते हुए तथा अन्ततः अपना परिचय देते हुए जो बातें कहीं, उन्हें सुनकर रामने उनको कुछ भी उत्तर न देते हुए धीरेसे लक्ष्मणसे कहा—'लक्ष्मण! ये कपिराज महात्मा सुग्रीवके मन्त्री हैं। तुम इनके साथ स्नेहयुक्त एवं मधुर वाक्योंमें वार्तालाप करो। जिसने ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेदका अध्ययन नहीं किया है, वह इस प्रकारकी बात नहीं कर सकता; इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणशास्त्रका विधिवत् अध्ययन किया है; क्योंकि बहुत बात करते हुए भी इन्होंने एक भी अशुद्ध शब्दका उच्चारण नहीं किया'—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥
(वा० रा० ४।३।२८-२९)

फिर सुग्रीवसे, वालीसे, तारासे तथा आगे चलकर अङ्गद, जाम्बवान् तथा नल-नील आदिसे श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मणकी अपनी मातृभाषा, अर्थात् संस्कृतभाषामें वार्तालाप होते रहनेके प्रसङ्ग बारंबार आये हैं।

यहाँ प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि पुच्छधारी वानरोंके लिये वेदों एवं व्याकरणका अध्ययन एवं व्याकरणादि शास्त्रोंका विशद ज्ञान क्या असम्भाव्य नहीं है? यही बात पम्पासर मधुवनके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। एक ओर तो महर्षि वाल्मीकिने उपर्युक्त वानरोंके पुच्छोंकी भी बारंबार चर्चा की है और दूसरी ओर वालीका चारों समुद्रोंपर संध्या करने तथा सुग्रीवके वैदिक मन्त्रोंसे राज्याभिषेक आदिका भी वर्णन किया है।

आजकलके बंदर तो संस्कृत क्या, शुद्ध या अशुद्ध हिंदी या मराठी या तमिळ भी नहीं बोलते। अतः उस समयके बंदरोंका शुद्ध संस्कृतमें वार्तालाप करना असम्भव-सा प्रतीत होता है।

कुछ इसी प्रकारकी भावना हनूमान् आदिके पराक्रमके सम्बन्धमें भी उत्पन्न हो सकती है। हनूमान्‌का शतयोजन-विस्तीर्ण समुद्रको आकाशमार्गसे कूदकर या उड़कर पार करना तथा लक्ष्मणकी रक्षाके लिये कुछ ही घंटोंमें लङ्कासे हिमालयतक आना-जाना यदि असम्भाव्य-सा प्रतीत हो तो इसमें आश्चर्यकी बात नहीं है।

इस शङ्काका समाधान वाल्मीकिरामायणमें ही वर्तमान है। यदि हम उसे ध्यानसे पढ़नेका प्रयत्न करें तो हमारी सभी शङ्काओंका सम्यक् समाधान सुगमतापूर्वक हो सकता है। यह ज्ञातव्य है कि वानरोंकी सामान्य भाषा संस्कृत नहीं थी; संस्कृत मनुष्योंकी ही भाषा थी। यह इस बातसे प्रकट होता है कि हनूमान्‌ने जब सीताको अशोकवाटिकामें प्रथम बार देखा, तब उन्हें अनेक बार सोचना पड़ा कि वे सीतासे किस भाषामें तथा किस प्रकार वार्तालाप प्रारम्भ करें, जिससे वे उनपर संदेह न करें तथा उनकी बातोंपर विश्वास करें। इस प्रसङ्गमें उन्होंने सोचा, 'यदि मैं मनुष्योंकी भाषा संस्कृतमें वार्तालाप करूँ तो सीता मुझे रावण समझकर भयभीत हो जायँगी।'

अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्॥
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
(वा० रा० ५।३०।१७-१८)

इसके अतिरिक्त, लङ्कासे सीताके अन्वेषणोपरान्त लौटे हुए हनूमदादि वानरोंद्वारा मधुवनके विध्वंसकी कहानी उसके रक्षक दधिमुखने जब राम तथा लक्ष्मणके समक्ष ही सुग्रीवको सुनायी, तब राम तथा लक्ष्मण उसे समझ नहीं पाये। (वही, ५।६३।११-१४)

अतः लक्ष्मणने सुग्रीवसे पूछा, 'इस बंदरने अत्यन्त दुःखी होकर आपसे क्या कहा?' सुग्रीवने उत्तर दिया, 'आर्य लक्ष्मण! दधिमुखने हनुमदादिद्वारा मधुवनके विध्वंसकी बात कही। मेरा अनुमान है कि सीता अवश्य देखी गयी—किसी अन्यके द्वारा नहीं, हनूमान्‌के द्वारा।' (वही, (५।६३।१९)

इस प्रसङ्गसे यह प्रतीत होता है कि सुग्रीव तथा दधिमुखका वार्तालाप वानरी भाषामें हुआ, जिसे राम तथा लक्ष्मण समझ नहीं पाये। किंतु सुग्रीव तथा लक्ष्मणके वार्तालापकी भाषा संस्कृत थी। इन सब प्रसङ्गोंसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि सुग्रीव, हनुमान्, अङ्गद, नल, नील

आदि कुछ ही वानर संस्कृत समझते तथा बोल सकते थे, सभी बंदर नहीं। अन्य बंदरोंसे राम एवं लक्ष्मणका सम्पर्क इन उपर्युक्त बंदरोंके माध्यमसे ही होता था।

अब प्रश्न यह होता है कि 'ये प्रमुख बंदर संस्कृत कैसे जानते थे ?'

एक ओर ब्रह्मासे रावणने यह वरदान माँगा था कि मनुष्यादि प्राणियोंको छोड़कर देव-दानवादि किसी अन्यके द्वारा हमारा वध न हो सके (क्योंकि मनुष्यादिको वह तृणवत्[1] समझता था) तथा दूसरी ओर भगवान् नन्दीने रावणको यह शाप दिया कि 'तुमने वानररूप मुझे देखकर वज्रपातके समान अट्टहास कर अपमानित किया, अतः मेरे रूपके समान तेजस्वी, मेरे वीर्यसे युक्त वानर तुम्हारे कुलके विनाशके लिये उत्पन्न होंगे। नख एवं दंष्ट्रारूप आयुधवाले, मनके समान गतिमान्, युद्धोन्मत्त, बलवान् तथा गतिमान् पर्वतके समान आकारवाले वे वानर पुत्रों एवं मन्त्रियोंसहित तुम्हारे प्रबल दर्पको नष्ट करेंगे।'[2] अतः दशकन्धर रावणके विनाशके लिये रामके सहायतार्थ देवताओं-ने ब्रह्माकी सम्मतिसे वानरियोंसे अत्यन्त तेजस्वी, शूरवीर, बुद्धिमान् तथा असामान्य शक्ति एवं शक्तिसे सम्पन्न पुत्रोंको उत्पन्न किया।

प्रजननशास्त्र (Genetics)में यह एक सामान्य नियम है कि यदि माता-पिताके गुण समान न हों तो उनकी संतानमें कभी माताके तथा कभी पिताके गुणोंका अधिक मात्रामें संक्रमण होता है, यद्यपि दोनोंके कुछ-न-कुछ गुण संतानमें अवश्य वर्तमान रहते हैं। पंद्रह-बीस वर्ष पूर्व समाचारपत्रोंमें यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि किसी रूसी वैज्ञानिकने आलू तथा टमाटरके संयोगसे एक ऐसा नया पौधा उत्पन्न किया है, जिसमें नीचे आलू तथा ऊपर टमाटर फलता है। अतः उपर्युक्त विधिसे उत्पन्न वानरोंको मातृपक्षसे वानरी आकृति एवं वानरी भाषा प्राप्त हुई थी तथा पितृपक्षसे देवताओं-जैसे अद्भुत तेज तथा पराक्रम[illegible] साथ संस्कृत भाषा एवं कुछ शास्त्रोंका [illegible] था। इसी प्रकार प्रयुक्त संस्कृत भाषा एवं [illegible] वानरी व्याख्या भी हो जाती है। अतः अद्भुत पराक्रम एवं संस्कृतज्ञानकी [illegible]

उपर्युक्त सिद्धान्तके आधारपर हो सकनेके कारण एवं श्रीरामचन्द्रजी ऐतिहासिकताके सम्बन्धमें ऊपर दिये गये अनेक प्रमाणोंके कारण उनके ऐतिहासिक अस्तित्व बात असंदिग्धरूपसे सिद्ध हो जाती है।

२. मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी भगवत्ता

अब इस प्रश्नपर विचार किया जायगा कि मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी एक असामान्य शील-शक्ति-सौन्दर्यसे सम्पन्न पुरुषमात्र थे या भगवान्के अवतार थे।

संसारकी नियमबद्धता, उसकी विचित्र रचना एवं उपकार्योपकारकभाव देखकर शंकराचार्य आदि प्राच्य एवं प्लेटो, अरस्तू, देकार्ते, लॉक, कांट आदि प्रमुख पाश्चात्य दार्शनिकोंने ईश्वरकी सत्ता स्वीकार की है। यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दीका विज्ञान प्रमुखतया जड़वादी था, आइन्स्टाइन, एडिंगटन आदि आधुनिक वैज्ञानिकोंकी विचारधारा प्रमुखतया ईश्वरवादी प्रतीत होती है। ईश्वरके प्रमुख कार्य हैं— सृष्टि एवं प्रलयकी व्यवस्था करना तथा नैतिक नियमा-नुसार संसारका संचालन करना। इन कर्तव्योंका निर्वाह तभी हो सकता है, जब ईश्वरको न्यायी, सर्वज्ञ एवं सर्व-शक्तिशाली स्वीकार किया जाय। इसीलिये स्वामी शंकराचार्य-ने कहा है—'मनके द्वारा भी जिस जगत्की रचना तथा रूपकी कल्पना करना सम्भव नहीं है ...... उस जगत्की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय जिस सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिशाली कारणसे उत्पन्न होते हैं, वही ब्रह्म (अर्थात् ईश्वर) है'।

अतः यदि ईश्वर सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिशाली है तो वह यदि उचित एवं आवश्यक समझे तो किसी भी रूपमें प्रकट हो [illegible], अर्थात् अवतार ले सकता है।

[illegible] Sciences
by
? God ?
Hans Driesh
etc
[illegible]

१. (वा० रा०, उत्तरकाण्ड, सर्ग १० ।
२. (वा० रा०, उत्तरकाण्ड, सर्ग १६ । १

उदाहरणार्थ, केनोपनिषद् (तृतीय खण्ड) मे देवताओंका गर्व दूर करनेके लिये ब्रह्मके यक्षरूपमें प्रकट होनेकी बात आयी है। उसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् (४।८) में सत्यकाम जाबालको ब्रह्मविद्याका उपदेश देनेके लिये ब्रह्मके वृषभ, अग्नि, हंस तथा मद्गु (जल-कुक्कुट)—इन रूपोंमें प्रकट होनेकी स्पष्ट चर्चा है। जैसे ब्रह्म यक्षादि उपर्युक्त रूपोंमें प्रकट हो सकता है, वैसे ही वह यदि आवश्यक समझे तो मनुष्यरूपमें भी अवतार ले सकता है। ऐसा होनेमें किसी प्रकारकी तार्किक असम्भावना नहीं दीखती।

यद्यपि पौरस्त्य तथा पाश्चात्त्य अनेक धुरंधर दार्शनिकोंने तर्कके आधारपर ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है, अनेक वर्षोतक दर्शनशास्त्रका अध्ययन एवं अध्यापन करते रहनेके उपरान्त मेरा व्यक्तिगत विश्वास यही है कि यद्यपि तर्क अनेक अंशोंतक ईश्वर-सिद्धिमें सहायक होता है, शुद्ध तर्कके आधारपर ईश्वरका अस्तित्व असंदिग्ध रूपसे सिद्ध नहीं किया जा सकता। किंतु इस सम्बन्धमें, जैसा कई वर्ष पूर्व प्रसिद्ध दार्शनिक प्रो० के० सी० भट्टाचार्यने कहा था—(If Logic cannot catch God, so much the worse for Logic and not for God). —यदि तर्कशास्त्र ईश्वरको सिद्ध नहीं कर सकता तो यह दुर्भाग्य तर्कशास्त्रका है, ईश्वरका नहीं।

स्वामी शंकराचार्यने भी बादरायणके 'तर्काप्रतिष्ठानात्' (ब्रह्मसूत्र २।१।११) इस सूत्रपर भाष्य करते हुए कुछ ऐसा ही मत प्रकट किया है। अतः मेरी समझमें ईश्वरके अस्तित्व एवं उसके अवतारके सम्बन्धमें भी एकमात्र प्रमाण है—दिव्यशक्तिसम्पन्न योगसिद्ध महापुरुषोंका अनुभव अर्थात् दिव्य ज्ञान। अतः प्रश्न यह है कि क्या वाल्मीकि-रामायणके अनुसार श्रीरामचन्द्रकी भगवत्तामें पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध होते हैं?'

कुछ विद्वानोंका मत है कि वाल्मीकिने रामका चरित्र-चित्रण एक मातृ-पितृ-भक्त, शील-शक्ति-सौन्दर्य-सम्पन्न महावीरके रूपमें ही किया था। उनपर भगवत्ताका आरोप बहुत बादमें हुआ। यह सत्य है कि महर्षि वाल्मीकिने रामके कथाप्रसादमें गोस्वामी तुलसीदासके समान पदे-पदे उनके ईश्वरत्वका स्मरण दिलाते रहनेका प्रयास नहीं किया है। अतः कथाप्रसादकी दृष्टिसे वाल्मीकिका वर्णन गोस्वामी तुलसीदासके वर्णनसे, कुछ स्थलोंको छोड़कर, अधिक आकर्षक प्रतीत होता है; तो भी यदि ध्यानसे पढ़ा जाय तो वाल्मीकि-विरचित रामायणमें भी श्रीरामचन्द्रके ईश्वरत्वके समर्थक अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं। मैं रामावतारके प्रारम्भमें ही देवताओंके ब्रह्माके साथ विष्णुभगवान्‌के पास जाकर उन्हें रावणवधके लिये प्रार्थना करने आदिकी बात नहीं कहता, जिसे कुछ लोग श्रीरामचन्द्रका ईश्वरत्व सिद्ध करनेके लिये मूल रामायणमें बादमें जोड़े हुए प्रसङ्ग समझ सकते हैं। मैं कुछ ऐसे प्रमाणोंकी चर्चा करना चाहता हूँ, जो वाल्मीकिकी लेखनीसे उसी प्रकार छलक पड़े हैं, जैसे अमृतपानीसे चलनेवाले व्यक्तिके हाथसे जल या दूधका कुछ अंश छलक पड़ता है।

१—महर्षि विश्वामित्र ताटका, सुबाहु तथा मारीचके वधके लिये श्रीरामचन्द्रकी सहायताकी याचना करने महाराज दशरथके यहाँ पहुँचे। महाराजने उनका बड़ा स्वागत किया तथा उन्हें जो कुछ भी वे माँगें, देनेका वचन दिया। किंतु जब उन्हें पता चला कि महर्षि दुर्दान्त राक्षसोंके वधके लिये श्रीरामचन्द्रको ले जाना चाहते हैं, तब उनके होश उड़ गये। कुछ देरके लिये वे मूर्च्छित हो गये। पुनः संज्ञालाभ करनेपर उन्होंने बड़े दैन्यके साथ कहा—

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः॥'

(वा० रा० १।२०।२)

'कमलके समान नेत्रोंवाले मेरे रामचन्द्र केवल पंद्रह वर्षके हैं। ये राक्षसोंके साथ युद्ध करनेके योग्य नहीं हैं।'

किंतु महर्षि विश्वामित्रने बल देकर कहा, 'सुबाहु एवं मारीचको रामचन्द्रके अतिरिक्त (संसारमें) कोई भी दूसरा व्यक्ति नहीं मार सकता।'………'सत्यपराक्रम महात्मा राम (की महिमा) को मैं जानता हूँ, महातेजस्वी वसिष्ठ जानते हैं तथा वे जो लोग तपस्यामें निरत हैं, वे भी जानते हैं—

अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्॥
वसिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः।

(वा० रा० १।१९।१४-१५)

महर्षि विश्वामित्रके इस कथनसे ध्वनित होता है कि श्रीरामचन्द्र स्वभावतः दिव्यशक्तिसम्पन्न अर्थात् परमात्माके अवतार थे।

२—अयोध्या श्रीरामचन्द्रसे केवल इतना ही कह पाया कि जिस सीताको आप ओषधिके समान त्याग रहे हैं, उसे तथा

आदि कुछ ही वानर संस्कृत समझते तथा बोल सकते थे, सभी बंदर नहीं। अन्य बंदरोंसे राम एवं लक्ष्मणका सम्पर्क इन उपर्युक्त बंदरोंके माध्यमसे ही होता था।

अब प्रश्न यह होता है कि 'ये प्रमुख बंदर संस्कृत कैसे जानते थे?'

एक ओर ब्रह्मासे रावणने यह वरदान माँगा था कि मनुष्यादि प्राणियोंको छोड़कर देव-दानवादि किसी अन्यके द्वारा हमारा वध न हो सके (क्योंकि मनुष्यादिको वह तृणवत्[1] समझता था) तथा दूसरी ओर भगवान् नन्दीने रावणको यह शाप दिया कि 'तुमने वानररूप मुझे देखकर वज्रपातके समान अट्टहास कर अपमानित किया; अतः मेरे रूपके समान तेजस्वी, मेरे वीर्यसे युक्त वानर तुम्हारे कुलके विनाशके लिये उत्पन्न होंगे। नख एवं दंष्ट्रारूप आयुधवाले, मनके समान गतिमान्, युद्धोन्मत्त, बलवान् तथा गतिमान् पर्वतके समान आकारवाले ये वानर पुत्रों एवं मन्त्रियोंसहित तुम्हारे प्रबल दर्पको नष्ट करेंगे।'[2] अतः अवध्य-प्राप्त रावणके विनाशके लिये रामके सहायतार्थ देवताओं-ने ब्रह्माकी सम्मतिसे वानरियोंसे अत्यन्त तेजस्वी, शूरवीर, बुद्धिमान् तथा असामान्य शक्ति एवं गतिसे सम्पन्न पुत्रोंको उत्पन्न किया।

प्रजननशास्त्र (Genetics)का यह एक सामान्य नियम है कि यदि माता-पिताके गुण समान न हों तो उनकी संतानमें कभी माताके तथा कभी पिताके गुणोंका अधिक मात्रामें संक्रमण होता है, यद्यपि दोनोंके कुछ-न-कुछ गुण संतानमें अवश्य वर्तमान रहते हैं। पंद्रह-बीस वर्ष पूर्व समाचारपत्रोंमें यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि किसी रूसी वैज्ञानिकने आलू तथा टमाटरके संयोगसे एक ऐसा नया पौधा उत्पन्न किया है, जिसमें नीचे आलू तथा ऊपर टमाटर फलता है। अतः उपर्युक्त विधिसे उत्पन्न वानरोंको मातृपक्षसे वानरी आकृति एवं वानरी भाषा प्राप्त हुई थी तथा पितृपक्षसे देवताओं-जैसे अद्भुत तेज तथा पराक्रमके साथ-साथ संस्कृत भाषा एवं कुछ शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त हुआ था। इसी प्रकार जाम्बवान् संस्कृत भाषा एवं ज्योतिषसम्बन्धी ज्ञानकी व्याख्या भी हो जाती है। अतः उपर्युक्त वानरोंके अद्भुत पराक्रम एवं संस्कृत-ज्ञानकी संतोषजनक व्याख्या उपर्युक्त सिद्धान्तके आधारपर हो जानेसे बाद हम श्रीरामचन्द्रकी ऐतिहासिकताके सम्बन्धमें ऊपर दिये गये अनेक प्रमाणोंके कारण उनके ऐतिहासिक व्यक्तित्वको बात असंदिग्धरूपसे सिद्ध हो जाती है।

२. मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी भगवत्ता

अब इस प्रश्नपर विचार किया जाय कि मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी एक असामान्य शील-शक्ति-सौन्दर्यसे सम्पन्न पुरुषमात्र थे या भगवान्‌के अवतार थे।

संसारकी नियमबद्धता, उसकी विचित्र रचना एवं उपकार्य-उपकारकभाव देखकर शंकराचार्य आदि प्राच्य एवं प्लेटो, अरस्तू, देकार्ते, लॉक, बर्कले आदि प्रमुख पाश्चात्य दार्शनिकोंने ईश्वरकी सत्ता स्वीकार की है। यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दीका विज्ञान प्रमुखतया जड़वादी था, आइंस्टाइन, एडिंगटन आदि आधुनिक वैज्ञानिकोंकी विचारधारा प्रमुखतया ईश्वरवादी प्रतीत[4] होती है। ईश्वरके प्रमुख कार्य हैं—सृष्टि एवं प्रलयकी व्यवस्था करना तथा नैतिक नियमानुसार संसारका संचालन करना। इन कर्मोंका निर्वाह तभी हो सकता है, जब ईश्वरको व्यापी, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिशाली स्वीकार किया जाय। इसीलिये स्वामी शंकराचार्यने कहा है—'मनके द्वारा भी जिस जगत्‌की रचना तथा रूपकी कल्पना करना सम्भव नहीं है ...... उस जगत्‌की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय जिस सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिशाली कारणसे उत्पन्न होते हैं, वही ब्रह्म (अर्थात् ईश्वर) है'[5]।

अतः यदि ईश्वर सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिशाली है तो वह यदि उचित एवं आवश्यक समझे तो किसी भी रूपमें प्रकट हो सकता है, अर्थात् अवतार ले सकता है।

---

१. (वा० रा०, उत्तरकाण्ड, सर्ग १० । १९–२१)

२. (वा० रा०, उत्तरकाण्ड, सर्ग १६ । १६–१९)

४. देखिये—

1. The Philosophy of Physical Sciences by Eddington.

2. Has Science Discovered God?

3. The Great Design by Hans Driesh etc.

५. 'अस्य जगतः ...... मनसाप्यचिन्त्यरचनारूपस्य जन्मस्थितिभङ्गं यतः सर्वज्ञात् सर्वशक्तेः कारणाद् भवति ।'

(ब्रह्मसूत्र, अध्याय १, पाद १, सूत्र २ पर शांकरभाष्य)

उदाहरणार्थ, केनोपनिषद् (तृतीय खण्ड) में देवताओंका गर्व दूर करनेके लिये ब्रह्मके यक्षरूपमें प्रकट होनेकी बात आयी है । उसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् (४ । ८) में सत्यकाम जाबालको ब्रह्मविद्याका उपदेश देनेके लिये ब्रह्मके वृषभ, अग्नि, हंस तथा मद्गु (जल-कुक्कुट)—इन रूपोंमें प्रकट होनेकी स्पष्ट चर्चा है । जैसे ब्रह्म यक्षादि उपर्युक्त रूपोंमें प्रकट हो सकता है, वैसे ही वह यदि आवश्यक समझे तो मनुष्यरूपमें भी अवतार ले सकता है । ऐसा होनेमें किसी प्रकारकी तार्किक असम्भावना नहीं दीखती ।

यद्यपि पौरस्त्य तथा पाश्चात्त्य अनेक धुरंधर दार्शनिकोंने तर्कके आधारपर ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है, अनेक वर्षोतक दर्शनशास्त्रका अध्ययन एवं अध्यापन करते रहनेके उपरान्त मेरा व्यक्तिगत विश्वास यही है कि यद्यपि तर्क अनेक अंशोंतक ईश्वर-सिद्धिमें सहायक होता है, परंतु तर्कके आधारपर ईश्वरका अस्तित्व असंदिग्ध रूपसे सिद्ध नहीं किया जा सकता । किंतु इस सम्बन्धमें, जैसा कई वर्ष पूर्व प्रसिद्ध दार्शनिक प्रो० के० सी० भट्टाचार्यने कहा था—(If Logic cannot catch God, so much the worse for Logic and not for God). —यदि तर्कशास्त्र ईश्वरको सिद्ध नहीं कर सकता तो यह दुर्भाग्य तर्कशास्त्रका है, ईश्वरका नहीं ।

स्वामी शंकराचार्यने भी बादरायणके 'तर्काप्रतिष्ठानात्' (ब्रह्मसूत्र २ । १ । ११) इस सूत्रपर भाष्य करते हुए कुछ ऐसा ही मत प्रकट किया है । अतः मेरी समझमें ईश्वरके अस्तित्व एवं उसके अवतारके सम्बन्धमें भी एकमात्र प्रमाण है—दिव्यशक्तिसम्पन्न योगसिद्ध महापुरुषोंका अनुभव अर्थात् दिव्य ज्ञान । अतः प्रश्न यह है कि क्या वाल्मीकि-रामायणके अनुसार श्रीरामचन्द्रकी भगवत्तामें पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध होते हैं ?'

कुछ विद्वानोंका मत है कि वाल्मीकिने रामका चरित्र चित्रण एक मातृ-पितृ-भक्त, शील-शक्ति-सौन्दर्य-सम्पन्न महावीरके रूपमें ही किया था । उनपर भगवत्ताका आरोप बहुत बादमें हुआ । यह सत्य है कि महर्षि वाल्मीकिने रामके कथाप्रसादमें गोस्वामी तुलसीदासके समान पदे-पदे उनके ईश्वरत्वका स्मरण दिलाते रहनेका प्रयास नहीं किया है। अतः कथाप्रसादकी दृष्टिसे वाल्मीकिका वर्णन गोस्वामी तुलसीदासके वर्णनसे, कुछ प्रसङ्गोंको छोड़कर, अधिक आकर्षक प्रतीत होता है; तो भी यदि ध्यानसे पढ़ा जाय तो वाल्मीकिविरचित रामायणमें भी श्रीरामचन्द्रके ईश्वरत्वके समर्थक अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं । मैं रामावतारके प्रारम्भमें ही देवताओंके ब्रह्माके साथ विष्णुभगवान्‌के पास जाकर उन्हें रावणवधके लिये प्रार्थना करने आदिकी बात नहीं कहता, जिसे कुछ लोग श्रीरामचन्द्रका ईश्वरत्व सिद्ध करनेके लिये मूल रामायणमें बादमें जोड़े हुए प्रक्षिप्त समझ सकते हैं । मैं कुछ ऐसे प्रमाणोंकी चर्चा करना चाहता हूँ, जो वाल्मीकिकी लेखनीसे उसी प्रकार छलक पड़े हैं, जैसे भरकर पानीसे चलनेवाले व्यक्तिके हाथसे जल या दूधका कुछ अंश छलक पड़ता है ।

१—महर्षि विश्वामित्र ताटका, सुबाहु तथा मारीचके वधके लिये श्रीरामचन्द्रकी सहायताकी याचना करने महाराज दशरथके यहाँ पहुँचे । महाराजने उनका बड़ा स्वागत किया तथा उन्हें जो कुछ भी वे माँगें, देनेका वचन दिया । किंतु जब उन्हें पता चला कि महर्षि दुर्दान्त राक्षसोंके वधके लिये श्रीरामचन्द्रको ले जाना चाहते हैं, तब उनके होश उड़ गये । कुछ देरके लिये वे मूर्च्छित हो गये । पुनः संज्ञालाभ करनेपर उन्होंने बड़े दैन्यके साथ कहा—

> ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः ।
> न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥'
>
> (वा० रा० १ । २० । २)

'कमलके समान नेत्रोंवाले मेरे रामचन्द्र केवल पंद्रह वर्षके हैं । वे राक्षसोंके साथ युद्ध करनेके योग्य नहीं हैं ।'

किंतु महर्षि विश्वामित्रने बल देकर कहा, 'सुबाहु एवं मारीचको रामचन्द्रके अतिरिक्त (संसारमें) कोई भी दूसरा व्यक्ति नहीं मार सकता ।'·········'सत्यपराक्रम महात्मा राम-(की महिमा) को मैं जानता हूँ, महातेजस्वी वसिष्ठ जानते हैं तथा ये जो लोग तपस्यामें निरत हैं, वे भी जानते हैं—

> अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ॥
> वसिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः ।
>
> (वा० रा० १ । १९ । १४-१५)

महर्षि विश्वामित्रके इस कथनसे ध्वनित होता है कि श्रीरामचन्द्र स्वभावतः दिव्यशक्तिसम्पन्न अर्थात् परमात्माके अवतार थे ।

२—जटायु श्रीरामचन्द्रसे केवल इतना ही कह पाया कि 'जिस सीताको आप ओषधिके समान खोज रहे हैं, उसे तथा

मेरे प्राणोंको ले कर रावण दक्षिण दिशाकी ओर चला गया' और उसके प्राणपखेरू उड़ गये। श्रीरामचन्द्र बड़े दुःखी हुए। उन्होंने लक्ष्मणकी सहायतासे जटायुका पितृवत् दाह-संस्कार किया, उसे जलाञ्जलि प्रदान की तथा कहा, 'जो गति यज्ञशील मनुष्योंकी होती है, जो गति आहिताग्नि अग्निमें हवन करनेवालोंकी होती है, युद्धभूमिमें पीठ न दिखानेवालोंको जो गति प्राप्त होती है तथा भूमिदान करनेवालोंको जिन सर्वश्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति होती है, मेरी आज्ञासे आप उन लोकोंमें प्राप्त करें।' (वा० रा० ३ । ६८ । २९-३०)

प्रश्न यह होता है कि यज्ञशील मनुष्योंको, हवनशील मनुष्योंको, शूरवीरोंको तथा भूमिदान करनेवालोंको एक ही प्रकारकी गति प्राप्त होती है या भिन्न-भिन्न प्रकारकी? ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि इन सभी लोगोंको उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होती है तो भी सबको एक ही गति नहीं प्राप्त होती। यदि सबको भिन्न-भिन्न गतियोंकी प्राप्ति होती है तो युद्धमें पीठ न दिखानेवालोंको जो गति प्राप्त होती है, उसका अधिकारी तो जटायु धर्म-युद्धमें प्राण परित्याग करनेके कारण स्वतः था। उसके लिये श्रीरामचन्द्रकी अनुकम्पाकी कोई आवश्यकता नहीं थी। किंतु यज्ञशीलों, हवन करनेवालों तथा भूमिदान करनेवालोंकी गतियोंका अधिकारी न होते हुए भी वे गतियाँ उसे श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे प्राप्त हुईं। यदि कोई तपस्वी किसी अनधिकारी व्यक्तिको उत्तम गति प्राप्त कराता तो उसे कहना पड़ता, 'मेरी तपस्याके एक अंशसे तुम्हें ये गतियाँ प्राप्त हों', जिस प्रकारके प्रसङ्ग वाल्मीकि-रामायणमें अन्यत्र अनेक बार आ चुके हैं। किंतु 'मेरी आज्ञासे तुम्हें ये गतियाँ प्राप्त हों।'—यह कहनेका अधिकार परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीको नहीं है।

३—विभीषण श्रीरामचन्द्रकी शरणमें आना चाहते हैं। उन्होंने लङ्कासे समुद्रके उत्तरी तटपर आकर श्रीरामचन्द्रको वानरोंद्वारा अपने विचारकी सूचना दी। इस सम्बन्धमें कुछ निर्णय लेनेके पूर्व श्रीरामचन्द्रजीने अपने मन्त्रिमण्डलसे परामर्श किया। एक हनुमान्को छोड़कर लक्ष्मण, सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद आदि सबने यही मत प्रकट किया कि 'विभीषण शत्रुका भाई है—इसपर विश्वास करना बुद्धिमत्ताकी बात नहीं होगी। यह धोखा देकर हम सबको मार डालनेका प्रयत्न करेगा।' किंतु श्रीरामचन्द्रको हनुमान्की बात ही उचित प्रतीत हुई। उन्होंने यह भी कहा कि 'मैं शरणागत का परित्याग कभी भी नहीं कर सकता—यह मेरी प्रतिज्ञा है।' यद्यपि धोखा देकर हानि पहुँचानेकी बात थी, उसके उत्तरमें उन्होंने सुग्रीवसे कहा—'विभीषण दुष्ट हो या अदुष्ट, वह हमारा कुछ भी अहित क्या कर सकता है! वानरराज! इच्छा होनेपर मैं उँगलीके अग्रभागसे संसारके सभी पिशाचों, दानवों, यक्षों तथा राक्षसोंका संहार कर सकता हूँ'—

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर॥

(वा० रा० ६ । १८ । २३)

यह स्पष्ट है कि ऐसा कथन सर्वशक्तिमान् परमात्माके लिये ही सम्भव है, किसी महावीरमात्रके लिये नहीं।

यद्यपि वाल्मीकि-रामायणसे इस प्रकारके अनेक प्रसङ्ग उद्धृत किये जा सकते हैं तो भी लेख अधिक लंबा हो जानेके कारण केवल एक और प्रसङ्गकी चर्चा करके इसे समाप्त कर रहा हूँ।

४—मेघनादकी मृत्युके उपरान्त रावणने राम तथा लक्ष्मणसे युद्ध करनेके लिये बड़ी सेना भेजी। उस दिन श्रीरामचन्द्रने दो घड़ीके युद्धमें दस सहस्र रथी, अठारह सहस्र हाथी, चौदह सहस्र अश्वारोही तथा दो लाख पदाति सैनिकों का संहार करके सुग्रीव, विभीषण, हनुमान्, जाम्बवान्, तथा मैन्द एवं द्विविदसे कहा—'यह दिव्य अस्त्रबल या तो मेरे पास है या भगवान् शंकरके पास'—

'एतदस्त्रबलं दिव्यं मम वा त्र्यम्बकस्य वा।'

(वा० रा० ६ । ९३ । ३८)

दिव्य अस्त्रबलमें साक्षात् शंकरकी समकक्षताके कारण तथा विष्णुका नाम नहीं लेनेके कारण मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रका भगवान् विष्णुका अवतार होना स्वतः ही ध्वनित होता है। उपर्युक्त तथा अन्य अनेक प्रसङ्गोंसे, जिनकी चर्चा विस्तारसे नहीं की जा सकी, यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि महर्षि वाल्मीकिके अनुसार ही मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र विष्णुभगवान्के अवतार थे। उनका भगवत्त्व परवर्ती कालमें आरोपित नहीं किया गया।

भगवान् रामका जन्मकाल एवं जन्मकुण्डली

(लेखक—आचार्य श्रीरामरमणजी शास्त्री, एम्० ए०)

श्रीरामको सभी लोग मर्यादापुरुषोत्तम मानते हैं। किंतु कुछ लोग श्रीरामको अवतारी पुरुष न मानकर केवल 'महामानव' ही मानना चाहते हैं। इसी संदर्भमें श्रीरामके जन्मकाल आदिपर कई विचारधाराओंसे विचार होने लगा है। सर्वप्रथम यहाँपर कुछ पाश्चात्य ऐतिहासिकोंके विचारोंका उल्लेख किया जा रहा है। जोन्स नामक एक मनीषी इतिहासज्ञने श्रीरामका जन्म-काल ई० पू० २०२९ वर्ष स्वीकार किया है। दूसरे पाश्चात्य इतिहासज्ञ विद्वान् टॉडने ईसापूर्व ११०० वर्ष श्रीरामका जन्म-समय निर्धारित किया है। बेंटली नामक पाश्चात्य इतिहासज्ञने उनका जन्मकाल ईसापूर्व ९५० वर्ष ही अङ्गीकार किया है और विल्फर्ड नामक इतिहासज्ञने ईसापूर्व ११५० वर्ष रामका जन्मकाल माना है। इस प्रकार सभी पाश्चात्य इतिहासज्ञ विद्वानोंने अपने-अपने अध्ययनके आधारपर श्रीरामका जन्म-समय ईसाके पूर्व मानकर अपनी मान्यताकी 'इतिश्री' कर दी। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके जन्मकालके विषयमें भारतीय इतिहासज्ञोंके विचार भी मतभेदसे परिपूर्ण हैं। मतभेद होना स्वाभाविक और अनिवार्य भी है। त्रेता-युगको कालकी वर्ष-गणनामें आबद्ध करना सरल नहीं है।

श्रीरामके जन्मकालके निर्णयके लिये भारतीय ज्योतिष की गणना ही सर्वथा मान्य हो सकती है। संत तुलसीदासजीने ज्योतिषकी भाषाशैलीको मनोहारक स्थितिमें रख दिया। उनका कहना है—

> जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
> चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल॥
> नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता॥
> (मानस १।१९०।१९०।१)

—इस उल्लेखसे वास्तविक वर्षका ज्ञान प्राप्त करना सरल नहीं है। केवल चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि और अभिजित् नक्षत्रके संकेतसे वर्षका वास्तविक ज्ञान कठिन है।

इस सम्बन्धमें आदिकविने जो संकेत दिया है, वह अन्धकारमें 'प्रकाश-स्तम्भ'का कार्य करता है। आदिकविने लिखा है—'श्रीरामके जन्मकालके समय (महाराज दशरथके पुत्रेष्टि-यज्ञ-समाप्तिके बाद बारह मास बीतनेपर) चैत्र शुक्ल नवमीके दिन, पुनर्वसु नक्षत्रके समय, कर्क लग्नमें, पाँच ग्रह जब अपने-अपने उच्चमें स्थित थे, गुरु चन्द्रमाके साथ थे, उसी समय श्रीरामका अवतार हुआ'—

> ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
> ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ॥
> नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
> ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह॥
> (वा० रा० १।१८।८-९)

वाल्मीकिजीने अपनी रामायणमें पाँच ग्रहोंको उच्चका और गुरु एवं चन्द्रमाको एक साथ बतलाकर ज्योतिषके ज्ञाताओंके लिये 'मार्ग' प्रकाशमय बना दिया। संत कवि तुलसीदासजीने अन्य प्रमाणोंके आधारपर अभिजित् नक्षत्रका उल्लेख किया है। अब प्रश्न यह होता है कि उस समय कौन से पाँच ग्रह उच्चके थे। इस सम्बन्धमें कई प्रमाणोंके आधारपर यही अवगत होता है कि रवि, भौम, गुरु, शुक्र और शनि उच्चके थे। अर्थात् रवि मेषके थे, मङ्गल मकरके, गुरु कर्कराशिस्थ थे, शुक्र मीनके और शनि तुलाके थे।

भारतीय विचारधाराके आधार

श्रीरामके जन्मकाल-निर्णयमें भारतीय विचारधाराके लिये वाल्मीकि-रामायणके ये दो श्लोक ही प्रकाश-स्तम्भ हैं। भारतीय गणितज्ञ और फलितज्ञ यह मानते हैं कि स्थूल रीतिसे एक राशिपर नक्षत्रगण लगभग २। सहस्राब्द, वरुण १४ वर्ष और शनि लगभग ढाई वर्षतक रहता है। इसी प्रकार सूर्य एक राशिपर एक मास और गुरु एक राशिपर प्रायः एक वर्ष रहते हैं। सूर्य, गुरु, शनिके विचारसे पाँचों उच्चस्थ ग्रहोंकी गणना करनेमें सरलता हो जाती है और इस हिसाबसे श्रीरामचन्द्रजीका जन्मकाल आजसे १,८५,५८,०७१ वर्ष पूर्व हुआ था।

श्रीरामका जन्माङ्ग

रखते, त्यों ही त्यों प्रतिबिम्बकी मूर्तियाँ भी नाचतीं और अपने-अपने पैर रखतीं। उस समय आनन्द और प्रेमकी मधुमयी धारा प्रवाहित होने लगी, परम सुखका समुद्र उमड़ आया। अहा हा! कितनी मधुर छवि है। कैसा सुन्दर नर्तन है। कमलके समान सुन्दर रतनारी आँखें प्रेमकी वर्षा कर रही हैं। पीत झँगुलीकी शोभा विलक्षण ही है। काले-काले लंबे-लंबे घुँघराले कपोलोंतक लटकते हुए केश मनको बरबस हरण कर रहे हैं, श्याम मूर्तिमें हरी झलक अनुपम ही है। हाथमें रोटी लिये हुए नाच रहे हैं। कैसा आनन्द है! कौसल्या तो मुग्ध हो गयीं। उन्हें स्मरण ही नहीं रहा कि महाराज पाकपर जीमनेके लिये बैठे हैं। वे निर्निमेष नेत्रोंसे भगवान्‌के इस अनूप रूपरसका पान करने लगीं। धन्य!

श्रीकाकभुशुण्डिजी भगवान्‌का चरणस्पर्श करनेके लिये अपनी चोंच बढ़ा रहे हैं, भगवान् दौड़कर उनके पीछे आ जाते हैं और बोलते हैं—'चूँ'! काकभुशुण्डिजी उड़ जाते हैं। भगवान् भी पीछे-पीछे दौड़ते हैं। कभी-कभी भगवान् अपनी रोटी दिखाकर अपने पास बुला लेते हैं। कभी-कभी चिढ़ाकर भगा देते हैं। इसी प्रकार काकभुशुण्डिजीके साथ खेल रहे हैं। तदनन्तर भगवान् रोटीका एक टुकड़ा काकभुशुण्डिजीके सामने गिरा देते हैं, वे प्रेममुग्ध होकर रोटीका टुकड़ा उठा लेते हैं और बड़े प्रेमसे सब कौओंको भगवान्‌के प्रसादका रसास्वादन कराते हुए स्वयं पाते हैं। भगवान्‌के प्रसादकी कुछ ऐसी महिमा है कि वह एकसे अनन्त बन जाता है। कैसा आनन्द है! कितना मधुर दर्शन है! काकभुशुण्डिजी भगवान्‌का प्रसाद पा रहे हैं।

हनुमान्‌जी भगवान्‌के साथ खेलनेके लिये बंदरका रूप धारण करके आये हुए थे। वे भी उसी समय भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श करनेके लिये लालायित हो उठे। वे चरण स्पर्शके लिये लपके ही थे कि भगवान् अपनी बाल-लीलाका अभिनय पूर्ण करनेके लिये चौंककर उछल पड़े। वात्सल्य भावसे माता कौसल्या लाठी लेकर हनुमान्‌जीकी ओर दौड़ीं, तबतक वे भगवान्‌के प्रसादी रोटीके टुकड़ेको लेकर कूद गये थे। उनके कूद जानेपर भगवान् हँसने लगे। हनुमान्‌जी प्रसाद पाने लगे और माता कौसल्या भगवान्‌का हाथ पकड़कर उन्हें महाराजके पास ले चलीं। उन्होंने भगवान् रामकी बाँह पकड़कर कहा—'वत्स! चलो, महाराज पाक-पर बैठे हुए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, तुम्हें खिलानेके लिये बड़े ही उत्सुक हो रहे हैं।' भगवान् अपने सखाके साथ धूलमें लोटने लगे। उनके मुँहमें लगा हुआ खीरका चावल जमीनपर गिर रहा है। भगवान् काकभुशुण्डिकी ओर देखकर हँस रहे हैं और वे डरते हुए उसे लेना ही चाहते हैं। धन्य है भगवान्‌की भक्तवत्सलता!

पाकपर बैठे हुए महाराज दशरथ भगवान्‌को खिलानेके लिये बहुत ही उत्सुक हैं। उनका एक-एक पल कल्पके समान बीत रहा है। भला, भगवान् कबतक उनकी प्रतीक्षाकी उपेक्षा करते, वे अपनी माँके साथ ठुमुक-ठुमुक दौड़ते हुए उन्हींके पास आ रहे हैं। महाराज दशरथके आनन्दका क्या कहना। वे बड़े प्रेमसे बोले—'वत्स! तुम भोजन छोड़कर क्यों भाग गये।' भगवान्‌के मुखारविन्दमें लगी हुई धूलको वे अपने दुपट्टेसे झाड़ रहे हैं और शेष बचा हुआ खीर, कचौरी, पापड़ आदि चरपरा भोजन कराते जा रहे हैं। अपूर्व आनन्द, अनुपम आनन्द और अनन्त आनन्द।

मनुष्यके वेषमें देवराज इन्द्र आकर भगवान्‌का मुँह पोंछ रहे हैं। देवर्षि नारद पान दे रहे हैं। अब भगवान् अपने पिताकी कनिष्ठिका अँगुली पकड़े हुए ठुमुक-ठुमुक चल रहे हैं। पहले महलमें गये, फिर सभामण्डपमें।

पार्षदोंने, जो कि वहाँ मनुष्यरूपमें थे, प्रसाद बाँट बाँटकर खूब खाया और जिन पात्रोंमें भगवान्‌ने भोजन किया था, लेखकोंने उनमेंसे प्रसाद लेकर मस्तकोंसे चाटा और शेष स्वयं पा लिया। फिर उन पात्रोंको (पात्रोंसे) ग्रहण करके रख दिया। सब लोग सभामण्डपमें एकत्र होकर भगवान्‌की अनूप रूप-माधुरीका रस लेने लगे।

अहा! परमात्मा, परमेश्वर, परमपुरुष होते हुए भी भक्तोंको आनन्दित करनेके लिये प्रभु कैसी-कैसी लीला कर रहे हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

(गीता ४।६)

'मैं अजन्मा और अविनाशीस्वरूप होते हुए भी, तथा समस्त प्राणियोंका ईश्वर होते हुए भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके अपनी योगमायासे प्रकट होता हूँ।'

तुष्णा किसके साथ हो सकती है। अनुपम स्वाद है!' श्रीलक्ष्मणजीने प्रभुको याद दिलायी—'मैया! मैं बोल हूँ कि आपने शबरीके बेरोंकी प्रशंसा बहुत की थी!' प्रभुने मौन कहा, 'हाँ, मैया! सचमुच सच कहता है। शबरीके बेर तो अलौकिक थे—उनका दिव्य और पवित्र आनन्द तो माँ सुनयनाजीका परोसा हुआ भोजन करनेमें भी नहीं आया।' यों कहते-कहते भगवान् रो पड़े। धन्य स्नेह!

जैसे गाय बछड़ेके माँसपर लगे हुए मलको प्रेमपूर्वक जीभसे स्वच्छ कर देती है, उसी प्रकार प्रभु अपने भक्तके पापोंका शासन कर देते हैं।

'बछरु की चूरि बदन सों चाटी।'

—यह कविकी उक्ति प्रसिद्ध है।

संत तुकाराम तो कहते हैं—

'बाट माझे ऊभा भेटी की लवकरी श्यामु तवरी उतावीळ।'

भगवान् तो अपने भक्तोंसे मिलनेके लिये इतने उतावले रहते हैं कि एक मामूली-सी ईंटपर अट्ठाईसमकी युगोंमें कटिबद्ध खड़े हैं—उनको हमसे मिलनेके लिये इतनी जल्दी है कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। परंतु हम तो उनकी तरफ आँख उठाकर देखनेको भी तैयार नहीं हैं। क्यों? किसी शुभिसगमा-जैसे गुरुकी कृपा हमपर नहीं हुई।

बिनु गुर होइ कि ग्यान' (७।८९ क)

ज्ञान क्या गुरु बिना किसीको होता है?—कभी नहीं। मान हटे बिना ज्ञान सम्भव नहीं और गुरुचरणोंमें नमन किये बिना मनुष्य 'मानी' तो हो सकता है, 'ज्ञानी' नहीं। मानका हनन हो जाय और हनुमान्जी-सरीखे ज्ञानियोंमें अग्रगण्य गुरु मिलें तो संत तुलसीदासकी तरह सबको प्रभु-दर्शन हो जायँ। यों तो श्रीलक्ष्मणजी और हनुमान्जी भी प्रभुके स्नेहका मर्म जानते हैं। परंतु बोलिये—

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥ (वही, २।२१७।२१)

श्रीभरत-सरीखा 'रामसनेही' कौन है, जिसे निरन्तर प्रभु राम भी अपने हृदयमें जपते रहते हैं? सब छोड़कर 'सब भाँति सनेही' प्रभुकी श्रीलक्ष्मणके समान जिसने शरण ग्रहण कर ली, उसका उद्धार ध्रुव है।

भगवान् राम इस इन्द्रियोंद्वारा संचालित रथस्वरूप देहमें होनेपर भी 'ब्रह्म' हैं और भगवती सीता विदेहपुरीमें पैदा होनेपर भी 'माया' हैं। देहातीत भूमिकाकी माया और देहगत परब्रह्म मिलकर ही उत्तम लीलाएँ सम्पन्न कर सकते हैं। हम बद्ध जीव भी उनकी शरण ग्रहण करके लीला सहचरोंमें सम्मिलित हो सकते हैं।

वह दिन कब होगा, जब यह प्रभुका सनातन अंश जीव अपने शाश्वत नित्य ध्रुव स्वरूपको समझकर सद्गुरु-कृपासे उनकी सखाधाम-लीला-सहचरीका भाग बनकर नित्य सच्चिदानन्दमें निमग्न रहेगा।

'सब भाँति सनेही' राम कृपा करें, तब संत मिलें और संत मिलें, तब विवेक जाग्रत् हो और विवेक जाग्रत् हो, तब संसार-घोर-निधिके पार हम जा सकते हैं।

'नामु सेतु भव सिंधु सुखाहीं।' (वही, १।२४।१)

मुक्तो! मनमें विचार कर लो और निश्चय कर लो कि नाम लिया और बेड़ा पार। प्रभु 'सब भाँति सनेही' हैं, वे अपने-आप सब सँभालेंगे।

अपनी दीनता

अपने कौन-कौन गुन कहिए।
देख-देख कै सजन मरियत, ठौर नहीं कहँ रहए।
जान परत मरकहूँ मैं कैसेहूँ कौनहु गति नहिं पाए॥
रग-रग, रोम-रोममें दूषन भूषन-से सजवाए।
तप का साम-गुमान करैं उर, का काहू से कहए॥
एक अधार सिया सिय जू की, उनही के गुन गाए।
मैथिलि-सरन न द्वार द्वार फिर धूर चाटये जाए॥

—श्रीमैथिलीशरणजी 'भक्तमाली'

परस्पर रख देती हैं तथा रामको वन जानेकी आज्ञा दे देती हैं। करुणाजनक परिस्थिति यहीं शान्त नहीं हो जाती। जब सीता भी वन जानेकी इच्छा प्रकट करती हैं, तब इसकी करुण-धाराका वेग और भी प्रबल हो जाता है। कौसल्याका हृदय (साथ-ही-साथ पाठकका भी) यह सोचकर फटा जा रहा है कि जिस सीताने पलँग, पीढ़ा तथा गोद छोड़कर कठोर धरतीपर कभी पैर नहीं रखा, वह वनके कँटीले-कँकरीले मार्गपर कैसे चलेगी। किंतु सीताकी अनन्य पति-परायणताके सामने स्वयं रामकी भी कुछ नहीं चली। इसी प्रकार संकोची राम लक्ष्मणके भ्रातृ-प्रेमके सामने भी झुक गये। राम, सीता और लक्ष्मणके वन-गमनकी बात सुनकर अयोध्यामें विषादका सागर ही उमड़ पड़ता है। उस समय प्रजाका हाहाकार किसीको भी रुला सकता है।

वन-गमन-प्रसङ्गकी करुणाकी चरम सीमा दशरथ-मरणकी घटना है। रामके गङ्गापार हो जानेपर सुमन्त्र जब लौटकर महाराजको बताते हैं कि 'मैं श्रीरामको लौटा लानेमें असफल हुआ', तब दशरथजीका विलाप सुनकर करुणा भी रो पड़ती है। सहृदय पाठक उस प्रसङ्गको सस्वर नहीं पढ़ सकता। बस, वह मन-ही-मन पढ़ता जाता है और नेत्रोंसे अश्रु बरसाता जाता है। किसमें इतना धैर्य है, जो निम्नाङ्कित अर्द्धालियोंको लय-सुरके साथ पढ़ सके—

कहँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही॥
सो तनु राखि करब मैं काहा। जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा॥
हा रघुनंदन प्रान पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते॥
(रा० च० मा० २ । १५४ । २,३,३½)

राम-चरितका एक अन्य मार्मिक स्थल है—चित्रकूटमें राम-भरत-मिलन। गोस्वामीजी भरतके उदात्त चरित्रकी स्थापना आरम्भसे ही करते आये हैं। जो व्यक्ति रामका पक्ष लेकर स्वर्गसे भी महान् अपनी जननीकी भर्त्सना कर सकता है, वह रामका कितना अनन्य भक्त होगा, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। अयोध्याके विशाल राज्यको जिसने वमनके समान त्याग दिया, वह कितना महान् होगा। रामके वन जानेकी बात सुनकर जो पिताकी मृत्यु भी भूल गया, वह राम-प्रेमकी मूर्ति नहीं तो और क्या है! भरतके राम-प्रेमपर चर-अचर सभी मुग्ध हैं, तभी तो चित्रकूट जाते समय बादलोंने उनपर छाया की—

किएँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात॥
(रा० च० मा० २ । २१६)

ऐसे भरतके आनेका समाचार पाकर राम हर्षातिरेकमें उठकर अकुलायें तो आश्चर्यकी बात नहीं—

उठे रामु सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥
(रा० च० मा० २ । २३९ । ४)

रामको साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए धरतीपर लेटे रहनेमें भरत परम सुखका अनुभव कर रहे हैं। किंतु भक्तवत्सल राम अपने प्रिय भरतको लेटे रहने दें, तब न! वे भरतको हृदयसे लगानेको आकुल हैं। इस इच्छाकी पूर्तिके लिये उन्हें बलप्रयोग करना पड़ा—

बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान॥
(रा० च० मा० २ । २४०)

राम-भरत-मिलनका यही भाव-रस-सिन्धु तब भी उमड़ पड़ता है, जब राम लङ्कासे अयोध्या आते हैं।

रामके मनमें भरतके लिये कितना ऊँचा भाव था, इसका सबसे बड़ा प्रमाण चित्रकूटकी सभामें मिलता है। गुरुजनोंके सम्मुख भरतकी प्रशंसा करते हुए राम कहते हैं कि 'संसारमें भरतके समान दूसरा कोई भाई नहीं हुआ।'

भयउ न भुअन भरत सम भाई।
(वही, २ । २५८ । १)

माताओंसे रामके मिलनेका प्रसङ्ग भी कुछ कम हृदयस्पर्शी नहीं है। कैकेयीके पश्चात्ताप एवं भरत-प्रेमका अनुमान करके राम पहले उसीसे मिले—

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेईं॥
(रा० च० मा० २ । २४१ । ३½)

कैकेयीके हृदयका समाधान करनेके बाद ही राम निश्चिन्त हुए और तब लक्ष्मणके साथ अपनी माताओंसे मिलनेके लिये जाते हैं। माता-पुत्रका यह मिलन कितना भावपूर्ण रहा होगा। इतने दिनोंके बाद रामसे मिलकर कौसल्याने जिस परम आह्लादका अनुभव किया होगा, उसका आभास पाठकको भी गद्गद करनेमें समर्थ है—

पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता। परे पेम ब्याकुल सब गाता॥
अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए॥
(रा० च० मा० २ । २४४ । ३-३½)

एक नहीं, चित्रकूटके सभी प्रसङ्ग मार्मिक स्थलोंसे पूर्ण हैं। सीताका सासोंसे और अपने माता-पितासे मिलना तथा सभामें राम-भरत-संवाद आदि वर्णनोंमें पाठक सहज ही तल्लीन हो जाता है।

भवभूति आदि कवियोंने इस प्रसङ्गपर करुणाकी ऐसी धारा बहायी है, जिसके समक्ष विशाल शिला सदृश-कठोर हृदय भी नहीं ठहर सकता। सीताकी मधुर स्मृतिमें रामकी मूक वेदना मर्मबिन्दुको स्पर्श करती हुई भी अव्यक्त रहती है।

वस्तुतः रामने अपने जीवनमें वेदना, पीड़ा, करुणा-को ही स्वेच्छासे स्वीकार किया। मानव-समाजके समक्ष राम-को यही आदर्श स्थापित करना था कि जो संसारका कल्याण करना चाहता है, उसे वेदना और करुणाको ही अपनी सहचरी बनाना चाहिये। इस वेदनाका अन्त भी जीवनके साथ ही होता है। श्रेय हितैषीको तो इस भावनासे परिचय भी नहीं होना चाहिये कि बस, अमुक कार्यके बाद मेरे जीवनमें भी सुख-चैन प्रवेश करेगा। समाज हित ही उसका साध्य है, जीवन साधन है और सहन स्वभाव है।

रामका अन्त अत्यन्त करुणाजनक तथा लोक-हृदयको व्यथित कर देनेवाला है। धर्म, कर्तव्य एवं सत्यका पालन करनेके लिये रामको प्रिय लक्ष्मणको प्राणदण्ड देना पड़ता है। सोचिये, यह निर्णय सुनाते समय रामके हृदयपर क्या बीती होगी। वज्र-हृदय भी पिघल जायगा। इसीलिये रामको 'वज्रसे भी अधिक कठोर' कहते हैं। उनकी दूसरी विशेषता भी है, 'कुसुमसे भी अधिक कोमल', यह दूसरी बात है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रामचरितमें दो-चार नहीं, प्रत्युत उनका समग्र जीवन ही हृदयस्पर्शी प्रसङ्गों-से पूरित है। अपार वेदना स्वीकार तथा सहन करनेवाले श्रीराम धन्य हैं। उन्हें नित्यप्रति कोटिशः प्रणाम।

श्रीराम-कथा-तत्त्व-चिन्तन

(लेखक—अनन्तश्री परमहंस श्रीरामचन्द्रजी शास्त्री बोबरे महाराज)

१—रामजन्म

भगवान् शंकर ज्योतिषी बनकर अयोध्याकी गलियोंमें घूम रहे हैं। शंकरके इष्ट बालक राम हैं। प्रातःकालसे ही देव-गन्धर्व प्रभुके आविर्भावकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जबतक वैष्णव आतुर नहीं होते, तबतक भगवान्‌का जन्म नहीं होता। परम पवित्र अवसर उपस्थित हुआ है। चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नवमी तिथि, मध्याह्नका समय—

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥
(रा० च० मा० १।१९१ छं० १-२)

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥
(वही, १।१९२)

दशरथके यहाँ साक्षात् परब्रह्म श्रीहरि प्रकट हुए हैं। जो निर्गुण हैं, वे आज भक्तोंके प्रेमके वशीभूत होकर सगुण बने—

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
(वही, १।११५।१)

वेद जिनका इस प्रकार वर्णन करते हैं, वे ही श्रीहरि भक्तोंका हित करनेके लिये दशरथके पुत्र बनकर आये हैं।

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥
(वही, १।११७।३-४; ११८)

आकाशमें देव-गन्धर्व पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। आज प्रभुने यह ज्ञान करा दिया कि 'मैं अपने भक्तोंका चारों ओरसे रक्षण करता हूँ।' इसीलिये उनका चतुर्भुजरूपमें प्रादुर्भाव हुआ है। माताजीने उनकी सुन्दर स्तुति की। स्तुतिके अनन्तर उन्होंने प्रभुसे प्रार्थना की—

'नाथ! मेरे लिये आप बालक बनें। 'माता' कहकर मुझे पुकारें।' मैयाको केवल यह अनुसंधान कराना था कि 'मैं ईश्वर हूँ।' तुरंत चतुर्भुजरूप अदृश्य हो गया। प्रभु रोते-कलपते बालक बन गये। दासियोंने जाकर राजासे कहा कि कौसल्या माताकी गोदमें सुन्दर पुत्र विराजमान है।

कौसल्याने पुत्रको गोदमें उठाया और वे बाहर आयीं। अयोध्याकी प्रजा रामलल्लाका दर्शन कर रही है। किसीको भूख-प्यासका भी संधान नहीं है।

रामके बिना आराम नहीं मिलता। प्राणिमात्र आरामको शोधता है। प्राणिमात्र शान्तिका उपासक है। श्रीरामकी मर्यादाओंका पालन करनेसे वास्तविक शान्ति मिलती है। मनुष्य रामकी मर्यादाओंको जीवनमें उतारते नहीं हैं, इसीलिये उन्हें वास्तविक शान्ति नहीं मिलती। धर्मका फल है—शान्ति, अधर्मका फल है, अशान्ति। जो धर्मकी मर्यादाओंका पालन नहीं करता, उसे शान्ति नहीं प्राप्त होती। मानव जब मर्यादाका उल्लङ्घन करते हैं, तब अशान्ति आती है। मर्यादा-धर्मके बिना ज्ञान, भक्ति या त्याग सुलभ नहीं होता। आजकल पहलेसे कहीं अधिक भीड़ मन्दिर और कथामें होती है। ऐसा लगता है कि आजकल भक्ति और ज्ञान बढ़ गये हैं; परंतु किसीको शान्ति नहीं मिलती। इसका कारण यही है कि कोई मर्यादाधर्मका पालन नहीं करता।

आजकल लोग धर्मको भूल गये हैं। धर्मके बिना शान्ति नहीं मिलती। धर्मकी मर्यादा मत छोड़ना; तभी भक्ति सुलभ होगी। मर्यादा-धर्मका पालन किये बिना भक्ति-ज्ञान अर्थहीन हैं। सूर्य-चन्द्र धर्मकी मर्यादामें हैं। सागर अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता; जब कि लोगोंको किंचित् भी धन प्राप्त हो जाय, अधिकार प्राप्त हो जाय, सम्मान मिल जाय तो समझते हैं कि 'मैं महान् अधिकारी हूँ। मुझसे पूछनेवाला है कौन ?' आखिर, उसे समझना चाहिये कि 'प्रभुने तुझे जो ज्ञान दिया है, धन दिया है अथवा अधिकार दिया है, वह धर्मकी मर्यादाओंके पालनेके लिये दिया है, मर्यादाओंको तोड़नेके लिये नहीं।'

श्रीरघुनाथजी मर्यादापुरुषोत्तम और सब गुणोंके भंडार हैं। श्रीराम स्वयं सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणनिधान होते हुए भी धर्मका, मर्यादाओंका पालन करते हैं।

जिनमें समस्त दिव्य गुण एक हो जाते हैं, वह परमात्मा है। लक्ष्मणजी विवेकके, भरतजी वैराग्यके और शत्रुघ्नजी सद्विचारके स्वरूप हैं। भरत और शत्रुघ्न अर्थात् वैराग्य और सद्विचार यदि अयोध्यामें न हों तो दशरथ कैकेयीके अधीन हो जायँ, अन्यथा नहीं।'

चन्दन और पुष्पसे श्रीरामकी अर्चना करो, साथ-साथ रामकी आज्ञाओंका भी पालन करो। यही उनकी उत्तम सेवा है। श्रीरामकी मर्यादाओंका पालन करोगे तो श्रीराम तुम्हारी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे। श्रीरामका चरित्र इतना पवित्र है कि स्वयं उसका स्मरण करते हुए हम पवित्र हो जाते हैं। व्यवहार रावणके समान करे और जप रामनामका करे तो रामनामका फल नहीं मिलता। व्यवहार राम-जैसा करो और राम-नामका जप करो तो तुम्हारे मुखसे अमृत निःसृत होगा। श्रीरामचन्द्रजीकी यही उत्तम सेवा है कि श्रीरामजीके प्रत्येक सद्गुणको जीवनमें उतारनेका प्रयत्न करो।

श्रीरामका अवतार राक्षसोंका वध करनेके लिये ही नहीं हुआ था, बल्कि मानवमें जिस राक्षसी वृत्तिने जड़ जमा ली थी, उसका विनाश करनेके लिये हुआ था—उन उच्च आदर्शोंको बतलानेके लिये हुआ था, जिनका आचरण करनेसे राक्षसी वृत्तिका विनाश किया जा सकता है। श्रीरामका अवतार संसारको मानव-धर्मका उपदेश देनेके लिये है। श्रीरामकी अमुक लीला अनुकरणीय है, अमुक लीला चिन्तनीय है, ऐसी बात नहीं है। श्रीरामका समग्र व्यवहार अनुकरणीय है। राम सब गुणोंके भंडार हैं।

प्रत्येक स्त्रीमें राम मातृभाव रखते थे। किसी भी स्त्रीको राम कामभावसे नहीं देखते थे। मनुष्य एक ओरसे पुण्य करता है और दूसरी ओरसे पाप भी चालू रखता है। अन्तमें खाली हाथ ही जाता है।

राम माता-पिताकी आज्ञामें सदैव रहते थे। स्वतन्त्र-स्वच्छन्दकी तरह किसी भी दिन उन्होंने व्यवहार नहीं किया। राम सदैव दशरथ-कौसल्याको प्रणाम करते थे। आजकलके लड़कोंको माता-पिताको प्रणाम करनेमें शर्म आती है। धूल पड़े ऐसी विद्यापर, जो उन्हें माता पिताकी वन्दना करनेसे रोके। बापकी सम्पत्ति लेनेमें संकोच नहीं होता और वन्दना करनेमें संकोच होता है। माता-पिता लक्ष्मी-नारायणके स्वरूप हैं। उनकी वन्दना करनी चाहिये।

श्रीरामकी उदारता एवं दीनवत्सलताकी जोड़ जगत्‌में नहीं है। राम-जैसे राजा न तो हुए और न भविष्यमें हो सकते हैं।

ऐसो को उदार जग माहीं।

बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं॥
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ, प्रभु न बहुत जिय जानी॥

×   ×   ×   ×

हृदयको धीरज देकर रोक रखेगा ! जो प्रभु सदैव रथ-घोड़ों एवं हाथियोंपर सवारी करते थे, वे आज नंगे पैर पैदल जा रहे हैं ! जो रघुनाथ नाना प्रकारके व्यञ्जनोंसे भरे थालोंमें प्रसाद ग्रहण करते थे, वे वनके कंद-मूल खाकर अपना जीवन व्यतीत करेंगे ! मृदुल मनोहर शय्यापर शयन करनेवाले श्रीराम जमीनपर, कुशोंकी छावनी, पत्तोंपर विश्राम करेंगे ! विधाताके इस विधानपर सभी मौन हैं। जनसमुदाय एक दूसरेकी तरफ देखता है, चीत्कार निकलती है; पर सभीकी वाणी अवरुद्ध है, कोई क्या कहे ! महाराज दशरथ क्या इतने क्रूर हो सकते हैं ! महारानी कैकेयी क्या ऐसा भी वरदान माँग सकती हैं ! शीलसिन्धु श्रीरामके लिये क्या कहा जाय, जो सभीको अपार स्नेह प्रदान करते हैं ! सभी माताओंको गर्व था कि उन्हें श्रीरामसे माता कौसल्याकी तरह ही प्यार स्नेह मिलता है। सखाओंको गर्व था कि प्यारे राघव उनके हैं—वे स्वच्छन्दतासे उनके साथ उठते बैठते, खेलते-कूदते, शयन करते थे। सभी सखाओंको उनसे भरत लक्ष्मण सा प्यार मिलता था। पिताके समवयस्कोंको पिता दशरथ-जैसा आदर मिलता था। आज सभी उनके दर्शन मिलनेवाले इन सुखोंसे वञ्चित होंगे। धू-धू करके सबके अन्तरमें ज्वाला जलती है।

नहीं-नहीं, राघवेन्द्र उन्हें छोड़कर नहीं जायँगे। जो हमारे तनिकसे दुःखमें स्वयं दुःखी हो जाते थे, जो क्षणभर भी हमें उदास नहीं देख सकते थे, जो सदैव हमको नये-नये सुख देनेको तत्पर रहते थे, वे प्यारे राम क्या कभी ऐसा भी कर सकते हैं ! यह समीरी करुणाके बादलकी वस्तु है। सभी रघुनाथकी करुणासे आप्लावित हैं। श्रीराम स्नेहके महासमुद्र हैं, जिसकी गहराई की थाह किसीने नहीं पायी है। क्या वे इतने क्रूर—निर्दय भी हो सकते हैं ! नहीं, ऐसा तो सम्भव नहीं है। पर राघवेन्द्र तो उसी वेषमें आगे बढ़ते जा रहे हैं। सभीकी ओर करुणदृष्टि डालकर मुसकरा रहे हैं। उनके विशाल नेत्रोंमें वही स्नेह है। जनसमुदाय चारों ओरसे उन्हें घेरे हुए है। सब फूट-फूटकर रो रहे हैं—हा रघुनन्दन ! हा रघुनन्दन ! हा राघवेन्द्र ! प्राणवल्लभ ! इतने निर्दयी, इतने क्रूर मत बनो।'

महलके प्राङ्गणमें महाराज दशरथ विविध प्रकारसे विलाप कर रहे हैं—

> मन्ये खलु मया पूर्वं विवत्सा बहवः कृताः।
> प्राणिनो हिंसिता वापि तस्मामिदमुपस्थितम्॥
> न त्वेवानागते काले देहाच्च्यवति जीवितम्।
> कैकेय्या क्लिश्यमानस्य मृत्युर्मम न विद्यते॥
>
> (वा० रा० २। ३९। ४-५)

'जान पड़ता है, मैंने पूर्वजन्ममें अवश्य ही बहुत सी गौओंका उनके बछड़ोंसे बिछोह कराया है अथवा अनेक प्राणियोंकी हिंसा की है, इसीसे आज मेरे ऊपर यह संकट आ पड़ा है। समय पूरा हुए बिना किसीके शरीरसे प्राण नहीं निकलते। तभी तो कैकेयीके द्वारा इतना क्लेश पानेपर भी मेरी मृत्यु नहीं हो रही है।'

> योऽहं पावकसंकाशं पश्यामि पुरतः स्थितम्।
> विहाय वसने सूक्ष्मे तापसाच्छादमात्मजम्॥
> एकस्याः खलु कैकेय्याः कृतेऽयं खिद्यते जनः।
> स्वार्थे प्रयतमानायाः संश्रित्य निकृतिं त्विमाम्॥
> एवमुक्त्वा तु वचनं बाष्पेण विहतेन्द्रियः।
> रामेति सकृदेवोक्त्वा व्याहर्तुं न शशाक सः॥
>
> (वा० रा० २। ३९। ६-८)

"ओह ! अपने अग्निके समान तेजस्वी पुत्रको महीन वस्त्र त्यागकर तपस्वियोंके से वल्कल-वस्त्र धारण किये सामने खड़ा देख रहा हूँ (फिर भी मेरे प्राण नहीं निकलते) ! इस वरदानरूप छलका आश्रय लेकर स्वार्थ-साधनके प्रयत्नमें लगी हुई एकमात्र कैकेयीके कारण ये सब लोग महान् कष्टमें पड़ गये हैं—ऐसी बात कहते-कहते राजाके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं और वे एक ही बार 'हे राम !' कहकर मूर्छित हो गये। आगे कुछ न बोल सके।"

महाराज दशरथ बार-बार मूर्छित होते हैं और फिर उन्हें होश आता है। करुणक्रन्दनसे उनका गला भर गया है। अश्रुओंसे शरीर भीग गया है, गला अवरुद्ध होनेसे कुछ बोल सकते नहीं। उनके हृदयमें महान् दावानल धधक रहा है। उनके हृदयमें एक ही लालसा है—उनके प्राणस्वरूप श्रीराम किसी भी तरह रुक जायँ, वनमें न जायँ। वे जानते हैं कि मेरे प्राण, मेरे ही क्या—पूरी अयोध्याके प्राण मेरे राममें हैं।' बिना राम अब सुख कहाँ ! क्या रामके बिना उनके प्राण रह पायेंगे !

रघुपति फिरिये, प्रभु रहो (हो)।
नाहिं बात विसरत हमारे, छिन-छिन मीठे बचन कहो (हो)॥
कुल देवा का बचन हमारो, देहु और डरेस गहो (हो)।

करोगे कि माताओंके भली प्रकार दर्शन नहीं कर सके। तुम्हारे सुन्दर चरण कमलके समान कोमल, सुन्दर तथा चमकीले हैं; वनमें गर्मीके दिनोंमें सूर्यकी प्रचण्ड धूपमें जलती भूमिपर चलनेमें कितना कष्ट पाओगे! जिन माताओं-को देखे बिना एक क्षण भी नहीं बीतने देते थे, सदा हमारे पास ही रहते थे, अब उनके बिना चौदह वर्ष कैसे बिताओगे! हाय! तुम्हारा शरीर तो चम्पाके फूलोंसे भी कोमल है और अब विरक्ति अपनाकर वनमें तिनकोंकी शय्या बिछाओगे, तिनकोंपर सोओगे। इस अत्यन्त अनुपम मुखमें मिठाइयाँ रखकर अपने हाथसे, कमीसे कंद तथा फल कैसे खाओगे और वे तुम्हें कैसे पचेंगे! मनका मोह—स्नेह छोड़कर शंकरजीके लिये उचित आभूषण भस्मादिसे सजाकर अब श्रीकामदगिरिकी पर्वतकी गुफामें बसओगे! हमारा यह हृदय वज्रका बना है, जो अब भी नहीं फटता। हाय! हम सबके स्वामी (पालक) होकर भी अब तुम अनाथ बने जाओगे। इन कौसल्याने क्या अपराध किये हैं, जो इसे पुत्र वियोगका दारुण दुःख होगा'!'

धर्मज्ञ गुरु वसिष्ठजी किंकर्तव्यविमूढ होकर खड़े हैं। उनसे कुछ भी बोला नहीं जा रहा है, वे क्या करें! उनका हृदय भी स्वीकार नहीं करता कि रघुनन्दन उन्हें छोड़कर चले जायँगे। उनकी अवस्था भी अर्धमूर्च्छित-सी हो रही है।

उधर पूरे रनिवासमें हाहाकार मच गया है। सभी अपनी सुध-बुध खोकर शोकमग्न हो, कह रहे हैं—

अनाथस्य जनस्यास्य दुर्बलस्य तपस्विनः।
यो गतिः शरणं चासीत् स नाथः क्व नु गच्छति॥
(वा० रा० २।४१।२)

'हाय! जो हम अनाथ, दुर्बल और शोचनीय स्त्रियोंकी गति—सब सुखोंकी प्राप्ति करानेवाले और शरण—समस्त आपत्तियोंसे रक्षा करनेवाले थे, वे हमारे नाथ—मनोरथ पूर्ण करनेवाले श्रीराम कहाँ चले जा रहे हैं!'

आज राजेन्द्र कठोर हो गये हैं, मानो उनका हृदय पाषाणका हो गया हो। वे सब कुछ देख रहे हैं, उन भगवान् श्रीरामसे कुछ भी छिपा नहीं है; परंतु वे फिर भी सबकी उपेक्षा करके वनके लिये आगे बढ़ रहे हैं। जन-समुदाय उनके साथ-साथ आगे बढ़ रहा है। वे सबको समझाना चाहते हैं, पर बोल नहीं सकते। वे प्रीतिकी रीति-को जाननेवाले क्या कुछ बोल सकेंगे।

नगरनिवासियोंकी अवस्था विचित्र हो रही है। महा-करुण स्वर सबकी वेदनाको बता रहा है। सभी करुण-विलाप कर रहे हैं—'हाय! उस त्रिपुरसदनको भी मरकर निराश होने दो।' अश्रुओंके स्रोतमें सभी अवगाहन कर रहे हैं। जहाँ उनके प्यारे, प्राणप्यारे रघुनन्दन हैं, वहीं उनकी अयोध्या है, वहीं उनका सुख है, वहीं उनको शान्ति है। सभीके सुखका, शान्तिका, उल्लासका आज सूर्यास्त होने जा रहा है। सभीके जीवनके रसका समुद्र आज सूख रहा है। सूर्यके बिना प्रकाश कैसा! सभी नगरनिवासी मूर्च्छित हो होकर गिर रहे हैं, पुनः कुछ होश आनेपर आगे बढ़ रहे हैं। हृदयमें एक ही लालसा है—हाय! उस नीलसुन्दरका एक बार मुखचन्द्र देख लें। आह! आज उनके रामलेन्द्र जा रहे हैं, पर उनके प्राण नहीं निकल रहे हैं। अब जीवनमें और काम ही क्या है!

समस्त दिशाएँ व्याकुल हो उठीं। आज अवधकी बड़ी ही भयावनी स्थिति हो रही है। चारों ओर अन्धकार-ही-अन्धकार व्याप्त हो रहा है। कोई दशरथको कोस रहे हैं, कोई कैकेयीको गाली दे रहे हैं, कुछ अपने भाग्यकी भर्त्सना कर रहे हैं। सभी अपनी सुध-बुध खो बैठे हैं—

दृग्भिः कदाचिद् यत्र या जानकी लोकसुन्दरी।
सापि पादेन गच्छन्ती जनसंघैरनावृता॥
रामोऽपि पादचारेण गजाश्वादिविवर्जितः।
गच्छति प्रपश्य विप्रं सर्वलोकैकसुन्दरम्॥
(अध्या० रा० २।५।६-७)

'हाय! जिन त्रिलोकसुन्दरी जानकीको पहले कभी किसी पुरुषने शायद ही देखा हो, वही आज बिना किसी परदेके जनसमूहमें पैदल चल रही है। अरे! इन सर्वलोक-सुन्दर भगवान् श्रीरामकी ओर भी देखो, ये भी आज बिना हाथी-घोड़ेके पैदल ही जा रहे हैं।'

बाष्पपर्याकुलमुखो राजमार्गगतो जनः।
न हृष्टो लक्ष्यते कश्चित् सर्वः शोकपरायणः॥
न वाति पवनः शीतो न शशी सौम्यदर्शनः।
न सूर्यस्तपते लोकं सर्वं पर्याकुलं जगत्॥
(वा० रा० २।४१।१…

हंस और चकोर—सभी व्यथित हैं। वे यत्र-तत्र मौन बैठे हैं और निर्मीष से सदा रहे हैं। जिन उद्यानोंमें कोकिलोंका मधुर स्वर गूँजता था, वे ही आज श्मशान-से लग रहे हैं।

आज बेचारे उन पशुओंकी क्या दशा है, जो रघुनन्दनके साथ खेलते थे? हमारों हाथी, घोड़े, मृग, गायें, बैल एवं बकरियोंके नेत्रोंसे झर-झर अश्रुपात हो रहे हैं—'हे कोमलेश! आज तुम इतने निष्ठुर क्यों हो गये हो?'

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥

(रा० च० मा० २।८१।१)

कोसलके वृक्ष, पेड़, पौधे, वनौषधियाँ, लताएँ, फूल, अङ्कुर, कलियाँ—सभीकी दशा दयनीय हो रही है। राघवेन्द्रकी विरहाग्नि इन्हें भी भस्म कर रही है—

अनुगन्तुमशक्यास्त्वां मूलैरुद्धतवेगिनः।
उन्नता वायुवेगेन विक्रोशन्तीव पादपाः॥

(वा० रा० २।४५।१०)

'वृक्ष अपनी जड़ोंके कारण अत्यन्त वेगहीन हैं, इसीसे तुम्हारे पीछे नहीं चल सकते; परंतु वायुके वेगसे इनमें जो सनसनाहट पैदा होती है, उनके द्वारा ये ऊँचे वृक्ष मानो तुम्हें पुकार रहे हैं—तुमसे लौट चलनेकी प्रार्थना कर रहे हैं।'

सुन्दर उद्यान शोभाविहीन हो रहे हैं। फूलोंकी कलियाँ मुरझा रही हैं। पुष्पोंमें सुगन्ध नहीं है। इस विरह-दावानल-का प्रभाव जड़ वस्तुओंपर भी कम नहीं है—

क्षीणपुष्करपत्राश्च नद्यश्च कलुषोदकाः।
संतप्तपद्माः पद्मिन्यो लीनमीनविहंगमाः॥

(वा० रा० २।५९।७)

'नदियोंके जल मलिन हो गये हैं। उनमें फैले हुए कमलोंके पत्ते गल गये हैं। सरोवरोंके कमल भी सूख गये हैं। उनमें रहनेवाले मत्स्य और पक्षी भी नष्टप्राय हो गये हैं।'

नदियों, छोटे जलाशयों तथा बड़े सरोवरोंके जल गरम हो गये हैं। वनों और उपवनोंके पत्ते सूख गये हैं।

चले गये, वे सबको छोड़कर चले गये। हाय! आशा-सी एक झलक थी कि शायद सुमन्त्रके साथ लौट आयें। उस सुमन्त्रकी प्रतीक्षा है। 'प्यारे रघुवीर लौट आयें', उत्सुकताकी सीमा रेखा बनी एक बची है।

× × ×

अपना सिर पीटते हुए, अपनेको धिक्कारते हुए बिना रघुवीरके सुमन्त्र धीरे-धीरे रथ हाँकते हुए अवध पहुँचते हैं। डरते-डरते, थर-थर काँपते, सूर्यके अस्ताचलमें प्रवेश करनेपर अँधियारेमें वे अवधमें प्रवेश करते हैं। लज्जा और संकोच-वश वे अपना चेहरा नगरवासियोंको दिखाना नहीं चाहते। परंतु नगरवासी तो बड़ी उत्सुकतासे भूख प्यासको भूलकर उनकी प्रतीक्षामें हैं। कब सुमन्त्र उनके प्यारे राम-जानकी-लक्ष्मणसहित लौटें। तनिक सी भी आहट पाकर वे सचकित होकर इधर-उधर देखते हैं, शायद उनके प्राणवल्लभ लौट आये हों। लोग रथकी आहट पाते ही दौड़ते हैं और उसको चारों ओरसे घेर लेते हैं—सुमन्त्रका भयभीत अश्रुपूर्ण चेहरा देखकर ही उनके प्राण उड़ने लगते हैं। एक ही पुकार है—'हमारे प्राणनाथ राघवेन्द्र कहाँ हैं?'

सुमन्त्र मौन हैं। गला अवरुद्ध है उनका, शरीर काँप रहा है, नेत्रोंसे अविरल अश्रुपात हो रहे हैं। 'अरे क्या आपने उन्हें छिपा दिया है?'—लोग पूछते हैं। वे रथपर चढ़ते हैं, चारों ओर देखते हैं; उन्हें विश्वास नहीं होता कि उनके रघुनाथ लौटे नहीं हैं। परंतु सुमन्त्रको मौन देखकर सब-के-सब सजग उठते हैं। 'क्या वे सचमुच नहीं लौटे? नहीं······ सुमन्त्र—झूठ-मूठ उन्हें चिढ़ा रहे हैं, कहीं पासमें ही उन्हें छिपा आये हैं।'······अन्तमें उन्हें विश्वास करना पड़ता है कि राघवेन्द्र, अनुज लक्ष्मण, जानकी—कोई नहीं लौटे हैं। पुनः वही करुणा व्याप्त हो उठती है—क्रन्दन-रुदन गूँज उठता है। मूर्च्छित हो-होकर लोग गिरने लगते हैं।

नगर-रमणियाँ कहती हैं—'अरी! सुना है, हमारे कोसलेश जनकजीके दरबारमें सीताके स्वयंवरके लिये गये थे। बड़े बड़े राजा, राजेश्वर, सम्राट् इकट्ठे हुए थे, पूरा समाज जुटा था। एक-से-एक बढ़कर रणधीर, बलशाली योद्धा थे, जिनकी तुलना इन्द्र-कुबेर आदिसे भी जा सकती है। महापराक्रमशाली बाणासुर-दशानन-जैसे शूरवीर भी वहाँ मौजूद थे, जिन्हें संग्रामभूमिमें मर्दन ही अपने जीतनेका अभिमान था। उनमेंसे कोई भी योद्धा उस शिव-धनुषको हिला नहीं सका। शिव-धनुष अत्यन्त ही कठोर वज्रके समान था। हमारे कोमलकिशोर श्रीरामके स्पर्श करते ही उस धनुषके टुकड़े हो गये। अरी! उस धनुषको महादेवजीने बड़े ही कठोर तत्त्वोंसे त्रिपुरासुरको मारनेके लिये बनवाया था, परंतु हमारे रामचन्द्रने उसे तोड़नेमें कुछ भी गर्वका अनुभव नहीं

सुमन्त्र उन्हें राघवेन्द्रकी गाथा सुनाते हैं—'उन्होंने पहला विश्राम तमसाके तटपर एवं दूसरा विश्राम गङ्गातीरपर किया। बटके दूधसे रामलक्ष्मणने अपनी जटाओंका शृङ्गार किया। निषादराज गुहने उनकी बड़ी सेवा की।' तड़पती हुई मछलीको मानो बूँद-दो-बूँद जल मिल गया हो, उसी तरह महाराजको ये शब्द सुनकर कुछ शान्ति मिली। उनकी याद करके पुनः वे मूर्च्छित होने लगते हैं।

महाराजकी विह्वलता बढ़ जाती है। करुण-क्रन्दन पुनः गूँज उठता है—'सखे! शीघ्रतासे अब मुझे वहीं श्रीरामके पास पहुँचा दो। अब उनके दर्शन बिना प्राण नहीं रह सकते।' क्षण-क्षणमें मूर्च्छित होते हैं और पुनः होश होनेपर उसी करुण वेदनासे पुकार उठते हैं। 'हा रघुनाथ! हा जानकी! हा लक्ष्मण!' गलेसे आवाज निकलती एवं बंद हो जाती है और प्राण कण्ठमें आ जाते हैं।

'मेरे प्यारे सखा! तुम तो इतने निर्दय मत बनो। मुझे एक बार, बस, एक बार ही राम-रूप-अमृतका पान करा दो। देखो, प्यारे, मेरी वृद्धावस्था है और अब प्राण बिना मेरे रामके नहीं रहेंगे। ये प्रयाण करनेवाले ही हैं। बस, एक झलक दिखा दो। सुमन्त्र! मेरे हृदयकी दशा तुम क्या जानो। देखो, भाई—देखो तो सही, तुम्हें पता है कि बिना जलके मछलीकी क्या दशा होती है? बिना मणिके सर्पकी क्या दशा होती है? बिना स्वातिकी बूँदके चातककी क्या दशा होती है? नहीं, तुम्हें मालूम नहीं। अब देर मत करो, भैया! अब सहन नहीं हो रहा है। बस, मेरी बाँहें उठाकर रथमें डाल दो और दौड़ा दो उस ओर, जिस ओर प्यारे राघवेन्द्र, सीता और लक्ष्मण हों।' उनके अश्रुपूर्ण नेत्र हैं, उनका कण्ठ अवरुद्ध है, नेत्रोंके सामने अँधेरा छा जाता है और वे मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं।

भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरु।
बिपुल बिहग बन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोरु॥

(श्रीरामच० मा० २ । १५५)

'तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥'

(लेखक—पं० श्री[illegible] जोशी)

गोस्वामी तुलसीदासजीने अपने ग्रन्थ 'मानस'में लिखा है कि जिस समय लङ्काधिपति रावण महामाया सीताजीका हरण करनेके निमित्तसे समुद्रतटपर मारीचके निवासस्थानपर गया हुआ था और उसे कपट-मृग बननेके लिये बाध्य कर रहा था, उसी समय भगवान् श्रीरामजीने भी अपने आश्रम पञ्चवटीमें एक अद्भुत युक्ति-रचना प्रारम्भ की। शेषावतार श्रीलक्ष्मणजी तब कंद-मूल फल लानेके लिये वनमें गये हुए थे और ऐसे समय भगवान्ने सीताजीसे एकान्तमें हँसकर कहा—'प्रिये! तुम मेरा एक संकल्प सुनो। राक्षसोंके वधके निमित्त मैं एक अत्यन्त मनोहर मानवीय लीला करूँगा। अतः जबतक सारे राक्षसोंका विनाश न हो जाय, तबतक तुम अग्निमें ही निवास करो।' ज्यों भगवान्ने सब बातें समझाकर कहीं, त्यों सीताजी भगवान्के चरण-कमलोंको हृदयमें रखकर अग्निमें समा गयीं; इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी एक छायारूप सीताको आश्रममें रख छोड़ा, जिसका ठीक अपना सा ही रूप और शील था। आगे गोस्वामीजीने इस प्रसङ्गमें यह भी लिखा है—

'लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥'

(मानस ३ । २३ । ४)

१—यहाँपर दो बातें विचारणीय हैं—पहली यह कि इस प्रकारकी युक्ति रचनेकी भगवान्को क्या आवश्यकता हुई और दूसरी यह कि अग्नि-प्रवेशका वास्तविक अर्थ क्या है। क्योंकि साधारणतः मोटे तौरपर अग्निप्रवेशका अर्थ होता है अपने शरीरको आगमें जला देना। यदि हम इसपर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करें तो ज्ञात होगा कि भगवान्की इस मधुर लीलाके भीतर एक बहुत बड़ा ईश्वरीय सिद्धान्त अन्तर्हित है। इस सिद्धान्तको भगवान् श्रीकृष्णने श्रीमद्भगवद्गीतामें प्रतिपादित किया है और वह है

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

(४ । ११)

अर्थात् 'जो भक्त मेरी शरणमें जिस भावनासे आते हैं, मैं ठीक उसी प्रकारसे उनकी सेवा करता हूँ।' ('भज सेवायाम्')। मारीचके पास जानेके पूर्व रावण अपने मनमें विचार करता है कि—

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजें भव तरऊँ॥

(मानस

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान॥
(वही, ४।६)

'सुग्रीव! सुनो, मैं बालीको एक ही बाणसे मार दूँगा। (मेरा बाण छूटनेपर) ब्रह्मा और रुद्रकी शरणमें जानेपर भी उसके प्राणोंकी रक्षा नहीं हो सकेगी।'

और महाबलशाली बाली श्रीरामके एक ही बाणसे मारा गया।

पदे-पदे सर्वोच्च कर्तव्यनिष्ठ पुरुषके रूपमें दर्शन देनेवाले श्रीरामने अजेय रावणका उसके सम्पूर्ण सहायकों-सहित वध कर डाला। इस प्रकार तपस्वी ऋषि-मुनियोंकी चिन्ता दूर हुई। वे निर्भय तपश्चर्यामें प्रवृत्त हुए। श्रीरामने अपनी अमित शक्तिसे धर्मकी स्थापना की एवं अपनी कीर्तिका विस्तार किया।

अमित-पराक्रमी श्रीराम अपनी प्राणप्रिया सीतादेवीके हरणसे दुःखी और क्षुभित थे, पर उन्हें दृढ़ विश्वास था कि 'मैं दुष्ट दशाननका शिरश्छेदन कर अपनी धर्मपत्नीको अवश्य ले आऊँगा।' उन्होंने अपने इस मनोगत भावको जटायुसे कहे सन्देशमें स्पष्ट भी कर दिया था। देह-त्याग करते हुए विहगराज जटायुसे श्रीरामने कहा था—

तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा॥
सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥
(वही, ३।३०।५।३१)

इस प्रकार श्रीराममें दुष्टदलनके निमित्त अमित पराक्रम एवं पौरुषके दर्शन होते ही रहते हैं। वे कर्तव्य-पालनमें दक्ष एवं परम नीतिज्ञ भी थे। श्रीराम [illegible] जलधि पारकर लङ्काके सुदृढ़ दुर्गपर आक्रमण करना चाहते हैं; पर असंख्य भयानक जलजन्तुओंसे पूरित समुद्रको पार कैसे किया जाय! यही बात वे विभीषणसे पूछते हैं। विभीषणजी प्रभु श्रीरामके अमितसामर्थ्यकी शक्ति बताते हुए कहते हैं—

× × × । कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई॥
प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि॥
(वही, ५।४९।४।५।५०)

'प्रभो! आपके बाण करोड़ों समुद्रोंको सोख लेनेवाले हैं, तथापि नीतिमें ऐसा कहा गया है, उसके अनुसार जलधिके पास जाकर प्रार्थना करनी चाहिये। यह आपका कुलगुरु भी है। वह आपको उपाय बता देगा, जिससे वानर-भालुओंकी विशाल वाहिनी सरलतासे पार उतर जायगी।'

श्रीरामने विभीषणके परामर्शका आदर करते हुए प्रेमपूरित स्वरमें कहा—

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई॥
(वही, ५।५०।१)

विभीषणका परामर्श एवं श्रीरामकी स्वीकृति—लक्ष्मणजीको अच्छी नहीं लगी, वे दुःखी हो गये। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें निवेदन किया—

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥
(वही, ५।५०।२)

कुपित लक्ष्मणकी वाणी सुनकर श्रीरामने हँसते हुए कहा—'मैं ऐसा ही करूँगा। तुम धैर्य धारण करो।'

नीति-निपुण और परम विनयी श्रीरामने अपने भाईको इस प्रकार समझाया और फिर समुद्रके तटपर गये। वहाँ उन्होंने मस्तक झुकाकर सागरको प्रणाम किया और उसके तटपर कुशासन बिछाकर बैठ गये। इस प्रकार परम पराक्रमी श्रीराम तीन दिन अनवरतरूपसे जलधिके किनारे बैठे उससे प्रार्थना करते रहे, किंतु उसने श्रीरामकी प्रार्थनापर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। तब श्रीरामने कुपित होकर कहा—

लछिमन बान सरासन आनू। सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपन सन सुंदर नीती॥
ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥
(वही, ५।५७।१-२)

—यों कहकर भगवान् श्रीरामने क्रोधसे नेत्र लाल कर अपना धनुष चढ़ाया और तूणीरसे एक कालाग्निके समान तेजोमय बाण निकालकर, उसे धनुषपर रखकर, खींचते हुए कहा—

पश्यन्तु सर्वभूतानि रामस्य परविक्रमम्।
इदानीं [illegible] समुद्रं त्वं [illegible]
(वा० रा० [illegible]

श्रीरामाह ६६—

श्रीरामकी गोभक्ति

(लेखक—श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी, एम्०ए०-द्वय)

भारतीय संस्कृति-सभ्यताके आधारस्तम्भ गौकी गरिमा, गौकी महिमाका विस्तृत विवेचन वेदोंसे लेकर अर्वाचीन ग्रन्थोंतकमें पाया जाता है। श्रीकृष्णकी गोभक्तिसे तो लोग परिचित हैं, किंतु श्रीरामकी अद्वितीय गोभक्तिका उद्घाटन सभीके लिये अपेक्षित और अत्यावश्यक है।

दैत्यों और दानवोंके अनाचार-अत्याचारसे समस्त सुर नर-मुनि-समाज संत्रस्त था, पीड़ित था। अनेकों बार ऋषि-मुनियों और देवताओंने एक साथ संयुक्त होकर समवेत स्वरमें श्रीरामजीसे भूभार उतारनेकी, अवतार लेनेकी प्रार्थना की, किंतु कोई सुनवाई नहीं हुई। अन्तमें—

'सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका।'

(मानस १ । १८१ । छन्द)

जब पृथ्वीने गोमाताका रूप धारणकर उस समुदायमें सम्मिलित होकर आर्तस्वरसे, करुण स्वरसे पुकार की, प्रार्थना की, तब तो गो-द्विज-हितकारी भगवान्का करुण कोमल हृदय पिघल उठा। अब तो उन्हें रामरूपमें अवतरित होना स्वीकार करना पड़ा और कहना पड़ा—

'तुम्हहि लागि धरिहउँ नर बेसा ॥' (वही, १ । १८६ । १)

सभी लोग बड़ी उत्कण्ठासे, बड़ी उत्सुकतासे श्रीराम-जन्मकी प्रतीक्षा कर रहे थे, मार्ग देख रहे थे; किंतु फिर भी राम-जन्म होनेमें विलम्ब हो रहा था। महाराज दशरथने पुत्रप्राप्तिके लिये कई विवाह किये; परंतु आशा निराशामें ही बदलती रही। अब तो ऋषियोंको पुनः श्रीरामकी गोभक्तिका ध्यान आया और उन्होंने शृङ्गी ऋषिको बुलाकर पुत्रयाग यज्ञ प्रारम्भ करा दिया। यज्ञमें विभिन्न प्रकारके मिष्टान्नोंकी आहुतियाँ दी जा रही थीं, किंतु अग्निदेव फिर भी प्रसन्न नहीं हो रहे थे। जैसे ही गोघृत और गोदुग्धसे बने हुए हविष्यान्न-की आहुतियाँ दी जाने लगीं, अग्नि देवता प्रसन्न होकर तभी हविष्यान्नको लेकर तुरंत प्रकट हो गये—

'प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें ॥' (वही, १ । १८८ । ४)

और आशीर्वाद देते हुए राजासे कहने लगे—

'यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई ॥'

(वही, १ । १८८ । ४)

इस प्रकार वह निराकार-निर्विकार व्यापक ब्रह्म गोभक्तिके वशीभूत होकर, नारायणसे नर बनकर, भूभार-निवारण करनेके लिये, गो-संरक्षण और गोसंवर्द्धन करनेके लिये श्रीरामरूपमें अवतरित हो गया—

'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार ।'

(वही, १ । १९२)

श्रीरामजीके जन्म लेते ही गो-सेवाके कार्य प्रारम्भ होने लगे, गोदान किये जाने लगे—

'हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह ।'

(वही, १ । १९३)

श्रीरामजीकी बाललीलाओं, शिशुलीलाओंमें भी गोभक्ति सर्वत्र झलकती है। गोदुग्ध और गोदधि भारतीय भोजन-के सदैवसे प्रमुख अङ्ग रहे हैं। गोदुग्धकी महिमाको भोजनके लिये सांकेतिक ढंगसे बतलानेवाले श्रीरामजी इसी लिये भोजन करते समय मुखमें दही-भात लगाकर, किलकारी मारकर, बाहर भाग जाते हैं—

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ ॥

(वही, १ । २०१)

समस्त भूमण्डलके नरेशोंको पराजित करनेवाले उस शिवधनुषको तोड़नेके पश्चात् भी श्रीरामजीके विवाहका मुहूर्त निश्चित नहीं हो पा रहा था। वर-कन्या दोनों पक्षोंके बड़े-बड़े ज्योतिर्विज्ञान विशारद—विश्वामित्र, वसिष्ठ और शतानन्द आदि विवाहके लग्नमुहूर्तका संशोधन कर रहे थे, किंतु उपयुक्त लग्न नहीं मिल रहा था। जैसे ही ऋषियोंको श्रीरामकी गोभक्तिका स्मरण आया, उसी क्षण सारी समस्या सुलझ गयी, लग्न-मुहूर्त मिल गया। गोभक्ति-भावनासे अवतरित होनेवाले श्रीरामके विवाहका समय गोधूलि-बेला ही सबसे उत्तम हो सकता है, यह सोचकर सभी ऋषि महर्षि एक स्वरसे कह उठे—

धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल ।
बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल ॥

(वही, १ । ३१२)

श्रीरामजीके राज्य सिंहासनारूढ होनेपर गौओंका अभ्युत्थान-

पालन—गोसंरक्षण और गोसंवर्धन इतना अधिक हुआ कि सम्पूर्ण देशमें घी और दूधकी नदियाँ बहने लगीं, मनचाहा घी-दूध लोगोंको प्राप्त होने लगा—

'मनभावतो धेनु पय स्रवहीं ॥'

(वही, ७ । २२ । २½)

परिणामस्वरूप सभी देशवासी रोगों-दोषोंसे मुक्त होकर, सुन्दर, स्वस्थ, सशक्त, बलवान्, चरित्रवान्, दीर्घ जीवन व्यतीत कर रहे थे—

'अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥'

(वही, ७ । २० । २½)

उपरिवर्णित श्रीरामकी गोभक्ति हम सभी लोगोंके लिये अनुकरणीय और अनुसरणीय है ।

भगवान् रामकी शक्ति-पूजा

(लेखक—श्रीरामप्रताप)

महामाया महिषमर्दिनी भगवती मातृशक्तिकी परिपूर्णतम चिन्मय प्रतीक हैं । उनकी उपासनासे रूप, जय और यशकी प्राप्ति होती है । जगदीश्वरीकी महिमा अपार है । देवताओं-द्वारा की गयी देवीकी स्तुति है—

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ४ । ७)

'देवि ! आप सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिकी कारणभूता हैं । आपमें सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—तीनों हैं, तो भी दोषोंके साथ आपका संसर्ग नहीं जान पड़ता । भगवान् विष्णु और महादेव आदि भी आपका पार नहीं पाते । आप ही सबका आश्रय हैं । यह समस्त जगत् आपका अंशभूत है, आप सबकी आदिभूता अव्याकृत परम प्रकृति हैं ।'

भगवान् रामने यदा अम्बा जगदीश्वरीकी पूजा की, रावणके वध और भगवती सीताके उद्धारके लिये—ऐसा उल्लेख श्रीमद्देवीभागवत, कालिकापुराण और कृत्तिवास-रचित बँगला रामायणमें मिलता है । बँगलाआदिकाव्यके रामभक्त कवि कृत्तिवासने अपनी लोकभाषा रामायणमें रामके दुर्गोत्सवका विस्तारसे वर्णन किया है । युद्धप्रसंगमें ब्रह्माने युद्ध करते समय रावणने सीताके उद्धारके लिये जगदम्बाका, आवाहन ... रामने जगदम्बा ... रावणसे उनका विकट सं... भूमिमें रावणेन्द्रके सम्मुख ... रहा था । वह रथपर था, राम विरथ—रथहीन थे । इन्द्रके सारथि मातलिने स्वर्गसे आकर उन्हें देवराजका रथ दिया । रामने रथकी परिक्रमा कर उसे नमस्कार किया । रथपर आरूढ़ हो वे रावणसे घोर युद्ध करने लगे । कृत्तिवासीय रामायणमें इसी स्थलसे देवीपूजाका क्रम चित्रित किया गया है । रावणने इन्द्रका रथ पहचाना । उसने मनमें संकल्प किया कि 'यदि मेरे प्राण इस बार बच गये तो मैं एक-एक कर समस्त वानरसेनाका संहार कर दूँगा ।' युद्ध भीषणरूपसे आरम्भ करने लगा । रावणने जगदम्बाका स्मरण किया और उनसे प्रार्थना की—'माँ तारा ! आप दयामयी हैं, असमयमें मेरी रक्षा कीजिये । संकटमें मुझे अब किसीका भरोसा नहीं है । शंकरने भी मेरा त्याग कर दिया, इसलिये मैंने आपका स्मरण किया है । आप भक्ति-मुक्ति और तृप्ति हैं । मेरा शोकनिवारण कीजिये ।' रावणकी पार्वती तत्काल प्रसन्न हो उठीं । वे उसे अभयदान करनेके लिये रथपर बैठ गयीं ।

रामने रावणके रथपर जगदम्बाको देखकर विस्मय प्रकट किया । उन्होंने माँको प्रणाम किया । राम चिन्तित हो उठे ... चिन्तासे इन्द्र व्यथित हुए । उन्होंने ... ब्रह्माने इन्द्रसे कहा कि अकालपूजासे ही ... सम्भव है । इन्द्रके निवेदनपर ब्रह्माने ... देवीपूजाका क्रम बताया । रामचन्द्रने ... । उन्होंने सप्तमीसे ... करने लगे । रामने ... और नवमीको ... विसर्जन किया ।

हनुमान्‌ने दूर-दूरसे पुष्प आदि लाकर अनेक प्रकारकी पूजा-सामग्री एकत्र की । रामने बड़ी श्रद्धासे पूजा की और देवीने अप्रकट रूपसे उनकी पूजा स्वीकार की, पर उनका साक्षात् दर्शन न हो सका । विभीषणने कहा कि जगदम्बाको प्रसन्न करनेका उपाय है—उनके चरणोंमें एक सौ आठ नीले उत्पलोंका समर्पण । हनुमान् देवीदहसे नीलोत्पल लेने चल पड़े । इधर श्रीअवधविहारी रामने महाशक्ति दुर्गादेवीका स्तवन किया—

दुर्गे दुःखहरा तारा दुर्गतिनाशिनी ।
दुर्गमे शरणा विन्ध्यगिरि निवासिनी ॥
दुराराध्य ध्यानसाध्य शक्ति सनातनी ।
परात्परा परमा प्रकृति पुरातनी ॥
नीलकण्ठप्रिया नारायणी निराकारा ।
सारात्सारा मूलशक्ति सवित्री साकारा ॥
महिषमर्दिनी महामाया महोदरी ।
शिवसीमन्तिनी श्यामा सर्वाणी शंकरी ॥
विरूपाक्षी शताक्षी तारणा शाकम्भरी ।
भ्रामरी भवानी भीमा भूमा क्षेमंकरी ॥
तारो करुणाय रामचन्द्रे कर पार ।
कुलकुण्डलिनी कर मोरे निस्तार ॥
सर्वेश्वरी भयहरा कलुषनाशिनी ।
भ्रान्तिहरनी कदम्बविपिनवासिनी ॥
(कृत्तिवासीय रा०, लङ्का०)

देवी फिर भी प्रकट न हुईं, रामके नयनोंमें अश्रु आ गये । हनुमान्‌ने एक सौ आठ नीले कमल दिये । रामने माँके चरणोंपर कमल चढ़ाये, पर वे एक सौ सात ही थे । हनुमान्‌ने कहा कि 'अब देवीदहमें एक भी कमल नहीं है, [illegible] और परीक्षाके लिये निस्संदेह देवीने एक कमलका अपहरण कर लिया है ।' राम कातर हो उठे । उन्होंने देवीका स्तवन किया । फिर भी देवीका साक्षात्कार नहीं हुआ । रामने विचार किया कि 'मुझे लोग नीलकमलाक्ष कहते हैं । मैं अपना एक नयन जगदम्बाके चरणमें समर्पित कर दूँगा ।' उन्होंने ज्यों ही नयन निकालना चाहा कि भगवतीने प्रकट होकर उनका हाथ पकड़ लिया । देवीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया । रामने रावणके संहारकी अनुमति माँगी । देवीने कहा—'मुझे नयन नहीं चाहिये ।' संकल्प पूरा हो गया । देवीने रामकी स्तुति की—'आप दयामय अखिल ब्रह्माण्डनायक हैं; आप अच्युत, अव्यय और सकल चराचरकी गति हैं ।' देवीने कहा—

मायाय मनुष्य तुमि, चतुर्भुज, आइले भूमि,
नाशिते राक्षस-दुराचार ।
(कृत्तिवासीय रामा०, लङ्का०)

'तुम मायासे मनुष्य बने हुए हो, तुम साक्षात् चतुर्भुज विष्णु हो, जो दुराचारी राक्षसोंका विनाश करनेके लिये धराधामपर अवतीर्ण हुए हो ।' देवीने रामसे निवेदन किया कि 'तुमने लोकको ज्ञान करानेके लिये मेरी पूजा की । मैं धन्य हो गयी । तुमने भूमण्डलमें मेरा प्रकाश किया ।'

लोके मानाइल धन्य, आमारे करिले धन्य,
अकालेते करिले प्रकाश ।
(कृत्तिवासीय रामायण, लङ्का०)

देवीने पूजासे प्रसन्न होकर रावण-वधकी आज्ञा दे दी । रामने रावणका अन्त करनेके लिये युद्ध-भूमिमें महासंहार-यज्ञ आरम्भ कर दिया ।

दशमी ते पूजा करि, विसर्जिया महेश्वरी,
संग्रामे चलिल रघुपति ।
(कृत्तिवासीय रामायण, लङ्का०)

'दशमीके दिन अन्तिम पूजा करके श्रीरामने भगवती महेश्वरीका विसर्जन कर दिया और रावणके साथ संग्राम करने चल दिये ।' विजय-कोदण्ड धारणकर राम रणमें आसीन हो गये । युद्ध हुआ और लङ्कापति रावणका वध कर रामने सीताका उद्धार किया । रामने भगवतीकी कृपासे विजय प्राप्त की । उनकी शक्तिपूजा सार्थक हो गयी ।

———

भगवल्लीलाके दर्शनसे मोह और श्रवणसे मोहनाश

(लेखक—श्रीराजेन्द्रकुमारजी धवन)

भगवान् श्रीरामकी लीलाओंमें अनेकों विलक्षणताएँ हैं। उनमें एक बड़ी ही विचित्रता देखनेमें आती है कि भगवान्‌की लीलाको देखनेसे अहङ्कारके कारण मोह होता है और सुननेसे मोह नष्ट हो जाता है।

एक बार भगवान् शिव सतीजीके साथ कैलास जा रहे थे। मार्गमें उन्हें लक्ष्मणसहित भगवान् श्रीरामके दर्शन हुए, जो विरह-विकल होकर सीताजीको खोजते हुए फिर रहे थे। शिवजीने आनन्दसे भरकर 'जय सच्चिदानन्द जग पावन' कहा और आगे बढ़ चले। परंतु भगवान्‌की उस मोहमयी लीलाको देखकर सतीजी मोहमें पड़ गयीं। पहले तो उनके विचारमें आया—

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥
(मानस १।५०)

फिर विचार आया कि यदि श्रीरामको भगवान् विष्णुका अवतार मान ही लिया जाय, तो भी—

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी॥
(वही, १।५०।१)

इसके सिवा—'संभु गिरा पुनि मृषा न होई।' (वही, १।५०।२½)। इस प्रकार सतीजी सभी ओरसे मोहरूपी भँवरमें पड़ गयीं। यह बात अन्तर्यामी शिवजीसे छिपी न रह सकी। उन्होंने सतीजीको बहुत बार समझाया, परंतु कुछ लाभ होता न देखकर मनमें 'हरिमाया बलु' जानकर आज्ञा दे दी—

जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
(वही, १।५१।१)

मनमें भरे अपार संशयको मिटानेके लिये सतीजी श्रीरामकी परीक्षा लेने चल पड़ीं; परंतु परीक्षा लेनेके बदले स्वयं ही परीक्षाका विषय बन गयीं और भयके कारण संशय भी यहीं-का-यहीं रह गया। आगे जब सतीजीने पार्वतीजीके रूपमें पुनर्जन्म ग्रहण किया, तब एक दिन अवसर पाकर वे शिवजीके पास अपने पूर्वजन्मकी कथा स्मरण करती हुई आयीं। तब उन्होंने 'हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी' कहते हुए अपने पूर्वजन्मकी शङ्काको सामने रखा। तब शिवजीने पार्वतीजीके मोहकी निवृत्तिके लिये उन्हें विस्तारसे श्रीरामचरित सुनाया। उसे सुननेके बाद उनका मोह दूर हो गया—'तुम्हरी कृपाँ कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।' (वही, ७।५२ क) यही नहीं कि केवल मोह ही दूर हुआ हो—

'राम चरन उपजेउ नव नेहा।' (७।१२८।४)
और 'रघुपति राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस।'

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम्।
कालेन नातिदीर्घेण भगवान् विशते हृदि॥
(श्रीमद्भा० २।८।४)

अर्थात् जो लोग भगवान्‌की लीलाओंका श्रद्धाके साथ नित्य श्रवण और कथन करते हैं, उनके हृदयमें थोड़े ही समयमें भगवान् प्रकट हो जाते हैं।

इसी प्रकार एक और प्रसङ्ग गरुडमोहका है। जब भगवान् श्रीरामने लीलापूर्वक अपनेको मेघनादके हाथों बँधवा लिया, तब देवर्षि श्रीनारदजीने गरुडजीको भेजा। श्रीरामके बन्धन काटकर लौटते समय गरुडजीको भी मोहने घेर लिया। उन्होंने सोचा—

भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥
(वही, ७।५८)

अपनी शङ्काको लेकर वे पहले नारदजीके पास ही गये। नारदजीने कहा—

जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह मन करई॥
जेहिं बहु बार नचावा मोही। सोइ ब्यापी बिहंगपति तोही॥
(मानस ७।५८।१)

अतः नारदजीने 'महामोह उपजा उर तोरें। मिटिहि न बेगि कहें खग मोरें॥' (वही, ७।५८।३½) यों कहकर उसे ब्रह्माजीके पास भेज दिया। ब्रह्माजीने भी भगवान्‌की अमोघ प्रभाववाली मायाको जानकर उसे शिवजीके पास भेज दिया। शिवजीने गरुडजीसे मिलनेपर कहा—

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही। कवन भाँति समुझावौं तोही॥
तबहि होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा॥
सुनिअ तहाँ हरिकथा सुहाई।………………………………॥

(वही, ७। ६०। २—३½)

क्योंकि—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

(वही, ७। ६१)

इस प्रकार कहकर शिवजीने गरुड़जीको श्रीरामकथा-मृतरसिक काकभुशुण्डिजीके पास भेज दिया। वहाँ प्रेमपूर्वक श्रीरामचरित सुननेके पश्चात् उनका मोह दूर हो गया—'भ्रम तम भगेउ भुवन रवि भई। मास मलिन बिपति सब गई॥' (वही, ७। १२४। २) इसके सिवा 'जीवन जन्म सुफल मम भयऊ।'

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥

(श्रीमद्भा० १२। ४। ४०)

अर्थात् 'जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं अथवा जो लोग अनेकों प्रकारके दुःख दावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान्‌की लीला-कथारूप रसके सेवनके अतिरिक्त और कोई साधन, कोई नौका नहीं है। ये केवल लीला-रसायनका सेवन करके ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं।'

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु।

'जानत प्रीति-रीति रघुराई'

(लेखक—श्री[illegible] अग्रवाल, एम्० ए०)

नन्दिग्राममें भरत-कुटीरके सम्मुख शिविका रुकी। अर्चनाका थाल लिये माण्डवीने कुटीमें प्रवेश किया। दीपक-का प्रकाश फैला हुआ था। भरत प्रभुकी पादुकाओंके समीप ध्यानावस्थित थे। नयनोंसे अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। किंतु चौदह वर्षोंमें सदा उदास, खिन्न, गम्भीर आकृति-पर मुस्कानकी रेखा देखकर माण्डवी गद्गद हो गयी। कुछ क्षण वह विस्मयविमुग्ध-सी पतिके पल-पलमें परिवर्तित होनेवाले मुखके भावोंको देखती रही। फिर आगे बढ़ी। पादुकाओंको प्रणामकर उसने पतिके चरणोंमें मस्तक टेका। भरत चौंके। भावलोकसे बाहर आये।

'प्रभु आ रहे हैं, माण्डवि! प्रभु आ रहे हैं!' हर्षा-तिरेकमें अश्रु पोंछते हुए भरत बोले। उनका शरीर पुलकित हो रहा था।

'कोई सूचना?' माण्डवीने उत्सुकतासे पूछा। 'नहीं। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, प्रभु पुष्पकमें बैठे हैं। पवन-विमान-पर हर्षोल्लास छा रहा है। राघवेन्द्र जयजयकी ध्वनिसे दिशाएँ ध्वनित हो रही हैं। तदनन्तर विभीषणने गगनसे विमानद्वारा वस्त्राभूषण बरसाये। वानर-भालुओंका दौड़ना, परस्पर झपटना, प्रत्येक वस्तुको ध्यानसे देखकर अस्त-व्यस्त ढंगसे पहनना हास्यका वातावरण उपस्थित कर रहा था। उनकी विनोदमयी क्रीडाओंको देखकर प्रभु मैथिली-लक्ष्मणसहित हँस रहे हैं। प्रभु बड़े कौतुकी हैं माण्डवि! अनन्तलीलामय हैं।

'विभीषणने करबद्ध हो, राघवेन्द्रसे नगरमें चलकर विश्राम करनेकी प्रार्थना की। प्रभुके नेत्र अश्रुपूरित हो गये। वे करुण-मिश्रित अवरुद्ध कण्ठसे बोले, 'मेरे द्वारा एक क्षणका विलम्ब महान् अनर्थकारक हो जायगा, लंकेश! मेरी प्रतीक्षामें बैठा भरत कहीं……' प्रभु आगे न बोल सके। फिर कहा—'मेरे गमनका शीघ्र प्रबन्ध करो।' कितने भक्त-वत्सल हैं राघवेन्द्र! सहसा उठे भरतके नयन। तदनन्तर आह्लादके स्वरमें बोले—'देखो, माण्डवि! मेरा दक्षिण नेत्र, मेरी दाहिनी भुजा फड़क रही है। आयेंगे न प्रभु?' भरतने उत्सुकतासे माण्डवीकी ओर देखा।

'अवश्य आयेंगे देव!' वाणीमें विश्वासका पुट था।

'मेरे कुकर्मोंसे मुझे त्याग तो नहीं देंगे?'

'नहीं। प्रभु उदार हैं। भक्तके दोषोंपर दृष्टिपात भी नहीं करते। फिर आप तो……'

'सच कहती हो, माण्डवि! इस अनुचरपर शैशवसे प्रभुकी अपार कृपा रही है। साधारण क्रीडामें भी सदा हारकर मुझे विजयकी दिलानेमें उनका हाथ रहता था, मुझे गौरवान्वित करनेमें प्रभु सदा प्रयत्नशील रहे हैं। किंतु

इस अभागेके कारण अकारण करुणामय रामको कितने कष्ट उठाने पड़ रहे हैं। मैं कृतघ्न हूँ, मैं नारकी हूँ, माण्डवि !' रो पड़े भरत और निकल पड़े प्रभु माण्डवीके आरक्त नेत्रोंसे।

'आप अधीर होंगे तो परिजनोंकी क्या दशा होगी !'

'मुझे केवल एक दुःख है, माण्डवि ! पूज्य पिताजी मुझे प्रभुके चरणोंमें अर्पित नहीं कर गये।'

'अब तो प्रभु आ रहे हैं। वे अवश्य आपको अपनायेंगे।' माण्डवीने आँचलसे भरतके नेत्र पोंछे।

बालरविकी किरणने कुटीमें झाँका। माण्डवी बोल उठी—'देखिये, देव ! प्रभुके आगमनमें प्रकृतिका सौम्य रूप, हरितिमासे लदे फलोंसे भरे वृक्षोंकी शोभा, अभिनव तरुदलोंमें क्रीड़ा करते हुए पक्षियोंका प्रमुदित कलरव और सुनिये कलकलनिनादिनी सरयूका मधुरतामें निमज्जित स्वर। अरुणोदय कितना मनोमोहक है, कितना सौम्य है, जैसे सूर्यकुलभूषण प्रभुके शुभागमनपर सूर्यदेव प्रसन्न हो रहे हों। प्रकृतिका अणु-अणु बोलता क्योंकि अवधपुरसे सवत्र सरसता हुआ प्रभुके आगमनकी सूचना दे रहा है। ऐसा भान होता है कि कोई शीघ्र ही शुभ संदेश देनेवाला है।'

'तुमने मेरे उपवासके विश्रामको स्थिर कर दिया, माण्डवि !' उपासनाके स्वरमें भरत बोले।

पतिकी अर्चना करके माण्डवी उठी। 'अब चलूँ, माताओंको धैर्य दूँ। बड़ी माँ तो नित्य ही व्याकुल रहती हैं। कागको, प्रभुके आगमनका संदेश देनेपर दूध-भातका दोना देने और सोनेसे चोंच मँढ़ानेका आश्वासन देती हैं। मैं कहूँगी—माँ ! प्रभु आ रहे हैं। अब कागकी चोंच मँढ़ाइये, खिलाइये उसे खीर।' माण्डवी हँस पड़ीं और भरत मुस्कुरा गये।

'बड़ी माँ परम वात्सल्यमयी हैं। उनकी दशा मुझसे नहीं देखी जाती। प्रभुके वियोगमें अस्थिमात्र रह गयी हैं।'

'मुझे उर्मिलाकी चिन्ता है। वह सीतेकी भाँति अन्तरमें घुलती रहती है। कुमार उसे पहचान भी न पायेंगे।'

'हाँ, जाओ। उसे सान्त्वना दो।' पतिके चरणोंमें प्रणाम करके माण्डवी चली गयी।

भरत पुनः प्रभुके ध्यानमें बैठ गये। अवधपुरका विकल उर्में घुल-सा प्रतीत हो रहा था। प्रभिकका स्वर सुनकर वे कुटीके द्वारपर खड़े हो जाते। निराशित हृदयसे देखते रह जाते और निराश होकर आसनपर बैठ जाते। हृदयमें दुर्भावनाएँ जाग पड़तीं। विश्वासका सम्बल छूट जाता।

'प्रभु क्यों नहीं आये ?' प्रश्न मनमें उठता फिर समाधान न पाकर अपने दोषोंका विश्लेषण करने लगते। 'मैं पामर हूँ, कुटिल हूँ, कपटी हूँ, समस्त अनर्थोंकी जड़ हूँ। तभी तो प्रभुने चित्रकूटमें मेरे अनुनय करनेपर भी मुझे अपने साथ नहीं लिया। लक्ष्मण धन्य है, प्रभुके सांनिध्यमें रहकर अपने जीवनको कृतकृत्य कर रहा है। एक मैं हूँ, जो प्रभुके प्रत्येक मङ्गलमय विधानमें रोड़ा बनता रहा। ऐसे नराधमको प्रभु कैसे अपनायें। तभी तो वे नहीं आये।' रो उठे भरत अपनी विवशतापर। उनका हृदय अपनी मलिनतापर हाहाकार कर रहा था। एक संशय उनके उरमें उठा—'यदि प्रभु न आये तो भरत भी इस जीवन-लीलाको समाप्त कर देगा। ऐसे प्रभुविमुख जीवनसे लाभ ? प्रभु, राघवेन्द्र ! निराश्रयोंके आश्रय ! आपके बिना भरतकी क्या गति होगी ?'

'लोकेश, आपकी सागरके समान उमड़नेवाली कृपासे वञ्चित होकर, कैसे जीवित रह सकेगा, कृपासिन्धु !' भरत रुके। 'मुझमें सेवकके कोई गुण नहीं हैं, मेरे नाथ ! मेरे दोषोंपर दृष्टिपात करोगे तो मेरा कभी उद्धार न होगा, अन्तर्यामी ! कभी उद्धार न होगा।' शिलापर मस्तक रखकर भरत फफक-फफककर रो पड़े।

धीरेसे द्वार खुला। एक ब्राह्मणने प्रवेश किया। पासमें स्थित हो, भरतकी दशा देखकर वह भावविभोर हो गया। 'यही हैं रामप्रेमकी अनुरागमयी मूर्ति भरत हैं ! जिनका संसार स्मरण करता है, वे ही अपने भरतका प्रणाम अंजलि मार्ग निरन्तर भजन करते हैं। भरत न होते तो संसारमें भ्रातृ-प्रेमकी धुरीको कौन धारण करता ! धर्मकी ध्वजा कौन फहराता !'

भरतने मस्तक उठाया। 'दयामय ! प्रणतपाल ! भरत दोषी है, कलङ्की है, अपराधी है, फिर भी आपका है। आप मेरे हैं, मेरे सर्वस्व हैं, मेरे जीवन हैं !' गुनगुना उठे भरत।

'अपनों चूकको क्षमा कर देनेवाले, अहैतुकी कृपाकी वर्षा करनेवाले मेरे प्रभु ! मुझे आपकी करुणाका विश्वास है ।' विश्वासभरा स्वर निकल पड़ा—

'आपुन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस ।'

(मानस २ । १८३)

उनकी उद्विग्नता शान्त हो गयी । 'श्रीराम, जय राम, जय जय राम'का जप उमंगसे करने लगे । नयनोंसे प्रेमाश्रु बह रहे थे ।

ब्राह्मण बेसुध हो गया । अपना स्वर मिलाकर वह भी गुणगान करने लगा । कर्तव्यका ध्यान आते ही वह आगे बढ़कर बोला, 'कुमार ! प्रभु राघवेन्द्र आ रहे हैं ।' भरत वैसी ही तल्लीनतासे जप करते रहे । 'कोसलेश प्रभु आ रहे हैं, देव !' स्वर भरा-सा रहा । ऊँचे स्वरमें ब्राह्मणने कहा—

'रघुनन्दन राम मैथिली और अनुजसहित आ रहे हैं ।' भरत चौंके ।

'प्रभु मैथिली-अनुजसहित आ रहे हैं ! मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ । ब्राह्मण देवता ! तुम कौन हो ?' भरत ब्राह्मणके समक्ष खड़े हो गये । 'कोई भी हो, मुझे ऐसा लगता है, तुम मेरे राघवेन्द्रके अनन्य सेवक हो । तुमने मुझे उबार लिया, विप्रवर !' भरत ब्राह्मणके चरणोंमें झुके, किंतु उसने बीचमें ही उठा लिया उन्हें । भरतने ब्राह्मणको आलिङ्गनबद्ध कर लिया । नेत्रोंसे झरना बह रहा था । गद्गद वाणीसे भरत बोले, 'सत्य कहो, भैया ! मेरी डूबती नैयाके कर्णधार बनकर आनेवाले तुम कौन हो ? मेरे मृत प्राणोंको संदेश-सुधासे जीवन देनेवाले तुम कौन हो ?'

ब्राह्मण भरतकी विह्वलता देखकर सुध-बुध भूल गया । 'मैं आपका सेवक हूँ, भरतलाल !' कहकर चरणोंमें झुका । भरत उसे अधरमें उठाते हुए चकित रह गये, 'अरे ! आञ्जनेय ! हनुमान् ! मेरे प्रभुके अनन्य सेवक !' ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे स्वयं प्रभु राम उन्हें मिल गये हों । भरत बार-बार पवनसुतको छातीसे लगा लेते हैं । 'महावीर ! मैं जन्म-जन्मान्तरमें भी तुमसे उऋण नहीं हो सकता । तुम्हारे दर्शनसे हो मेरी व्यथा मिट गयी । प्रभु सकुशल हैं न ?'

'हाँ, कुमार !'

'माँ जनकनन्दिनी प्रसन्न हैं ?'

'हाँ, देव !'

'मेरा लक्ष्मण सुखी है न ?'

'हाँ, कुमार !'

'अरे ! मैं बड़ा पागल हूँ, हनुमान् ! तुम्हारे शुभ संदेशने मुझे पागल बना दिया । मैं तुम्हें आसन देना भूल ही गया । लो, यहाँ बैठो मेरे पास ।' हनुमान् आसनपर बैठ गये । 'बड़े भाग्यसे संतोंके दर्शन होते हैं ।' भरतने फलोंकी थाली आगे बढ़ाते हुए कहा—'प्रभुको भोग लगाकर प्रसाद पाओ, हनुमान् !' भरतके प्रेमातिरेकपर मुग्ध हो मारुति प्रभुको अर्पणकर फल पाने लगे ।

'प्रभु कहाँ हैं ? कब आयेंगे यहाँ ? कोई संदेश दिया है मेरे प्रभुने ?' भरतकी उत्सुकता बढ़ रही थी । 'महर्षि भरद्वाजके आश्रममें । आपकी कुशल जाननेके लिये मुझे भेजा है ।' 'कभी प्रभु मेरा स्मरण भी करते हैं ?'

हनुमान्‌जी गद्गद हो गये । अवरुद्ध कण्ठसे बोले—'स्मरण ही नहीं, अहर्निश आपका चिन्तन करते हैं । आपके नामका जप करते हैं । एक क्षणके लिये प्रभु अपने भरतको विस्मृत नहीं करते । आपकी चर्चासे राजीव-नयन अश्रु-पूरित हो जाते हैं ।'

प्रभुकी अपार वत्सलतापर भरत विह्वल हो गये । रोम-रोम पुलकित हो गया । 'दीन-हीनपर कृपा करनेवाले करुणा-मय प्रभुसे कहना—'आपके वियोगमें अयोध्यावासी मृतक-तुल्य हो रहे हैं । माताएँ प्रतीक्षामें पलक-पाँवड़े बिछाये बैठी हैं ।' और कहना हनुमान् ! 'वियोगमें दग्ध होनेवाले प्राणोंको शान्ति दें । विलम्ब न करें' ।''

पवनसुत चरणोंमें अभिवादन करके विदा हुए । भरत हनुमान्‌को नेत्रभर देखते रहे । उनका मन-मयूर आनन्दाति-रेकमें नाच रहा था ।

× × ×

राघवेन्द्रके आगमनका समाचार विद्युत्-गतिसे नगरमें फैल गया । जन-जनका मानस हर्षसे उद्वेलित हो उठा । अपने हृदय-सम्राट्‌के स्वागतमें नगरवासी नगरकी साज-सज्जामें जुट गये । चौदह वर्षोंसे मरघट-सा बने नगरमें उमंग-उत्साह-की लहरें हिलोरें लेने लगीं । प्रत्येक भवन तोरण, पताका एवं मङ्गल-कलशोंसे सुसज्जित हो गया । वीथियाँ सुगन्धसे सींची गयीं । विविध मणि-मुक्ताओंसे चौक पूरे गये । चारों ओर बाजे बजने लगे । नारियाँ मङ्गलगीत गाने लगीं । सबकी दृष्टि चातककी भाँति आकाशकी ओर लगी थी ।

गगनमें विमान देखकर जय-जय गूँजा । 'प्रभु आ गये । राजेन्द्र भरतपर आ गये ।' इतनी खबर फैल गयी । अपना अपना कार्य छोड़कर जो जिस अवस्थामें था, जैसे ।

नगरके प्रवेशद्वारपर जन एकत्रित हो गये। प्रभु अपने समाजके साथ विमानसे उतरे। प्रभु-प्रेरणासे विमान कुबेरके लोकको सिन्न होकर चला गया। 'दशरथनन्दन महाराज रामचन्द्रकी जय!' का घोष ध्वनित हुआ। 'प्रभु रामकी जय! महारानी जानकीजीकी जय! सौमित्रि लक्ष्मणकुमारकी जय!'

प्रभु आगे बढ़े। मार्गमें कुसुम बिखेरती हुई नारियाँ चलने लगीं। झरोखोंसे सुन्दरियाँ आरती करके पुष्प बरसाने लगीं। महर्षि गुरु वशिष्ठकी जयकार हुई। प्रभुने गुरुदेवको आते हुए देखा। वे पृथ्वीपर धनुष-बाण रखकर गुरुके श्रीचरणोंमें लोट गये। महर्षिने हृदयसे लगाकर आशीर्वाद दिया। अश्रुपात होने लगा। 'युगों पश्चात् तुम्हें पाकर संतप्त हृदय शीतल हो गया, राघव!' मैथिलीने प्रणाम किया। 'अखण्ड सौभाग्यवती होओ, बेटी!' लक्ष्मणको चरणोंमें झुकते देख महर्षिने हृदयसे लगा लिया।

प्रत्येक व्यक्तिको आभास हुआ, प्रभु मिलकर कुशल पूछ रहे हैं। प्रभुकी भक्तवत्सलतापर जन-जन जय-जयकी ध्वनि करने लगा। इस विशाल जन-समूहमें प्रभुके नेत्र उत्सुकतासे अपने अनुजको ढूँढ़ रहे थे। जीर्णकाय भरतको तपस्वी-वेषमें देखकर प्रभु पुकारते हुए बढ़े—'भरत! मेरे भैया!' 'पाहि नाथ! पाहि नाथ!' कहकर भरत प्रभुके श्रीचरणोंमें लेट गये। प्रभुने बलात् भरतको उठाकर हृदयसे लगा लिया। दोनोंके नेत्रोंसे आँसुओंकी झड़ी लग रही थी, वियोगजन्य तापको शीतल करनेके लिये।

अनुपम भ्रातृ-मिलन देखकर गगनसे देवगण पुष्प बरसाकर प्रभुकी जय-जयकार करने लगे। जनता हर्षसे झूमने लगी और एक स्वरसे बोल उठी—'महाराज रामचन्द्रकी जय! दाशरथि रामकी जय!! परम भागवत भरतलालकी जय!!!'

अपूर्व मधुर मिलनको सुग्रीव एवं विभीषणने देखा। दोनोंका हृदय भ्रातृ-द्रोहकी ग्लानिसे पुकार कर उठा। विभीषणने कंधेपर हाथ रखते हुए सुग्रीवसे कहा—'कपिराज! इस दिव्य भ्रातृ मिलनको देख रहे हो!'

'हाँ, पश्चात्तापसे उनका स्वर दबा हुआ था। 'मुझे अपने व्यवहारपर दुःख होता है, लंकेश! बाली मैया इतने बुरे न थे। मुझसे अटूट स्नेह करते थे। हम दोनोंमें घनिष्ठता थी। मैंने अपनी स्वार्थपरतासे उन्हें अपना शत्रु बना लिया। मेरा हृद अनुराग होता तो वे एक दिन अवश्य अपना लेते।' सुग्रीवके नेत्र डबडबा गये। यद्यपि बालीने मेरे ऊपर अतिशोषका प्रेम पड़ा था। अर्द्धांग नारियोंमें दौड़ रही थी। उनका वध कराके ही हृदयका एक शान्त हुआ।' कपिपतिने मुख नीचा कर लिया।

'यही दशा मेरी है, बन्धु!' भारी कण्ठसे विभीषणने कहा—'बुद्धि ग्लानिसे फटा जा रहा है। बड़े भैया मुझे बहुत चाहते थे। मुझे मन्त्रीका पद दे दिया था उन्होंने। प्रत्येक निर्णयमें मेरा परामर्श लेते थे, मेरी बात मानते थे। मैं संयमसे काम लेता तो सम्भव था, वे नीतिसे बच जाते। उनसे असहयोग कर मैं विद्रोही हो गया। 'उनका मेरी राह होते या अपना मस्तक कर ले लिया। संसार मुझे भ्रातृघातक कहकर पुकारेगा, कपिराज!'' विभीषण उदास हो गये।

'भरत भ्रातृ-प्रेमकी आदर्श मूर्ति हैं।' सुग्रीवने था 'और हम दोनों भ्रातृद्रोही, विश्वासघाती और भ्रातृ हत्यारे हैं।'

जय-जयकार हुआ। भगवान् भरतसे पूछ रहे थे—'कुशलसे तो हो, भैया!'

'प्रभु!' अवरुद्ध कण्ठ हो रहा था भरतका। 'मैं प्रभु ...... 'भरत आगे न कह सके।

'भरत!' प्रभुने भरतकी पीठ थपथपायी।

'श्रीचरणोंमें ही कुशल है, प्रभु! आपने विरह सागरमें डूबते हुए अनुजको आपने उबार लिया।'

'क्षमा करो, भरत! विलम्बके लिये मैं लज्जित हूँ।'

'नाथ!' भरत चरणोंमें गिरकर रो उठे। प्रभुने उन्हें हृदयसे लगा लिया और अपने उत्तरीयसे भरतके आँसू पोंछे।

'मेरी भावनाएँ श्रीमुखसे कहकर मुझे लज्जित न करें, दयाशील! क्षमाप्रार्थी तो सेवक है। प्रभुसे विलग रहा हूँ है, इस मनके कारण!' शत्रुघ्नने प्रभुके पादपद्मोंको पकड़ लिया। प्रभुने उन्हें भुजाओंमें भर लिया।

'भरत!' गम्भीर हो प्रभुने कहा—'तुमसे तुम्हारा मन है। तुम्हारे अतुलनीय त्याग, तुम्हारे अनन्य भ्रातृ-प्रेमने मुझे नया साहस और शक्तिका संचार किया है। मैंने भरतके भाइयोंको एक-दूसरेके रक्तका प्यासा देखा। उनके आन्तरिक हृदयमें स्वार्थपरताका ताण्डव देखा। यही कारण है दक्षिणपथकी दो महान् शक्तियोंकी पराजय।'

भरत अपनी प्रशंसा सुनकर संकुचित हो गये। अपने गौरव देना ही प्रभुका स्वभाव है। लक्ष्मणने अधीर आग्रह

कहा—'प्रभु ! माताएँ आ रही हैं !' श्रीरामने कौसल्या तथा सुमित्रा अम्माको देखा । प्रभु ऐसे भागे, जैसे बछड़ा उमड़ता हुआ अपनी बिछुड़ी माँसे मिलता है । राम माताओंके चरणोंमें लिपट गये । 'आयुष्मान् होओ, मेरे लाल ! यशस्वी होओ !' आशिष देते हुए कौसल्या अम्माने रामको हृदयसे लगा लिया । मस्तक चूमने लगा माँकी पुतलियोंसे । 'राघव !' गद्गद स्वरमें अम्मा बोलीं—दीर्घ अवधिसे प्रज्वलित हो रही हृदयाग्नि निर्वापित हो गयी । चिरतृषित नेत्रोंकी पिपासा शान्त हो गयी, राजीवलोचन !' माँ बलैया लेने लगीं । 'आज महाराज होते तो कितने प्रसन्न होते । तुम्हारे राज्या-रोहणकी अधूरी साध लेकर महाराज चले गये ।' माँका कण्ठ भर आया ।

'व्यथित न हो, अम्बे ! राम अब अपनी जननीको छोड़कर कहीं नहीं जायगा ।' कौसल्या अम्माने मैथिली और लक्ष्मणको हृदयसे लगा, नेत्र मूँद लिये उस कृपणकी भाँति जो अपनी निधिको छिननेके भयसे छातीसे लगाये रहता है । अम्मा फूली नहीं समा रही थीं ।

'माँ ! लक्ष्मणके शक्ति लगनेपर तुमने हनुमान्‌के द्वारा संदेश भेजा था कि रामसे कहना, अयोध्या लक्ष्मणके बिना न आये । बिना लक्ष्मणके राम अच्छा न लगेगा ।' लो लो !' लक्ष्मणकी भुजा पकड़ते हुए प्रभु बोले—'सँभालो अपनी थाती । मैथिलीसहित लक्ष्मणको सौंपकर मेरा उत्तरदायित्व पूर्ण हो गया, अम्मा !' कौसल्या अम्माके मुखपर मुस्कान फैल गयी । लक्ष्मणने सुमित्रा अम्माके चरण छूए । माँने उसे हृदयसे लगा लिया । 'वत्स ! तूने जननीका पद देकर मुझे गौरवान्वित कर दिया ।' आशीर्वाद देती हुई वैदेहीको महारानी सुमित्राने भुजाओंमें आवेष्टित कर लिया ।

प्रभुके संकेतसे मानव-वेषधारी ऋक्ष-वानरोंने माताओं तथा गुरुदेव वसिष्ठके चरणोंमें प्रणाम किया । प्रभुने परिचय देते हुए कहा—'गुरुदेव ! ये सब मेरे सखा ही नहीं, मेरी जीवन-नैयाके खेवैया हैं । मेरे लिये प्राणोंका उत्सर्ग करनेको सदा तत्पर रहे हैं । सच कहता हूँ, अम्बे ! मुझे ये सब भरतसे भी अधिक प्रिय हैं ।' प्रभुने सखाओंका पृथक्-पृथक् परिचय दिया । फिर सबको सम्बोधित करते हुए बोले—'ये मेरे पूज्य गुरुदेव हैं । इनकी अपार कृपासे ही निशाचरोंका उन्मूलन हुआ है । ये मेरी जननी हैं कौसल्या अम्मा और यह मेरी छोटी माँ सुमित्रा अम्मा हैं । हम सबको मौत के मुँहसे उबारनेमें इनके आशीर्वादका बहुत बड़ा हाथ है ।'

प्रभुके सखाओंने माताओं तथा गुरुदेवके चरण छुए । माताओंने पुत्रवत् जानकर वात्सल्यभरे स्वरसे आशीर्वाद दिया ।

'भरत !' प्रभुने पुकारा । 'सखाओंके विश्रामकी व्यवस्था करो ।' फिर सबको विदा देकर जननी-सहित महलमें चले गये ।

× × ×

महारानी कैकेयीका कक्ष, जो कभी कार्य-कलापका केन्द्र था, जहाँसे निकलनेवाले आदेश तथा विज्ञप्तियोंकी उत्सुकतासे प्रतीक्षा होती थी, जहाँ बड़े-बड़े चक्रवर्ती नरेश अनुमति-से प्रवेश पाते थे, वह अब निर्जन, सुनसान सा था । सूर्यकी किरणें भ्रमित-सी प्राङ्गणमें झाँककर चली जातीं । रात्रिमें शशिकी शीतल रश्मियाँ दाहकतासे पीड़ित हो, तिरोहित हो जातीं । वासन्ती सुषमा निदाघकी उष्णताका अनुभव करके आनेका नाम न लेती । सर्वत्र उदासी और उपेक्षाका वातावरण छाया था ।

महारानी कैकेयी अपने प्रकोष्ठमें एकाकी खोयी-सी घूमतीं । विगत घटनाएँ उनके मस्तिष्कमें घूम जातीं । पश्चात्तापकी ठंडी साँस उनके हृदयसे फूट पड़ती । अधिक व्यथित हो जातीं तो नेत्र रोने लगते । व्यथाके भारको दबाते, महाराज दशरथके चित्रके समक्ष खड़ी हो जातीं । अपलक नेत्रोंसे देखती हुई बुदबुदा उठतीं, 'देव ! राम-वनवासकी अवधि समाप्त हो रही है । राम आनेवाले हैं । राम राजा होंगे और भरत उनका सहयोगी । आपके रामराज्यका स्वप्न साकार होगा, किंतु मेरा क्या होगा ।'

कण्ठ रुँध गया । 'नाथ ! कैसा असीम प्रेम था आपका ! मेरी प्रशंसा करते अघाते न थे । प्रधानमन्त्रीप त्रियोंमें मेरी मन्त्रणा लेते थे । समरमें मैं ही आपकी सहयोगिनी बनकर जाती थी । आपको स्मरण है, देव ! जब देवासुर-संग्राममें रथकी कीलके निकलनेसे रथ गिरने लगा था, मैंने अपनी अँगुली लगाकर भयंकर दुर्घटनासे उसे बचा लिया था । आपने मेरे साहस, मेरी सूझकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी । दो वर देनेका वचन दे दिया, किंतु वे वरदान मेरे लिये अभिशाप हो गये ।

'अन्तिम समयमें आपका प्रेम अमिट घृणामें परिवर्तित हो गया ।' वे रुकीं । घटना भयंकरतासे घूम रही थी । कैसा विश्वास भारूढ़ हो गया था मुझपर ! आपकी वचन पालनाओंमें पड़कर दुर्गन्ध भरी मुझे ! आपकी निश्छल लालसामें कुटिलता भरी और आपका प्रेम केवल रोग

प्रतीत हुआ । आपके कुसुम-कोमल हृदयको मेरे कटु शब्दोंने मर्माहत कर दिया । पुत्रकी ममतामें मुझ मोहान्ध पिशाचिनीको मिला क्या ? असह्य वैधव्य । सर्वस्व दाँव पर लगाकर हम हारी हुई जुआरिनीको उपलब्ध हुए पुत्रकी घृणा, तिरस्कार और ग्लानि !' विदीर्ण होते हुए हृदयको उन्होंने कसकर सँभाला ।

त्वरित गतिसे आती हुई कुब्जाने पुकारा—'महारानी !' उसके स्वरमें दर्द था । 'मन्थरा ! तू ! कैसे आयी ?' आश्चर्यसे कैकेयीने पूछा । 'फिर कोई षड्यन्त्रकी योजना बनाकर लायी है क्या ? अब किसका निर्मूलन चाहती है ? अपनी पुत्रीवत् कैकेयीको वैधव्य देकर, पुत्रसे वञ्चित कर, संसारमें अपयशकी पात्री बनाकर अब और क्या लाभ लेकर आयी है ?' ये उठीं अञ्चलमें मुख छिपाकर कैकेयी । उनका दबा हुआ आक्रोश आँसुओंमें बहने लगा ।

'अब अधिक न कहो, महारानी !' कातर स्वरमें मन्थरा बोली । "तुम मेरी दशा नहीं समझ सकतीं; हर समय हृदयमें जलन रहती है । मेरी आत्मा मुझे कचोटती है; मनुष्यकी छायासे मुझे भय लगने लगा है; दिनमें बाहर निकलनेका साहस नहीं होता । जन-जनकी अँगुलियाँ उठने लगती हैं—यही है वह कोपीढ़ी, जिसने अयोध्या उजाड़ दी; यह चाण्डाली अब यहीं है ।' भागती हूँ दूर, बहुत दूर, बकरी-बिल्लीकी तरह ।'' वह रुकी । हाँफने लगी ।

''तुमने सत्य कहा था, विदित रानी ! —कानेकी, कुबड़े बड़े कुटिल, कुचाली होते हैं । उसपर स्त्री और वह भी दासी ।' उस दिन छोटे कुमार मुझे पछीटकर और लात मारकर चले गये । प्राण ले लेते तो अच्छा था । एक पापिनी, कुल-उजाड़नीसे पृथ्वी मुक्त हो जाती । भाग्यमें भभी ठोकरें बदी हैं ।'' मन्थरा फूट-फूटकर रो उठी और द्रवित हो गयीं महारानी कैकेयी । उन्हें मन्थरा निर्दोष लगी । ऐसा हृदय ही अविश्वासी हो गया था । मत रो, पगली ! अब तो घोर जीवन ही रोते बीतेगा ।'

'माँ ! ओ री माँ ! कहाँ हो अम्बे !'

कैकेयी चौंकीं । 'यह तो रामका स्वर है । क्या राघव आ गया !'

'यही शुभ संवाद सुनाने आयी थी, रानी विदित !' कहकर मन्थरा कराहती रोती एक ओर चली गयी । राम कक्षमें आये । दौड़कर माँके चरणोंमें गिर गये । कैकेयीने

रामको हृदयसे लगा लिया । उन्हें लगा, जैसे उनकी युगों व्यथा शान्त हो गयी हो ।

'राघव !' कैकेयीके मुखसे निकला और मुस्कराकर पुलक पड़े ।

'मेरे नयन तुम्हें उस विशाल जन समूहमें ढूँढ़ रहे थे अम्बे ! ऐसा भास हुआ, माँ अपने रामसे रुष्ट है ! मनाने आया हूँ ।'

'क्या कह रहे हो, राघव ! तुमसे नहीं, स्वयंसे रुष्ट हूँ । क्षमा करो, राम !'

'अपने पुत्रसे क्षमा !' प्रभु माँकी शान्तिदायिनी गोदमें थे ।

''हा रघुवेन्द्र ! तुम्हारे सामने मेरी दृष्टि नहीं उठती । मेरी आत्मा प्रताड़ित करती है मुझे । भरतकी भक्ति छिन गयी है मेरी । इतिहास मुझे कभी न क्षमा करेगा । आनेवाली पीढ़ी—'कलङ्किनी, पतिघातिनी, पुत्र परित्यक्ता' कहकर घृणासे मुझपर थूकेगी । मैं पापिनी हूँ, हत्यारी हूँ । मैं तुम्हारी माँ कहलानेयोग्य नहीं हूँ ।''

'अम्बे ! तुम्हारी महानता स्वार्थी संसार न जान सकेगा, अपयशका भाजन बनना, स्वेच्छासे वैधव्य वरण करना, घृणा, आक्रोश, कटु आलोचनाओंको सुनना और सहना तुम्हारा ही काम था । सत्य कहता हूँ, माँ ! तुम ऐसा साहस न करतीं तो संसार राक्षसके आतताइयोंसे मुक्त न होता । तुम्हारे रामको वनवासी जीवन बिताकर ऐसा समागमका अवसर न मिलता । तुम्हारा महान् त्याग है, माँ !'

''मेरे स्वार्थको त्यागकी संज्ञा न दो, राघव ! मैं पुत्र प्रेममें अंधी हो गयी थी । केवल भरतको सिंहासनासीन देखनेके लिये मैं संसारमें बड़ी-से-बड़ी विपत्ति सहनेके लिये तत्पर थी और वही किया मैंने । राम ! सत्य कहती हूँ, मैं जननी होकर भी भरतको न समझ सकी ! जान पाती तो यह अनर्थ न होता । जिसके लिये यह सब किया, वह भी मेरा न हो सका । मेरा हृदय निरन्तर क्षुब्ध रहता है । भरत मुझे 'माँ' कहकर नहीं पुकारता । मेरी आत्मा कलपती है । मैं हारे जुआरीकी भाँति कहीं की नहीं रही । वधि पुत्र दोनोंसे हाथ धो बैठी ।'' कैकेयी रुआँसी हो गयीं ।

'दुःखी मत होओ, माँ ! तुमने एक दिन कामना की थी—राम और सीता मेरे पुत्र-पुत्रवधू बनकर रहें । मुझे अपना ही बना लो, माँ !' रामने कैकेयीके चरण पकड़ लिये !

शबरीपर कृपा

'तुम कहती थी न ! राम और भरत मेरे दो नेत्र हैं। फिर पर अभाव कैसा ?'

'नहीं राम !' कैकेयीने रामको अपने समीप बैठा लिया। 'तुम मुझे अन्यथा न समझो। विश्वास करो, तुम मुझे भरतसे बढ़कर प्रिय हो। अज्ञानने ही अनर्थकी सृष्टि कर दी। भरतके त्यागने मेरे नेत्र खोल दिये। राम! पश्चात्तापकी अग्निमें मेरा कलुष, मेरा स्वार्थ, मेरी अंधी ममता भस्म हो गयी।'

'जिस कार्यका परिणाम शुभ हो, सुखदायी हो, वह श्लाघनीय है। त्रैलोक्यमें शान्तिकी स्थापनाका श्रेय तुम्हें ही है, जननी! तुम्हारी निन्दा करनेवाला नारकी है। भरतजननी होनेका गौरव तुमसे कोई न छीन सकेगा। माँ! राम उसी गौरवमयी जननीको प्रणाम करता है।' कैकेयी मुस्करायीं। रामका मस्तक चूमकर आशीर्वाद देने लगीं। ग्लानि और विषादका भार हटनेसे हृदय प्रसन्न हो गया। 'मन्थराको भी क्षमादान दे दो, राम!' कहकर कैकेयीने मन्थराको पुकारा। मन्थरा लजाते हुए, कुली-सी श्रीरामके चरणोंमें लिपट गयी—'मुझे क्षमा करो, सरकार! मैं पापिनी हूँ।' 'ज्ञानी माँ!' कुब्जाको उठाते हुए प्रभु बोले, 'पश्चात्तापकी अग्निने तुम्हें कुंदन बना दिया है। अब तुम पवित्र हो।'

उसी समय प्रहरीने सूचना दी—'गुरुदेवने स्मरण किया है।' प्रभु खड़े हो गये। मुस्कराते हुए प्रभु बोले—'इच्छा होती है, माँ! तुम्हारे चरणोंमें ऐसे ही बैठा रहूँ।'

कैकेयी हँस पड़ीं। 'सिंहासनपर प्रजाधीश बैठकर इन नेत्रोंको सफल करो, राम!' 'आशीर्वाद दो, माँ! राम अपने महान् उत्तरदायित्वको जनताका सेवक बनकर निभा सके।' 'जननीका आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ है, राघवेन्द्र!'

प्रभु माँके चरणोंमें अभिवादन करके विदा हुए।

×   ×   ×

महाराज, राजराजेन्द्र, राजेन्द्र रामका राज्याभिषेक सूर्यकुलकी मर्यादा एवं परम्पराके अनुसार आनन्दपूर्वक समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। श्रीकिशोरीजीसहित श्रीरामको सिंहासनपर सुशोभित देखकर जन मनका मानस हर्षोद्वेलित हो गया। माताएँ अपनी चिर-पोषित कामना-लताको पुष्पित-पल्लवित देखकर फूली नहीं समा रही थीं। पुनः-पुनः उनकी आरती उतारती थीं।

चक्रवर्ती महाराज दशरथका अभाव उनके अपार हर्षमें टीस उठा देता और दो बूँद आँसू कपोलोंपर ढुलक आते। दानके बाहुल्यने याचकोंको अयाचक बना दिया। सुरगण विमानोंसे पुष्प बरसाकर हर्ष बिखेर रहे थे।

'राघवेन्द्र सरकारकी जय! कोसलेश दाशरथि रामकी जय! महारानी जनकनन्दिनी किशोरीजीकी जय!' के नारोंसे दिशाएँ प्रतिध्वनित हो रही थीं।

×   ×   ×

महारानी जानकीकी प्रिय सखी पद्माको आते देखकर गौतमीने टोका—'इतने दिनसे कहाँ थी, पद्मा?'

'महाराज तथा महारानीके साथ मिथिला गयी थी। प्रभु वहाँ निमन्त्रित थे।'

'विशेषकर?'

''चौदह वर्षके पश्चात् प्रभु अपनी ससुराल न आते! अच्छा, कारण बताऊँ? सुन! महारानी सुनयनाने सुना, राघवेन्द्रको किसीके हाथका भोजन रुचिकर नहीं लगता। सभी माताएँ खिलाकर हार गयीं। गुरुपत्नी देवी अरुन्धती भी प्रभुको संतुष्ट न कर सकीं। महारानीने संकल्प लिया—'मैं अपने जामाताको भक्ष्य पदार्थ खिलाकर प्रसन्न करूँगी'।''

'हो-ही-हो गये थे?'

''नहीं! अरी वे मानवदेहधारी भालू-वानर भी साथ थे। सभीने प्रभुसे ससुराल देखनेका आग्रह किया। जानती हो, प्रभु कितने संकोची हैं! अपने जनकी प्रार्थनाकी कभी उपेक्षा कर सकते हैं! महाराजने स्वीकृति दे दी। महारानी संकोचमें पड़ गयीं—कहीं ये लोग ससुरालमें प्रभुको उपहासास्पद न बना दें।' प्रभुके समझानेपर शान्त हो गयीं।''

'कोई ऐसी घटना तो नहीं हुई?'

'गौतमी! बड़ा आनन्द आया।' गौतमीकी जिज्ञासा बढ़ी। वह उत्सुकतासे सुनने लगी।

''प्रभुने वहाँ सबको समझा दिया था कि कोई ऐसा अशोभनीय कार्य न हो, जिससे मुझे लज्जित होना पड़े।' सबने एक स्वरसे आश्वासन दिया—'प्रभु! हम सब शिष्ट व्यवहार करेंगे एवं मर्यादामें रहेंगे। फिर भी भरत भैयाको अनुमति दें हमारा नेता बना दें। हम सब इन्हींका अनुसरण करेंगे।' कपियोंकी प्रभुको... देखते मुस्कराहटका संवरण करने लगे।...

''शबरी रात्रिमें उठकर आश्रम तथा दूर-दूरतक मार्गको झाड़ती। प्रत्येक ऋषिकी कुटीमें हवनके लिये समिधा बटोर-कर रख आती। इस नवीन व्यवस्था एवं सुविधासे आश्रम-वासी प्रसन्न भी थे और चकित भी।

''एक दिन किसी कर्मकाण्डी ब्रह्मचारीने उसे देख लिया। अन्त्यज, अछूत, अस्पृश्य सुनकर उसकी भर्त्सना की, अपशब्दोंसे भविष्यमें आश्रमको दूषित न करनेकी चेतावनी दी। उसने आश्रमके सभी ऋषियोंको भड़काया। महर्षि मतंगसे उस अछूत नारीको आश्रमसे निकालनेकी प्रार्थना की, इस धमकीके साथ कि यदि वे उसे नहीं निकालेंगे तो महर्षि-का भी बहिष्कार सार्वजनिक रूपसे कर दिया जायगा।

''प्रसन्न ऋषिने सामाजिक बहिष्कार स्वीकार किया, किंतु परम्परागत शबरीको आश्रमसे नहीं जाने दिया। महर्षिका देहावसान निकट था। उन्होंने शबरीको बुलाकर कहा—'बेटी! धैर्यसे कष्ट सहन करती हुई साधनामें लगी रहना। प्रभु राम एक दिन तेरी कुटियामें अवश्य आयेंगे।'

''प्रभु आयेंगे! मुझ दीन-हीनकी कुटियामें प्रभु आयेंगे!'

''हाँ बेटी! प्रभुकी दृष्टिमें कोई दीन-हीन नहीं, कोई अस्पृश्य नहीं। वे तो भावके भूखे हैं, अन्तरकी प्रीतिपर रीझते हैं।' शबरीमें आत्मबल जगा। उसका मन अभूतपूर्व आनन्दसे भर गया। महर्षिकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

''प्रभु आयेंगे।' गुरुदेवकी वाणी उसके कानोंमें गूँजती रहती और इसी विश्वासपर वह कर्मकाण्डी ऋषियोंके अनाचार शान्तिसे सहती हुई अपनी साधनामें लगी रही।

''एक दिन जलाशयमें जल भरते देखकर उस अभिमानी बटुकने शबरीके मस्तकपर जलसे भरा घड़ा दे मारा। शबरीका सिर फट गया। जलाशय रक्तरंजित हो गया। जल दूषित हो गया। जलमें कीड़े पड़ गये। जल न मिलनेसे सबकी मनकी कोपभाजन हो गयी।

''अब वह बूढ़ी हो गयी थी। नित्य मेरे स्वागतकी लालसामें कुटीको झाड़ती-बुहारती, गौके गोबरसे लीपकर पवित्र करती। मेरे भोगके लिये फल लाकर रखती और फिर मुझे लानेके लिये दूरतक मार्ग देखती हुई जाती। ऊँचे टीलोंपर चढ़कर, जहाँतक उसके नेत्र देख पाते, मुझे खोजती। संध्याको टूटी-सी निराशा लिये लौटती। मुनिके शब्द उसके व्यथित हृदयको आशा धैर्यसे रखते थे।

''प्रातःसे फिर उसकी प्रतीक्षा प्रारम्भ हो जाती। कभी गुनगुनाती, कभी उच्चस्वरसे गाती। कभी प्रेममें मतवाली हो नाचती, कभी रोती अपनी दीनता हीनतापर। 'प्रभु मुझे कैसे मिलेंगे! मुझसे कोई भी साधन नहीं बनता। नारी वैसे ही अधम होती है, फिर मैं तो दुर्बुद्धि गँवारिन हूँ। कैसे अपनायेंगे मुझे मेरे नाथ!' किंतु महर्षिकी वाणीका स्मरण आनेपर उसकी दीनता लुप्त हो जाती। वह उमंगमें भरी मुझे लेने जाती। बालक-युवा सभी उसे चिढ़ाते—'प्रभु आ रहे हैं।' और वह विश्वास करके मुझे खोजने जाती। कहते-कहते प्रभुका हृदय भर आया।'' कुछ क्षण रुककर फिर बोले—''मार्गमें लोगोंसे पूछती, तुमने मेरे रामको देखा है! आ रहे हैं न मेरे प्रभु!' लोग उसका उपहास करते। उसे विभिन्न मार्गोंपर भेजकर ठहाका मारकर हँसते। बूढ़ी भटकती हुई अन्तमें खिन्नता लेकर अपनी कुटियामें लौट आती। उसे किसीपर क्रोध न आता। सोचती, 'आज प्रभुको कोई कार्य हो गया होगा, कल अवश्य आयेंगे।'

''प्रातः उठते ही सबसे कहती, 'आज प्रभु मेरी कुटियामें अवश्य आयेंगे।' सब हँस पड़ते। कोई कितना ही व्यङ्ग्य करता, विनोद करता, उसे चिन्ता न थी। एक दिन उसने सबके मुखसे सुना, 'राम आ रहे हैं।' वह हर्षसे पागल-सी हो उठी। कुटीको झाड़-बुहारकर फल लेने वृक्षपर चढ़ गयी और मधुर फल तोड़ने लगी। उसी समय एक ऋषि आया। उसने डरा-धमकाकर बूढ़ीको भगा दिया।

''कुछ क्षण पश्चात् छुपती-छिपती वृक्षोंके नीचे गिरे फलोंको दोनेमें भरने लगी। स्वच्छ जलसे उसने फलोंको धोकर कुटीमें रखा। वह विचारने लगी—'कहीं खट्टे न हों। मेरे प्रभु तो मधुर-प्रिय हैं।' अपने रामको मीठे फल खिलानेकी इच्छामें वह मर्यादा भूल गयी। उत्कट प्रेममें नियम नहीं रहता, माँ!' श्रीरामने कौसल्या अम्बाकी ओर देखा।

''वह अपने फलोंको चख-चखकर मीठे-मीठे फल दोनोंमें भरकर रख दिये।

''अरी, तेरे राम आश्रमसहित आ गये हैं।' एक बुढ़ने सूचना दी। फिर क्या था! बिना लकुटके भागी। मुझे देख, निढाल हो गयी। चरणोंमें लोट गयी। बेदकी सुध-बुध भूल गयी। अश्रुजलसे मेरे चरणोंको भिगोने लगी। पश्चात् मैंने उसे उठाया। आगे-आगे मार्ग दिखाती चलने लगी। मुझे देखती जाती। वह गद्गद हो रही थी।

''बूढ़ी हमें कुटियामें लायी। हाथोंसे मेरे चरण धोकर आसनपर बैठाया। फलोंके दोनोंको सामने रखकर मेरे समीप बैठ गयी। स्नेहसिक्त वाणीमें बोली—'प्रभु! मैं अपने

"शबरी रात्रिमें उठकर आश्रम तथा दूर-दूरतक मार्गको झाड़ती। प्रत्येक ऋषिकी कुटीमें हवनके लिये समिधा बटोर कर रख आती। इस नवीन व्यवस्था एवं सुविधासे आश्रम-वासी प्रसन्न भी थे और चकित भी।

"एक दिन किसी कर्मकाण्डी ब्रह्मचारीने उसे देख लिया। भस्पृश्य, अछूत, अशुभ सुनकर उसकी भर्त्सना की, अपशब्दोंसे भविष्यमें आश्रमको दूषित न करनेकी चेतावनी दी। उसने आश्रमके सभी ऋषियोंको भड़काया। महर्षि मतंगसे उस अछूत नारीको आश्रमसे निकालनेकी प्रार्थना की, इस धमकीके साथ कि यदि वे उसे नहीं निकालेंगे तो महर्षि-का भी बहिष्कार सार्वजनिक रूपसे कर दिया जायगा।

"दयालु मुनिने सामाजिक बहिष्कार स्वीकार किया, किंतु शरणागता शबरीको आश्रमसे नहीं जाने दिया। महर्षिका देहावसान निकट था। उन्होंने शबरीको बुलाकर कहा—'बेटी! धैर्यसे कष्ट सहन करती हुई साधनामें लगी रहना। प्रभु राम एक दिन तेरी कुटियामें अवश्य आयेंगे।'

"प्रभु आयेंगे! मुझ दीन-हीनकी कुटियामें प्रभु आयेंगे!'

'हाँ बेटी! प्रभुकी दृष्टिमें कोई दीन-हीन नहीं, कोई अस्पृश्य नहीं। वे तो भावके भूखे हैं, भक्तकी प्रीतिपर रीझते हैं।' शबरीमें आत्मबल जगा। उसका मन अप्रत्याशित आनन्दसे भर गया। महर्षिकी जीवन-लीला समाप्त हुई।

'प्रभु आयेंगे।' गुरुदेवकी वाणी उसके कानोंमें गूँजती रहती और इसी विश्वासपर वह कर्मकाण्डी ऋषियोंके अनाचार शान्तिसे सहती हुई अपनी साधनामें लगी थी।

'एक दिन जलाशयमें जल भरते देखकर उस अभिमानी ऋषिने शबरीके मस्तकपर जलसे भरा घड़ा दे मारा। शबरीका सिर फट गया। जलाशय रक्तरञ्जित हो गया। जल दूषित हो गया। जलमें कीड़े पड़ गये। जल न मिलनेसे सारी नगरी कोलाहलमय हो गयी।

"अब वह बूढ़ी हो गयी थी। किंतु मेरे रामजीकी प्रतीक्षामें कुटीको झाड़ती-बुहारती, गौके गोबरसे लीपकर पवित्र करती। मेरे भोगके लिये फल लाकर रखती और फिर मुझे लानेके लिये दूरतक मार्गको देखती हुई जाती। कभी दीपोंसे सजाकर, अर्धरात्रि उसके नेत्र देख पाते, मुझे खोजती। गम्भीरतासे दूरीकी निराशा लिये लौटती। मुनिके शब्द उसके व्यथित हृदयको आशा बँधाये रखते थे।

"प्रातःसे फिर उसकी प्रतीक्षा प्रारम्भ हो जाती। कभी गुनगुनाती, कभी उच्चारने लगती। कभी प्रेममें मतवाली हो नाचती, कभी रोती अपनी दीनता-हीनतापर। 'प्रभु मुझे कैसे मिलेंगे! मुझसे कोई भी साधन नहीं बनता। नारी वैसे ही अधम होती है, फिर मैं तो कुबुद्धि गँवारिन हूँ। कैसे अपनायेंगे मुझे मेरे नाथ!' किंतु महर्षिकी वाणीका स्मरण आनेपर उसकी दीनता लुप्त हो जाती। वह उमंगमें भरी मुझे ढूँढ़ने जाती। बालक-युवा सभी उसे चिढ़ाते—'प्रभु आ रहे हैं।' और वह विश्वास करके मुझे खोजने जाती। कहते-कहते प्रभुका हृदय भर आया।" कुछ क्षण रुककर फिर बोले—"मार्गमें लोगोंसे पूछती, 'तुमने मेरे रामको देखा है? आ रहे हैं न मेरे प्रभु!' लोग उसका उपहास करते। उसे विभिन्न मार्गोंपर भेजकर ठहाका मारकर हँसते। बूढ़ी भटकती हुई अन्तमें निराश होकर अपनी कुटियामें लौट आती। उसे किसीपर क्रोध न आता। सोचती, 'आज प्रभुको कोई कार्य हो गया होगा, कल अवश्य आयेंगे।'

"प्रातः उठते ही सबसे कहती, 'आज प्रभु मेरी कुटियामें अवश्य आयेंगे।' सब हँस पड़ते। कोई कितना ही व्यङ्ग्य करता, विनोद करता, उसे चिन्ता न थी। एक दिन उसने सबके मुखसे सुना, 'राम आ रहे हैं।' वह हर्षसे पागल-सी हो उठी। कुटीको झाड़-बुहारकर फल लेने दौड़कर चढ़ गयी और मधुर फल तोड़ने लगी। उसी समय एक ऋषि आया। उसने टका-सा जवाब बूढ़ीको भगा दिया।

'कुछ क्षण पश्चात् छुपती-छिपती वृक्षोंके नीचे गिरे फलोंको दोनोंमें भरने लगी। स्वच्छ जलसे उसने फलोंको धोकर कुटीमें रखा। वह विचारने लगी—'कहीं खट्टे न हों! मेरे प्रभु तो मधुर-प्रिय हैं।' अपने रामको मीठे फल खिलानेकी इच्छामें वह मर्यादा भूल गयी। उत्कट प्रेममें नियम नहीं रहता, माँ।' श्रीरामने कौसल्या अम्बाकी ओर देखा।

'वह अपने फलोंको चखती जाती। मीठे मीठे फल दोनोंमें भरकर रख दिये।

'अरी, तेरे राम भ्रातासहित आ रहे हैं।' एक वृद्धने सूचना दी। फिर क्या था! बिना लकुटके भागी। मुझे देखा, निढाल हो गयी। चरणोंमें लोट गयी। देखते मुध-बुध भूल गयी। अश्रुजलसे मेरे चरणोंको भिगोने लगी। तत्काल मैंने उसे उठाया। आगे-आगे मार्ग दिखाती चलने लगी। मुझे देखती जाती। वह गद्‌गद हो रही थी।

"बूढ़ा हमें कुटियामें लायी। हाथोंसे दो आसन लेकर आनन्दसे बैठाया। फलोंके दोनोंको सामने रखकर मेरे समीप बैठ गयी। प्रेमसिक्त वाणीसे बोली—'प्रभु! ये ...

आधार और आश्रय प्रियबन्धु लक्ष्मणका रण-शय्यापर शयन—इस दृश्यको देखकर और रामके विलापको सुनकर भी जो व्यक्ति रो न पड़े, उसकी संसारमें क्या औषध है ? ऐसी परिस्थितिमें सुषेण वैद्यवाले प्रहसनके दृश्यको उपस्थित कर देना केवल भयंकर भूल ही नहीं, अपितु अपराध भी है। साहित्यके नौ रसोंमें, कुछ परस्पर मित्र रस होते हैं, कुछ विरोधी रस तथा कुछ उदासीन रस। करुण और हास्य—ये दो सर्वथा विरोधी रस हैं, इनका एक ही स्थानपर आ जाना महान् साहित्यिक दोष है। किसी घोर विपत्तिमें फँसे हुए व्यक्तिको रोते हुए देखकर यदि कोई हँसने लगे, या दूसरेको हँसानेका प्रयत्न करने लगे तो आप उसे क्या समझेंगे ? मेरी समझसे तो यह सुषेण वैद्यवाला दृश्य बिल्कुल न रहे तो भी कोई हानि नहीं। कितनी ही रामायणोंके अनुसार यह वैद्यवाला कार्य जाम्बवंत ही करता है या सुषेण नामका वानर ही करता है। ऐसी स्थितिमें मैं नहीं समझता कि लङ्काके सुषेण वैद्यको लानेकी यहाँ क्या आवश्यकता है। इस कार्यको यदि सुषेण नामका वानर ही सम्पादित कर दे तो अधिक स्वाभाविक, युक्तियुक्त और उपयुक्त होगा। हाँ, यदि संजीवनी ओषधिके आ जानेपर हास्य विनोद, आमोद-प्रमोद हो जाय तो कोई हानि नहीं। बल्कि ऐसा होना स्वाभाविक भी है और होना चाहिये। इस प्रसङ्गपर गोस्वामी तुलसीदासजी अपनी भिन्न-भिन्न रामायणोंमें बहुत कुछ लिख चुके हैं। हमारा कर्तव्य तो केवल इतना रह जाता है कि हम हृदयहारी रूपमें उस सामग्रीको अपने दर्शकोंके सामने उपस्थित कर दें। यहाँपर उन सूक्ष्म स्थलोंको नहीं भूल जाना चाहिये, जो रामके चरित्रको साधारण कोटिसे बहुत ऊँचे ले जाते हैं। उनमेंसे एक रामकी शरणागतवत्सलता है। गोस्वामीजीने अपनी गीतावलीमें इसका बड़ा ही हृदयस्पर्शी वर्णन किया है—

> मेरो सब पुरुषारथ थाको।
> बिपति-बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको॥
> सुनु, सुग्रीव ! साँचेहूँ मो पर फेर्‍यो बदन बिधाता।
> ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लखन-सो भ्राता॥
> गिरि-कानन जैहैं साखामृग, हौं पुनि अनुज-सँघाती।
> ह्वैहै कहा बिभीषनकी गति, रही सोच भरि छाती॥
>
> (गीतावली ६।७।१-३)

घोर विपत्तिकालमें भी यह है हमारे परित्राताकी अपने शरणागतकी रक्षाके लिये व्याकुलता—जिसके कारण ही वे आज अपने भक्तोंके हृदय-सम्राट् बने हुए हैं। हमारा प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास इस प्रकारकी घटनाओंसे शून्य नहीं है, परंतु रामकी शरणागतवत्सलता कुछ विलक्षण है। सम्पत्तिकालमें तो सभी शरण दे सकते हैं, परंतु घोर विपत्तिके समय भी किसीको शरण देना रामका ही काम था। यह था उनका आत्म-विश्वास—जिसके बलपर उन्होंने समस्त-भुवन-विजयी लङ्कापतिके विरोधी विभीषणका समुद्र-तटपर ही राज्यतिलक कर दिया था।

इस व्याकुलता और करुण-विलापके पश्चात् सेवकके आदर्श और कार्य-पटुताकी प्रतिमूर्ति बालब्रह्मचारी महावीर हनुमान्‌जीके वे वीरदर्पपूर्ण सान्त्वनादायक वाक्य भी नहीं भूलने चाहिये—

> जौ हौं अब अनुसासन पावौं।
> तौ चंद्रमहि निचोरि चैल-ज्यौं, आनि सुधा सिर नावौं॥
> कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं।
> भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
> बिबुध-बैद बरबस आनौं धरि, तौ प्रभु-अनुग कहावौं।
> पटकौं मीच नीच मूषक-ज्यौं, सबहि को पापु बहावौं॥
>
> (गीता॰ ६।८।१-३)

—इन शब्दोंसे रामको अथवा श्रोताओंको कितनी सान्त्वना मिलेगी, यह सोचनेकी बात है। यह रामके सेवकका आत्म-विश्वास है। कोई इसे गर्वोक्ति समझेंगे, परंतु नहीं। यह ब्रह्मचर्यका प्रताप है और है एक सच्चे भक्तका अपने स्वामीपर दृढ़ विश्वास—जिसके बलपर महावीरजी मृत्युको पकड़कर मूषककी तरह पटककर मार देना चाहते हैं, फिर लक्ष्मणको मारनेवाला रहा ही कौन !

अब अन्तमें नन्दिग्रामके जटा-वल्कलधारी उस महात्माके पास आ जाइये, जिसने अपनी अभूतपूर्व कठोर तपस्याके द्वारा बड़े-बड़े योगियोंको भी लज्जित कर दिया था। इस दृश्यको यों ही छोड़ देना उस महात्माके प्रति घोर अन्याय करना है। आज चौदह वर्षकी अवधि समाप्त होनेवाली है। पुण्यश्लोक भरतके निष्कलङ्क हृदयमें स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम अभीतक क्यों नहीं लौटे। अपनेको ही दोषी ठहराकर, अपनेको ही बार-बार धिक्कारते हुए चिन्तामग्न भरतको अकस्मात् मार्गमें कुछ गुनगुना रहे थे कि ब्रह्मचारी हनुमान्‌जीका दिया हुआ रामके लौट आनेका शुभ संवाद उनके कर्णकुहरमें प्रविष्ट

होता है। उस समय उनकी क्या दशा हुई होगी, इसके प्रदर्शनमें अत्यन्त सावधानीकी आवश्यकता है। किस उत्साह, उमंग और उत्कण्ठाके साथ उन्होंने रामके स्वागतकी तैयारी की होगी, उसका दिखाना भी आवश्यक है। स्वागतकी ये सब तैयारियाँ रङ्गमञ्चपर ही दिखायी जानी चाहिये तथा कुछ दूर और आगे बढ़कर रङ्गमञ्चपर ही अर्थात् दर्शकोंके सम्मुख ही राम और भरतका मिलाप दिखाया जाना चाहिये—रङ्गमञ्चके बाहर नहीं।

इस प्रकार जिस श्रीरामायण महानाटकका मैं स्वप्न देख रहा हूँ, उसके पूर्वार्धका यह ढाँचा तैयार किया जा सकता है। सम्पूर्ण सामग्री रखना न तो मेरा उद्देश्य है और न मुझमें उतनी योग्यता ही है। मेरा अभिप्राय तो केवल इसके संकेतमात्र कर देना था। रामका उत्तर-चरित भी इस महानाटकके अन्तर्गत आना चाहिये। हाँ, उसका रङ्गमञ्चपर दिखाया जाना अभी भारतीय रुचिके विरुद्ध है—इसके लिये अभी कुछ और अधिक ठहरनेकी आवश्यकता है। सुन्दर नाटक देखनेकी भारतीय जनता जबतक पूर्ण अभ्यस्त न हो जाय, तबतक रामका उत्तर-चरित न दिखाना ही उचित है।

परमभाग्यवान् पिता दशरथ

जिनके यहाँ भक्तिप्रेमवश साक्षात् सच्चिदानन्दघन प्रभु पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए, उन परमभाग्यवान् महाराज श्रीदशरथकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है। महाराज दशरथजी मनुके अवतार थे, जो भगवान्‌को पुत्ररूपमें प्राप्तकर अपरिमित आनन्दका अनुभव करनेके लिये ही धराधाममें पधारे थे और जिन्होंने अपने जीवनका परित्याग कर मोक्षतकका संन्यास करके श्रीराम-प्रेमका आदर्श स्थापित किया।

श्रीदशरथजी परम तेजस्वी मनुमहाराजकी भाँति ही प्रजाकी रक्षा करनेवाले थे। वे वेदके ज्ञाता, विशाल सेनाके स्वामी, दूरदर्शी, अत्यन्त प्रतापी, नगर और देशवासियोंके प्रिय, महान् यज्ञ करनेवाले, धर्मप्रेमी, स्वाधीन, महर्षियोंके सदृश गुणोंवाले, राजर्षि, त्रिलोकप्रसिद्ध पराक्रमी, शत्रुनाशक, उत्तम मित्रोंवाले, जितेन्द्रिय, अतिरथी*, धन-धान्यके संचयमें कुबेर और इन्द्रके समान, सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्म, अर्थ तथा कामका शास्त्रानुसार पालन करनेवाले थे। (वा० रा० १। ६। १ से ५ तक)

इनके मन्त्रिमण्डलमें महामुनि वसिष्ठ, वामदेव, सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय, कात्यायन, धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप और धर्मपाल-जैसे विद्या-विनयसम्पन्न, अनीतिमें लजानेवाले, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, श्रीसम्पन्न, पवित्र हृदय, शास्त्रज्ञ, शस्त्रज्ञ, प्रतापी, पराक्रमी, राजनीतिविशारद, सावधान, राजाज्ञाका अनुसरण करनेवाले, तेजस्वी, क्षमावान्, कीर्तिमान्, हँसमुख, काम-क्रोध और लोभसे बचे हुए एवं सत्यवादी पुरुषप्रवर विद्यमान थे। (वा० रा० १। ७)

आदर्श राजा और मन्त्रिमण्डलके प्रभावसे प्रजा भी प्रकारसे धर्मरत, सुखी और सम्पन्न थी। महाराज दशरथकी सहायता देवता लोग भी चाहते थे। महाराज दशरथने अनेक यज्ञ किये थे। अन्तमें पितृ-मातृ-भक्त श्रवणकुमारके वधका प्रायश्चित्त करनेके लिये अश्वमेध, तदनन्तर ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित् और आप्तोर्याम आदि यज्ञ किये। इन यज्ञोंमें दशरथने अन्यान्य वस्तुओंके अतिरिक्त दस लाख दुधारू गायें, दस करोड़ सोनेके सिक्के और चालीस करोड़ चाँदीके रुपये दान दिये थे।

इसके बाद पुत्रप्राप्तिके लिये ऋष्यशृङ्गको ऋत्विज बनाकर उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिसमें समस्त देवगण अपना-अपना भाग लेनेके लिये स्वयं पधारे थे। देवता और मुनि-महर्षियोंकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीविष्णुने दशरथके यहाँ पुत्ररूपमें अवतार लेना स्वीकार किया और यज्ञकुण्डसे स्वयं प्रकट होकर पायसरूपमें चरु देकर दशरथको कहा कि राजन्! यह खीर अत्यन्त श्रेष्ठ, आरोग्यवर्द्धक और प्रजाकी उत्पत्ति करनेवाली है। इसको अपनी योग्य

* [illegible]

† [illegible]

आदि तीनों पत्नियोंको दिया दो।' राजाने प्रसन्न होकर मर्यादाके अनुसार कौसल्याको बड़ी समझकर उसे खीरका आधा भाग, मझली सुमित्राको चौथाई भाग और कैकेयीको आठवाँ भाग दिया। सुमित्राजी बड़ी थीं, इससे उनको सम्मानार्थ अधिक देना उचित था, इसीलिये बचा हुआ अष्टमांश राजाने फिर सुमित्राजीको दे दिया, जिससे कौसल्याके श्रीराम, सुमित्राके (दो भागोंसे) लक्ष्मण और शत्रुघ्न एवं कैकेयीके भरत हुए। इस प्रकार भगवान्‌ने चार रूपोंसे अवतार लिया।

राजाको चारों ही पुत्र परमप्रिय थे, परंतु इन सबमें श्रीरामपर राजाका विशेष प्रेम था। होना ही चाहिये, क्योंकि इन्हींके लिये तो उन्होंने जन्म धारणकर सहस्रों वर्ष प्रतीक्षा की थी। वे रामको अपनी आँखोंसे क्षणभरके लिये भी ओझल होना नहीं सह सकते थे। जब विश्वामित्रजी यज्ञरक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मणको माँगने आये, उस समय श्रीरामकी उम्र पंद्रह वर्षसे अधिक थी, परंतु दशरथने उनको अपने पाससे हटाकर विश्वामित्रके साथ भेजनेमें बड़ी आनाकानी की। आखिर वसिष्ठके बहुत समझानेपर वे उन्हें भेजनेके लिये तैयार हुए। श्रीरामपर अत्यन्त प्रेम होनेका परिचय तो इसीसे मिलता है कि जबतक श्रीराम सामने रहे, तभीतक उन्होंने प्राणोंको रक्खा और अपने वचन सत्य करनेके लिये, रामके बिछुड़ते ही राम-प्रेमानलमें अपने प्राणोंकी आहुति दे डाली।

श्रीरामके प्रेमके कारण ही दशरथ महाराजने केकय-राजके साथ शर्त हो चुकनेपर भी भरतके बदले श्रीरामको युवराज-पदपर अभिषिक्त करना चाहा था। अवश्य ही ज्येष्ठ पुत्रके अभिषेककी रघुकुलकी कुलपरम्परा एवं भरतके त्याग, आज्ञापालकता, धर्मपरायणता, शील और रामप्रेम आदि सद्गुण भी राजाके इस मनोरथमें कारण और सहायक हुए थे। परंतु परमात्माने कैकेयीकी मति फेरकर एक ही साथ कई काम करा दिये। जगत्‌में आदर्श-मर्यादा स्थापित हो गयी, जिसके लिये श्रीभगवान्‌ने अवतार लिया था। इनमें निम्नलिखित १२ आदर्श मुख्य हैं—

(१) दशरथकी सत्यरक्षा और श्रीरामप्रेम।

(२) श्रीरामके वनगमनद्वारा राक्षस-वधादिरूप लीलाओं-द्वारा दुष्टदलन।

(३) श्रीभरतका त्याग और आदर्श भ्रातृ-प्रेम।

(४) श्रीलक्ष्मणजीका ब्रह्मचर्य, सेवाभाव, रामपरायणता और त्याग।

(५) श्रीसीताजीका आदर्श पवित्र पातिव्रत-धर्म।

(६) श्रीकौसल्याजीका पुत्रप्रेम, पुत्रवधूप्रेम, पातिव्रत, धर्मप्रेम और राजनीति-कुशलता।

(७) श्रीसुमित्राजीका श्रीरामप्रेम, त्याग और राजनीति-कुशलता।

(८) कैकेयीका बदनाम और तिरस्कृत होकर भी प्रिय 'राम-काज' करना।

(९) श्रीहनूमान्‌जीकी निष्काम प्रेमाभक्ति।

(१०) श्रीविभीषणजीकी शरणागति और अभय-प्राप्ति।

(११) सुग्रीवके साथ श्रीरामकी आदर्श मित्रता।

(१२) रावणादि अत्याचारियोंका अन्तमें विनाश।

यदि भगवान् श्रीरामका वनवास न होता तो इन आदर्श मर्यादाओंकी स्थापनाका अवसर ही शायद न आता। ये सभी मर्यादाएँ महान् और अनुकरणीय हैं।

जो कुछ भी हो, महाराज दशरथने तो श्रीरामका वियोग होते ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर प्रेमकी टेक रख ली।

जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा॥
(मानस २। १५५। १)

श्रीदशरथजीकी मृत्यु सुधर गयी, रामके विरहमें प्राण देकर उन्होंने आदर्श स्थापित कर दिया। दशरथके समान भाग्यवान् कौन होगा, जिसने श्रीराम-दर्शन-लालसामें अनन्य-भावसे राम-परायण हो, रामके लिये, राम-राम पुकारते हुए प्राणोंका त्याग किया।

श्रीरामचन्द्रमें लङ्का विजयके बाद पुनः दशरथके दर्शन होते हैं। श्रीमहादेवजी भगवान् श्रीरामको विमानपर बैठे हुए दशरथजीके दर्शन कराते हैं। फिर तो दशरथ सामने आकर श्रीरामको गोदमें बैठा लेते हैं और आलिङ्गन करके हुए उनसे प्रेमालाप करते हैं। यहाँ लक्ष्मणको उपदेश करते हुए महाराज दशरथ स्पष्ट कहते हैं—'सुमित्रानन्दवर्धन लक्ष्मण! श्रीरामकी सेवामें लगे रहना, तेरा इससे बड़ा कल्याण होगा। इन्द्रसहित तीनों लोक, सिद्ध पुरुष और सभी महान् ऋषि-मुनि पुरुषोत्तम श्रीरामका अभिनन्दन कर उनकी पूजा करते हैं। वेदोंमें जिन अव्यक्त, अक्षर ब्रह्मको देवताओंका हृदय और गुप्त तत्त्व कहा है, वे परम तपस्वी राम यही हैं।' (वा० रा० ६। ११९। २०-२२)

न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा
मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्॥
न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्॥
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥
(श्रीमद्भा० ११।१४।१४-१६)

'जिस मेरे भक्तने अपना आत्मा मुझको अर्पण कर दिया है, वह मुझको छोड़कर ब्रह्माका पद, इन्द्रका पद, चक्रवर्ती राज्यका पद, पातालका राज्य, योगकी सिद्धियाँ और मोक्ष भी नहीं चाहता। उद्धवजी! मुझे आत्मस्वरूप शिवजी, संकर्षण, प्रिया लक्ष्मीजी और अपना स्वरूप भी उतने प्रिय नहीं हैं, जितने तुम-जैसे अनन्य भक्त प्रिय हैं। ऐसे निरपेक्ष, मननशील, शान्त, निर्वैर और समदर्शी भक्तोंकी चरण रजसे अपनेको पवित्र करनेके लिये मैं उनके पीछे-पीछे सदा फिरता हूँ।' कैसी महिमा है!

यद्यपि भक्त अपने भगवान्‌को पीछे-पीछे फिरानेके लिये मुक्तिका तिरस्कार कर उसे नहीं मानते, उनका तो भगवान्‌के प्रति ऐसा अहैतुक प्रेम हो जाता है कि वे भगवान्‌के सिवा दूसरी ओर ताकना ही नहीं जानते। बस, यह अहैतुक प्रेम ही परम पुरुषार्थ है, यह जानकर वे मुक्तिका निरादर कर भक्ति करते हैं—

'अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥'
(मानस ७।११८।१½)

क्योंकि भगवान्‌के गुण ही ऐसे हैं कि जिनको देखकर निर्ग्रन्थ आत्माराम मुनि भी उनकी अहैतुकी भक्ति करने लगते हैं—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥
(भागवत १।७।१०)

परमभाग्यवती माता कौसल्या

रामायणमें महारानी कौसल्याका चरित्र बहुत ही उदार और आदर्श है। ये महाराज दशरथकी सबसे बड़ी पत्नी और भगवान् श्रीरामचन्द्रकी जननी थीं। प्राचीन कालमें मनु-शतरूपाने तप करके श्रीभगवान्‌को पुत्ररूपसे प्राप्त करनेका वरदान पाया था; वे ही मनु-शतरूपा यहाँ दशरथ-कौसल्या हैं और भगवान् श्रीराम ही पुत्ररूपसे उनके घर अवतरित हुए हैं। श्रीकौसल्याजीके चरित्रका प्रारम्भ अयोध्याकाण्डसे होता है। भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक होनेवाला है। नगरभरमें उत्सवकी तैयारियाँ हो रही हैं। आज माता कौसल्याके आनन्दका पार नहीं है। वह रामकी मङ्गल-कामनासे अनेक प्रकारके यज्ञ, दान, देवपूजन और उपवास-व्रतमें संलग्न है। श्रीसीता-रामको राज्यसिंहासनपर देखनेकी निश्चित आशासे उसका रोम-रोम खिल रहा है। परंतु श्रीराम दूसरी ही लीला करना चाहते हैं। सत्यप्रेमी महाराज दशरथ कैकेयीके साथ वचनबद्ध होकर श्रीरामको वनवास देनेके लिये बाध्य हो जाते हैं।

धर्मके लिये त्याग

प्रातःकाल श्रीराम माता कैकेयी और पिता दशरथ महाराजसे मिलकर वनगमनका निश्चय कर लेते हैं और माता कौसल्यासे आज्ञा लेनेके लिये उनके महलमें पधारते हैं। कौसल्या उस समय ब्राह्मणोंके द्वारा अग्निमें हवन करवा रही है और मन-ही-मन सोच रही है कि 'मेरे राम इस समय कहाँ होंगे, शुभ लग्न किस समय है।' इतनेहीमें नित्य प्रसन्नमुख और उत्साह-पूर्ण हृदयवाले श्रीरामचन्द्र माताके समीप आ पहुँचते हैं। रामको देखते ही माता एकाएक उठकर वैसे ही सामने जाती है, जैसे घोड़ी बछेड़ेके पास जाती है। राम माताको पास आयी देख उसके गले लग जाते हैं और माता भी भुजाओंसे पुत्रका आलिङ्गन कर उनका सिर सूँघने लगती है।

इस समय कौसल्याके हृदयमें वात्सल्य रसकी बाढ़ आ गयी। उसके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बहने लगी। कुछ देरतक तो यही अवस्था रही, फिर कौसल्या रामपर निछावर करके बहुमूल्य वस्त्राभूषण बाँटने लगी। श्रीराम चुपचाप खड़े थे। अब स्नेहमयी माँसे रहा नहीं गया। उसने हाथ पकड़कर पुत्रको नन्हे-से शिशुकी भाँति गोदमें बैठा लिया और लगी प्यार करने—

'बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता॥'
(मानस २।५१

ऐसे एक सुंदरके पदको प्राप्तकर पुत्र
मात बड़ी दशा कौसल्याकी है। इतनेमें

स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अतएव पतिका हित चाहनेवाली प्रत्येक स्त्रीको केवल पतिकी सेवामें ही लगे रहना चाहिये। स्त्रियोंके लिये श्रुति-स्मृतिमें एकमात्र यही धर्म बतलाया गया है।" (वा० रा० २ । २४)

साध्वी कौसल्या तो पतिव्रताशिरोमणि थी ही, पुत्र-स्नेहसे रामके साथ जानेको तैयार हो गयी थी। अब पुत्रके द्वारा पातिव्रत-धर्मका महत्त्व सुनते ही पुनः कर्तव्यपर डट गयी और श्रीरामको वन गमनके लिये उसने आज्ञा दे दी।

जब राम वनको चले जाते हैं और महाराज दशरथ दुःखी होकर कौसल्याके भवनमें आते हैं, तब आवेशमें आकर वह उन्हें कुछ कठोर वचन कह बैठती है। इसके उत्तरमें जब दुःखी महाराज आर्तभावसे हाथ जोड़कर कौसल्यासे क्षमा माँगते हैं, तब तो कौसल्या भयभीत होकर अपने हृदयपर बड़ा भारी पश्चात्ताप करती है। उसकी आँखोंसे निर्झरकी तरह आँसू बहने लगते हैं और वह महाराजके हाथ पकड़, उन्हें अपने मस्तकपर रख घबराहटके साथ कहती है— "नाथ! मुझसे बड़ी भूल हुई। मैं धरतीपर सिर टेककर प्रार्थना करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये। मैं पुत्र वियोगसे पीड़ित हूँ, आप क्षमा कीजिये। देव! आपको जब मुझ दासीसे क्षमा माँगनी पड़ी, तब मैं आज पातिव्रत-धर्मसे भ्रष्ट हो गयी। आज मेरे सतीत्वपर कलङ्क लग गया। अब मैं क्षमाके योग्य नहीं रही, मुझे अपनी दासी जानकर उचित दण्ड दीजिये। अनेक प्रकारकी सेवाओंके द्वारा प्रसन्न करने-योग्य बुद्धिमान् स्वामी जिस स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिये बाध्य होता है, उस स्त्रीके लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। स्वामिन्! मैं धर्मको जानती हूँ, आप सत्यवादी हैं, यह भी मैं जानती हूँ। मैंने जो कुछ कहा, पुत्र शोककी अतिशय पीड़ासे घबराकर कहा है।" कौसल्याके इन वचनोंसे राजाको कुछ सान्त्वना हुई और उनकी आँख लग गयी। (वा० रा० २ । ६२)

उपर्युक्त प्रसङ्गसे यह पता लगता है कि कौसल्या पातिव्रत धर्मके पालनमें बहुत ही आगे बढ़ी हुई थी। स्त्रियोंको इस प्रसङ्गसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

कर्तव्यनिष्ठा

दशरथजी रामके वियोगमें व्याकुल हैं। उनका खान-पान छूट गया है। मृत्युके चिह्न उनके शरीरपर प्रत्यक्ष दीख पड़ने लगे हैं। नगर और महलोंमें हाहाकार मचा हुआ है। ऐसी अवस्थामें धीरज धारण कर, अपने दुःखको तुच्छ समझकर श्रीरामकी माता कौसल्या, जिसका प्राणाधार पुत्र चौदह वर्षके लिये वनवासी हो चुका है, अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्यको समझती हुई महाराजसे कहती है—

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥
(मानस २ । १५१ । १-४)

धन्य! रामजननी देवी कौसल्या, ऐसी अवस्थामें तुम्हीं ऐसे आदर्श वचन कह सकती हो। धन्य तुम्हारे धैर्य, साहस, पातिव्रत, विवेक और तुम्हारी आदर्श कर्तव्यनिष्ठाको!

वधू-प्रेम

कौसल्याका अपनी पुत्र-वधू सीताके प्रति कितना वात्सल्य था, इसका दिग्दर्शन नीचेके कुछ शब्दोंसे होता है। जब सीताजी रामके साथ वन जाना चाहती हैं, तब रोती हुई कौसल्या कहती है—

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई॥
पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ॥
(वही, २ । ५८ । १, ३)

जब सुमन्त्र श्रीसीता-राम-लक्ष्मणको वनमें छोड़कर अयोध्या आता है, तब कौसल्या अनेक प्रकारकी चिन्ता करती हुई पुत्रवधूका कुशल-समाचार पूछती है। फिर जब चित्रकूटमें सीताको देखती है, तब बड़ा ही दुःख करती हुई कहती है—"बेटी! धूपसे सूखे हुए कमलके समान, मसले हुए कुमुदके समान, धूलसे लिपटे हुए सोनेके समान और बादलोंसे छिपाये हुए चन्द्रमाके समान तेरा यह मलिन मुख देखकर मेरे हृदयमें जो दुःखरूपी अरणीसे उत्पन्न शोकाग्नि है, वह मुझे जला रही है।" (वा० रा० २ । ११४ । २५-२६)

यदि आज सभी सासें इस प्रकार पुत्रवधुओंके साथ प्रेम करें तो घर-घरमें सुखका स्रोत बहने लगे।

राम-भरतके प्रति समान भाव और प्रजाहित

कौसल्या राम और भरतमें कोई अन्तर नहीं मानती थी। उसका हृदय विशाल था। जब भरतजी

माताको यह समाचार मिलता है, तब वह सुनते ही इस प्रकार दौड़ती है, जैसे गाय बछड़ेके लिये दौड़ा करती है—

कौसल्यादि मातु सब धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं॥
जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
(वही, ७।५।४; छन्द १)

बहुत दिनोंके बाद पुत्रका मुख देखकर कौसल्याके प्रेम-समुद्रकी मर्यादा टूट जाती है। वह पुत्रको हृदयसे लगाकर बार-बार उसका सिर सूँघती है तथा कोमल मस्तक और मुखमण्डल-पर हाथ फेरती एवं टकटकी लगाकर देखती हुई मनमें बहुत ही आश्चर्य करती है कि मेरे इस बच्चेके कुसुम-कोमल कमनीय शिशुने रावण-जैसे प्रचण्ड पराक्रमीको कैसे मारा होगा। मेरे राम-लक्ष्मण तो बड़े ही सुकुमार हैं, ये महाबली राक्षसोंसे कैसे जीते होंगे!

कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवति कृपासिंधु रनधीरहि॥
हृदयँ बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे॥
(वही, ७।६।१-२)

माता! क्यों, तुम इस बातको भूल गयी कि ये तुम्हारे सुकुमार बारे बालक खेल-खेलमें ही त्रिभुवनको बनाने-बिगाड़नेवाले हैं। इन्हींकी मायासे सब कुछ हो रहा है। ये तो तुम्हारे प्रेमके कारण तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे प्रकट होकर जगत्‌का कल्याण करते हुए तुम्हें सुख पहुँचा रहे हैं। माता! तुम धन्य हो!

कौसल्याको अपने धर्मपालनका फल मिलता है। उसका शेष जीवन सुखमय बीतता है और अन्तमें वह श्रीरामके द्वारा तत्त्वज्ञान प्राप्तकर—

रामं सदा हृदि ध्यात्वा छित्त्वा संसारबन्धनम्।
अतिक्रम्य गतीस्तिस्रोऽप्यवाप परमां गतिम्॥

हृदयमें सर्वदा श्रीरामका ध्यान करनेसे संसार-बन्धनको छिन्न कर सात्त्विक, राजस, तामस—तीनों गतियोंको लाँघकर परमपदको प्राप्त हो जाती है।

भक्तहृदया माता कैकेयी

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

उस समय महाराज दशरथके आश्चर्यकी सीमा न रही, जब उन्हें विदित हुआ कि 'मेरी अनिन्द्यसुन्दरी पत्नी कैकेयी अत्यन्त सरल, बुद्धिमती एवं साध्वी ही नहीं, अपितु अनुपम वीराङ्गना भी है। केकयराजकी इस लाड़ली पुत्रीने एक बार मेरे सारथिके हत हो जानेपर स्वयं सारथिका कार्य कर मेरे प्राणोंकी रक्षा की थी और दूसरी बार उसने मेरे रथके धुरेके टूट जानेपर उसके स्थानपर अपना हाथ लगा दिया। कितने साहस और धैर्यका परिचय दिया था इसने! यह पीड़ासे छटपटा उठी थी, इसके नेत्रोंके कोये फटे पड़ गये थे, पर इसने उफतक नहीं की और सच भी यही है कि यदि शम्बरासुरके साथ होनेवाले भयानक युद्धमें मेरी रक्षाके लिये वीराङ्गना कैकेयी मेरे साथ नहीं होती तो मेरी प्राण-रक्षा सम्भव नहीं थी।'

'तुम मुझसे कोई वर माँग लो।' आनन्द एवं कृतज्ञतासे भरे महाराज दशरथने अपनी आदर्श पत्नीसे आग्रह किया।

'आप मुझपर प्रसन्न रहें—बस, इतना ही मुझे अभीष्ट है।' पतिपरायणा कैकेयीको किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं थी। वे तो पतिके सुख एवं उनकी सेवासे ही संतुष्ट थीं।

'नहीं, तुम दो वर मुझसे माँगो।' महाराज दशरथने विशेष आग्रह किया।

'अच्छा, कभी माँग लूँगी।' त्यागमयी कैकेयीने महाराज दशरथकी विचार-धारा मोड़नेके लिये कह दिया।

श्रीरामको युवराज-पद देनेका निश्चय हुआ। उस समय भरत और शत्रुघ्न ननिहालमें थे। कारण जो भी रहा हो, महाराज दशरथने भरत और शत्रुघ्नको उस शुभ समारोहपर बुलाना आवश्यक नहीं समझा। केकयनरेशको भी निमन्त्रण नहीं भेजा गया। कहा जाता है कि कैकेयीसे परिणयके समय महाराज दशरथने इन्हींके पुत्रको राज्यका उत्तराधिकारी स्वीकार किया था; किंतु अपने वंशकी प्रथा एवं श्रीरामके प्रति अत्यधिक अनुरागके कारण उन्हें युवराज-पदपर अभिषिक्त करनेकी सभी तैयारी कर ली गयी। महारानी कैकेयीके पास भी यह समाचार नहीं पहुँच पाया। महारानी कैकेयी इस बातसे पूर्णतया परिचित थीं कि मेरा राज्यपदका अधिकारी मेरा पुत्र भरत है। किंतु कैकेयी रघुकुलकी मर्यादा एवं श्रीरामके प्रति स्नेहके कारण उनके [illegible] संवाद सुनते ही आनन्दमग्न

दूसरी ओर कमललोचन श्रीरामका राज्याभिषेक न हो, इसके लिये देवसमुदाय प्रयत्नशील था ही—

एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन्।
गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्यायां प्रयत्नतः॥
रामाभिषेकविघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः।
मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम्॥
ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे।
तथेत्युक्त्वा तथा चक्रे प्रविवेशाथ मन्थराम्॥

(अ० रा०, २।२।४४-४६)

"इसी समय देवताओंने सरस्वती देवीसे आग्रह किया—'देवि! तुम यत्नपूर्वक भूलोकस्थित अयोध्यापुरीमें जाओ और वहाँ ब्रह्माजीकी आज्ञासे रामचन्द्रजीके राज्याभिषेकमें विघ्न उपस्थित करनेके लिये यत्न करो। प्रथम तो तुम मन्थरामें प्रवेश करना और फिर कैकेयीमें। शुभे! इस प्रकार विघ्न उपस्थित हो जानेपर तुम फिर स्वर्गलोकको लौट आना।' इसपर सरस्वतीने 'बहुत अच्छा' कहकर वैसा ही किया और मन्थरामें प्रवेश किया *।"

जगन्नियन्ता श्रीरामकी प्रेरणासे सुरोंके द्वारा प्रेरित होकर जब सरस्वती देवीने कैकेयीकी बुद्धि बदल दी, तब 'गुरमस्ख ... सुखद ... ' और 'भावी बस प्रतीति उर आई।'

इस प्रकार सुस्पष्ट है कि श्रीरामकी परम भक्तहृदया प्रेमस्वरूपा महारानी कैकेयीने प्रभुकी लीलामें बड़ी सहायता की और इस सहायतामें उन्होंने अपने लिये चिरकालिक अपयश एवं कलङ्क ग्रहण किया। पापिनी, पतिघातिनी, कुलघातिनी आदि शब्दोंको उन्होंने प्रभुकी सेवाके निमित्त सर्वथा मौन होकर सदाके लिये स्वीकार कर लिया।

पर वे सर्वथा निर्दोष ही नहीं, प्रभुके अत्यधिक प्रेमी भक्तोंमें भी सम्मानित हैं। श्रीरामके वियोगमें विकल विह्वल भरतजी चित्रकूट जाते समय जब भरद्वाजमुनिसे मिले, तब भरद्वाजजीने उनसे कहा था—

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया।
रामप्रव्राजनं ह्येतत् सुखोदर्कं भविष्यति॥
देवानां दानवानां च ऋषीणां भावितात्मनाम्।
हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्राजनादिह॥

(वा० रा०, २।९२।२९-३०)

'भरत! तुम कैकेयीके प्रति दोष-दृष्टि न करो। श्रीरामका यह वनवास भविष्यमें बड़ा ही सुखद होगा। श्रीरामके वनमें जानेसे देवताओं, दानवों तथा परमात्माका चिन्तन करनेवाले महर्षियोंका इस जगत्‌में हित ही होनेवाला है *।'

चित्रकूटमें जब भरतजीने श्रीरामको लौटनेके लिये विशेष आग्रह किया, तब प्रभुके संकेतसे वसिष्ठजीने भरतजीको एकान्तमें ले जाकर कहा—'आज मैं तुमसे एक सुनिश्चित गुप्त रहस्य बताता हूँ। भगवान् राम साक्षात् नारायण हैं। पूर्वकालमें ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर उन्होंने रावणको मारनेके लिये दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे जन्म लिया है। इसी प्रकार योगमायाने जनकनन्दिनी सीताके रूपमें अवतार ग्रहण किया है और शेषजी लक्ष्मणके रूपमें अवतरित होकर उनका अनुगमन कर रहे हैं। ये रावणको मारना चाहते हैं, इसलिये निस्सन्देह वनको ही जायँगे—

कैकेय्या वरदानादि यद्यन्निष्ठुरभाषणम्।
सर्वं देवकृतं नोचेदेवं सा भाषयेत् कथम्।
तस्मात्त्यजाग्रहं तात रामस्य विनिवर्तने॥

(अ० रा०, २।९।४५-४६)

'कैकेयीके वरदान और निष्ठुर भाषण आदि जो कुछ भी कार्य हैं, ये सब देवताओंकी प्रेरणासे ही हुए हैं; नहीं तो वह ऐसे वचन कैसे बोल सकती थी। इसलिये हे तात! तुम रामको लौटनेका आग्रह छोड़ दो।'

फिर तो भरतजी प्रभुकी पादुका लेकर अयोध्या लौटनेकी तैयारी करने लगते हैं और माता कैकेयी एकान्तमें प्रभुसे मिलती हैं। उनके नेत्रोंमें आँसू भरे होते हैं। अत्यन्त दुःखी होकर वे कहती हैं—हे राम! मायासे मोहित होकर मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है, किंतु आप मेरी दुष्टता-को क्षमा कर दें, क्योंकि साधुजन सर्वदा क्षमाशील हो होते

* सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाय लै परहीं॥
बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु॥
(मानस २।१०।४।११)

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥
(वही, २।१२)

* [illegible]
[illegible]
([illegible])

भक्तिमयी सुमित्रा देवी

जो केवल इसीलिये गर्भ-धारण करती हैं और इसीलिये पुत्र प्रसव करती हैं कि उनका पुत्र माता-पिता, सुख-सम्पत्ति, विलास-यौवन, घर-परिवार, नव-विवाहिता पत्नी—सभीके मोहको तृणवत् त्यागकर, स्वेच्छासे ही विराग, तपस्या एवं संयमको स्वीकार करके केवल भगवान्‌की ही सेवा करे।, भगवान्‌की सेवा ही जिसके जीवनका एकमात्र लक्ष्य हो और जो भगवान्‌की सेवामें ही अपनेको लगा दे—ऐसी परम सौभाग्यवती लक्ष्मण शत्रुघ्न जननी सुमित्रा जैसी माताएँ जगत्‌में विरली ही होती हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्र जब वन जाने लगे और जब श्रीरामजीके आदेशसे एकमात्र रामको परम वस्तु माननेवाले लक्ष्मणजी माता सुमित्रासे आज्ञा माँगने गये, उस समय उस विशालहृदया यथार्थजननी मङ्गलमयी माताने जो कुछ कहा, उसमें भक्ति, प्रीति, त्याग, बलिदान, समर्पण, नारी-जीवनकी सफलता, पुत्रका स्वरूप—सभीका परम श्रेष्ठ सार आ गया है। माताका यह उपदेश यदि जगत्‌की सभी माताओंके लिये आदर्श बन जाय तो यही जगत् वैकुण्ठ बन सकता है। माता सुमित्रा कहती हैं—

'बेटा! जानकीजी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकारसे स्नेह करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे पिता हैं। जहाँ श्रीरामजीका निवास हो, वहीं अयोध्या है। जहाँ सूर्यका प्रकाश हो, वहीं दिन है। यदि निश्चय ही सीता राम वनको जाते हैं तो अयोध्यामें तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है। गुरु, पिता, माता, भाई, देवता, स्वामी—इन सबकी सेवा प्राणके समान करनी चाहिये। फिर श्रीरामचन्द्रजी तो प्राणोंके भी प्रिय हैं, हृदयके भी जीवन हैं और सभीके स्वार्थरहित सखा हैं। जगत्‌में जहाँतक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं, वे सब रामजीके नातेसे ही [पूजनीय और परमप्रिय] माननेयोग्य हैं। हृदयमें यों जानकर, बेटा! उनके साथ वन जाओ और जगत्‌में जीनेका लाभ उठाओ! मैं बलिहारी जाती हूँ, [हे पुत्र!] मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्यके पात्र हुए, जो तुम्हारे चित्तने छल छोड़कर श्रीरामके चरणोंमें स्थान प्राप्त किया है। संसारमें वही युवती स्त्री पुत्रवती है, जिसका पुत्र श्रीरघुनाथजीका भक्त हो। नहीं तो, जो रामसे विमुख पुत्रसे अपना हित मानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी। पशुकी भाँति उसका ब्याना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है। तुम्हारे ही भाग्यसे श्रीरामजी वनको जा रहे हैं; हे तात! इसमें दूसरा कोई कारण नहीं है। सम्पूर्ण पुण्योंका सबसे बड़ा फल यही है कि श्रीसीतारामजीके चरणोंमें स्वाभाविक प्रेम हो। राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह—इनके वश स्वप्नमें भी मत होना। सब प्रकारके विकारोंको त्यागकर मन, वचन और कर्मसे श्रीसीतारामजीकी सेवा करना। तुमको वनमें सब प्रकारसे आराम है, क्योंकि श्रीरामजी और सीताजीरूप पिता माता तुम्हारे साथ हैं। पुत्र! तुम वही करना, जिससे श्रीरामचन्द्रजी वनमें क्लेश न पावें, मेरा यही उपदेश है।'

सिद्धान्त तथा उपदेशका उपसंहार करती हुई माता अन्तमें आशीर्वाद देती हुई कहती हैं—

> उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
> पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
> तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
> रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥
>
> (मानस २ । ७४ । १ छन्द)

'बेटा! मेरा यही उपदेश है, (अर्थात् तुम वही करना) जिससे वनमें तुम्हारे कारण श्रीरामजी और श्रीसीताजी सुख पावें और पिता माता, प्रिय परिवार तथा नगरके सुखोंकी याद भूल जायँ। तुलसीदासजी कहते हैं कि सुमित्राजीने इस प्रकार हमारे प्रभु (श्रीलक्ष्मणजी) को सीख देकर (वन जानेकी) आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि 'श्रीसीताजी और श्रीरघुवीरजीके चरणोंमें तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित्य नया-नया हो।'' माताका क्या सुन्दर आशीष् है। धन्य है।

प्रिय पुत्र लक्ष्मणको रामकी सेवामें भेजकर ही माता निश्चिन्त नहीं हो जातीं। जब लक्ष्मणके शक्ति लगने और रणभूमिमें मूर्च्छित होकर गिर जानेका संवाद उन्हें मिलता है, तब वे अपनी कोखको धन्य हुई मानती हैं और उनका रोम रोम प्रसन्नतासे खिल उठता है। पर साथ ही यह चिन्ता आ घेरती है कि 'मेरे राम शत्रुओंमें अकेले रह गये' और शत्रुघ्नको वहाँ भेजनेका निश्चय करके कहती हैं—'बेटा! हनुमान्‌के साथ जाओ।' माताका आदेश सुनते ही शत्रुघ्नजी हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं और माताने

पुलकित होकर ऐसे प्रसन्न होते हैं, मानो विधाताके विधानसे उनके पूरे दाँव पड़ गये हों—

तात! जातु कपि सँग, रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं॥
(गीतावली ६ । १३ । ४)

श्रीहनुमान्‌जीके विनय करने और आशीर्वाद देकर माता मानती हैं।

सचमुच ऐसी ही माता पुत्रवती है और ऐसे पुत्र जन्म धारण करनेवाले ही वास्तवमें पुत्र हैं—इन भक्त पुत्रोंके चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार।

राजा जनक

प्रमुदित परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥
(मानस १ । १७ । १)

'अनेक ऋषियोंके साथ महर्षि विश्वामित्र हमारे नगरके आम्र-काननमें पधारे हैं'—यह संवाद पाते ही महाराज जनक* अपने मन्त्रियों एवं ब्राह्मणोंके साथ विश्वामित्रजीसे मिलने चले।

महाराज जनकने श्रीविश्वामित्रजीके चरणोंमें सादर प्रणाम किया। विश्वामित्रजीने इन्हें बड़े ही प्यारसे अपने समीप बैठाकर कुशल-प्रश्न पूछा। इसी बीच मखरक्षकद्वय श्रीरामके साथ श्रीलक्ष्मण वाटिका अवलोकन कर लौटे।

'स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद बिस्व चित चोरा॥'
(वही, १ । २१४ । २½)

देव-पुत्र दोनों अलौकिक बालकोंको देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग उठकर खड़े हो गये। महर्षि विश्वामित्रने उनको निकट बैठा लिया। उनके मधुर रूप-लावण्यको देखकर सब-के-सब आनन्दित हो गये। उनके शरीर पुलकित हो गये तथा नेत्रोंमें आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। उनके दर्शन कर महाराज विदेहकी तो अत्यन्त विचित्र दशा हो गयी।

'मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥'
(वही, १ । २१४ । ४)

प्रेम-मग्न महाराज जनकने विवेकपूर्वक धैर्य धारण किया और महर्षिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर गद्गद स्वरसे पूछा—

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥
सहज बिराग रूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
(वही, १ । २१४ । १-२½)

इतना ही नहीं, उन्होंने श्रीविश्वामित्रजीके सम्मुख अपनी मानसिक स्थिति निस्संकोच प्रकट कर दी—

'इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥'
(वही, १ । २१५ । ३½)

सच तो यह है कि महाराज जनकका भगवान् श्रीरामके प्रति जो अत्यन्त गूढ़ स्नेह था, वे उसे किसीपर किसी प्रकार भी व्यक्त नहीं होने देना चाहते थे। उनके भक्तिमय प्रेम-सम्बन्धको वे और श्रीराम ही जानते थे। उस मधुर प्रीतिको महाराज जनकने ऐश्वर्यमय नीतिकुशल जीवनमें छिपा रखा था, पर सीता-स्वयंवरके लिये धनुष-यज्ञका आयोजन करनेपर जब उनके आमन्त्रणपर महर्षि विश्वामित्रके साथ उनके प्राणधन राम-लक्ष्मण पधारे, तब उनका वह गूढ़ भाव, वह अपार प्रेम गुप्त नहीं रह सका, प्रकट हो गया और उनके मुँहसे उपर्युक्त वाणी निकल गयी। वे श्रीराम और लक्ष्मणको देखते ही रह गये। मन-वाणीसे अगोचर ब्रह्म आज प्रत्यक्ष—नयनगोचर हो गया। फिर उनके आनन्दका क्या कहना! वे प्रेममें इतने विभोर हो गये थे कि उन्हें तन-मनकी सुधि भी भूली जा रही थी।

आज उन्हें वर्षों पूर्व नारदजीकी कही हुई वाणी सत्य सिद्ध होती दीख रही थी। श्रीनारदजीने उनसे कहा था—

* महाराज निमिके शरीरका मन्थन कर ऋषियोंने एक कुमार उत्पन्न किया था, उसका नाम 'जनक' पड़ा। वह माताके शरीरसे उत्पन्न नहीं हुआ, इस कारण 'विदेह' कहा गया और मन्थनसे उत्पन्न हुआ, इस कारण उसकी संज्ञा 'मिथिल' हुई। इस कुलमें आगे उत्पन्न होनेवाले सभी राजाओंको 'विदेह' और 'जनक' कहा गया। महर्षि याज्ञवल्क्यके अनुग्रहसे वे सभी 'आत्मज्ञानी' और 'योगी' हुए। इसी कुलमें वे सीताजीके पिता महाराज 'सीरध्वज' जनक भी उत्पन्न हुए थे। वे अत्यन्त ज्ञानी, विद्वान्, सर्वसद्गुणसम्पन्न, कर्मठ, धर्मात्मा एवं श्रीभगवान्‌के परम भक्त थे। श्रीरामके गूढ़ प्रेमको वे किसीपर प्रकट नहीं होने देते थे, सदा गुप्त रखते थे।

शृणुष्व वचनं गुह्यं तवाभ्युदयकारणम् ॥
परमात्मा हृषीकेशो भक्तानुग्रहकाम्यया ।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं रावणस्य वधाय च ॥
जातो राम इति ख्यातो मायामानुषवेषधृक् ।
आस्ते दाशरथिर्भूत्वा चतुर्धा परमेश्वरः ॥
योगमायापि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि ।
अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः ॥
नान्येभ्यः पूर्वभार्यैषा रामस्य परमात्मनः ।

(अ० रा० १ । ६ । ६२—६६)

"राजन्! अपने कल्याणका कारणरूप यह परम गुप्त वचन सुनो—परमात्मा हृषीकेश भक्तोंपर कृपा, देवताओंकी कार्य सिद्धि और रावणका वध करनेके लिये माया-मानवरूपसे अवतीर्ण होकर 'राम' नामसे विख्यात हुए हैं। वे परमेश्वर अपने चार अंशोंसे दशरथके पुत्र होकर अयोध्यामें रहते हैं और इधर योगमायाने तुम्हारे यहाँ सीताके रूपमें जन्म लिया है। अतः तुम प्रयत्नपूर्वक इस सीताका पाणिग्रहण रघुनाथजीके साथ ही करना, और किसीसे नहीं—क्योंकि यह पहलेसे ही परमात्मा रामकी ही भार्या है।"

सीतारामका विवाह हो जानेपर तो श्रीजनकजीने निश्चितरूपसे अपना जीवन सफल समझ लिया और उन्होंने सदा-सर्वदाके लिये प्रभु-पद-पद्मोंकी शरण ग्रहण की।

अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया ॥
एकासनस्थं पश्यामि भ्राजमानं रविं यथा ।
यत्पादपङ्कजपरागसुरागयोगि-
वृन्दैर्जितं भवभयं जितकालचक्रैः ।
यन्नामकीर्तनपरा जितदुःखशोका
देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये ॥

(अ० रा० १ । ६ । ७१-७२, ७५)

श्रीजनकजीने कहा—'हे राम! आज मेरा जन्म सफल हो गया, जो मैं सूर्यके समान देदीप्यमान और सीताके साथ एक आसनपर विराजमान आपको देख रहा हूँ।... जिनके चरण-कमल-परागके रसिक, काल-चक्रको जीतनेवाले योगि-जनोंने संसार-भयको जीत लिया है। तथा जिनके नाम-कीर्तनमें लगे रहकर देवगण दुःख और शोकको जीत लेते हैं, उन आपकी मैं निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ।'

इसी प्रकार विवाहोपरान्त जब पुत्र पुत्रवधुओंसहित महाराज दशरथ अयोध्याके लिये प्रस्थान करते हैं, तब श्रीजनकजी अधीर हो जाते हैं। उनका प्रेम छिप नहीं पाता। उनके नेत्र अश्रुपूरित हैं। वे एकटक कभी दशरथजीकी ओर, कभी श्रीरामकी ओर और कभी सीताकी ओर देखते हैं। श्रीराम क्या जा रहे हैं, उनका प्राण चला जा रहा है। दशरथजी बार-बार प्रेमपूर्वक उन्हें लौट जानेके लिये कहते हैं; किंतु इनका मन नहीं मानता, हृदय छटपटा उठता है। श्रीदशरथजीके बार-बार आग्रह करनेपर वे रथसे उतरकर, सजलनयन, हाथ जोड़े उनसे प्रार्थना करने लगे। मुनियोंकी स्तुति कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और अन्तमें अपने जामाता—निखिलब्रह्माण्डनायक नवनीरदश्याम श्रीरामके समीप आते हैं, तब उनके नेत्र बरसने लगते हैं। हाथ स्वतः जुड़ जाते हैं। वे बोलना चाहते हैं, पर प्रीतिवश बोला नहीं जाता। वाणी अवरुद्ध हो जाती है। बड़े यत्नसे धीरे-धीरे विनम्र वाणीमें उन्होंने कहा—

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा॥
करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मदु त्यागी॥
ब्यापकु ब्रह्म अलखु अबिनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी॥
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥
महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई॥

नयन बिषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल॥

सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥

× × ×

मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥

(मानस १ । ३४० । १—४, ३४१, ३४१ । ३, ४)

इस प्रकार स्तुति करते-करते विदेहराजने अन्तमें श्रीरामसे याचना की, वरदान माँगा—

'बार बार मागउँ कर जोरें। मनु परिहरै चरन जनि मोरें॥'

(वही, १ । ३४२ । ३½)

यहाँ भी जनकजीकी गूढ़ प्रीति प्रकट हो गयी। उनकी प्रेमाभक्तिकी प्रशंसा किन शब्दोंमें की जाय! जगज्जननी सीता पुत्रीके रूपमें जिनकी गोदमें क्रीडा कर चुकी हो एवं सच्चिदानन्दघन प्रभुने जिनके यहाँ दूल्हा बनकर विवाह किया हो, प्रभुके विवाहका उत्सव हुआ हो, मङ्गल-गान बजे हों, उनके सौभाग्य, उनके प्रेम और उनकी भक्तिका गुणगान कौन किस प्रकार करे!

भगवान् श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण एवं पत्नी सीताके

साथ अयोध्याको त्यागकर वन-गमन करते हैं और भरतजी विकल-विह्वल होकर श्रीरामको लौटानेके लिये चित्रकूट जाते हैं। यह संवाद पाकर श्रीजनकजी भी चित्रकूट पहुँचते हैं। वे श्रीरामके दर्शन एवं भरतकी भक्ति देखकर निहाल हो जाते हैं, उनसे कुछ कहते नहीं बनता। महारानी कौसल्याके इच्छानुसार सुनयनाजी जब जनकजीसे उनका संदेश कहती हैं, तब श्रीजनकजी उनसे स्पष्ट कह देते हैं कि भरत और श्रीरामके पारस्परिक प्रेमको समझना सम्भव नहीं; वह अलक्ष्य है—

'देखि परंतु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥'
(वही, २। २८८। १)

पर श्रीजनकजीकी गूढ़ प्रीति एवं दृढ़ निश्चयको भी समझना सरल नहीं। जनकजी कर्मयोगके श्रेष्ठ आदर्श ज्ञानियोंमें अग्रगण्य एवं बारह प्रधान भागवतोंमें गिने जाते हैं। वे परम ज्ञानी होकर भी श्रीरामचन्द्रके श्री विलक्षण प्रेमके अनुपम आदर्श बन गये। धन्य वे जनक और धन्य था उनका गूढ़ प्रभु-प्रेम! —शि० दु०

महारानी सुनयना

परम सौभाग्यशालिनी देवी सुनयना विदेहराज जनककी धर्मपत्नी थीं। ये अत्यन्त सरल, साध्वी, स्वधर्म-परायण, विनयी, संयमी एवं उदार थीं। जीवमात्रके प्रति इनके हृदयमें दया थी। एक बारकी बात है, जब अवर्षणसे प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी, तब विदेहराज जनकने यज्ञ करनेका निश्चय किया। यज्ञार्थ परिष्कृत स्थलको हलसे जोतते समय उन्हें एक अनुपम तेजस्विनी दिव्य कन्या प्राप्त हुई। महारानी सुनयना उस कन्याको पाकर कृतार्थ हो गयीं। उस कन्याका नाम 'सीता' रखा गया। सुनयनाजी सीताको अपने प्राणसे भी अधिक प्यार करती थीं, इस कारण स्वाभाविक ही वे सीताका तनिक भी म्लान मुख नहीं देख पाती थीं। वे रात दिन सीताके ही सुखकी चिन्ता किया करती थीं।

इनके एक पुत्र भी था। नाम था—लक्ष्मीनिधि। कुछ समयके अनन्तर इनकी कोखसे एक कन्याने जन्म लिया। नाम था—उर्मिला। उर्मिला अत्यन्त लज्जाशीला एवं रूप-शीलसम्पन्न थी। सीता एवं उर्मिलाके सयानी होनेपर महाराज जनकने सीता-स्वयंवरका निश्चय किया। उन्होंने घोषणा कर दी कि 'शिव धनुषको भङ्ग करनेवाला वीर पुरुष ही सीताका पाणिग्रहण कर सकेगा।'

स्वयंवरमें देश-देशके नरेश पधारे। उसी समय महर्षि विश्वामित्रके साथ श्याम-गौर श्रीराम और लक्ष्मण भी वहाँ पहुँचे। श्रीराम और लक्ष्मणके लोकविनिन्दक सौन्दर्यको देखकर सुनयनाजी अत्यन्त प्रसन्न हुई। 'ये निश्चय ही दिव्य पुरुष हैं'—इस विचारसे अपनी सहेलियों-सहित उनकी भी इच्छा हुई कि 'किसी प्रकार मेरी प्राणप्रिय पुत्री सीताका विवाह इनके साथ हो जाता तो बड़े सौभाग्य की बात होती।'

पर समागमनमें रावण और बाणासुरके प्रवेश करते ही वे काँप गयीं। वे दोनों उस धनुषको प्रणाम कर यहाँसे चले गये, तब उनका जी हल्का हुआ। परंतु आगन्तुक सभी नरेशोंके समुचित प्रयत्नसे भी जब धनुष नहीं हिल सका, तब विश्वामित्रकी आज्ञासे नीलकलेवर श्रीराम धनुषकी ओर चले—यह देखकर सुनयनाजी अधीर हो गयीं। उन्होंने श्रीरामके सौन्दर्यको अच्छी तरह देखकर अत्यन्त आकुलतासे कहा—

'कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥
बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा॥'
(मानस १। २५७। १-२)

सुनयनाजीकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। कठोर शिवधनुष और कुसुम-कोमल श्रीराम! श्रीराम-दर्शनके तब ही सुनयनाजीके हृदयमें स्नेह उत्पन्न हो गया था। वे अशान्त हो गयी थीं, छटपटा रही थीं। पर जब क्षणभरमें ही भुवनमोहन श्रीरामने धनुर्भङ्ग कर दिया, तब उनकी प्रसन्नता की सीमा न रही—

'सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥'
(मानस १। २६३। ३)

किंतु उसी समय प्रबल-पराक्रमी परशुरामजी आ पहुँचे। 'भृकुटी कुटिल नयन रिस राते।' (वही, १। २६८। १)—परशुरामजीका उग्र स्वरूप एवं भयानक क्रोध देखकर सुनयनाजी डर गयीं और पछताने लगीं—

'मन पछिताति सीय महतारी। बिधि अब सँवरी बात बिगारी॥'
(वही, १ । २५९ । ३½)

सुनयनाजी इस स्थितिसे त्राण पानेके लिये मन-ही-मन प्रार्थना करती रहीं, पर सुमित्रानन्दनके निर्भीक और स्पष्ट उग्र वचन सुनकर काँप जाती थीं। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। पर जब परशुरामजी नील पीत श्रीराम लक्ष्मणके चरणोंकी वन्दना कर प्रस्थित हुए, तब उनकी जानमें-जान आयी।

मङ्गल-वाद्य बजने लगे। महाराज दशरथ बारात लेकर पहुँचे और अपने पति विदेहराजके साथ माता सुनयनाने सीताका पाणि श्रीरामके हाथमें एवं उर्मिलाका हाथ लक्ष्मणके कर-कमलोंमें दे दिया। उसी समय उनके देवर-की दो कन्याएँ माण्डवी और श्रुतकीर्ति भी क्रमशः भरत और शत्रुघ्नके साथ ब्याह दी गयीं।

महारानी सुनयनाके आनन्दकी सीमा नहीं थी।

× × ×

लक्ष्मण और जानकीसहित श्रीराम पिताके आदेशसे वनमें गये हैं—यह संवाद पाते ही महाराज जनक भी सप्रेम चित्रकूट पहुँचे। उनके साथ उनकी सहधर्मिणी सुनयना भी थीं। जब महाराज दशरथकी सभी रानियाँ एकत्र हुईं, सुनयनाजी भी वहाँ पहुँचीं। उन्होंने दुःखी होकर कहा—

'सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पय फेनु फोर पबि टाँकी॥'
(वही, २ । २८० । ४)

'माता सुनयनाने कहा—विधाताकी बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूधके फेन-जैसी कोमल वस्तुको वज्रकी टाँकीसे फोड़ रहा है (अर्थात् जो अत्यन्त कोमल और निर्दोष हैं, उनपर विपत्ति-पर-विपत्ति ढहा रहा है)।'

कौसल्याजीकी अत्यन्त स्नेहमयी विनीत वाणीको सुनकर सुनयना-जीने उनके चरण पकड़कर उनकी बड़ी प्रशंसा की और उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि ''श्रीरामचन्द्रजी वनमें जाकर देवताओंका कार्य करके अवधपुरीमें अचल राज्य करेंगे तथा देवता, नाग और मनुष्य—सब श्रीरामचन्द्रजीकी भुजाओंके बलपर अपने-अपने स्थानों (लोकों)में सुख-पूर्वक बसेंगे—यह सब याज्ञवल्क्यमुनिने पहलेसे ही कह रखा है। देवि! मुनिका कथन मिथ्या नहीं हो सकता''—

रामु जाइ बनु करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥
अमर नाग नर राम बाहुबल। सुख बसिहहिं अपनें अपनें थल॥
यह सब जागबलिक कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाषा॥
(वही, २ । २८४ । २-४)

तपस्वि-वेष धारण किये हुए सीताने माता पिताके चरणोंमें प्रणाम किया, तब उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये, पर अत्यन्त संतोष भी हुआ—'पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ।' (मानस २ । २८६ । १) उस समय सुनयनाजीने सीताको पति-प्रेम विषयक अनेक सीखें दीं और सीताके वे सभी गुण देखकर मन-ही-मन प्रसन्न भी हुई थीं।

सीताजी माता-पितासे मिलने आयी थीं। माता पिता और पुत्री सभीके हृदयमें अद्भुत आनन्द एवं प्रेमके अश्रु थे। पर रात्रि अधिक हो गयी—'इहाँ बसब रजनीं भल नाहीं।' (मानस २ । २८६ । ३½) सोच रही थीं, पर संकोचवश कुछ कह नहीं पाती थीं। सुनयनाजीने यह बात समझ ली। वे महान् पतिव्रता थीं। उन्होंने अपनी पुत्रीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और प्रेमपूर्वक सीताको विदा किया।

त्रैलोक्यपावनी सीताकी माता एवं मुनिमन-वन्दित श्रीरामकी सासु-पदका गौरव तो सुनयनाजी-जैसी महिमा-मयी देवी ही प्राप्त कर सकती हैं।

—शि० दु०

श्रीभरत

भरतजीका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल और आदर्श है। उसमें कहीं कुछ भी दोष नहीं दीख पड़ता। भरतजीकी महिमा अपार है। वाल्मीकीय रामायणमें आपको श्रीविष्णु-का ही अंशावतार बताया गया है। साथ ही उनका चरित्र उन्हें एक साधु शिरोमणि, आदर्श स्वामि-भक्त, महात्मा, निःस्पृह और भक्ति-प्रधान कर्मयोगी सिद्ध करता है। भरतजी धर्म और नीतिके जाननेवाले, सद्गुणसम्पन्न, त्यागी, संयमी, सदाचारी, प्रेम और विनयकी मूर्ति, भक्तराज और बड़े बुद्धिमान् थे। वैराग्य, सत्य, तप, क्षमा, तितिक्षा, दया, वात्सल्य, धीरता, वीरता, गम्भीरता, सरलता, सौम्यता, मधुरता, अमानिता और सुहृदता आदि गुणोंका इनमें विलक्षण विकास हुआ था। भ्रातृ-प्रेमकी तो आप मानो सजीव मूर्ति ही थे।

भरतकी पितृ-भक्ति

विवाहके बाद भरतजी शीघ्र ही अपने मामाके साथ ननिहाल चले गये थे, इस कारण रामायणमें इनकी पितृ-भक्तिका विशेष वर्णन नहीं आता। परंतु नानाके घर रहते हुए एक दिन इन्होंने मित्रमण्डलीमें अपने दुःस्वप्नको बात कहकर जो पिताके लिये दुःख प्रकट किया है और अयोध्यामें लौटनेके बाद मातासे पिताजीके स्वर्गवासका समाचार पानेपर शोकके कारण इनकी जो दशा हुई तथा इन्होंने पिताके लिये जिस प्रकार विलाप किया है, उससे इनके श्रद्धा-समन्वित सच्चे पितृ-प्रेमका पता चलता है। जब माताने इनसे धैर्य धारण करनेके लिये कहा, तब उसके उत्तरमें आप कहते हैं—

'मैंने तो यह सोचा था कि महाराज श्रीरामका राज्या-भिषेक करेंगे और स्वयं यज्ञकी दीक्षा लेंगे। इसी विचारसे मैं यहाँसे प्रसन्नतापूर्वक चला था; किंतु यहाँ आनेपर ये सभी बातें विपरीत ही दिखायी दीं। आज जो मैं सर्वदा अपना प्रिय और हित करनेवाले पिताजीको नहीं देखता, इससे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है।' (वा० रा० २। ७२। २७-२८) इत्यादि।

भ्रातृ-भक्ति

उपर्युक्त ढंगसे पिताके लिये शोक करते-करते ही भरतके हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम उमड़ पड़ता है और वे कहने लगते हैं—

'जो मेरे भाई, पिता और बन्धु हैं, जिनका मैं परम प्रिय दास हूँ और जो पवित्र कर्म करनेवाले हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीको आप शीघ्र मेरे आनेकी सूचना दें। धर्मको जाननेवाले श्रेष्ठ मनुष्यके लिये बड़ा भाई पिताके तुल्य होता है। मैं उनके चरणोंमें प्रणाम करूँगा। अब वे ही मेरे आश्रय हैं।' (वा० रा० २। ७२। ३२-३३)

इसपर कैकेयीने उन्हें सारी घटना कह सुनायी और राज्य स्वीकार करनेके लिये कहा।

कैकेयीके मुखसे इस प्रकार माइयोंके वन-गमनकी बात सुनकर भरतजी महान् दुःखसे संतप्त हो जाते हैं। वे व्याकुल हृदयसे माताको बहुत-कुछ बुरा-भला कहते हैं और यह भी कह डालते हैं—

'मैं समझता हूँ, लोभके वशमें होनेके कारण तू अबतक यह न जान सकी कि मेरा श्रीरामचन्द्रजीके प्रति कैसा भाव है। इसी कारण तूने राज्यके लिये इतना बड़ा अनर्थ कर डाला।' (वा० रा० २। ७३। ११)

इसके सिवा और भी बहुत-सी बातें भरतजीने माताके प्रति कहीं। उसके बाद भरतजी माता कौसल्याजी, जो उनसे मिलनेके लिये आ रही थीं, रास्तेमें ही मिले और उनकी गोदमें लिपटकर रोने लगे। इसके अनन्तर वे अनेक प्रकारसे शपथ करके माता कौसल्याको विश्वास दिलाते हैं कि रामजीके वनवासमें उनकी सम्मति नहीं थी।

इसके बाद मुनि वसिष्ठजीके आज्ञानुसार राजा दशरथके अन्त्येष्टि-कर्मकी तैयारी होती है। उस समय राजाके शवको देखकर भरतजी फिर विलाप करते हुए कहते हैं—

'राजन्! मैं तो परदेश गया हुआ था, आपने मेरे पहुँचने भी नहीं पाया, उसके पहले ही धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजीको और महाबली लक्ष्मणको वनमें भेजकर आपने यह क्या विचार किया?' (वा० रा० २। ७६। ६)।

भरतको इस प्रकार विलाप करते देखकर महामुनि वसिष्ठजी फिर समझाते हैं। उसके बाद विधि-विधानसे राजा दशरथकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न होती है। सभामें भरत इस दिनोंतक भूमिपर शयन करते हुए बड़े दुःखसे समय बिताते हैं।

श्राद्ध आदिसे निवृत्त हो जानेपर राजसभामें श्रीवसिष्ठजी तथा अन्य सभी सभासद् भरतजीको समझाकर आग्रहपूर्वक राज्य स्वीकार करनेके लिये कहने लगे। तब भरतजीने कहा—

'मैं और यह राज्य दोनों ही श्रीरामके हैं। आपलोग मुझे धर्मका उपदेश दीजिये। श्रीरामचन्द्रजी सब प्रकार मुझसे बड़े हैं; इसलिये—

'पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजी अयोध्याकी तो बात ही क्या, त्रिलोकीके भी राजा होने योग्य हैं; मैं उन्हींका अनुसरण करूँगा'''। आप-जैसे गुणवान् श्रेष्ठ साधु पुरुषोंके सामने ही उन्हें यत्नपूर्वक लौटा लानेके लिये मैं सब प्रकारके उपाय करूँगा। इसपर भी यदि मैं आर्य श्रीरामचन्द्रजीको वनसे लौटा लानेमें समर्थ नहीं हुआ तो जैसे श्रेष्ठ भाई लक्ष्मण रहते हैं, उसी तरह मैं भी वहीं वनमें निवास करूँगा।' (वा० रा० २। ८२। १६, १८-१९) भरतके ऐसे भ्रातृ-प्रेममें सने वचन सुनकर वहाँ बैठे हुए सभी सभासदोंकी आँखोंसे आनन्दके आँसू बहने लगते हैं।

श्रीरामको लौटा लानेके लिये जब भरत दल-बलके साथ चित्रकूटके लिये प्रस्थान करते हैं, उस समय रास्तेमें उनकी निषाद-राज गुहसे भेंट होती है। इनके साथ चतुरङ्गिणी सेना देखकर गुहके मनमें संदेह हो जाता है और वे अपना संदेह इनके सामने प्रकट कर देते हैं। उस समय भरत निषादसे कहते हैं—

'निषादराज! ऐसा अवसर न आवे, जो इस प्रकार दुःखदायक हो। तुमको मुझपर शङ्का नहीं करनी चाहिये; क्योंकि रघुकुल-भूषण श्रीराम मेरे बड़े भाई हैं और मैं उनको पिताके समान समझता हूँ। मैं उन वनवासी श्रीरामको वनवाससे लौटा लानेके लिये जा रहा हूँ।' (वा० रा० २। ८५। ९-१०) भरतकी बात सुनकर निषादराजका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वह हर्षमें भरकर कहने लगा—

'आप धन्य हैं, जो बिना प्रयत्नके मिले हुए राज्यको त्याग देना चाहते हैं; अतः इस भूमण्डलमें आपके समान मुझे कोई दूसरा नहीं दिखायी देता।' (वही, २। ८५। १२)—इत्यादि।

इस प्रकार दोनोंमें बड़ी देरतक बातें होती रहीं। श्रीरामके वियोगमें उन्हींका चिन्तन करते-करते शोकाग्निसे संतप्त हो जानेके कारण भरतजी सहसा मूर्च्छित हो गये। पासमें बैठे हुए शत्रुघ्न भी उनको पकड़कर रोने लगे और बेहोश हो गये। यह देखकर निषादराज मुग्ध हो गया। थोड़ी देर बाद चित्तके स्वस्थ होनेपर भरतजीने फिर गुहसे पूछा—

'निषादराज! उस दिन रातको मेरे भाई श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ यहाँ किस जगह ठहरे थे तथा उन्होंने क्या भोजन करके कैसे बिछौनेपर शयन किया था? यब बातें मुझे बताओ।' (वही, २। ८७। ११)

भरतके इस प्रकार पूछनेपर गुह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सारी घटना ज्यों-की-त्यों सुना दी। उसने उन्हें वह इंगुदीका वृक्ष और कुशका बिछौना दिखाया, जहाँपर श्रीरामने सीताके साथ रात्रिमें शयन किया था। उस स्थानको देखकर भरतजीकी विचित्र दशा हो गयी। वे भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगे—

'हाय! मैं मारा गया। मैं बड़ा क्रूर हूँ, जिसके कारण श्रीरघुनाथजीको सती सीताके साथ अनाथकी भाँति ऐसी शय्यापर सोना पड़ता है। जो सम्राट्के वंशमें उत्पन्न, सब लोकोंको सुख देनेवाले और सबका प्रिय करनेवाले हैं; जिनका वर्ण नील कमलके समान है, नेत्र लाल हैं; जो सब प्रकारसे सुख भोगनेके योग्य और दुःखके अयोग्य हैं; वे प्रियदर्शन श्रीरघुनाथजी अत्युत्तम प्रिय राज्यको छोड़कर किस प्रकार पृथ्वीपर शयन करते हैं? उत्तम लक्षणोंवाले लक्ष्मण ही धन्य और बड़भागी हैं, जो संकटके समय बड़े भाई श्रीरामके साथ रहकर उनकी सेवा करता है।' (वा० रा० २। ८८। १७—२०) भरतजीने विलाप करते हुए इसी प्रकारकी और भी बहुत-सी बातें कहीं।

आगे चलकर जब भरतजी महर्षि भरद्वाजके आश्रममें पहुँचते हैं, उस समय महर्षि कुशल पूछनेके बाद उनके हृदयपर गहरी चोट पहुँचानेवाला प्रश्न कर बैठते हैं। वे कहते हैं—'तुम्हारा यहाँ वनमें किस निमित्तसे आना हुआ? तुम निरपराधी धर्मात्मा राम और लक्ष्मणका कोई अनिष्ट तो नहीं करना चाहते?' (वही, २। ९०। ११) यह सुनकर दुःखके कारण भरतकी आँखोंमें जल भर आया। वे लड़खड़ाती हुई वाणीमें बोले—

'मुने! मुझसे कोई अपराध नहीं हुआ है। फिर भी आप यदि मुझे इतना अपराधी समझते हैं, तब तो मैं हर तरहसे मारा गया। अतः आप मुझसे ऐसी कठोर बात न

श्रीभरत

भरतजीका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल और आदर्श है। उसमें कहीं कुछ भी दोष नहीं दीख पड़ता। भरतजीकी महिमा अपार है। वाल्मीकीय रामायणमें आपको श्रीविष्णु-का ही अंशावतार बतलाया गया है। साथ ही उनका चरित्र उन्हें एक साधु-शिरोमणि, आदर्श स्वामि-भक्त, महात्मा, निःस्पृह और भक्ति-प्रधान कर्मयोगी सिद्ध करता है। भरतजी धर्म और नीतिके जाननेवाले, सद्गुणसम्पन्न, त्यागी, संयमी, सदाचारी, प्रेम और विनयकी मूर्ति, शास्त्रज्ञ और बड़े बुद्धिमान् थे। वैराग्य, सत्य, तप, क्षमा, तितिक्षा, दया, वात्सल्य, धीरता, वीरता, गम्भीरता, सरलता, सौम्यता, मधुरता, अमानिता और सुहृदता आदि गुणोंका इनमें विलक्षण विकास हुआ था। भ्रातृ-प्रेमकी तो आप मानो सजीव मूर्ति ही थे।

भरतकी पितृ-भक्ति

विवाहके बाद भरतजी शीघ्र ही अपने मामाके साथ ननिहाल चले गये थे, इस कारण रामायणमें इनकी पितृ-भक्तिका विशेष वर्णन नहीं आता। परंतु नानाके घर रहते हुए एक दिन इन्होंने मित्रमण्डलीमें अपने दुःस्वप्नकी बात कहकर जो पिताके लिये दुःख प्रकट किया है और अयोध्यामें लौटनेके बाद माताले पिताजीके स्वर्गवासका समाचार पानेपर शोकके कारण इनकी जो दशा हुई तथा इन्होंने पिताके लिये जिस प्रकार विलाप किया है, उससे इनके श्रद्धा-समन्वित सच्चे पितृ-प्रेमका पता चलता है। जब माताने इनसे धैर्य धारण करनेके लिये कहा, तब उसके उत्तरमें आप कहते हैं—

'मैंने तो यह सोचा था कि महाराज श्रीरामका राज्या-भिषेक करेंगे और स्वयं यज्ञकी दीक्षा लेंगे। इसी विचारसे मैं वहाँसे प्रसन्नतापूर्वक चला था; किंतु यहाँ आनेपर वे सभी बातें विपरीत ही दिखायी दीं। आज जो मैं सर्वदा अपना प्रिय और हित करनेवाले पिताजीको नहीं देखता, इससे मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है।' (वा० रा० २।७२।२७-२८) इत्यादि।

भ्रातृ-भक्ति

उपर्युक्त ढंगसे पिताके लिये शोक करते-करते ही भरतके हृदयमें श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम उमड़ पड़ता है और वे कहने लगते हैं—

'जो मेरे भाई, पिता और बन्धु हैं, जिनका मैं परम प्रिय दास हूँ और जो पवित्र कर्म करनेवाले हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीको आप शीघ्र मेरे आनेकी सूचना दें। धर्मके जाननेवाले श्रेष्ठ मनुष्यके लिये बड़ा भाई पिताके समान ही होता है। मैं उनके चरणोंमें प्रणाम करूँगा। अब वे ही मेरे आश्रय हैं।' (वा० रा० २।७२।३२-३३)

इसपर कैकेयीने उन्हें सारी घटना कह सुनायी और राज्य स्वीकार करनेके लिये कहा।

कैकेयीके मुखसे इस प्रकार माताके वचन गमनकी बात सुनकर भरतजी महान् दुःखसे संतप्त हो जाते हैं। वे व्याकुल हृदयसे माताको बहुत-कुछ बुरा-भला कहते हैं और यह भी कह डालते हैं—

'मैं समझता हूँ, लोभके वशमें होनेके कारण तू अबतक यह न जान सकी कि मेरा श्रीरामचन्द्रजीके प्रति कैसा भाव है। इसी कारण तूने राज्यके लिये इतना बड़ा अनर्थ कर डाला।' (वा० रा० २।७३।१३)

इसके सिवा और भी बहुत-सी बातें भरतजीने माताके प्रति कहीं। उसके बाद भरतजी माता कौसल्यासे, जो उनसे मिलनेके लिये आ रही थीं, रास्तेमें ही मिले और उनकी गोदमें लिपटकर रोने लगे। इसके अनन्तर वे अनेक प्रकार-से शपथ करके माता कौसल्याको विश्वास दिलाते हैं कि रामजीके वनवासमें उनकी सम्मति नहीं थी।

इसके बाद मुनि वसिष्ठजीके आज्ञानुसार राजा दशरथके अन्त्येष्टि कर्मकी तैयारी होती है। उस समय राजाके शवको देखकर भरतजी फिर विलाप करते हुए कहते हैं—

'राजन्! मैं तो परदेश गया हुआ था, आपके पास पहुँचने भी नहीं पाया; उसके पहले ही धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी-को और महाबली लक्ष्मणको वनमें भेजकर आपने यह क्या विचार किया?' (वा० रा० २।७६।६)

भरतको इस प्रकार विलाप करते देखकर महामुनि वसिष्ठजी फिर समझाते हैं। उसके बाद विधि विधानसे राजा दशरथकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न होती है। नगरमें आकर इस दिनोंतक भूमिपर शयन करते हुए भरत बड़े दुःखसे समय बिताते हैं।

श्राद्ध आदिसे निवृत्त हो जानेपर राजसभामें श्रीवसिष्ठजी तथा अन्य सभी सभासद् भरतजीको समझाकर आग्रहपूर्वक राज्य स्वीकार करनेके लिये कहने लगे। तब भरतजीने कहा—

'मैं और यह राज्य दोनों ही श्रीरामके हैं। आपलोग मुझे धर्मका उपदेश दीजिये। श्रीरामचन्द्रजी सब प्रकार मुझसे बड़े हैं; इसलिये—

'पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजी अयोध्याकी तो बात ही क्या, त्रिलोकीके भी राजा होने योग्य हैं। मैं उन्हींका अनुसरण करूँगा'''। आप-जैसे गुणवान् श्रेष्ठ साधु पुरुषोंके सामने ही उन्हें बलपूर्वक लौटा लानेके लिये मैं सब प्रकारके उपाय करूँगा। इसपर भी यदि मैं आर्य श्रीरामचन्द्रजीको वनसे लौटा लानेमें समर्थ नहीं हुआ तो जैसे श्रेष्ठ भाई लक्ष्मण रहते हैं, उसी तरह मैं भी वहीं वनमें निवास करूँगा।' (वा० रा० २। ८२। १६, १८-१९) भरतके ऐसे भ्रातृ-प्रेममें सने वचन सुनकर वहाँ बैठे हुए सभी सभासदोंकी आँखोंसे आनन्दके आँसू बहने लगते हैं।

श्रीरामको लौटा लानेके लिये जब भरत दल-बलके साथ चित्रकूटके लिये प्रस्थान करते हैं, उस समय रास्तेमें उनकी निषाद-राज गुहसे भेंट होती है। इनके साथ चतुरङ्गिणी सेना देखकर गुहके मनमें संदेह हो जाता है और वे अपना संदेह इनके सामने प्रकट कर देते हैं। उस समय भरत निषादसे कहते हैं—

'निषादराज ! ऐसा अवसर न आये, जो इस प्रकार दुःखदायक हो। तुमको मुझपर शङ्का नहीं करनी चाहिये; क्योंकि रघुकुल-भूषण श्रीराम मेरे बड़े भाई हैं और मैं उनको पिताके समान समझता हूँ। मैं उन वनवासी श्रीरामको वनवाससे लौटा लानेके लिये जा रहा हूँ।' (वा० रा० २। ८५। ९-१०) भरतकी बात सुनकर निषादराजका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। वह हर्षमें भरकर कहने लगा—

'आप धन्य हैं, जो बिना प्रयत्नके मिले हुए राज्यको त्याग देना चाहते हैं। अतः इस भूमण्डलमें आपके समान मुझे कोई दूसरा नहीं दिखायी देता।' (वही, २। ८५। १२) —इत्यादि।

इस प्रकार दोनोंमें बड़ी देरतक बातें होती रहीं। श्रीरामके वियोगमें उन्हींका चिन्तन करते-करते शोकाग्निसे संतप्त हो जानेके कारण भरतजी सहसा मूर्च्छित हो गये। पासमें बैठे हुए शत्रुघ्न भी उनको पकड़कर रोने लगे और बेहोश हो गये। यह देखकर निषादराज मुग्ध हो गया। थोड़ी देर बाद चित्तके स्वस्थ होनेपर भरतजीने फिर गुहसे पूछा—

'निषादराज ! उस दिन रातको मेरे भाई श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ यहाँ किस जगह ठहरे थे तथा उन्होंने क्या भोजन करके कैसे बिछौनोंपर शयन किया था ? सब बातें मुझे बताओ।' (वही, २। ८७। ११)

भरतके इस प्रकार पूछनेपर गुह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने सारी घटना ज्यों-की-त्यों सुना दी। उसने उन्हें वह इंगुदीका वृक्ष और कुशका बिछौना दिखाया, जहाँपर श्रीरामने सीताके साथ रात्रिमें शयन किया था। उस स्थानको देखकर भरतजीकी विचित्र दशा हो गयी। वे भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगे—

'हाय ! मैं मारा गया ! मैं बड़ा क्रूर हूँ, जिसके कारण श्रीरघुनाथजीको सती सीताके साथ अनाथकी भाँति ऐसी शय्यापर सोना पड़ता है। जो सम्राट्के वंशमें उत्पन्न, सब लोकोंको सुख देनेवाले और सबका प्रिय करनेवाले हैं, जिनका वर्ण नील कमलके समान है, नेत्र लाल हैं; जो सब प्रकारसे सुख भोगनेके योग्य और दुःखके अयोग्य हैं, वे प्रियदर्शन श्रीरघुनाथजी अत्युत्तम प्रिय राज्यको छोड़कर किस प्रकार पृथ्वीपर शयन करते हैं ! उत्तम लक्षणोंवाले लक्ष्मण ही धन्य और बड़भागी हैं, जो संकटके समय बड़े भाई श्रीरामके साथ रहकर उनकी सेवा करता है।' (वा० रा० २। ८८। १७–२०) भरतजीने विचार करते हुए इसी प्रकारकी और भी बहुत-सी बातें कहीं।

आगे चलकर जब भरतजी महर्षि भरद्वाजके आश्रममें पहुँचते हैं, उस समय महर्षि कुशल पूछनेके बाद उनके हृदयपर गहरी चोट पहुँचानेवाला प्रश्न कर बैठते हैं। वे कहते हैं—'तुम्हारा यहाँ वनमें किस निमित्तसे आना हुआ ? तुम निरपराधी धर्मात्मा राम और लक्ष्मणका कोई अनिष्ट तो नहीं करना चाहते ?' (वही, २। ९०। ११) यह सुनकर दुःखके कारण भरतकी आँखोंमें जल भर आया। वे गद्गदवाणी हुई वाणीमें बोले—

'मुने ! मुझसे कोई अपराध नहीं हुआ है। फिर भी आप यदि मुझे इतना अपराधी समझते हैं, तब तो मैं हर तरहसे मारा गया। अतः आप मुझसे ऐसी कठोर बात न

करें । मेरी अनुपस्थितिमें मेरी माताने जो कुछ कहा या किया है, वह मुझे अभीष्ट नहीं है । मैं उससे तनिक भी प्रसन्न नहीं हूँ और न मैंने उसकी बातको माना ही है । मैं तो उन नरश्रेष्ठ श्रीरामको प्रसन्न करके अयोध्या लौटा ले आनेके लिये और उनके चरणोंकी वन्दना करनेके लिये वनमें आया हूँ । अतः मुझे इस प्रकार आया हुआ समझकर आप मुझपर कृपा कीजिये और बतलाइये कि इस समय महाराज श्रीरामचन्द्रजी कहाँ हैं ।' (वा० रा० २ । ९० । १५–१८)

यह सुनकर भरद्वाजजी बड़े प्रसन्न हुए और भरतजीकी प्रशंसा करके बोले—

'भरत ! मैं तुम्हारे मनकी बात जानता हूँ तथापि उसे दृढ़ करनेके लिये और तुम्हारी कीर्तिका अधिक विस्तार करनेके लिये ही मैंने तुमसे ये सब बातें पूछी हैं ।' (वा० रा० २ । ९० । २१)

इसके बाद और भी बहुत सी बातें हुईं । भरद्वाजजीके अधिक आग्रहसे उनका आतिथ्य भरतको स्वीकार करना पड़ा । ऋषिराजने बड़े ही विचित्र ढंगसे सेना और परिवार-सहित भरतका अतिथिसत्कार किया । बड़े ही आनन्दसे वह रात्रि व्यतीत हुई । उसी प्रसङ्गमें यह बात आयी है—

'भरतने उस राजमहलमें [जिसे मुनिने अपने योगबलसे रचा था] दिव्य राजसिंहासन, छत्र और चँवर भी देखे तथा मन्त्रियोंके साथ उन्होंने राजा श्रीरामकी भाँति उनका सम्मान किया । श्रीरामको प्रणाम करके उस आसनकी पूजा की और स्वयं हाथमें चँवर लेकर मन्त्रीके आसनपर जा बैठे ।' (वही, २ । ९१ । ३८-३९) कितनी ऊँची भावना और भक्ति है ! कैसा पवित्र भाव है ! कितनी निरभिमानता और कितना त्याग है !

जब भरत चित्रकूटके निकट पहुँच जाते हैं, उस समय आकाशमें धूल उड़ती हुई देखकर श्रीराम लक्ष्मणसे उसका कारण जाननेके लिये कहते हैं । लक्ष्मण वृक्षपर चढ़कर देखते हैं और यह निश्चय करके कि सेनासहित भरत आ रहे हैं, उनके प्रति संदेह प्रकट करते हुए कठोर वचन कहने लगते हैं । तब श्रीरामचन्द्रजी भरतके गुण और प्रेमकी बड़ाई करते हुए कहते हैं—

'जिस प्रकार इस समय यह भरत हमलोगोंसे मिलनेके लिये आ रहा है, वह सर्वथा उचित है । हमलोगोंका अहितका आचरण तो वह कभी मनसे भी नहीं कर सकता । भरतने तुम्हारा कब और क्या अपकार किया है, जिसके कारण तुम आज उससे ऐसा भय, इस तरहकी आशङ्का कर रहे हो ? (भरतके आनेपर) तुम उससे कोई कठोर या अप्रिय वचन न कहना ।' ' 'यदि तुमने उसके साथ कोई प्रतिकूल बर्ताव किया या अप्रिय वचन कहे तो वह बर्ताव मेरे ही साथ किया समझा जायगा । यदि तुम राज्यके लिये ऐसी कठोर बात कहते हो तो भरतसे मिलनेपर मैं उसे कह दूँगा कि यह राज्य लक्ष्मणको दे दो ।' मेरे यह कहनेपर वह अवश्य ही मेरी बातका अनुमोदन करेगा और तुमको राज्य दे देगा ।' (वा० रा० २ । ९७ । ११–१५, १७, १८)

इस प्रकार यद्यपि भरतजी सर्वथा साधु और निर्दोष थे, तथापि उनको सबके संदेहका शिकार बनना पड़ा । भरतके सदृश सर्वथा निःस्पृह, धर्मात्मा एवं त्यागी महापुरुषका इस प्रकार सबके संदेहका शिकार बनना जगत्‌के इतिहासमें एक अनोखी बात है । इतनेपर भी भरत सब कुछ सहते हैं । धन्य उनका प्रेम ! धन्य उनकी स्वामिभक्ति !! और धन्य उनकी सहिष्णुता !!!

इधर भरत भाई शत्रुघ्न, गुरु और प्रधान प्रधान मन्त्रियोंको श्रीरामके आश्रमको खोजनेके लिये आज्ञा देकर कहने लगे हैं—

'जबतक भाई श्रीरामचन्द्रके कमल-दलके सदृश विशाल नेत्रोंवाले और चन्द्रमाके समान सुशोभित उस मुख-कमलको मैं न देख लूँगा, तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी । जबतक अपने भ्राताके राजचिह्नोंसे युक्त युगल चरणोंमें मस्तक रखकर मैं प्रणाम न कर लूँगा, तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी । जबतक राज्यके सच्चे अधिकारी भगवान् श्रीराम अभिषेकके जलसे सिक्त होकर अपने पिता-पितामहोंके साम्राज्यपर प्रतिष्ठित न हो जायँगे, तबतक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी ।' (वा० रा० २ । ९८ । ७, ९-१०)

इस प्रकार बहुत कुछ कहकर पुरुषश्रेष्ठ भरतजीने पैदल ही श्रीरामकी खोज करनेके लिये उस गहन वनमें प्रवेश किया । ऊँचे वृक्षपर चढ़कर उन्होंने दूरसे ही श्रीरामके आश्रमको और उसमें बैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीको पहचाना । इससे उनमें नया जीवन आ गया । वे बड़े प्रसन्न हुए और गुरुको साथ लेकर आश्रमकी ओर चल दिये ।

श्रीरामकी कुटियाके पास पहुँचकर भरत देखते हैं कि समस्त पृथ्वीके स्वामी, धर्मस्वरूप भगवान् श्रीरामचन्द्रजी जैसा

और लक्ष्मणके साथ एक चबूतरेपर बैठे हैं। उन्होंने कृष्णमृग-चर्म और वल्कल-वस्त्र धारण कर रक्खे हैं। उनके मस्तकपर जटाएँ शोभा दे रही हैं तथा सिंहके-से कंधे, बड़ी-बड़ी भुजाएँ और कमलके समान नेत्र हैं। श्रीरामको इस अवस्थामें देखकर महात्मा भरत शोकमें निमग्न हो जाते हैं। भाईकी ओर दृष्टि पड़ते ही आर्तभावसे विलाप करते हुए गद्गद वाणीसे कहने लगते हैं—

'हाय! जो राजसभामें बैठकर प्रजा और मन्त्रिवर्गके द्वारा सम्मान पानेयोग्य हैं, वे ही ये मेरे बड़े भाई यहाँ जंगली पशुओंसे घिरे बैठे हैं। जो महात्मा पहले हजारोंके मूल्यके वस्त्रोंका उपयोग करते थे, वे आज यहाँ धर्माचरण करते हुए केवल दो मृगचर्म धारण करके रहते हैं!' 'हाय! जो सब प्रकारसे सुखके योग्य हैं, वे श्रीराम मेरे ही कारण इतना दुःख उठा रहे हैं। मैं कितना क्रूर हूँ! मेरे इस लोकनिन्दित जीवनको धिक्कार है।' (वा० रा० २।९९।३१-३२, ३९)

इस प्रकार विलाप करते-करते भरतजी दुःखसे व्याकुल हो गये। उनके मुख-कमलपर आँसुओंकी धारा बहने लगी। वे अत्यन्त दुःखसे विह्वल हो जानेके कारण श्रीरामके चरणोंको छू सकनेके पहले ही 'हा आर्य!' कहकर उनके पास दीनकी भाँति गिर पड़े। शोकसे उनका गला रुँध गया, कुछ भी बोल नहीं सके। फिर शत्रुघ्नने भी रोते-रोते श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम किया। जटा और वल्कल धारण किये भरतको हाथ जोड़े पृथ्वीपर पड़ा देख श्रीरामने बड़ी कठिनाईसे पहचाना। उन्होंने दोनों भाइयोंको उठाया और छातीसे लगा लिया। भरतका बर्ताव देखकर समस्त वनवासी रोने लगे।

तदनन्तर भाई भरतको गोदमें बैठाकर श्रीरामचन्द्रजीने पूछा—'भाई! तुम राज्य छोड़कर वल्कल-वस्त्र, मृगचर्म और जटा धारण करके यहाँ क्यों आये?' इसपर भरतजीने पिताकी मृत्युका समाचार सुनाकर कहा—

'सबको सम्मान देनेवाले रघुनन्दन! परम्परानुसार तथा योग्य होनेके कारण भी इस राज्यके अधिकारी आप ही हैं। अतः न्यायसे इस राज्यको आप धर्मानुसार ग्रहण करके अपने सुहृदोंका मनोरथ पूर्ण करें। मैं आपका छोटा भाई, शिष्य और दास हूँ। इन मन्त्रियोंके साथ आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर प्रार्थना करता हूँ, मुझपर कृपा करें।' (वा० रा० २।१०१।१०, १२)

इसी तरहकी और भी बहुत-सी बातें कहकर भरतजी नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए पुनः श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़े और राज्याभिषेकके लिये उनसे प्रार्थना करने लगे। तब श्रीरामजीने बहुत-सी शास्त्रोक्त बातें कहकर और पिताकी आज्ञाका महत्त्व दिखाकर भरतको राज्य ग्रहण करनेके लिये बहुत कुछ समझाया, परंतु उन्हें संतोष नहीं हुआ। उन्होंने कहा—'भगवन्! आपकी बराबरी कौन कर सकता है? आपके लिये सुख-दुःख, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति—सब समान हैं। जिसको आपकी तरह ज्ञान है, वह संकट पड़नेपर भी विषाद नहीं करेगा; परंतु मैं ऐसा नहीं हूँ। अतः मैं बारंबार आपके चरणोंमें माथा टेककर याचना करता हूँ, आप दया कीजिये! आप पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं, मेरा और मेरी माताका कलङ्क धोकर पूज्य पिताजीको भी निन्दासे बचाइये।'—इत्यादि

भरतके इस प्रकार कहनेपर सम्पूर्ण ऋत्विज्, पुरवासी, भिन्न-भिन्न समुदायके नेता और माताएँ—ये सब अचेत-से होकर आँसू बहाते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे और सभीने अपनी-अपनी योग्यताके अनुसार श्रीरामचन्द्रजीसे लौटनेकी प्रार्थना की।

तदनन्तर श्रीरामने फिर बहुत-से न्याय और धर्मसे पूर्ण वचन कहकर भरतको समझाया। इस प्रकार बात होते होते जब श्रीरामचन्द्रजीने किसी तरह भी स्वीकृति नहीं दी, तब भरतजीके मनमें बड़ा दुःख हुआ; वे बोले—'जब-तक मेरे स्वामी मुझपर प्रसन्न नहीं होंगे, तबतक मैं बिना कुछ खाये-पीये यहीं इनके सामने बैठा रहूँगा।' इतना कहकर वे दर्भासन बिछाकर जमीनपर बैठ गये। तब श्रीरामचन्द्रजीने फिर भरतको समझाया कि 'भाई! तुम्हारा यह कार्य धर्मके विरुद्ध है। अतः तुम इस दुराग्रहका त्याग करो।' यह सुनकर भरत तुरंत ही खड़े होकर पुनः सबके सामने कहने लगे कि 'यदि पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये इनका वनमें रहना अनिवार्य हो तो इनके बदले मैं ही चौदह वर्षतक वनमें निवास करूँगा।' इसपर फिर श्रीरामने भरतको समझाया कि 'भाई भरत! इस प्रकार अदल-बदल करनेका हमलोगोंको अधिकार नहीं है।' इसके बाद सबके सामने भगवान् श्रीरामने कहा—

'मैं जानता हूँ भरत बड़ा क्षमाशील और गुरुजनोंका सत्कार करनेवाला है। इस सत्यप्रतिज्ञ महात्मामें सभी कल्याणकारी गुण वर्तमान हैं। वनवासकी अवधि समाप्त

करके फिर जब मैं लौटूँगा, तब मैं अपने इस धर्मशील भाईके साथ इस पृथ्वीका प्रमुख राजा बनूँगा । कैकेयीने राजासे वर माँगा, मैंने उनकी आज्ञाको स्वीकार कर लिया । इसलिये भाई भरत ! अब तुम मेरा कहना मानकर उन पृथ्वीपति राजाधिराज पिताजीको असत्यके बन्धनसे मुक्त करो ।' (वही, २ । १११ । १०—१२)

उन अतुलित तेजस्वी भाइयोंका वह रोमाञ्चकारी संवाद सुनकर और आपसका प्रेमपूर्ण बर्ताव देखकर वहाँ आये हुए जन-समुदायके साथ सभी महर्षि विस्मित और मुग्ध हो गये । अन्तरिक्षमें अदृश्य भावसे खड़े हुए मुनि और वहाँ प्रत्यक्ष बैठे हुए महर्षि उन दोनों भाइयोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ।

इसके बाद सब महर्षियोंने भरतको श्रीरामकी बात मान लेनेके लिये समझाया । इससे श्रीरामको बड़ी प्रसन्नता हुई, परंतु भरतको संतोष नहीं हुआ । वे लड़खड़ाती हुई जबानसे हाथ जोड़कर फिर श्रीरामसे कहने लगे—'आर्य ! मैं इस राज्यकी रक्षा नहीं कर सकता । आप इस राज्यको स्वीकार करके दूसरे किसीको इसके पालनका भार सौंप दीजिये ।' (वही, २ । ११२ । १९) यह कहकर भरत अपने भाईके चरणोंमें गिर पड़े । तब श्रीरामचन्द्रने उनको उठाकर गोदमें बैठा लिया और मधुर स्वरसे बोले—

'प्यारे भाई ! तुम्हें स्वभावसे ही तथा शिक्षाके फलस्वरूप जो यह विनययुक्त बुद्धि प्राप्त हुई है, इससे तुम सारी पृथ्वीकी रक्षा करनेमें भी पूर्णतया समर्थ हो ।' (वही, १ । ११२ । १६)

सूर्यतुल्य तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीके ये प्रेम और शिक्षाभरे वचन सुनकर और उनकी दृढ़ता देखकर भरतने कहा—

'आर्य ! ये दो स्वर्णभूषित पादुकाएँ हैं, आप इनपर अपने चरण रखें । ये ही सम्पूर्ण जगत्के योगक्षेमका निर्वाह करेंगी ।' (वही, २ । ११२ । २१)

धन्य है भरतके उज्ज्वल भावको !

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने उन पादुकाओंपर अपने मङ्गलमय चरण-युगल रखकर उन्हें भरतको दे दिया । उन पादुकाओंको प्रणाम कर भरतने श्रीरामसे कहा—

'वीर रघुनन्दन ! मैं भी चौदह वर्षोंतक जटा और चीर धारण करके फल-मूलका आहार करूँगा और आपके आनेकी बाट जोहता हुआ नगरसे बाहर ही रहूँगा । परंतप ! इतने दिनोंतक राज्यका सारा भार आपकी इन चरण-पादुकाओंपर ही रहेगा । रघुश्रेष्ठ ! चौदह वर्ष पूरे होनेके बाद, उसी दिन यदि मुझे आपके दर्शन नहीं मिलेंगे तो मैं धधकती आगमें प्रवेश कर जाऊँगा ।' (वही, २ । ११२ । २३–२६)

भरतकी यह प्रतिज्ञा सुनकर भगवान्ने प्रसन्नतापूर्वक उसका अनुमोदन किया । तदनन्तर दोनों भाइयोंको माता कैकेयीके साथ अच्छा व्यवहार करनेकी शिक्षा देकर और दोनोंका हृदयसे आलिङ्गन करके विदा किया । उस समय भाई भरतके वियोगमें श्रीरामचन्द्रजीकी आँखोंमें जल भर आया ।

तदनन्तर भरतजी भगवान्की पादुकाओंको मस्तकपर धारण करके बड़ी प्रसन्नतासे रथपर सवार हुए तथा रास्तेमें भरद्वाजजीसे मिलकर उनसे सारी बातें कहकर और आज्ञा लेकर शृङ्गवेरपुर होते हुए अयोध्या पहुँचे । फिर माताओंको महलमें रखकर भरतने सब गुरुजनोंसे कहा—

'अब मैं नन्दिग्रामको जाऊँगा, इसके लिये आप सब लोगोंकी आज्ञा चाहता हूँ । बहुत दुःखकी बात है, महाराज तो स्वर्ग सिधार गये और मेरे परम पूज्य गुरु श्रीराम वनमें निवास करते हैं । अतः मैं वहीं रहकर श्रीराम-वियोगमें इस सब दुःखोंको सहन करूँगा और राज्यके लिये श्रीरामचन्द्रजीकी प्रतीक्षा करूँगा; क्योंकि महायशस्वी श्रीराम ही हमलोगोंके राजा हैं ।' (वही, २ । ११५ । २-३)

भरतकी ऐसी बात सुनकर मन्त्रियोंसहित पुरोहित श्रीवसिष्ठजीने कहा—

'भरत ! भ्रातृ-भक्तिसे प्रेरित होकर तुमने जो वचन कहा है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है । वास्तवमें यह तुम्हारे ही योग्य है । तुम अपने भाईके दर्शनार्थ सदा ही लालायित रहते हो, उन्हींके हितमें संलग्न हो और अत्यन्त उत्तम मार्गपर चल रहे हो; अतः तुम्हारे विचारका अनुमोदन कौन पुरुष नहीं करेगा ।' (वही, २ । ११५ । ५-६)

इस प्रकार सबकी आज्ञा लेकर भरत श्रीरामचन्द्रजीकी पादुकाओंको सिरपर रखके शत्रुघ्नके साथ नन्दिग्राम चले गये । वहाँ रथसे उतरकर सब गुरुजनोंसे बोले—

'मेरे भाईने यह राज्य मुझे उत्तम धरोहरके रूपमें दिया है । उनकी ये सुवर्ण-भूषित पादुकाएँ ही सबका योगक्षेम

निवारनेवाली हैं। मैं इन्हें आर्य श्रीरामचन्द्रजीके साक्षात् चरण मानता हूँ। आपलोग शीघ्र ही इनपर छत्र लगायें। मेरे गुरुकी इन चरणपादुकाओंके प्रभावसे ही इस राज्यमें धर्मकी स्थापना होगी। उन्होंने प्रेमके कारण ही मुझे यह अमूल्य धरोहर सौंपी है। अतः मैं उनके लौटनेतक इसकी भलीभाँति रक्षा करूँगा तथा उनके आनेपर शीघ्र ही इनको पुनः भगवान्के चरणोंसे युक्त कर इन पादुकाओंसे सुशोभित आर्यके चरणोंका दर्शन करूँगा। श्रीरघुनाथजीके आते ही उनकी सेवामें यह राज्य समर्पित कर दूँगा। फिर मेरा सब भार हलका हो जायगा। मैं उनकी आज्ञाके अधीन रहकर उन्हींकी सेवामें लग जाऊँगा। मेरे पास धरोहरके रूपमें रखे हुए इस राज्यको, इन पादुकाओंको और अयोध्याको भी श्रीरामकी सेवामें समर्पित करके मैं सब प्रकारके दुःख और पापोंसे मुक्त हो जाऊँगा।' (वही, २ । ११५ । १४ । १६-२०)

फिर धैर्यवान् भरतजी वल्कल-वस्त्र धारण किये मुनिका वेष बनाकर नन्दिग्राममें रहने लगे। वे राज्यशासनका समस्त कार्य भगवान्की चरण-पादुकाओंसे निवेदन करके करते थे। उनके ऊपर स्वयं छत्र लगाते और चँवर डुलाते थे। इस प्रकार उन्होंने बड़े भाई श्रीरामचन्द्रजीकी चरण-पादुकाओंका राज्याभिषेक किया। राज्यका जो कोई कार्य उपस्थित होता, जो भी बहुमूल्य भेंट आती, भरतजी वह सब पहले उन पादुकाओंको अर्पण करते और पीछे उसका यथायोग्य प्रबन्ध करते।

× × ×

लङ्का-विजयके बाद विभीषणको राज्य देकर, सीता और लक्ष्मणके साथ भगवान् श्रीराम अयोध्या लौटनेके लिये तैयार हुए। उस समय विभीषणने श्रीरामजीसे स्नान आदि करके वस्त्रालंकार धारण करनेकी प्रार्थना की। तब भगवान् भरतकी भक्ति याद करके कहते हैं—

'सत्यपरायण, धर्मात्मा, महाबाहु, सुकुमार भरत सब प्रकारके सुख-भोगोंके योग्य होकर भी मेरे लिये दुःख भोग रहा है। उस धर्मचारी कैकेयीपुत्र भरतके बिना मुझे स्नान और वस्त्राभूषण धारण करना उचित नहीं है।'... 'उस भाई भरतको देखनेके लिये तो मेरा मन छटपटा रहा है।' (वही, ६ । १२१ । ५-६, १८) इससे मालूम होता है कि भरतपर श्रीरामका कितना प्रेम था।

उसके बाद श्रीराम सीता, लक्ष्मण और सब प्रमुखोंके साथ पुष्पक विमानपर बैठकर अयोध्याके लिये चले और भरद्वाज-आश्रमपर पहुँचकर अपने आनेका शुभ संवाद देनेके लिये हनुमान्को प्यारे भरतके पास भेजा।

नन्दिग्राममें पहुँचकर श्रीहनुमान्ने देखा कि भरत नगरके बाहर आश्रममें रहते हैं। भाईके वियोगसे उनका शरीर दुर्बल हो गया है। उनपर मैल जम गयी है। उनका मुख सूख गया है, उसपर दीनताका भाव झलक रहा है। वे केवल फल-मूलका ही आहार करते हैं। इन्द्रियाँ उनके वशमें हैं। वे मस्तकपर लंबी जटाओंका भार तथा शरीरपर वल्कल और मृगचर्म धारण किये धर्माचरणपूर्वक तपस्या कर रहे हैं। उनका मन सब ओरसे संयम और ध्यानमें निमग्न है। उनका तेज ब्रह्मर्षियोंके समान है। वे श्रीरामकी चरणपादुकाओंकी सेवा करते हुए पृथ्वीका शासन कर रहे हैं। हनुमान्जीने यह भी देखा कि भरतके प्रेम और सदाचारसे आकर्षित होकर काषाय-वस्त्र धारण किये हुए मन्त्री, पुरोहित और सेनाके प्रधान प्रधान वीर भी उन्हींके पास रहते हैं। वायुपुत्र हनुमान्जीने भरतजीको श्रीरामके आगमनका समाचार सुनाया।

हनुमान्के मुखसे भगवान्के आनेका समाचार सुनकर भरतजी हर्षसे विह्वल हो गये। उनको शरीरकी सुधि नहीं रही। थोड़ी देरमें स्वस्थ होनेपर उन्होंने हनुमान्को हृदयसे लगा लिया और प्रेमाश्रुओंसे भिगोते हुए उनसे कहने लगे—

'बन्धुवर! दया करके आनेवाले तुम कोई देवता हो या मनुष्य? सौम्य! तुमने मुझे बड़ा ही प्रिय संदेश दिया; इसके बदलेमें तुम्हें जो कुछ प्रिय हो, वह मैं दे सकता हूँ। मेरे स्वामीको गहन वनमें गये हुए बहुत वर्ष बीत गये। आज ही मैं अपने नाथका आनन्ददायक समाचार सुन रहा हूँ।' (वही, ६ । १२५ । ४३; १२६ । १)

इसके बाद भरतजीने वानरोंके साथ श्रीरामकी मित्रता होनेके विषयमें पूछा। इसपर हनुमान्जीने वन-गमनसे लेकर लङ्कासे लौटते हुए भरद्वाजके आश्रममें पहुँचनेतककी सारी बातें कह सुनायीं। यह सब सुनकर भरतजी बड़े प्रसन्न हुए और पास ही खड़े हुए शत्रुघ्नसे नगरको सजावट करने और सबको श्रीरामकी अगवानीके लिये तैयार होनेकी सूचना देनेको कहा। समाचार सुनते ही सारे नगरमें हर्ष और प्रेमकी बाढ़ आ गयी। सभी भगवान्के आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। धर्मज्ञ भरतजीने श्रीरामकी पादुकाओंको सिरपर रखकर उन्हें सुन्दर मालाओं

सुशोभित किया और उनपर स्वर्णरचित छत्र लगाकर स्वर्ण-भूषित श्वेत चँवर डुलाते हुए चले। थोड़ी दूर जानेपर जब उन्हें श्रीरामचन्द्रजी आते हुए दिखायी नहीं दिये, तब वे प्रेमाकुल होकर हनुमान्‌जीसे पूछने लगे—'हनुमान् ! क्या बात है ! अभीतक रघुकुलभूषण आर्य श्रीराम मुझे दिखायी नहीं दे रहे हैं।' इतनेमें ही श्रीभरतजीने विमानको आते हुए देखा और उसपर बैठे हुए श्रीरामको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। फिर श्रीरामकी आज्ञासे वह विमान पृथ्वीपर उतरा। श्रीभरतजी विमानके भीतर श्रीरामको देखकर हर्षसे भर गये और पुनः उनके चरणोंमें गिर पड़े। श्रीरामचन्द्रजीने बहुत दिनोंके बाद दृष्टिगोचर हुए भाई भरतको उठा, गोदमें बैठाकर प्रेम और हर्षपूर्वक हृदयसे लगाया। इसके बाद भरतने भाई लक्ष्मणसे मिलकर सीताके चरणोंमें प्रणाम किया।

तदनन्तर धर्मज्ञ श्रीभरतजीने श्रीरामकी उन दोनों पादुकाओंको हाथमें लेकर श्रीरामके चरणोंमें पहना दिया और हाथ जोड़कर कहा—

'यह धरोहररूपमें रखा हुआ आपका सम्पूर्ण राज्य मैंने आज आपको लौटा दिया। आज मेरा जन्म सफल हो गया और मेरे समस्त मनोरथ पूर्ण हो गये, जो मैं अयोध्यामें लौटकर आये हुए आपको देख रहा हूँ।'—इत्यादि। (वा०, ६। १२७। ५४-५५)

—इस प्रकार कहते हुए भ्रातृप्रेमी भरतको देखकर राक्षसराज विभीषण और सुग्रीवादि वानरोंकी आँखोंमें आँसुओंकी धारा बह चली।

श्रीरामका राज्याभिषेक हो जानेके बाद भरत भी लक्ष्मणकी भाँति ही श्रीरामकी सेवामें रहने लगे। कुछ दिन बाद श्रीरामने भरतके मामाका समाचार पाकर गन्धर्वोंपर विजय करनेके लिये भरतको भेजा। भरतजीने भगवान्‌की आज्ञा पालन करनेके लिये ही वहाँ जाकर गन्धर्वोंपर विजय प्राप्त की। पुनः भगवान्‌के आज्ञानुसार वहाँके राज्यपर अपने पुत्रोंका अभिषेक करके वे शीघ्र ही भगवान्‌के पास लौट आये और उनसे सब बातें कह दीं। पूरी बातें सुन लेनेपर श्रीरामने भरतकी प्रशंसा की और बहुत प्रसन्न हुए।

इसके बाद लक्ष्मणका त्याग करनेपर श्रीरामचन्द्रजीने परमधाम पधारनेकी इच्छासे भरतका राज्याभिषेक करनेकी बात कही; परंतु भरतने उसे स्वीकार नहीं किया। वे इस तरहकी बात सुनते ही अचेत हो गये और चेत होनेपर राज्यकी निन्दा करते हुए बोले—

'भगवन् ! मैं नियमपूर्वक सत्य तथा स्वर्गकी शपथ करके कहता हूँ कि मैं आपके बिना रहकर राज्य भी नहीं चाहता।' (वही, ७। १०७। ९)

—तब श्रीरामने भरतकी सलाहसे कुश और लवको राज्यपर अभिषिक्त किया और शत्रुघ्नको बुलाकर सबके साथ परमधाम पधार गये।

वास्तवमें भरतकी राम-भक्ति जगत्‌के इतिहासमें अद्वितीय है। इनका त्याग, संयम, व्रत, नियम—सभी आदरणीय और अनुकरणीय हैं। इनके चरित्रसे स्वार्थ-त्याग, विनय, सहिष्णुता, गम्भीरता, सरलता, क्षमा, वैराग्य और स्वामिभक्ति आदि सभी गुणोंकी शिक्षा ली जा सकती है। भक्तिसहित निष्कामभावसे गृहस्थमें रहते हुए मर्यादापालन करनेका ऐसा सुन्दर उदाहरण अन्यत्र मिलना कठिन है।

भानु-कुल-भानुसे विनय

भानु-कुल-भानु भगवान रामचंद्र ! मेरे
सरवस एक, अपनोई एक, ध्यान दे।
नाथ ! सदा मेरी एक तोही सौं पन, फे इनै,
छूटै, किधौं टूटै, इतनी ही वरदान दे ॥
आयो इहि देस, पथ भारत दिखायो हौं,
याही तप कर्म-भूमि, या को अभिमान है।
चाहौं पारब्रह्म की प्राप्ति होवै, तऊ
मानव ही मानौं तोहि, ऐसो मोहि ध्यान है ॥
दोहा—मोदक कर, किलकत-नयन, धूलि-धूसरित वेष ।
इन नैनन मैं खेलिये, रामलला यहि वेष ॥

—श्रीरामरूपदासजी

माण्डवी

माण्डवी—ये राजा जनकके भाई कुशध्वजकी कन्या थीं। जिस समय सीता, उर्मिला एवं श्रुतकीर्तिका पाणिग्रहण क्रमशः श्रीराम, लक्ष्मण एवं शत्रुघ्नने किया, उसी समय इनका पाणिग्रहण श्रीरामके अनन्य भक्त भरतजीने किया था। इनकी अपने पति-चरणोंमें प्रगाढ़ श्रद्धा, सीताके प्रति अद्भुत प्रीति तथा श्रीरामके चरणोंमें अलौकिक भक्ति थी। ये अपनी सेवा तथा सद्व्यवहारसे श्वशुर-कुलमें सबको सदा संतुष्ट रखती थीं। इनके जीवनमें स्वार्थका लेश भी नहीं था। ये निश्छल, धर्मपरायण, संयमी एवं पतिचरणानुगामिनी थीं।

कैकेयीने महाराज दशरथसे श्रीरामके लिये अरण्यवासका वरदान माँगा तो ये सन्न और ग्लानिसे भर गयीं। इन्होंने सोचा, 'जिन कमललोचन श्रीरामके लिये हमारा सर्वस्व सदा प्रस्तुत रहता है और जिन सुर-मुनि-पूजित श्रीरामके बिना पतिदेव (भरतजी) अपना जीवन धारण नहीं कर सकते, उनके अरण्य-गमनसे हमपर सदा लाञ्छन लगेगा। आन्तरिक पीड़ा तो अलग रही, यह कलङ्क अमिट रहेगा। पर जब भरतजी ननिहालसे लौटकर श्रीरामको लौटाने चित्रकूटके लिये प्रस्थित हुए, तब इनका जी हल्का हुआ।

सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामके वन-गमन और श्वशुरके प्राणान्तसे ये अत्यन्त व्याकुल हो गयी थीं, उदास रहती थीं। भरतजी चित्रकूटसे लौटे तो नन्दिग्राममें श्रीरामकी पादुकाओंको सिंहासनपर प्रतिष्ठित करके 'कंद असन फल फूल बसन'—श्रीराम-लक्ष्मणकी ही भाँति तपोमय जीवन व्यतीत करने लगे। शत्रुघ्नजी उनकी सेवामें रहते थे। इस प्रकार माण्डवी भी पतिके समीप रहनेपर भी उनसे दूर एकान्त-जीवन व्यतीत कर रही थीं, उनका समय भी निरन्तर भजन-पूजनमें लग रहा था।

दुःखके दिन बीते। रावण-वध कर प्रभु सीता और लक्ष्मणसहित सकुशल लौटे। भरतजी भी नन्दिग्रामसे आकर राज्य-भवनमें रहने लगे। माण्डवीसे दो पुत्र उत्पन्न हुए—तक्ष और पुष्कल। माण्डवीके दोनों पुत्र परम पराक्रमी एवं अद्भुत योद्धा थे। अश्वमेध यज्ञके समय शत्रुघ्नके साथ पुष्कल भी गये थे और उन्होंने कुशलतापूर्वक अश्वकी रक्षा की। तक्ष और पुष्कलने अपने पिता भरतके साथ केकयदेशमें तीन करोड़ गन्धर्वोंको रणमें पराजितकर सिन्धुनदीके दोनों ओर अपना साम्राज्य स्थापित किया था। सिन्धुदेशमें तक्षके नामपर तक्षशिला नगर बसा एवं गन्धार (अफगानिस्तान) देशमें पुष्कलके नामपर एक प्रसिद्ध पुरी बसायी गयी, जिसका नाम था—पुष्कलावती।

—शि० दु०

निवेदन

मो सम को निष्फल यड़भागी।
तजि साकेत, सँकेत हिये के भये राम अनुरागी॥
कहाँ धवल पावन पयोधि, जेहि सीकर सृष्टि समाई।
कहाँ मोह-तममय हिय मेरो, भरी सदा मलिनाई॥
मा स्वागत हित पुष्प पाँवड़े रघुपति सकेउ बिछाई।
श्रद्धा-भक्ति हृदय की साँची, पूजहु महि धनि आई॥
पाप-पहार गयउ बहि पलमें, आरति आँसु गिराये।
दीनबंधु सुनि गिरा दीन की सरनागत अपनाये॥
कलुष कान्ति हिय पावन कीन्हो, जग कीन्हो निस्तार।
रोम-रोम प्रति कोटि विस्व जेहि, साकार भयउ अगार॥
जाके एक किरन से राजत विपुल-रवि-ससि-आगि।
तेहि प्रकास राम-सोम नियारेउ दीन दास हित लागि॥
जिमि प्रभु मोहि राखि सरनागत, अपन-अघहि भरनाये।
तिमि मेरो हिय सदा आपनो मंदिर रखहु बनाये॥

—रा० रामदास गौड़

देती थी। सेवा-धर्ममें तत्पर निःस्वार्थ सेवकको तुरंत करने-योग्य प्रबल मनचाहा सेवाधर्म सामने आ पड़नेपर स्त्री-सहधर्मिणी पत्नी भी इसको दुःख मानती है। क्योंकि वह अपने पतिकी स्थितिसे भलीभाँति परिचित होती है और उसके प्रत्येक त्यागपूर्ण महान् कार्यका अनुमोदन करना ही अपना धर्म समझती है।

एक बात और है, सेवक परतन्त्र होता है। स्वामी श्रीराम तो स्वतन्त्र थे, वे अपने साथ जानकीजीको ले गये। परंतु परतन्त्र, सेवापरायण लक्ष्मण भी यदि उर्मिलाको साथ ले जाना चाहते तो यह अनुचित होता, उन्हें रामजीकी सम्मति लेनी पड़ती। श्रीरामजी जहाँ वनमें सीताजीको साथ ले जानेमें ही आपत्ति करते थे, वहाँ वे उर्मिलाको साथ ले जानेमें कैसे सहमत होते। जो कार्य स्वामीकी रुचिके प्रतिकूल हो, उसकी कल्पना भी सच्चे सेवकके चित्तमें उत्पन्न नहीं हो सकती। इसी प्रकार पतिकी रुचिके प्रतिकूल कल्पना सच्ची पतिव्रता पत्नीके हृदयमें नहीं उठ सकती। उर्मिला परम पतिव्रता थीं, लक्ष्मण इसको जानते थे। धर्मशास्त्रमें उनकी चिरसम्मति उन्हें प्राप्त थी। एक बात यह भी है कि लक्ष्मणजी सेवाके लिये वन जाना चाहते थे, सैरके लिये नहीं। पत्नीको साथ ले जानेसे उसकी देखभालमें भी इनका समय लगता तथा दो स्त्रियोंके सँभालनेका भार श्रीरामपर पड़ता। सेवक अपने स्वामीको संकोचमें कभी नहीं डाल सकता, लक्ष्मणजी और उर्मिलाजी दोनों ही इस बातको जरूर समझते थे। अतएव उन्होंने कोई निष्ठुरता-का बर्ताव नहीं किया, प्रत्युत इसीमें लक्ष्मणजी और उर्मिलाजी दोनोंकी सच्ची महिमा है।

वनवासमें श्रीलक्ष्मणजीके सेवाधर्मका महत्त्व देखिये। वे दिन-रात श्रीसीतारामके पास रहते हैं। कंद-मूल-फल ला देना, पूजाकी सामग्री जुटा देना, आश्रमको झाड़ना-बुहारना, वेदिकापर कोमल शय्या देना, श्रीसीतारामकी रुचिके अनुसार उनकी हर प्रकारकी सेवा करना और दिन-रात जागकर पहरा देना ही उनका कार्य है। वे अपने कार्यमें बड़े ही तत्पर हैं। लक्ष्मणजीकी सेवाका पता तो इसीसे लग जाता है कि माता सीताकी सेवामें लगे रहनेपर भी उन्होंने उनके चरणोंको छोड़कर अन्य किसी अङ्गका कभी दर्शनतक नहीं किया। यह बात इसीसे सिद्ध है कि लक्ष्मणजी सीताजीके गहनोंको पहचान नहीं सके। जब रावण श्रीसीताजीको आकाशमार्गसे ले जा रहा था, तब उन्होंने पहाड़पर बैठे हुए वानरोंके दलमें कुछ गहने डाल दिये थे। श्रीराम-लक्ष्मण सीताको खोजते हुए जब हनुमान्‌जीकी प्रेरणासे सुग्रीवके पास पहुँचे, तब सुग्रीवने श्रीरामको वे गहने दिखलाये। श्रीरामके पूछनेपर लक्ष्मणजी बोले—

> नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
> नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥
>
> (वा० रा० ४ । ६ । २२)

'स्वामिन्! मैं इन केयूर और कुण्डलोंको नहीं पहचानता। मैंने तो प्रतिदिन चरणवन्दनके समय माताजीके नूपुर देखे हैं, अतः उन्हें पहचान सकता हूँ।' आजकलके देवरोंको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। श्रीलक्ष्मणजीके इस महान् व्रतपर श्रीरामका बड़ा भारी विश्वास था, इस बातका पता इसीसे लगता है कि वे मर्यादापुरुषोत्तम होनेपर भी लक्ष्मणजीके साथ सीताजीको अकेले बेखटके छोड़ देते थे। जब खर-दूषण भगवान्‌के साथ युद्धके लिये आये थे, तब श्रीरामने जानकीजीको लक्ष्मणजीकी संरक्षकतामें एकान्त गिरिगुहामें भेज दिया था—

'राम बोलाइ अनुज सन कहा।'—'लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर।'

(मानस ३ । १७ । ५-६)

मायामृगको मारनेके समय भी सीताके पास रामलक्ष्मणजीको छोड़ गये थे और निर्वासनके समय भी लक्ष्मणजीको ही सीताके साथ भेजा था।

लक्ष्मणजीका सेवा-व्रत सम्पूर्ण था। उन्होंने बारह सालतक लगातार श्रीरामसेवामें रहकर कठिन तपस्या की, इसी कारण वे मेघनादको मारकर राम-काजमें सहायक बन सके थे। तपस्यामें उनका उद्देश्य भी यही था क्योंकि वे श्रीरामको छोड़कर दूसरी बात न तो जानते थे और न जानना चाहते ही थे। उन्होंने स्वयं कहा है—

> गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
> जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
> मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥
> धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
>
> (मानस, २ । [illegible])

श्रीशत्रुघ्न

श्रीशत्रुघ्नजीका चरित्र भी अपने ढंगका निराला ही है। वाल्मीकीय रामायणमें श्रीशत्रुघ्नजीको भी भगवान् विष्णुका ही अंशावतार माना गया है; परंतु उनके चरित्रसे यही सिद्ध होता है कि आप श्रीरामके शंखावतारोंमें अग्रगण्य थे। श्रीशत्रुघ्नजी मौनव्रती, प्रेमी, सदाचारी, मितभाषी, सत्यवादी, विषयविरागी, सरल, तेजःपूर्ण, गुरुजनोंके अनुगामी और वीर थे। श्रीरामायणमें इनके सम्बन्धमें विशेष विवरण नहीं मिलता; परंतु जो कुछ मिलता है, उसीसे इनकी महत्ताका कुछ अनुमान किया जा सकता है। आप बाल्यकालसे ही सदा भरतजीके साथ रहते थे, अतः श्रीभरतजीका और इनका चरित्र साथ ही चलता है। इसलिये रामायणमें इनके विषयमें कोई विशेष बात अलग नहीं कही गयी है। इनके गुण और चरित्रोंका अनुमान भरतके व्यवहारसे लगा लेना चाहिये।

बालकाण्डमें इनके प्रेमका वर्णन करते हुए कहा गया है—

> भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः।
> प्राणैः प्रियतरो नित्यं तस्य चासीत्तथा प्रियः॥
>
> (वा० रा० १।१८।३३)

'जैसे लक्ष्मण हाथमें धनुष लेकर श्रीरामकी रक्षा करते हुए उनके पीछे चलते थे, उसी तरह ही वे लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्न भी भरतके साथ रहते थे।'

जनकपुरमें सब भाइयोंके विवाहका कार्य सम्पन्न होनेके बाद वहाँसे लौटकर अयोध्या आनेके कुछ ही दिन पश्चात् भरतजीको उनके मामा युधाजित् अपने देश ले जाने लगे, तब शत्रुघ्नजी भी उनके साथ ही ननिहाल गये। उस समय भरतजीके प्रेममें उन्होंने माता-पिता, भाई-बन्धु और नवविवाहिता स्त्रीका कुछ भी मोह न करके भाई भरतके साथ रहना ही अपना परम कर्तव्य समझा। फिर अयोध्यासे बुलावा आनेपर भरतजीके साथ ही ये लौट आये। अयोध्या पहुँचने-पर माता कैकेयीके द्वारा पिताके मरण तथा लक्ष्मण और सीताके साथ श्रीरामके वनगमनका समाचार सुनकर इनको भी बड़ा भारी दुःख हुआ। भाई लक्ष्मणके धैर्यसे आप परिचित थे, अतः इन्होंने शोकपूर्ण हृदयसे बड़े आश्चर्यके साथ भरतजीसे कहा—

'आर्य! जो दुःखके समय समस्त प्राणियोंको तो बात ही क्या, समस्त प्राणियोंको सहारा देनेवाले हैं, वे ही महा-पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी पत्नीके साथ वनमें भेज दिये गये (यह कितने दुःखकी बात है), जो भाई लक्ष्मणजी बड़े ही बलवान् और पराक्रमी भी हैं, उन्होंने पिताका निग्रह करके भी श्रीरामको इस संकटसे क्यों नहीं छुड़ा दिया?' (वा० रा० २।७८।२-३)

इस प्रकार बातें हो रही थीं, श्रीशत्रुघ्नजी दुःख और क्रोधमें भरे थे; उसी समय राम-विरह-व्याकुल एक द्वारपालने सूचना दी कि 'राजकुमार! जिस क्रूर पापिनी मन्थराके षड्यन्त्रसे श्रीरामचन्द्र वन भेजे गये हैं, वह वस्त्राभूषणोंसे सज-धजकर खड़ी है।' (वही, २।७८।९) यह सुनकर शत्रुघ्नजीको बड़ा क्रोध आया। वे मन्थराकी चोटी पकड़कर उसे आँगनमें घसीटने लगे। यह देखकर कुब्जाकी अन्य सहेलियोंने सोचा कि दयामयी कौसल्याकी शरण गये बिना शत्रुघ्न हमें भी नहीं छोड़ेंगे। अतः वे तुरंत ही दौड़कर कौसल्याजीके पास चली गयीं। कैकेयी उसे छुड़ानेके लिये आयी तो शत्रुघ्नने उन्हें भी फटकार दिया। आखिर भरतने आकर शत्रुघ्नको समझाया कि स्त्रीजाति अवध्य मानी गयी है और यह भी कहा—

> इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
> त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम्॥
>
> (वा० रा० २।७८।२३)

'भाई! यदि वही कुबड़ी तुम्हारे हाथसे मारी गयी तो इस घटनाको जानते ही धर्मात्मा श्रीराम तुमसे और मुझसे भी निश्चय ही बोलना छोड़ देंगे।'

भरतजीके इस वाक्यको सुनकर शत्रुघ्नने कुब्जाको मूर्च्छित अवस्थामें ही छोड़ दिया।

इस प्रसङ्गमें समझनेकी पहली बात तो यह है कि श्रीरामकी धर्मनीतिमें स्त्रीजातिका कितना आदर था, जिससे कि वे हर हालतमें अवध्य मानी जाती थीं। दूसरी यह कि क्रोधातुर भरतने ऐसी परिस्थितिमें भी अपने छोटे भाईको समझाकर अधर्मसे रोका। तीसरी यह कि क्रोधातुर होनेपर भी शत्रुघ्नने तुरंत ही बड़े भाईकी बात मान ली। इसके बाद श्रीरामको लौटानेके लिये भरतजी जब वनमें जाने लगे, तब शत्रुघ्न भी साथ गये। चित्रकूटके पास पहुँचकर भरतकी भाँति वे भी श्रीरामको सर्वत्र ढूँढ़ने लगे। जब भरतने श्रीरामजीको

देखकर उनकी ओर दौड़े, तब रामदर्शनोत्सुक शत्रुघ्न भी उनके पीछे-पीछे पहुँचे। यहाँ कविने कहा है—

> शत्रुघ्नश्चापि रामस्य ववन्दे चरणौ रुदन्।
> तावुभौ च समालिङ्ग्य रामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत् ॥
> (वा० रा० २ । ९९ । ४०)

'शत्रुघ्नने भी रोते-रोते श्रीरामके चरणोंकी वन्दना की। उन दोनोंको हृदयसे लगाकर श्रीराम भी आँसू बहाने लगे।' उसके बाद शत्रुघ्न भाई लक्ष्मण और सीताजीसे भी बड़े प्रेमसे मिले।

सब लोग इकट्ठे हुए, बातचीत आरम्भ हुई। वहाँ श्रीराम और भरतके संवादमें लक्ष्मण और शत्रुघ्नका कोई काम ही नहीं था। शत्रुघ्नजीने तो अपना जीवन रामसेवक श्रीभरतजीको अर्पण कर रक्खा था; अतः उनके विषयमें जो कुछ कहना होता, वह स्वयं भरत ही कह देते।

पादुकाएँ लेकर अयोध्या लौटते समय दोनों भाई फिर श्रीरामकी प्रदक्षिणा और उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनसे मिले। लक्ष्मणकी भाँति शत्रुघ्नका भी स्वभाव तेज था। कैकेयीके प्रति इनके मनमें रोष था, श्रीराम इस बातको जानते थे। इस कारण विदा करते समय श्रीरामने शत्रुघ्नको वात्सल्य भावसे शिक्षा देते हुए कहा—

> मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति ॥
> मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन।
> (वा० रा० २ । ११२ । २७-२८)

'रघुनन्दन शत्रुघ्न! निश्चय ही तुम्हें मेरी और सीताकी शपथ है, तुम माता कैकेयीकी सेवा करना, उनपर कभी क्रोध न करना।'

इससे भी पता लगता है कि शत्रुघ्नजीका श्रीराममें कितना प्रेम और भक्तिभाव था।

इसके बाद शत्रुघ्नजी भरतके साथ अयोध्या लौटकर बराबर उनके आज्ञानुसार राज्य और परिवारकी सेवा करते रहे। शत्रुघ्नजी हर हालतमें भरतके पास रहकर उनकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करते रहते थे। भरतजीके मनमें भी शत्रुघ्नपर बड़ा भरोसा था। इसी कारण वे छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े कार्यके लिये शत्रुघ्नको ही आज्ञा देते थे।

इसके बाद श्रीरामके लौटनेतक शत्रुघ्नजीके विषयमें वाल्मीकीय रामायणमें कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं मिलती। श्रीहनुमान्‌जीद्वारा श्रीरामचन्द्रजीके आनेका समाचार मिलनेपर भरतजीकी आज्ञासे शत्रुघ्नने ही श्रीरामकी अगवानीका और नगरको सजानेका तथा राजमार्ग और अन्य सब रास्तोंको ठीक करानेका प्रबन्ध किया। श्रीरामका राज्याभिषेक होनेके बाद भी आप श्रीभरतजीके साथ-साथ ही श्रीरामका सेवाकार्य किया करते थे। भाईके नाते श्रीलक्ष्मण और श्रीशत्रुघ्नपर भरतजीका समान अधिकार होनेपर भी श्रीभरतजी अपना काम शत्रुघ्नसे ही करवाते थे।

सीता-वनवासके बाद एक दिन बहुत-से ऋषियोंने श्रीरामके पास आकर लवणासुरके अत्याचारोंका वर्णन किया। इसपर श्रीरामने उनको आश्वासन दिया और सभामें यह प्रस्ताव रक्खा कि 'लवणासुरको मारनेके लिये कौन जायगा? किसको भेजा जाय—भरतको या शत्रुघ्नको?' यह सुनकर भरतजीने कहा कि 'मुझे आज्ञा मिले, मैं लवणासुरको मार डालूँगा।' भरतकी बात सुनकर शत्रुघ्नजीने अपने आसनसे खड़े होकर श्रीरामको प्रणाम करके कहा—

'रघुनाथजी! मझले भाई श्रीभरतजीने तो पहले आपके बहुत कार्य किये हैं; क्योंकि इन्होंने आपके वियोगका संताप हृदयमें रखकर भी आपके न रहनेपर आपके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए अयोध्याका पालन किया है। राजन्! महायशस्वी भरतजीने नन्दिग्राममें दुःखकी शय्यापर शयन कर और फल-मूलका भोजन करके जटा और चीर धारण किये हुए आपके वियोगकालको व्यतीत किया है। इस प्रकारके दुःखोंका अनुभव करनेके अनन्तर इस समय सुख भोगते रहते हुए इनको पुनः यह क्लेशदायक परिश्रम नहीं मिलना चाहिये।' (वा० रा० ७ । ६२ । ११-१५)

शत्रुघ्नजीके यों कहनेपर श्रीरामचन्द्रजीने कहा—

'भाई! यही हो, तुम्हीं मेरी आज्ञाका पालन करो। मैं मधुदैत्यके सुन्दर नगरपर तुम्हारा राज्याभिषेक करता हूँ। महाबाहो! यदि तुम भरतको कष्ट देना नहीं चाहते तो अच्छी बात है, भरतको यहीं रहने दो। तुम भी बड़े विद्वान्, शूरवीर और नगर बसानेमें समर्थ हो। यदि तुम्हें मेरी आज्ञाका पालन करना है तो धर्मपूर्वक मधुके नगरका शासन करो। वीर! तुमको मेरी इस आज्ञाके विरुद्ध कोई उत्तर नहीं देना चाहिये।' (वा० रा० ७ । ६२ । १६, १९, २०)

भगवान् श्रीरामके ये वचन सुनकर शत्रुघ्नजीको बड़ी लज्जा हुई और वे मन्द स्वरमें बोले—

'राजन् ! बड़े भाई भरतजीके रहते हुए मुझ छोटेका राज्याभिषेक कैसे हो सकता है ! इस कार्यमें मुझे अधर्म-की प्रतीति होती है । इधर मुझे आपकी आज्ञाका पालन भी अवश्य करना चाहिये; क्योंकि पुरुषोत्तम ! महाभाग ! आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना भी घोर पाप है । वीर ! यही बात मैंने आपसे और वेद-शास्त्रोंसे भी सुन रक्खी है । अतः पूज्य भाई भरतजीके लवणासुरको मारनेकी बात स्वीकार कर लेनेके बाद फिर मुझे कोई उत्तर नहीं देना चाहिये था । मैंने ये बहुत ही अविचारपूर्ण दुर्वचन कह डाले कि लवणासुर-को मैं मारूँगा ।' पुरुषश्रेष्ठ ! इस दुरुक्तिका ही फल यह राज्याभिषेकरूप दुर्गति मुझे मिली है । बड़े भाईकी आज्ञा हो जानेपर फिर उत्तर नहीं देना चाहिये; क्योंकि ऐसा कार्य करना अधर्मयुक्त और परलोकके विरुद्ध है । इसलिये रघुवर ! अब मैं तुम्हारा कुछ भी उत्तर नहीं दूँगा [मैं आपके इच्छानुसार करनेको तैयार हूँ] ।' (वा० रा० ७ । ६३ । २—७)

कैसा सुन्दर त्याग है ! श्रीरामके वियोगमें राज्यप्राप्तिको आप दुर्गति समझते हैं । वास्तवमें बात भी ऐसी ही है, साधकोंको इसी बातपर विशेष ध्यान देना चाहिये ।

इसके बाद श्रीशत्रुघ्नजीने लवणासुरपर चढ़ाई की । उस समय श्रीरामने शत्रुघ्नको लवणासुरको मारनेकी युक्ति बतलायी तथा रास्तेमें खर्चके लिये बहुत सा धन और बड़ी भारी सेना उनके साथ देकर उन्हें विदा किया । रास्तेमें जाते समय शत्रुघ्नजी एक रात श्रीवाल्मीकिजीके आश्रममें ठहरे । उसी रात्रिमें श्रीसीताजीके गर्भसे कुश-लव—इन दो बालक (जोड़ले) पुत्रोंका जन्म हुआ था । इसलिये वह रात्रि भी श्रीशत्रुघ्नजीके लिये बड़ी ही आनन्ददायिनी हुई । इसके बाद शत्रुघ्नजी वहाँसे चलकर रास्तेमें सात दिन ठहरते ठहरते यमुना किनारे च्यवन ऋषिके आश्रममें पहुँचे ।

वहाँ च्यवन ऋषिसे लवणासुरकी दिनचर्या और उसके शूल चलानेकी जानकारी प्राप्त की । फिर उस लवणासुर अपने खानेके आहारके लिये वनमें निकल गया, तब उसके लौटनेसे पहले ही शत्रुघ्नजीने जाकर उसके नगरका द्वार घेर लिया । शत्रुघ्नको देखकर लवणासुर कहने लगा—'तुमसे क्या होगा ! नराधम ! इस तरहके हजारों मनुष्योंको तो मैं रोज खाता हूँ ।' इसपर शत्रुघ्नजीने अपना परिचय देते हुए कहा—'मैं तुम्हारे साथ युद्ध करना चाहता हूँ ।' इसके बाद दोनोंका आपसमें घोर युद्ध हुआ । अन्तमें शत्रुघ्नजीने वज्रके समान एक दिव्य बाण उसकी छातीमें मारा । वह छातीको छेदकर पातालमें प्रवेश कर गया और फिर वापस आकर शत्रुघ्नजीके तरकसमें स्थित हो गया । देवता और महर्षिगण शत्रुघ्नजीकी प्रशंसा करने लगे तथा आकाशसे जय-जयकारकी ध्वनि और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी ।

इस प्रकार लवणासुरको मारकर तथा वहीं मथुरा नामक मधुपुरी बसाकर, उसके राज्यका प्रबन्ध करके बारह वर्षके बाद शत्रुघ्नजी श्रीरामका दर्शन करनेके लिये वहाँसे अयोध्या-की ओर लौटे । आते समय फिर शत्रुघ्नजी श्रीवाल्मीकि ऋषिके आश्रममें ही ठहरे । वहाँ उन्होंने मधुर स्वरमें गाये जाते हुए श्रीरामचरित्रको सुना । उसे सुनकर उनका हृदय करुणासे भर गया । वे रात्रिमें वहीं लेटकर श्रीरामके चित्तमें ही विचार करते रहे । उनको नींद नहीं आयी । सबेरा होने-पर नित्यकर्मके बाद मुनिकी आज्ञा लेकर श्रीरामदर्शनकी उत्कण्ठासे वे अयोध्याकी ओर चल पड़े । अयोध्या पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीके महलमें आये; वहाँ इन्द्रके समान आसनपर विराजमान श्रीरामको उन्होंने प्रणाम किया और कहा—'भगवन् ! आपके आज्ञानुसार मैं लवणासुरको मारकर वहाँ नगर बसा आया हूँ ।'

'महाराज रघुनाथजी ! ये बारह वर्ष मैंने आपके वियोगमें बड़ी कठिनतासे बिताये हैं । इसलिये अब मैं आपके बिना वहाँ निवास करना नहीं चाहता । अतएव महापराक्रमी श्रीरामजी ! आप मुझपर ऐसी कृपा करें, जिससे माताहीन बालककी भाँति मैं आपसे अलग होकर बहुत दिनतक वहाँ न रहूँ ।' (वा० रा० ७ । ७२ । ११-१२)

शत्रुघ्नकी यह बात सुनकर श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगाया और कहा—'वीर ! तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये, यह क्षत्रिय स्वभावके अनुरूप नहीं है । तुम्हें राजधर्मके अनुसार प्रजाका पालन करना चाहिये । समय-समयपर मुझसे मिलनेके लिये आ जाया करो ।' इस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्र-जीकी आज्ञा शत्रुघ्नजीने दीन वचनोंसे उनकी बात स्वीकार कर ली । फिर भरत और लक्ष्मणसे मिलकर और सबसे प्रणाम करके वे मथुरा लौट गये ।

इसके बाद जब भगवान् परमधाम पधारने लगे तब फिर शत्रुघ्नको बुलाया गया । तब शत्रुघ्नजी अपने पुत्रोंका राज्याभिषेक करके अयोध्यामें पहुँचे और श्रीरामके पास जाकर उनको प्रणाम करके गद्‌गदवाणीसे कहने लगे—

'महाराज रघुनाथजी ! मैं अपने दोनों पुत्रोंका

राज्याभिषेक करके आपके साथ चलनेका निश्चय करके आया हूँ। वीर! अब आप मुझे कोई दूसरी आज्ञा न दें; क्योंकि किसीके भी द्वारा, और विशेषतः मेरे-जैसे अनुयायीके द्वारा आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन हो, यह मैं नहीं चाहता। अभिप्राय यह है कि मैंने आजतक आपकी आज्ञाका कभी त्याग नहीं किया है। अतः अब भी वैसा न करना पड़े, इसकी आप ही रक्षा करें।' (वा० रा० ७।१०८।१४-१५)

भगवान् श्रीरामने शत्रुघ्नजीकी प्रार्थना स्वीकार की और श्रीशत्रुघ्नजी भी श्रीरामचन्द्रजीके साथ ही-साथ परमधाम पधार गये।

यह श्रीशत्रुघ्नजीका छोटा-सा जीवन-चरित्र केवल वाल्मीकीय रामायणके आधारपर लिखा गया है। इसमें दूसरी किसी रामायण या पुराणोंसे कोई बात नहीं ली गयी है। इस कारण सम्भव है कि उनके प्रेम और गुणोंकी समस्त बातें पाठकोंके सामने न आयें; परंतु इसके लिये क्षमा-प्रार्थनाके सिवा मैं कर ही क्या सकता हूँ।

श्रुतकीर्ति

श्रुतकीर्ति—ये भी राजा जनकके भाई कुशध्वजकी ही पुत्री थीं। *सीता, उर्मिला एवं माण्डवीके साथ ही इनका भी* विवाह शत्रुघ्नजीसे हुआ था। श्रुतकीर्तिजी अत्यन्त सरल, सेवापरायण एवं पतिप्राणा थीं। ये सीता, उर्मिला एवं माण्डवीसे माताकी तरह प्यार करती थीं; इस कारण ये सभीको प्रिय थीं। सभी इनकी सराहना करते थे। भरत एवं लक्ष्मणके प्रति इनके मनमें आदरके भाव थे, पर श्रीरामको तो ये देवतुल्य मानती थीं। सास, ससुर एवं गुरुजनके प्रति इनके मनमें बड़ी श्रद्धा थी। ये नारी-जातिके सम्पूर्ण उत्तम आदर्श गुणोंसे विभूषित थीं।

कैकेयीने श्रीरामके वनवासका वरदान माँगा, तब ये भी दुःख और क्षोभसे गड़ गयीं। इनके पतिदेव शत्रुघ्नकुमार भरतजीके अनुगामी थे। इस कारण इनपर भी व्यवधान आ गया था। क्रमशः श्रुतकीर्तिजी अत्यन्त उदास और दुःखी हो गयी थीं; पर भरत और शत्रुघ्नके ननिहालसे लौटकर चित्रकूट प्रस्थित होनेपर ये प्रसन्न हो गयीं। चित्रकूटसे लौटनेपर जब भरतजी नन्दिग्राममें तापस-वेषमें रहने लगे, तब शत्रुघ्नजी भी उनकी सेवाके लिये उनके साथ बने रहे। चौदह वर्षोंतक पतिदेव भरतजीकी सेवामें वनवासियोंकी भाँति रहे, पर श्रुतकीर्तिजीने आपत्ति नहीं की। ये घरमें ही वैराग्यमय जीवन व्यतीत करती हुई रघुवर प्रभुकी उपासनामें अपना समय व्यतीत करती थीं।

चतुर्दश वर्षके उपरान्त अनुज-जानकीसहित प्रभु अयोध्या लौटे। फिर तो सबके दुःखके दिन समाप्त हो गये। श्रुतकीर्तिको भी पतिके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ। समयपर इनके दो पुत्र हुए—सुबाहु और शत्रुघाती। मधुपुरका शासन-सूत्र सुबाहुके धर्मभर हाथोंमें था और शत्रुघाती वैदिशनगरके नरेश हुए। —शि० दु०

शत्रुघ्न-वन्दना

जयति जय शत्रु-करि-केसरी शत्रुहन शत्रु-तम-तुहिनहर किरणकेतू।
देव-महिदेव-महि-धेनु-सेवक सुजन-सिद्ध-मुनि-सकल-कल्याण-हेतू॥
जयति सर्वांगसुन्दर सुमित्रा-सुवन, भुवन-विख्यात भरतानुगामी।
वर्म-चर्मासि-धनु-बाण-तूणीर-धर शत्रु-संकट-समय यत्प्रणामी॥
जयति लवणाम्बुनिधि-कुंभसंभव महादनुज-दुर्जन-दवन दुरितहारी।
लक्ष्मणानुज, भरत-राम-सीता-चरण-रेणु-भूषित-भाल-तिलकधारी॥
जयति श्रुतकीर्ति-वल्लभ सुदुर्लभ सुलभ नमत नर्मद भुक्ति-मुक्तिदाता।
दास तुलसी चरण-शरण सीदत विभो, पाहि दीनार्त-संताप-हाता॥

उत्तम प्रतिबिम्बके तुल्य प्रतीत होते हैं।' उन्होंने यहाँतक कहा कि—

> जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधरौ यदि।
> विशेषं नाधिगच्छामो गायतो राघवस्य वै॥
>
> (वा० रा०, उत्तर० ९४। १५)

'यदि इनके सिरपर जटा न होती और ये वल्कल न पहने होते तो हमें श्रीरामचन्द्रजीमें तथा गान करनेवाले इन दोनों कुमारोंमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता।'

सीताके दोनों पुत्रोंके गानसे संतुष्ट होकर श्रीरामचन्द्रजीने भरतको उन दोनों बालकोंको अठारह हजार स्वर्ण-मुद्राएँ देकर पुरस्कृत करनेका आदेश दिया, किंतु जब उन कुमारोंने स्वर्ण-मुद्राओंको स्वीकार नहीं किया, तब श्रीराम आश्चर्यचकित हो गये। उसी समय उन्हें उन बालकोंसे पूछनेपर पता चला कि 'इस महान् काव्यके रचयिता महर्षि वाल्मीकि हैं, जो यहाँ पधारे हुए हैं। ये दोनों कुमार उनके प्रिय शिष्य हैं।'

इस प्रकार कई दिन उक्त काव्यका गान सुननेपर श्रीरामको विदित हुआ कि 'कुश और लव दोनों कुमार सीताके ही सुपुत्र हैं।' श्रीरामने अपने दूतोंके द्वारा महर्षि वाल्मीकिके पास संदेश भेजा कि 'निष्पाप सीता महामुनिकी अनुमति लेकर यहाँ आकर, सम्पूर्ण सभासदों, ऋषियों-महर्षियों, राजाओं एवं विद्वानों तथा जन-समुदायके सम्मुख अपनी शुद्धता प्रमाणित करें।'

दूसरे दिन महर्षि वाल्मीकि जनकनन्दिनीको लेकर श्रीरामकी भरी सभामें पहुँचे। उस समय देवी सीताकी बड़ी विचित्र स्थिति थी—

> ऋषिं पृष्ठतः सीता अन्वगच्छदवाङ्मुखी।
> कृताञ्जलिर्बाष्पकला कृत्वा रामं मनोगतम्॥
>
> (वा० रा० ७। ९६। ११)

'महर्षिके पीछे सीता सिर झुकाये चली आ रही थीं। उनके दोनों हाथ जुड़े थे और नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे। वे अपने हृदयमन्दिरमें बैठे हुए श्रीरामका चिन्तन कर रही थीं।'

गैरिक वस्त्रधारिणी सीताके दर्शन कर सबके नेत्र बरसने लगे। देवगण वहाँ आ गये थे। महर्षिने सबके बीच परम तपस्वी मैथिलीकी परम पवित्रताकी घोषणा की। उन्होंने यहाँतक कह दिया कि 'मिथिलेशकुमारी सीतामें कोई दोष हो तो मुझे मेरी हजारों वर्षोंकी तपस्याका फल न मिले।' और उन्होंने कहा—

> इमौ तु जानकीपुत्रावुभौ च यमजातकौ।
> सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥
>
> (वा० रा० ७। ९६। १८)

'ये दोनों कुमार कुश और लव जानकीके गर्भसे जुड़वाँ पैदा हुए हैं। ये आपके ही पुत्र हैं और आपके ही समान दुर्धर्ष वीर हैं, यह मैं आपको सच्ची बात बता रहा हूँ।'

यह सब सुन और जान लेनेपर तथा महर्षिकी वाणीमें सम्पूर्णतया विश्वास करनेपर भी मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने भगवती सीताको जनसमुदायमें शुद्धता प्रमाणित करनेकी बात कही। तब वहाँ सबको उपस्थित जानकर उन्होंने हाथ जोड़े तथा दृष्टि नीचे किये स्त्रीशिरोमणि सीताने कहा—

> यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
> तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥
>
> (वा० रा०, उ० ९७। १४)

'यदि मैं भगवान् रामके अतिरिक्त अन्य पुरुषका मनसे भी चिन्तन नहीं करती तो पृथिवीदेवी मुझे आश्रय दें।'

सीताके इतना कहते ही वहाँ सबके सम्मुख धरती फटी और एक अद्भुत एवं दिव्य सिंहासन, जिसे महाबलवान् नागोंने धारण कर रखा था, प्रकट हुआ। सिंहासनके साथ पृथ्वीकी अधिष्ठात्रीदेवी भी दिव्यरूपमें प्रकट हुईं और उन्होंने जानकीको अत्यधिक प्यारसे अपनी गोदमें बैठाया और सीताको रसातलमें प्रवेश कर गयीं। उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी।

यह दृश्य लव-कुश अपने नेत्रोंसे देख रहे थे। वे अत्यन्त व्याकुल हो गये। उनके पराक्रम एवं शौर्यकी तो अश्वमेधिनी उस सेनाको परिचित थी, जब अश्वमेधयज्ञका अश्व पकड़ा गया था। शत्रुघ्न, पुष्कल, वानरराज सुग्रीव, हनुमान तथा महाराज सुरथ आदि वीर उनके द्वारा बुरी तरह पराजित हो चुके थे। कुश और लवको मातृवियोगसे विकल विह्वल देख नेत्रोंमें आँसू भरे श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया और अपनी राजधानीमें ले गये।

कुश और लव समर्थ श्रीरामके वीर पुत्र थे। किंतु महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें वे अपनी जननी श्रीजानकीके साथ थे, तब पिता दुर्लभ थे और जब उन्हें पिताके दर्शन एवं स्नेहका सुअवसर प्राप्त हुआ, तब सदाके लिये उनका मातृवियोग हो गया।

—शि० दु०

और उन्होंने बड़े ही सम्मानसे सुमन्त्रजीको समझाया। पूर्वजोंके धर्म-पालन-निमित्त अनेक कष्ट सहनेकी बातें कहीं और नौकारूढ़ होकर गङ्गापार चले। गङ्गाजीसे पार उतरकर श्रीरामजी जबतक दृष्टिपथमें थे, सुमन्त्रजी टकटकी लगाये उधर ही देखते रहे। श्रीरामके वनमें दूर निकल जानेपर वे फूट-फूटकर रोने लगे।

निषादराज जब श्रीरामको पहुँचाकर लौटे, तब उन्होंने सुमन्त्रजीको मणिहीन फणिकी भाँति छटपटाते देखा। उन्होंने अपने चार सेवकोंके साथ उन्हें अयोध्या भेज दिया। सुमन्त्रजीमें साहस नहीं था कि वे दिनमें अयोध्यामें प्रवेश करें। एक तो उनका हृदय फटा जा रहा था, दूसरे वे नगरनिवासियोंको क्या मुँह दिखाते, कौन संवाद सुनाते? किसी प्रकार रात्रिके अन्धकारमें उन्होंने नगरमें प्रवेश किया और रथ राजद्वारपर ही छोड़कर भवनमें गये। महाराज दशरथको उन्होंने दुःखी हृदयसे समाचार सुनाकर उन्हें धैर्य बँधानेका प्रयत्न करते हुए अपनी स्थिति बतायी—

'मैं आपन किमि कहौं कलेसू। जिअत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू॥'

(मानस २। १५२। १½)

महाराज दशरथने प्राण त्याग दिया। सुमन्त्रजीने धैर्य धारण कर राज्यकी व्यवस्था सँभाली। भरतजी श्रीरामकी पादुका लेकर लौटे। वे पादुकाएँ सिंहासनपर प्रतिष्ठित हुईं और सुमन्त्रजी श्रीरामका स्मरण करते हुए चौदह वर्षतक राज्यकी सारी व्यवस्था सुचारुरूपसे करते रहे। अन्ततः प्रभु श्रीराम वनसे लौटे। सुमन्त्रजीकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। दशरथनन्दन श्रीरामजी सुमन्त्रको अपने पिताकी ही भाँति सम्मान प्रदान करते रहे और राम-राज्यमें भी सुमन्त्रजी आजीवन महामन्त्रीके उच्चतम पदपर बने रहे।

—शि० दु०

रामभक्त निषादराज

नहि रामात् प्रियतमो ममास्ते भुवि कश्चन।
ब्रवीम्येव च ते सत्यं सत्येनैव च ते शपे॥

(वा० रा० २। ५१। ४)

'मैं सत्यकी शपथ खाकर सच-सच कहता हूँ कि इस भूतलपर मुझे श्रीरामसे बढ़कर प्रिय दूसरा कोई नहीं है।'

—निषादराज गुह

ये निषादोंके राजा गुह पुण्यतोया जाह्नवीके तटपर शृङ्गवेरपुरमें निवास करते थे। ये दशरथनन्दन श्रीरामके प्रिय सखा थे। आखेटके समय ये प्रायः श्रीरामके साथ रहते और उनकी सारी सुविधाकी व्यवस्था करते। श्रीरामके प्रति इनकी प्रीति अद्भुत थी।

उन्हें जब विदित हुआ कि पिताके आदेशसे उनके प्राणप्रिय श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण एवं पत्नी सीताके साथ उनके नगरमें पधारे हैं, तब उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे भक्तिपूर्वक फल, मधु और पुष्पादि लेकर कुछ मन्त्रियों एवं बन्धु-बान्धवोंसहित प्रभुके सम्मुख उपस्थित हुए। अपने स्वामीके सम्मुख जाकर दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। श्रीरामने तुरंत उन्हें उठाकर गलेसे लगा लिया और फिर श्रीरामजीके कुशल पूछनेपर गुहने हाथ जोड़कर कहा—

'धन्योऽहमद्य मे जन्म नैषादं लोकपावन॥'

(अ० रा० २। ५। ६४)

'हे लोकपावन! मैं धन्य हूँ, आज मेरा निषाद-जातिमें जन्म लेना सफल हो गया।' और अत्यन्त विनयके साथ उन्होंने कहा—

देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥
कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिअ जनु सबु लोगु सिहाऊ॥

(मानस २। ८७। ३-३½)

'प्रभो! मेरा सर्वस्व आपका ही है। आप कृपापूर्वक यहीं रह जायँ और हमलोगोंकी रक्षा करें। नगरमें पधारकर मेरा घर पवित्र कर दें और जो कुछ फल-मूल उपस्थित है, उसे स्वीकार करें। मैं आपका दास हूँ, मुझपर कृपा करें।'

पर जब श्रीरामने पिताके द्वारा वनवास देनेकी बात कही, तब निषादराज बड़े दुःखी हुए। रात्रिमें वृक्षके नीचे कुशकी साथरीपर सोते सीता और प्रभु श्रीरामको शयन करते देखकर वे रो पड़े। अधीर हो गये। उस समय सुमित्रानन्दन लक्ष्मणने उन्हें अनेक प्रकारसे तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया।

दूसरे दिन प्रभुके साथ निषादराज भी गङ्गाके पार उतरे। उन्होंने गुहको लौट जानेके लिये कहा। इससे उनके मनमें बड़ी व्यथा हुई—

'तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥'

(मानस २। १०४। १)

और अत्यन्त दीन वाणीमें उन्होंने प्रभुके साथ दो-चार दिन रहनेकी स्वीकृति चाही। उनकी सच्ची प्रीतिको देखकर प्रभुने उन्हें साथ ले लिया, किंतु दो-चार दिन बाद प्रभुकी आज्ञासे वे लौट आये। वे रहते तो थे शृङ्गवेरपुरमें, पर उनका मन अपने प्राणाराम श्रीराममें ही लगा रहता था। वे अपने अनुचरोंसे श्रीरामका समाचार प्राप्त करते रहते थे।

भरतजी प्रभु श्रीरामको लौटानेके लिये शृङ्गवेरपुरके समीप पहुँचे और यह संवाद निषादराजको भी मिला। ससैन्य भरतके वन-आगमनसे निषादराजके मनमें शङ्का हुई। उनकी बुद्धि मलिन नहीं होती तो सेनासहित श्रीरामके पास क्यों जाते? निषादराजने तुरंत अपने पुरवासियोंको सावधान कर घाँट रोक नौकाएँ गङ्गाकी मध्यधारामें खड़ी कर दीं। एक-एक नौकापर सतर्क वीर निषाद युद्धार्थ तैयार थे।

निषादराज अत्यन्त बुद्धिमान् भी थे। कुशल राजनीतिज्ञकी भाँति इधर भरतकी वाहिनीका सर्वनाश करनेकी योजना बनायी और उधर विनयपूर्वक भरतके पास पहुँचे। प्रभु श्रीरामके प्रति भरतकी श्रद्धा एवं भक्ति देखकर निषादराज विह्वल हो गये। उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक ससैन्य भरतजीको पार उतार दिया और स्वयं उनके साथ चित्रकूट पहुँचे। वहाँ प्रभुका दर्शन कर वे आनन्द-विभोर हो गये।

प्रेमानन्दमें छके निषादराजकी विचित्र दशा हो गयी थी। उन्हें कुछ पता ही नहीं था कि वे कहाँसे आये हैं और क्या कर रहे हैं। वे समझते थे, मैं अयोध्यामें श्रीरामके साथ हूँ। जब गयंदने सुना कि यहाँ पूज्य गुरुदेव तथा माताएँ आदि सभी आये हैं, तब वे तुरंत सबके दर्शनार्थ चले। पीछे-पीछे निषादराज भी चलते रहे। भगवान् श्रीराम जिनके चरणोंमें प्रणाम करते, निषादराज भी उन्होंकी चरण-धूलि माथे लेते रहते थे। उनकी ऐसी श्रद्धा भक्ति एवं आत्म-विस्मृतिकी दशा देखकर माताओंने उन्हें हृदयसे आशीष् दी और वसिष्ठजीने आनन्दविभोर होकर उन्हें अपने अङ्कमें भर लिया।

चित्रकूटसे भरतजीके साथ निषादराज भी लौट आये, पर उनका मन मर्यादित श्रीरामके भजन करनेमें ही लगा रहता था। उन्हें एक-एक दिन वर्षोंके समान प्रतीत होता था। अन्ततः वह दिन भी आया, जब प्रभु देवताओंका कार्य सिद्ध कर और वनवासके दिन पूरे करके लक्ष्मण एवं सीतासहित कुशलपूर्वक गङ्गा-तटपर पहुँचे। यह समाचार जब निषादराजने सुना, तब वे प्रेममें व्याकुल होकर प्रभुके दर्शनार्थ दौड़ पड़े—

सुनत गुहा धायउ प्रेमाकुल। आयउ निकट परम सुख संकुल॥
प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई॥
(लं०, ६ । १२० । १-२)

—कृपानिधान भगवान् श्रीरामने निषादराजको अपने हृदयसे लगाकर अतिशय प्यारसे अपने समीप बैठाया और उनका कुशल-मङ्गल पूछने लगे। निषादराजके तन, मन और प्राण—सभी आनन्दमग्न थे। उन्होंने प्रभुसे अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया—

सब सुखद पद पंकज जिन्हहि बिरंचि संकर सेव्य हैं।
सुख धाम पूरन काम राम नमामि राम नमामि हे॥
(मानस ६ । १२० । छं० १)

'आपके जो चरण-कमल सबको सुख देनेवाले और शंकरजीसे सेवित हैं, उनके दर्शन करके मैं अब कृतार्थ हूँ। हे सुखधाम! हे पूर्णकाम रामजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, नमस्कार करता हूँ।'

करुणामूर्ति प्रभु श्रीराम अयोध्या पधारे और राज-सिंहासनासीन हुए। निषादराज उस महोत्सवमें सादर आमन्त्रित उपस्थित रहकर अपने योग्य सेवाएँ करते रहे और प्रभुकी मनोहर मूर्तिके दर्शन कर अकथनीय सुखका अनुभव करते रहे। सबको विदा करते समय करुणानिधान श्रीरामने निषादको बड़े ही प्रेमसे अपने पास बुलाकर उन्हें बहुमूल्य भूषण-वसन प्रदान किये और अतिशय स्नेहसिक्त वाणीमें कहा—

जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू॥
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता॥
(उ०, ७ । १९ । ५-६)

भक्तवत्सल करुणाधाम प्रभु श्रीरामके इन वचनोंसे निषादराजके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये और वे प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े। और फिर—

'चरन नलिन उर धरि गृह आवा।' (उ०, ७ । १९ । ७)

—शि० दु०

सखा सुग्रीव

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः॥
(वा० रा० ६। १८। १५)

श्रीरामजी सुग्रीवजीसे कहते हैं—'भैया! सब भाई भरतके समान आदर्श नहीं हो सकते। सब पुत्र हमारी तरह पितृभक्त नहीं हो सकते और सभी सुहृद् तुम्हारी तरह दुःखके साथी नहीं हो सकते।'

सभी सम्बन्धोंके एकमात्र स्थान श्रीहरि ही हैं। उनसे जो भी सम्बन्ध जोड़ा जाय, उसे वे पूरा निभाते हैं। सच्ची लगन होनी चाहिये, एकनिष्ठ प्रेम होना चाहिये। प्रेमपाशमें बँधकर प्रभु स्वामी बनते हैं। वे सखा, सुहृद्, भाई, पुत्र, सेवक—सभी कुछ बननेको तैयार हैं। उन्हें शिष्टाचारकी आवश्यकता नहीं, वे तो सच्चा स्नेह चाहते हैं।

प्रभु तरु तर कपि डार पर ते किए आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सीलनिधान॥
(मानस १। २९ क)

सुग्रीवको भगवान्‌ने स्थान-स्थानपर अपना सखा माना है। बाली और सुग्रीव—ये दो भाई थे। दोनोंमें ही परस्पर बड़ा स्नेह था। बाली बड़ा था, इसलिये वही वानरोंका राजा था। एक बार एक राक्षस रात्रिमें किष्किन्धा आया। आकर बड़े जोरसे गरजने लगा। बाली उसे मारनेके लिये नगरसे अकेला ही निकला। सुग्रीव भी भाईके स्नेहके कारण उसके पीछे-पीछे चला। वह राक्षस एक बड़े भारी बिलमें घुस गया। बाली अपने छोटे भाईको बाहर बैठाकर उस राक्षसको मारने उसके पीछे-पीछे उस गुफामें चला गया। सुग्रीवको बैठे-बैठे एक वर्ष बीत गया, किंतु बाली उस गुफामेंसे नहीं निकला। एक महीनेके बाद गुफामेंसे रक्तकी धार निकली। सुग्रीवने समझा, मेरा भाई मर गया है, अतः उस गुफाको एक बड़ी भारी शिलासे ढककर वह किष्किन्धापुरी लौट गया। मन्त्रियोंने जब राज्यभवनोंको राजासे हीन देखा, तब उन्होंने सुग्रीवको राजा बना दिया। थोड़े ही दिनोंमें बाली आ गया। सुग्रीवको राजगद्दीपर बैठा देखकर वह बिना ही सोच-विचार किये क्रोधसे आगबबूला हो गया और उसे मारनेको दौड़ा। सुग्रीव भी अपनी प्राणरक्षाके लिये भागा। भागते-भागते वह मतंग ऋषिके आश्रमपर जा पहुँचा। बाली वहाँ शापवश जा नहीं सकता था। अतः वह लौट आया और सुग्रीवका धन-स्त्री आदि सब कुछ उसने छीन लिया। राज्य, स्त्री और धनके हरण होनेपर दुःखी सुग्रीव अपने हनुमान् आदि चार मन्त्रियोंके साथ ऋष्यमूक पर्वतपर रहने लगा।

सीताजीका हरण हो जानेपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणजीके साथ उन्हें खोजने-खोजते शबरीके बतानेपर ऋष्यमूक पर्वतपर आये। सुग्रीवने दूरसे ही श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर हनुमान्‌जीको भेजा। हनुमान्‌जी उन्हें आदरपूर्वक ले आये। अग्निके साक्षित्वमें श्रीराम एवं सुग्रीवमें मित्रता हुई। सुग्रीवने अपना सब दुःख भगवान्‌को सुनाया। भगवान्‌ने कहा—'मैं बालीको एक ही बाणसे मार दूँगा।' सुग्रीवने परीक्षाके लिये अस्थिसमूह दिखलाया।········श्रीरामजीने उसे पैरके अँगूठेसे ही गिरा दिया। फिर सात तालोंको एक ही बाणसे गिरा दिया। सुग्रीवको विश्वास हो गया कि श्रीरामजी बालीको मार देंगे। सुग्रीवको लेकर श्रीरामजी बालीके यहाँ गये। बाली लड़ने आया, दोनों भाइयोंमें बड़ा युद्ध हुआ। अन्तमें श्रीरामचन्द्रजीने तककर एक ऐसा बाण बालीको मारा कि वह मर गया।

बालीके मरनेपर श्रीरामजीकी आज्ञासे सुग्रीव राजा बनाये गये और बालीके पुत्र अङ्गदको युवराजका पद दिया गया। तदनन्तर सुग्रीवने वानरोंको इधर-उधर श्रीसीताजीकी खोजके लिये भेजा और श्रीहनुमान्‌जीद्वारा सीताजीका समाचार पाकर सुग्रीव अपनी असंख्य वानरी सेना लेकर लङ्कापर चढ़ गये। वहाँ उन्होंने बड़ा पुरुषार्थ दिखलाया। सुग्रीवने संग्राममें राक्षसोंको इतना छकाया कि वह भी इनके नामसे डरने लगा।

लङ्का विजय करके ये भी श्रीरामजीके साथ श्रीअवधपुरी आये और वहाँ श्रीरामजीने उनका परिचय कराते हुए गुरु वसिष्ठजीसे कहा—

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे॥
(मानस, ७। ८। ४)

श्रीरामजीने सुग्रीवजीको सदा सखा मानकर 'मित्र' कहा है और सबसे सुनाकर स्पष्ट कहा है कि 'तुम्हारे समान आदर्श निःस्वार्थ सखा संसारमें किसीके ही होते हैं।' श्रीरामजीने थोड़े दिन इन्हें अयोध्यामें रखकर विदा कर दिया। लौटकर भगवान्‌का लोकोत्तर स्मरण कीर्तन करते हुए

'विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्यं धर्मपरः शुचिः ।'

(वा० रा० ७ । १० । ९)

कविको 'धर्मात्मा' कहकर संतोष नहीं होता है और वह लिखता है कि 'विभीषण सदा ही धर्मकार्योंमें रत था तथा पवित्र था ।'

रावण-कुम्भकर्णके साथ विभीषण भी तपस्या करने गया और उसने भी दोनों भाइयोंके साथ घोर तप किया। कुम्भकर्ण ग्रीष्ममें पञ्चाग्नि तपता था, शिशिरमें जलके मध्य बैठता था और वर्षामें वीरासनपर बैठकर वर्षा-प्रहार सहता था। रावणने अपने सिर काटकर अग्निमें होमे। विभीषणने अपने हाथ सिरके ऊपर उठाये रखे तथा वेदपाठ करता रहा। ब्रह्मा प्रकट हुए। रावणने वर माँगा—'प्रभो! मुझे मृत्युसे भय न रहे और अमरता प्रदान करें।' ब्रह्माने कहा—'दशग्रीव! पूर्ण अमरता नहीं मिल सकती।' तब रावण बोला—'अच्छा तो मुझे गरुड, सर्प, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस और देवताओंसे अवध्य बना दीजिये। नर-वानरोंको तो मैं कुछ समझता ही नहीं। उन्हें तो वैसे ही चुटकीसे मसल सकता हूँ।' कुम्भकर्णने सबकी छेड़-छेड़ कहा—'प्रभो! बस, मुझे सोनेका वरदान दीजिये। सोना ही मुझे सबसे प्रिय है।' विभीषणके पास आकर ब्रह्माजी बोले—'धर्मनिष्ठ वत्स! वर माँग।' विभीषणने वर माँगा—'प्रभो! दारुण संकटमें भी मेरी धर्म-मति नष्ट न हो। मुझे ब्रह्मास्त्रका प्रयोग प्राप्त हो तथा मैं जिस आश्रममें भी रहूँ, मेरी धर्मप्रवृत्ति बनी रहे; क्योंकि जिनका धर्ममें अनुराग बना रहता है, उन्हें जगत्में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता।' ब्रह्माजी प्रसन्न हो बोले—'पुत्र! राक्षसकुलमें उत्पन्न होनेपर भी तुम्हारी बुद्धि धर्ममें लगी है, तुम धन्य हो। तुम्हें अधर्म रुचिकर नहीं होगा। तुमको मैं अमरत्व भी प्रदान करता हूँ।' जिस अमरत्वको रावण न प्राप्त कर सका, उसे विभीषणने सहज ही पा लिया।

रावण जब हनुमान्‌को मरवानेका उद्योग करने लगा, तब धर्मात्मा विभीषणने रावणको राजधर्म समझाते हुए कहा—'भाई! यह राजदूत है। राजनीतिमें दूत अवध्य है। अतः इसे कोई दूसरा दण्ड दीजिये। दूतोंके लिये ये दण्ड दिये जा सकते हैं—वे हैं विरूप कर देना, शरीरपर चाबुक मारना, सिर मुँड़वा देना, शरीरपर कोई दाग देना।' रावणने धर्मात्मा विभीषणकी बात मानकर हनुमान्‌की पूँछमें आग लगानेकी आज्ञा दी।

राम जब सागरतटपर आ पहुँचे, तब सूचना पाकर रावणने सभामें मन्त्रियोंसे परामर्श किया। सबने कहा—'भयकी क्या बात है। दोनों मनुष्योंको बाँधकर ला या मार डालेंगे, वानरोंको मसल देंगे।' विभीषणने कहा—'भाई साहब! मैं इन लोगोंसे सहमत नहीं हूँ। मेरा विचार है कि सीताको लौटा दिया जाय ताकि सब राक्षस युद्धमें मारे जानेसे बच जायँ, हमारे परिवार सकुशल रह सकें।' रावणने विभीषणकी बात अनसुनी कर सभा भङ्ग कर दी। विभीषणका धार्मिक हृदय बराबर कह रहा था—'रावणने पहले तो परायी स्त्रीका अपहरण किया और अब समस्त सैन्यको युद्धमें झोंक दिया है; यह उचित नहीं है।' वह रात्रिमें पुनः रावणके रनिवासमें पहुँचा और उसने भाईको समझानेका उद्योग किया। पहले उसने रावणकी प्रशंसा की, उसके गुणोंका बखान किया और तब कहा—'भइया! मेरी बात मानो। सीताने जबसे लङ्कामें पदार्पण किया है, तबसे बराबर हमारी नगरीमें अपशकुन हो रहे हैं। अतः उसे रामके पास लौटा दो। पर-स्त्री-हरण अनुचित कार्य है।' रावण बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने विभीषणको बहुत डाँट-फटकार। विभीषणने इस डाँट-फटकार, दुत्कार और अपमानकी ओर दृष्टिपात न करके रावणको फिर समझाया। रावण अब आगबबूला हो आपेसे बाहर हो गया और बोला—'विभीषण! तुरंत मेरे सामनेसे हट जाओ।' विभीषण घर चला गया।

दूसरे दिन राजसभामें युद्ध-सम्मत हुई। कुम्भकर्णने भी कहा—'रावण! पर-स्त्री-हरण कर तूने बुरा काम किया है, यह अनीति है। परंतु मैं युद्धमें तेरा ही साथ दूँगा।' विभीषणने पुनः रावणको समझाया, रावणके पक्षमें बोलनेवाले प्रहस्त तथा मेघनादको भी उसने फटकारा। तब रावण उसे धिक्कारता है, कुलकलङ्क कहता है और दूर हो जानेको कहता है। विभीषण उठता है और चार राक्षसोंके साथ बाहर जाता हुआ कहता है—'रावण! अब तुम्हें कोई अनीतिमार्गसे न रोकेगा। ये सब खुशामदी लड्डू हैं, ठकुरसुहाती कहते हैं। तुम अनीतिकी राहपर चलकर अपना, अपने कुलका तथा देशका नाश करने जा रहे हो।' इतना कहकर विभीषण रामके पास चला गया। विभीषणकी न्यायपरायण धर्मबुद्धि पर-स्त्री-हरणको घोर अनीति देखती है और यह रावणके इस कार्यका घोर विरोध करता है। उसने रावणको समझाने और न्याय मार्गपर लानेका भरसक प्रयत्न किया, किंतु रावणने नहीं माना; तब उसने देखा—'यहाँ कल्याण नहीं' यह सब है,

उसकी धर्मबुद्धि अन्याय सहन न कर सकी और वह भाई रावणको छोड़कर चला गया । वाल्मीकि-रामायणमें विभीषणका यही रूप चित्रित है ।

अध्यात्मरामायणका वक्ता विभीषणके चरित्रमें कुछ जोड़ता है; अन्यथा वह वही है, जो वाल्मीकिके ग्रन्थमें प्राप्त है । अध्यात्मरामायणमें भी वह वाल्मीकीय रामायणके समान धार्मिक तथा नीतिमान् है । वहाँ भी जब रावण हनुमान्‌के वधकी आज्ञा देता है, तब विभीषण भाई रावणको समझाता है । रावण विभीषणके परामर्शको मानकर हनुमान्‌की पूँछ जलानेकी आज्ञा देता है । सीता-हरणके पश्चात् विभीषण रावणको केवल एक बार राजसभामें परामर्श देता है कि 'सीताको लौटा देना चाहिये ।' रावण इसपर विभीषणको बुरी तरह फटकारता हुआ कहता है—'विभीषण ! भाईके रूपमें तू मेरा शत्रु है । तू अनार्य है, कृतघ्न है । तुझे अपने साथ रखना ठीक नहीं है । सजातीय ही जाति-नाश किया करते हैं । तुझे धिक्कार है । यदि तेरे स्थानपर कोई अन्य व्यक्ति होता तो मैं उसे मरवाकर रख देता ।' वाल्मीकीय रामायणमें विभीषणने रावणको तीन बार समझाया है, जब कि अध्यात्ममें केवल एक बार, और वह भी राजसभामें । वाल्मीकि-रामायणमें रावणने उसे बार-बार धिक्कार-डाँटा, दुत्कारा और लातोंसे पीटा । अध्यात्मरामायणका विभीषण भी रामके पास चला गया । अध्यात्मरामायणका विभीषण रामका भक्त है । उसमें रामको भगवान्‌के रूपमें चित्रित किया गया है । केवल राजसभामें रावण विभीषणको एक बार डाँटता है और विभीषण उसे छोड़कर रामकी शरणमें चला जाता है, मानो वह इसके लिये पहलेसे ही तैयार था । वहाँ वह रामके पास जाकर यह भी कहता है कि 'रावणने मुझे लातसे मारनेका प्रयास किया, अतः मैं भागकर आपकी शरणमें आया हूँ ।' अध्यात्मरामायणके वक्ताने राजसभाके प्रसङ्गमें इस बातकी चर्चा नहीं की है कि रावण तलवार लेकर विभीषणको मारने दौड़ा । तब क्या विभीषणने यह असत्य-भाषण किया ? नहीं ! जिस रूपमें अध्यात्मरामायणके वक्ताने विभीषणका चरित्राङ्कन किया है, उसके अनुसार वह झूठ नहीं बोल सकता । कवि किसी बातको एक स्थलपर न कहकर दूसरेपर कह दिया करता है । अच्छा तो यह होता कि अन्यथा राजसभामें ही रावणद्वारा असि उठवाता । तब यह संदेह उत्पन्न न होता कि विभीषणने असत्यभाषण किया । अध्यात्म रामायणने रावणके तलवार उठानेकी बात कहकर विभीषणके रामकी ओर जानेकी बातको अधिक मार्मिक बना दिया है । विभीषण क्या करता उस परिस्थितिमें ! उसने रावणको छोड़ना ही उचित ठहराया और रामकी शरणमें जाना हितकर समझा । वह भगवान् रामके पास जाकर उनकी स्तुति करता है और उनसे प्रार्थना करता है—

> कर्मबन्धविनाशाय त्वज्ज्ञानं भक्तिलक्षणम् ।
> त्वद्ध्यानं परमार्थं च देहि मे रघुनन्दन ॥
>
> न याचे राम राजेन्द्र सुखं विषयसम्भवम् ।
> त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे ॥
>
> (अध्यात्म० ६ । १ । ६६-६७)

अर्थात्—'हे प्रभो ! सांसारिक कर्मपाशोंके नाशके लिये मुझे भक्ति-युक्त ज्ञान दीजिये । साथ ही अपना ध्यान और पारमार्थिक कल्याण प्रदान कीजिये । मैं ऐन्द्रिय विषयोंसे उद्भूत सुखोंकी इच्छा नहीं करता, वरं मुझे अपने चरण-कमलोंकी भक्तिका दान कीजिये ।'

अध्यात्मरामायणके वक्ताने विभीषणको नीतिमान् और धार्मिक बनानेके साथ-ही-साथ उसे ज्ञानी और भक्त भी चित्रित किया है । उक्त ग्रन्थमें ज्ञानकी प्रधानता है, अतः विभीषण ज्ञानी भक्त हैं । उधर गोस्वामीजी उसे भक्त, केवल भक्तके रूपमें चित्रित करते हैं । उनके मानसमें भी वह धार्मिक और नीतिमान् है । उसके घोर तप करनेके पश्चात् जब सृष्टिकर्ता ब्रह्मा उससे वर माँगनेको कहते हैं, तब वह केवल भगवान्‌के चरण-कमलोंमें निश्छल प्रेम माँगता है—

> गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु ।
> तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ॥
>
> (मानस १ । १७७)

इस प्रकार गोस्वामीजीके विभीषण परम भक्तके रूपमें प्रथम बार सम्मुख आते हैं । गोस्वामीजी विभीषणके चरित्रको और ऊँचा उठानेके हेतु एक नवीन मौलिक कल्पना करते हैं, जो तुलसीसे पूर्व किसी रामायणकारने नहीं की है । वह है सीता-खोजके अवसरपर विभीषणकी हनुमान्‌से भेंट । वाल्मीकीय रामायण तथा अध्यात्मरामायणमें हनुमान् रावणके राजमहलोंमें सीताका अन्वेषण करते हुए अशोक-वाटिकामें

पहुँचते हैं। किंतु मानसमें हनुमान्‌जी रावणका खेद खोजते हैं। रावणके राजमहलके निकट ही उन्हें एक भवन दिखायी देता है। देखनेसे ही ज्ञात हो जाता है कि यह किसी रामभक्तका भवन है। हनुमान् देखते हैं—

भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ॥

(मानस ५ । ४ । ४; ५)

इससे स्पष्ट है कि विभीषण पहलेसे ही रामका भक्त था। तभी तो उसका घर रामायुध-चिह्नित था। हनुमान्‌जीने सोनेवाले व्यक्तिपर दृष्टि फेंकी। वह राक्षस था। प्रातःकाल होने जा रहा था। हनुमान्‌जी एक गवाक्षपर बैठकर देखने लगे। विभीषण जागे। उनके मुखसे निकला—राम-राम, राम-राम। हनुमान्‌जी अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने समझ लिया कि निश्चितरूपसे यह कोई रामभक्त है, सज्जन है और तब वे ब्राह्मणका रूप बनाकर विभीषणके पास गये। मानसमें हनुमान्‌जी जब भी कहीं कुछ पता लगाने गये हैं, ब्राह्मणका रूप धरकर पहुँचे हैं। सुग्रीव जब महावीरसे दो आगन्तुकोंका पता लगाने भेजते हैं, तब भी—

बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥

(वही, ४ । ० । १)

ब्राह्मण-वेष बनाया तो, किंतु व्यवहारमें एक त्रुटि हो ही गयी। ब्राह्मण क्षत्रियको प्रणाम नहीं करता है, किंतु हनुमान्‌जीने माथा नवाकर पूछा—

को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥

(वही, ४ । ० । १६)

हनुमान्‌जीको लगता है, ये भी क्षत्रिय नहीं, क्षत्रियरूपमें कोई और हैं। बात तो सत्य थी। क्षत्रियरूपमें स्वयं भगवान् थे, यही तुलसीका मन्तव्य है। दूसरी बार विप्ररूप धरकर विभीषणके पास पहुँचे। यहाँ हनुमान्‌जी प्रणाम नहीं करते, क्योंकि सामने प्रभु नहीं हैं। विभीषण ही प्रणाम कर कुशल-मङ्गल पूछते हैं—

करि प्रनाम पूँछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥

(वही, ५ । ५ । १)

मानो तीसरी बार रामकी आज्ञासे भरतकी दशाका पता लगानेके लिये अयोध्यामें विप्ररूप धारणकर जाते हैं। यहाँ तो विभीषण और हनुमान्—दोनों ही रामकी चर्चा करके अत्यन्त आनन्द पाते हैं और परस्पर मित्र बन जाते हैं। अतः आगे जब रावण आज्ञा देता है कि इस बंदरको मार डालो, तब विभीषण आकर ऐसा प्रकट करते हैं, मानो वे उस वानरको जानते ही नहीं और कहते हैं—

नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता॥
आन दंड कछु करिअ गोसाँई। सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥

(वही, ५ । २१ । ४)

नीतिमान् विभीषणकी बात रावण मान जाता है। सारी लङ्कामें विभीषण अपने उच्च आचार, सज्जनोचित व्यवहार, नीतिज्ञान और न्याय-पथ-गामिताके लिये प्रसिद्ध था।

रावणको हनुमान्‌ने समझाया—

देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी॥
जाकें डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहें जानकी दीजै॥

(वही, ५ । २१ । ४-६)

मन्दोदरीने भी लङ्का-दहनके पश्चात् लङ्कावासियोंकी व्याकुलता जानकर रावणको एकान्तमें ले जाकर सीताको वापस भेजनेके लिये विनयपूर्वक कहा—

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥

(वही, ५ । ३५ । ५)

किंतु रावणने हँसकर उसे सहेली स्वभाव और राजसभामें पहुँचा। वहाँ उसने मन्त्रियोंसे उनका मत पूछा। तब मन्त्र देनेवाले ठकुरसुहाती कहने लगे। विभीषण भी इसी अवसरका लाभ उठानेके लिये राजसभामें पहुँचा। उसका हृदय दुःखी था, वह बार-बार सोचता था कि रावण मन्दाद-पथपर जा रहा है। पहले तो दूसरेकी स्त्रीका हरण पाप है, उसपर भी वह उन भगवान् रामकी प्यारी पत्नी है, जिनका मैं भक्त हूँ। मुझे रावणको समझाना ही चाहिये, चाहे जो कुछ भी फल हो। वह क्रुद्ध हो तो हो, पर मैं उसे कुपथसे विरत करूँगा।' रावण राजसभामें बैठकर सबका मत ले रहा है, यह सूचना पाकर विभीषण भाईके चरणोंमें आ जाता है और आज्ञा पाकर अपना नीति धर्ममय मत प्रकट करता है—

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥

(वही, ५ । ३

तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥
(वही, ५ । ३८ । १-४)

रावणके नानाके मन्त्री वृद्ध माल्यवान् विभीषणका समर्थन कर रावणको समझाता है—

तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत बिभीषन॥
(वही, ५ । ३९ । १)

रावणने प्रतिहारको पुकारकर कहा—'कौन है यहाँ! इन दोनोंको यहाँसे निकाल दो।' माल्यवान् इस समय तो घर चला जाता है और युद्ध प्रारम्भ हो जानेपर पुनः रावणको समझानेका प्रयत्न करता है—

परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही॥
(वही, ६ । ४८ । ३)

रावण उसे अपने घरसे भाग जानेका आदेश देता है—

बूढ़ भएसि न त मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही॥
(वही, ६ । ४८ । १३)

वह भी रावणको छोड़कर चला जाता है।

विभीषण रावणको सुबोध देता है—

तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार॥
(वही, ५ । ४०)

विभीषणके इस कथनसे ज्ञात होता है कि रावण विभीषणको बहुत मानता था। तभी तो वह रावणके क्रुद्ध हो जानेपर भी समझानेका साहस करता है। मुनि पुलस्त्यने भी अपने एक शिष्यके हाथ विभीषणके पास संदेश भिजवाया था कि वह रावणको समझा दे कि वह सीताको लौटा दे और रामसे शत्रुता छोड़कर उनसे मेल कर ले। नहीं तो सारा परिवार नष्ट होगा और रावण भी रण मारे जायँगे।' मुनि पुलस्त्य रावणके पितामह थे। उन्होंने विभीषणके पास यह संदेश भेजा, रावणके पास नहीं; क्योंकि वे जानते थे, 'रावण मेरी बात भी न सुनेगा; किंतु वह विभीषणका परामर्श मान ले।' पुलस्त्यका संदेश पाकर विभीषणको पूर्ण निश्चय हो गया कि रावण सारी जाति, देश और राज्यको नष्ट करने जा रहा है। वह घोर अनीतिका पथ पकड़े हुए है। मैं उसे समझाऊँगा, बार-बार समझाऊँगा।' वह रावणसे भी कहता है—'भाई! पितामहका संदेश यही है, जो मैं आकर आपसे कह रहा हूँ। अतः मान जाओ और सीताको लौटा दो, रामसे वैर छोड़ दो और उन्हें प्रभु मानो।'

रावण क्रुद्ध होकर खड़ा हो गया और बोला—'अच्छा! तू मरना ही चाहता है। तू शत्रुके पक्षका समर्थन कर रहा है, तो जा, उसके पास जाकर उसे ही नीति सिखा।' वह उठा और यों कहकर उसे लात मारकर ढकेल दिया। तब भी विभीषण पैर पकड़कर बार-बार समझाने लगा। रावण न माना और विभीषण रामकी शरणमें चला गया। गोस्वामीजीके सामने यह तथ्य था कि लोग विभीषणको दोष दे सकते हैं कि उसने बन्धुद्रोह किया, देशद्रोह किया। गोस्वामीजीने स्पष्ट उस परिस्थितिको रखा है, जब विवश होकर विभीषणको राजपक्षका त्याग करके रामके पास जाना पड़ा। वह भगवान् रामका परम भक्त था। किंतु दाशरथि राम ही भगवान् हैं, इसका ज्ञान उसे हनुमान्से हुआ। तभी अवसर पर रावणके कुकृत्यका विरोध हृदयसे करने लगा। उसकी कामना थी कि रावण सीताको वापस भेज दे, रामको मनुष्य न मानकर भगवान् समझने लगे तथा उनकी भक्ति हृदयमें धारण करे। समझानेपर भी रावण इस हठपर अड़ा रहा कि मैं रामका वैरी बना रहूँगा और सीताको न लौटाऊँगा। फलतः विनय-पत्रिकाका यह पद यहाँ चरितार्थ हुआ—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
(विनय०, १७४)

अन्यायी दुर्योधनका विनाश श्रीकृष्णने उसके भाई अर्जुनसे कराया। अर्जुनको श्रीकृष्णने समझाया और उसने शस्त्र उठाया। विभीषणने जब देखा, रावण अन्यायमार्ग नहीं छोड़ेगा, देशको रसातलकी ओर ले जायगा, तब वह रामकी शरणमें चला गया, जिनका वह भक्त बन चुका था। तलवारको लेकर मारनेके लिये दौड़नेकी अपेक्षा चरण-प्रहार अधिक कठोर था। यह घोर अपमान विभीषणका ही नहीं था, वरं उसकी धर्मबुद्धिका था, मुनि पुलस्त्यका था, माल्यवान् आदि बुद्धिजीवियोंका था। ऐसे रावणको वह क्षमा नहीं कर सकता था, चौंधकर नहीं रह सकता था, अतः त्यागकर अपने रामकी शरणमें चला गया। आगे रामसे उसने कहा—

रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥

(मानस, ५। ४१)

'खोरि' शब्द व्यक्त करता है कि विभीषण समझ रहा था कि 'मैं भले मार्गपर नहीं जा रहा हूँ, मुझे जाना नहीं चाहिये था। किंतु विवशता आ पड़ी थी। वह अब वहाँ रह नहीं सकता था।'

वह भगवान्के चरणकमल-दर्शनकी कामना करता हुआ भगवान्के चरणोंपर गिरता है और कहता है—'मैं आर्त हूँ। मेरा कोई नहीं। मुझे रावणने त्याग दिया है। अब आप ही मेरे रक्षक हैं।' रामने उसे अपना लिया।

रामने कहा—

कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥
खल मंडलीं बसहु दिनु राती। सखा धरम निबहइ केहि भाँती॥
मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती॥
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥

(वही, ५। ४५। १-४½)

रामने नीतिपूर्वक उसे लङ्काका राजा तो घोषित किया ही, उससे कहा, 'तुम वर भी माँग लो।' निश्छल भावसे वह स्पष्टतया कह देता है—

उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥

(वही, ५। ४८। १-२½)

उर-वासनाके लिये रामने लङ्केश-तिलक कर दिया और अपनी भक्ति भी दी। अध्यात्मरामायणका ज्ञानी भक्त यहाँ केवल भक्तके रूपमें दिखायी पड़ता है।

कुम्भकर्ण भी विभीषणके इस कार्यका समर्थन करता हुआ कहता है—

सुनु सुत भयउ कालबस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन। भयहु तात निसिचर कुल भूषन॥
बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर। भजेहु राम सोभा सुख सागर॥

(वही, ६। ६३। ४-५½)

गीतावलीमें गोस्वामीजीने विभीषणके चरित्रको और संशोधित किया है। रावण जब लात मारकर उसे बाहर निकाल देता है, तब विभीषण सीधे रामके पास नहीं पहुँचता। वह अपने घर माँके पास जाता है। वहाँ शिवजी भी बैठे थे। शिव कहते हैं—'अब तू रामकी शरण जा। वहीं ही श्रेय प्राप्त होगा' और भक्त विभीषण रामके शरणागत होता है। एक बार महात्मा गांधीने कहा था—'तुलाके दो पलड़ोंमें सत्य और देश रखे जायँ तो सत्यका पलड़ा भारी होगा। मुझसे कहा जाय कि एकको ग्रहण करो तो मैं सत्यको अपनाऊँगा।' भक्त विभीषणने भी यही किया। उसने रामरूपी सत्यको ग्रहण किया।

श्रीरामसे वर-याचना

(रचयिता—मानसतत्त्वान्वेषी वैद्य पं० श्रीभैरवानन्द शर्मा 'व्यापक' रामायणी)

रामचन्द्र! राजीवविलोचन! रघुकुल-भूषण! सीतानाथ!
दास आपके पद-पंकजमें सादर नवा रहा है माथ॥
हे नर-भूषण! त्रिभुवन-भूषण! दो 'व्यापक' को यह वरदान।
रसना करती रहे निरन्तर 'रामचरितमानस'का गान॥
नीरज-मण्डित नीर सदा यद्यपि सर्वत्र भरा रहता।
तो भी राजहंसका मानस[1] 'मानस' बिना नहीं रमता॥
इसी भाँतिसे मेरा मानस 'मानस-तट'पर वास करे।
इसे छोड़कर किसी वस्तुकी नहीं किसीसे आश करे॥

१—अस्ति यद्यपि सर्वत्र नीरं नीरजमण्डितम्। न रमेद् राजहंसस्य मानसं मानसं विना॥

राम-सेवक श्रीहनुमान्

(लेखक—श्रीशिशिरकुमार सेनगुप्त)

उस स्वर्णनिर्मित नगरी लङ्काके राजा रावणका ऐश्वर्यशाली राजदरबार था, जिसके सामने कुबेरका ऐश्वर्य भी नगण्य हो रहा था। अत्यन्त बहुमूल्य रत्नाभूषणोंसे जटित स्वर्णसिंहासनपर रावण बैठा था, जो शक्ति और पराक्रमकी प्रतिमा तथा अहंकार, धृष्टता और क्रूरताकी प्रतिमूर्ति था।

राजसभामें आबद्ध हनूमान्जी उस शक्तिशाली राजाके सामने खड़े हुए। उन्होंने समुद्रको पार किया और अनेक कठिनाइयोंको पारकर लङ्का पहुँचे। उन्होंने अशोक-वाटिकामें सीताका पता लगाया, उनसे बातें कीं और प्रभुका दिया हुआ संदेश तथा मुद्रिका उनको प्रदान की। परंतु लङ्का छोड़नेके पहले वे अपने प्रभुके शक्तिशाली शत्रुसे भेंट कर लेना चाहते थे। इसलिये उन्होंने उसके रमणीय उद्यानको ध्वस्त कर दिया और बहुतेरे राक्षसोंको मार डाला और अन्तमें स्वेच्छासे युवराज इन्द्रजित्के हाथों बंदी बने—यह सोचकर कि वे उस दुष्ट दुश्मनके सामने उपस्थित किये जायँगे, जो अजेय है तथा जिसने छलकारपूर्वक सीताका अपहरण किया है।

'तू कौन है? तू कहाँसे आया है?'—रावणने पूछा। हनूमान्जीने उत्तर दिया—'मैं वानरराज सुग्रीवका दूत और अखिलब्रह्माण्डाधिपति श्रीरामचन्द्रका दास हूँ।'

'तूने मेरे शासनकी अवहेलना करनेका साहस कैसे किया? और मेरे वन-उपवन विनाश क्यों किया? क्या तू नहीं जानता कि मेरी वक्र भृकुटि देखकर देवता लोग भी काँप उठते हैं?'—इस प्रकार राक्षसराजने हनूमान्जीसे प्रथम प्रश्न किया।

हनूमान्जीने उत्तर दिया—'हाँ, मैं जानता हूँ कि तुम्हीं वह शठ हो, जिसने परस्त्रीका अपहरण किया है। अतएव तुम्हारा अवश्य ही मेरे प्रभुके हाथोंसे विनाश होगा।'

इस उत्तरसे वह भयानक राक्षसराज अत्यन्त कुपित हुआ। वह बोला—'अरे! तू क्या मूढ़ और मूर्ख है! क्या तू नहीं जानता कि मैं तुझे तत्काल प्राणदण्ड दे सकता हूँ! क्या तू मुझसे डरता नहीं!'

डरना तो दूर रहा, अपने प्रभुके प्रति अटूट श्रद्धासे प्रभावित होकर हनूमान्जीने फौरन उत्तर दिया—

न मे समा रावणकोटयोऽधम
रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः।
(अध्यात्म० ५ । ४ । ११)

'तुम्हारे-जैसे करोड़ों नीच रावण मेरी समता नहीं कर सकते। क्या तुम नहीं जानते कि मैं श्रीरामचन्द्रका सेवक हूँ और इस कारण मुझमें अटूट और असीम शक्ति है।'

शौर्यसम्पन्न और विश्वको भयभीत करनेवाला रावण यह सुनकर चकित और स्तब्ध हो उठा; परंतु आत्मस्थ होते ही उसने हनूमान्को प्राणदण्ड देनेकी आज्ञा दे दी।

विभीषण बीच-बिचाव करते हुए बोले कि 'दूतका वध करना नैतिक नहीं है।' इसपर यह निश्चय किया गया कि हनूमान्की पूँछमें आग लगा दी जाय। पूँछमें आग लगा दी गयी। परंतु अहंकार, धृष्टता और वासनासे अंधे हुए उस पापी रावणकी समझमें नहीं आया कि वनवासीकी रोषाग्निसे सारी नगरी भस्म हो सकती है। हनूमान्जीने सोनेकी नगरीको जलाकर भस्मावशिष्ट कर दिया।

× × × ×

वनवासके चौदह वर्ष अन्धकारमय, विपत्तिजनक तथा निराशा और कठिनाइयोंसे पूर्ण थे। अन्तमें उस लंबे दुःस्वप्नका अवसान हुआ, अयोध्यामें श्रीरामके राज्याभिषेकका सुखद और सुनहला दिन समीप आ गया। अवधके जीवन और ज्योति अयोध्याधिपति अपनी नगरीमें लौटे। अपूर्व समारोहके हर्षोंके बीच, आनन्दोन्मत्त कोटि-कोटि जनताके जय-जयकारके बीच और स्वर्गके देवताओं और अप्सराओंकी भीड़में राम और सीताको अयोध्या तथा विश्वके राजा-रानीके रूपमें राजमुकुट पहनाया गया।

जन-संकुल और खूब सजा-सजाया दरबार था। वहाँ बड़े-बड़े ऋषि-मुनि बैठे हुए थे, जिनका दर्शन पापनाशी था और जिनकी चरण-रज अधम-से-अधम पापीको भी निष्पाप बनानेमें समर्थ थी। वहाँ मन्त्री और योद्धागण भी थे, जो अपने रण-कौशल और विक्रमके लिये प्रख्यात थे। वहाँ वे शक्तिशाली योद्धा भी थे, जिन्होंने अपनी अदम्य शक्तिसे विश्वविजयी राक्षसराजका सामना करके उसे पराजित किया था। वहाँ वानराधिपतियों एवं सेनापतियोंमें अग्रगण्य सुग्रीव और अङ्गद,

नल और नील तथा गवय और गवाक्ष भी थे, जिनके सामने अजेय लङ्कापति रावण भी भय और आतङ्कसे काँप जाता था। वहाँ आयुर्वेद-विशारद जाम्बवान् तथा अनुपमेय हनुमान्, जो सभी अवसरोंपर उपयोगी थे, उपस्थित थे। वहाँ सम्मी और सच्चा श्रीरामचन्द्रके अनन्य भक्त राक्षसराज विभीषण भी थे। दरबारमें चतुर्दिक् मङ्गल-गानके साथ-साथ दिव्य संगीतकी लहरें उठ रही थीं तथा राजा और रानीके चारों ओर दिव्यलोकोंकी भीड़ लगी थी, जो आततायी रावणके अत्याचारसे मुक्ति प्रदान करनेवाले प्रभुके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने और धन्यवाद देने आये थे। दयालु प्रभुकी कृपादृष्टि फिरते ही, जिसने जैसी सेवा की थी, उसकी सुखद स्मृतिमें प्रत्येकको प्रदान करनेके लिये पारितोषिक और उपहारकी असीम धारा प्रवाहित होने लगी। युद्धके साथियोंमेंसे प्रत्येकको प्रभुने प्रेमपूर्वक अपने समीप बुलाया और उन रत्नाभूषणों तथा उपहारोंसे अनुगृहीत किया, जो राजाओंको स्वप्नमें भी दुर्लभ थे। सबको प्रेमपूर्वक याद किया गया और बहुमूल्य पारितोषिक प्रदान किया गया। परंतु अपने भक्त हनुमान्‌को कोई वस्तु देनेकी कृपा नहीं की गयी।

यह बात करुणामयी सीताजीको सहन नहीं हुई। उन्होंने श्रीरामकी ओर देखा और प्रभुकी चितवनमें सम्मतिकी झलक दिखलायी दी। माताने अनुपम रमणीय और बहुमूल्य अपना हार गलेसे उतारा और परम अनुग्रहपूर्वक हनुमान्‌की ओर देखा। हनुमान्‌का हृदय हर्षसे पुलकित हो उठा। उन्होंने आगे बढ़कर अपने प्रभु और महारानी सीताके सामने प्रणिपात किया। उस हारको लेकर गलेमें पहन लिया। उस दीप्तिमान् आभूषणकी दिव्य चमकसे सब लोग चमत्कृत हो उठे, परंतु हनुमान्‌के मनपर कुछ असर न पड़ा। वे बारंबार उसको देखते रहे। हनुमान्‌के मुखकी दीप्त मुस्कान जाती रही। उन्होंने हारको गलेसे उतारा और एक-एक करके उसके मणियोंकी जाँच करते हुए कई बार हारको फेर डाला। उस गौरवमयी राजसभाके सभी लोगोंकी दृष्टि हनुमान्‌के ऊपर थी। वे एकटक होकर हनुमान्‌को देख रहे थे और उनका भयाक्रान्त विस्मय अदम्य था। हनुमान्‌ने अचानक हारको छिन्न-भिन्न करके दाँतसे पीस-पीसकर फेंक दिया।

इस अशिष्ट कुचेष्टाको देखकर सब लोग स्तब्ध रह गये। लक्ष्मण अपने आपेसे बाहर होकर बोल उठे—'प्रभो! आपने अनुग्रह करके अपने इस सेवकको यह दिव्य आभूषण प्रदान किया है। इसे ऐसा बहुमूल्य हार, दुर्लभ आभूषण प्रदान करना आपके लिये उचित नहीं था।'

श्रीरामचन्द्रजी मधुर मुस्कानके साथ बोले—'हनुमान्‌से पूछा जाय, जिससे राजसभाके सभी लोगोंको उनकी कृत्यका कारण ज्ञात हो सके।' भक्तोंमें परम भक्त हनुमान् कहने लगे—'मेरे प्रभु! इसमें संदेह नहीं कि माताका दिया हुआ उपहार अमूल्य है। परंतु जब मैंने इस हारको पहना तो मुझे ऐसा लगा कि इसके भीतर मेरे चिरजनहार प्रभुका पवित्र नाम अङ्कित नहीं है। मेरे मनमें आया कि मैं भूल कर रहा हूँ। माताजी मुझे ऐसी नगण्य वस्तु क्यों देने लगीं, जिसमें राम-नाम न हो! मैंने, जहाँतक हो सका, सावधानीसे इस हारकी जाँच की और जब मुझको निश्चय हो गया कि मैं भूल नहीं कर रहा हूँ, तब मैंने विरक्तिवश इसको फेंक दिया। तत्काल मेरे मनमें आया कि मेरे प्रभु अवश्य रूपमें विश्वके प्रत्येक पदार्थमें हैं और कदाचित् उनका नाम हारके भीतर अङ्कित हो, इसलिये मैंने इस आभूषणको तोड़कर जाँचा; परंतु बड़ी निराशाके साथ मैंने देखा कि इसके भीतर रामनाम अङ्कित नहीं है।'

'परंतु तुम्हारे अपने शरीरके भीतर क्या रामनाम अङ्कित है?'—लक्ष्मणने पूछा। लक्ष्मणके मुखसे ये शब्द निकलते ही हनुमान्‌ने अपने वक्षःस्थलको फाड़कर खोल दिया और आश्चर्यके साथ लोगोंने उसके भीतर सर्वत्र राम-नाम चमकते हुए देखा तथा सब लोग उसे देखकर संतुष्ट हो गये।

वहाँ उपस्थित देवता और मानव—सभी इस दृश्यको देखकर आश्चर्यचकित हो, स्तब्ध रह गये। आकाशसे देवताओंने इस अद्भुत दृश्यको देखकर पुष्पवृष्टि की और गन्धर्व तथा अप्सराएँ संगीतके साथ-साथ आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगीं। लक्ष्मण यह देखकर परम प्रसन्न हुए कि कम-से-कम एक ऐसा भक्त भी है, जो अपने प्रभुकी इतनी विलक्षण मनोमुग्धकारी भक्ति करता है—उन प्रभुकी, जिनके साथ वनमें उन्होंने चौदह वर्ष आहार-निद्रा त्यागकर बिताये हैं तथा जो राम उनके जीवनाधार, जीवन-सर्वस्व एवं जीवन प्राण हैं।

राम-सेवक श्रीहनुमान्

(लेखक—श्रीशिशिरकुमार सेनगुप्त)

उस स्वर्णनिर्मित नगरी लङ्काके राजा रावणका ऐश्वर्यशाली राजदरबार था, जिसके सामने कुबेरका ऐश्वर्य भी नगण्य हो रहा था। अत्यन्त बहुमूल्य रत्नाभूषणोंसे खचित स्वर्णसिंहासनपर रावण बैठा था, जो शक्ति और पराक्रमकी प्रतिमा तथा अहंकार, धृष्टता और नास्तिकी प्रतिमूर्ति था।

भरबारमें आकर हनूमान्‌जी उस शक्तिशाली राजाके सामने खड़े हुए। उन्होंने समुद्रको पार किया और अनेक कठिनाइयोंको पारकर लङ्का पहुँचे। उन्होंने अशोक-वाटिकामें सीताका पता लगाया, उनसे बातें कीं और प्रभुका दिया हुआ संदेश तथा मुद्रिका उनको प्रदान की। परंतु लङ्का छोड़नेके पहले वे अपने प्रभुके शक्तिशाली शत्रुसे भेंट कर लेना चाहते थे। इसलिये उन्होंने उसके राजकीय उद्यानको नष्ट कर दिया और बहुतेरे राक्षसोंको मार डाला और अन्तमें स्वेच्छासे युवराज इन्द्रजित्‌के हाथों बंदी बने—यह सोचकर कि वे उस दुष्ट दुश्मनके सामने उपस्थित किये जायँगे, जो अजेय है तथा जिसने दण्डकारण्यसे सीताका अपहरण किया है।

‘तू कौन है? तू कहाँसे आया है?’—रावणने पूछा। हनूमान्‌जीने उत्तर दिया—‘मैं वानरराज सुग्रीवका सचिव और अक्लिष्टकर्मा कोसलाधिपति रामचन्द्रका दास हूँ।’

‘तूने मेरे शासनकी अवहेलना करनेका साहस कैसे किया? और मेरे वन-उपवनका विनाश क्यों किया? क्या तू नहीं जानता कि मेरी वक्र भृकुटि देखकर देवता लोग भी काँप उठते हैं?’—इस प्रकार राक्षसराजने हनूमान्‌जीसे प्रथम प्रश्न किया।

हनूमान्‌जीने उत्तर दिया—‘हाँ, मैं जानता हूँ कि तुम्हीं वह शठ हो, जिसने परस्त्रीका अपहरण किया है। अतएव तुम्हारा अभाव ही मेरे प्रभुके हाथोंसे विनाश होगा।’

इस उत्तरसे वह भयानक राक्षसराज अत्यन्त कुपित हुआ। वह बोला—‘अरे! तू बड़ा धृष्ट और मूर्ख है। क्या तू नहीं जानता कि मैं तुझे तत्काल प्राणदण्ड दे सकता हूँ! क्या तू मुझसे डरता नहीं?’

डरना तो दूर रहा, अपने प्रभुके प्रति अटूट श्रद्धासे प्रभावित होकर हनूमान्‌जीने फौरन उत्तर दिया—

> न मे समा रावणकोटयोऽधम
> रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः।
> (अध्यात्म० ५। ४। २१)

‘तुम्हारे जैसे करोड़ों नीच रावण मेरी समता नहीं कर सकते। क्या तुम नहीं जानते कि मैं श्रीरामचन्द्रका सेवक हूँ और इस कारण मुझमें अटूट और असीम शक्ति है।’

वीरप्रगण्य और विश्वको भयभीत करनेवाला रावण यह सुनकर चकित और क्षुब्ध हो उठा; परंतु आत्मस्थ होते ही उसने हनूमान्‌को प्राणदण्ड देनेकी आज्ञा दे दी।

विभीषण सोच-विचार करते हुए बोले कि ‘दूतका वध करना नैतिक नहीं है।’ इसपर यह निश्चय किया गया कि हनूमान्‌की पूँछमें आग लगा दी जाय। पूँछमें आग लग दी गयी। परंतु अहंकार, धृष्टता और वासनासे अंधे हुए उस पापी रावणकी समझमें नहीं आया कि जनकीकी सोनेकी सारी नगरी भस्म हो सकती है। हनूमान्‌जीने देखते नगरीको जलाकर भस्मावशिष्ट कर दिया।

× × × ×

वनवासके चौदह वर्ष अन्धकारमय, चिन्ताजनक तथा निराशा और कठिनाइयोंसे पूर्ण थे। अन्तमें उन सबके दुःस्वप्नका अवसान हुआ, अयोध्यामें श्रीरामके राज्याभिषेकका सुखद और सुनहला दिन समीप आ गया। अवधके जीवन और ज्योति अयोध्याधिपति अपनी नगरीमें लौटे। अपूर्व समारोहके हर्षोंके बीच, आनन्दोन्मत्त कोटि-कोटि जनताके जय-जयकारके बीच और स्वर्गके देवताओं और अप्सराओंकी भीड़में राम और सीताको अयोध्या तथा विश्वके राजा-रानीके रूपमें राजमुकुट पहनाया गया।

जन-संकुल और खूब सजा-सजाया दरबार था। वहाँ बड़े-बड़े ऋषि-मुनि बैठे हुए थे, जिनका दर्शन पापनाशी था और जिनकी चरण-रज अधम-से-अधम पापीको भी निष्पाप बनानेमें समर्थ थी। वहाँ मन्त्री और योद्धागण भी थे, जो अपने रण-कौशल और विक्रमके लिये प्रख्यात थे। वहाँ वे शक्तिशाली योद्धा भी थे, जिन्होंने अपनी अदम्य शक्तिसे त्रिविजयी राक्षसराजका सामना करके उसे पराजित किया था। वहाँ वानराधिपतियों एवं योद्धाओंमें अग्रगण्य सुग्रीव और अङ्गद,

नल और नील तथा गवय और गवाक्ष भी थे, जिनके सामने मदोन्मत्त लङ्कापति रावण भी भय और आतङ्कसे काँप जाता था। वहाँ आयुर्वेद-विशारद जाम्बवान् तथा अतुलनीय हनुमान्, जो सभी अवसरोंपर उपयोगी थे, उपस्थित थे। वहाँ स्वामी और सखा श्रीरामचन्द्रके अनन्य भक्त राक्षसराज विभीषण भी थे। दरबारमें चतुर्दिक् मङ्गल-गानके साथ-साथ दिव्य संगीतकी लहरें उठ रही थीं तथा राज्य और धनीके चारों ओर विदेशियोंकी भीड़ लगी थी, जो आततायी रावणके अत्याचारसे मुक्ति प्रदान करनेवाले प्रभुके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने और धन्यवाद देने आये थे। दयालु प्रभुकी कृपादृष्टि जिनपर थी, जिन्होंने जैसी सेवा की थी, उनकी सुखद स्मृतिमें प्रत्येकको प्रदान करनेके लिये पारितोषिक और उपहारकी असीम धारा प्रवाहित होने लगी। युद्धके साथियोंमेंसे प्रत्येकको प्रभुने प्रेमपूर्वक अपने समीप बुलाया और उन रत्नाभूषणों तथा उपहारोंसे अनुगृहीत किया, जो राजाओंको स्वप्नमें भी दुर्लभ थे। सबको प्रेमपूर्वक याद किया गया और बहुमूल्य पारितोषिक प्रदान किया गया। परंतु अपने भक्त हनुमान्‌को कोई वस्तु देनेकी इच्छा नहीं की गयी।

यह बात करुणामयी सीताजीको सह्य नहीं हुई। उन्होंने श्रीरामकी ओर देखा और प्रभुकी चितवनमें सम्मतिकी झलक दिखलायी दी। माताने अनुपम रमणीय और बहुमूल्य अपना हार गलेसे उतारा और परम अनुग्रहपूर्वक हनुमान्‌की ओर देखा। हनुमान्‌का हृदय हर्षसे पुलकित हो उठा। उन्होंने आगे बढ़कर अपने प्रभु और महारानी सीताके सामने प्रणिपात किया। उस हारको लेकर गलेमें पहन लिया। उस दीप्तिमान् आभूषणकी दिव्य चमकसे सब लोग चमत्कृत हो उठे, परंतु हनुमान्‌के मनपर कुछ असर न पड़ा। वे बारंबार उसको देखते थे। हनुमान्‌के मुखकी दीप्त मुस्कान बढ़ती रही। उन्होंने हारको गलेसे उतारा और एक-एक करके उसके मणियोंकी जाँच करते हुए कई बार हारको फेर डाला। उस गौरवमयी राजसभाके सभी लोगोंकी दृष्टि हनुमान्‌के ऊपर थी। वे एकटक होकर हनुमान्‌को देख रहे थे और उनका यथार्थमें विस्मय अवर्णनीय था। हनुमान्‌ने अचानक हारको छिन्न-भिन्न करके दाँतोंसे पीस-पीसकर फेंक दिया।

इस अशिष्ट कुचेष्टाको देखकर सब लोग स्तब्ध रह गये। लक्ष्मण अपने आपेसे बाहर होकर बोल उठे—'प्रभो! आपने अनुग्रह करके अपने इस सेवकको यह दिव्य आभूषण प्रदान किया है। इसे ऐसा बहुमूल्य हार, दुर्लभ आभूषण प्रदान करना आपके लिये उचित नहीं था।'

श्रीरामचन्द्रजी मधुर मुस्कानके साथ बोले—'हनुमान्‌से पूछा जाय, जिससे राजसभाके सभी लोगोंको उनकी धृष्टताका कारण ज्ञात हो सके।' भक्तोंमें परम भक्त हनुमान् कहने लगे—'मेरे प्रभु! इसमें संदेह नहीं कि माताका दिया हुआ उपहार अमूल्य है। परंतु जब मैंने इस हारको पहना तो मुझे ऐसा लगा कि इसके भीतर मेरे सिरजनहार प्रभुका पवित्र नाम अङ्कित नहीं है। मेरे मनमें आया कि मैं भूल कर रहा हूँ। माताजी मुझे ऐसी नगण्य वस्तु क्यों देने लगीं, जिसमें राम-नाम न हो! मैंने, जहाँतक हो सका, सावधानीसे इस हारकी जाँच की और जब मुझको निश्चय हो गया कि मैं भूल नहीं कर रहा हूँ, तब मैंने विरक्तिवश इसको फेंक दिया। तत्काल मेरे मनमें आया कि मेरे प्रभु अदृश्य रूपमें विश्वके प्रत्येक पदार्थमें हैं और कदाचित् उनका नाम हारके भीतर अङ्कित हो; इसलिये मैंने इस आभूषणको तोड़कर जाँचा; परंतु बड़ी निराशाके साथ मैंने देखा कि इसके भीतर रामनाम अङ्कित नहीं है।'

'परंतु तुम्हारे अपने शरीरके भीतर क्या रामनाम अङ्कित है?'—लक्ष्मणने पूछा। लक्ष्मणके मुखसे ये शब्द निकलते ही हनुमान्‌ने अपने वक्षःस्थलको फाड़कर खोल दिया और आश्चर्यके साथ लोगोंने उसके भीतर सर्वत्र राम-नाम चमकते हुए देखा तथा सब लोग उसे देखकर संतुष्ट हो गये।

वहाँ उपस्थित देवता और मानव—सभी इस दृश्यको देखकर आश्चर्यचकित हो, स्तब्ध रह गये। आकाशसे देवताओंने इस अद्भुत दृश्यको देखकर पुष्पवृष्टि की और गन्धर्व तथा अप्सराएँ संगीतके साथ-साथ आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगीं। लक्ष्मण यह देखकर परम प्रसन्न हुए कि कम-से-कम एक ऐसा भक्त भी है, जो अपने प्रभुकी इतनी विस्मयकारक मनोमुग्धकारी भक्ति करता है—उन प्रभुकी, जिनके साथ वनमें उन्होंने चौदह वर्ष आहार-निद्रा त्यागकर बिताये हैं तथा जो राम उनके जीवनाधार, जीवन-सर्वस्व एवं जीवन प्राण हैं।

राम-सेवक श्रीहनुमान्

(लेखक—श्रीशिशिरकुमार सेनगुप्त)

उस स्वयंनिर्मित नगरी लङ्काके राजा रावणका ऐश्वर्यशाली राजदरबार था, जिसके सामने कुबेरका ऐश्वर्य भी नगण्य हो रहा था। अत्यन्त बहुमूल्य रत्नाभूषणोंसे खचित स्वर्णसिंहासनपर रावण बैठा था, जो शक्ति और पराक्रमकी प्रतिमा तथा अहंकार, धृष्टता और लालचकी प्रतिमूर्ति था।

शृङ्खलामें आबद्ध हनूमान्‌जी उस शक्तिशाली राजाके सामने खड़े हुए। उन्होंने समुद्रको पार किया और अनेक कठिनाइयोंको पारकर लङ्का पहुँचे। उन्होंने अशोक-वाटिकामें सीताका पता लगाया, उनसे बातें कीं और प्रभुका दिया हुआ संदेश तथा मुद्रिका उनको प्रदान की। परंतु लङ्का छोड़नेके पहले वे अपने प्रभुके शक्तिशाली शत्रुसे भेंट कर लेना चाहते थे। इसलिये उन्होंने उसके राजकीय उपवनको ध्वस्त कर दिया और बहुतेरे राक्षसोंको मार डाला और अन्तमें स्वेच्छासे युवराज इन्द्रजित्‌के हाथों बंदी बने—यह सोचकर कि वे उस मुख्य दुश्मनके सामने उपस्थित किये जायँगे, जो अजेय है तथा जिसने दण्डकारण्यसे सीताका अपहरण किया है।

'तू कौन है ? तू कहाँसे आया है ?'—रावणने पूछा। हनूमान्‌जीने उत्तर दिया—'मैं वानरराज सुग्रीवका सहचर और अक्लिष्टकर्मा कोसलाधिपति रामचन्द्रका दास हूँ।'

'तूने मेरे शासनकी अवहेलना करनेका साहस कैसे किया ? और मेरे वन उपवनका विनाश क्यों किया ? क्या तू नहीं जानता कि मेरी एक भृकुटि देखकर देवता लोग भी काँप उठते हैं ?'—इस प्रकार राक्षसराजने हनूमान्‌जीसे प्रथम प्रश्न किया।

हनूमान्‌जीने उत्तर दिया—'हाँ, मैं जानता हूँ कि तुम्हीं वह शठ हो, जिसने परस्त्रीका अपहरण किया है। अतएव तुम्हारा अवश्य ही मेरे प्रभुके हाथोंसे विनाश होगा।'

इस उत्तरसे वह भयानक राक्षसराज अत्यन्त कुपित हुआ। वह बोला—'अरे ! तू बड़ा धृष्ट और मूर्ख है। क्या तू नहीं जानता कि मैं तुझे तत्काल प्राणदण्ड दे सकता हूँ। क्या तू मुझसे डरता नहीं ?'

डरना तो दूर रहा, अपने प्रभुके प्रति अटूट श्रद्धासे प्रभावित होकर हनूमान्‌जीने फौरन उत्तर दिया—

> न मे समा रावणकोटयोऽधमा
> रामस्य दासोऽहमपारविक्रमः।
> (अध्यात्म० ५ । ४ । ३१)

'तुम्हारे-जैसे करोड़ों नीच रावण मेरी समता नहीं कर सकते। क्या तुम नहीं जानते कि मैं श्रीरामचन्द्रका सेवक हूँ और इस कारण मुझमें अटूट और असीम शक्ति है।'

श्रीरामका नाम्य और विस्मयसे भयभीत करनेवाला रावण यह सुनकर चकित और क्षुब्ध हो उठा; परंतु आत्मसंयम होते ही उसने हनूमान्‌को प्राणदण्ड देनेकी आज्ञा दे दी।

विभीषण बीच-बिचाव करते हुए बोले कि 'दूतका वध करना नैतिक नहीं है।' इसपर यह निश्चय किया गया कि हनूमान्‌की पूँछमें आग लगा दी जाय। पूँछमें आग लगा दी गयी। परंतु अहंकार, धृष्टता और वासनासे भरे हुए उस पापी रावणकी समझमें नहीं आया कि वानरकीसी पूँछसे सारी नगरी भस्म हो सकती है। हनूमान्‌जीने लंकाकी नगरीको जलाकर भस्मावशिष्ट कर दिया।

× × × ×

वनवासके चौदह वर्ष अन्धकारमय, विपत्तिपूर्ण तथा निराशा और कठिनाइयोंसे पूर्ण थे। अन्तमें उन सबके दुःस्वप्नका अवसान हुआ, अयोध्यामें श्रीरामके राज्याभिषेकका सुखद और सुनहला दिन समीप आ गया। भगवान् श्रीराम और श्रीसीता अयोध्याधिपति अपनी नगरीमें लौटे। अपूर्व समारोहके हर्षोंके बीच, आनन्दोन्मत्त कोटि-कोटि जनताके जय-जयकारके बीच और स्वर्गके देवताओं और अप्सराओंकी भीड़में राम और सीताको अयोध्या तथा विश्वके राजा-रानीके रूपमें राजमुकुट पहनाया गया।

जन-संकुल और खूब सजा-सजाया दरबार था। वहाँ बड़े-बड़े ऋषि-मुनि बैठे हुए थे, जिनका दर्शन पापनाशी था और जिनकी चरण-रज अधम-से-अधम पापीको भी निष्पाप बनानेमें समर्थ थी। वहाँ मन्त्री और योद्धागण भी थे, जो अपने रण-कौशल और विक्रमके लिये प्रख्यात थे। वहाँ वे शक्तिशाली योद्धा भी थे, जिन्होंने अपनी अदम्य शक्तिसे त्रिविजयी राक्षसराजका सामना करके उसे पराजित किया था। वहाँ वानराधिपतियों एवं योद्धाओंमें अग्रगण्य सुग्रीव और माद्र,

नल और नील तथा गवय और गवाक्ष भी थे, जिनके सामने अजेय लङ्कापति रावण भी भय और आतङ्कसे काँप जाता था। वहाँ आयुर्वेद-विशारद जाम्बवान् तथा अनुपमेय हनुमान्, जो सभी अवसरोंपर उपयोगी थे, उपस्थित थे। वहाँ स्वामी और सखा श्रीरामचन्द्रके अनन्य भक्त राक्षसराज विभीषण भी थे। दरबारमें चतुर्दिक् मङ्गल-गानके साथ-साथ दिव्य संगीतकी लहरें उठ रही थीं तथा राजा और रानीके चारों ओर दिवौकसोंकी भीड़ लगी थी, जो आततायी रावणके अत्याचारसे मुक्ति प्रदान करनेवाले प्रभुके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने और धन्यवाद देने आये थे। दयालु प्रभुकी कृपादृष्टि जिसपर थी, जिसने जैसी सेवा की थी, उसकी सुखद स्मृतिमें प्रत्येकको प्रदान करनेके लिये पारितोषिक और उपहारकी असीम धारा प्रवाहित होने लगी। युद्धके साथियोंमेंसे प्रत्येकको प्रभुने प्रेमपूर्वक अपने समीप बुलाया और उन रत्नाभूषणों तथा उपहारोंसे अनुगृहीत किया, जो राजाओंको स्वप्नमें भी दुर्लभ थे। सबको प्रेमपूर्वक याद किया गया और बहुमूल्य पारितोषिक प्रदान किया गया। परंतु अपने भक्त हनुमान्‌को कोई वस्तु देनेकी कृपा नहीं की गयी।

यह बात करुणामयी सीताजीको सह्य नहीं हुई। उन्होंने श्रीरामकी ओर देखा और प्रभुकी चितवनमें सम्मतिकी झलक दिखलायी दी। माताने अनुपम रमणीय और बहुमूल्य अपना हार गलेसे उतारा और परम अनुग्रहपूर्वक हनुमान्‌की ओर देखा। हनुमान्‌का हृदय हर्षसे पुलकित हो उठा। उन्होंने आगे बढ़कर अपने प्रभु और माता सीताके सामने प्रणिपात किया। उस हारको लेकर गलेमें पहन लिया। उस दीप्तिमान् आभूषणकी दिव्य चमकसे सब लोग चमत्कृत हो उठे, परंतु हनुमान्‌के मनपर कुछ असर न पड़ा। वे बारंबार उसको देखते रहे। हनुमान्‌के मुखकी क्षीण मुस्कान जाती रही। उन्होंने हारको गलेसे उतारा और एक-एक करके उसके मणियोंकी जाँच करते हुए कई बार हारको फेर डाला। उस गौरवमयी राजसभाके सभी लोगोंकी दृष्टि हनुमान्‌के ऊपर थी। वे एकटक होकर हनुमान्‌को देख रहे थे और उनका मनोगत विस्मय अकथनीय था। हनुमान्‌ने अचानक हारको छिन्न-भिन्न करके दाँतसे पीस-पीसकर फेंक दिया।

इस अशिष्ट कुचेष्टाको देखकर सब लोग स्तब्ध रह गये। लक्ष्मण अपने आपेसे बाहर होकर बोल उठे—'प्रभो! आपने अनुग्रह करके अपने इस सेवकको यह दिव्य आभूषण प्रदान किया है। इसे ऐसा बहुमूल्य हार, दुर्लभ आभूषण प्रदान करना आपके लिये उचित नहीं था।'

श्रीरामचन्द्रजी मधुर मुस्कानके साथ बोले—'हनुमान्‌से पूछा जाय, जिससे राजसभाके सभी लोगोंको उनकी कृतघ्नताका कारण ज्ञात हो सके।' भक्तोंमें परम भक्त हनुमान् कहने लगे—'मेरे प्रभु! इसमें संदेह नहीं कि माताका दिया हुआ उपहार अमूल्य है। परंतु जब मैंने इस हारको पहना तो मुझे ऐसा लगा कि इसके भीतर मेरे चिरआराध्य प्रभुका पवित्र नाम अङ्कित नहीं है। मेरे मनमें आया कि मैं भूल कर रहा हूँ। माताजी मुझे ऐसी नगण्य वस्तु क्यों देने लगीं, जिसमें राम-नाम न हो! मैंने, जहाँतक हो सका, सावधानीसे इस हारकी जाँच की और जब मुझको निश्चय हो गया कि मैं भूल नहीं कर रहा हूँ, तब मैंने विरक्तिवश इसको फेंक दिया। तत्क्षण मेरे मनमें आया कि मेरे प्रभु अदृश्य रूपमें विश्वके प्रत्येक पदार्थमें हैं और कदाचित् उनका नाम हारके भीतर अङ्कित हो, इसलिये मैंने इस आभूषणको तोड़कर जाँचा परंतु बड़ी निराशाके साथ मैंने देखा कि इसके भीतर रामनाम अङ्कित नहीं है।'

'परंतु तुम्हारे अपने शरीरके भीतर क्या रामनाम अङ्कित है?'—लक्ष्मणने पूछा! लक्ष्मणके मुखसे ये शब्द निकलते ही हनुमान्‌ने अपने वक्षःस्थलको फाड़कर खोल दिया और आश्चर्यके साथ लोगोंने उसके भीतर सर्वत्र राम-नाम चमकते हुए देखा तथा सब लोग उसे देखकर संतुष्ट हो गये।

वहाँ उपस्थित देवता और मानव—सभी इस दृश्यको देखकर आश्चर्यचकित हो, स्तब्ध रह गये। आकाशसे देवताओंने इस अद्भुत दृश्यको देखकर पुष्पवृष्टि की और गन्धर्व तथा अप्सराएँ संगीतके साथ-साथ आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगीं। लक्ष्मण यह देखकर परम प्रसन्न हुए कि कम-से-कम एक ऐसा भक्त भी है, जो अपने प्रभुकी इतनी विस्मयजनक मनोमुग्धकारी भक्ति करता है—उन प्रभुकी, जिनके साथ वनमें उन्होंने चौदह वर्ष आहार-निद्रा त्यागकर बिताये हैं तथा जो राम उनके जीवनाधार, जीवन-सर्वस्व एवं जीवन प्राण हैं।

राम और सीताके कमलनेत्र एक दिव्य आनन्दसे चमक उठे तथा वचनातीत प्रेमपूर्वक प्रभुने मधुर स्वरमें हनुमान्‌से कहा—'वत्स ! तुम निश्चय ही मत्परायण हो। जबतक यह पृथ्वी रहेगी और रामका नाम रहेगा तबतक तुम अद्वितीय भक्तके रूपमें प्रसिद्ध रहोगे। मृत्यु तुम्हारे पास कभी नहीं फटकेगी। तुम सदा-सर्वदा मेरे प्रभुके प्रिय नामका गान सुनते और गाते हुए इस भूलोकमें निवास करो।'

युवराज अङ्गद

मूक, मन्द, कैसे सबै ये मानक मूर्ख हुए।
भीमकान्त प्रभु बाहुके अङ्गद स्वर्णाङ्गद हुए॥

वनवासके समय भगवती जानकीका अन्वेषण करते हुए मर्यादापुरुषोत्तम ऋष्यमूकपर पहुँचे। यहाँ उन्होंने सुग्रीवसे मित्रता की। सुग्रीवका पक्ष लेकर उन्होंने वानरराज वालीको मारा। मरते समय वालीने अपने पुत्र अङ्गदको उन सर्वेश्वरके चरणोंमें अर्पित किया। वालीने कहा—

यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिये।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिये॥
('मानस ४। १। १०।)

प्रभुने अङ्गदको स्वीकार किया। सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य मिला, किंतु युवराजपद वालिकुमार अङ्गदजीका ही रहा। अङ्गदने भगवान्‌की इस कृपाको हृदयसे ग्रहण किया। श्रीसीताजीको ढूँढते हुए जब वानर-वीरोंका दल दक्षिण समुद्र-तटपर पहुँचा और गृध्रराज सम्पातिसे यह पता चल गया कि जानकीजी लङ्कामें हैं, उस समय यह प्रश्न सामने आया कि सौ योजन समुद्र पार करके लङ्कामें कौन जाय, इसपर युवराज राम-कार्यके लिये लङ्का जानेको उद्यत हो गये थे। परंतु जाम्बवन्तजीने उन्हें नहीं जाने दिया। हनुमान्‌जी लङ्का गये और वहाँके समाचार ले आये। भगवान्‌की कृपासे समुद्रपर सेतु बाँधा गया। असंख्य वानरी सेना लङ्काके त्रिकूटपर्वतपर उतर गयी। अब प्रभुने अङ्गदको दूत बनाकर रावणके पास भेजा। श्रीरामने अङ्गदके लिये यहीं कहा है—

बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
(वही, ६। १६। १३)

अङ्गदजीके इस दौत्यकर्मको ठीक-ठीक समझना चाहिये। श्रीहनुमान्‌जी रावणसे मिल चुके थे। उसे सामनीतिसे समझानेका भी प्रयत्न उन्होंने किया, वह असफल हो उन्हींके फिर दुहराना बुद्धिमानी नहीं थी। रावण अहंकारी है, वह शिक्षा सुनना ही नहीं चाहता, प्रबोधनका उसपर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता—यह पता लग चुका था। अब है हनुमान्‌जीके कार्यको आगे बढ़ाना था। कौरकर, भय दिखाकर ही बुद्धिहीन अहंकारी लोगोंको रास्तेपर लाया जा सकता है। यदि रावण न भी माने तो उसके साहसको तोड़ देना, उसके अनुचरोंको भयभीत कर देना आनेवाले युद्धमें इसलिये आवश्यक था। अङ्गदजीने यही किया। रावणकी राजसभामें उनकी वीरता, उनका शौर्य अद्वितीय था। श्रीराम सर्वेश्वर हैं। उनके सेवककी प्रतिज्ञा त्रिलोकीमें कोई मिथ्या नहीं कर सकता—यह अविचल विश्वास अङ्गदमें था इसीसे उन्होंने रावणकी सभामें प्रतिज्ञा की—

जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी॥
(वही, ६। ३३। ४३)

इस प्रतिज्ञाका दूसरा कोई अर्थ करना अङ्गदके दृढ़ विश्वासको न समझना है। रावण नीतिज्ञ था। उसने अनेक प्रकारकी भेदनीतिसे काम लिया। उसने सुझाया—'वाली मेरा मित्र था। ये राम-लक्ष्मण तो वालीको—तुम्हारे पिताको मारनेवाले हैं। यह तो बड़ी लज्जाकी बात है कि तुम अपने पितृघातीका पक्ष ले रहे हो।' अङ्गदने रावणको फटकार दिया—

सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाकें॥
(वही, ६। २०। १)

जब रावण भगवान्‌की निन्दा करने लगा, तब युवराज सुन नहीं सके। क्रोध करके उन्होंने मुट्ठी बाँधकर दोनों भुजाएँ भूमिपर बड़े जोरसे दे मारीं। भूमि हिल गयी। रावण गिरते गिरते बचा। उसके मुकुट पृथ्वीपर गिर पड़े। उनमेंसे चार मुकुट अङ्गदने उठाकर भगवान्‌के पास उछाल दिये। इतना शौर्य दिखाकर, इतना पराक्रम प्रकट करके जब वे प्रभुके पास आये और जब उन दयामयने पूछा—

रावनु जातुधान कुल टीका । भुज बल अतुल जासु जग लीका ॥
तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए । कहहु तात कवनी बिधि पाए ॥

(वही, ६ । १० । १½)

परंतु जिनपर प्रभुकी कृपा है, जो भगवान्‌के चरणोंके अनन्य भक्त हैं, उनमें कभी किसी प्रकार भी अहंकार नहीं आता । उस समय अङ्गदजीने बड़ी सरलतासे उत्तर दिया—

सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी । मुकुट न होहिं भूप गुन चारी ॥
साम दान अरु दंड बिभेदा । नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा ॥
नीति धर्म के चरन सुहाए । अस जियँ जानि नाथ पहिं आए ॥

(वही, ६ । ७ । ४-५)

—जैसे अङ्गदने कुछ किया हो, इसका उन्हें बोधतक नहीं । वे सर्वथा निरभिमान हैं । इसके पश्चात् युद्ध हुआ । रावण मारा गया । उस युद्धमें युवराज अङ्गदका पराक्रम वर्णनातीत है । लङ्का-विजय करके श्रीराम अयोध्या पधारे । राज्याभिषेक हुआ । अन्तमें कपिनायकोंको विदा करनेका अवसर आया । भगवान् एक-एकको वस्त्राभरण देकर विदा करने लगे । अङ्गदका हृदय धक्-धक् करने लगा । वे एक कोनेमें सबसे पीछे दुबककर बैठ गये । 'कहीं प्रभु मुझे भी जानेको न कह दें'—इस आशङ्कासे । श्रीरामके चरणोंसे पृथक् होना होगा, इस कल्पनासे ही वे व्याकुल हो गये । जब सभी वानर-यूथपतियों एवं रीछ-नायकोंको भगवान् अपने उपहार दे चुके, जब सब आज्ञा पाकर उठ खड़े हुए, तब अन्तमें प्रभुने अङ्गदजीकी ओर देखा । अङ्गदका शरीर काँपने लगा । उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी । वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये और कहने लगे—

सुनु सर्बग्य कृपा सुख सिंधो । दीन दयाकर आरत बंधो ॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली । गयउ तुम्हारेहि कोंछें घाली ॥
असरन सरन बिरदु संभारी । मोहि जनि त
मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता । जाउँ कहाँ तजि
तुम्हहि बिचारि कहहु नरनाहा । प्रभु तजि भवन का
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना । राखहु सरन नाथ ना ॥
नीचि टहल गृह कै सब करिहउँ । पद पंकज बिलोकि भव तरिहउँ ॥

(वही, ७ । १७ । १-२½)

'नाथ ! मेरे पिताने मरते समय मुझे आपके चरणोंमें डाला है, अब आप मेरा त्याग न करें । मुझे जिस किसी भी प्रकार अपने चरणोंमें ही पड़ा रहने दें ।' यह कहकर अङ्गद श्रीरघुनाथजीके चरणोंपर गिर पड़े । करुणासागर प्रभुने उठाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया । अपने निजी वस्त्र, अपने आभरण और अपने कण्ठकी माला श्रीराघवने अङ्गदको पहनायी और स्वयं अङ्गदको पहुँचाने चले । अङ्गद बार-बार प्रभुको दण्डवत्-प्रणाम करते हैं । बार-बार उस कमलमुखकी ओर देखते हैं । बार-बार सोचते हैं—"अब तो मुझे प्रभु कह दें कि 'अच्छा, तुम यहीं रहो ।'"

दूरतक दयाधामने अङ्गदको पहुँचाया । जब हनुमान्‌जी सुग्रीवसे अनुमति लेकर श्रीरामके पास लौटने लगे, तब अङ्गदजीने उनसे कहा—

कहेहु दंडवत प्रभु सैं तुम्हहि कहउँ कर जोरि ।
बार बार रघुनायकहि सुरति कराएहु मोरि ॥

(वही, ७ । १९ क)

महाभाग ! आपकी 'सुरति' क्या रघुनाथको करानेकी आवश्यकता है ? वे दयाधाम क्या अपने ऐसे प्रेमियोंको कभी भूल सकते हैं !

जगत्में जीवन सार्थक किसका है ?

सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुतु, सो हितु मेरो ।
सोइ सगो, सो सखा, सोइ सेवकु, सो गुरु, सो सुरु, साहेबु, चेरो ॥
सो 'तुलसी' प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो ।
जो तजि देह को गेह को नेहु, सनेह सों राम को होइ सबेरो ॥

रामु हैं मातु, पिता, गुरु, बंधु, औ संगी, सखा, सुतु, स्वामि, सनेही ।
राम की सौंह, भरोसो है राम को, राम रँग्यो, रुचि राच्यो न केही ॥
जीअत रामु, मुएँ पुनि रामु, सदा रघुनाथहि की गति जेही ।
सोइ जिये जगमें 'तुलसी', नतु डोलत और मुए धरि देही ॥

(कवितावली, उत्तरकाण्ड ३५-३६)

ऋक्षपति जाम्बवान्

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता॥
(मानस ७।१२७।१)

भक्त जाम्बवान् पद्मयोनि ब्रह्माके अंशावतार थे। श्रीभगवान्की सेवाके लिये ब्रह्माजी अपने एक रूपसे जाम्बवान्के रूपमें धराधामपर पधारे थे। भुवनमोहन प्रभुका ध्यान, उनके परम मङ्गलमय नामका जप तथा उनकी मङ्गलकारिणी लीला-कथाके श्रवण एवं चिन्तनमें उन्हें बड़ा सुख मिलता था। त्रेतामें जब श्रीपरिपूर्णतम प्रभुने दशरथनन्दनके रूपमें अवतार लिया, तब प्रभुकी लीलामें सहायक होने एवं प्रभुके दर्शन तथा उनकी सेवाका लाभ प्राप्त करनेके लिये जाम्बवान्जी सुग्रीवके मन्त्री बन गये। जाम्बवान्जी आयुमें सबसे बड़े थे ही, वे अत्यन्त बुद्धिमान्, महाबलशाली एवं प्रबल पराक्रमी भी थे।

भगवती सीताको ढूँढ़नेके लिये जाम्बवान्, अङ्गद एवं हनुमान् आदि समुद्रतटपर पहुँचे तो महासागरको देखकर हतोत्साह हो गये। 'लङ्का कौन जाय? समुद्र पार कौन करे?' विचार हो रहा था। किसीकी बुद्धि कुछ काम नहीं कर रही थी। उस समय जाम्बवान्जीने अपनी वृद्धावस्थापर खेद प्रकट करते हुए अपनी शक्तिके सम्बन्धमें अपने ही मुँहसे कह दिया था—

जरठ भयउँ अब कहइ रिछेसा। नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा॥
जबहिं त्रिबिक्रम भए खरारी। तब मैं तरुन रहेउँ बल भारी॥

बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ॥
(वही, ४।२८।४; ४।२९)

फिर अङ्गदादिको निराश देखकर जाम्बवान्जीने ही पवनपुत्र हनुमान्को उनकी शक्ति और पराक्रमकी स्मृति दिलाकर सागर पार करनेकी प्रेरणा दी थी। जाम्बवान्जीने कहा—

रामकार्यार्थमेव त्वं जनितोऽसि महात्मना।
जातमात्रेण ते पूर्वं दृष्ट्वोद्यन्तं विभावसुम्॥
पक्वं फलं जिघृक्षामीत्युत्प्लुतं बालचेष्टया।
योजनानां पञ्चशतं पतितोऽसि ततो भुवि॥
अतस्त्वद्बलमाहात्म्यं को वा शक्नोति वर्णितुम्।
उत्तिष्ठ कुरु रामस्य कार्यं नः पाहि सुव्रत॥
(अ० रा० ४।९।१८-२०)

"महात्मा वायुने राम-कार्यके लिये ही आपको उत्पन्न किया है। जिस समय आपका जन्म हुआ था, उसी समय आप सूर्यको उदय होते हुए देखकर 'मैं इस पके फलको लेना चाहता हूँ'—यों कहकर बाल्यावस्थासे ही पाँच सौ योजन ऊँचे उछलकर पृथ्वीपर गिरे थे। अतः ऐसा कौन है, जो आपके बलका माहात्म्य वर्णन कर सके। हे सुव्रत! आप खड़े होइये और यह राम-कार्य करके हम सबकी रक्षा कीजिये।"

जाम्बवान्जीकी प्रेरणादायिनी वाणीसे हनुमान्जी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। सिंहनाद करते हुए उन्होंने कहा—'मैं समुद्र पारकर सम्पूर्ण लङ्काको भस्मकर माता जानकीजीको ले आऊँगा या आप आज्ञा दें तो मैं दशाननके गलेमें रस्सी बाँधकर और लङ्काको त्रिकूटपर्वतसहित बायें हाथपर उठा लाकर प्रभु श्रीरामके सम्मुख डाल दूँ। अथवा केवल माता जानकीको ही देखकर चला आऊँ।'

पवनपुत्रके ओजोमय वचन सुनकर जाम्बवान्जी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने हनुमान्से कहा—

दृष्ट्वागच्छ भद्रं ते जीवन्तीं जानकीं शुभाम्॥
पश्चाद्रामेण सहितो दर्शयिष्यसि पौरुषम्।
कल्याणं भवताद् भद्र गच्छतस्ते विहायसा॥
गच्छन्तं रामकार्यार्थं वायुस्त्वामनुगच्छतु।
× × ×
(अ० रा० ४।९।२९-३०)

'वीर! तुम्हारा शुभ हो, तुम केवल शुभलक्षणा जानकीजीको जीती-जागती देखकर ही चले आओ। फिर रामचन्द्र-

जीके साथ आकर अपना पुरुषार्थ दिखलाना। हे भद्र! आकाशमार्गमें जाते हुए तुम्हारा कल्याण हो। रामकार्यके लिये जाते समय वायु तुम्हारा अनुगमन करें।'

रामसे रावणका युद्ध आरम्भ हुआ, तब प्रभु श्रीराम प्रायः प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अवसरपर जाम्बवान्‌जीसे परामर्श करते। जाम्बवान्‌जी जैसे युद्धकालमें प्रभुके मन्त्री ही हो गये थे। मेघनादसे युद्ध प्रारम्भ हुआ, तब उसने रामको मायासे व्याकुल कर दिया, किंतु जाम्बवान्‌जीपर उसकी मायाका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अपितु घननादके दुर्वचन सुनकर जाम्बवान्‌जीने क्रुद्ध होकर कहा—'अरे दुष्ट! खड़ा रह।' इतना सुनते ही मेघनादकी क्रोधाग्निमें जैसे घृताहुति पड़ गयी। मेघनादने कहा—

मूढ़ जानि सठ छाँड़िउँ तोही। लागेसि अधम पचारै मोही॥

(मानस ६। ७१। २½)

'अरे मूढ़! मैंने तुझे बूढ़ा समझकर छोड़ दिया था। अरे अधम! तू अब मुझे ही ललकारने लगा है।'

इतना कहकर दशाननपुत्रने एक अत्यन्त तीक्ष्ण एवं चमकते हुए शूलसे जाम्बवान्‌पर भीषण प्रहार किया; किंतु जाम्बवंतजीने उस शूलको अपने हाथमें पकड़ लिया और उसे लेकर तुरंत मेघनादकी ओर दौड़े और—

मारिसि मेघनाद कै छाती। परा भूमि घुर्मित सुरघाती॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल देखरायो॥
बर प्रसाद सो मरइ न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा॥

(वही, ६। ७१। ४-५½)

—उसे मेघनादकी छातीपर दे मारा—। वह देवताओंका शत्रु चक्कर खाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। जाम्बवान्‌ने फिर क्रोधमें भरकर पैर पकड़कर उसको घुमाया और पृथ्वीपर पटककर उसे अपना बल दिखलाया। किंतु वरदानके प्रभावसे वह मारनेपर भी नहीं मर सका। तब जाम्बवान्‌जीने उसका पैर पकड़कर लङ्कापर फेंक दिया।'

ऐसे प्रभुके अनन्य भक्त एवं प्रबल पराक्रमी जाम्बवान्‌जीके लिये श्रद्धाके साथ लङ्काधिपति रावणने आदरसे कहा था—

जामवंत मंत्री अति बूढ़ा। सो कि होइ अब समरारूढ़ा॥

(वही, ६। २२। २)

किंतु रावणके साथ युद्धमें जब रावणके तीक्ष्ण बाणोंसे हनूमान्‌जी आदि सभी वानर मूर्च्छित हो गये, तब रावण बड़ा प्रसन्न हुआ। यह देखकर अनेक भालुओंके साथ जाम्बवान्‌जी रावणकी ओर दौड़े। बलशाली रावण उन भालु-योद्धाओंको पकड़-पकड़कर पृथ्वीपर पटकने लगा। अपने दलका संहार देखकर जाम्बवान्‌जी अत्यन्त क्रुद्ध हो गये—

देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता॥

उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ ते महि परा।

(वही, ६। ९। ७। ७½ १ छं०)

जाम्बवान्‌जीने कुपित होकर रावणकी छातीमें लात मारी। वक्षमें प्रचण्ड पदाघात होते ही दशानन व्याकुल होकर रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा।

राम-रिपु रावणको मूर्च्छित देखकर फिर लात मारकर ऋक्षपति जाम्बवान् प्रभुके पास चले गये—

मुरछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो।

(वही, ६। ९७। १ छं०)

× × ×

अयोध्यामें समारोहपूर्वक श्रीरामका राज्याभिषेक हुआ। प्रभुने समस्त वानर-भालुओंको वस्त्राभूषणका उपहार देकर विदा किया। किंतु प्रभु-पद-प्रेमी जाम्बवान्‌जी प्रभुसे पुनः (द्वापरमें) दर्शन देनेका वचन लेकर ही वहाँसे प्रस्थित हुए।

—शि० दु०

राम-पद-पद्म-प्रेमी केवट

'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्।'
(ना॰ भ॰ सू॰ ५१)

श्रीरामचरणानुरागी केवटकी प्रीति रामचरितमें अपना विशिष्ट स्थान रखती है। प्रभु-पद-कमलोंमें उनकी श्रद्धा-भक्ति और प्रीतिकी सीमा नहीं है। भगवान् राघवेन्द्र भगवती सीता और लक्ष्मणसहित गङ्गा-तीरपर आये और पार उतरनेके लिये केवटसे नाव माँगी; पर 'मागी नाव न केवटु आना।' (मानस २।९९।१½) केवट स्पष्ट कह देते हैं, मैंने सुना है और सभी लोग कहते हैं कि आपकी चरण-रजकी ऐसी महिमा है, जिसके स्पर्शसे कठोर पाषाण भी स्त्री बन जाता है। यदि मेरी नौकाकी भी यही दशा हुई तो मैं अपने परिवारका भरण-पोषण कैसे करूँगा! और कोई धंधा तो मैं जानता नहीं। अतएव—

एहि घाट तें थोरिक दूरि अहै
कटि लौं जल थाह दिखाइहौं जू।

—यहाँसे थोड़ी ही दूरपर गङ्गामें कमरतक ही जल है और मैं स्वयं साथ चलकर आपको मार्ग बता दूँगा। आप पार हो जायँगे।' यह सब कहनेमें केवटका एकमात्र उद्देश्य था, अनेकोंके दुर्लभ चरणकमलोंकी स्पर्श-प्राप्ति—उनका प्रक्षालन करके सम्पूर्ण परिवारको कृतार्थ कर लेना।

जिसको श्रुतियोंने महाराज जनकको यह सौभाग्य प्राप्त हुआ था—

बहुरि राम पद पंकज धोए। जे हर हृदय कमल महुँ गोए॥
(मानस १।३२०।१½)

और—

जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
(वही, ५।४१)

—उन्हीं चरणोंपर केवटकी दृष्टि थी। निःसंदेह केवटने उनसे कह भी दिया—

जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥
(वही, २।९९।४)

'प्रभो! आपको नौकासे पार जाना हो तो मुझे चरण धो लेने दीजिये; अन्यथा मैंने कह ही दिया है, यहाँसे थोड़ी ही दूरपर थाहभर जल है, यहाँसे पार हो जाइये। मैं चलकर मार्ग बता दूँगा। आगे-आगे मैं ही चलूँगा। नावपर चढ़नेके लिये तो मेरी शर्त यही है—

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥
(वही, २।९९।१ छं॰)

केवटकी भक्ति एवं उसकी प्रेममयी अटपटी वाणीको सुनकर राघवेन्द्र जानकी और लक्ष्मणकी ओर देखकर मुस्कराने लगे। यही सरलता, यही निश्छलता, यही हृदयकी पवित्रता एवं यही प्रीति तो प्रभुको प्रिय है। इसी भक्तिपर तो प्रेमसिन्धु प्रभु बिक जाते हैं—भक्तके वश हो जाते हैं। उन्होंने हँसकर केवटसे कह दिया। भैया!

× × × × सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई।
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥
(वही, २।१००।१)

अमित-भाग्यशाली, राम-पद-पद्म-प्रेमी केवटकी महिमा क्या कही जाय! जिन करुणावरुणालय प्रभुके नामका स्मरण कर असंख्य मनुष्य संसार-सागरके पार उतरते हैं, वे ही निखिल-शक्तिनिधि भगवान् श्रीराम केवटका निहोरा करते हैं। केवटने प्रभुकी आज्ञा प्राप्त की और दौड़ पड़े—'आनि कठौता भरि लेइ आवा।' प्रेमकी उमंगमें आनन्दमें निमग्न होकर वे प्रभुके दुर्लभ पदपद्मोंको अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक धोने लगे। वे प्रभुके चरणकमलोंको खूब अच्छी तरह रगड़-रगड़कर, दबा-दबाकर धो रहे थे। केवटके इस सौभाग्यका क्या कहना!

बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥
(वही, २ । १०० । ४)

महात्मा केवटका—नहीं, नहीं, उनके पूर्वजों एवं उनके सम्पूर्ण परिवारका जीवन धन्य हो गया। वे कृतार्थ हो गये। अनन्तकालीन जन्म-जरा-मरणके कठोर पाशसे वे सहज ही मुक्त हो गये—

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥
(वही, २ । १०१)

केवट नौका खेते हुए प्रभुको पार उतार रहे थे। उनकी दृष्टि अब भी प्रभुके पाद-पद्मोंमें ही गड़ी थी। उनके आनन्द एवं प्रेमकी सीमा नहीं थी। प्रभु पार उतरे और गङ्गाकी रेत-में खड़े हो गये। प्रभुको संकोच हुआ कि 'इसे कुछ पारिश्रमिक नहीं दिया।' तब—

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥
(वही, २ । १०१ । १६)

प्रभुने कहा—'यह उतराई लो।'

भगवान्‌की इस वाणीसे केवट व्याकुल हो गये। उन्होंने प्रभुके चरण पकड़ लिये। अपने सौभाग्य, कृतज्ञता एवं प्रेमके सूचक अश्रु उनके नेत्रोंसे झर रहे थे। उन्होंने प्रभुके सम्मुख स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दिया—'नाथ! आज मैंने क्या नहीं पाया? मेरे दोष, दुःख और दरिद्रताकी आग आज बुझ गयी। मैंने बहुत समयतक मजदूरी की। विधाताने आज भरपूर मजदूरी मुझे दे दी।'

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी॥
(वही, २ । १०१ । ३)

भक्त केवटने और कहा—'प्रभो! आपके अनुग्रहसे मुझे अब कुछ नहीं चाहिये। आपने तो मुझे सब कुछ दे दिया।' पर वे चतुराईके साथ यह भी कह देते हैं—

फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा॥
(वही, २ । १०१ । ४)

दीनदयालु श्रीरामने अनेक बार कहा, श्रीसीता और लक्ष्मणने भी पारिश्रमिक लेनेके लिये जोर दिया; पर परम कृतार्थ केवटने कुछ भी स्वीकार नहीं किया। कोई मार्ग न देखकर—

बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥

ऐसे श्रीराम-चरणानुरागी केवटके प्रेम और उनकी भक्ति-का स्मरण भी मनुष्यको पवित्र करता रहेगा।*

—शि० दु०

---

* अध्यात्मरामायणमें यह प्रसङ्ग अहल्योद्धारके बाद ही प्रभुके मिथिलापुरी जाते समय आता है। अहल्योद्धारसे सर्वत्र समाचार प्रचारित हो गया था कि श्रीरामकी चरण-धूलिसे शिला भी स्त्री बन जाती है। वहाँ केवटके वचन इस प्रकार हैं—

क्षालयामि तव पादपङ्कजं नाथ दारुदृषदोः किमन्तरम्।
मानुषीकरणचूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रथीयसी॥
पादाम्बुजं ते विमलं हि कृत्वा पश्चात् परं तीरमहं नयामि।
नोचेत्तरी सद्युवती मलेन स्याच्चेद्विभो विद्धि कुटुम्बहानिः॥
(१ । ६ । १-४)

'हे नाथ! यह बात प्रसिद्ध है कि आपके चरणोंमें कोई मनुष्य बना देनेवाला चूर्ण है। (आपने अभी शिलाको स्त्री बना दिया, फिर) शिला और काठमें भेद ही क्या है? अतः नौकापर चढ़ानेसे पूर्व मैं आपके चरणकमलोंको धोऊँगा। इस प्रकार आपके चरणोंको प्रक्षालित करके मैं आपको श्रीगङ्गाजीके उस पार ले चलूँगा। नहीं तो हे विभो! आपकी चरण-रजके स्पर्शसे यदि मेरी नौका सुन्दर युवती हो गयी तो मेरे कुटुम्बकी आजीविका ही मारी जायगी।'

प्रेमी जटायु

सर्वत्र खलु दृश्यन्ते साधवो धर्मचारिणः ।
शूराः शरण्याः सौमित्रे तिर्यग्योनिगतेष्वपि ॥
(वा० रा० ४ । १८ । २४)

श्रीराम कहते हैं—'लक्ष्मण ! सर्वत्र—यहाँतक कि पशु-पक्षी आदि योनियोंमें भी शूरवीर, शरणागतरक्षक, धर्मपरायण साधुजन मिलते हैं ।'

प्रजापति कश्यपजीकी पत्नी विनताके दो पुत्र हुए—अरुण और गरुड़ । इनमेंसे भगवान् सूर्यके सारथि अरुणजीके दो पुत्र हुए—सम्पाति और जटायु । बचपनमें सम्पाति और जटायु उड़नेकी होड़ लगाकर ऊँचे जाते हुए सूर्य-मण्डलके पासतक चले गये । असह्य तेज न सह सकनेके कारण जटायु तो लौट आये; किंतु सम्पाति ऊपर ही उड़ते गये । सूर्यके अधिक निकट जानेपर सम्पातिके पंख सूर्य-तापसे भस्म हो गये । वे समुद्रके पास पृथ्वीपर गिर पड़े । जटायु लौटकर पञ्चवटीमें आकर रहने लगे । महाराज दशरथसे आखेटके समय इनका परिचय हो गया और महाराजने इन्हें अपना मित्र बना लिया ।

वनवासके समय जब श्रीरामजी पञ्चवटी पहुँचे, तब जटायुसे उनका परिचय हुआ । मर्यादापुरुषोत्तम अपने पिताके मित्र पक्षिराजका पिताके समान ही सम्मान करते थे । जब छलसे स्वर्णमृग बने मारीचके पीछे श्रीराम वनमें चले गये और जब मारीचकी कपटपूर्ण पुकार सुनकर लक्ष्मणजी बड़े भाईको ढूँढ़ने चले गये, तब सूनी कुटियासे रावण सीताजीको उठा ले गया । बलपूर्वक रथमें बैठाकर वह उन्हें ले चला । श्रीविदेहराजदुलारीका करुणक्रन्दन सुनकर जटायु क्रोधमें भर गये । वे ललकारते-धिक्कारते रावणपर टूट पड़े और एक बार तो राक्षसराजके पैरा पाइकर उसे भूमिमें पटक ही दिया ।

जटायु वृद्ध थे । वे जानते थे कि रावणसे युद्धमें वे जीत नहीं सकते । परंतु नश्वर शरीर रामके काममें लग जाय, इससे बड़ा सौभाग्य और क्या होगा । रावणसे उनका भयंकर संग्राम हुआ । अन्तमें रावणने उनके पंख तलवारसे काट लिये । वे भूमिपर गिर पड़े । जनकनन्दिनीको लेकर रावण भाग गया । श्रीराम विरह-व्याकुल होकर जानकीजीको ढूँढ़ते वहाँ आये । जटायु मरणासन्न थे । उनका चित्त श्रीरामके चरणोंमें लगा था । उन्होंने कहा—'राघव ! राक्षसराज रावणने मेरी यह दशा की है । वही दुष्ट सीताजीको लेकर दक्षिण दिशाकी ओर चला गया है । मैंने तो तुम्हारे दर्शनके लिये ही अबतक प्राणोंको रोक रखा था । अब वे विदा लेना चाहते हैं । तुम आज्ञा दो ।'

श्रीरघुनाथके नेत्र भर आये । उन्होंने कहा—'आप प्राणोंको रोकें । मैं आपके शरीरको अजर-अमर तथा स्वस्थ बनाये देता हूँ ।' जटायु परम भागवत थे । शरीरका मोह उन्हें था नहीं । उन्होंने कहा—'श्रीराम ! जिनका नाम मृत्युके समय मुखसे निकल जाय तो अधम प्राणी भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है—ऐसी तुम्हारी महिमा श्रुतियोंमें वर्णित है,—आज वे ही तुम प्रत्यक्ष मेरे सम्मुख हो; फिर मैं शरीर किस स्वार्थके लिये रक्खूँ ?'

दयाधाम श्रीरामचन्द्रके नेत्रोंमें जल भर आया । वे कहने लगे—'तात ! मैं तुम्हें क्या दे सकता हूँ । तुमने तो अपने ही कर्मसे परम गति प्राप्त कर ली । जिनका चित्त परोपकारमें लगा रहता है, उन्हें संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है । अब इस शरीरको छोड़कर आप मेरे धाममें पधारें ।'

श्रीरामने जटायुको गोदमें रख लिया था । अपनी जटाओंसे वे उन पक्षिराजकी देहकी धूलि झाड़ रहे थे । जटायुने श्रीरामके मुख-कमलका दर्शन करते हुए उनकी गोदमें ही शरीर छोड़ दिया—उन्हें भगवान्‌का सारूप्य प्राप्त हुआ । वे तत्काल नवजलधर-सुन्दर, पीताम्बरधारी, चतुर्भुज तेजोमय शरीर धारणकर वैकुण्ठ चले गये । जैसे सत्पुत्र श्रद्धापूर्वक पिताकी अन्त्येष्टि करता है, वैसे ही श्रीरामने जटायुके शरीरका सम्मानपूर्वक दाहकर्म किया और उन्हें जलाञ्जलि देकर श्राद्ध किया । पक्षिराजके सौभाग्यकी महिमाका कहाँ पार है । त्रिभुवनके स्वामी श्रीराम, जिन्होंने दशरथजीकी अन्त्येष्टि नहीं की, उन्होंने अपने हाथों जटायुकी अन्त्येष्टि विधिपूर्वक की । उस समय उन्हें श्रीजानकीजीका वियोग भी भूल गया था ।

रामभक्त शबरी

(लेखिका—श्रीमती सावित्री त्रिपाठी, बी० ए०)

भगवान् श्रीराम कहते हैं—

भक्तौ संजातमात्रायां मत्तत्त्वानुभवस्तदा।
ममानुभवसिद्धस्य मुक्तिस्तत्रैव जन्मनि॥
(अ० रा० ३ । १० । २९)

'भक्तिके उत्पन्न होनेमात्रसे ही मेरे स्वरूपका अनुभव हो जाता है और जिसे मेरा अनुभव हो जाता है, उसकी उसी जन्ममें निस्संदेह मुक्ति हो जाती है।'

परम भक्तिमती शबरीका जन्म तो हुआ था भील-वंशमें, किंतु उसके संस्कार अत्यन्त शुभ थे। बचपनमें ही वह मूक पशुओंकी हिंसा देखकर छटपटा जाती थी। उन्मुक्त गगनमें पंख पसारकर उड़नेवाले पक्षीको शरविद्ध होते देखकर उसका शुभ संस्कार-सम्पन्न सुकोमल हृदय तड़प उठता था। रक्तसे लथपथ जीवोंको तड़पते देखकर शबरीका हृदय अधीर और अशान्त हो जाता था। उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगती थी। वह एकान्तमें रोते-रोते चिल्ला पड़ती थी—'हे भगवन्! मैं क्या करूँ! कहाँ जाऊँ! कुछ समझमें नहीं आता, दया करो, नाथ!'

इसी प्रकारकी चिन्ता और दुःखसे दुःखी दयामयी शबरी युवती हुई। उसके विवाहकी तैयारी होने लगी, पर शबरीका मन और अशान्त होने लगा। यद्यपि उसने सुन लिया था कि वर सुन्दर और वीर ही नहीं, लक्ष्यवेधमें भी निपुण था। उसकी दृष्टिसे भागता हुआ मृग बचकर निकल जाय, सम्भव नहीं था। वह अपने एक ही पैने बाणसे दो पक्षियोंको एक ही साथ मार लेता था। वरकी प्रशंसा सुनकर शबरीके प्राण छटपटाने लगे। वह एकान्तमें जाकर फूट-फूटकर रोने लगी। रोते-रोते वह निखिल सृष्टिके स्वामी करुणामय प्रभुसे व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगी—'हे दयामय! हे सर्वव्यापी करुणामूर्ति भगवन्! मुझ नीच और अभागिनीपर दया कीजिये। मैं इस पापपूर्ण जीवनको सह नहीं पाऊँगी। भोले-भाले जीवोंके कोमल कण्ठपर तेज छुरी चलते, उन्हें चीत्कार करते और छटपटाते देखनेकी अपेक्षा मृत्युकी गोदमें सो जाना मैं अच्छा समझती हूँ। मुझे मार्ग नहीं सूझ रहा है। मैं अत्यन्त नीच और मूर्ख स्त्री हूँ, पर आपकी शरणमें हूँ। आप मेरी रक्षा कर लें। मुझे उबार लीजिये, नाथ!' रोते और प्रार्थना करते रात्रि अधिक बीत गयी, पर शबरीने अपना कर्तव्य भी निश्चित कर लिया।

नीरव अर्धरात्रि। नीले आकाशमें तारे चमक रहे थे और चन्द्रदेव अपनी अमृतमयी शीतल किरणें पृथ्वीपर बिखेर रहे थे। शबरी चुपचाप घरसे निकली और सघन वनमें विलीन हो गयी। उसे ऊबड़-खाबड़ मार्गोंकी चिन्ता नहीं थी। नदी, वन, पर्वत तथा शेर-भालूका उसे तनिक भी ध्यान नहीं था। भय नहीं था। वह भागती जा रही थी। उसे एक ही भय था कि मैं अपने माता-पिताके हाथ न आ जाऊँ। वह अपने हिंसक एवं निर्मम जीवनसे बचकर आजीवन ब्रह्मचारिणी रहकर प्रभु-भजनमें अपना जीवन समाप्त कर देना चाहती थी।

वह भागती ही जा रही थी। उसे अपने शरीर तथा क्षुधा-पिपासादिकी कोई चिन्ता नहीं थी। शरीर पसीनेसे भीग गया था। वह थककर चूर-चूर हो गयी थी और हाँफ रही थी। दो दिन बाद शबरी पम्पासरपर पहुँची।

प्रातःकालकी बेला थी। शबरी थक गयी थी। वह एक वृक्ष-मूलसे सटकर अपना सिर थामकर बैठ गयी। उसी समय मतंग ऋषि अपने शिष्योंसहित स्नानार्थ जाते हुए कह रहे थे—'भगवान्‌की प्राप्तिके लिये भगवान्‌के बन जाओ। अपना तन, मन, प्राण, बुद्धि, अहंकार आदि सब कुछ प्रभुपर अर्पित कर दो। भगवान्‌का ध्यान, भगवान्‌के नामका जप और भगवान्‌की कथाका श्रवण-मनन उन्हें प्राप्त करनेका सरल और सुगम साधन है। तुम शुद्ध हृदयसे उनकी ओर एक पग चलोगे तो वे महिमामय दयानिधान प्रभु सहस्र-सहस्र पग तुम्हारी ओर बढ़ आयेंगे।'

शबरी जैसे कृतार्थ हो गयी। महर्षिके दर्शन एवं उनकी वाणीसे उसने अद्भुत शान्तिका अनुभव किया। उसने वहीं रहना अपने लिये हितकर समझा। उसने सोचा, 'मैं शूद्रा हूँ, मेरे यहाँ रहनेसे ऋषियोंकी तपस्यामें बाधा पड़ेगी।'—इस विचारसे उसने उन तपस्वियोंके आश्रमसे कुछ दूर अपने लिये एक छोटी कुटिया बना ली।

उसकी बुद्धिमें यह बात अच्छी तरह जमा गयी थी कि भक्त भगवान्‌को प्राणप्रिय होते हैं। उन भक्तोंकी दयासे

भगवत्कृपा स्वतः प्राप्त हो जायगी। अपनी इस दृढ़ धारणाके कारण शबरीने ऋषियोंकी सेवा करते रहनेका निश्चय किया। परंतु रात्रि रहते ही वह उठ जाती और ऋषियोंके आश्रमसे पम्पासर-तटके सम्पूर्ण मार्गमें झाड़ू लगा देती। महात्माओंको स्नानार्थ पम्पासर जानेमें तनिक भी कष्ट न हो, इसलिये वह एक-एक कंकड़ी बड़ी सावधानीसे साफ करती, मार्गमें जल छिड़कती और उसपर सुगन्धित पुष्प बिखेर देती। ऋषियोंकी कुटियोंके समीप चुपकेसे सूखी लकड़ियाँ रख आती, जिससे उन्हें समिधा लानेका कष्ट न उठाना पड़े।

शबरीका यह प्रतिदिनका नियम हो गया था पर ऋषि-वर्ग चकित था कि गुप्त रीतिसे यह सेवा कौन करता है। ऋषि किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सके। इस कारण कुछ शिष्योंने पहरा देना शुरू किया और शबरी पकड़ ली गयी। शिष्योंने उसे मतंग मुनिके सामने उपस्थित किया।

शबरी डर गयी थी। डरते-डरते उसने दूरसे ही महामुनिके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वह बोल नहीं पा रही थी। हाथ जोड़े खड़ी थी। उसका शरीर काँप रहा था और नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे।

दयालु मतंग मुनिने शबरीको ध्यानपूर्वक देखा। उन्होंने उसके पूर्वके शुभ संस्कार तथा उसके हृदयके भक्तिभावको समझकर उससे बड़े ही प्यारसे कहा—'बेटी! तू बड़ी ही भाग्यशालिनी है। तुमपर करुणामूर्ति प्रभुकी अहैतुकी कृपा है। तुम्हारा जन्म और जीवन सफल होकर रहेगा।'

फिर मतंग मुनिने अपने शिष्यों और ऋषियोंकी ओर देखकर कहा—'भगवान्‌को भक्त प्राणोंसे प्यारे हैं और यह शबरी परम भगवद्भक्त है। भगवान्‌की प्राप्तिमें, उनकी भक्तिमें वर्ण और धर्मकी बाधा नहीं। उन्हें पानेका ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ही नहीं, कीट-पतंगादि सभी जीवोंको समान अधिकार है।'

परम भगवदनुरागी तपस्वी मतंग मुनिने शबरीसे कहा—'बेटी! तू मेरे पास ही रह। मैं तेरे लिये कुटिया बनवा देता हूँ। तू यहीं रहकर भजनेयोग्य सेवा तथा भगवान्‌की प्राप्तिके लिये निरन्तर साधन-भजन करती रह।'

शबरीने कटे वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर रोते-रोते कहा—'मैं निश्चय ही भाग्यशालिनी हूँ और मेरा भाग्य-सूर्य आज उदित हुआ है, जो आपने मुझ नीचातिनीच एवं मूर्ख शूद्रा नारीको अपने चरणोंके समीप रखकर दयामय प्रभुकी प्रीतिका अवसर प्रदान किया।' उसके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु झर रहे थे।

महामुनिकी बातोंसे अन्य ऋषि कुपित हो गये। उन्होंने कहा—'इस पवित्रतम आश्रममें शूद्राको स्थान देकर ऋषिने उचित नहीं किया है। ये मर्यादाका उल्लङ्घन कर रहे हैं।' ऋषिगण श्रीभगवान्‌की भक्तिकी महिमा नहीं समझ पा रहे थे।

शबरी मतंग मुनिकी कुटियासे कुछ ही दूरपर छोटी-सी कुटियामें रहकर आश्रममें, आश्रमसे पम्पासरतक झाड़ू देती और सूखी लकड़ियोंके लानेका काम करती। दूरसे ऋषियोंके चरणोंमें प्रणाम करती और उनका उपदेश श्रवण करती। इसके बाद वह रात-दिन श्रीभगवान्‌के ध्यान और भजनमें तन्मय रहती। रात्रिमें कुछ ही देर सोती और एक समय मतंग मुनिके दिये हुए प्रसादको अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ग्रहण करके रह जाती। उसे अपने शरीरकी ममता नाममात्र भी नहीं रह गयी थी। उसकी एक ही कामना थी कि इसी जीवनमें किसी दिन श्रीभगवान्‌की प्राप्ति हो जाय।

एक दिनकी बात है। शबरी श्रीभगवान्‌के ध्यानमें तल्लीन, सरोवरसे लौट रही थी। उसे अपने शरीरका भी ध्यान नहीं था। इस कारण स्नानसे लौटे हुए ऋषिसे उसका शरीर छू गया। ऋषि अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। बोले—'अत्यन्त नीच कहींकी! छू दिया मुझे, पुनः स्नान करना पड़ेगा। हमलोगोंकी यह दुर्दशा मतंग मुनि करा रहे हैं।'

शबरी तो प्रभुके ध्यानमें खोयी थी। उसे कुछ भी पता नहीं था कि कब क्या हुआ और ऋषिके डाँटनेका भी उसे पता नहीं चला; अन्यथा वह दूरसे उनके चरणोंमें गिरकर क्षमा-प्रार्थना करती।

ऋषि पुनः स्नान करने पम्पासर गये, किंतु वे आश्चर्यचकित थे। उन्होंने देखा कि सरोवरका निर्मल जल रक्त हो गया है और उसमें कीड़े रेंग रहे हैं। ऋषि बिना स्नान किये ही उदास होकर लौट आये।

कुछ दिनों बाद जब महामुनि मतंगका अन्तकाल निकट आया, तब शबरी अत्यन्त व्याकुल हो गयी। इस-

फूटकर रोती हुई शबरीने कहा—'मुनिनाथ! मैं आपके बिना नहीं जी सकूँगी। मेरे आधार आप ही हैं। ऋषियोंकी सेवा और श्रीभगवान‌्का ध्यान तथा भजन करनेका जो पुण्यमय अवसर मुझे प्राप्त हुआ है और मैं दयामय प्रभुको प्राप्त करनेके लिये व्याकुल हो रही हूँ, यह आपके चरण-कमलोंमें निवास करनेका ही फल है। आपके बिना मेरा उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा और श्रीभगवान‌्की प्राप्तिके बिना मैं यह अधम शरीर रखकर ही क्या करूँगी! आपके ही साथ मैं भी अपना नश्वर शरीर छोड़ दूँगी।'

मतंग ऋषिने बड़े ही प्यारसे शबरीको समझाया—'बेटी! धीरज रख। अधीर मत हो। मेरे प्रयाणका समय आ गया है। मुझे जाना ही चाहिये, पर तू अभी यहीं रहकर पूर्ववत् साधन-भजन करती रह। भक्तिवत्सल भगवान् विष्णुने अयोध्यानरेश दशरथके यहाँ अवतार लिया है। वे दशरथनन्दन श्रीराम अपने पिताकी आज्ञासे चौदह वर्षके लिये वनमें आये हैं। वे भुवनमोहन करुणासिन्धु श्रीराम अपने अनुज श्रीलक्ष्मणसहित यहाँ शीघ्र पधारेंगे। तू उनका दर्शन करके कृतार्थ होगी। तेरी साधना सफल हो जायगी।'

मतंग मुनिने शरीर त्याग दिया। शबरी चीत्कार कर उठी।

महर्षिके न रहनेसे शबरी दुःखी और उदास थी, किंतु उसे उनकी वाणीपर पूर्ण विश्वास था। 'भगवान् इस दण्डकारण्यमें अवश्य पधारेंगे और मुझे भी उनका दुर्लभ दर्शन प्राप्त होगा। मैं उनके योगीन्द्र-मुनीन्द्र-वन्दित चरण-सरोरुहको इन नेत्रोंसे देखकर अवश्य कृतार्थ होऊँगी।' शबरी आनन्दमग्न रहने लगी। वह प्रतिदिन पूरातक मार्ग स्वच्छ कर आती कि दयामय प्रभुके यहाँ पधारनेमें कष्ट न हो। कहीं कोई पत्ता खड़कता तो वह चौंक जाती कि श्रीभगवान् तो नहीं आ रहे हैं। वह प्रतिदिन दूर-दूरतक जाकर मीठे-मीठे फलोंको ले आती और उन्हें एकत्र कर सुरक्षित रखती श्रीभगवान‌्के सम्मुख रख देनेके लिये। वह रात-दिन प्रभुके आनेकी बाट जोहती। पलमें अच्छी तरह सो भी नहीं पाती थी।

ऋषिगण भी प्रभुके आगमनकी प्रतीक्षामें थे। वे उनके स्वागतके लिये प्रस्तुत थे। वे समझते थे कि प्रभु सर्वप्रथम हमारे यहाँ ही पधारेंगे, किंतु उनके आश्चर्यकी सीमा नहीं रही, जब उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मणसहित दण्डकारण्यमें आकर शबरीकी कुटियाका पता पूछने लगे। प्रेममूर्ति भगवान् श्रीराम अपने भाईके साथ भक्तिमती शबरीकी कुटियाके द्वारपर आकर खड़े हो गये। शबरीका क्या कहना!

सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जियँ भाए॥
सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
(रामचरितमानस ३। ३४। १-४½)

श्याम-गौरके भेत्रोन्मादन सौन्दर्यको देखकर शबरी आत्मविभोर हो गयी। वह प्रभुके चरणारविन्दको पकड़कर उनके मुखारविन्दकी ओर अपलक नेत्रोंसे देखने लगी। उसकी वाणी अवरुद्ध थी। उसने सानुज प्रभुको सुन्दर आसनपर बिठाया, श्रीराम तथा लक्ष्मणके चरण अच्छी प्रकार धोये और उस चरणोदकको अपने शरीरपर छिड़का। इसके अनन्तर उसने अर्घ्यादिसे भगवान‌्का सत्कार कर अत्यन्त श्रद्धा एवं प्रीतिपूर्वक उनका पूजन किया। फिर उसने इकट्ठे किये हुए फलोंको उनके सम्मुख रख दिया। श्रीभगवान् आनन्दपूर्वक उन फलोंको खाने लगे। भक्ति-मती शबरी अत्यन्त प्रेमसे फलोंको परसती जाती और श्रीभगवान् उन्हें सराह-सराहकर सुखपूर्वक खाते जा रहे थे। शबरीके मीठे बेरोंको खाते समय भगवान् श्रीराम अनुभव कर रहे थे, जैसे उनकी जन्म देनेवाली प्रेममयी जननी कौसल्याजी उन्हें भोजन करा रही हों।

इस प्रकार अपनी कामनापूर्ति देखकर शबरीने श्रीभगवान‌्से भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो! मेरे गुरु महामुनि मतंगजीने इस संसारसे विदा होते समय आपके यहाँ आनेकी बात कहकर मुझे शरीर रखनेकी आज्ञा दी थी। आज उनका वचन पूरा हुआ। आज मेरी प्रसन्नता-की सीमा नहीं। किंतु मैं अत्यन्त नीच और गँवार स्त्री हूँ, आपकी दासी कहलानेका मेरा मुँह ही कहाँ है।'

कथं रामाद्य मे दृष्टस्त्वं मनोवागगोचरः।
स्तोतुं न जाने देवेश किं करोमि प्रसीद मे॥
(अ० रा० ३। १०। १९)

'राम! आप तो मन या वाणीके विषय नहीं हैं, फिर न जाने आज मुझे आपका दर्शन कैसे हो गया! देवेश्वर! मैं आपकी स्तुति करना नहीं जानती। अब मैं

परमभक्त काकभुशुण्डि

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥

(मानस ७। ११९ ख)

बात है तबकी, जब लङ्कामें युद्ध हो रहा था। लीलाधारी भगवान् श्रीराम मेघनादके नागपाशमें बँध गये। प्रभुको बन्धन-मुक्त करनेके लिये देवर्षि नारदने गरुडको भेजा। गरुडने नागपाश तो काट दिया, किंतु गरुडके मनमें संदेह हो गया—यदि ये सर्वसमर्थ भगवान् हैं तो तुच्छ मेघनादके बन्धनमें कैसे बँध गये—

भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥

नाना भाँति मनहि समुझावा। प्रगट न ग्यान हृदयँ भ्रम छावा॥

(वही, ७। ५८; ५८। ३)

इस प्रकार व्याकुल होकर गरुडजी नारदजीके पास पहुँचे और उन्होंने अपने मनका संदेह मुनिके सम्मुख प्रकट किया। नारदजीने भगवान् रामकी प्रबल मायाकी महिमा बताते हुए कहा—'गरुड ! तुम्हारे हृदयमें भी महामोह उत्पन्न हो गया है। तुम ब्रह्माके पास जाओ और वे जो आज्ञा दें, वही करो।'

गरुडजी ब्रह्माके पास पहुँचे। उन्होंने उन्हें पार्वतीवल्लभ शंकरजीके पास भेज दिया। गरुड श्रीशंकरजीके पास चले। उस समय श्रीशंकरजी कुबेर घर जा रहे थे। गरुडजीने भगवान् शंकरके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर अपना संदेह प्रकट किया। भगवान् शंकर बोले—'तुम्हारा संदेह तभी निवारण हो सकता है, जब तुम कुछ समयतक सत्सङ्ग करो। मेरे पास तो समय नहीं है, तुम महात्मा काकभुशुण्डिके पास जाओ। वे परम प्रवीण श्रीराम-भक्त हैं। वे सदा ही श्रीभगवान्‌की लीला-कथा कहते हैं और उनके पास पक्षिराज, पतंग तथा श्रेष्ठ पक्षी उसे सुनते हैं। तुम वहाँ जाकर प्रभुचरित सुनो। वहीं तुम्हारा भ्रम दूर हो सकेगा।'

भगवान् शंकरके आज्ञानुसार गरुडजी नीलाचलपर काकभुशुण्डिजीके परम पावन आश्रममें पहुँचे। काकभुशुण्डि-जीके आश्रमका ही ऐसा प्रभाव था कि वहाँ पहुँचते ही विष्णुवाहन गरुडजीका सारा संशय छिन्न हो गया।

स्नानादिसे निवृत्त होकर गरुडजी काकभुशुण्डिजीके समीप उस समय पहुँचे, जब वे हरि-कथा प्रारम्भ करना ही चाहते थे। उन्होंने गरुडजीका सम्मानपूर्वक स्वागत किया और उनके इच्छानुसार धीरे-धीरे विस्तारपूर्वक परमपावन सम्पूर्ण रामचरित सुनाया।

गरुडजीकी इच्छासे काकभुशुण्डिजीने उन्हें बताया—'पूर्वके किसी कल्पमें कलियुगमें मेरा जन्म अयोध्यामें शूद्र-कुलमें हुआ था। एक बार अकाल पड़ा। इस कारण मैं अयोध्या छोड़कर उज्जयिनी चला गया। मैं अत्यन्त दरिद्र था, किंतु कुछ समय बाद मेरे पास कुछ सम्पत्ति भी हो गयी। वहाँ भगवान् शंकरके उपासक परम साधु एक सरल ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने कृपापूर्वक मुझे शिव-सम्बन्धी दीक्षा दे दी। मैं भगवान् शंकरका भक्त था, किंतु राम-कृष्णके प्रति मेरे मनमें बड़ी ईर्ष्या थी। मैं उनकी निन्दा किया करता था। मेरे गुरुदेव यह जानकर बड़े दुःखी थे। वे मुझे बार-बार शिव-रामका अभेद-तत्त्व समझाते। वे कहते—'भगवान् शंकर सदा ही अत्यन्त श्रद्धापूर्वक राम-नामका जप करते हैं। तुम्हें श्रीरामके प्रति द्वेष नहीं करना चाहिये।' इस प्रकार गुरुके बार-बार समझानेपर भी मेरे मनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। मैं अहंकारमें चूर था और परम पूज्य गुरुकी भी उपेक्षा कर दिया करता था।

'एक बारकी बात है। मैं अपने आराध्य भगवान् शंकरके मन्दिरमें उनका नाम जप रहा था। उसी समय वहाँ मेरे गुरुदेव पधारे, किंतु मैंने अहंकारके कारण उठकर उन्हें प्रणाम नहीं किया। मेरे गुरुके मनमें तो कोई विकार नहीं हुआ, पर मेरी यह उद्दण्डता भगवान् शंकर नहीं सह सके। उन्होंने तुरंत शाप दिया। आकाशवाणी हुई—'यह एक सहस्र जन्म सर्प-योनिमें ग्रहण करेगा।' इस आकाशवाणीसे मेरे दयालु गुरुदेव 'हाय ! हाय !!' कर उठे। उन्होंने प्रभुसे अत्यन्त करुण स्वरमें प्रार्थना की। गुरुदेवकी प्रार्थनासे संतुष्ट होकर भगवान् उमानाथने कहा—'मेरा शाप व्यर्थ नहीं जायगा। इसे अधम योनियोंमें एक हजार बार अवश्य जन्म लेना पड़ेगा, किंतु इसे जन्म और मृत्युका कष्ट नहीं होगा। जो भी शरीर इसे प्राप्त होगा, वह अनायास ही-बिना कष्टके उसे त्याग देगा। मेरी कृपासे

इसे ये सारी बातें याद रहेंगी। अन्तिम जन्ममें यह ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होगा। उस समय इसे भगवान् श्रीरामके चरणोंमें प्रीति प्राप्त हो जायगी और इसकी सम्यक् गति होगी।'

'भगवान् शंकरके शापके अनुसार अनेक योनियोंमें भटकनेके बाद अन्तमें मैंने देवदुर्लभ ब्राह्मण-कुलमें जन्म लिया। दयामय आशुतोषकी दयासे मुझे पूर्वजन्मकी स्मृति थी, इस कारण मेरा मन भगवान् श्रीरामके चरणोंका चिन्तन करता था। कुछ ही समय बाद मेरे माता-पिता परलोकगामी हुए और मैं प्रभु-भजनके लिये घर त्यागकर वनमें चला गया। वहाँ जहाँ-कहीं ऋषि-मुनि मिलते, मैं उनसे श्रीरामेन्द्रका गुणगान सुनता। इस प्रकार धीरे-धीरे मेरे मनमें श्रीरामके चरण-दर्शनकी लालसा तीव्र हो गयी। मैं जिस ऋषिसे पूछता, वे ही निर्गुण, निराकार एवं सर्वव्यापक प्रभुका उपदेश देते, पर मेरा संतोष नहीं होता था। मेरा हृदय तो त्रैलोक्यमोहन धनुर्धारी श्रीरामेन्द्रके दर्शनार्थ व्याकुल हो रहा था। इसी प्रकार मैं महर्षि लोमशके आश्रममें पहुँच गया और उनके चरणोंमें प्रणाम कर मैंने उनसे सगुण साकार प्रभुके दर्शनका उपाय पूछा। महर्षि लोमशने मुझे अधिकारी समझकर ब्रह्मज्ञानका उपदेश देना प्रारम्भ किया। वे निर्गुण निराकार ब्रह्मका प्रतिपादन करते, किंतु मैं उनका खण्डन कर सगुण साकारका समर्थन करने लगा। महर्षि बार-बार मुझे निर्गुण ब्रह्मको समझानेका प्रयत्न करते और मैं प्रत्येक बार उनका खण्डन कर सगुण साकारकी प्रामाणिकता माँगता।

'मूर्ख, कौआ!' ऋषि क्रुद्ध हो गये। उन्होंने मुझे शाप दे दिया—'तू मेरे सत्य वचनपर विश्वास न कर कौएकी तरह काँव-काँव कर रहा है। तूने अपने पक्षका सम्यक् दुराग्रह है। जा, तुरंत अधम काग हो जा।'

'भगवान्‌की प्रेरणासे ऋषि क्रोधित हो गये, किंतु इसका मुझे तनिक भी क्षोभ नहीं हुआ। मैंने अत्यन्त आदरपूर्वक मुनिके चरणोंमें प्रणाम [illegible] और उड़कर जाना ही चाहता था कि [illegible] इससे मुनि-श्रेष्ठ [illegible] ... प्रसन्न ... महर्षि लोमशको शाप देनेपर पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने अत्यन्त स्नेहसे मुझे बुलाया और अनेक प्रकारसे मुझे प्रसन्न करते हुए उन्होंने मुझे भगवान् श्रीरामके बालरूपका ध्यान तथा श्रीराम-मन्त्र प्रदान किया। इतना ही नहीं, मेरे मस्तकपर अपना स्नेहमय कर-कमल फेरते हुए उन्होंने मुझे आशीर्वाद प्रदान की—'तुम्हारे हृदयमें श्रीराम-भक्ति सदा बनी रहे और श्रीराम तुम्हें सदा प्यार करें। ज्ञान-वैराग्य एवं समस्त शुभ गुण तुममें सदा निवास करेंगे। तुम इच्छानुसार रूप धारण कर सकोगे और तुम्हारी मृत्यु भी इच्छानुसार ही होगी। तुम मनमें जो इच्छा करोगे, भगवत्कृपासे वह सब पूरी हो जायगी। इतना ही नहीं, तुम जिस आश्रममें रहोगे वहाँ एक योजनतक अविद्या प्रविष्ट नहीं हो सकेगी।'

'मैं कृतार्थ हो गया और गुरुकी आज्ञा मानकर मैं उनके चरणोंकी वन्दना की और फिर यहाँ आ गया। यहाँ रहते मुझे सत्ताईस कल्प व्यतीत हो गये। श्रीभगवान् जब अवतार ग्रहण करते हैं, तब-तब मैं श्रीअयोध्या पहुँचकर आतुरतासे उनके भुवनमोहन रूप एवं अत्यन्त दुर्लभ बाललीलाको देखकर कृतार्थ होता हूँ और फिर हृदयमें उसी शिशुरूपको धारणकर यहाँ इस आश्रममें लौट आता हूँ। यहाँ मैं सदा भगवान् श्रीरामका ध्यान, जप एवं मानसिक पूजनके साथ नियमितरूपसे प्रभुकी मंगल-कथा कहता हूँ, जिसे श्रेष्ठ राजहंस आदरपूर्वक सुनते हैं।'*

परमभक्त काकभुशुण्डिजीकी महिमाका वर्णन किस प्रकार किया जाय, जहाँ जानेपर भगवान् शंकरको विशेष आनन्द प्राप्त हुआ था। भगवान् शंकरने स्वयं अपने मुखारविन्दसे माता पार्वतीसे काकभुशुण्डिजीके आश्रमका वर्णन करते हुए कहा था—

जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेषा॥

तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास॥

(मा॰ ७ । ५६ । ८; ७ । ५७)

—शि॰ दु॰

*[illegible] उत्तरकाण्डमें विस्तारपूर्वक दिया गया है।

रामभक्त अगस्त्यजी

यह बर मागहुँ कृपानिकेता । बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता ॥
(मानस ३ । ११ । ५)

विन्ध्यगिरिकी गतिको अवरुद्ध कर देनेवाले परमतेजस्वी अगस्त्यजीका आश्रम अत्यन्त मनोहर था। वहाँ प्रत्येक ऋतुमें सुन्दर पुष्प एवं सुस्वादु फल सुलभ थे। मृगादि पशु वहाँ शान्ति एवं सुखपूर्वक विचरण करते थे एवं नाना प्रकारके पक्षी मधुर स्वरमें गान करते रहते थे। राक्षस-गण उनके आश्रमके समीप भी नहीं आते थे। वे भयाक्रान्त होकर दूर चले गये थे। आश्रम प्रत्येक दृष्टिसे सुखद एवं निरापद था। इसी कारण तपस्याके लिये वहाँ ऋषि-मुनि ही नहीं, देवता, यक्ष, नाग और पक्षी भी अत्यन्त संयमित जीवन व्यतीत करते हुए निवास करते थे। तपस्वी अगस्त्यजीकी प्रशंसा करते हुए स्वयं कमल-लोचन श्रीरामने अपने अनुज लक्ष्मणसे कहा था—

नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः।
नृशंसः पापवृत्तो वा मुनिरेष तथाविधः॥
(वा० रा० ३ । ११ । ९०)

'ये मुनि ऐसे प्रभावशाली हैं कि इनके आश्रममें कोई झूठ बोलनेवाला, क्रूर, शठ, नृशंस अथवा पापाचारी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता।'

जिस समय क्षीरसिन्धुके निकट ब्रह्मादिने प्रभुसे रावणका वधकर पृथ्वीका भार हरण करनेकी प्रार्थना की थी, उसी समय-से तपस्वी अगस्त्यजी उस पवित्रतम आश्रममें रहकर श्रीरामके दर्शनार्थ उनके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने अपने शिष्य सुतीक्ष्णजीके विशेष आग्रहसे गुरुदक्षिणा माँगी थी—'मुझे यहाँ भगवान् श्रीरामके दर्शन कराओ।'

सुतीक्ष्णजीने श्रीअगस्त्यजीके चरणोंमें प्रणाम किया और भगवान् श्रीरामकी प्राप्तिके लिये वहाँसे चले गये। वे निरन्तर साधन-भजनमें लगे रहते थे। श्रीरामके चरणोंमें उनकी भक्ति अनुपम थी और इसी कारण श्यामसुन्दर श्रीरामने श्रीसीता एवं लक्ष्मणसहित उन्हें दर्शन दिया। उनकी लालसा पूरी हुई। वे प्रभुके साथ अपने गुरु श्रीअगस्त्यजीके आश्रमकी ओर चले। आश्रमके पास पहुँचकर सुतीक्ष्णजी तुरंत अपने गुरुके पास चले गये। उस समय श्रीअगस्त्यजी रामभक्तोंके साथ प्रभुका गुणगान कर रहे थे। वहाँ पहुँचकर—

दण्डवत् प्रणिपत्याह विनयावनतः सुधीः।
रामो दाशरथिर्ब्रह्मन् सीतया लक्ष्मणेन च।
आगतो दर्शनार्थं ते बहिस्तिष्ठति साञ्जलिः॥
(अ० रा० ३ । ३ । ९)

"उन्होंने विनयपूर्वक दण्डवत्-प्रणाम कर सुबुद्धि सुतीक्ष्णजीने कहा—'ब्रह्मन्! दशरथकुमार श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ आपके दर्शनोंके लिये आये हैं और अञ्जलि बाँधे आश्रमके बाहर खड़े हैं।'"*

इस संवादमें कितना सुख था, इसे परमभक्त श्रीअगस्त्यजी ही जानते थे। 'सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए।' (मानस ३ । ११ । ४½)—श्रीअगस्त्यजी अपने परमाराध्यके दर्शनार्थ दौड़ पड़े।

रामोऽपि मुनिमायान्तं दृष्ट्वा हर्षसमाकुलः।
सीतया लक्ष्मणेनापि दण्डवत्पतितो भुवि॥
द्रुतमुत्थाप्य मुनिराड् राममालिङ्ग्य भक्तितः।
तद्गात्रस्पर्शजाह्लादस्रवन्नेत्रजलाकुलः॥
(अ० रा० ३ । ३ । ११-१४)

'मुनीश्वरको आते देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताके सहित पृथ्वीपर दण्डके समान लेट गये। तब मुनिराजने तुरंत ही रामको उठाकर प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया और उनके शरीर-स्पर्शसे प्राप्त हुए आनन्दसे उनके नेत्रोंमें जल भर आया।'

फिर अगस्त्यजीने बड़े ही स्नेहसे उनसे कुशल-प्रश्न पूछा। प्रभु श्रीरामके अमृतमय वचनोंसे अगस्त्यजीका रोम-रोम पुलकित हो रहा था। उन्होंने लक्ष्मण एवं सीतासहित अपने प्राणधन श्रीरामको सुन्दर आसनपर बैठाया तथा उनकी प्रेमपूर्वक पूजा की। वनके सुन्दर एवं सुस्वादु फलोंसे प्रभुको संतुष्टकर वे कहने लगे—'आज मेरे-जैसा भाग्यशाली कोई नहीं, जो मैं, जिनमें योगियोंका मन रमण करता है तथा जो भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, उन धर्मात्मा रामको विदेहतनया सीता और लक्ष्मणके साथ अपने आश्रममें

* तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥
नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥
(मानस ३ । ११ । १-४)

प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। दयामय! आपकी दया अनन्त है।' इस प्रकार स्तुति करते हुए अगस्त्यजीने प्रभु श्रीरामसे कहा—

दीर्घकालं मया तप्तमनन्यमनसा तपः।
तस्येह तपसो राम फलं तव पदार्चनम्॥
सदा मे सीतया सार्धं हृदये वस राघव।
गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्मृतिः स्यान्मे सदा त्वयि॥

(अ० रा० ३ । ३ । ४२-४४)

'राघवेन्द्र! मैंने बहुत समयतक अनन्यभावसे तपस्या की है। राम! आज जो मैंने आपकी प्रत्यक्ष पूजा की, यह उस तपस्याका फल है। राघव! सीताके सहित आप सर्वदा मेरे हृदयमें निवास करें। मुझे चलते फिरते सदा आपका स्मरण बना रहे।'

इस प्रकार स्तुति कर महाभाग अगस्त्यजीने (राक्षसोंका संहार करनेके लिये) पूर्वकालमें श्रीरामके लिये इन्द्रका दिया हुआ धनुष, बाणोंसे कभी खाली न होनेवाले दो तरकस तथा एक रत्नजटित खड्ग देते हुए मुनिमनरंजन श्रीरामसे कहा—

अनेन धनुषा राम हत्वा संख्ये महासुरान्।
आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम्॥
तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा॥

(वा० रा० ३ । १२ । ३५-३६)

'श्रीराम! पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने इसी धनुषसे युद्धमें बड़े-बड़े असुरोंका संहार करके देवताओंकी उद्दीप्त सम्पत्तिको उनके अधिकारसे छीन लिया था। मानद! आप यह धनुष, ये दोनों तरकस, ये बाण और यह खड्ग (राक्षसोंपर) विजय पानेके लिये ग्रहण कीजिये—ठीक उसी तरह, जैसे वज्रधारी इन्द्र वज्र ग्रहण करते हैं।'

सर्वसमर्थ सर्वेश्वर श्रीरामने उन श्रेष्ठ आयुधोंको ले लिया और विनयपूर्वक पूछा—'महामुने! अब मुझे कृपापूर्वक ऐसा स्थान बताइये, जहाँ जल एवं कुश-कन्दादिकी सुविधा हो और मैं वहीं कुटी बनाकर सुखपूर्वक रह सकूँ।'

अपने परमाराध्य, निखिल सृष्टिके स्वामी, भगवान् श्रीरामके मुखारविन्दसे ऐसा वचन सुनकर अगस्त्यजीके नेत्र भर आये। वे प्रभुके सौन्दर्य, शील एवं विनय आदि गुणोंपर अत्यन्त मुग्ध थे ही, उन्हें यह सम्मान देते देखकर गद्गद हो गये। उनकी वाणी अवरुद्ध-सी हो गयी। कुछ देर बाद उन्होंने श्रीरामके मुखारविन्दकी ओर एकटक निहारते हुए कहा—

संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूँछेहु रघुराई।
है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ।
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू॥

(मानस ३ । १३ । ७-८)

तदनन्तर श्रीरामने अगस्त्यजीके चरणोंमें सादर प्रणाम निवेदन किया और फिर वहाँसे 'चले राम मुनि आयसु पाई।' (वही, ३ । १३ । ९)

धन्य थे महाभाग अगस्त्यजी और धन्य थी उनकी श्रीराम-पदप्रीति।

—शि० दु०

रामनाम

राम-नामका सुमिरन कर ले प्रेमसहित नर बारंबार।
वेद-पुराण-शास्त्र सब गाते उसकी महिमा अपरंपार॥
शेष, गणेश, महेश, भवानी, वाल्मीकि, नारद, हनुमान।
तुलसी, सूर, कबीर, व्यास, शुक, ध्रुव, प्रह्लाद, भुसुण्ड महान॥
मीरा, चरणदास, सहजो भी करते निशिदिन नित गुण-गान।
शबरी, गीध, विभीषण, गणिका, अजामील, गज भक्त समान॥
राम-नामने किया सभीको सुगम पंथसे मोक्ष प्रदान।
वैरभावसे सुमिरन करता, उसका भी होता कल्याण॥
चलते-फिरते, सोते-जगते रक्खो सदा उसीका ध्यान।
श्वास-श्वासमें राम जपो, तब पाओ पावन पद निर्वाण॥
मगन ध्यानमें मन जब होता, बहती मानो अजब बहार।
पुलकित तनु, आनन्द-अश्रुकी बहती निशिदिन अविरल धार॥

—भक्त भगवान माली

प्रेमी भक्त श्रीसुतीक्ष्णजी

अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया॥

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

(मानस ७ । ८६ । ४; ७ । ८७)

'गुरुदेव!' सुतीक्ष्णजीने अपनी शिक्षा समाप्त होनेपर अपने गुरु श्रीअगस्त्यजीसे अत्यन्त विनयपूर्वक कहा 'आपके चरणोंमें रहकर मैंने विद्या प्राप्त की है। आप कृपापूर्वक कुछ गुरु-दक्षिणा बताइये। मैं आपके चरणोंमें क्या उपस्थित करूँ?'

'मैं तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हूँ।' श्रीअगस्त्यजीने स्नेहपूर्वक उत्तर दिया—'तुम्हें गुरु-दक्षिणा देनेकी आवश्यकता नहीं। मैं तुम्हें स्नेहपूर्वक वैसे ही उऋण कर दे रहा हूँ।'

'नहीं गुरुदेव!' सुतीक्ष्णजी बोले—'आपने मुझे दुर्लभ विद्यादान दिया है। आप गुरु-दक्षिणाके लिये मुझे कुछ आज्ञा दीजिये।'

'तुम्हें गुरु-दक्षिणा देनेकी आवश्यकता नहीं' अगस्त्यजीने पुनः उत्तर दिया—'मैं तुम्हें ऋणमुक्त कर दे रहा हूँ। तुम सुखपूर्वक चले जाओ।'

'परम पूज्य गुरुदेव!' सुतीक्ष्णजीने आग्रहपूर्वक पुनः निवेदन किया—'आप कुछ-न-कुछ गुरु-दक्षिणामें अवश्य माँगिये। गुरु-दक्षिणा दिये बिना मेरा संतोष नहीं होगा।'

'अत्यधिक हठ उचित नहीं।' अगस्त्यजीके मनमें कुछ रोष उत्पन्न हो गया। 'पर तुम नहीं मानते और मुझे गुरु-दक्षिणा देना ही चाहते हो तो जाओ अयोध्या परमप्रभु श्रीरामको लाकर मुझसे मिला दो।'

श्रीसुतीक्ष्णजीने गुरुदेवके चरणोंमें सादर साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और वहाँसे चलकर अरण्यमें एक कुटिया बना ली। श्रीसुतीक्ष्णजीकी कुटियाके समीप अन्य कितने ही ऋषि रहते थे। वह स्थान सुतीक्ष्ण-आश्रमके नामसे प्रख्यात था। उक्त आश्रम अत्यन्त मनोरम था। वहाँ प्रत्येक ऋतुके पुष्प और फल सुलभ थे। आश्रम प्रत्येक दृष्टिसे तपस्वियोंके उपयुक्त एवं सुखद था।

श्रीसुतीक्ष्णजीकी भगवान् श्रीराममें अद्भुत रति थी। वे मन, वाणी एवं कर्मसे श्रीरामचन्द्रके भक्त थे। स्वप्नमें भी किसी अन्य देवताकी आशा नहीं रखते थे। वे निरन्तर श्रीरामके ध्यान एवं उनके भजन-स्मरणमें ही लगे रहते थे। अत्यन्त सरल एवं निश्छल प्रकृतिके श्रीसुतीक्ष्णजी प्रायः श्रीरामके स्मरणमें रोते-रोते बेसुध हो जाते थे। प्रभु-प्रेममें पगे रहनेके कारण उन्हें फल एवं जल ग्रहण करनेका ध्यानतक नहीं रहता था, इस कारण उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया था। देहमें मांसका नाम नहीं था। केवल अस्थि-पञ्जर ही शेष रह गया था। श्रीसुतीक्ष्णमुनिमें नवधा भक्तिके सभी आदर्श उपस्थित हो गये थे। वे राम-मन्त्रके अनन्य उपासक थे।

'जगज्जननी सीता एवं अनुज लक्ष्मणसहित प्रभु श्रीराम इधर ही आ रहे हैं'—यह संवाद पाते ही सुतीक्ष्णजी उठकर खड़े हो गये और मनमें अनेक मनोरथ करते हुए आतुरतासे दौड़ पड़े। उस समय उनके मनकी बड़ी विचित्र स्थिति थी। सुतीक्ष्णजीकी भक्ति, उनकी योग्यता, उनकी नम्रता एवं विनय दुर्लभ है। वे कहते हैं—

हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं॥
नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥

(मानस ३ । १० । १–४)

श्रीसुतीक्ष्णजी प्रभुको प्राप्त करनेकी योग्यताका अपनेमें सर्वथा अभाव देखते हैं। उन्हें अपनेमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, जप, यज्ञ, सत्सङ्ग एवं प्रभु-पद-पद्मोंमें दृढ़ अनुराग—कुछ भी नहीं दीखता, पर करुणामूर्ति प्रभुके स्वभावकी आशा और उसका विश्वास अवश्य है और ये हो भक्तिकी पराकाष्ठाके लक्षण हैं।

'आज संसार-सागरसे मुक्ति प्रदान करनेवाले प्रभुके मुख-कमलका दर्शन कर मेरे नेत्र सफल होंगे, कृतार्थ हो जायँगे।'—अपने इस भावसे श्रीसुतीक्ष्णजी प्रेममें मग्न हो गये। उस समय उनकी दशा अत्यन्त विचित्र हो गयी थी। वे किस दिशामें, कहाँ, किसलिये जा रहे हैं—इसका उन्हें पता ही न था। उन्हें मार्ग नहीं सूझ रहा था। वे कभी जोरसे श्रीभगवान्के परम मङ्गलमय, परम मधुर नामका उच्चारण करने लगते तो कभी सर्वथा मौन हो जाते, जैसे उनकी वाणी ही नहीं है। प्रेमविह्वल श्रीसुतीक्ष्णजी

मन्त्रकी उपासना करते हैं और मेरी ही शरणमें रहते हैं तथा नित्य निरपेक्ष और अनन्य-गति रहते हैं, उन्हें मैं नित्य-प्रति दर्शन देता हूँ ।''

श्रीभगवान्ने और कहा—'त्वं ममोपासनादेव विमुक्तोऽसीह सर्वतः ।' (वही, ३ । २ । ३८)—तुम केवल मेरी उपासनासे इस जीवितावस्थामें ही सब प्रकार मुक्त हो गये हो ।'

फिर अति आतुरताका आनन्द प्राप्त करनेके लिये अपने प्रेमी भक्त श्रीसुतीक्ष्णजीसे विनोद करते हुए कहा—

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही । जो बर मागहु देउँ सो तोही ॥
(वही, ३ । १० । ११ ½)

'हे मुनि ! मैं आपपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ । आपकी जो इच्छा हो, माँगिये । मैं आपको वही दूँगा ।'

श्रीसुतीक्ष्णजीने तो पहले ही श्रीभगवान्से वर माँग लिया था, पर श्रीभगवान् और देनेके लिये प्रस्तुत हैं । इससे जाना जाता है कि मेरी माँगमें कहीं-न-कहीं त्रुटि अवश्य रह गयी है । अनन्त ज्ञाननिधि प्रभुसे सर्वथा अल्पज्ञ जीव अपनी बुद्धिके अनुसार ही तो याचना करेगा—यह सोचकर अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये मुनिने बड़ी ही विनम्रतासे निवेदित किया—

मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा । समुझि न परइ झूठ का साचा ॥
तुम्हहि नीक लागै रघुराई । सो मोहि देहु दास सुखदाई ॥
(वही, ३ । १० । १२-१२ ½)

श्रीभगवान्ने पुनः विनोद किया । श्रीसुतीक्ष्णजीको ध्यान अत्यधिक प्रिय है, पर श्रीभगवान्ने अपने वरदानमें ध्यानका स्पर्श भी नहीं किया । वरदान देते हुए प्रभु बोले—

अबिरल भगति बिरति बिग्याना । होहु सकल गुन ग्यान निधाना ॥
(वही, ३ । १० । १३)

पर श्रीसुतीक्ष्णजीकी भक्ति अत्यन्त दृढ़ थी । अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये उन्होंने निखिल सृष्टिके स्वामी, अपने परमाराध्य प्रभु श्रीरामसे निवेदन किया—

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा । अब सो देहु मोहि जो भावा ॥
अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम ।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम ॥
(वही, ३ । १० । १३ ½; ३ । ११)

'हे धनुष-बाण-धारी भगवान् श्रीराम ! आप भाई श्रीलक्ष्मण और माता जानकीसहित सदा ही मेरे हृदयमें आकाशमें चन्द्रवत् निवास करें ।'

और मुनिकी श्रद्धा-भक्ति एवं प्रेमके अधीन प्रभुने प्रसन्नतापूर्वक तत्क्षण कह दिया—'एवमस्तु ।' और फिर बोले—

गुरुं ते द्रष्टुमिच्छामि ह्यगस्त्यं मुनिसत्तमम् ।
किंचित्कालं तत्र वस्तुं मनो मे त्वरयत्यलम् ॥
(अ० रा० ३ । २ । ३९)

'अब मैं तुम्हारे गुरु मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे मिलना चाहता हूँ, मेरा चित्त उनके पास कुछ दिन रहनेके लिये उतावला हो रहा है ।'

श्रीसुतीक्ष्णजीने तुरंत कहा—'प्रभो ! आश्रमसे आये मुझे बहुत दिन बीत गये और इस कारण मुझे गुरुजीके दर्शन किये भी अत्यधिक दिन हो गये । अब मैं आपके साथ ही गुरुजीके यहाँ चलूँगा, इसमें आपके लिये संकोचका कोई प्रश्न नहीं है । मैं अपने स्वार्थसे चलना चाहता हूँ ।'

बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ । भए मोहि एहिं आश्रम आएँ ॥
अब प्रभु संग जाउँ गुर पाहीं । तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं ॥
(मानस ३ । ११ । १-१ ½)

प्रभुने सुतीक्ष्णजीकी चतुराई समझ ली और उन्होंने मुस्कराते हुए उन्हें अपने साथ ले लिया । मार्गमें अपनी भक्तिकी अद्भुत बातें सुनाते हुए प्रभु श्रीराम जब अगस्त्य मुनिके आश्रमके समीप पहुँचे, तब—

तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ । करि दंडवत कहत अस भयऊ ॥
नाथ कोसलाधीस कुमारा । आए मिलन जगत आधारा ॥
राम अनुज समेत बैदेही । निसि दिनु देव जपत हहु जेही ॥
(वही ३ । ११ । ४-५)

श्रीसुतीक्ष्णजी तुरंत अपने गुरुके पास पहुँचे और उनके चरणोंमें दण्डवत् करके उन्होंने निवेदन किया—नाथ ! आप लक्ष्मण और माता जानकीसहित जिन परम प्रभुका दिन-रात नामजप करते रहते हैं, वे विश्वाधार कोसल-कुमार आपसे मिलने पधारे हैं ।

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए । हरि बिलोकि लोचन जल छाए ॥
(वही, ३ । ११ । ५ ½)

श्रीसुतीक्ष्णजीकी वाणी सुनते ही श्रीअगस्त्यजी तुरंत उठ खड़े हुए और आतुरतासे प्रभुके दर्शनार्थ दौड़ पड़े तथा सीता-अनुजसहित नवघनसुन्दर श्रीरामको देखते ही प्रेम निमग्न हो गये । उनके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये ।

इस प्रकार श्रीसुतीक्ष्णजीने अपनी अनुपम भक्तिसे प्रभु-प्राप्तिके साथ ही अपने गुरुकी माँगी हुई गुरु-दक्षिणा भी उन्हें दे दी और उनसे उऋण हो गये ।　　—शि० दु०

[illegible]-लोचन नवनीरदवपुको भी भरकर देखा और कृतार्थ हो, यथाशक्ति प्रभुकी स्तुति करने लगे—

प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत॥*

(वही, ३ । ३)

परम भाग्यवान् महर्षि अत्रि प्रभुकी सौन्दर्य-सुधाका पान करते हुए उनकी स्तुति कर रहे थे। प्रेमातिरेकसे उनकी विलक्षण दशा हो गयी थी। प्रार्थनाके अन्तमें सिर झुकाकर परमभक्त श्रीअत्रिजीने अपनी दीनतम याचना व्यक्त की—

बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि॥

(वही, ३ । ४)

इसके बाद धर्मज्ञ ऋषिने भगवान् श्रीरामको अपनी धर्मपत्नी अनसूया देवीका परिचय देते हुए कहा—'एक बारकी बात है। अनवरत रूपसे दस वर्षोंतक वर्षा न होनेके कारण सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। धरती तवेकी तरह तप रही थी और पशु-पक्षियोंका प्राणान्त हो रहा था। उस समय इन्होंने अत्यन्त कठोर नियमके साथ उग्र तप किया, जिसके फलस्वरूप फल-मूल उत्पन्न हुए और इन्होंने मन्दाकिनीकी पवित्र धारा बहायी। इन्होंने दस सहस्र वर्षोंतक कठोर तप करके ऋषियोंकी सारी बाधाएँ दूर कर दीं।' फिर महर्षिने कहा—

देवकार्यनिमित्तं च यया संत्वरमाणया।
दशरात्रं कृता रात्रिः सेयं मातेव तेऽनघ॥
तामिमां सर्वभूतानां नमस्कार्यां तपस्विनीम्।
अभिगच्छतु वैदेही वृद्धामक्रोधनां सदा॥

(वा० रा० २ । ११७ । ११-१२)

'निष्पाप श्रीराम! जिन्होंने देवताओंके कार्यके लिये अत्यन्त उतावली होकर दस रातके बराबर एक ही रात बनायी थी, वे ही ये अनसूया देवी तुम्हारे लिये माताकी भाँति पूजनीय हैं। ये सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये वन्दनीय तपस्विनी हैं। क्रोध तो इन्हें कभी छू भी नहीं सका है। विदेहनन्दिनी सीता इन वृद्धा अनसूया देवीके पास जायँ।'

प्रभु श्रीरामका आदेश पाकर श्रीसीतादेवी अत्यन्त तपस्विनी वृद्धा अनसूयाजीके समीप जाकर दण्डकी भाँति उनके चरणोंमें लोट गयीं—

दण्डवत्पतितामग्रे सीतां दृष्ट्वातिहर्षिता।
अनसूया समालिङ्ग्य वत्से सीतेति सादरम्॥
दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा।
दुकूले द्वे ददौ तस्यै निर्मले भक्तिसंयुता॥
अङ्गरागं च सीतायै ददौ दिव्यं शुभानना।
न त्यक्ष्यत्यङ्गरागेण शोभा त्वां कमलानने॥

(अ० रा० २ । ९ । ८०—८२)

"अनसूयाजीने अपने सम्मुख सीताजीको दण्डके समान पड़ी देख, अति हर्षित हो, 'बेटी सीता!' कहकर आदरपूर्वक आलिङ्गन किया और भक्तिसहित उन्हें विश्वकर्माके बनाये हुए दो दिव्य कुण्डल और दो स्वच्छ रेशमी साड़ियाँ दीं। सुन्दर मुखवाली अनसूयाजीने उन्हें दिव्य अङ्गराग भी दिया और कहा—'कमलमुखि! इस अङ्गरागके लगानेसे तेरे शरीरकी शोभा कभी कम न होगी।'"

इसके अनन्तर अनसूयाजीने सती सीताके मिससे पातिव्रत-धर्मका बड़ा सुन्दर उपदेश दिया। अन्तमें उन्होंने कहा—

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित॥

(मानस ३ । ५ क, ख)

साथ ही अनसूयाजीने सीताजीको आशीष् दी, 'रघुनाथजी तुम्हारे साथ कुशलपूर्वक घर लौटें।' अनसूयाजीके अत्यन्त स्नेहपूर्ण उपहार, उपदेश एवं आशीषसे श्रीसीताजी बहुत प्रसन्न हुईं। फिर उन्होंने बड़ी ही श्रद्धा और प्रीतिसे लक्ष्मण और सीतासहित श्रीरामजीको भोजन कराया। इसके बाद उन्होंने हाथ जोड़कर श्रीरामजीसे कहा—

राम त्वमेव भुवनानि विधाय तेषां
संरक्षणाय सुरमानुषतिर्यगादीन्।
देहान् बिभर्षि न च देहगुणैर्विलिप्त-
स्त्वत्तो बिभेत्यखिलमोहकरी च माया॥

(अ० रा० २ । ९ । ९२)

'राम! इन सम्पूर्ण भुवनोंकी रचना करके आप ही इनकी रक्षाके लिये देवता, मनुष्य और तिर्यगादि योनियोंमें शरीर धारण करते हैं, तथापि देहके गुणोंसे आप लिप्त नहीं होते। सम्पूर्ण संसारको मोहित करनेवाली माया भी आपसे सदा डरती रहती है।'

* श्रीरामचरितमानसमें अत्यन्त सुन्दर स्तुति है।

श्रीरामने उन्हें बालीसे युद्ध करनेको भेजा । जब सुग्रीवकी ललकार सुनकर बाली दौड़े, तब ताराने पैर पकड़कर उन्हें समझाना चाहा । उस समय बालीने कहा—'प्रिये ! श्रीराम तो समदर्शी हैं और यदि कदाचित् वे मुझे मारेंगे भी, तो मैं सदाके लिये सनाथ हो जाऊँगा ।'

बाली श्रीरामके स्वरूपको जानते थे । जब प्रभुने उनकी छातीमें बाण मारा और वे गिर पड़े, तब सर्वेश्वर उनके सम्मुख आये । बालीने उन्हें उलाहना दिया छिपकर मारनेके लिये; किंतु 'हृदयँ प्रीति मुख बचन कठोरा ।' (मानस ४ । ८ । २) को वे सर्वान्तर्यामी भलीभाँति जानते थे । बाली कहे कुछ भी, उनकी अवस्था तो दूसरी ही थी—

पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा । सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा ॥
(वही, ४ । ८ । १½)

भगवान्ने भी बालीके वचनका उत्तर देकर बताया कि 'यह जानकर भी कि सुग्रीव भगवान्के आश्रित हैं, उन्हें मारनेका प्रयत्न अहंकारवश ही किया गया ।' दयामयने बालीके शरीरको अमर कर देनेका प्रस्ताव उसके सामने रखा । बालीने उत्तर दिया—'प्रभु ! ऐसा सुअवसर बार-बार हाथ नहीं लगता ।'

जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं । अंत राम कहि आवत नाहीं ॥
जासु नाम बल संकर कासी । देत सबहि सम गति अबिनासी ॥
मम लोचन गोचर सोइ आवा । बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा ॥
(वही, ४ । ९ । १-२½)

बालीने भगवान्की स्तुति की और वरदान माँगा—'नाथ ! कर्मवश जिस किसी भी योनिमें जन्म ग्रहण करूँ, वहाँ मेरा आपके श्रीचरणोंमें प्रेम रहे'—

जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ ॥
(वही, ४ । ९ । २ छंद)

वह दिव्य झाँकी उस बड़भागीके सम्मुख थी—

स्याम गात सिर जटा बनाएँ । अरुन नयन सर चाप चढ़ाएँ ॥
(वही, ४ । ८ । १)

श्रीरामके चरणोंमें चित्तको लगाकर इस छविका दर्शन करते हुए बालीने इस प्रकार शरीर छोड़ दिया—

सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग ॥
(वही, ४ । १०)

भक्त-हृदय कुम्भकर्ण

रामहि केवल प्रेमु पिआरा । जानि लेउ जो जाननिहारा ॥
(मानस २ । १३६ । १)

भगवान्की लीला अद्भुत है । जो तर्क करना चाहते हैं, वे उसमें अविश्वास करके अशान्त होते हैं और जो भावुक हैं, विश्वासी हैं, वे उन लीलामयकी अद्भुत लीलाओंमें आनन्द प्राप्त करते हैं । रावणका छोटा भाई कुम्भकर्ण सृष्टिका ही प्राणी था; फिर भी वह सृष्टिरक्षाके लिये ही एक समस्या हो गया था । जब तपस्या करते हुए कुम्भकर्णके पास ब्रह्माजी वरदान देने पहुँचे, तब वरदान देना तो दूर, उन्हें दूसरी ही चिन्ता हो गयी । वे सोचने लगे—'यदि यहाँ यह नित्य भोजन करेगा तो सारा विश्व कुछ ही कालमें इसके द्वारा नष्ट हो जायगा ।' सरस्वतीके द्वारा ब्रह्माजीने कुम्भकर्णकी बुद्धि भ्रमित करा दी और उसने छः महीने सोते रहनेका वरदान माँग लिया ।

पाप-पुण्य, धर्म-कर्मसे भला कुम्भकर्णको क्या काम । वह तो छः महीनेतक लगातार लेटा पड़ा रहता था एक पहाड़की बड़ी भारी गुफामें । छः महीनेपर केवल एक दिनके लिये जागता था । वह दिन भोजन करने तथा कुशल-मङ्गल पूछनेमें ही बीत जाता था । रावणके अपकर्मोंमें कुम्भकर्णका कोई हाथ नहीं था, न हो ही सकता था । उस महाकायका हृदय निर्मल था । वह इतना शुद्ध अधिकारी था कि स्वयं देवर्षि नारदने उसे तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया था ।

जब लङ्काकी सेना वानर-रीछोंकी मारसे संत्रस्त हो गयी, जब अतीक, अकम्पन आदि प्रधाननायक कपियोंके हाथ मारे गये, तब रावणने कुम्भकर्णको जगानेका आदेश दिया । अनेक उपायोंके द्वारा किसी प्रकार राक्षस कुम्भकर्णको जगा सके । जागनेपर सब बातें सुनकर कुम्भकर्ण बड़ा दुःखी हुआ । उसने रावणसे कहा—

जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान ॥
भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा । अब मोहि आइ जगाएहि काहा ॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना । भजहु राम होइहि कल्याना ॥
(वही, ६ । ६२; ६ । ६३ । १)

परंतु बड़े भाईका अनादर करना कुम्भकर्णको अभीष्ट नहीं था । वह तो अपने नेत्रोंको सफल करना चाहता था । उसने अपनी एकमात्र इच्छा व्यक्त की—

स्याम गात सरसीरुह लोचन । देखौं जाइ ताप त्रय मोचन ॥
(वही, ६ । ६३ । ४)

विलसत्कं पद्मनेत्रं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्।
नीलमाणिक्यसंकाशं द्योतयन्तं दिशो दश॥
(अ० रा० १ । ५ । १७–१९)

'तब अहल्याने रेशमी पीताम्बर धारण किये श्रीरघुनाथजीको देखा। उनकी चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित थे, कंधेपर धनुष-बाण विराजमान थे तथा आपमें श्रीलक्ष्मणजी थे। उनका मुख मुस्कानयुक्त, नेत्र कमलदलके समान और वक्षःस्थल श्रीवत्साङ्कसे सुशोभित था। अपने नीलमणि-सदृश श्याम-विग्रहसे वे दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे।'

अहल्याके नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भर आये। उन्हें अपने पतिके वचनकी स्मृति हुई तो वे गद्गद हो गयीं। उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी। उन्होंने प्रभुकी बड़ी ही श्रद्धासे पूजा की और फिर उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग लोट गयीं। फिर हाथ जोड़कर उन्होंने श्रीरामकी स्तुति की—

मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावन रिपु जन सुखदाई।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहिं आई॥
मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभ संकर जाना॥
बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न मागउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥
(मानस १ । २१० छन्द २-३)

देव मे यत्र कुत्रापि स्थिताया अपि सर्वदा।
त्वत्पादकमले सक्ता भक्तिरेव सदास्तु मे॥
(अ० रा० १ । ५ । ५८)

'हे देव! मैं जहाँ कहीं भी रहूँ, वहीं सर्वदा आपके चरण-कमलोंमें मेरी आसक्तिपूर्ण भक्ति बनी रहे।'

इस प्रकार महाभागा अहल्याने स्तुति कर कमलदललोचन श्रीरामके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा कर वे सानन्द अपने पतिके पास चली गयीं। —शि० दु०

मन्दोदरी

मन्दोदरी दानवराज मयकी पुत्री थी। उसकी माताका नाम हेमा था। हेमा अप्सरा थी। उसके लिये दानवपुरीमें अधिक दिनोंतक रहना सम्भव नहीं था। नवजात कन्याको छोड़कर वह देवलोक चली गयी। मयने पुत्रीका नाम मन्दोदरी रखा। मन्दोदरी अत्यन्त सुन्दरी, सरल, सुशीला तथा सद्गुणवती थी। दानवराज मयकी सम्पूर्ण ममता और स्नेहका केन्द्र मन्दोदरी ही थी। इस कारण वे अधिकांश मन्दोदरीको अपने साथ ही रखते थे। मन्दोदरीने धीरे-धीरे यौवनमें प्रवेश किया।

एक बारकी बात है। दानवराज अपनी प्राणप्रिय पुत्री मन्दोदरीके साथ गहन वनमें भ्रमण कर रहे थे कि उनका अचानक लङ्काधिपति रावणसे साक्षात्कार हो गया। रावण कुँआरा था। उसकी दृष्टि मन्दोदरीपर पड़ी तो वह उसपर मुग्ध हो गया। उसने अपने पितामह ब्रह्मा तथा उच्चवंशका परिचय देते हुए मन्दोदरीकी याचना की। दानवराजने सुयोग्य वर समझकर उसके हाथों अपनी कन्या (मन्दोदरी) को सविधि समर्पित कर दिया।

देव, गन्धर्व एवं नागोंकी कितनी ही कन्याओंसे रावणका परिणय हुआ था, पर वह मन्दोदरीको सर्वाधिक प्यार करता था। मन्दोदरी भी रावणको हृदयसे चाहती थी और उसे सदा सत्पथपर चलते रहनेके लिये पदे-पदे समझाया करती थी। रावण भी उसकी बातोंको ध्यानपूर्वक सुनता था।

मन्दोदरी सती नारी थी और इसी कारण उसे विदित हो गया था कि जगदाधार स्वामीने श्रीरामके रूपसे अयोध्यामें अवतार ग्रहण किया है और वे सिताके आदेशसे वनमें पधारे हैं। वे धीरे-धीरे धरतीको राक्षसोंसे रहित करते जा रहे हैं।

जब रावणने छलपूर्वक सीताका हरण किया, तब मन्दोदरीने उसे बड़े ही आदरसे समझाया था—'नाथ! श्रीराम साक्षात् परमात्मा हैं। आप उनसे वैर न करें। इसका परिणाम शुभ नहीं होगा। सीता साक्षात् योगमाया हैं। आप मेघनादको राज्य-पदपर प्रतिष्ठित कर दें और हमलोग कहीं एकान्तमें चलकर श्रीरामका भजन करें। वे दया-निधि निश्चय ही हमपर दयाकी वृष्टि करेंगे।'

पर रावणपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इतना अवश्य था कि वह विभीषण और माल्यवंतकी तरह मन्दोदरीका अपमान नहीं करता था। जब भी अवसर मिलता, मन्दोदरी उसे अवश्य समझाती। वह रावणसे बार-बार कहती—

पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अग जग नाथ अतुल बल जानहु॥
(मानस ६ । [illegible])

कर देनेके लिये त्रिजटासे चिता बनाकर उसमें अग्नि प्रज्वलित करनेकी बात कही, तब त्रिजटा अधीर हो गयी। उसने—

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजसु सुनाएसि॥
(वही, ५ । ११ । २½)

इस प्रकार त्रिजटा विनयपूर्वक अपनी सेवा तथा दशरथनन्दन श्रीरामके गुणगानसे सीतादेवीका दुःख-निवारण कर उन्हें सुख पहुँचाती रही।

—शि० दु०

मारीच

मारीच ताड़का नामक राक्षसीका पुत्र था। अपने राक्षसी स्वभाववश वह ऋषि-मुनियोंके यज्ञ आदि कार्योंमें विघ्न डालता था। महर्षि विश्वामित्रजीके यज्ञमें उपद्रव करते समय वह भगवान् श्रीरामके बाणसे सौ योजन दूर जा गिरा था। रावण सीता-हरणकी अपनी नीच योजना लेकर मारीचके पास गया।

दसमुख गयउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथ रत नीचा॥
(मानस ३ । २१ । १)

अपने स्वार्थवश रावणने उसको सिर नवाकर सीता-हरणकी अपनी पूरी योजना बतायी और उसको कपटी मृग बननेके लिये कहा। मारीच भगवान् रामकी प्रभुता एवं बलको भूला नहीं था। उसने उन्हें साक्षात् ईश्वरके रूपमें पहचान लिया था। उसने रावणको बहुत समझाया कि 'उनसे वैर नहीं करना चाहिये, वे मनुष्यरूपमें साक्षात् ईश्वर हैं। ताड़का, सुबाहु, खर, दूषण एवं त्रिशिराका वध करनेवाले श्रीराम क्या मामूली मनुष्य हो सकते हैं!' उसने रावणसे बहुत विनय की एवं उससे लौटनेके लिये प्रार्थना की। परंतु रावण अपने अहंकारके नशेमें चूर था, उसे अपने बलका गर्व था। उसने मारीचको बहुत डराया एवं भय दिखाया। मारीचने दोनों तरफ ही अपनी मृत्युको देखा। उसकी भगवान् श्रीरामके चरणोंमें प्रीति हो गयी थी। रावणके हाथ मरनेकी अपेक्षा उसने भगवान् राघवेन्द्रके हाथ मरना अच्छा समझा और उन्हींकी शरण ली।

अस जियँ जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेम अभंगा॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही॥
(वही, ३ । २५ । ४)

मारीचके हृदयमें श्रीरामके प्रति प्रेम था और उनके दर्शनकी लालसा थी। अतएव उसने रावणकी नीच योजना स्वीकार की और स्वर्ण-जैसे रंगके कपट-मृगका रूप धारण कर लिया।

सीताने उस मृगको देखकर उसका चर्म लानेके लिये रामसे प्रार्थना की। भगवान् राम अपने हृदयमें सब बात जानते थे, परंतु उन्हें देवताओंका कार्य करना था। अतः लक्ष्मणको सीताकी रखवालीका कार्य सौंपकर वे उस कपट-मृगके पीछे दौड़े—

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछें सो धावा॥
(वही, ३ । २६ । ५½)

मारीच मृगवेशमें प्रभुको पीछे फिर-फिरकर बार-बार देख रहा था। उनके दर्शन कर वह अपनेको धन्य समझ रहा था। अन्तमें प्रभुका तेज बाण उसे लगा और उसने भगवान् रामका स्मरण करते-करते अपना शरीर छोड़ दिया। प्रभुने उसके हृदयके प्रेमको पहचान लिया और अपना दुर्लभ परमपद उसे दिया—

बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ॥
(वही, ३ । २७)

करके रामको वनवास करा दिया। सूर्यवंशका झंडा एक बार फिर कोने कोनेमें फहराने लगा।

प्रजाकी सम्मति

किंतु एकमात्र राजाको अधिकार नहीं था कि वे ज्येष्ठ पुत्र या जिसे चाहें, गद्दी दे दें। अथर्ववेदमें 'राजकृतः' (३।५।७) शब्द आया है। वाल्मीकिने भी 'राजकर्तारः' शब्दका प्रयोग किया है। प्रजा तथा नरेश-परिवारकी रक्षाका भार ब्राह्मणोंपर था। वे ही अन्तिम निर्णय करते थे कि गद्दीपर कौन बैठे। अतएव अभिषेक करनेवालोंको 'राजकर्तारः' कहते थे।

प्रजाकी शङ्काका समाधान

प्रजाको भी अपनी बात कहनेका अधिकार था। जब सूर्यवंशी सम्राट् प्रतीपने शंतनुको तथा ययातिने पूरुको गद्दी देनेका निश्चय किया, तब जनताने राजद्वारपर आकर राजासे पूछा कि 'ज्येष्ठ पुत्रके स्थानपर छोटे लड़केको क्यों गद्दी दे रहे हैं ?' प्रतीपने सफाई दी थी कि 'ज्येष्ठ पुत्र देवापिको कोढ़ हो गया है। वह राज्य नहीं कर सकता।' ययातिने उत्तर दिया कि "चूँकि उनके अन्य पुत्र उन्हें 'यौवन' देनेकी परीक्षामें असफल थे, अतएव पूरुको राज्य दिया जायगा।"

रामको युवराजपद देनेपर विचार

इक्ष्वाकुवंशमें ज्येष्ठ पुत्रको ही राज्य देनेकी परिपाटी थी। प्रजा भी उस परिपाटीसे संतुष्ट थी। दशरथने भी यही निर्णय किया, पर उन्हें अपने निर्णयकी स्वीकृति प्रजाजनसे प्राप्त करनी थी, अपने अधीन राजाओंसे नहीं। इसीलिये उन्होंने नागरिकोंकी सभा बुलायी। वाल्मीकिने लिखा है—

> समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान्पृथिवीपतिः ॥
> न तु केकयराजानं जनकं वा नराधिपः ।
> त्वरया चानयामास पश्चात्तौ श्रोष्यतः प्रियम् ॥
> अथोपविष्टे नृपतौ तस्मिन् परपुरार्दने ।
> ततः प्रविविशुः शेषा राजानो लोकसम्मताः ॥
>
> (२।१।४६,४८-४९)

पौर-जानपदकी सम्मति

प्राचीन भारतमें सम्राट्के प्रदेशोंका शासन 'पौर' के हाथमें होता था। वह 'पौर' राज्यका मुखिया होता था। तथा सम्भ्रान्त लोगोंकी सभाकी सम्मतिसे राज-काज करता था। राज्यकी ओरसे सिक्का छापना, सिक्केका वजन ठीक रखना, देशकी आर्थिक हालतके अनुसार मुद्राका विस्तार या प्रचार—यह कार्य 'जानपद' लोगोंके जिम्मे था। इस प्रकार जानपदलोग देशकी आर्थिक व्यवस्थाके जिम्मेदार थे। शासक तथा अर्थसंचालकका मिलकर काम करना जरूरी होता है। इसीलिये 'पौर-जानपद'की सभा राज्यका काम मिल-जुलकर करती थी।

प्रदेशके शासक 'पौर'का मन्त्रियोंसे मतभेद भी हो जाता था, जिसे राजाको निपटाना पड़ता था। सम्राट् अशोकके समयकी घटना है कि सम्राट्के तक्षशिलाके गवर्नर (पौर) विप्लव कर बैठे। उनको शान्त करनेके लिये अशोकने अपने पुत्र युवराज कुणालको भेजा। कुणालके स्वागतमें पौर आये और हाथ जोड़कर बोले—

'न तो हम कुमारके विरुद्ध हैं और न राजा अशोकके। उनके मन्त्री यहाँ आकर हमारा अपमान करते हैं।'

> 'दुष्टात्मानोऽमात्या आगत्यास्माकमपमानं कुर्वन्ति।'
>
> (दिव्यावदान पृ० ४०७)

पौर-जानपद तथा मन्त्रीमें मतभेद न हो, इसीलिये राजा उन्हींको राजमन्त्र देता था—यानी मन्त्री बनाता था और राजकाज (दण्ड) का काम सौंपता था, जिन्हें पौर-जानपदका विश्वास प्राप्त हो। मुख्यमन्त्रीको 'मन्त्रिप' कहते थे। महाभारतके शान्तिपर्वमें लिखा है—

> तस्मै मन्त्रः प्रयोक्तव्यो दण्डमाधित्सता नृपाः ॥
> पौरजानपदा यस्मिन्विश्वासं धर्मतो गताः ।
>
> (१२।८३।४५-४६)

और महाभारतके ही अनुसार राजा जो भी कार्य करता था 'पौरान् समाश्वास्य'—पौर लोगोंको संतुष्ट करके, उनके परामर्शसे करता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि केकयराज, जनक आदि नरेश थे, पौर नहीं थे। इसीलिये दशरथने उनको नहीं बुलाया। पौर तो 'पार्षदराज' (उप-नरेश) थे—पूरा परिवार ही पौर हो सकता था।

दशरथद्वारा रामका गुण-वर्णन

वाल्मीकिने अयोध्याकाण्डमें दशरथद्वारा पौर-जानपदोंके सामने श्रीरामके गुणोंका वर्णन करके उनकी सम्मति प्राप्त करनी चाही थी। उन्होंने कहा—

सर्वे धर्माः राजधर्मप्रधानाः
सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः
सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः ॥

(महा०, शा० ६३ । २७, २९)

'राजधर्म सब धर्मोंमें प्रधान है। सारी विद्या राजधर्ममें ही नियुक्त है।' सब लोक राजधर्ममें निहित हैं।' राजधर्मका प्रतीक राजा है। इसीलिये शाप देनेवाले या अनुग्रह करनेवाले सभी देवता राजाके शरीरमें विराजमान रहते हैं। विष्णुपुराणमें लिखा है—

एते चान्ये च ये देवाः शापानुग्रहकारिणः।
नृपस्यैते शरीरस्थाः सर्वदेवमयो नृपः ॥

(१ । १३ । २२)

निर्धन राम

भगवान् राम राजाके रूपमें भी सर्वदेवमय थे। पर यदि वे अपने कर्तव्यसे च्युत होते तथा धर्मसे विचलित होते, कुशासन करते, राज्यका संचालन ठीकसे न करते तो मनुके अनुसार लोकमें सपरिवार घोर पापका फल भोगते—

धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥

(७ । २८)

राजा प्रजाका सेवक होता था, स्वामी नहीं। रामने बार-बार अपनेको प्रजाका सेवक कहा है। प्राचीन कालमें राजा 'सार्वभौम' तथा 'सार्वभौम'—सम्पूर्ण भूमिका स्वामी हो सकता था, पर अधिकारी नहीं। 'पूर्वमीमांसादर्शन'की टीका 'भाट्टदीपिका'में स्पष्ट लिखा है—'सार्वभौमस्यापि न तत्राः स्वामित्वम्।' कात्यायन लिखते हैं कि अपना काम चलानेके लिये वह भूमिसे आयका छठा हिस्सा ले सकता था—

भूमेः स्वामी स्मृतो राजा नान्यद्रव्यस्य सर्वदा।
तत्फलस्य हि षड्भागं प्राप्नुयान्नान्यथा क्वचित् ॥

(कात्यायनः 'स्मृतिसारोद्धार' परि० १ । १४)

रामकी राजसभा

राजाके जो कर्तव्य निश्चित थे, उन्हींके भीतर उसको चलना पड़ता था। राजाको चाहिये कि वह धर्मशास्त्रके अनुसार, क्रोध और लोभ छोड़कर, न्यायाधीश, मन्त्री एवं ब्राह्मण—पुरोहितकी सम्मतिसे शासन करे—'शुक्रनीतिसार'में यही बात लिखी है—

धर्मशास्त्रानुसारेण क्रोधलोभविवर्जितः।
सप्राड्विवाकः सामात्यः स ब्राह्मणपुरोहितः ॥

(४ । ४ । ५१८)

राजा तो अपनी मन्त्रणा-सभाका मुख-वक्ता (अध्यक्ष) ही होता था तथा अपने सभासदोंके कार्यका परीक्षक होता था। इस सभामें सभी जातिके लोग होते थे 'शुक्रनीति'में ही लिखा है—

राज्ञा नियोजितव्यास्ते सभ्याः सर्वासु जातिषु।
....
वक्ताध्यक्षो नृपः शास्ता सभ्याः कार्याः परीक्षकाः ॥

(४ । ५ । ५४०, ५६१)

न्यायाधीश निर्णय दे देता। पर अन्तिम निर्णय राजाका होता था। 'नारदस्मृति'ने इसका वर्णन किया है। 'मृच्छकटिक' नाटकमें भी है—

आर्य चारुदत्त! निर्णये वयं प्रमाणम्।
शेषे तु राजा। (९ । ३९ के पूर्वका गद्य)

'हमने तो न्यायके अनुसार दण्ड दे दिया। शेष राजा जाने।'

राजापर बन्धन

किंतु श्रीरामने कभी धर्मकी अवहेलना नहीं की। जातिका धर्म, जनपदका धर्म, श्रेणी-धर्म, कुलधर्म और स्वधर्म—सबका वे पालन करते थे। इसीलिये मनुस्मृतिके नीचे लिखे वाक्यके वे सजीव उदाहरण थे—

जातिजानपदान्धर्माञ्छ्रेणीधर्मांश्च धर्मवित्।
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥

(८ । ४१)

रामराज्यके समयमें भी नागरिकोंकी सभा होती थी, जिसे आज हम 'म्युनिसिपल कार्पोरेशन' कहते हैं। उस समय भी मेयर होते थे, जिनके लिये 'श्रेष्ठिन' शब्द है। पाणिनिने नगरके शासकको 'नागरिक'की संज्ञा दी है। रामराज्यके समय लोक-सभाका संगठन था, जिसे न्यायने 'जानपद' कहा है। उसके अध्यक्षको 'देश' कहते थे। उस समय भी वर्ग थे, जिन्हें 'श्रेणी' कहते थे। याज्ञवल्क्यने इन्हें यही संज्ञा दी है। बादमें चलकर जानपदको 'राष्ट्र' कहा जाता था। समाके अध्यक्ष या स्पीकरको 'राष्ट्रमुख्य' कहते थे। बादमें 'स्पीकर' को 'महत्तर' कहने लगे थे—'ग्रामकोषमहत्तराः।'

स्पष्टवक्ता काकमुनि

(लेखक—पण्डित श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री, सद्विद्यालंकार)

[१]

बात उस समयकी है कि जिस समय धारा नगरीमें महाराजा भोजका राज्य था। राजसभामें पण्डितों, कवियों और गुणीजनोंका अधिकाधिक सम्मान होता था; स्वयं महाराजा भी विद्वान् एवं काव्यमर्मज्ञ थे। राजाका सुयश चारों दिशाओंमें फैला हुआ था।

किंतु मनुष्यमें अपने ही गुणगान सुननेकी आदत बहुत बुरी होती है। उससे मनुष्यका अभिमान बढ़ता है और वह अपनेको सर्वश्रेष्ठ समझने लगता है। एक दिन भोजकी राजसभामें एक चारण कविने आकर प्रशस्तिकाव्य सुनानेकी आज्ञा माँगी। आज्ञा पाकर वह गाने लगा—

> अद्रिव भंग है सूर्यसम, बल-सम नाशन हेतु।
> एक भोज है मूर्ति, दूजे रघुकुल………॥

कविराज अपना मुँह खोलकर आनन्दसे गा रहे थे, मगर काव्य अधूरा ही रह गया। अकस्मात् सभामण्डपमें उड़ता हुआ एक कौआ आ गया और उसने कविके मुँहमें विष्ठा कर दी और वहाँसे भागकर वह प्राङ्गणके एक वृक्षके ऊपर जा बैठा।

प्रशस्तिकाव्य अपूर्ण रह गया। कविराज 'थू' 'थू' करते अपने आसनपर बैठ गये। उपस्थित सभाजन मुँहपर दुपट्टे रखकर हँसने लगे। कुछ सभ्य लोग मारे शर्मके नीचा मुँह रखकर मौन बैठे रहे और महाराजा भोज क्रोधसे तिलमिला उठे। कामना पूर्ण नहीं होनेपर मनुष्यको क्रोध आ ही जाता है, वैसे ही प्रशंसा सुनते-सुनते महाराजा भोज अपनेको स्वयं राम समझने लगे थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि कोई विद्वान् या कवि 'रामकथा'के समान 'भोजकथा' लिख दे तो मेरे प्रजाजन रामकथाको छोड़कर भोजकथाका पारायण करने लगें और इसी तरह सारे भारतमें इस भोजकथाका प्रचार-प्रसार हो जाय। और मेरा यश चारों दिशाओंमें फैल जाय।

राजकी लोकैषणा भी वित्तैषणासे कहीं बढ़कर बुरी होती है। अपनी योग्यताको भूलकर मनुष्य उसके पीछे पड़ जाता है। महाराजा भोजने भी अपनी सभामें बैठनेवाले दो-एक विद्वानोंको प्रलोभन देकर अपनी यशोगाथा लिखनेकी प्रार्थना की; परंतु परनिन्दासे भी बढ़कर दोषयुक्त इस मिथ्या प्रशंसाको विद्वानोंने अस्वीकार कर दिया। आज इस कविराजने अपने प्रशस्ति-काव्यमें उन्हें राम और सूर्यकी उपमा देकर गुणगान करनेका प्रारम्भ किया ही था कि न मालूम यह कौआ कहाँसे आ पड़ा। इस रङ्गमें भङ्ग करनेवाले कौवेको जिंदा पकड़ लानेकी राजाने आज्ञा कर दी।

आज्ञानुसार चिड़ीमारोंने उस वृक्षके ऊपर एक विस्तृत जाल बिछा दिया। अब कौआ उस जालमें आ गया और उसे पिंजड़ेमें रखकर सभामें उपस्थित किया गया। राजाने कौवेका न्याय करनेके लिये अगला दिन निश्चित कर दिया।

[२]

आज सभागृह खचाखच भरा था। राजाके हुक्मसे कौवेको सभामें हाजिर किया गया। कौवेको देखकर [illegible] भोजके नेत्र क्रोधसे रक्त हो गये। उन्होंने [illegible] कहा—'मेरे मेहमानका अपमान करनेवाले [illegible] शिरच्छेद किया जाय।'

अबतक तो कौआ मौन था, राजाके [illegible] वह बोलने लगा—

'राजन्! मैं कलसे अभीतक मौन [illegible] हूँ। मैंने भी तेरी प्रशंसा तो बहुत [illegible] प्रशंसा हो रही है, वैसा तू है [illegible] अन्याय कर रहा है।'

'मैं अन्याय कर रहा हूँ?' [illegible] थी। वह बोला—'मेरे मेहमान [illegible] क्या तुमने अपराध नहीं किया?'

'इसीका उत्तर तो मैं [illegible] 'अपराधीको सजा देनेसे पूर्व [illegible] देनेवाला न्यायाधीश [illegible] है।'

'तो बोलो, [illegible] 'अपनी निर्दोषता सिद्ध [illegible] अतिथिका रखना मनो[illegible]

'तो सुनिये [illegible] मनुष्य किसी [illegible]

चार अधिकारी मन्त्रीगणको पाल उठानेकी आज्ञा देकर राजा आगे चलने लगे। पीछे-पीछे पालको उठाये हुए अधिकारी लोग आ रहे थे। शामियानेमें पहुँचकर एक उच्चासनके ऊपर उस पालको रखा गया। राजाके सम्मुख उच्चासनपर बैठे हुए काकमुनि कहने लगे—

'राजन्! अब मैं हमारे राजा रामके प्रजाजनोंकी आर्थिक, नैतिक एवं धार्मिक परिस्थितिका यथार्थ दिग्दर्शन कराऊँगा, किंतु ··········,

सभी लोगोंकी दृष्टि अब सुवर्णपिंजरमें बैठे हुए काकमुनिके ऊपर लगी हुई थी। थोड़ी देर रुककर काकमुनि बोले—'किंतु इससे पहले हमारे साथ आये हुए इन चारों मन्त्रियोंके ऊपर बराबर ध्यान रखा जाय—ये लोग बाहर न निकल सकें, ऐसा प्रबन्ध करना आवश्यक होगा।'

राजाने शामियानेके चारों ओर प्रहरियोंका पहरा लगा दिया और उन मन्त्रियोंको आज्ञा दी गयी कि वे लोग जहाँ बैठे हैं, उसी स्थितिमें वहीं बैठकर इस कहानीको सुनते रहें। अब काकमुनिने कहना शुरू किया—

[२]

''राजन्! अब ध्यान देकर सुनिये! भगवान् रामके राज्यमें घटित हुई यह घटना है। उनके प्रजाजनोंमें धर्म, नीति और चारित्र्यके साथ-साथ संतोष एवं औदार्य-जैसे सद्गुणोंका भी सम्पूर्ण आविर्भाव था। रामराज्यमें—

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
(मानस ७ । २० । १, ६)

''अयोध्याके नगरसेठ भी वैसे ही उदार और धर्मप्रेमी थे। किंतु भाग्यवशात् उन्हें कोई संतान नहीं हुई और इसलिये वे पति-पत्नी बड़े उदास रहते थे। अपना भविष्य जाननेके लिये नगरसेठने राज्यके सारे ज्योतिषियोंकी एक सभा बुलवायी। नगरसेठके प्रश्नपर चर्चा चलने लगी। अन्तमें ज्योतिषियोंने सर्वसम्मतिसे निर्णय देते हुए कहा—

'सेठजी! आप दोनों पति-पत्नी पूर्वजन्ममें भी श्रीमंत पति-पत्नी थे। आपके एक सुन्दर पुत्र भी हुआ। अपनी समृद्धिके अनुसार उस बालकका लालन-पालन होने लगा। किंतु उस पुत्रको उच्च संस्कार देनेमें न माताने ध्यान दिया और न पिताने ही। वे तो अपने ऐश्वर्य-भोगमें मस्त थे। पुत्र-पुत्रियोंके स्वच्छन्द और दुराचारी होनेमें माता-पिताका दोष ही कारणरूप है। शास्त्र भी यही कहता है—

दुःशीलं मातृदोषेण पितृदोषेण मूर्खता।
स्वैरत्वं सङ्गदोषेण दारदोषैर्दरिद्रता॥

अर्थात् मातृपक्षके दोषसे संतानोंमें दुष्ट स्वभाव, पितृपक्षके दोषसे मूर्खता, दुःसङ्गसे स्वच्छन्दता और पत्नीके दोषोंसे दरिद्रता मिलती है।

'अपने संतानोंको अनेक प्रकारके दोषोंसे माता-पिता बचा सकते हैं, अन्यथा माता-पिताको भी इनके पापोंका सहभागी बनना पड़ता है और पूर्वजन्मके इसी दोषके कारण इस जन्ममें आप संतानहीन हैं।'

''ज्योतिषियोंका निर्णय सुनकर नगरसेठने प्रार्थना की—'अब किसी भी प्रायश्चित्तसे उन दोषोंका निवारण हो सकता हो तो कृपया बतलाइये।'

'प्रायश्चित्त तो अवश्य हो सकता है।' ज्योतिषियोंने कहा। 'इन दोषोंका निवारण होता है—लक्ष्मीनारायणके पूजनसे, और हमारे महाराजा रामचन्द्र और भगवती सीता साक्षात् लक्ष्मीनारायणरूपसे यहाँपर विराज रहे हैं। पुत्र होनेके बाद उस युगल स्वरूपको अपने घरमें पधराकर उनके पूजनका शुभ व्रत रखो। इस व्रतप्रतिज्ञासे तुम्हारे यहाँ अवश्य पुत्र होगा।'

''ज्योतिषियोंका यथाविधि सम्मान करके सेठ-सेठानीने व्रत रखनेका संकल्प किया और एक वर्षमें यह संकल्प सिद्ध हुआ। सेठके यहाँ गुलाबके फूल-सा सुन्दर पुत्र हुआ। जब पुत्र दो महीनेका हुआ, तब नगरपतिने भगवान् रामचन्द्रजीके पास आकर अपने व्रतका और व्रतके द्वारा हुए पुत्रजन्मका वर्णन किया। युगल-सरकारने नगरपतिके घरपर पधारनेकी अनुमति दे दी।

''दूसरे दिन शुभ मुहूर्तमें नगरसेठके मकानमें भगवान् राम और भगवती सीताजीका शुभागमन हुआ। सुवर्णमय झूलेके ऊपर श्रीसीतारामकी जोड़ी विराजमान हुई। पत्नी और पुत्रको साथमें रखकर सेठने साक्षात् श्रीलक्ष्मीनारायणका पूजन किया। सेठानीने अपने बालकको श्रीसीतामैयाकी गोदमें रख दिया और स्वयं युगल सरकारने पुत्रको आशीर्वाद दिया।

'भगवान्‌की विदाईके समय नगरसेठने बहुमूल्य रत्न एवं मुक्ताफलोंसे भरा हुआ एक सुवर्णथाल भीलरूपोंमें समर्पित किया । प्रसन्न होकर भगवान् राम बोले—'इतने बहुमूल्य रत्नोंको हम राजभंडारमें कहाँ रख सकेंगे ! राजकोष तो परिपूर्ण भरा हुआ है । हमने तुम्हारी इस भेंटको स्वीकार किया, अब इन्हें अयोध्याके गरीबोंको प्रसादके रूपमें बाँट दीजिये ।'—यों कहकर मुस्कराकर अपने राजमहलमें पधार गये ।

"अब सुवर्णथालको लेकर नगरसेठ स्वयं अयोध्याके गरीबोंको बाँटने निकल पड़े, किंतु रत्नोंको लेनेवाला एक भी दरिद्र मनुष्य अयोध्यामें न मिल सका । दूसरे दिन सारे राज्यमें भी प्रयास किया, किंतु रामराज्यमें भला गरीब और गरीबीका चिह्न भी कैसे मिल सकता था । रामराज्यमें सब कोई सुखी और संतुष्ट थे । दूसरोंका धन हड़पकर गरीबी मिटानेका यहाँ कोई प्रश्न ही नहीं था ।

'तीन-चार दिनके बाद नगरसेठने राजसभामें जाकर निवेदन किया कि 'सारे राज्यमें एक भी दरिद्र मनुष्य नहीं है, अब इन रत्नोंका क्या किया जाय ?'

—'हमारे राज्यमें एक भी दरिद्र मनुष्य नहीं है !' प्रसन्न होकर भगवान् बोले । 'यह तो बड़े आनन्द और गौरवकी बात है । सेठजी ! आपका संकल्प तो सफल हुआ ही है, आपकी श्रद्धा-भक्तिका पूर्ण फल आपको मिल गया और मुझे इसी बहाने परीक्षण करनेका मौका मिला कि मेरी सम्पूर्ण प्रजा सुखी और संतुष्ट है । प्रजाका असंतोष ही चोरी, लूट, छल-कपट और रिश्वतको जन्म देता है । प्रजाके इन दुर्गुणोंमें धनकी अपेक्षा असंतोष ही प्रमुख कारण होता है ।'

'अब रही उस रत्नथालकी बात !' भगवान् थोड़ी देर रुककर फिर बोले । 'उसे अयोध्याके प्रवेशद्वारके चौकमें—जहाँ विशाल चबूतरा और पीपलका पेड़ लगा है, वहींपर रख दो । जिस किसीको आवश्यकता होगी, ले जायगा । सम्भव है, धर्मके कारण किसीने न भी लिया हो तो अब वह निःसंकोच ले सकेगा ।'

'सेठने भगवान् रामकी आज्ञाका पालन किया, मूल्यवान् रत्नोंसे भरा हुआ वह थाल चबूतरेपर रख दिया । दिनके बाद महीने और महीनोंके बाद वर्ष बीतने लगे किंतु वह भरा हुआ थाल वहीं-का-वहीं पूर्ववत् पड़ा था ।

'राजा भोज !' काकमुनि बोले । 'यह है रामराज्यकी एक छोटी-सी झलक ! प्रजाजनोंके त्याग, संतोष, धर्म और नीतिका इससे बढ़कर नहीं और उदाहरण मिल सकता है । मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारे दिलमें राम बननेकी बड़ी आकाङ्क्षा है; मगर तुम राम नहीं बन सकते । क्योंकि श्रीरामने राजा बननेसे पहले स्वयं तपस्वी बनकर वनमें विचरकर धर्मका परित्राण और अधर्मका विनाश किया था; राम स्वयं राजा बननेसे पूर्व प्रजाके हृदयमें बस चुके थे । तुम्हें रामका गुणपूजक भक्त बनना चाहिये ।'

—काकमुनिके कथनसे महाराजा भोज प्रसन्न हो गये । वे बोले—'तो क्या सम्मुखमें पड़ा हुआ वह ऐतिहासिक सुवर्ण थाली वही है, जिसे नगरसेठने चबूतरेपर रखा था ?'

'इसमें कोई शङ्का नहीं ।' काकमुनि बोले । 'किंतु समय यह इतिहास है, उस समय भगवान् रामकी राजधानी यहीं थी । अब तुम्हें विचार करना चाहिये कि क्या तुम्हारी प्रजा धर्म, नीति, सदाचार, सुख और संतोषसे पूर्ण है । तुम्हारे निकटवर्ती कर्मचारी और मन्त्रीगण भी निष्पक्ष, न्यायप्रिय एवं सत्यप्रिय हैं ।'

'जी हाँ, काकमुनि !' राजा भोजके स्वरमें किंचित् गर्वका आवेश आ गया । वे बोले—'मेरी प्रजा और मेरे कर्मचारी लोग रामराज्यकी प्रजा और कर्मचारियोंसे किसी तरह कम नहीं हैं । मेरे मन्त्रीगण मेरे सम्पूर्ण विश्वासपात्र हैं ।'

'यह तुम्हारा मिथ्या आत्मसंतोष है ।' काकमुनि बोले । 'ऐसा गर्व करके तुम अपनी आत्मवञ्चना कर रहे हो । राजन् ! तुम्हारे दाँ-हजूरीने और दान-दक्षिणाके लोभी कवियोंने तुम्हें मिथ्या उपमाएँ देकर तुम्हारी आँखें बंद कर दी हैं । तुम्हारे कान सत्य सुननेके नहीं, प्रशंसाको सुननेके आदी बन गये हैं । तुम्हारा हृदय तुम्हारे जी-हजूर-अधिकारियोंद्वारा घेर लिया गया है । तुम्हारी निर्णयात्मक शक्ति नष्टप्राय हो चुकी है, और…'

'खबरदार !'—बीचमें रोककर महाराजा भोज क्रोधावेशमें आकर बोल उठे । 'दुष्ट कौवे ! तू मेरी निन्दा कर रहा है । मेरे अन्नदाता और इन अभिमानी लोगोंके समक्ष तू मेरा

अपमान कर रहा है। अब मेरे क्रोधको अधिक दबाना ठीक नहीं, वरना……'

—'बस करो……' कहते-कहते काकमुनि उस बंद सुवर्णपिंजरेमेंसे बाहर निकल आये और उन्होंने राजाके सम्मुख एक उच्चासनपर बैठकर कहना शुरू किया—'राजन्! आगे बोलनेसे पहले तेरे लिये मेरे अन्तिम वाक्योंको सुन लेना उचित होगा। मुझे कुछ भी दण्ड देना तेरी सामर्थ्यके बाहरकी बात है। जिस मनुष्यमें अपने सच्चे दुर्गुणोंको सुनने-समझनेकी क्षमता नहीं है, उसे अपनी प्रशस्तियाँ सुननेका कोई अधिकार नहीं है। अब तो क्या, तू नहीं रह गया, तेरा अस्तित्व तेरे स्वार्थी और रिश्वतखोर अधिकारियोंकी मुट्ठीमें बँधा हुआ है। अतः सर्वप्रथम तुझे राम बननेकी पूर्वाभिलाषाको सार्थक करना होगा; क्योंकि मैं तेरे दोषोंको देखने नहीं आया, किंतु उनको दूर करके तुझे सच्चा रामभक्त बनाने आया हूँ। तेरे अन्तरमें औदार्य, दान, शील, धैर्य आदि जो भी सद्गुण हैं, वे भी भगवान् रामके दिये हुए हैं; किंतु तेरे निकटवर्ती लोगोंने उन सद्गुणोंका सदुपयोग करनेका अवसर ही नहीं आने दिया।

'राजन्! तेरे प्रजाजन सुखी हैं या दुःखी, इसकी जाँच तो तुझे स्वयं करनी होगी। तेरे माने हुए ये चारों मन्त्री तेरे विश्वासपात्र हैं या विश्वासघातक, इसकी तू परीक्षा अभी कर ले। अपने कथनकी प्रामाणिकता तो इसी समय मैं स्वयं दे रहा हूँ। ये तेरे चारों विश्वासपात्र अधिकारी, जो तेरे सम्मुख हाजिर हैं, उनके कमरोंकी तलाशी लेकर तू ही देख ले कि इन्होंने अपने आप चलते-चलते ही इस महलमेंसे एक-एक बहुमूल्य मुक्ताहारकी चोरी की है। राजन्! अब कान खोलकर सुन ले, तेरे अधिकारी लोगोंकी अनीति और तेरे प्रजाजनोंकी दीन परिस्थितिका जवाबदार तू ही है; क्योंकि 'राजा कालस्य कारणम्—राजा ही कालका कारण होता है।' यहाँ 'राजा' शब्द किसी व्यक्तिविशेषके लिये नहीं, किंतु जिसके पास सत्ताकी बागडोर रहती है, वही 'राजा' है। तेरे राज्यको रामराज्य, और तुझको राम कहनेवालोंके ऊपर तुझे प्रेम होता है और मेरी तरह कटु सत्य कहनेवालोंके ऊपर तुझे क्रोध आता है—इसीसे निश्चित होता है कि न तेरेमें राम बननेकी क्षमता है और न तेरा राज्य रामराज्य बन सकता है। धोबीके कटुवचन-द्वारा श्रीरामने जो कर दिखाया था, वह तो तुझे मालूम ही होगा। कहना सरल है, किंतु करना अत्यन्त मुश्किल होता है,' कहकर काकमुनिने अपना कथन समाप्त किया।

अब राजाने उन मन्त्रियोंके ऊपर दृष्टिपात किया तो वे थरथर काँप रहे थे; उन्होंने अपने कमरेमें छिपाया हुआ एक-एक रत्न निकालकर राजाके चरणोंमें रख दिया और अपनी इस धृष्टताके लिये बारंबार क्षमायाचना की।

अब महाराजा भोजकी आन्तरिक परिस्थिति बदल रही थी, उनका गर्व भी पिघल रहा था। अपने आसनसे उठकर उसने काकमुनिको प्रणाम किया और वह गद्गद वाणीसे प्रार्थना करने लगा—

'क्षमा कीजिये, मुनिराज! मैंने आपके समक्ष बहुत अविनय किया। किंतु आपके इस उपदेशने मेरी आँखें खोल दीं। अब यह आज्ञा दीजिये कि इस सुवर्णथालकी क्या व्यवस्था की जाय।'

'उसे भूगर्भमें ही पूर्ववत् रखवा दो।' काकमुनि बोले। 'भगवान् रामकी दिव्य सम्पत्तिको अपने पास रखनेका किसीको अधिकार नहीं है और मैं तुझसे अनुरोध करता हूँ कि वर्तमान अयोध्यामें श्रीसरयूके तटपर निवास करनेवाले किसी संत-महात्माके मुखसे एक बार श्रीरामचरितमानस सुनकर ही अपने देशको वापस लौट जाना और सच्चे धर्म, न्याय एवं नीतिसे अपनी प्रजाका पालन करना। अब मैं भी अपने कर्तव्यपालनका संतोष लेकर यहाँसे विदा होता हूँ।'

'श्रीराम जय राम जय जय राम' का उच्चारण करते हुए स्पष्टवक्ता काकमुनि वहाँसे विदा हो गये।

———

सिंहासनासीन श्रीसीताराम

है, वही गोस्वामीजीको भी प्रिय थी। रामने अपने अनवरत दानसे प्रजाको उसी प्रकार सुखी और संतुष्ट रखा, जैसे सूर्य प्रजाके रूपमें जल खींचकर वर्षासे सृष्टिको आह्लादित कर देता है।

राम 'श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर॥' (वही, ७। २३। १) थे। यह राजाका कल्याण-विधायक रूप है। इसमें राजाकी निरंकुशताका अंकुश है, उसकी स्वेच्छाचारिताका निरूपण है तथा उसकी अमर्यादित इच्छाओंपर प्रतिबन्ध है। रामने राज्य प्रबन्धकी कोई निजी व्यवस्था नहीं स्थापित की थी। वे 'श्रुतिपथ पालक' थे। ऋषि-मुनियोंने जो विधान बनाया था, वे उसीको कार्यान्वित करते थे। वे धर्मकी धुरी धारण करनेवाले थे। धर्मका जो सर्व-मान्य रूप था, उसका रक्षण करना और उसे व्यवहारकी वस्तु बनाना उन्होंने अपने जीवनका ध्येय बनाया था। भरतसे इसीलिये कविने कहलाया था कि 'भाइहि भरमसील मरनाहू।' (वही, २। १७८। ½)। तुलसीके राजा राम शासक कम हैं, लोकनायक अधिक। वे विधान नहीं बनाते, वे आदर्श आचरण प्रस्तुत करते हैं। जब शासक और विधायक एक हो जाते हैं, तब राज्य-व्यवस्थामें उच्छृङ्खलताका मार्ग खुल जाता है। शासक अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं तथा स्वार्थोंको विधानरूपमें लादता जाता है और विधायक उनकी पूर्तिके लिये विधानका स्वरूप परिवर्तित करता जाता है। इस प्रक्रियाके फलस्वरूप सुधार विभ्रमका समानार्थी-सा बन जाता है। आदर्श शासन-व्यवस्था तभी हो सकती है, जब शासक और विधायकको अलग-अलग रखा जाय।

राजाका वैयक्तिक आदर्श आचरण जब प्रजाके प्रति समुचित व्यवहारसे संयुक्त हो जाता है, तब एक ऐसी स्पृहणीय जीवन-पद्धतिके दर्शन होते हैं, जिसमें शासक और शासितकी भावनामें अविश्वासकी गन्धतक नहीं होती। यही कारण है कि प्रजाको पालकरूप विशेष प्रिय होता है। राम भरतसे कहते हैं—'राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम। गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम॥' ... 'पालब प्रजा सब समभायेही' (वही, २। ३१५। ½)

> मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
> पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥
>
> (वही, २। ३१५)

राजा या शासकका यह प्रमुख कर्तव्य है कि प्रजाके प्रत्येक वर्गका, उसकी स्थिति, क्षमता, संस्कार तथा योग्यता आदिके अनुरूप पालन करे और उसे पुष्ट करे। प्रजा-पालन कर्तव्य है और विवेक मार्गदर्शक। असमानता विवेककी अपेक्षा करती है। सबको एक ही लाठीसे हाँकना मूर्खता है, साथ ही अराजकताको आमन्त्रण देना भी है। विवेकपूर्ण राजा कुशल वैद्यके समान प्रजाके विभिन्न वर्गों तथा व्यक्तियोंके आवश्यकतारूपी रोगका समुचित निदान करके अनुकूल व्यवस्था करता है। यही उत्तम राजनीति है और इसका अनुसरण ही उचित राजधर्म है। रामने वन-गमनके समय इसीलिये सुमन्त्रसे कहा था—'कहब सँदेसु भरत के आएँ। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ॥' (वही, २। १५१। १½) गोस्वामीजीको इस कुव्यवस्थापर बड़ा क्षोभ होता था कि 'साम न दाम न भेद कलि केवल दंड कराल।' ही राजनीतिका एकमात्र अङ्ग रह गया है। इन नीतियोंके अभावका अर्थ यही है कि शासक अनाचारी तथा अविचारी हो गया है। जब रामने अङ्गदसे पूछा कि तुमने रावणके जो चार मुकुट यहाँ फेंक दिये थे, वे तुम्हें कैसे मिले', तब अङ्गदने कहा—

> सुनु सर्बग्य प्रनत सुखकारी। मुकुट न होहिं भूप गुन चारी॥
> साम दाम अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह बेदा॥
> नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जियँ जानि नाथ पहिं आए॥
>
> (वही, ६। ३०। ४-५)

जो राजा अथवा शासक धर्मविमुख हो जाता है, उसमें इन चारों नीतियोंके प्रयोगकी क्षमता नहीं रह जाती। जो राजा नीतिमान् नहीं होता, जिसमें विभिन्न परिस्थितियों तथा व्यक्तियोंके साथ यथोचित व्यवहार करनेकी कुशलता नहीं होती, वह निश्चय ही शोचनीय होता है—

> 'सोचिअ नृपति जो नीति न जाना।'
>
> (वही, २। १७२। २)

नीतिनिपुण राजाके लिये गोस्वामीजीके हृदयमें अपार आदरका भाव था—

> कंद न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥
>
> (वही, ४। १५। १½)

राजाकी नीतिमत्ताकी कसौटी है, प्रजाके प्रति उसका व्यवहार। यदि राजा या शासक अपनी पदगत विशिष्टताका झीना आवरण अलग कर सके और अपने मानवीय व्यक्तित्वको जन-साधारणके धरातलपर ला सके तो उसकी श्रेष्ठता वन्दनीय हो जाती है, उसकी गरिमा स्पृहणीय बन जाती है और उसकी शक्ति वाञ्छनीय हो जाती है। रामका जीवन-व्यवहार वैयक्तिक

स्तरपर था, न कि राजकीय स्तरपर। राम पुरके बाहर जाते हैं, वहाँ 'शीतल अमराई' थी और उनके बैठनेके लिये—

'भरत दीन्ह निज बसन डसाई।'

(वही, ७ । ४९ । १)

सामान्य ग्रामीण वातावरण उत्पन्न हो जाता है, जिसमें मर्यादा है किंतु अपमानता नहीं, समता है किंतु अनधिकारिता नहीं, एकरूपता है किंतु अविचारिता नहीं। राम अपने पुरवासियोंके समक्ष अपना आशय प्रकट करते हैं, किंतु उसके पूर्व उनसे कहते हैं—

नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥

(वही, ७ । ४९ । २-३)

यहाँ राजा अपनी प्रजासे नहीं बोल रहा है, मनुष्य मनुष्यसे बोल रहा है। सिंहासन समतल भूमिमें परिवर्तित हो गया है, सत्ता समानाधिकारमें परिणत हो गयी है और विशेषता सामान्यकी समकक्षतामें संतोषका अनुभव कर रही है। जहाँ शासन कम होता है, वहाँ अनुशासन अधिक रहता है; जहाँ आज्ञा कम दी जाती है, वहाँ उसका पालन अधिक होता है। जो भावना दूसरोंके व्यक्तित्वका आदर करती है, वही उनकी पूजाकी अधिकारिणी होती है। गोस्वामीजीने 'नृपत्व' को ईश-अंश भले माना है सही, किंतु इसके साथ ही उसका 'साधु सुजान सुसील' भी होना अनिवार्य माना है। निरंकुशता तथा स्वेच्छाचारिता नृपत्वके व्यवहारक्षेत्रमें अपरिचित एवं अमान्य बातें हैं। एक शासकको अनियन्त्रित बनाती है, दूसरी अमर्यादित। इनकी उपस्थिति ही राजमद है, जिसका परिणाम शासकका कलङ्कित होना है—

सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥

(वही, २ । २२८ । ४)

इस राजमदका उपचार है—परिष्कृत संस्कार, संतुलित शिक्षा एवं साधु-समागम। भरतके आगमनका समाचार सुनकर लक्ष्मणकी क्षोभोक्तिपर राम उनसे चित्रकूटमें कहते हैं—

कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई॥
जो अचवँत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई॥

(वही, २ । २३० । १-२½)

साधु-समागमका सत्संगमयी प्रभाव ही राजमदसे उत्पन्न होनेवाले अवगुणोंका शमन करता है।

रामने अपने आचार-व्यवहारसे उस मर्यादाकी स्थापना की, जिसमें प्रजाकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता तथा निर्भयताकी प्रतिश्रुति होती है। प्रजाकी आलोचना उनको क्षुब्ध नहीं करती थी; वे उस आलोचनाका कारण समाप्त करनेका प्रयत्न करते थे। दूसरेकी सीमापर ध्यान लगानेकी अपेक्षा अपने आचरणका सुधार शासन-तन्त्रके प्रत्येक अधिकारीका प्राथमिक कर्तव्य है। शासकको अपने दोष-मार्जनके लिये सदैव तत्पर रहना चाहिये, न कि दोषसूचक उँगलीको दंडित करनेका प्रयत्न करना। शासकको भी 'निन्दक नियरे' रखना चाहिये। इसकी छिद्रान्वेषी आँखें पथ-भ्रष्ट होनेसे बचाती रहती तथा सुधारका द्वार खुला रखती हैं। रामने इसीलिये—

सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए॥

(वही, १ । १६ । ४)

—ये कि प्रजाकी सीमा न रही ही साथ और वह राजाके कार्योंपर अपना मतामत व्यक्त करनेमें हिचक न करे। राजाके इस कार्यमें व्यक्तित्वका कर्तव्यमें विलय है, परमशक्ति और सामर्थ्यका नीति और आदर्शके समक्ष आत्म-समर्पण है।

रामके समान आदर्श-समन्वित तथा आचारसम्पन्न शासक जब राज्य-सिंहासनपर विराजमान हो जाता है, तब संसारके इतिहासमें एक अद्भुत अध्याय आरम्भ हो जाता है। शासक अपने व्यक्तित्वसे वातावरणको ओतप्रोत कर देता है, उसमें अपनी सत्यमत्ता पूर्णतया अन्तर्भावित कर देता है और तब यह वातावरण जनसाधारणको आचार-व्यवहारका उचित निर्देशन देता है, उनकी भावनाओंको परिष्कार प्रदान करता है और उनके जीवनको आदर्श जीवनके साँचेमें ढाल देता है। इस वातावरणमें जीवन बनाया नहीं जाता, वह बन जाता है; मार्ग दिखाया नहीं जाता, वह देख लिया जाता है। जीवनके आदर्श स्वतः उभरते हैं।

जब 'राम राज बैठे', तब 'त्रैलोका हरषित भए' और उनके सारे शोक नष्ट हो गये। यह व्यक्तित्व-परिमार्जन प्रभाव है। एक सत्यवान् व्यक्ति सारे समाजको प्रेरित तथा आकृष्ट करनेकी क्षमता रखता है। हाँ, उसे होना चाहिये पूर्णतः सत्य-सम्पन्न। रामका प्रताप देखिये कि उसने सारी विषमता नष्ट कर दी। 'बयरु न कर काहू सन कोई।' (वही, ७ । [illegible]) विषमतामें ईर्ष्या और विद्रोहकी भावना होती है और व्यक्तियोंमें शोषण तथा अपकार। [illegible] दोनों पक्षोंको समाप्त

समाधान नहीं निकलता, अर्थ-वितरणकी संतोषजनक प्रणाली नहीं मिलती, तबतक समाजमें द्वेषकी आग सुलगती रहती है और किसी भी समय दावाग्निका रूप धारण करनेकी सम्भावना रखती है। भौतिक धरातलपर वर्ग-वैषम्य मिटानेका प्रयत्न स्तुत्य और वाञ्छनीय तो है ही, साथ ही सामाजिक अशान्तिको दूर करनेके लिये आवश्यक भी है; किंतु इतनेसे ही समस्याकी आत्यन्तिक निवृत्ति सम्भव नहीं हो सकती। भौतिकतामें संघर्ष किसी-न-किसी रूपमें बना ही रहता है। जबतक व्यक्ति-की विचार-दृष्टिको नैतिकताका अवलम्ब नहीं मिलता, उसमें समाजके उन्नायक तत्त्वोंके दर्शन करनेकी क्षमता नहीं आती। रामके प्रतापसे यही बात हुई थी।

विषमताका अभाव सामाजिक सौहार्दकी सृष्टि करता है। समाजमें शान्ति और सुमतिका निवास होता है और पारस्परिक व्यवहारोंमें सरलता और सहृदयताकी मिठास घुली रहती है। एक ऐसे वातावरणका निर्माण हो जाता है, जिसमें मानव-मनकी कुटिलता, मलिनता तथा शठता अपने-आप नष्ट हो जाती है, स्वभावमें ऋजुता एवं सरलता आ जाती है, वृत्तियाँ शान्त और सुस्थिर हो जाती हैं, इच्छाएँ स्वस्थ तथा निर्विकार हो चलती हैं। मनुष्य स्वयमेव जीवनके आदर्श आचरणकी ओर उन्मुख हो जाता है। रामराज्यमें इसीलिये—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥

(वही, ७। २०)

धर्ममय जीवन सभी सांसारिक समस्याओंका स्वाभाविक समाधान है। इसमें स्वाभाविक सरलता होती है, जो सांसारिक उलझनोंको स्थान नहीं देती; एक निःस्पृहता होती है, जो ममताके बन्धनकी जटिलता गले नहीं पड़ती और एक उदारता होती है, जो अपनत्वमें विश्वत्वका अन्तर्भाव कर देती है। इस जीवन-प्रणालीमें उन भौतिक तत्त्वोंका अस्तित्व ही मिट जाता है, जो दुःख तथा शोकके कारण बनते हैं। अतः यदि राम-राज्यमें 'दैहिक दैविक भौतिक तापा' (वही, ७। २०। १) किसीको व्याप्त नहीं करते थे तो आश्चर्यकी बात नहीं है। इन कार्योंकी अनुपस्थितिमें मानव वस्तुतः अपनी सिद्धताकी सीमापर पहुँच गया था; क्योंकि उस समय—

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥

(वही, ७। २०। १)

इस शारीरिक सम्पन्नता और पूर्णताका स्रोत था मनुष्योंका चरित्र, जिसे स्वयं राजा रामके चरित्रने रूप दिया था। जब राजा स्वयं परोपकारी और उदार है, तब प्रजामें संकीर्ण स्वार्थ और कृपणता कैसे उत्पन्न हो सकती थी? जब राजा स्वयं एकपत्नीव्रतके व्रतका पालक है, तब प्रजा अनेकपत्नीत्वमें गार्हस्थ्य-सुखका आधिक्य कैसे सोच सकती है? जीवन-प्रणालीकी दृष्टिसे राजा तथा प्रजामें बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव था। उस समय इसीलिये—

सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥
एकनारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

(वही, ७। २१। ४)

जब मनुष्य पूर्णताकी इस सीमापर पहुँच जाता है, तब सामाजिक जीवन अतीव आह्लादक एवं सुखद रूप धारण कर लेता है। विधानकी बाध्यता अनावश्यक हो जाती है, विधान जीवनका स्वाभाविक एवं नियमित अङ्ग बन जाता है। वैयक्तिक संतुष्टि सम्बन्धोंमें स्निग्धता उत्पन्न करती है और सामाजिक समृद्धि वैयक्तिक सुखकी सृष्टि करती है। न कहीं संघर्ष होता है न तनाव। क्लेशके पैर उखड़ जाते हैं, तृष्णाकी साँस घुट जाती है तथा ईर्ष्याकी आँखें मुँद जाती हैं; शान्तिका साम्राज्य छा जाता है और चैनकी बंशी बजने लगती है। राज्यका दण्डात्मक रूप बदल जाता है और उसकी शक्ति कल्याणकारी प्रवृत्तियोंकी ओर मुड़ जाती है। रामके आदर्श शासनका फल यह हुआ कि उस समय—

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज॥

(वही, ७। २२)

—की स्पृहणीय स्थिति उपस्थित हो गयी थी। अपराध अभावके कारण होते हैं, अथवा स्वभावके कारण। दोनों ही अस्तित्वहीन हो गये थे। समाज-समृद्धि सुनिश्चित थी और स्वभाव संस्कृत हो गया था। अतः दण्डका आधार ही नहीं रह गया था। अभेदमें भेदकी गति हो ही नहीं सकती और शत्रुताके अभावमें किसीको जीतनेका प्रश्न ही नहीं उठता।

मनुष्य जब अपनी शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकासकी पूर्णतापर पहुँच जाता है, तब वह अपने चारों ओर प्रसरित संसारके रूप-परिवर्तनका सफल साधन सिद्ध होता है। वह भौतिक जगत्को अपनी आनन्द एवं उल्लासकी वृत्तिसे ओतप्रोत कर देता है। वह अपने जीवनके स्पन्दन-शील पुलकसे जड़ सृष्टिको अनुप्राणित करता है तथा वातावरणको अपने अनुशासित तथा संयमित जीवनसे इतनी प्रबलतासे अभिभूत कर देता है कि विद्रोही पस्त हो जाते हैं, उद्दण्ड दब जाते हैं और उच्छृङ्खल नियन्त्रित हो जाते हैं। प्रकृतिके तत्त्व उसकी आज्ञाका पालन करते हैं। रामराज्यमें इसी अवस्थाका बोलबाला था। मानव-जगत्की सुख, शान्ति और व्यवस्था प्रकृतिके क्षेत्रपर भी अपनी स्निग्ध छाया डालकर अपने प्रभावकी सार्वभौमिकता सिद्ध कर रही थी। प्रकृति मानवकी सहचरी बन गयी थी। फलस्वरूप—

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥
(वही, ७। २२। ६; २३; ७। २३)

मानव-उल्लास संक्रामक बन गया था। उससे प्रकृतिमें प्रफुल्लताका संचार हुआ। वह भी पल्लवित और पुष्पित हो, थिरक उठी। मानव-समाजमें "बयरु न कर काहू सन कोई" की अभिनन्दनीय स्थिति थी तो प्रकृतिमें भी "एक सँग गज पंचानन" रहते थे और निर्वैरताकी व्यापक घोषणा करते थे। मानव-समृद्धिने प्रकृतिके अभूत माधुर्यको प्रोत्साहित किया और मानवीय अनुशासन तथा व्यवस्थाने प्राणि-जगत्पर अपनी छाप जमायी। मनुष्यकी इच्छाएँ सूर्य-चन्द्रकी शक्तियोंका नियमन करने लगीं; वे घन-वनकी प्रवृत्तियोंका संचालन करने लगीं। मानव सार्वभौम बन गया। मृत्युलोकमें रहते हुए भी अपनी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका विकास करके वह प्राकृत होकर विभूतियोंसे सम्पन्न हो गया, जिस लोकके हम किसी भी वृक्षसे इच्छा करने या आदेशमात्र देकर आम या कोई भी मनचाहा फल, फूल या यों भी इच्छित वस्तु प्राप्त कर सकते हैं। मानव वस्तुतः प्रकृतिका स्वामी बन गया था।

यही गोस्वामी तुलसीदासका राम-राज्य है। इसे मनुष्य अपनी मानवताका चरम विकास करके यहीं या चेतन सृष्टिका नियन्ता बनकर ही पाता है। इसे केवल स्वर्ग अथवा कविका कल्पना-विलास कहकर नहीं टाला जा सकता। इसकी बुद्धिमत्ता कविकी विचारधारा तथा जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोणके सम्यक् ज्ञानकी अपेक्षा रखती है। गोस्वामीजीका यथार्थ है—मनुष्यत्व और आदर्श है—आत्मोपलब्धि, भगवत्प्राप्ति अथवा उनके शब्दोंमें रामभक्तिकी आत्यन्तिक उपलब्धि; क्योंकि उनके मतानुसार—

सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देहीं॥
(वही, ६। ११२। १६)

मानव-जीवनरूपी वह यथार्थ हमें मोक्षरूपी आदर्श प्राप्त करानेके लिये सोपान-मात्र है। ज्यों-ज्यों हम आदर्शकी ओर बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों यथार्थसे सम्बन्ध-सूत्र ढीला पड़ता जाता है। इस उद्दिष्ट आदर्शके पथपर निरन्तर प्रगति करते रहनेसे अन्तमें वह स्थिति अपने-आप आ जाती है, जब यथार्थ—भौतिक यथार्थ—अपने-आप छूट जाता है और तब जीव शिव हो जाता है। रामराज्यमें मानव विकास इस सीमापर पहुँच गया था, इसीलिये—

'राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥'
(वही, ७। २०। ९)

—बन गये थे। जब मनुष्य इस अवस्थापर पहुँच जाता है, तब उसकी विकासक्रिया परम विकास हो जाता है और वह जड़-चेतन सृष्टिपर अपनी इच्छाका साम्राज्य स्थापित कर लेता है। यही रामराज्यकी पूर्णता है, यही उसका चरम विकास है।

श्रीरामचन्द्रजीका आदर्श मन्त्रिमण्डल

(लेखक—श्रीकाशीनाथशंकरजी पंचारिया, एम० ए०)

हमारे देशमें प्राचीनकालसे अद्यावधि 'मन्त्रि-परिषद्'का राज्य-व्यवस्थामें प्रयोग प्रचलित है तथा मन्त्रिमण्डलकी प्रथा मूलरूपसे भारतीय है। अतः कतिपय पाश्चात्य विचारकोंका यह कथन भ्रमयुक्त प्रतीत होता है कि 'ब्रिटिश कैबिनेट' ही मन्त्रिपरिषद्की जननी है। भारतीय राजदर्शनमें मन्त्रिपरिषद्का यत्र-तत्र उल्लेख इस बातका प्रतीक है कि 'ब्रिटिश कैबिनेट'के पूर्व भी भारतवर्षमें मन्त्रिपरिषद्का गठन होता रहा है। श्रीरामचन्द्रजीका आदर्श मन्त्रिमण्डल इस बातकी सत्यताका ज्वलन्त प्रमाण है।

आदर्श राज्यके प्रणेता श्रीरामका मत है कि राज्यकी विजयका मूलबिन्दु 'मन्त्र-शक्ति' है। महर्षि वाल्मीकिके शब्दोंमें—

'मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव।'
(वा० रा० २। १००। १६)

'श्रेष्ठ मन्त्रणा ही राजाओंकी विजयका मूल कारण है।'

श्रीरामके उपरिवर्णित आशयका समर्थन हमें समस्त भारतीय राजनीतिज्ञोंके चिन्तनमें प्राप्त होता है। भगवान् मनुका कथन है कि 'सरलतासे होनेवाला कार्य भी एक पुरुषसे होना कठिन है, फिर राज्य-संचालन-जैसे महान् उत्तरदायित्वका निर्वाह अकेले राजासे होना क्या कठिन न होगा?' (मनु० ७। ५५)

महर्षि शुक्राचार्यके मतसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है। उनके अनुसार 'जो राज्यकी अभिवृद्धि चाहनेवाले नरेशके लिये उचित है कि वह व्यवस्थाके लिये श्रेष्ठ मन्त्रियोंको चुन ले, अन्यथा राज्यका पतन निश्चित ही है।' (शुक्रनीतिसार २। ८१)

अर्थशास्त्रके प्रवक्ता आचार्य चाणक्यका अभिमत है कि 'जिस प्रकार एक चक्रसे रथ नहीं चल सकता, उसी प्रकार बिना मन्त्रियोंकी सहायताके अकेले राजासे राज्य नहीं चल सकता।' (अर्थ० १। १)

राजनीतिके प्रकाण्ड पण्डित रावणने भी इस तथ्यको स्वीकार करते हुए अपनी मन्त्रिपरिषद्के समक्ष निम्न भाव अभिव्यक्त किये हैं—

'मन्त्रमूलं च विजयं प्रवदन्ति मनस्विनः।'
(वा० रा० ६। ६। ५)

'मनीषियोंका कथन है कि विजयका मूल कारण मन्त्रियोंकी दी हुई मन्त्रणा ही है।'

मन्त्रियोंका महत्त्व

रामायणके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि रावणकी पराजय और श्रीरामचन्द्रजीकी विजयका एक मुख्य कारण मन्त्रणा थी। इसी कारण प्राचीनकालसे ही भारतीय राजदर्शनके अन्तर्गत मन्त्रियोंका महत्त्व स्वीकार किया जाता रहा है। समस्त राजनीतिज्ञोंका मन्त्रिमण्डलसम्बन्धी परामर्श न केवल राजाके लिये ही सहायकके रूपमें बताया गया है, अपितु वह प्रजाकी निरंकुश शासकोंसे रक्षाका भी एक साधनके रूपमें शासन-प्रयोग चित्रित किया गया है। श्रीरामके राजदर्शनके अन्तर्गत मन्त्रिपरिषद्के गठन, मन्त्रणाविधि, मन्त्रियोंकी योग्यता, कार्य-प्रणाली आदिकी ओर भी विशेष ध्यान देनेका आग्रह द्रष्टव्य है। श्रीरामचन्द्रजीने चित्रकूटकी राजसभामें अपने अनुज भरतजीको राजनीतिका उपदेश देते हुए कहा था—'श्रेष्ठ मन्त्रणा ही राज्यकी समृद्धि और उसके उत्कर्षका प्रधान साधन होती है। श्रेष्ठ मन्त्रणाकी सफलता उसकी गोपनीयतापर निर्भर होती है। अतः श्रेष्ठ मन्त्रियोंका यह कर्तव्य है कि वे निश्चित किये गये मन्त्रोंको सर्वथा गुप्त रखें। किसी भी मन्त्रकी गोपनीयता दो-चार कानतक ही सुरक्षित रह सकती है—छः कानोंमें पहुँचनेपर उसकी गोपनीयता भंग होनेकी सम्भावना रहती है। अतः तुम किसी गूढ़ कार्यपर अकेले ही तो विचार नहीं करते? अथवा बहुत-से लोगोंसे एक साथ बैठकर तो गुप्त मन्त्रणा नहीं करते? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारी निश्चित की गयी मन्त्रणा फूटकर शत्रुके राज्यतक फैल जाती हो? तुम्हारे सब कार्य पूरे हो जानेपर ही अथवा पूरे होनेके समीप पहुँचनेपर ही दूसरे राजाओंको ज्ञात होते हैं न? कहीं ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हारे भावी कार्यक्रम वे पहले ही जान लें?'
(वा० रा० २। १००। १९—२०)

उपरिवर्णित प्रसङ्गसे और

मन्त्र-शक्तिकी गोपनीयताकी ओर भरतजीका ध्यान आकर्षित किया है। अतः मन्त्रकी गोपनीयता ही राजनीतिका सार है।

मन्त्रिपरिषद्का गठन करते समय रखने-योग्य सावधानियाँ

श्रीरामने राजाओंको मन्त्रिपरिषद्के गठनहेतु परामर्श देते समय कतिपय तथ्योंको दृष्टिमें रखनेका सुझाव भी दिया है। उनके अनुसार नीतिशास्त्रके ज्ञाता पुरुषोंको ही मन्त्रिपद दिया जाना उचित है। अपने इस कथनकी पुष्टिमें उन्होंने नीतिज्ञ पुरुषोंके मतोंद्धरणका आश्रय लेते हुए कहा है—

> एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः।
> राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम्॥
> (वा० रा० २।१००।२४)

'यदि एक भी मन्त्री मेधावी, शूरवीर, चतुर और नीतिज्ञ हो तो वह राजा या राजकुमारको बहुत बड़ी सम्पत्तिकी प्राप्ति करा सकता है।'

श्रीरामचन्द्रजीका यह कथन भी ध्यान देनेयोग्य है कि राजाओं अथवा राजपुत्रों या आधुनिक सत्ताधिकारियोंको हजारों मूर्खोंके बदले एक ही विद्वान् विषम परिस्थितिमें अर्थकी प्राप्ति और उनकी विपत्तिसे निवृत्ति करा सकता है, जब कि हजारों मूर्खोंसे संकटापन्न स्थितिमें कुछ भी सहायता नहीं प्राप्त होगी।'

> सहस्राण्यपि मूर्खाणां यद्युपास्ते महीपतिः।
> अथवाप्ययुतान्येव नास्ति तेषु सहायता॥
> (वा० रा० २।१००।२३)

इससे यह सिद्ध होता है कि मन्त्रिमण्डल भले ही छोटा हो, किंतु प्रतिभासम्पन्न, नीतिज्ञ, चतुर एवं कार्यकुशल विज्ञानी तथा जितेन्द्रिय पुरुषोंसे उसका गठित होना श्रेयस्कर होगा। श्रीरामके इस सारगर्भित मतकी पुष्टि सुग्रीवकी विजयावस्थासे भी हो सकती है, जिसमें वे हनुमान्‌जी-जैसे नीतिज्ञ और मन्त्र-विशारदशिरोमणिकी सहायतासे ही पुनः किष्किन्धाका राज्यवैभव, पत्नी आदि प्राप्त कर सम्पन्न बन सके थे। अस्तु, श्रेष्ठ मन्त्रियोंकी उत्तम मन्त्रणा स्थितिको सुदृढ़ और समृद्धि तथा उन्नति दिलानेमें सहायक सिद्ध होती है। अतएव मन्त्रिमण्डलकी श्रेष्ठता ही राज्यकी उन्नतिका प्रमुख कारण होती है।

मन्त्रियोंकी योग्यता

श्रीरामचन्द्रजीने मन्त्रियोंकी योग्यताका भी निर्देश किया है। उनके मतानुसार मनुष्य तीन कोटिके होते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। अतः उत्तम कोटिके मन्त्रियोंको उच्च और मध्य श्रेणीवालोंको मध्य कार्य तथा अधम पुरुषोंको उनके योग्यतानुसार कार्य सौंपे जाने चाहिये। मन्त्रिपद देनेके सम्बन्धमें श्रीरामका यह निर्देश है कि घूसखोर, छल-छिद्रयुक्त अधम पुरुषोंको मन्त्रणाके कार्यसे सदैव दूर रखा जाय; क्योंकि ऐसे व्यक्तियोंके संसर्गसे राज्यमें भ्रष्टाचारिता या रिश्वतखोरीका सदैव भय बना रहेगा। इसी आशयसे श्रीरामने भरतसे कहा था—

'तुमने ऐसे व्यक्तियोंको ही अपने राज्यमें मन्त्री बनाया है न, जो घूस न लेते हों, निश्छल प्रकृतिके हों तथा जिनके आचरणकी शुद्धता बाप-दादाके समयसे देखी गयी हो। जो बाहर-भीतरसे पवित्र एवं श्रेष्ठ हों, ऐसे अमात्योंको ही तुम उत्तम कार्योंमें नियुक्त करते हो न?'

(वा० रा० २।१००।२६)

यदि अयोग्य व्यक्तियोंको मन्त्रिपदपर नियुक्त किया जाता है तो राज्यकी प्रजा न केवल मन्त्रियोंका अपितु राजाका भी अनादर करने लगती है। इसी कारण मन्त्रियोंमें पवित्रता, निष्ठा, कार्य-कुशलता, नीतिज्ञता और राजभक्ति होना अत्यावश्यक माना गया है। महर्षि वाल्मीकिने इस बातका भी संकेत दिया है कि यदि कोई अयोग्य लोभी और विद्वेषी अथवा स्वदेशके प्रति अनिष्ट करनेवाला व्यक्ति मन्त्रिमण्डलमें प्रवेश पा जाता है तो संकटकालीन अवस्थामें वह शत्रु-शिविरसे मिलकर राज्य, राजा ... सकता है। नीतिज्ञ कुम्भकर्णने रावणको इसी आशयसे ... करते हुए कहा था कि 'तुम्हारे अनेक मन्त्री मुझे मित्रमुख शत्रु प्रतीत होते हैं; क्योंकि वे भूतकालमें अहितकर बातको हितकारी मान रहे हैं। अतः उन्हें मन्त्रणा-कार्यसे मुक्त कर देना चाहिये; क्योंकि ये कार्य बिगाड़नेवाले होते हैं।' (वा० रा० ६।६३।१४—१८)

अतः मन्त्रिपरिषद्के सदस्योंका स्वदेशी होनेके साथ स्वदेशानुरागी होना भी जरूरी है। मन्त्रियोंमें राजभक्ति तथा निष्ठा ऐसी होनी चाहिये कि आवश्यकता पड़नेपर वे अपने राष्ट्र अथवा स्वामीकी रक्षाके लिये प्राणदेना भी कर सकें।

गुण-विवेचन

श्रीरामने भरतको कहा था—'तात ! तुमने अपने ही समान शूरवीर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय, कुलीन तथा बाहरी चेष्टाओंसे ही मनकी बात समझ लेनेवाले सुयोग्य व्यक्तिको ही मन्त्रिपद दिया है न ?' (वा० रा० २ । १०० । १५)

राजनीतिज्ञ श्रीरामने यहाँ इस बातका संकेत किया है कि ऐसा व्यक्ति ही मन्त्रिपदके योग्य होता है, जो उपरिवर्णित समस्त योग्यताओंसे युक्त हो । श्रीरामचन्द्रजीने मन्त्रिमण्डलके सदस्योंमें शूरवीरताको एक कसौटी माना है, यद्यपि आधुनिक युगमें इस तथ्यकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता—यहाँतक कि सैन्य-संचालनके ज्ञानसे शून्य व्यक्तिको भी इस देशके रक्षा-विभागका मन्त्री बना दिया जाता है । किंतु हमारे पुराने राजदर्शनमें मन्त्रियोंमें पराक्रम या शूरवीरताका तत्त्व जरूरी था; क्योंकि सैन्य-व्यवस्था तथा सैनिकोंमें जोश भरनेके लिये राजा तथा मन्त्री भी युद्धस्थलमें जाते थे । यदि प्रतिरक्षाका उत्तरदायित्व निभानेवाले व्यक्तिको युद्धसम्बन्धी ज्ञान न हो तो प्रतिरक्षा-विभाग एक प्रकारका उपहास ही सिद्ध होगा । मन्त्रियोंका शास्त्रज्ञ तथा नीतिज्ञ होना भी आवश्यक माना जाता है; क्योंकि मन्त्रणा-कार्य अत्यन्त गूढ होता है, जिसमें प्रत्युत्पन्नमतित्व, अनुभव, कार्यकुशलता आदिका तो अत्यन्त महत्त्व होता है । नीति-निर्धारण तो आजकल भी मन्त्रियोंका प्रधान कार्य है । अतः दूरदर्शिताके अभावसे अथवा नीतिकी अस्पष्टतासे नीति-निर्धारण-कार्यमें त्रुटियोंकी सम्भावना होगी । जितेन्द्रियता तो मन्त्रियोंके लिये सर्वाधिक महत्त्व रखती है; कारण कि सामान्य नागरिक राजपुरुषोंके आचरणोंसे प्रेरित होकर प्रायः अपने आचरणको निर्धारित करते हैं । कहा भी गया है—'यथा राजा तथा प्रजा ।'

वर्तमान युगमें तो राजाके स्थानपर मन्त्रियोंके आचरणसे ही प्रायः सबसे अधिक नागरिकगण प्रभावित होते हैं । प्रजातन्त्रमें, विशेषकर संसदीय व्यवस्थामें तो राज्यकी व्यावहारिक दृष्टिसे मन्त्री ही सर्वेसर्वा होते हैं । यदि राजपुरुष अथवा मन्त्रीगण सदाचारी, ईमानदार एवं नीर-क्षीर-विवेकी होते हैं तथा अपनी राष्ट्रभक्तिका परिचय देते हैं तो प्रजापर इनका असाधारण प्रभाव निश्चित रूपसे ही पड़ता है । यदि मन्त्रियोंमें कोई कमी अथवा चारित्रिक विशेषताओंमें त्रुटि होती है तो प्रजा भी प्रायः उन-उन दोषोंसे प्रभावित हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं । इसी कारण भारतीय राज-दर्शनके अन्तर्गत चारित्रिक विशेषताओंका विशेष महत्त्व बताया गया है । मन्त्रियोंका उत्तम, कुलीन परिवार-का होना भी इसी कारणसे आवश्यक माना गया है । अन्तिम बात जो कही गयी है, वह है—उनका मनो-वैज्ञानिक होना । यदि मन्त्री मनोवैज्ञानिक नहीं है तो वह *सद्भावनाके कार्यमें अक्षम माना जायगा* । महाराज दशरथके सभी मन्त्री बड़े मनोवैज्ञानिक थे । वे मानवके मुख, उनके हाव-भाव, बाह्य तथा आन्तरिक चेष्टाओंसे ही उसको पहचान जाते थे तथा उसके मन्तव्यका पता लगा लेते थे । अस्तु, मन्त्रीमें इस योग्यताका आवश्यक माना जाना उचित ही कहा जा सकता है ।

रावणके पतनका कारण

राजनीतिज्ञ आदिकवि महर्षि वाल्मीकिके काव्य-ग्रन्थ रामायणके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि श्रीरामकी विजय और रावणकी पराजयका मूल कारण उनके मन्त्रियोंकी ही गयी मन्त्रणा ही थी । महर्षि व्यास एवं आचार्य कौटल्य-प्रभृति मनीषियोंने महर्षि वाल्मीकिके इस आशयको स्वीकार किया है कि मन्त्रियोंमें विशेष योग्यताका होना परम आवश्यक है । जिस मन्त्रीमें जितनी अयोग्यता अथवा त्रुटियाँ होंगी, राज्यमें भी उसी प्रकारके दोष अथवा कमियाँ होंगी ही । इस हेतु रावणके मन्त्रिमण्डलकी समीक्षामें महर्षि वाल्मीकिने स्पष्ट निर्देश किया है कि 'रावणके पतनके लिये उसके मन्त्री ही अधिक उत्तरदायी हैं । कारण, हनुमान्‌जीके द्वारा किये हुए लङ्कादहनको देखकर उसने अपने मन्त्रियोंसे कहा था—'आपलोग यह जानते ही हैं कि एक ही व्यक्तिने आकर हमारे राज्यमें कितना भारी उत्पात मचाया है । अतः अब आपलोग मुझे ऐसी मन्त्रणा दें, जिससे राज्य, सेना, नगर एवं नगरवासियोंका—सबका कल्याण हो ।' रावणके ही शब्दोंमें—

'हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं सम्मन्त्र्यतां मम ।'

(वा० रा० ६ । ६ । १८)

अर्थात् रावणने अपने मन्त्रिमण्डलसे नगर, सेना और नगर-निवासी—सबके लिये परिणाममें हितकारी मन्त्रणा माँगी थी । किंतु विभीषणके अतिरिक्त सबने चाटुकारिताका ही परिचय दिया, जिसके कारण रावण युद्धोन्मुख हुआ और अन्तमें उसका

पतन हुआ। विभीषणने उसी अवसरपर रावणके विरोधके बावजूद भी मन्त्रियोंकी कड़ी आलोचना करते हुए युद्ध न करनेका परामर्श दिया था; किंतु असम्मतिके कारण उसकी हितभरी सलाह एक प्रकारसे नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज सिद्ध हुई और रावणके अयोग्य, मूर्ख एवं अनीतिज्ञ मन्त्रियोंने राक्षसवंशके विनाशका मार्ग उसको मन्त्रणाके रूपमें बता दिया। रामके साथ विग्रह और सीताहरणको एक मूर्खतापूर्ण कार्य बताते हुए मारीचने रावणसे स्पष्ट कहा था—'जो तुम्हें इस प्रकारके उद्योगकी सलाह दे रहा है, वह तुम्हारा कोई कमजोर शत्रु है, जो तुम्हारे विनाशके लिये तुम्हें एक बड़े शत्रुसे टकराकर समस्त राक्षसवंशका सींग कटा देना चाहता है। तुम्हें जो ऐसी मन्त्रणा दे रहा है, वह मन्त्री तो वधके योग्य है।' (वा० रा० ३।४१।५)

श्रीरामचरितमानसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदासजीने इस सम्बन्धमें उचित ही लिखा है कि 'यदि मन्त्री भयवश उचित मन्त्रणा न दे तो राज्यका विनाश वैसे ही हो जाता है, जैसे चिकित्सक रोगीकी इच्छानुसार अथवा आचार्य विद्यार्थीकी रुचि अनुसार चलने लगे तो उनका क्रमशः पतन होने लगता है।'

सचिव बैद गुर तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास॥
(श्रीरामचरितमानस ५।३७)

राजनीतिज्ञ आदिकवि वाल्मीकिजीने अपने रामायणके अन्तर्गत दुर्लभ मन्त्रणाका संकेत करते हुए एक स्थानपर लिखा है कि—'सदा प्रिय लगनेवाली मीठी-मीठी बातें कहनेवाले तो सुगमतासे मिल सकते हैं, किंतु जो सुननेमें अप्रिय, किंतु परिणाममें हितकर हो, ऐसी बात कहने और सुननेवाले दुर्लभ होते हैं।'

सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥
(वा० रा० ६।१६।२१)

बुरे मन्त्रियोंका विवरण करते हुए रामायणमें महर्षि वाल्मीकिजीने कहा है कि 'जो बुरे मन्त्री होते हैं, वे साम-दान-भेदादिसे शत्रुद्वारा प्रयुक्त किये जानेपर अपने स्वामीका विनाश करनेमें भी संकोच नहीं करते। अतः राज्याधिकारियोंको चाहिये कि वे ऐसे व्यक्तियोंको, जो लोभादिके कारण शत्रुओंसे मिल गये हों और अपने मित्रके रूपमें रहकर वास्तवमें शत्रुका काम करते हों, उन्हें तुरंत पहचान कर त्याग देना चाहिये।' (वा० रा० ६।६१।१०-१८)

मन्त्रणाविधि

श्रीरामके मतानुसार विजय चाहनेवाले राजाको चाहिये कि वह किसी भी गूढ़ विषयपर अकेला ही निर्णय न ले। उसे सावधानीपूर्वक किसी भी महत्त्वपूर्ण विषयपर मन्त्रणा करते समय बहुत-से लोगोंके साथ एक साथ बैठकर भी मन्त्रणा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि ऐसी स्थितिमें मन्त्रणा प्रकट हो जाया करती है। गुप्त मन्त्रणाके शत्रुपक्षमें पहुँचनेपर बड़ा अनर्थकारी परिणाम होनेका भय बना रहता है। अतः उसे अधिक तीन या चार मन्त्रियोंके साथ एकत्र बैठकर अथवा अलग-अलग मिलकर परामर्श करनी चाहिये। (वा० रा० २।१००।७१)

लोग तर्क, अनुमान, युक्तियों आदिसे मन्त्रणाको न जान सकें, इस बातकी सावधानी मन्त्रणा करते समय रखी जानी चाहिये। श्रेष्ठ मन्त्रणा वही है जो कार्यके पूर्ण होने अथवा पूर्ण होनेके संनिकट पहुँचनेपर ही प्रकट होती है। ऐसी मन्त्रणाका लाभदायक परिणाम प्राप्त हो जाता है।

कार्य-विभाजन एवं मन्त्रणाके प्रकार

महर्षि वाल्मीकिके अनुसार मन्त्रियोंमें कार्यका उचित विभाजन भी किया जाना चाहिये तथा मन्त्रिमण्डलका अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये। मन्त्रियोंके ईमानदारी विश्वासके आधारपर उन्हें गुणात्मक विभाग प्रदान करना होता है। राजनीतिके ज्ञाता रामका भी अभिमत है कि "मन्त्रियोंको उनके योग्यतानुसार कार्य दिया जाना चाहिये। इनके अनुसार मन्त्रणा भी तीन प्रकारकी होती है। जिसमें शास्त्रीय दृष्टिसे सब मन्त्री मिलकर एकमत होकर राय देते हैं, उसे उत्तम मन्त्रणा कहते हैं। आरम्भमें अनेक प्रकारके मतभेद होनेपर भी अन्तमें समस्त मन्त्रियोंका कर्तव्यविषयक निर्णय एक हो जाता है, वह 'मध्यम मन्त्रणा' कहलाती है और जहाँ भिन्न-भिन्न बुद्धियोंका आश्रय लेकर सब ओरसे स्पर्धापूर्वक भाषण किया जाय और एकमत होनेपर भी जिससे कल्याणकी सम्भावना न हो, वह मन्त्रणा निकृष्ट ही कहलाती है।" (वा० रा० ६।६।१२—१४)

आदिकाव्य रामायणमें महर्षि वाल्मीकिने क्रमशः श्रीराम तथा रावणके मन्त्रिमण्डलके रूपमें आदर्श एवं अधम मन्त्रिमण्डलका दिग्दर्शन कराया है। श्रीरामचन्द्रके मन्त्रिमण्डलमें विभीषण, लक्ष्मण, सुग्रीव, विशिष्ट जाम्बवान्, शास्त्रविद एवं राजनीतिके ज्ञाता हनुमान्,

यशस्वी और राज्यकार्योंमें सावधान तथा यथावसर अनुसार कार्य करनेवाले, तेजस्वी, क्षमाशील, कीर्तिमान् तथा मुस्कराकर बात करनेवाले आठ मन्त्रियोंसे युक्त था। ये सभी मन्त्री महाराज दशरथके समयसे ही कार्य करते चले आ रहे थे। उनके नाम थे—धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र। इनके अतिरिक्त ऋषियोंमें श्रेष्ठतम वसिष्ठ और वामदेव—ये दो महर्षि राजाके माननीय पुरोहित थे। समय-समयपर सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, दीर्घायु, मार्कण्डेय और विप्रवर कात्यायन भी मन्त्रणा दिया करते थे। (वा० रा० १। ७। १—५)

श्रीरामके मन्त्रियोंकी यह विशेषता थी कि वे कभी भी काम-क्रोध अथवा स्वार्थकी वृत्तिसे प्रेरित होकर झूठ नहीं बोलते थे। स्वराष्ट्र या शत्रुराष्ट्रकी कोई भी बात उनसे छिपी नहीं रहती थी। दूसरे राजा क्या कर रहे हैं और आगे क्या करनेवाले हैं—ये सभी बातें उन्हें गुप्तचरोंद्वारा ज्ञात होती रहती थीं। वे सब व्यवहार-कुशल थे। उनके सौहार्दकी अनेक अवसरोंपर परीक्षा ली जा चुकी थी। वे मौका पड़नेपर अपने पुत्रोंको भी दण्ड देनेमें नहीं हिचकते थे। कोष तथा चतुरङ्गिणी सेनाके संग्रहमें सदा लगे रहते थे। शत्रुने भी यदि अपराध न किया हो तो उसकी हिंसा नहीं करते थे। उनमें उत्साह और धैर्य भरा रहता था। वे राजनीतिके ज्ञाता होनेके कारण सदैव सत्पुरुषोंकी रक्षा करते रहते थे। वे प्रजाको कष्ट न पहुँचाकर न्यायोचित धनसे राजकोष भरते थे। वे अपराधके अनुसार तीक्ष्ण या मधुर दण्डका प्रयोग करनेमें दक्ष थे। वे सदैव धर्ममें आस्था रखते हुए अधर्मसे बचते रहते थे। उनके पराक्रमके कारण विदेशोंमें भी उनकी ख्याति फैल चुकी थी। संधि और विग्रहके उपयोगी अवसरोंका उन्हें पूर्ण ज्ञान था। उनकी सूक्ष्म दूरदर्शिताके कारण कोशलराज्यके भीतर कहीं भी एक भी मनुष्य मिथ्यावादी, दुष्ट या लम्पट दिखायी नहीं देता था। नीतिशास्त्रमें उनकी विशेष रुचि थी तथा सदा प्रिय लगनेवाली बात वे बोला करते थे। वे राज्यके अभ्युदय-हेतु नीतिरूपी नेत्रोंसे सदैव जाग्रत् रहते थे। उनमें राजकीय मन्त्रणाको गुप्त रखनेकी पूर्ण क्षमता थी—

> मन्त्रसंवरणे शक्ताः शक्ताः सूक्ष्मासु बुद्धिषु ।
> नीतिशास्त्रविशेषज्ञाः सततं प्रियवादिनः ॥
>
> (वा० रा० १। ७। १९)

श्रीरामचन्द्रजीके मतानुसार नास्तिकों तथा वेद एवं धर्मके विपरीत आचरण करनेवालोंको कदापि मन्त्रिमण्डलमें सम्मिलित नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे वास्तवमें अज्ञानी होते हुए भी अपने आपको बहुत बड़ा ज्ञानी पण्डित मानते हैं।' (वा० रा० २। १००। ३८)

प्रत्येक राष्ट्र श्रीरामचन्द्रजीके आदर्श मन्त्रिमण्डलसम्बन्धी विचारोंके आधारपर यदि अपने मन्त्रणा-कार्यका शुभारम्भ करने लग जाय तो न केवल लौकिक अभ्युदय ही, अपितु पारलौकिक अभ्युदयकी प्राप्तिमें भी सफल हो सकता है।

श्रीसीताराम-वन्दना

(वेदान्ती स्वामी श्रीरँगीलीशरणजी वेदाचार्य, काव्यतीर्थ, साहित्य-वेदान्ताचार्य, मीमांसाशास्त्री)

जनअभिराम राम सुख दाता ।
छबिल ललित ललाम विधाता ॥
राम समान राम, नहिं आना ।
करुना वरुनालय भगवाना ॥

कमल-चरन तन जनक किसोरी ।
रामचंद्र मुख चंद्र चकोरी ॥
अमल कमल कोमल सुकुमारी ।
राम रँगीली जनक कुमारी ॥

रमत जोगिगन राम चरनमें ।
तारन तरन हरन भव छनमें ॥
ब्रह्म सच्चिदानंद खरारी ।
सरन वरेन्य राम अघतारी ॥

श्रीरामकालीन गुप्तचर-व्यवस्था

[लेखक—आचार्य श्रीवत्सरामजी शास्त्री, एम्० ए० (हिंदी, संस्कृत) साहित्यरत्न]

रामायणके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि रामायणकालीन गुप्तचर-व्यवस्था बहुत ही दृढ़ और उपयुक्त थी। आजकी स्थिति और रामायणकालीन परिस्थितिमें बहुत अन्तर था। आजकल-जैसा छल छिद्र, राग द्वेष, पाखण्ड उन दिनों नहीं था, किंतु राज्य संचालनके लिये राजनीतिक व्यवस्थाएँ अपने-अपने स्थानपर समयोचित सुदृढ़ बनायी गयी थीं। उस समयकी गुप्तचर-व्यवस्था भी समयानुसार बहुत ही उत्तम थी। रामकालीन गुप्तचर-व्यवस्थाके कई रूप ज्ञात होते हैं। श्रीरामकी गुप्तचर-व्यवस्था और रावणकी गुप्तचर-व्यवस्थामें बहुत अन्तर था। श्रीरामके गुप्तचर जहाँ विद्वान् थे और सात्त्विक आचरण, आहार-व्यवहारवाले थे, वहाँ रावणके गुप्तचर कपटी—मायावी थे। रावणके गुप्तचर नाना प्रकारकी मायाका प्रयोग करके केवल धोखेबाजीका सहारा लिये रहे और रामके गुप्तचर दया, धर्म, सदाचार एवं शालीनताका व्यवहार करते हुए अपने कार्यमें लगे रहते थे।

आजकल भारतके कोने-कोनेमें, गाँव-गाँव, नगर-नगरमें पाकिस्तान और चीनके गुप्तचर जालकी भाँति छाये हुए हैं—यहाँतक कि घर-घरमें दोनों दुश्मन देशोंके गुप्तचर फैले हैं और सक्रिय हैं। ऐसे समयमें भारतको भी अपने बचाव और अपनी सुरक्षाके लिये व्यवस्था करनी पड़ी है। जिस प्रकार आज भारतमें गुप्तचर पाकिस्तान और चीनके गुप्तचर भारतके विरुद्ध आक्रमण कर रहे हैं और भारतकी शान्ति-व्यवस्थाको बिगाड़ना चाहते हैं, उसी प्रकार श्रीरामके युगमें भी रावणके गुप्तचर सर्वत्र फैलकर अपना काम करते रहे।' यह बात बहुत ही विभिन्न ढंगसे आदिकाव्य वाल्मीकि रामायणमें लिखी है।

रावण जब सीताको चुराकर लङ्कापुरीमें ले गया, तब उसने सीताको अशोकवाटिकामें छिपा दिया। रावण बहुत बड़ा राजनीतिज्ञ था। उसको विश्वास था कि श्रीराम अवश्य सीताके लिये सीताका पता लगाकर लङ्कापर चढ़ाई करेंगे। अतः उसने राजनीतिक व्यवस्थाके अनुसार अपने कई अनुभवी गुप्तचरोंको श्रीरामके पीछे लगा दिया। अपने अनुचरों गुप्तचरोंको भलीभाँति समझाकर, उनके बल और वीरताकी प्रशंसा की और सावधान करते हुए कहा—'दण्डकारण्य जनस्थान (भारत) में जाकर बहुत ही सावधानी बरतना और सदा श्रीरामका समाचार लिये रहना। मैंने अनेकों युद्धोंमें तुम्हारी बहादुरी देखी है। अतः मैं तुमको जनस्थानमें नियुक्त कर रहा हूँ।'

> जनस्थाने वसद्भिस्तु भवद्भी राममाश्रिता।
> प्रवृत्तिरुपनेतव्या किं करोतीति तत्त्वतः॥
> युष्माकं तु बलं ज्ञातं बहुशो रणमूर्धनि।
> अतश्चास्मिञ्जनस्थाने मया यूयं निवेशिताः॥
> (वा० रा० ३ । ५४ । १७, १८)

राजा जनकजी अपने शासनकालके बहुत बड़े ज्ञानी एवं दार्शनिक विद्वान् राजा थे। यह सब होते हुए वे बहुत बड़े राजनीतिज्ञ भी थे। राजा दशरथने जब कैकेयीको प्रसन्न करनेके लिये उसे दो 'वरदान' प्रदान कर दिये, तब उसने एक वरदान श्रीरामके लिये वनवास और दूसरेमें भरतलालके लिये अयोध्याका राज्य माँग लिया और रामवियोगसे दशरथजीका स्वर्गवास हो गया। भरतजी अपने ननिहालसे बुलाये गये। अयोध्याकी इन दुःखद घटनाओंका राजा जनकको भी पता लगा। राजा जनकने अपनी राजनीतिज्ञताका परिचय दिया और उन्होंने अपने चार गुप्तचरोंको अयोध्या भेज दिया। जनकजीके गुप्तचर केवल श्रीभरतलालजीके मनोभावोंको और उनके क्रिया-कलापोंको ही जाननेके लिये भेजे गये। वे चारों गुप्तचर अयोध्या पहुँचे। उन्होंने भरतजीके मनोभावोंका अध्ययन किया। राजा जनकके चारों दूत (गुप्तचर) भरतजीकी गति-विधिका ठीक पता लेकर तिरहुत वापस चले गये। उन दूतोंके भरतजीके मनमें किसी प्रकारके कपटका भाव नहीं हुआ था—

> गए अवध चर भरत गति बूझि देखि करतूति।
> चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति॥
> दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी॥
> (मानस २ । २७१ । २७२)

श्रीरामकी सेनामें (वानरी सेनामें) भी कई गुप्तचर थे, जो बड़े सयाने दक्ष थे। श्रीरामके भक्त और स्वयं सेनापति हनुमान्‌जी भी महान् गुप्तचर थे,

गुप्तचरोंके अगुआ थे। हनुमान्‌जी अपना छोटा-बड़ा—सब प्रकारका रूप बना लेते थे। सीताजीको जब यह संदेह हुआ कि यह बंदर भयानक और विशालकाय राक्षसोंके सामने क्या कर सकता है, तब हनुमान्‌जीको अपना बड़ा रूप दिखाना पड़ा था—

मोरें हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥
(वही, ५ । १५ । ४)

हनुमान्‌जीके दौत्यकर्मकी सफलतापर देवोंको भी संदेह हो गया था। देवोंके आदेशसे ही सुरसा आगे पहुँचकर हनुमान्‌जीके बल और बुद्धिका थाह लगाने लगी। हनुमान्‌जी बल और बुद्धि, दोनोंमें कुशल थे, पारंगत थे। सुरसाने अपना मुख फैलाना प्रारम्भ किया तो बढ़ाती ही चली गयी। हनुमान्‌जी अपने शरीरको उसका दूना करते गये। अन्तमें जब सुरसाने सौ योजन चौड़ा मुख फैलाया, तब हनुमान्‌जीने अति सूक्ष्मरूप धारण कर लिया—

सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा॥
(वही, ५ । १ । ५)

अब सुरसाको हनुमान्‌जीकी बल-बुद्धिका पता चल गया। उसने प्रमाणपत्र देकर कहा—

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥
(वही, ५ । १ । ६)

और प्रमाणके साथ ही आशीर्वाद देते हुए सुरसाने कहा—

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान॥
(वही, ५ । २)

गुप्तचर हनुमान्‌को लङ्कामें प्रवेश करना था। किंतु लङ्कामें प्रवेश करना सरल नहीं था। लङ्काके फाटकपर एक राक्षसी रक्षिकाके रूपमें अवस्थित थी। उसका काम लङ्कामें प्रवेश करनेवालों (चोरों या गुप्तचरों) का पता लगाना था। विचित्र गुप्तचरी थी वह राक्षसी। उसने हनुमान्‌जीको मशक-रूपमें भी पहचान लिया। हनुमान्‌जी यदि प्रत्युत्पन्नमति नहीं होते तो वहीं मारे जाते। बुद्धिके साथ उनके बलकी भी सीमा नहीं थी।

उससे शिक्षा देकर हनुमान्‌जी आगे बढ़े। लङ्कामें पहुँचते ही उन्हें जब रावणके गुप्तचरोंका समूह दिखायी पड़ा तो वे भी आश्चर्यचकित हुए। हनुमान्‌जीने निस्तब्ध निशामें लङ्कामें प्रवेश किया। उस समय रावणके गुप्तचर सक्रिय रहकर अपना-अपना कार्य कर रहे थे। रावणको संदेह था कि श्रीरामके गुप्तचर पता लेनेके लिये लङ्कामें प्रवेश कर सकते हैं। अतः उसने गुप्तचरोंकी भी सुदृढ़ व्यवस्था कर दी थी। आदिकविने विस्तारसे रावणके गुप्तचरोंके बारेमें उल्लेख किया है। इसी प्रकार अवगत होता है कि रावणके गुप्तचर संन्यासी, ब्रह्मचारी आदिका वेष बनाये लङ्कामें विचरण कर रहे थे। कोई गुप्तचर मृगचर्म, कोई गोचर्म ओढ़े था। कोई गुप्तचर 'अग्निहोत्री' बनकर हवन कर रहा था। कोई सैनिकके रूपमें पहरेपर था। रावणके गुप्तचर एक आँखवाले भी थे। कोई बौने थे, कोई नाक-कानसे हीन थे, कोई मोटा था, कोई दुर्बल था, कोई गोरा था, कोई काला था, कोई गुप्तचर कुरूप था, कोई अति सुन्दर था—

ददर्श मध्यमे गुल्मे राक्षसस्य चरान् बहून्।
दीक्षिताञ्जटिलान् मुण्डान् गोऽजिनाम्बरवाससः॥
दर्भमुष्टिप्रहरणानग्निकुण्डायुधांस्तथा।
कूटमुद्गरपाणींश्च दण्डायुधधरानपि॥
एकाक्षानेककर्णांश्च लम्बोदरपयोधरान्।
करालान् भुग्नवक्त्रांश्च विकटान् वामनांस्तथा॥
(वा० रा० ५ । ४ । १५-१७)

विभीषण जब श्रीरामकी शरणमें पहुँचे, तब विभीषणके साथ उनके चार साथी भी श्रीरामकी शरणमें पहुँचे। विभीषणके ये चारों साथी बहुत कामके थे। ये चारों पक्के गुप्तचर थे। 'असुर सब सम ही है माया।' (७ । ११ । ४२) रावणके गुप्तचरोंका भेद विभीषणके ये चारों गुप्तचर भलीभाँति जानते थे। उनके नाम थे—अनल, शरभ, सम्पाति और प्रघस। इन चारों गुप्तचरोंने श्रीरामकी सेनामें आकर बहुत काम किया। रावणके जितने प्रख्यात गुप्तचर श्रीरामकी गतिविधि और श्रीरामकी सेनाका पता लेनेके लिये श्रीरामके पास पहुँचे, वे सभी पहचान लिये गये। उनको पकड़ लिया गया। इन्हीं चारों गुप्तचरोंने रावणके चारों फाटकोंकी रक्षाकी योजनाका भेद दिया और श्रीरामके सैनिकोंको रावणकी चारों फाटकोंकी रक्षाई योजनाको जानकर अपनी योजना बनानेमें सहायता मिली थी।

जन्म हुआ है, जिसमें व्यक्तिगत 'स्व' सर्वोपरि है और इस 'स्व'के अर्थ और उद्देश्यकी ही प्रमुखता है। अतएव आजकल जो अपनेको बहुत अधिक आधुनिक और प्रगतिशील मानते हैं, उनके लिये अपने 'स्व'की रक्षासे अधिक कोई वस्तु मूल्य नहीं रखती। ऊँचे-से-ऊँचे सिद्धान्तका मूल्य तभीतक है, जबतक वह 'स्व'के हितकी पुष्टि करे; सत्यकी उतनी ही आवश्यकता है, जहाँतक वह 'स्व'के अर्थमें सहायक हो; देशप्रेम उतना ही उचित है, जहाँतक उसके द्वारा 'स्व'का लाभ उन्नति कर सके। अगर 'स्व'के अर्थका हनन होता हो तो ऐसा सिद्धान्त, ऐसा सत्य, ऐसा देशप्रेम त्याज्य है। जबसे हमें स्वतन्त्रता मिली है, तबसे जन-जीवनमें 'स्व'के पक्षने विशेष बल ग्रहण कर लिया है और इस 'स्व'के प्रेमने वर्तमान विघटनात्मक परिस्थिति उत्पन्न कर दी है, जिसके कारण सुखके स्थानपर हम दुःखका भोग कर रहे हैं।

परंतु जिस 'स्व'को आज इतना ऊँचा स्थान दिया गया है, उसका विचार हमारी सांस्कृतिक परम्परामें हीन अथवा नगण्य है। जो हमारे भीतर स्थित है, जो हमारा आत्मा है, जिसके बिना हमारा अस्तित्व असम्भव है, उस 'ब्रह्म'से अभिन्न 'स्वात्मा'-'परमात्मा'के लिये भी वेद 'स्व' नहीं प्रयोग करते। उसे वे 'सत्' अर्थात् 'वह' कहते हैं। किसीके लिये 'मैं' या 'मेरा' प्रयोग करना देशादेशानुसार असत्य है। क्योंकि—

'मैं अरु मोर तोर तैं माया।' (मानस ३।१४।२)

—'मैं' या 'मेरा' कुछ है ही नहीं। जो कुछ है, वह 'सत्' है, 'वह' है। 'मैं'का या 'स्व'का विचार रखना, 'मेरे हित' या 'स्व-हित'का ध्यान रखना माया है, भ्रम है, मोह है, अज्ञान है, मूढ़ता है।

श्रीमाँ दुर्गाके भक्त जानते हैं कि माँ भगवती सिंहवाहिनी हैं। श्रीमाँ भगवतीको सिंह बहुत प्रिय है। सिंह हिंसक पशु है। जब हम अपने 'स्व'को पूर्णरूपसे हिंसा कर देते हैं, उसका सर्वनाश कर देते हैं, तब हम सिंहके गुण, उसके धर्म और उसके तत्त्वको प्राप्त होते हैं। तभी हम श्रीमाँ दुर्गाके प्रिय वाहन बननेयोग्य होते हैं। इसी भारतीय विचार-परम्पराकी पुष्टि हमें करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रसे मिलती है।

जिस 'स्व'के अनन्त विकासकी महिमा पाश्चात्यके द्वारा आँधीके समान फूटी, भारतीय संस्कृतिने उस 'स्व'के नियन्त्रणकी आवश्यकतापर बल दिया। हमारे पूर्वजोंने एक छोटा-सा, परंतु बहुत उपयोगी सिद्धान्त अपने दैनिक जीवनको सुखद बनानेके लिये प्रतिपादित किया था। वह यह था कि अतिको सर्वत्र वर्जित करना चाहिये—'अति सर्वत्र वर्जयेत्।' सामान्य सांसारिक जीवनमें सुन्दरताकी अति दुःखदायी हो जाती है और भलाईकी अति भी सुखप्रद नहीं होती। इस सिद्धान्तकी अवहेलना करनेसे विदेशोंमें छूटकी अतिके कारण एक प्रतिबन्ध-शून्य समाज—परमिसिव सोसाइटी—का निर्माण हुआ, जो सुखकी खोज करते-करते 'बोरडम'के—ऊबनेके अनन्त खारे समुद्रमें जा गिरा। 'हिप्पी'-वाद इस सर्वांग जीवनसे सर्वांग ऊबनेकी प्रतिक्रिया है। मर्यादाका उल्लङ्घन सुखद नहीं होता—न अपने लिये न औरोंके लिये। 'स्व'का विकास उसी सीमातक वाञ्छनीय है, जहाँतक वह समाजके हितके प्रतिकूल न हो; अतएव 'स्व'को अनन्त छूट नहीं मिलनी चाहिये। उसपर नियम लागू करना, उसकी सीमा निर्धारित करना आवश्यक है। मर्यादामें रहे बिना हमारा 'स्व' नियन्त्रित नहीं रहता।

जिन प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी भक्तवर तुलसीदासजीने करुणानिधानके रूपमें आराधना की, उन श्रीसीतापतिके महर्षि वाल्मीकिने मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें दर्शन किये। सत्कार श्रीरामचन्द्रजीका जीवनभर मर्यादा-निर्वाह करना उनके चरित्रकी विलक्षणता है। जब वे विद्याध्ययन करने गये, तब उन्होंने स्वच्छन्दतासे व्यवहार नहीं किया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि 'मैं अनन्तब्रह्माण्डनायक हूँ। मुझे एक मानव—यह गुरु—क्या शिक्षा दे सकेगा? इससे शिक्षा पानेका नाटक करनेमें मेरा समय नष्ट होगा। अधिक उचित तो यह होता कि मैं इस गुरुको नवीनतम आधुनिक शिक्षा-पद्धतिके नियम सिखाऊँ।' प्रभुने ऐसा नहीं किया।

'जाकी सहज स्वास श्रुति चारी।' (बा० १।२०३।२)

—उन करुणानिधान प्रभु श्रीरघुनाथजीने गुरुको आदर देना था और विनयपूर्वक विद्या ग्रहण की—उसी प्रकार, जैसे किसी सिद्ध शिष्यको ग्रहण करना उचित था। उन्होंने शिष्यकी मर्यादा पाली। उन्होंने गुरुके घरमें

अपने 'स्व'को नियन्त्रित रखा। असामान्य होते हुए भी वे मर्यादासम्पन्न हेतु सामान्य बने रहे। इसी प्रकार राज्याभिषेक-प्रसङ्गमें करुणामय प्रभुने यह नहीं कहा कि "युवराज-पद 'मेरा' है। यह 'मेरा' जन्मसिद्ध अधिकार है। वृद्ध पिताजीको 'मेरे' जन्मसिद्ध अधिकारके हरणका अधिकार नहीं है। युवराज-पदका 'मेरा' अपना व्यक्तिगत प्रश्न है, इत्यादि।" प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने 'स्व'हितका विचार नहीं किया, न 'स्व'के अर्थका विचार किया। उन्होंने कुल-हितका विचार अपने सामने रखा, पर-हितका विचार किया, मर्यादा रखी। करुणाकर श्रीरघुनाथजीने इसी प्रकार सागर-तरण-प्रसङ्गमें मर्यादाकी रक्षा की।

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई॥

प्रभु तुम्हार कुलगुर जलधि कहिहि उपाय बिचारि।
बिनु प्रयास सागर तरिहि सकल भालु कपि धारि॥
(मानस, ५ । ४९ । ४; ५०)

प्रभुका एक ही बाण 'कोटि सिंधु सोषक' भी समर्थ था। फिर भी उन्होंने मर्यादापालन श्रेष्ठ समझा। उन्होंने यह नहीं कहा कि "मर्यादाको हटाओ। यह 'मेरी' प्रतिष्ठाका प्रश्न है। सागर पार करना 'मेरा' अधिकार है।" अपने 'स्व'को नियन्त्रणमें रखकर उन्होंने परहितके लिये, सागरके हितके लिये, मर्यादा पालन किया।

करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको सदा इसका विचार रहता था कि दूसरेका भला हो, लोक-कल्याण हो। वे इसीको सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते थे। यही श्रेष्ठ धर्म था। प्रभुके श्रीमुखका वचन है—

'परहित सरिस धर्म नहिं भाई।' (मानस, ७ । ४० । १)

कृपालु श्रीरामचन्द्रजीका जीवन सदा परहित भरित रहा। उन्होंने तीनों लोकोंके रुलानेवाले रावणका संहार लोक-कल्याणार्थ किया। इसमें रावणका अपना कल्याण भी निहित था। उसने मुक्ति पायी, जो रावण-जैसे राक्षसके लिये अन्यथा असम्भव थी—

आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निज धाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥
(मानस, ६ । १०३ । छं०)

और असंख्य राक्षसोंका संहार भी उनके लोक-कल्याणके लिये किया।

आजकलकी विस्फोटात्मक परिस्थिति जो 'स्व'हित-विचारकी अतिके कारण हमारे सामने आ खड़ी हुई है, उसका एकमात्र उपाय 'स्व'हितके स्थानपर 'पर'हितको स्थान देना है। करुणामय प्रभु 'पर'हितको खूब पूजते थे। माता शबरीको नवधा-भक्ति समझाते हुए करुणानिधानने संतोंके सङ्गको सर्वप्रथम रखा—

'प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।' (मानस, ३ । ३५ । ४)

संतोंको इतना ऊँचा स्थान करुणाकर प्रभुने इस कारण दिया कि संत सदा जगत्-हितमें मग्न रहते हैं—

'संत सरल चित जगत हित।' (मानस, १ । ३

संतोंको जगत्के हितकी चिन्ता रहती है, 'स्व'हितकी कभी नहीं। अर्थात् संत परमधार्मिक हैं; क्योंकि वे परहित-धर्मका निर्वाह करते हैं, जिसके समान करुणानिधानके कथनानुसार अन्य धर्म नहीं है। जब इस परहितकी अवहेलना होती है—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
(मानस, १ । १२० । ३)

—तब-तब असुरोंकी संख्या-वृद्धि होती है। इन असुरोंकी व्याख्या गोस्वामी तुलसीदासजीने इन शब्दोंमें की है—

……………और जुआरा। जे लंपट पर धन पर दारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥
(मानस, १ । १८३ । १-२)

'स्व'की भक्तिके द्वारा, मर्यादाहीनताके कारण असुर-प्रवृत्तिके व्यक्तियोंकी वृद्धि हो जाती है और विस्फोटक परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, जैसी आजकल हो गयी है।

मानवेन्द्रनाथ श्रीरामचन्द्रजीने 'पर'हितको एक विशेष ढंगसे अपने जीवन-कालमें चरितार्थ किया। साकार विग्रह नाथ थे, प्रभु थे, चक्रवर्ती थे। उन्होंने किष्किन्धा जीती, लङ्काके राजाओंको पराजित किया। यदि अन्य कोई राजा होता तो विजित राज्योंके प्रबन्धके लिये अपने सम्बन्धियोंको नियुक्त करता; परंतु करुणानिधान प्रभुने ऐसा नहीं किया।

तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए॥
परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई॥

....

अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम॥
(वही, ७। १५। १-२; १६)

करुणामय प्रभु श्रीरघुनाथजीने यह नहीं कहा कि 'यह मेरा देश है।' उन्होंने यह भी नहीं कहा कि 'तुम मेरे लिये या मेरी ओरसे राज्य करना और इसके बदलेमें इतनी-इतनी राशि मेरे राज्यकोषमें भेजते रहना।' करुणानिधानने केवल यह कहा कि 'तुम्हारा देश तुम्हारा घर है।' वहाँ राम-राज्य बना रहे, जनताका सर्वोत्तम कल्याण करनेवाला राज्य बना रहे, इसलिये प्रभुने उन्हें यह याद दिलाया कि 'अपने देशमें जाकर मुझे दृढ़ नियमसे भजना।' यहाँ 'भजेहु मोहि' के 'मोहि'-का अर्थ अयोध्यानरेश दशरथजीके सबसे बड़े पुत्र श्रीराम-चन्द्रजीसे नहीं है; बल्कि 'भजेहु मोहि'के 'मोहि'से उसकी ओर संकेत है, जो प्रत्येकके अंदर बैठा हुआ है, 'सर्वान्त-र्यामीश्वरम्' है, सबका आदिस्रोत है, सब कारणोंका कारण है, सर्वगत है, सबमें रमण करनेवाला 'राम' है। करुणामय सरकारने अपने सखाओंसे अपने सर्वगत सर्वहितरूपसे स्मरण करनेको कहा; क्योंकि रामराज्यमें 'स्व'हितका स्थान नहीं होता। उसमें सब कार्य 'पर'हित, सर्वहित होते हैं। रामराज्यमें राजा 'स्व'हितके लिये नहीं राज्य करता, वह करुणामय प्रभुके दासके रूपमें सरकारका भजन करता है। सरकार श्रीरामचन्द्रजीके सर्वगतरूपमें जनताको देखकर सर्वहित अर्थात् जनकल्याणमें रत रहकर करुणानिधान प्रभु श्रीरघुनाथजीकी सेवा करता है। इसके फलस्वरूप रामराज्यमें

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
(वही, ७। २०। १)

और—

रामहि रहहिं भगत के संगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ मोच्छ॥
(वही, ७। २४। १)

रामराज्यका अलौकिक गुण प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र का फल था, जिसमें 'स्व'का कोई विचार न होकर केवल 'पर'हितका विचार रहता था।

परंतु राज्यकी दशा केवल राजापर निर्भर नहीं करती। राज्यकी दशामें प्रजाका भी हाथ होता है। सरकार श्रीराम-चन्द्रजीका ऐसा विलक्षण प्रतिभाशाली चरित्र था कि उसने सारी प्रजापर गहरा प्रभाव डाल रखा था। इसका फल यह हुआ कि रामराज्यमें—

राम भगति रत नर अरु नारी। (वही, ७। २०। २)

और—

अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्रीरघुबीर चरन रति चहहीं॥
(वही, ७। २४। २½)

जहाँ रामराज्य होता है, वहाँ राजा तथा प्रजा सब 'पर'-हितके आदर्शसे प्रेरित होते हैं। तभी वहाँ सुखका साम्राज्य होता है। रामराज्य अनन्त सुखका राज्य है।

इसके विपरीत आज हमने 'स्व'हित और 'स्व'अर्थ-पर अनुचित बल देकर वर्तमान विघटनात्मक परिस्थिति उत्पन्न कर दी है। हमलोग आज 'मैं' और 'मेरा'के अर्थमें सदा कार्य करते हैं। आज हमारा धर्म 'पर'हित नहीं है, 'स्व'हित है, स्वार्थ है। अतएव हम असंत हो गये हैं—

जे पर दोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिन्ह के मन माखी॥
(वही, १। ४। २)

हम अधम हो गये हैं—

करहिं मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत परलोक नसाना॥
(वही, ७। ४०। २)

हम राक्षस हो गये हैं—

पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद।
ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद॥
(वही, ७। ३९)

भारतकी इस पतित दशाका उद्धार एकमात्र यही है कि हम करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका चिन्तन करके तथा करुणारूपी पवित्र लीलाओंको स्मरण करके अनुप्राणित हों और जिस परहित धर्मको सरकार श्रीजानकीनाथजीने मनोहर ढंगसे किया था, उसका अनुसरण करें।

समुदाय (उनके लिये) अपने प्राणोंको न्योछावर करनेके लिये तैयार रहता था।

रामने यद्यपि नरलीला की है, फिर भी उनके वास्तविक स्वरूपको पहचाननेवाले भक्तकी प्रेमभावनामें फीकापन नहीं आने पाया है। रामके परम सेवक हनुमान्से भेंट होनेपर विभीषण पूछते हैं—

तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥
तामस तनु कछु साधन नाहीं। प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहिं नहिं संता॥
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥
(मानस ५।६।१-२½)

इसपर श्रीहनुमान्जी अपना अनुभव कहते हैं—

सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती॥
कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चंचल सबहीं बिधि हीना॥
प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥

अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर॥
(वही, ५।६।१-४; ५।७)

ऐसा उत्तर प्राप्त होते ही परम कृपालु रामके दर्शनके लिये विभीषण व्यग्र हो जाते हैं। वे चाहते हैं कि रावणके हृदयमें सद्बुद्धि जगे और वह सीताको रामको सौंप दे। अतः उसे उपदेश देने लगते हैं। पर परिणाम विपरीत होता है। उन्हें चरण-प्रहारतक सहना पड़ता है। विभीषणका निर्वेद पुष्ट होता है और वे रामकी शरणमें आते हैं। उन्हें आते देखकर सेनापतियोंके मनमें आसुरी मायाके प्रति शङ्का होती है। वे विभीषणको बाँध रखनेकी मन्त्रणा देते हैं; परंतु शरणागत-वत्सल रामकी अहैतुकी कृपा देखिये। राम कहते हैं—

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥
× × × ×
कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
(वही, ५।४२।४; ४३।½)

और उसके बाद तो शरणागत अधिकारीके लक्षणोंकी चर्चा ही प्रस्तुत कर देते हैं—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्टहृदय सोइ होई। मोरें सनमुख आव कि सोई॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥
(वही, ५।४४।१-२½)

फिर तो शरणागत विभीषण रामकी कृपा पाकर कृतकृत्य हो जाते हैं।

युद्धभूमिमें राम रावण जैसे भौतिकतामें समृद्ध, आसुरी सम्पदा-सम्पन्न वीरसे लड़ रहे हैं। परंतु रामके पास रथ एवं कण्टकाकीर्ण भूमिमें उपयोगी पदत्राणोंका अभाव देखकर विभीषणके मनमें सक्षम शत्रुपर विजय पानेमें शङ्का होती है। वे तुरंत रामसे प्रश्न करते हैं—

नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥
(वही, ६।७०।१½)

उत्तरमें राम धर्ममय रथका बड़ा ही सुन्दर चित्रण करते हैं, जिससे विजय पाना अत्यन्त सहज है। लेकिन साथ ही प्राकृत युद्धमें रामका धैर्य एवं शौर्य परम अगाध दिखायी पड़ता है। लक्ष्मणको शक्तिबाण लगनेके बादका विलाप लोक संग्रहके दृष्टिकोणसे बहुत महत्त्वपूर्ण है। यही सगुण लीलाकी विशेषता है। भ्रातृप्रेममें राम पिताकी आज्ञाको भी तोड़नेकी बात कहते हैं। धन्य है उनका भ्रातृप्रेम! वाल्मीकीय रामायणमें राम कहते हैं—

यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥
इष्टबन्धुजनो नित्यं मां स नित्यमनुव्रतः।
इमामवस्थां गमितो राक्षसैः कूटयोधिभिः॥
(वा० रा० ६।१०१।१३-१४)

'महातेजस्वी लक्ष्मणने वन आते समय जिस प्रकार मेरा अनुसरण किया था, उसी प्रकार अब मैं भी इसके साथ यमलोकको जाऊँगा। यह सदा-सर्वदा ही मेरा प्रियबन्धु और अनुयायी रहा है। हाय! कपटयुद्ध करनेवाले राक्षसोंने आज इसे इस अवस्थामें पहुँचा दिया।'

रामकी प्रजारञ्जकताके सम्बन्धमें अधिक क्या कहा जाय! वे सदैव इस बातपर ध्यान रखते थे कि किसी भी प्रजाको किसी प्रकारका कष्ट न हो। मानसमें तो बात ही क्या कहनी है, रामराज्यमें कुत्तेतकके प्रति न्यायकी कथा मिलती है। उन्होंने प्रजारञ्जनके लिये ही जानकी-जैसी परम पतिव्रताका परित्याग कर दिया।

राम एकपत्नीव्रतके परमादर्श हैं। उन्होंने अपने ही परिवारमें बहुविवाहके कुफलको देखा था। अतः उन्होंने एकपत्नीव्रती रहकर संसारके सामने एक नया आदर्श उपस्थित किया, जो सुन्दर एवं शान्त जीवनके लिये परम साधक है।

स्रसेनाद्योऽस्य महाभरतप्रसूतयो राजानो निपतो बन्धुवर्गास्य कक्षीवन् श्रियं त्यक्त्वाश्वानश्वोऽस्मद्बर्तुं स्तोत्रं प्रयाताः॥

(पृ० ५४४)

१२—चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः
सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान्
कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः॥

(ऋग्वेद १।१२६।४)

इस मन्त्रपर श्रीनीलकण्ठजीका विस्तृत भाष्य है। उसका सारांश इस प्रकार है—'राजा दशरथके यज्ञसे विदा होकर ऋषिवृन्द जब अपने स्थानको जाने लगे, तब उन त्यागी ऋषियोंको दानमें मिले हुए बड़े वेगवाले चालीस-चालीस एक रंगके श्यामकर्ण घोड़े और अत्यन्त सुशिक्षित मदवाले गजेन्द्रोंकी पंक्तियोंको लेकर प्रत्येकके आगे-आगे लिये चलते हैं।'

यह तो हुआ भगवान् श्रीरामजीके पूर्वजोंका वेदोंमें उल्लेख। भगवान्‌की पुरी श्रीअयोध्याजीका जितना स्पष्ट और विस्तृत वर्णन वेदोंमें है, उतना अन्य किसी भी पुरी या क्षेत्रका नहीं है। देखिये—अथर्ववेद, काण्ड १०, सूक्त २, मन्त्र २८ के उत्तरार्धसे सूक्तान्तके मन्त्र ३३ तक कहे पाँच मन्त्र।

भगवान् श्रीरामजीके विपक्षी राक्षसोंमें भी बहुतोंका सुस्पष्ट वर्णन वेदोंमें है। उनमेंसे एकाधकी कुछ चर्चा यहाँ की जाती है—

कबन्ध—'नीचीनबारं वरुणः कबन्धं प्र ससर्ज०।'

(ऋग्वेद ५।८५।३, नि० १०।४)

छः आँख और तीन सिरवाला त्रिशिरा—

(क) 'स इदासं तुवीरवं पतिर्दन् षळक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत्'

(ऋग्वेद १०।९९।६)

(ख) 'त्रीन् स मूर्ध्नो असुरश्चक्र आरभे०।'

(ऋग्वेद ९।७३।१)

दशानन-रावण—

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम्॥

(अथर्ववेद ४।६।१)

यहाँ दो बार इस प्रकारके मन्त्रोंका संकलन कर दिया जाता है, जिनमें स्पष्ट शब्दोंमें श्रीसीताजी एवं श्रीरामके नाम एवं चरित्रका वर्णन है। जैसे—

श्रीसीताजी—

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि॥

(ऋग्वेद ४।५७।६, तथा (कुछ अन्तरसे) अथर्व० ३।१७।८; तै० आ० ८।६।२)

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषानु यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्॥

(ऋग्वेद ४।५७।७; अथर्व० ३।१७।४)

घृतेन सीता मधुना समक्ता
विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वो-
र्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना॥

(अथर्व० ३।१७।९)

भगवान् श्रीरामजी—

(१) 'भद्रो रामो सवितिः' (यजुर्वेद २१।५९)

—में पवित्रकुलोत्पन्न रामका ही वर्णन हुआ है—

(२) नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च।
इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत्॥

(अथर्व० १।२३।१)

इस मन्त्रका अर्थ इस प्रकार है—

'ओष' अथवा 'दोष' शब्द उपपद रखकर 'धेट्' धातुसे कर्ममें 'कि' प्रत्यय होकर 'ओषधि' शब्द बनता है। 'ओष'का अर्थ है—'दाह'। 'दाह' शब्दसे सांसारिक त्रिविध तापोंका ग्रहण है। ओषं धयति—जो त्रिविध तापका पान कर जाय, अर्थात् नाश कर दे, उसका नाम 'ओषधि' है। 'दोष' शब्द उपपद रखकर बनाना हो तो दकारका लोप कर देना होगा। तब इस अर्थमें 'दोषं धयति' यह व्युत्पत्ति होगी। 'नक्तंजातास्य' एक पद है। 'नक्तंजात' चन्द्रमाका नाम है। 'आस्य' का अर्थ 'मुख' होता है। चन्द्रमाके समान जिसका मुख हो, उसे 'नक्तंजातास्या' कहते हैं। 'ओषधि' के साथ इसका कर्मधारय समास है। 'किलास' में दो शब्द हैं—किल+आस। क्रीडनार्थक 'किल' धातुसे 'किल' शब्द बना है। किल् अस्यतीति किलासम्। जो क्रीडाको दूर कर दे, उसे 'किलास' कहते हैं। 'पलित'का अर्थ है—सफेद केश। 'पलित' शब्दसे

१—सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन्।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद॥

(ऋ० १०।१११।७)

श्रीनीलकण्ठसूरिने विस्तृत भाष्य करते हुए इसमें श्रीराममन्त्रोद्धार एवं षडक्षर श्रीराममन्त्रराजका माहात्म्य दिखलाया है।

स्थानाभावके कारण यहाँ निर्देशमात्र ही किया गया है। आजसे लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व चतुर्धरवंशावतंस महापण्डित श्रीनीलकण्ठसूरिने ऋग्वेदके डेढ़ सौ मन्त्रोंका संकलन 'मन्त्ररामायण'के नामसे करके सुन्दर भाष्य किया था। फिर ११० मन्त्रोंका एक संकलन 'मन्त्रभागवत'के नामसे करके उसपर भी भाष्य किया। स्थानाभावसे यहाँ निर्देशमात्र ही किया गया है।

श्रीरामकी भगवत्ता—एक दार्शनिक विवेचन

(लेखक—साहित्य-महोपाध्याय प्रो० श्रीमगनारंजी मिश्र 'मधुप', एम्० ए०, शास्त्री, व्याकरण-साहित्य-न्याय सांख्य-योग-वेदान्त-दर्शनाचार्य, साहित्यरत्न)

श्रीरामचरितमानसके चारों घाटोंके श्रोताओंकी—श्रीपार्वतीजी, श्रीभरद्वाजजी, श्रीगरुडजी तथा हमारी और आपकी एक ही शङ्का है। वह यह कि 'दशरथनन्दन कौसल्यानन्दवर्धन श्रीराम कौन हैं? क्या वे व्यापक, विरज, अज ब्रह्म हैं? क्या ब्रह्म भी नराकार—नरावतार होता है? क्या नररूपधारी नारायणका ऐश्वर्य-पक्ष अक्षुण्ण या एकरस बना रहता है? क्या उसकी सर्वज्ञता अखण्ड बनी रहती है?'

पार्वतीके कई प्रश्नोंमें एक प्रश्न—

सेष सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई॥
जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥

(रा० च० मा० १।१०७।२-४; १०८)

अध्यात्मरामायणमें भी श्रीपार्वतीजी यही पूछती हैं—

वदन्ति रामं परमेकमाद्यं निरस्तमायागुणसम्प्रवाहम्।
....

यदि स्म जानाति कुतो विलापः सीताकृतेऽनेन कृतः परेण।
जानाति नैवं यदि केन सेव्यः समो हि सर्वैरपि जीवजातैः॥

(बालकाण्ड १।१२, १४)

'श्रीरामभक्तगण श्रीरामको परम, अद्वितीय, सबके आदिकारण और प्रकृतिके गुण-प्रवाहसे परे बतलाते हैं।....अतः मैं पूछती हूँ कि वे आत्मस्वरूपको जानते थे तो उन परमात्माने सीताके लिये इतना विलाप क्यों किया? और यदि उन्हें आत्मज्ञान नहीं था तो वे अन्य सामान्य जीवोंके समान ही हुए, फिर उनका भजन क्यों करना चाहिये?'

दूसरे शङ्कालु श्रोता हैं—प्रयागनिवासी श्रीभरद्वाजमुनि। मानसकारके शब्दोंमें—

रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥
एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा॥
प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि॥

(रा० च० मा० १।४५।२-४; ४६)

तीसरे शङ्कालु विहगराज गरुडजी हैं। रणक्षेत्रमें मेघनादकृत बन्धनमें रामको देखकर श्रीरामके परात्पर ब्रह्म होनेमें इन्हें संदेह हो गया—वे विषण्ण-विक्षुब्ध हैं। मानसकारके शब्दोंमें—

प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती॥
ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा॥
सो अवतार सुनेउँ जग माहीं। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाहीं॥

(रा० च० मा० ७।५८।१-४)

चौथे शङ्कालु हम-आप हैं और आज भी श्रीरामके परात्पर ब्रह्म होनेमें बहुतोंको संदेह बना है।

अब भगवान् अथवा ईश्वर क्या है? कौन है? क्यों है? उसकी आवश्यकता क्यों है?—इन सारी शङ्काओंके समाधानमें भारतीय दर्शनशास्त्र जुटे हैं। उनका चिन्तन एवं चिन्तन नितान्त अपेक्षित है। 'कल्याण'के पाठकोंकी सुविधा और जानकारीके लिये पहले मैं ईश्वर और उसके ऐश्वर्यपर भारतीय दर्शनगत विचारोंको प्रस्तुत कर रहा हूँ।

यहाँ जो-जो हेतु दिये गये हैं, उन्हें असिद्ध करार दिया नहीं जा सकता। जगत‌्का कार्य होना उसके सावयवत्वसे स्वतःसिद्ध है।

श्रीरामचरितमानसके सुन्दरकाण्डमें रावण-हनुमत्संवादमें श्रीरामको ईश्वरका वह रूप दिया गया है, जिसे न्याय-दर्शनमें प्रमाण-कुशल कहते हैं। अखिल ब्रह्माण्डोंका स्रष्टा 'कुलाल' वही है और वह रावण-जैसे शठों एवं दुष्टोंको सीख देनेके लिये मनुजावतार ग्रहण करता है। देखिये—

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥
जाकें बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥
जा बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन॥
धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तेहि समेत नृप दल मद गंजा॥

(रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड २०।१—४)

भगवान् रामकी शक्ति पाकर ही प्रकृति सृष्टि-पालन-संहार करती रहती है। यह सांख्य-सिद्धान्तकी ओर एक संकेत है।

कार्य-कारणके अनुमानसे न्याय-दर्शनने ईश्वरको जगत्कर्ता प्रमाणित किया है। जो-जो कार्य हैं, वे-वे सकर्तृक हैं—ऐसी बात नहीं कही जा सकती। यह हेतु अनैकान्तिक भी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यहाँ विपक्ष (साध्यके अभाव)में अकर्तृक पदार्थोंमें लिङ्ग (कार्यत्व)की वृत्ति नहीं पायी जाती। यह 'अनुमान सत्प्रतिपक्ष' भी नहीं है, इसलिये कि जगत‌्को अकर्तृक सिद्ध करनेवाला पक्ष देखनेमें नहीं आता। यह 'अनुमानबाधित' भी नहीं है, इसलिये कि किसी भी अन्य प्रमाणके द्वारा जगत‌्का 'सकर्तृकत्व' खण्डित नहीं होता। अतः पूर्वोक्त अनुमान सर्वथा निर्दोष एवं अकाट्यनीय है। श्रीरामचरितमानसके कतिपय स्थलोंपर गोस्वामीजीने सांख्य-की प्रकृति, उनके शब्दोंमें 'माया'के जिम्मे जगत‌्के निर्माणादि कार्य दिखलाये हैं।

बालकाण्डके अन्तर्गत—

'ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै।'

(मानस १।१९१।२ छं०)

अयोध्याकाण्डके अन्तर्गत—

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥

(मानस २।१२५।१ छं०)

यहाँ रामको 'श्रुति-सेतु-पालक' तथा जगन्नियन्ता—'जगदीश' कहा गया है और जानकी उनकी माया है, जो उस रामका बल पाकर सृष्टि, स्थिति एवं संहार-कार्य किया करती है। रामको सांख्यका असङ्ग पुरुष—अकर्ता नहिं समझते—प्रतिपादित किया गया है।

(२) सांख्य-दर्शनमें

कतिपय विद्वान् एवं समालोचकोंने 'सांख्य-दर्शन' को निरीश्वरवादी कह डाला है। लेकिन 'सांख्य' एक आस्तिक दर्शन है। निश्चय ही 'सांख्य' और 'योगदर्शन'को कैवल्य, जिसमें संसारका बीजमात्र भी रह न जाय, अभिमत है। 'पुरुष'—जीव, परमात्मा तथा पुरुष-विशेष (ईश्वर)के अर्थमें व्यवहृत हुआ है। सांख्ययोगका अभिमत कैवल्य भी उस रामकी भक्तिसे अन्यत्र अतिदुर्लभ होता हुआ भी भक्तोंके लिये सुलभ हो जाता है। देखिये—

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥

(रामचरितमानस ७।११८।२)

अब पाठकोंके आगे 'सांख्य-दर्शन' के 'ईश्वरासिद्धेः' सूत्रपर विचार प्रकट किया जा रहा है। यह सूत्र प्रथम अध्याय (सां० द० १।८९)के प्रत्यक्ष प्रमाणके रूपमें उपस्थापित है। इस सूत्रमें 'प्रत्यक्ष'का लक्षण बतलाया गया है—इन्द्रियोंके संनिकर्षरूप सम्बन्धको प्राप्त हुआ, जो उस विषयके आकारका विज्ञान (चित्तवृत्ति) है, वह 'प्रत्यक्ष' कहलाता है। इसपर यह शङ्का होती है कि योगियोंको बिना इन्द्रियोंके संनिकर्षके चित्तवृत्ति वस्तुके आकारकी होकर प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इसलिये उपर्युक्त लक्षणमें 'अव्याप्ति-दोष' आ जाता है।

इसका समाधान यह है—

'योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः।'

(सां० द० १।९०)

अर्थात् योगियोंका बाह्य प्रत्यक्ष न होनेसे ऊपरवाले लक्षणमें अव्याप्ति-दोष नहीं आता, इसलिये कि उपर्युक्त लक्षण केवल 'बाह्य प्रत्यक्ष' नहीं, वह 'आभ्यन्तर प्रत्यक्ष' है। योगियोंका लीन (सूक्ष्म, व्यवहित, विप्रकृष्ट) पदार्थोंके साथ अतिशय सम्बन्ध होनेसे अव्याप्ति दोष

हैं। वे अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश-संज्ञक पाँच प्रकारके हैं।

यद्यपि सभी पुरुषोंमें वास्तविक क्लेशादि नहीं हैं, पुरुष तो ईश्वरके समान सदा असङ्ग और निर्लेप है, तथापि चित्तमें रहनेवाले क्लेशादिकोंका पुरुषके साथ आत्यन्तिक सम्बन्ध है, अर्थात् चित्तमें रहनेवाले क्लेशादि पुरुषमें अविवेकसे आरोपित हैं—जैसे योद्धाओं (लड़नेवालों)में जीत हार होती है, पर वह स्वामीकी कही जाती है अर्थात् जैसे राजा और सेनाका परस्पर स्वस्वामिभाव-सम्बन्ध होनेसे सेना-कर्तृक जयपराजयका स्वामिभूत राजामें व्यवहार होता है; क्योंकि वही उसके फलका भोक्ता है।

इस प्रकार श्रीरामचरितमानस (१ । ० । ६ श्लो०) में सभी आस्तिक-दर्शनोंके मतोंका समन्वय है—

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥

'जिनकी मायाके वशीभूत सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्मादि देवता और असुर हैं, जिनकी सत्तासे रस्सीमें सर्पभ्रमकी भाँति यह सारा दृश्य प्रपञ्च सत्य ही प्रतीत होता है और जिनके चरण ही केवल भवसागरसे तरनेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये एकमात्र नौका हैं, उन सब कारणोंके कारण और सबसे श्रेष्ठ, राम कहे जानेवाले भगवान् श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ।'

इसी-प्रसङ्गमें तो गोस्वामी तुलसीदासजीने अद्वैतवाद, द्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद तथा विशिष्टाद्वैतवाद—सभी वेदान्त-प्रतिपादित वादोंको अपने रामरूपमें चरितार्थ दिखलाया है।

मनु-शतरूपाकी तपश्चर्याके प्रसङ्गमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि 'विधि-हरि-शम्भुको नचानेवाला राम ही तटस्थ एवं कूटस्थ ब्रह्म है।'

'जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥'
(मानस १ । १४० । १)

—में पञ्चाननका पञ्चमुख उपदेश सार है। गोस्वामीजीके मतानुसार राम सर्वप्रेरक तथा सर्वान्तर्यामी ईश्वर हैं।

'सर प्रेरक रघुबंस बिभूषन'में वेदमाता गायत्रीके—'धियो यो नः प्रचोदयात्'—इस तीसरे चरणका भाष्य ही समा गया है। वे सगुण तथा निर्गुणमें भेद नहीं मानते।

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
(मानस १ । ११५ । १)

श्रीरामचरितमानसका राम सच्चिदानन्द है। वहाँ मोह-रात्रिका लवलेश नहीं। कहते हैं—

'राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥'
(मानस १ । ११५ । ३½)

और वह राम व्यापक ब्रह्म भी है। वह परमानन्द है। 'आनन्दं ब्रह्म'—यों कहा गया है—

'राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥'
(मानस १ । ११५ । ४)

कहीं-कहीं तो प्रकारान्तरसे द्वैतका निरसन भी है—

चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ॥
उमा राम बिषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥
(मानस १ । ११६ । २)

—जो मनुष्य आँखमें उँगली लगाकर देखता है, उसके लिये तो चन्द्रमा प्रकट ही दो हैं। श्रीरामके विषयमें ऐसी मोटी कल्पना करना वैसा है, जैसा आकाशमें अन्धकार, धूम और धूलिका होना।

इसके अतिरिक्त वह राम ही प्रकाश्य-प्रकाशक है—

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
(वही, १ । ११६ । ३-३½)

विषय, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके देवता और जीवात्मा—ये सभी एककी सहायतासे एक चेतन होते हैं—अर्थात् विषयोंका प्रकाश इन्द्रियोंसे, इन्द्रियोंका इन्द्रिय-देवताओंसे और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंका चेतन-जीवात्मासे प्रकाश होता है। इन सभीका जो परम प्रकाशक है, अर्थात् जिससे इन सभीको प्रकाश प्राप्त होता है, वही अनादि ब्रह्म अयोध्यानरेश श्रीरामचन्द्र हैं।

वेदान्तप्रतिपादित—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥
(श्वेताश्वतर० ३ । १९)

उपर्युक्त श्लोकानुसार

का चरित्र है। १२१वें अध्यायमें छवा दो सौ श्लोकोंमें विस्तारसे रामचरित्रका वर्णन है। इसमें एक स्थानपर सीता-लक्ष्मणके लिये अङ्गद-हनुमान् आदिद्वारा प्राणत्याग करने तथा एक जगहपर विभीषणद्वारा जगन्नाथजी एवं भगवान् श्रीरामनाथजीकी प्रतिमा प्राप्त करनेकी कथा है। देखिये अध्याय ७०—१७६ तथा अध्याय १५४—१५७ आदि।

'मरिष्याम इति प्रोक्त्वा गोलाङ्गूलाः पुनरीयतुः॥'

(१५७। २६ इत्यादि)

१२–ब्रह्मवैवर्तपुराणमें भी बार-बार श्रीसीतारामका चरित्र आया है। कृष्णजन्मखण्डके ६२वें अध्यायमें संक्षेपसे पूरा रामचरित्र आ गया है। इसमें एक जगह शूर्पणखाके पुष्करमें घोर तपस्या करके, अगले जन्ममें कुब्जा होकर, कृष्णरूपमें रामको प्राप्तकर कृतार्थ होनेकी कथा आती है। उस समय वर देते हुए उससे श्रीब्रह्माजीने कहा था—'श्रीराम प्रकृतिसे परे, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि सबके स्वामी हैं। इस जन्ममें एकनारीव्रत होनेसे उनकी प्राप्ति तुम्हारे लिये सर्वथा असम्भव है। जन्मान्तरमें वे तुम्हें पतिरूपमें प्राप्त हो सकेंगे।'

जन्मान्तरे च भर्तारं प्राप्स्यसि त्वं वरानने।
देहं त्यक्त्वा सा बभौ सा च कुब्जा बभूव ह॥

(कृ० ज० खं० ६२। ५०)

यही कथा अत्यन्त अन्तरसे गर्गसंहिताके मथुराखण्डमें भी आती है। इसमें राजा बहुलाश्वसे देवर्षि नारदने कहा था—

सैव शूर्पणखा नाम राक्षसी कामरूपिणी॥
अभूच्छ्रीमथुरायां तु कुब्जा नाम महामते।

(वही, ११। १०-११)

१३–ब्रह्माण्डपुराण, खण्ड ३। ७१ आदिमें भगवान् रामके २४वें त्रेतामें अवतार लेनेकी कथा आती है।

१४–भविष्यपुराणमें कई बार रामकथाका उल्लेख आया है। इसके प्रतिसर्गपर्व, अध्याय १५ तथा इसके उत्तर-पर्वके ६३वें एवं १६१वें अध्यायोंमें दशावतार-सम्बन्धी आदिमें रामके व्रतका विधान आदि है।

१५–१८ भागवत, देवीभागवत, देवीपुराण और महा-भागवतमें भी रामकथा विस्तारसे वर्णित है। भागवत स्कन्ध ५ के अध्याय १९ में तथा स्कन्ध ९ के १०–११ अध्यायोंमें रामकथा है। देवीभागवतके चौथे तथा नवें स्कन्धोंमें तथा देवीपुराणके चौरासीवें अध्यायमें रामकथा है।

१९–मार्कण्डेयपुराणके अन्तमें विस्तृत रामकथा थी, पर वह नष्ट हो गयी—यह नारदपुराणकी सूचीसे स्पष्ट है।

२०–लिङ्गपुराणके ६६वें अध्यायमें रामकी चर्चामात्र है।

२१–वामनपुराणमें भी रामचरित्रका उल्लेख प्राप्त होता है।

२२–वायुपुराणके २। २६। ११। १८३–१९९ में रामचरित्र है।

२३–वाराहपुराणके ४८वें अध्यायमें रामचरित्र है।

२४–विष्णुपुराणके ४थे अंशमें रघुवंशका वर्णन तथा रामचरित्र है।

२५–शिवपुराणके सती (पार्वती) खण्डकी पूरी रामकथा रामचरितमानसके प्रारम्भमें गोस्वामीजीद्वारा अनूदित है।

२६–स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्डके सेतुमाहात्म्य तथा धर्मारण्य-खण्ड पूरे-के-पूरे रामचरित्रमय हैं। वैष्णव-खण्डमें भी सम्पूर्ण अयोध्यामाहात्म्य एवं रामायण माहात्म्य, रामकथाएँ दी हैं।

२७–हरिवंशपुराण अध्याय १। ४१ आदिमें रामचरित्र है।*

* हरिवंशको कुछ लोग महाभारतमें और दूसरे लोग उपपुराणोंमें गणना करते हैं।

परम्पराके अनुरूप ही है। इसके अनन्तर विरक्त वैष्णवोंके लक्षण एवं कुल्हापका वर्णन है, तथा दीक्षासंस्कार, कण्ठी-धारण आदि वैष्णवाचार्योका वर्णन है। इस संहितामें ध्यान करने-योग्य बात एक है और वह यह कि ऊर्ध्वपुण्ड्रके भेद-प्रभेदमें भगवान् रामका श्रीहनुमान्‌के प्रति वचन है कि मेरे अनुरागी भक्त ऊर्ध्वपुण्ड्रके बीचमें 'श्री' (लाल रेखा) नहीं धारण करते और सीताजीके भक्त बीचमें 'बिन्दु-श्री' लगाते हैं। इसके अन्तमें भी 'श्रीरामः शरणं मम' मन्त्रकी महिमाका वर्णन है।

अब हम उन संहिताओंका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना चाहेंगे, जिनका उल्लेख रामानन्द-सम्प्रदायके मधुरोपासक संतोंने साम्प्रदायिक आकर ग्रन्थोंके भाष्यमें मतस्थापनके लिये उद्धृत किया है।

(७) श्रीशुकसंहिता

आरम्भमें गोलोकविहारी भगवान् कृष्ण एवं राधारानीके रास-विलासका वर्णन है, फिर लीला-रहस्यका वर्णन है, जिसमें राधा और कृष्ण दोनों ही परम देवाधिदेव भगवान् रामके शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं। ये राम पुरुषोत्तममात्र नहीं हैं, वे सनातन परब्रह्म हैं।

(८) श्रीवसिष्ठसंहिता

इस संहिताका नामोल्लेख एवं विषय-विवरण 'उपासनात्रय-सिद्धान्त' में आया है। इसमें दिव्य अयोध्याका वर्णन है। इसके १६वें अध्यायमें लिखा है कि सर्वोपरि वैकुण्ठ है, वैकुण्ठसे भी परे गोलोक है, गोलोकके मध्यमें साकेतलोक है, साकेतलोकके पूर्व मिथिला है, दक्षिणमें चित्रकूट है, पश्चिममें वृन्दावन है, उत्तरमें महावैकुण्ठ है, जहाँ सब पार्षदोंके सहित श्रीमन्नारायण रहते हैं। वे ही नारायण समस्त २४ अवतारोंके कारण हैं और वे ही श्रीरामचरित्रके मुख्याचार्य हैं। साकेतलोक सप्तावरणोंके भीतर है। इन आवरणोंका सविशेष वर्णन ही इस संहिताका मुख्य विषय है। परात्पर ब्रह्म राम ही सबके आदिकारण हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि इनके अंशके आवेश हैं।

(९) सदाशिवसंहिता

स्वामी रामचरणदास 'करुणासिन्धुजी'ने 'श्रीरामनवरत्न-सार-संग्रह' ग्रन्थ तैयार किया था। इसमें कई स्थलोंपर नाम-महिमाके सम्बन्धमें 'सदाशिवसंहिता'का उल्लेख है। इसके अनन्तर दिव्य अयोध्या एवं उसके सप्त आवरणोंका विशेष विस्तारसे वर्णन तथा साकेतविहारी भगवान् राम और भगवती सीताका बड़ा ही भव्य ध्यान है।

(१०) श्रीमहाशम्भुसंहिता

'श्रीरामनवरत्न'के पृष्ठ ११ पर महाशम्भुसंहिताके दो श्लोक उद्धृत हैं, जो जानकीजीने श्रीरामचन्द्रके प्रति कहे हैं। *यहाँ 'राम' नामकी महिमाका विषय है। श्रीजानकीजी कहती* हैं कि "कोई प्रणवसे भेद करते हैं, कोई अन्य किसी मन्त्रसे, परंतु प्रणव या अन्य बीजमन्त्र भी रकार-मकारसे ही सिद्ध होते हैं। राममन्त्रका प्रभाव पूरा-का-पूरा समझ लेना कठिन है। वेद अनादिकालसे 'राम'के नामकी थाह नहीं ले पा रहे हैं, औरोंकी तो क्या कथा?"

(११) हिरण्यगर्भसंहिता

'श्रीरामनवरत्न'के उक्त संस्करणके पृष्ठ ४१में 'हिरण्यगर्भ-संहिता'का उल्लेख है और अगस्त्यजीने सुतीक्ष्णजीसे कहा है कि *'अद्वैत आनन्दरूप शुद्ध-चैतन्य-सर्वलक्षण श्रीरामचन्द्र-जी सबके भीतर-बाहर इस ब्रह्माण्डमें प्रकाशित हो रहे हैं।'*

(१२) महासदाशिवसंहिता

श्रीरामनवरत्नके उक्त संस्करणके पृष्ठ ५७–५९ तक 'महासदाशिवसंहिता'का उल्लेख है, जिसमें यह कहा गया है कि 'नाना प्रकारके मन्त्रों, मार्गों एवं सिद्धोंमें भटकना और भटकना व्यर्थ है। सबसे श्रेष्ठ श्रीरामनाम है, जिसके परमाचार्य श्रीहनुमान्‌जी हैं; शेष सभी नाम श्रीरामनामके अंशमात्र हैं; परम धाम श्रीरामधाम है, रामभक्ति ही राजमार्ग है। श्रीमैथिलीजीके सहित श्रीरामजीका भजन, श्रीहनुमान्‌जीको महान् गुरुके रूपमें मानना तथा श्रीसीतारामजीके प्रति समर्पण—यही सदा मुक्ति देनेवाला है।'

(१३) ब्रह्मसंहिता

श्रीरामनवरत्नमें पृष्ठ २६पर 'ब्रह्मसंहिता'का एक ही श्लोक उद्धृत है—

पूर्णः पूर्णावतारश्च श्यामो रामो रघूद्वहः।
अंशा नृसिंहकृष्णाद्या राघवो भगवान् स्वयम्॥

'भगवान् रामजी पूर्णावतार एवं पूर्ण ब्रह्म हैं, कृष्ण-नृसिंहादि अवतार अंश हैं, श्रीराम स्वयं भगवान् हैं।'

(१४, १५, १६, १७) पुराणसंहिता, भरतमन्दारसंहिता, बृहत्सदाशिवसंहिता तथा सनत्कुमारसंहिता श्रीरामभक्तोंकी लोकभाषाने अभाव होते हुए भी श्रीसीतारामकी मधुर-उपासनाको हृदयंगम करनेके लिये परम उपयोगी हैं।

अर्थात् यदि वे आत्मतत्त्वको जानते थे तो उन परमात्माने सीताके लिये इतना विलाप क्यों किया और यदि उन्हें आत्मज्ञान नहीं था तो वे अन्य सामान्य जीवोंके समान ही हुए, फिर उनका भजन क्यों किया जाना चाहिये ? इस विषयमें आप ऐसे वाक्योंसे समझाइये कि मेरा संदेह निवृत्त हो जाय ।

तब देवाधिदेव भगवान् नीलकण्ठ शिवने माँ अम्बिकाको रामका स्वरूप समझाते हुए इस प्रकार बताया—श्रीरामचन्द्रजी निस्संदेह प्रकृतिसे परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दघन और अद्वितीय पुरुषोत्तम हैं, जो अपनी मायासे ही इस सम्पूर्ण जगत्‌को रचकर इसके बाहर-भीतर सब ओर आकाशके समान व्याप्त हैं तथा जो आत्मरूपसे सबके अन्तःकरणमें स्थित हुए अपनी मायासे इस विश्वको परिचालित करते हैं—

> रामः परात्मा प्रकृतेरनादि-
> रानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि ॥
> स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा
> नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः ।
> सर्वान्तरस्थोऽपि निगूढ आत्मा
> स्वमायया सृष्टमिदं विचष्टे ॥
> (वही, १ । १ । १७-१८)

भगवान् श्रीराम जब समस्त विघ्न-बाधाओंको पारकर राजसिंहासनपर आरूढ़ हुए, तब भक्तवर हनुमान्‌को राम-तत्त्वज्ञानकी अभिलाषा जाग्रत् हुई । अन्तर्यामी श्रीरामने श्रीहनुमान्‌के प्रति अपने तत्त्वका उपदेश देनेकी जगज्जननी सीताको आज्ञा दी । माता सीताने भी शरणागत हनुमान्‌को रामका निश्चित तत्त्व बताते हुए कहा था—

> रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
> सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम् ॥
> आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
> सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम् ॥
> (वही, १ । १ । ३२-३३)

अर्थात् वत्स हनुमान् ! तुम श्रीरामको साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमेश्वर समझो । ये निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयं प्रकाशमान और पापहीन परमात्मा ही हैं ।

तदनन्तर स्वयं भगवान् राम भी 'तत्त्वमसि'—वेदान्तके इस महावाक्यके आधारपर अपना अध्यात्मस्वरूप प्रियभक्त हनुमान्‌को ऐसा ही बताते हैं ।

विश्रवाके पुत्र रावणके अत्याचारसे संतप्त होकर समस्त देवगण ब्रह्मासहित जब श्रीहरिसे अवतार-हेतु प्रार्थना करते हैं, तब शेषशायी परात्पर भगवान् नारायण उन्हें राजा दशरथके यहाँ कौसल्या आदि तीन रानियोंके द्वारा पुत्ररूपसे चार अंशोंमें प्रकट होनेका आश्वासन देते हैं—

> तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने ।
> चतुर्धाऽऽत्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक् ॥
> (वही, १ । २ । २७)

अपने चरणोंकी रजके स्पर्शसे जब श्रीराम अहल्याका उद्धार कर देते हैं, तब उनका परमात्मत्व सिद्ध हो जाता है और अहल्या भी उन्हें पुराणपुरुष परमात्मा बताती हुई गुणगान करती है—

> 'सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण
> एकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।'
> (वही, १ । ५ । ४९)

शिवधनुर्-भङ्गके पश्चात् जानकीका परिणय कर जब राम अयोध्या लौटते हैं, तब भृगुनन्दन परशुराम उनसे अपना विष्णुधनुष चढ़वाकर उन्हें परमेश्वरके रूपमें स्वीकार करते हैं—

> 'राम राम महाबाहो जाने त्वां परमेश्वरम् ॥'
> (अ० रा०, बा० ७ । २०)

मुनिवर वामदेव भी भगवान् रामको 'नारायण' और सीताको 'लक्ष्मी' बताते हैं—

> एष रामः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः ।
> एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता ॥
> (वही, २ । ५ । ११)

स्नेह और सेवाकी मूर्ति भरत भी अपनेको धिक्कारते हुए रामको 'परमात्मा' बताते हैं—

> धिङ्मां जातोऽस्मि कैकेय्यां पापराशिसमानतः ।
> मन्निमित्तमिदं क्लेशं रामस्य परमात्मनः ॥
> (अ० रा०, अयो० ८ । ११)

यहाँतक कि श्रीरामको वनवास देनेवाली माता कैकेयी भी आगे चलकर उन्हें विष्णुभगवान् बताती है—

> 'त्वं साक्षाद्विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः ।'
> (वही, २ । ९ । ५०)

और तो और, राक्षसराज रावण भी उनका परम शत्रु होते हुए उन्हें 'परमात्मा' बताता है और उनके हाथसे मरकर परमपद प्राप्त करनेके लिये ही उनसे वैर ठानता है—

अध्यात्मरामायणके श्रीराम

(लेखक—कविरत्न पं० श्रीमदनकिशोरजी गौतम 'निर्मल', एम्० ए०)

अखिललोकनायक भयतापहारी मर्यादापुरुषोत्तम आनन्दकन्द दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रके चरित्रको प्रकाशित करनेवाले प्रधानभूत तीन ग्रन्थ-रत्नोंमें प्रथम है—आदिकाव्य 'वाल्मीकिरामायण', द्वितीय है—'अध्यात्मरामायण' तथा तीसरा 'रामचरितमानस'। महर्षि वाल्मीकिने भगवान् रामका अपने काव्यमें जो चरित्र-चित्रण किया है, उसके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि उनका आदर्श चरित्र लोकके लिये परम अनुकरणीय था।

अध्यात्मरामायणके कतिपय स्थलोंपर राम हमें अतिमानुष कर्म करते हुए दिखायी देते हैं। इनसे उनके ईश्वर होनेका स्पष्ट संकेत मिलता है। यथा-अर्धमुहूर्तमें एकाकी श्रीरामद्वारा चौदह हजार राक्षसोंका नाश कर दिया जाना—

खरश्च त्रिशिराः सङ्ख्ये दूषणश्चेति राक्षसाः।
चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां महात्मनाम्॥
निहतानि क्षणेनैव रामेणाद्भुतकर्मणा।
(अध्या० । ३ । ५ । ४३-४४)

जगज्जननी माता सीताके शब्दोंमें भी वे लोकनाथ प्रदर्शित किये गये हैं—

'कौसल्या लोकभर्तारं सुषुवे यं मनस्विनी।'

यथा—

कथानककी घटनाओंको लेकर वाल्मीकि और अध्यात्म-रामायणमें भिन्नता है। रामचरितमानस और अध्यात्मरामायणके घटनाक्रममें कुछ परिवर्तनके साथ अत्यन्त साम्य दिखायी देता है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदासने अपने 'रामचरितमानस'का मुख्य आधार 'अध्यात्मरामायण'को ही बनाया है।

'अध्यात्मरामायण' एक आख्यानके रूपमें 'ब्रह्माण्ड-पुराण'के उत्तरखण्डके अन्तर्गत माना जाता है। अतः इसके रचयिता महामुनि वेदव्यास ही हैं। इस परमपवित्र गाथाको साक्षात् भगवान् शिवजीने अपनी प्रिया आदिशक्ति पार्वतीको सुनाया है। इसमें परम पावन रामचरित्रका वर्णन करते-करते यत्र-तत्र प्रसङ्गानुसार भक्ति, ज्ञान, उपासना, नीति और सदाचारके दिव्य उपदेश दिये गये हैं। विविध विषयोंका वर्णन होते हुए भी इसमें प्रधानतया 'अध्यात्मतत्त्व'के विवेचनकी ही है और इसीलिये इसका 'अध्यात्मरामायण' यह नाम सर्वथा सार्थक है। प्रस्तुत ग्रन्थमें भगवान् श्रीराम मूर्तिमान् 'अध्यात्मतत्त्व' हैं। शायद ही किसी काण्डका कोई सर्ग हो, जिसमें श्रीरामको अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक विष्णुका स्वरूप न बताया गया हो।

ग्रन्थके आरम्भमें ही माता पार्वती भगवान् शंकरसे श्रीपुरुषोत्तमभगवान्के सनातन तत्त्वको पूछती हैं—

'पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य
सनातनं त्वं च सनातनोऽसि॥'
(१ । १ । ७)

क्योंकि वे भगवान् राम विद्वानोंके द्वारा परम अद्वितीय, आदिकारण, प्रकृतिके गुण-प्रवाहसे परे बताये जाते हैं। किंतु कोई-कोई कहते हैं कि श्रीराम परब्रह्म होनेपर भी अपनी मायासे आवृत होनेके कारण अपने आत्मस्वरूपको नहीं जानते थे। अतः वसिष्ठादिके उपदेशसे उन्होंने अध्यात्मतत्त्वको जाना—

वदन्ति रामं परमेकमाद्यं
निरस्तमायागुणसम्प्रवाहम्।
भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः
परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः॥
वदन्ति केचित् परमोऽपि रामः
स्वाविद्यया संवृतमात्मसंज्ञम्।
जानाति नात्मानमतः परेण
सम्बोधितो वेद परात्मतत्त्वम्॥
(१ । १ । १२-१३)

माता पार्वती भी यही शङ्का करती हुई भगवान् भूतनाथसे प्रश्न करती हैं—

यदि स्म जानाति कुतो विलापः
सीताकृतेऽनेन कृतः परेण।
जानाति नैवं यदि केन सेव्यः
समो हि सर्वैरपि जीवजातैः॥
अत्रोत्तरं किं विदितं भवद्भि-
स्तद् ब्रूत मे संशयभेदि वाक्यम्।
(१ । १ । १४-१५)

अर्थात् यदि वे आत्मतत्त्वको जानते थे तो उन परमात्माने सीताके लिये इतना विलाप क्यों किया और यदि उन्हें आत्मज्ञान नहीं था तो वे अन्य सामान्य जीवोंके समान ही हुए, फिर उनका भजन क्यों किया जाना चाहिये ? इस विषयमें आप ऐसे वाक्योंसे समझाइये कि मेरा संदेह निवृत्त हो जाय।

तब देवाधिदेव भगवान् नीलकण्ठ शिवने माँ अम्बिकाको रामका स्वरूप समझाते हुए इस प्रकार बताया—श्रीरामचन्द्रजी निस्संदेह प्रकृतिसे परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दघन और अद्वितीय पुरुषोत्तम हैं, जो अपनी मायासे ही इस सम्पूर्ण जगत्‌को रचकर इसके बाहर-भीतर सब ओर आकाशके समान व्याप्त हैं तथा जो आत्मरूपसे सबके अन्तःकरणमें स्थित हुए अपनी मायासे इस विश्वको परिचालित करते हैं—

रामः परात्मा प्रकृतेरनादि-
रानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि ॥
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा
नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः ।
सर्वान्तरस्थोऽपि निगूढ आत्मा
स्वमायया सृष्टमिदं विचष्टे ॥
(वही, १ । १ । १७-१८)

भगवान् श्रीराम जब समस्त विघ्न-बाधाओंको पारकर राजसिंहासनपर आरूढ हुए, तब भक्तवर हनुमान्‌को राम-तत्त्वज्ञानकी अभिलाषा जाग्रत् हुई । अन्तर्यामी श्रीरामने श्रीहनुमान्‌के प्रति अपने तत्त्वका उपदेश देनेकी जगज्जननी सीताको आज्ञा दी । माता सीताने भी शरणागत हनुमान्‌को रामका निश्चित तत्त्व बताते हुए कहा था—

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम् ॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम् ।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम् ॥
(वही, १ । १ । ३२-३३)

अर्थात् वत्स हनुमान् ! तुम श्रीरामको साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमेश्वर समझो । ये निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयं प्रकाशमान और पापहीन परमात्मा ही हैं ।

तदनन्तर स्वयं भगवान् राम भी 'तत्त्वमसि'—वेदान्तके इस महावाक्यके आधारपर अपना अध्यात्मस्वरूप प्रियभक्त हनुमान्‌को ऐसा ही बताते हैं ।

विश्रवाके पुत्र रावणके अत्याचारसे संतप्त होकर समस्त देवगण ब्रह्मासहित जब श्रीहरिसे अवतार हेतु प्रार्थना करते हैं, तब शेषशायी परात्पर भगवान् नारायण उन्हें राजा दशरथके यहाँ कौसल्या आदि तीन रानियोंके द्वारा पुत्ररूपसे चार अंशोंमें प्रकट होनेका आश्वासन देते हैं—

तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने ।
चतुर्धात्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक् ॥
(वही, १ । २ । २७)

अपने चरणोंकी रजके स्पर्शसे जब श्रीराम अहल्याका उद्धार कर देते हैं, तब उनका परमात्मत्व सिद्ध हो जाता है और अहल्या भी उन्हें पुराणपुरुष परमात्मा बताती हुई गुणगान करती है—

'सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण
एकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।'
(वही, १ । ५ । ४९)

शिवधनुष-भङ्गके पश्चात् जानकीका परिणय कर जब राम अयोध्या लौटते हैं, तब भृगुनन्दन परशुराम उनसे अपना विष्णुधनुष चढ़वाकर उन्हें परमेश्वरके रूपमें स्वीकार करते हैं—

'राम राम महाबाहो जाने त्वां परमेश्वरम् ॥'
(अ० रा०, बा० ७ । १०)

मुनिवर वामदेव भी भगवान् रामको 'नारायण' और सीताको 'लक्ष्मी' बताते हैं—

एष रामः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः ।
एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता ॥
(वही, २ । ५ । ११)

स्नेह और सेवाकी मूर्ति भरत भी अपनेको धिक्कारते हुए रामको 'परमात्मा' बताते हैं—

धिङ्मां जातोऽस्मि कैकेय्यां पापराशिसमानतः ।
मन्निमित्तमिदं क्लेशं रामस्य परमात्मनः ॥
(अ० रा०, अयो० ८ । ११)

यहाँतक कि श्रीरामको वनवास देनेवाली माता कैकेयी भी आगे चलकर उन्हें विष्णुभगवान् बताती है—

'त्वं साक्षाद्विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः ।'
(वही, २ । ९ । ५७)

और तो और, राक्षसराज रावण भी उनका परम शत्रु होते हुए उन्हें 'परमात्मा' बताता है और उनके हाथसे मरकर परमपद प्राप्त करनेके लिये ही उनसे वैर ठानता है—

राम अपनी प्रजाको कितने प्रिय थे, इस बातका प्रमाण उनके वनगमनके समय प्रजाकी विह्वलतासे और उनके महाप्रयाणके समय उन्हींके साथ स्वर्गको प्रयाण करनेसे स्पष्ट होता है—

पौराः सर्वे समागत्य विप्रास्तत्राविदूरतः ।
सत्यं रामं पुरं नेतुं नो चेद्गच्छामहे वनम् ॥
(वही, अयो० ५ । ५६)

एवं—

तवानुगमने राम कृत्वा नो दृढा मतिः ।
पुत्रदारादिभिः सार्धमनुयामोऽद्य सर्वथा ॥
तपोवनं वा स्वर्गं वा पुरं वा रघुनन्दन ।
(वही, उत्तर० ९ । ११-१४)

'हे राम ! हमारे हृदयमें आपका अनुगमन करनेका ही दृढ़ विचार है । अतः हे रघुनन्दन ! आप तपोवन, नगर, स्वर्ग आदि कहीं भी जायँ, अब हम स्त्री-पुत्रादिके सहित सर्वथा आपका ही अनुसरण करेंगे ।'

रामके आदर्श राज्यको बार-बार स्मरणकर उसकी कल्पनाको साकार करनेमें हम भारतवासी ही नहीं, अपितु समग्र विश्वका जन-जन ही आज भी प्रयत्नशील है । श्रीरामके राज्यमें विधवाका क्रन्दन सुनायी नहीं देता था, सर्प और लुटेरोंका भय न था, मेघ समयपर वर्षा करते थे, प्रजा वर्णाश्रमधर्मोंसे युक्त थी एवं रामजी अपनी प्रजाका पुत्रवत् पालन करते थे । इस प्रकार राज्य करते हुए मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामने इस धराधामपर ग्यारह हजार वर्षोंतक निवास किया—

'न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ॥'
(वही, ६ । १६ । ९९)

प्राकृत-साहित्यमें रामकथा

(लेखक—श्रीअगरचन्दजी नाहटा)

भारतीय जन मानसमें वैसे तो अनेक देवी-देवताओंके प्रति आदरकी भावना दिखायी देती है, पर उनमेंसे सबसे अधिक आदर लोक-जीवनमें जिन महापुरुषोंके प्रति दिखायी देता है, वे हैं—राम और कृष्ण । रामका चरित्र वास्तवमें ही एक आदर्श रहा है, अतः उनके चरित्रका जितना भी चिन्तन एवं प्रचार हो, अच्छा ही है ।

रामकथाको लेकर देश और विदेशोंमें इतने अधिक साहित्यका निर्माण हुआ है कि उन सबकी पूरी जानकारी प्राप्त कर लेना बहुत कठिन है । डा० रेवरेंड फादर कामिल बुल्केने इस सम्बन्धमें जो महत्त्वपूर्ण खोज की है, उससे रामकथासम्बन्धी साहित्यकी यद्यपि कुछ झाँकी मिल जाती है, तथापि अभी बहुत-से ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनकी ओर उनका ध्यान ही नहीं गया । ऐसे ही एक महत्त्वपूर्ण प्राकृत भाषाके जैन कथा-ग्रन्थ 'वसुदेव हिन्डी'में वर्णित रामकथाको यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है । इस ग्रन्थकी रचना संघदास गणिने ५वीं शताब्दीमें की थी । वैसे इसमें श्रीकृष्णके पिता वसुदेवके भ्रमण-वृत्तान्तोंका वर्णन प्रधानरूपसे है; पर अन्य अनेक कथाएँ व प्रसङ्ग भी इसमें वर्णित हैं ।

स्व० श्रीनाथूरामजी प्रेमीने अपने 'जैन-साहित्य और इतिहास'में रामकथाकी विविध धाराओंका उल्लेख करते हुए वाल्मीकिरामायण, बौद्ध जातक और जैन उत्तरपुराणोंकी कथा संक्षेपमें दी है । उत्तरपुराणके अनुसार सीता मन्दोदरीकी कुक्षिसे उत्पन्न हुई थी । प्रेमीजीने लिखा है कि 'जहाँतक मैं जानता हूँ, यह उत्तरपुराणकी रामकथा श्वेताम्बर-सम्प्रदायमें प्रचलित नहीं है ।' पर बात वास्तवमें ऐसी नहीं है । दिगम्बर-साहित्यकी तरह श्वेताम्बर-साहित्यमें भी रामकथाके दो रूपान्तर दृष्टिगत मिलते हैं, जिनमेंसे 'पउमचरिउ' और 'त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित'में वर्णित रामकथाने तो काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली; पर 'वसुदेव हिन्डी'की रामकथाकी ओर विद्वानोंका ध्यान नहीं गया; क्योंकि एक तो 'वसुदेव-हिन्डी' श्रीकृष्णके पिता वसुदेवके भ्रमण-वृत्तान्त सम्बद्ध ग्रन्थ है, दूसरे, रामायणकी कथा उसमें प्रसङ्गवश बहुत ही संक्षेपमें आयी है और उस कथाका प्रचार कम रहनेसे परवर्ती ग्रन्थकारोंने 'पउमचरिउ'की कथाको ही अधिक अपनाया । ऐसे प्राकृत भाषामें एक अप्रसिद्ध विस्तृत 'सीता-चरित' भी प्राप्त हुआ है । उसके सम्बन्धमें हमारा एक लेख छप भी चुका है, पर विस्तृत आलोचना तो ग्रन्थके प्रकाशित होनेके बाद ही की जा सकती है ।

'वसुदेव हिन्डी'के प्रथम खण्डके ... लम्भकमें रामकथा प्रसङ्ग इस

कैकेयीको दशरथसे दो वरदानोंकी प्राप्ति

स्वप्नोपचारमें कुशल कैकेयीसे संतुष्ट होकर राजाने किसी समय उससे कहा था कि 'तू वर माँग' । उसने कहा—'अभी मेरा वर रहने दो, काम पड़नेपर माँगूँगी ।' एक बार दशरथका सीमाके राजाके साथ विरोध हो गया । उसके बीच युद्धमें दशरथ पकड़े गये । देवी कैकेयीको कहलवाया गया कि 'राजा पकड़ लिये गये हैं, इसलिये तुम चली जाओ' । वह बोली—'शत्रु यदि प्रयत्न करेगा तो भाग जानेपर भी मुझे पकड़ लिया जायगा, इसलिये मैं खुद भी युद्ध करूँगी । मैं हारूँ नहीं, तबतक कौन भागा गिना जा सकता है ?' इस प्रकार कहकर, कवच पहन, रथमें बैठ, छत्रसे युक्त हो, वह युद्ध करने चली । 'जो वापस मुड़े, उसे मार डालो'—इस प्रकार कहती हुई वह शत्रुसेनाका नाश करने लगी । अनुरागसहित अपना पराक्रम दिखलाते हुए योद्धा फिर युद्ध करने लगे । योद्धाओंको वह सरोपाव (पुरस्कार) देने लगी । इस प्रकार देवीद्वारा शत्रुसैन्यके पराजित होनेपर मुक्त हुए दशरथ कहने लगे—'देवी ! तुम्हारा काम महान् पुरुष-जैसा है, इसलिये वर माँगो ।' वह बोली, 'मेरा दूसरा वर भी अभी रहने दीजिये, काम पड़नेपर ले लूँगी ।'

रामराज्याभिषेककी तैयारी और वनवास

बहुत वर्ष बीत जानेके बाद तथा पुत्रोंके युवा हो जानेपर वृद्ध दशरथने रामके राज्याभिषेककी आज्ञा दी । कुब्जा मन्थराने यह खबर कैकेयीको दी । प्रसन्न हो, उसने मन्थराको प्रीतिसूचक आभरण दिया । मन्थराने देवी कैकेयीसे कहा, 'दुःखदायिनी वेलामें तुम प्रसन्न हो रही हो । मैं तो अपमान-सागरमें डूब रही हूँ, पर तुम जानती नहीं । कौशल्या और रामकी तुम्हें चिरकालतक सेवा करनी पड़ेगी, उनका दिया हुआ खाना पड़ेगा । इसलिये मोह त्यागकर, राजाद्वारा तुम्हें पहलेसे जो दो वर प्राप्त हैं, उनसे क्रमशः भरतका राज्याभिषेक और रामका वनवास माँग लो ।' मन्थराके वचन मान, कैकेयी दुःखित मुँह बनाकर कोपभवनमें चली गयी । दशरथने यह सुना तो वे उसे मनाने गये । परंतु उसने कोप नहीं छोड़ा । दशरथने उससे कहा, 'बोलो, क्या करूँ ?' कैकेयीने कहा, 'तुमने दो वर दिये थे; यदि सत्यवादी हो तो उन्हें मुझे दो ।' राजाने कहा—'बोलो, क्या दूँ ?' तब संतोषसे विकसितवदन हो, वह कहने लगी—'भरत आजसे राजा बनें और दूसरे पक्षमें राम बारह वर्षतक वनमें रहें ।' तब दुःखी हो, राजाने कहा, 'देवी ! ऐसा बुरा हठ मत कर । बड़ा पुत्र (राम) गुणोंका आगार है, वही पृथ्वीका पालन कर सकता है । अतः इसके अतिरिक्त दूसरा जो कहे, वह दे दूँ ।' कैकेयी बोली—'यदि सत्यवादी हो तो ये ही वर दो, दूसरा कुछ भी मुझे नहीं चाहिये । जो आपकी इच्छा हो, वह करो ।' तब उसे बहुत ही भला-बुरा कहकर राजाने रामको बुलाया और गद्गद कण्ठसे बोले—'कैकेयी पूर्वकालमें मुझसे प्राप्त दो वर माँग रही है—राज्य भरतको मिले और तू वनमें जा । इसलिये तू ऐसा कर, जिससे मैं झूठा न बनूँ ।' रामने नतमस्तक हो दोनों बातें स्वीकार कर लीं । फिर सीता और लक्ष्मणसहित राम वीर-वेषधारी होकर, लोगोंके मन, नयन और मुख-कमलको म्लान करते हुए, कमलवनको संकुचित करता हुआ सूर्य जिस तरह अस्ताचलको जाता है, उसी प्रकार प्रजाको बिलखते हुए छोड़कर वनको रवाना हो गये । 'हा पुत्र ! हा ज्ञाननिधि ! हा सुकुमार ! हा अदुःखोचित ! मुझ मन्दभाग्यके लिये अकारण ही देशनिष्कासित तू वनमें किस प्रकार समय बितायेगा ?'—इस प्रकार विलाप करते हुए दशरथ मृत्युको प्राप्त हुए ।

भरतको रामपादुकाओंकी प्राप्ति

पीछेसे भरत अपने मामाके देशसे लौटा । सब्बी घटना सुनकर उसने माताको फटकारा और अपने लोक-सम्पत्तियों सहित वह रामके पास पहुँचा । उसने रामको पितृमरणका समाचार सुनाया । रामद्वारा पिताके जलदानकी क्रिया सम्पन्न हो जानेके बाद उन्हें आशाओंसे भरे मुँहवाली भरतकी माँ कैकेयीने कहा—'पुत्र ! तुमने पिताकी आज्ञाका पालन किया । अब तुम्हें अपयशके कर्दममें मेरा उद्धार, कुलक्रमागत राज्य-लक्ष्मीका उपभोग और भाइयोंका पालन करना ही योग्य होगा ।' रामने कहा—'माता ! तुम्हारा वचन टाला नहीं जा सकता, परंतु उस अमान्यताका कारण सुनो । राजा सत्यप्रतिज्ञ होकर ही प्रजापालनमें समर्थ हो सकता है, सत्यसे च्युत होकर वह अपनी पत्नीके पालनमें भी अक्षम होता है । पिताके वचन-पालनार्थ ही मैंने वनवास स्वीकार किया है । अब मुझसे अयोध्या लौट चलनेका आग्रह मत करो ।' रामने भरतको आज्ञा दी, 'यदि मैं तुमसे बड़ा हूँ और मेरा तुमपर अधिकार है तो तुम्हें मेरी आज्ञाका पालन करना है और [illegible] भर्त्सना नहीं करनी है ।'

प्रार्थना करने लगा—'आर्य ! प्रजापालनके कार्यके लिये यदि किसीकी तरह मुझे नियुक्त किया गया है तो मुझे आप अपनी पादुकाएँ देनेकी कृपा करें ।' रामने 'ठीक है' कहकर यह बात मान ली—पादुकाएँ दे दीं । भरत पुनः अयोध्या चला गया ।

सीताहरणकी पूर्वभूमिका

इस तरह सीता-लक्ष्मणसहित राम तपस्वियोंके आश्रम देखते तथा दक्षिण दिशाकी ओर बढ़ते हुए एक निर्जन स्थानपर पहुँचे । वहाँ एकान्त वन-प्रदेशोंमें वे सीताके साथ रहे । कमलके समान नेत्रोंवाले और देवकुमारसदृश रामको देखकर कामवश हुई रावणकी बहन शूर्पणखा आकर एक दिन उनसे कहने लगी, 'देव ! मुझे स्वीकार करें ।' तब रामने कहा—'मुझसे ऐसी बात मत कहो, मैं परायी स्त्रीसे प्रेम नहीं करता ।' इसपर जनककुमारी सीताने कहा—'नर-पुरुषसे प्रणयकी प्रार्थना कर रही है, इसलिये तू मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाली निर्लज्ज है ।' तब कुपित हो, भीषणरूप धारण कर वह सीताको डराने लगी और बोली 'तुम्हारे पतिके सामने मैं नाश कर दूँगी, तू मुझे पहचानती नहीं ?' फिर रामने—'यह स्त्री होनेके कारण अवध्य है'—यह विचारकर उसके नाक-कान काट लिये । शूर्पणखा अपने पुत्र खर-दूषणके पास गयी । इस निरपराधिनीको दशरथके पुत्र रामने इस प्रकार दुःखी किया है, यह जान वे कहने लगे, 'माता ! दुःखी मत हो । अभी बाणसे छिदे हुए राम और लक्ष्मणका रुधिर आज हम गिद्धोंको पिलायेंगे ।' इतना कहकर वे रामके पास पहुँचे । इन्होंने रामसे कहा—'राम ! युद्धके लिये तैयार हो ।' तब धर्म एवं वैभव (कुशले) सम्पन्न पराक्रमी राम और लक्ष्मण दोनों भाई धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर खड़े हो गये । उन्होंने युद्धमें पराक्रम और शौर्यसे खर-दूषणका नाश कर दिया ।

उसके बाद शूर्पणखा रावणके पास गयी । उसे अपने नाक-कान कटने और दुष्टोंके मरनेका हाल सुनाया और कहने लगी—'देव ! यह मानवी स्त्री है । मुझे तो ऐसा लग रहा है कि सम्पूर्ण युवतियोंके रूपका मन्थन करके लोकके नेत्रोंको आनन्द देनेवाली उस नारीका निर्माण किया गया है । वह तुम्हारे अन्तःपुरके योग्य है ।'

सीताहरण

इस प्रकार सीताके रूप-सौन्दर्यसे उन्मत्त हुए रावणने अपने अमात्य मारीचको प्रेरणा की, 'तू आश्रममें जा । वहाँ स्वर्णरचित मृगका रूप बनाकर रमणीयताकी चेष्टाओंसे लुभा, जिससे मेरा काम हो जाय ।' तदनन्तर मारीच रत्न-जटित मृगका रूप धारणकर घूमने लगा । उसे देखकर सीताने रामसे कहा—'आर्यपुत्र ! अपूर्व रूपवाले इस मृग-शावकको पकड़िये, यह मेरे लिये खिलौना होगा ।' फिर राम 'ठीक है, ऐसा ही होगा'—यह कहकर धनुष हाथमें लेकर उसके पीछे-पीछे जाने लगे । वह मृग भी धीरे-धीरे चलकर फिर जोरसे भागने लगा । 'तू कहाँ जायगा ?' यों कहते-कहते राम भी उसके पीछे दौड़ने लगे । इस प्रकार दूरतक जानेके बाद रामने जान लिया कि 'जो वेगमें मुझसे भी तेज रहा है, वह मृग नहीं हो सकता । यह तो कोई मायावी है ।' यह विचारकर उन्होंने बाण फेंका । तब मारीचने मरते-मरते विचारा कि 'स्वामीका काम कर दूँ ।' उसने 'लक्ष्मण ! मुझे बचाओ ।' इस तरह जोरसे चीख मारी । यह सुनकर सीताने लक्ष्मणसे कहा—'जल्दी जाओ, भयभीत स्वामीने ही यह चीख मारी है । निश्चय ही उनपर आपत्ति आयी है ।' तब लक्ष्मणने कहा—'मुझे भैयाके लिये तनिक भी भय नहीं है । तुम कह रही हो, इसलिये जा रहा हूँ ।' फिर वे भी हाथमें धनुष लेकर जिस मार्गसे राम गये थे, उसी मार्गपर तेजीसे भागे ।

यह अवसर पाकर विश्वसनीय तापसका रूप धारणकर रावण सीताके पास आया । सीताको देखकर उसके रूपातिशयसे मुग्ध रावणने बिना किसी विघ्नकी परवा किये रोती-कलपती हुई सीताका हरण कर लिया । उधर राम और लक्ष्मणने वापस आनेपर सीताको न पाकर, दुःखित हो, उनकी खोज आरम्भ की । रावणको मार्गमें जटायु गिद्धने रोक लिया था । उसे हराकर [illegible] देखा हुआ वह लङ्का पहुँचा । सीताके लिये विचार करते हुए तथा मरनेको प्रस्तुत रामको लक्ष्मणने कहा, 'आर्य ! सीताके लिये शोक करना आपको शोभा नहीं देता । यदि मरना ही चाहते हैं तो शत्रुको मारनेके लिये प्रयत्न क्यों नहीं करते ? मार्गमें जटायुने कहा ही था कि रावणने सीताका हरण किया है ।' फिर, 'युद्ध करनेवालोंके सामने तो जय एवं मरण दोनोंका मार्ग खुला है, किंतु विलाप करनेवाले [illegible] लिये तो केवल मरण ही है ।' इस प्रकार राम और लक्ष्मण दोनोंने विचार किया ।

सुग्रीव-मैत्री, वालि-वध

तत्पश्चात् राम और लक्ष्मण किष्किन्धापर्वतपर पहुँचे । वहाँ वालि और सुग्रीव नामक दो विद्याधर महा[illegible]

रहते थे। उनके बीच स्त्रीके कारण विरोध हो गया था। बालीद्वारा पराजित सुग्रीव हनुमान् और जाम्बवान्—इन दो मन्त्रियोंके साथ किष्किन्धाका आश्रय लेकर रह रहा था। देव-कुमार-सदृश सुन्दर और हाथमें धनुष धारण किये हुए राम और लक्ष्मणको देख हनुमान्ने भागते हुए सुग्रीवसे कहा, 'बिना कारण जाने मत भागो; पहले यह जानना चाहिये कि ये कौन हैं। फिर जो उचित होगा, करेंगे।'

उसके बाद सौम्य रूप धारण करके हनुमान् उनके पास गया। उसने युक्तिपूर्वक राम-लक्ष्मणसे पूछा—'आप कौन हैं और किस कारण वनमें आये हैं? वनके योग्य तो आप हैं ही नहीं।' तब लक्ष्मणने कहा—'हम इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न दशरथके पुत्र राम-लक्ष्मण हैं और पिताकी आज्ञासे वनमें आये हैं। मृगके द्वारा हमें भ्रमित करके सीताका हरण कर लिया गया है। उसकी खोजमें हम घूम रहे हैं। परंतु आप कौन हैं? और किस कारण वनमें रहते हैं?' हनुमान्ने बतलाया—'हम विद्याधर हैं। हमारे स्वामी सुग्रीव हैं। अपने बलवान् भाई बालीसे पराजित हुए वे हमारे साथ किष्किन्धाका आश्रय लेकर रह रहे हैं। आपको उनके साथ मित्रता करनी चाहिये।' रामने यह बात मान ली। अग्निकी साक्षीमें वे मैत्री-बन्धनमें बँध गये। बलकी परीक्षा कर लेनेके बाद सुग्रीवने रामको बालि-वधके लिये नियुक्त किया। वे दोनों भाई समान रूप-रंगवाले थे। उनमें विशेष अन्तर नहीं जानते हुए रामने बाण छोड़ा। बालीने सुग्रीवको पराजित किया। फिर दोनोंमें भेद जाननेके लिये सुग्रीवको माला पहनायी गयी और तब एक ही बाणसे बालीको मारकर रामने सुग्रीवको राजा बना दिया।

तत्पश्चात् सीताका वृत्तान्त जाननेके लिये हनुमान् गये। वापस आकर उन्होंने सीताकी स्थिति बतलायी। तदनन्तर रामकी सूचनासे सुग्रीवने भरतके पास विद्याधर भेजे। भरतने चतुरङ्ग सेना भेजी। विद्याधरोंद्वारा संचालित यह सेना सुग्रीवके साथ समुद्रके किनारे पहुँची। वहाँ समुद्रके मध्यभाग-की पंक्तिमें सेतु बाँधा गया। सेना लङ्काके समीप उतरी और शुभ मुहूर्तमें पड़ाव डाला गया। अपने परिवार और सेना-सहित रावण भी सेनासहित रामको नगण्य समझ रहा था।

विभीषणद्वारा रावणको हित-शिक्षा

उसके बाद विभीषणने विनयपूर्वक प्रणाम करके रावणसे प्रार्थना की—'राजन्! हितकी बात यदि अप्रिय भी हो तो वह छोटे-बड़े सभीको कह देनी चाहिये। रामकी पत्नी सीताका हरण करके आपने अच्छा काम नहीं किया है। सम्भवतः यह भूलसे ही हुआ होगा, परंतु अब तो सीताको वापस भेज दें। कुलका नाश मत कराइये। खर-दूषण और बालीके विद्यायुक्त होते हुए भी रामने उनका अनायास ही नाश कर दिया है। स्वामीको तो सेवककी पत्नीकी भी इच्छा नहीं करनी चाहिये, फिर बलवान् और अन्य पुरुषकी पत्नीकी तो बात ही कैसी। राजाओंकी तो इन्द्रियनिग्रहसे ही जय होती है। मेधावी पुरुषोंने चार प्रकारकी बुद्धि बतलायी है—मेधा, श्रुति, वितर्क और शुभ कार्योंमें दृढ़ संकल्प। आप मेधावी और मतिमान् हैं। अतः हर प्रकारसे कार्य सिद्ध कर सकते हैं; परंतु आपका अभिनिवेश (दृढ़ संकल्प) तो अकार्यमें है। इससे आपसे प्रार्थना करता हूँ—जो कौर खाया जा सके, खानेके बाद पच जाय और पचनेके बाद पथ्य बन जाय, वही खाना चाहिये। इसपर विचारकर आप रामभार्याको लौटा दें। इससे परिजनोंका भी कल्याण है।'

राम-रावण-युद्ध

इस प्रकार निवेदन करनेपर भी जब रावणने उसकी बात नहीं सुनी, तब विभीषण चार मन्त्रियोंके साथ रामके पास चला गया। सुग्रीवके परामर्शको मानकर रामने विभीषणका सम्मान किया। विभीषणके परिवारमें जो विद्याधर थे, वे रामकी सेनामें मिल गये। फिर राम और रावणके पक्षवाले विद्याधरों और राक्षसोंका युद्ध प्रारम्भ हुआ। दिनोंदिन रामका सैन्यबल बढ़ने लगा। मुख्य योद्धाओंके नष्ट होनेपर विजयाकाङ्क्षी रावण उन विद्याओंको नष्ट करनेवाली स्यालक्ती विद्याकी साधना करने लगा। रावणको विद्या-साधनामें लगा जानकर रामके योद्धा नगरमें प्रविष्ट होकर नगरका नाश करने लगे। इससे क्रुद्ध हुआ रावण कवच धारण करके, सज्जित हो, रथमें बैठकर निकला। भयंकर युद्ध करता हुआ वह लक्ष्मणके साथ भिड़ गया। जब उसके सब शस्त्र निष्फल हो गये, तब क्रुद्ध हो रावणने लक्ष्मणका वध करनेके लिये चक्र चलाया। परंतु लक्ष्मणकी महानुभावताके प्रभावसे वह चक्र उसके वक्षःस्थल-पर धारकी ओरसे नहीं पड़ा, टेढ़ा पड़ गया। लक्ष्मणने वही चक्र रावणके वधके लिये फेंका। देवताद्वारा अधिष्ठित वह चक्र कुण्डल और मुकुटसहित उसके मस्तक काटकर पुनः लक्ष्मणके पास आया। आकाशमें रहनेवाले देवताओंने पुष्पवृष्टि की और गगनमण्डलमें नाद किया कि भरत-वर्षमें यह आठवाँ वासुदेव उत्पन्न हुआ है।'

सीता-प्राप्ति एवं रामका राज्याभिषेक

तत्पश्चात् युद्ध समाप्तिपर विभीषण सीताको लाया और उसे रामको सौंप दिया। रामकी आज्ञा मिलते ही विभीषणने रावणका संस्कार किया। फिर राम-लक्ष्मणने अरिंजयनगरमें विभीषणका और विद्याधरश्रेणीके नगरमें सुग्रीवका अभिषेक किया। फिर अपने परिवारसहित सुग्रीव सीता और रामके साथ पुष्पक-विमानमें अयोध्या नगरी गया। प्रजाजन और मन्त्रियों-ने रामका राजाके रूपमें अभिषेक किया। फिर समस्त [illegible] रामने सुग्रीवको साथ लेकर अर्धभरतको जीत लिया। विभीषण राजा अरिंजयनगरमें रहने लगा।

विभीषणके वंशमें विद्युद्वेग नामका राजा हुआ। उसकी रानी विद्युत्प्रभा थी। उससे दधिमुख, दण्डवेग और चण्डवेग नामक पुत्र और मदनवेगा नामकी पुत्री हुई। उस मदनवेगाका विवाह श्रीकृष्णके पिता वसुदेवके साथ हुआ। उसी-का वर्णन करते हुए संघदास गणिने बीचमें उपर्युक्त राम-कथा भी दे दी है। इस कथामें रामके राज्याभिषेक तथा सीताके शेष जीवनका कोई उल्लेख नहीं किया गया है। सम्भवतः लेखकने संक्षेपमें जितनी कथा देनी आवश्यक समझी, उतनी ही वसुदेव हिण्डीमें लिख दी; क्योंकि यह कोई स्वतन्त्र रामचरितसम्बन्धी ग्रन्थ नहीं है, इसलिये इसकी अधिक अपेक्षा भी नहीं की जा सकती।

रामका नाम प्राचीन जैनागमोंमें 'पउम' यानी 'पद्म' मिलता है। उनके सम्बन्धमें समवायाङ्गसूत्रादिमें संक्षिप्त उल्लेख है। विमलसूरिके 'पउम चरिउ'में ही सर्वप्रथम जैन-मान्य रामकथा पूरे रूपमें दी गयी है। वसुदेव हिण्डीसे मालूम होता है कि विमलसूरिके 'पउम-चरिउ'की परम्पराको संघदास गणिने नहीं अपनाया। उनके सामने रामसम्बन्धी लोक-कथाकी कोई अन्य ही परम्परा रही होगी। पर आज उस परम्पराका वसुदेव-हिण्डीके पहलेका कोई अन्य ग्रन्थ प्राप्त नहीं है।

श्रीवल्लभ-सम्प्रदायमें भगवान् श्रीराम

(लेखक—पं० श्रीसत्यकिशोरजी पाठक)

श्रीमद्भागवत, द्वितीय स्कन्धके सप्तम अध्यायमें श्रीब्रह्माने श्रीनारदके प्रति जिस क्रमसे भगवदवतारोंका वर्णन किया है, उस क्रममें मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम बीसवें अवतार हैं। अतः क्रमानुसार भगवान् श्रीराम अन्तर्यामीके '[illegible]' इससे सूचित अधर हासरूप हैं। आचार्य श्रीवल्लभने स्वप्रणीत श्रीसुबोधिनी व्याख्यामें इस प्रसङ्गका मार्मिक विश्लेषण किया है।

इस संदर्भमें श्रीब्रह्माने भगवान् श्रीरामके चरित्रका केवल तीन ही श्लोकोंद्वारा वर्णन किया है। उसका आशय स्पष्ट करते हुए आचार्य श्रीवल्लभ बताते हैं कि 'हास तीन ही प्रकारका होता है—प्रसन्नताके कारण होनेवाला हास प्रकाशित हास कहलाता है, लोगोंको मोहित करनेके लिये किया जानेवाला हास भावज हास कहलाता है और अभिमानियोंके अभिमान-खण्डनके लिये किया गया हास भ्रामक हास कहलाता है। यद्यपि भगवान् श्रीरामके अनन्त चरित्र हैं, परंतु [illegible] तीनोंके दिग्दर्शनके लिये [illegible] श्लोकोंको कहते हुए श्रीब्रह्माने इन श्लोकोंद्वारा त्रिविध चरित्रोंको उपवर्णित किया है।'

श्रीमद्भागवत वर्णित श्रीरामचरित्रका प्रथम श्लोक—

प्रसन्नताहेतुक हासकी अभिव्यक्ति एवं सात्त्विक चरित्र

अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश
इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे।
तिष्ठन् वनं सदयितानुज आविवेश
यस्मिन् विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत्॥
(भाग० २।७।२३)

'कलाओंके अधिपति भगवान् जब हमलोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये प्रसन्नमुख होते हैं, तब [illegible] श्रीजानकीजीके साथ इक्ष्वाकुके वंशमें श्रीरामरूपसे अवतीर्ण होते हैं। इस अवतारमें पिता दशरथकी आज्ञाका पालन करनेको वे पत्नी एवं अनुज भ्राता लक्ष्मणके साथ वनवास करते हैं तथा रावण उनसे विरोध करके पीड़ाको प्राप्त होता है।'

उक्त श्लोकपर आचार्य श्रीवल्लभका मन्तव्य

आप कहते हैं कि यहाँ 'अस्मत्प्रसादसुमुखः' इस वाक्यसे ब्रह्मादिके प्रसन्नताहेतु [illegible] रामकी अभिव्यक्ति

स्पष्ट हो रही है। एवं ब्रह्माके साथ होनेसे उस हासकी पेशलता या सुन्दरता भी 'व्यस्या' पदसे स्पष्ट हो रही है। दूसरी बात यह है कि ब्रह्मादि देवताओंने रावणादि असुरोंसे त्रस्त होकर अपनी रक्षाके उद्देश्यसे भगवत्प्रार्थना की थी—इसलिये भगवान्‌को हास हुआ कि 'इस रावणादि-वधको तो मेरी भद्र एक सखा ही कर सकती है, जो वैकुण्ठमें विष्णुरूपसे स्थित है; मैंने रक्षा या पालनका कार्य तो उसे ही सौंप रखा है। इस साधारण-से कार्यके लिये ये लोग मुझसे प्रार्थना करते हैं, ये लोग अधिक घबरा गये हैं।'

'हासो हि कार्यस्याल्पत्वे भवति।' 'अनेन भगवान् पूर्ण एव रघुनाथोऽवतीर्ण इति सूचितम्।'

इसप्रकार पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ही श्रीरघुनाथरूपसे प्रकट हुए और आपकी ज्ञान-रूपा सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यमयी शक्ति श्रीसीतारूपसे विदेहवंशमें प्रकट हुई। भगवान् श्रीरघुनाथके प्रकट होनेमें धर्मात्मा ऋषि-मुनियोंकी संकटसे रक्षा करना तो उद्देश्य था ही; क्योंकि धर्म भी आपकी अभ्यन्तर कला है और आप 'कलेश' हैं—कलाओंके समर्थ स्वामी हैं। आपने इक्ष्वाकु राजाके वंशको अपने प्राकट्यके लिये इस दृष्टिसे चुना कि महाराज इक्ष्वाकु भगवद्भक्त थे। श्रीनरसिंहपुराणमें यह कथा प्रसिद्ध है कि 'इक्ष्वाकुकी भक्तिसे भगवान् श्रीरङ्गनाथ ब्रह्माजीके समीप न रह सके, महाराज इक्ष्वाकुके समीप आ गये।' अतः भक्तवंशका उद्धार ही मुख्य उद्देश्य था श्रीरामके अवतारका—यह सिद्ध हो जाता है। 'भक्तके समान पिता दशरथकी आज्ञाका पालन करते हुए भी श्रीरामभद्रने श्रीसीता एवं श्रीलक्ष्मणके साथ वन प्रवेश क्यों किया? महाराज दशरथकी आज्ञा तो उस प्रकारकी नहीं थी।' आचार्य श्रीवल्लभ इस शङ्काका समाधान करते हैं कि—'देवानां कामनया तथा संकल्पः कृतः।'—देवताओंकी कामना थी कि 'सपरिवार रावणका विनाश हो।' यह कामना तभी पूर्ण हो सकती थी, जब रावण श्रीसीताका हरण कर श्रीरामसे विरोध करता। अतः विरोधके निमित्त श्रीसीताको वनमें साथ ले जानेका संकल्प श्रीरामने किया तथा रावणके पुत्र इन्द्रजित् मेघनादके वधके लिये श्रीलक्ष्मणको साथमें ले जाना तय किया; क्योंकि मेघनादका वध श्रीलक्ष्मण-द्वारा ही सम्भव था।

श्रीसीताहरणकी संगतिपर आचार्य श्रीवल्लभके विचार

यद्यपि सीताहरण केवल नाट्यमात्र था, तथापि यह नाट्य इसलिये आवश्यक था कि पत्नीके साथ पुरुषका या पतिके साथ स्त्रीका वनवास वास्तविक वनवास नहीं कहा जा सकता। अतः वनवासकी वास्तविकता सिद्ध करनेके लिये यह लीला हुई।

उक्त विवेचनसे इस संदर्भमें भगवान् श्रीरामके सात्त्विक चरित्रोंका दिग्दर्शन हो जाता है। (१) देवताओंका हित-साधन, (२) धर्मादि कलाओंका पालन, (३) भक्तवंशमें अवतारद्वारा भक्तोद्धार, (४) पिताकी आज्ञाका पालन तथा (५) वनवास—ये पाँचों ही चरित्र सात्त्विक हैं। रावणकी पीड़ा भी श्रीरामके सात्त्विक चरित्रसे विरुद्ध नहीं कही जा सकती। आचार्य श्रीवल्लभ कहते हैं—

'सत्त्वविरोधे तमसो भ्रमो युक्त एव।'

'सत्त्वसे विरोध करनेपर तमका भ्रम होना उचित ही है।' श्रीरामसे विरोध करनेपर रावणको पीड़ित होना ही था।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित रामस्वरित्रका द्वितीय श्लोक—

इतर-व्यामोहक हासकी अभिव्यक्ति एवं राजस चरित्र

यथा अस्याकुपितस्त्रमपादवेपो
मार्गं सपदि रिपुरं हरवद् दिधक्षोः।
दूरेसुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या
तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥

(वही, ९। १०। १४)

'त्रिपुर विमानके जलानेके उद्यत शंकरके समान भगवान् श्रीराम शीघ्र ही लङ्काको भस्म देना चाहते थे। श्रीसीता एवं श्रीभरतादि प्रियजनोंके वियोगमें क्रोधाग्नि धधक उठी और आँखें अत्यन्त लाल हो गयीं। उनकी उस दृष्टिसे ही समुद्रके मकर, मत्स्य, सर्प, ग्राह आदि जीव संतप्त होने लगे तथा भयसे थरथर काँपते हुए समुद्रने उन्हें मार्ग दे दिया।'

उक्त श्लोकपर आचार्य श्रीवल्लभका वक्तव्य

आप बतलाते हैं कि इस श्लोकमें भगवान् श्रीरामके रोषका वर्णन हुआ है, अतः इस चरित्रकी राजसता स्पष्ट ही है; और यहाँ भगवान् श्रीरामकी इतरव्यामोहक हासलीला-का परिचय भी समुद्रके व्यामोहमें स्पष्ट उपलब्ध हो रहा है। समुद्रको उचित था कि भगवान् श्रीरामको भीतिपूर्वक मार्ग दे देता; उनकी प्रिय पत्नीके हरण करनेवाले रावणका वध

श्रीवैष्णव (रामानन्द) सम्प्रदायमें भगवान् श्रीराम

(लेखक—श्रीवल्लभदासजी बिन्नानी 'ब्रजेश', साहित्यरत्न, साहित्यालंकार)

रामानन्द-सम्प्रदायमें, जो 'श्रीसम्प्रदाय' कहा जाता है, श्री-शब्दका अर्थ लक्ष्मीके स्थानपर 'सीता' किया जाता है। इस सम्प्रदायका दार्शनिक मत विशिष्टाद्वैत ही माना जाता है।

एकमात्र श्रीसीतानाथ ही इस सम्प्रदायके प्रवर्तक एवं उपास्य हैं। उनके प्रति अनन्य शरणागति इस सम्प्रदायकी साधना है। षडक्षर राम-मन्त्र (रां रामाय नमः) इस सम्प्रदायका मूल मन्त्र है और 'राम नाम' ही परम जाप्य है—

जाप्यं तत्तारकाख्यं मनुवरमखिलैर्वन्दितं श्रीसमेतं तथाद्यो ।
रामो ब्रह्मस्वयाम्नो रसमितशुभदस्थाक्षरः सर्वमोऽयम् ॥
(श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर, श्लो० १०)

ये राम विशुद्ध सनातन तत्त्व, पूर्ण परात्पर ब्रह्म तथा सर्वथा निर्गुण, निराकार, निर्मल, अगोचर होते हुए भी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये दृग्गोचर होते हैं तथा सौलभ्य, सौशील्य, मार्दव, सौजन्य, सौगन्ध्य आदि अनेक शुभ गुणोंके आकर, भिन्नभिन्न, अशेषकल्याणगुणगण निलय हैं। उनकी शरणागतवत्सलता, कृपालुता एवं कारुण्य आदिकी कहीं उपमा नहीं है—

'साक्षी कूटस्थ एको बहुशुभगुणराशिमयो विश्वभर्ता ।'
(वही, ८ तथा स्वामीजी टीकाका सारांश)

'श्री' (सीता) इनसे सर्वथा अनन्य हैं, अतः राम ही सच्चे 'श्रीमान्' हैं[1]। ये हरि-भव विधि इन्द्रादिके भी नित्य अभिवन्द्य, अर्चनीय तथा शरण्य हैं। शुक-सनकादि योगियोंद्वारा इनका पदपद्म निष्कलङ्क नित्य ध्येय है। क्लेश-कर्मविपाक, आशयादिसे अपरामृष्ट होनेसे सच्चे अर्थमें ये ही ईश्वर हैं[2]। वेद-पुराणों तथा अगणित रामायणोंद्वारा गेय होनेसे ये समुदितसुयशा एवं उदारवीर्य हैं। श्रेष्ठ वक्ता, वरद एवं चतुर्वर्गप्रद होनेसे ये 'वदान्य' हैं। ब्रह्माने (वाल्मीकि-रामा० युद्धकाण्ड ११७ में) उन्हें साक्षात् चक्रायुध नारायण कहा है। अतः ये सर्वादिकारण, सर्वशक्तिमान्, निष्कलुष, अजरामर, आप्तकाम एवं सर्वथा निष्काम औपनिषद पुरुष हैं—

श्रीमत्कर्ण्यः शरण्यो विधिभवप्रमुखैर्योगिगणपादपद्मो
ग्यवासः क्लेशादिभिः सत्समुदितसुयशाः सूरिभिः श्रव्यो वदान्यः ।
सर्वब्रह्मनारायणोऽसौ सुमहितमहिमा साधुभिः सेवितो यो
निर्मुक्तः सर्वशक्तिर्विकलुषचरितो गीर्मनोऽभ्यासगम्यः ॥
(वही, श्लोक ९)

अतः पूर्व पुरुषोंद्वारा इनके विषयमें—

वशी वदान्यो गुणवानृजुः शुचि-
र्मृदुर्दयालुर्मधुरः स्थिरः समः ।
कृती कृतज्ञस्त्वमसि स्वभावतः
समस्तकल्याणगुणामृतोदधिः ॥ (स्तोत्ररत्न० २१)

—की उक्ति सर्वथा ठीक ही है।

ब्रह्म राम—स्वामीजीके 'ब्रह्म राम' विश्वकी उत्पत्ति, रक्षा और इसका लय करते हैं। उसके प्रकाशसे सूर्य और चन्द्रमा संसारको प्रकाशित करते हैं। जो वायुको चलायमान करता है, जो पृथ्वीको स्थिर रखता है, वह ज्ञानस्वरूप, साक्षी, अनेक शुभ गुणोंसे युक्त, अविनाशी एवं विश्वभर्ता ईश्वर ही 'ब्रह्म' है। यह ब्रह्म नित्य है, ब्रह्मादिका विधायक, वेदोंका उपदेष्टा, स्वयं सर्वत्र व्याप्त है, स्वतन्त्र है। इस ब्रह्म-पदसे श्रीरामचन्द्रका ही बोध होता है। रामानन्द उसी रामके चरित्र मुखकमलका स्मरण करते हैं, जो जानकीके कटाक्षोंसे अवलोकित, भक्तोंके मनःवाञ्छित धर्म-अर्थ-काम-मोक्षको देनेके लिये कल्पतरुके समान है।

सीतापति भगवान् राम समस्त गुणोंके एकमात्र आकर, सत्यस्वरूप, आनन्दस्वरूप तथा चित्स्वरूप हैं। स्वयं विष्णु ही रामके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। ये लोकेश्वर, सत्यभाषी, अद्भुत दिव्य धनुष और बाणोंसे विभूषित तथा आजानुबाहु हैं। परम पुरुषोत्तम राम सीता और लक्ष्मणके साथ नित्य ही सुशोभित रहते हैं। भगवान् ही सीताके स्वामी हैं। एकमात्र वे ही 'शेषी' हैं। जीव उनका 'शेष' है। भगवान् राम ही जीवोंके परम प्राप्य हैं। वे ही एकमात्र उपाय भी हैं। स्वामीजीने भगवान् रामके अर्चावतार अथवा प्रतिमावतारके चारों भेदों—स्वयंव्यक्त, दैव, सैद्ध और मानुषकी पूजा षोडशोपचारसे करनेके लिये आदेश दिया है। रामानन्दजीके मतमें सीताके द्वारा ही रामकी प्राप्ति होती है। महारानी सीता पुरुषकारभूता हैं और वे उपाय भी हैं।

---

(१) 'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा ।' इत्यादि (वाल्मीकि रामा० ५ । २१ । १५ में सीताजीका वचन)

(२) योगदर्शन १ । २४ ।

(३) देखिये श्रीरामगीता २ । १८ तथा 'विनयपत्रिका' २१० के पदकी अन्तिम पंक्ति।

(४) यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्य ज्ञानमयं तपः । (मुण्डको० उपनिषद् ८ । १ । ५)

मुरारिगुप्तके द्वारा रचित 'रघुवीराष्टक'का श्रवणकर एक दिन चैतन्यदेवने उनकी बड़ी सराहना की। मुरारिने भगवान् रामकी महिमामें कहा है—

उद्यद्दिवाकरमरीचिविबोधिताब्ज-
नेत्रं सुबिम्बदशनच्छदचारुनासम्।
शुभ्रांशुरश्मिपरिनिर्जितचारुहासं
रामं जगत्त्रयगुरुं सततं भजामि॥

'उदीयमान सूर्यकी किरणोंसे विकसित हुए कमलके समान जिनके आनन्ददायक बड़े सुन्दर दोनों नेत्र हैं, बिम्बफलके समान मनोहर अरुण रंगके जिनके दोनों ओठ हैं, मनको हरनेवाली जिनकी सुन्दर नासिका है तथा जिनके मनोहर हास्यके सम्मुख चन्द्रमाकी किरणें लज्जित हो जाती हैं, उन तीनों लोकके गुरु—स्वामी भगवान् रामका हम भक्तिभावसे स्मरण अथवा भजन करते हैं।'

चैतन्यमहाप्रभुने मुरारिगुप्तके 'रघुवीराष्टकस्तोत्र'-पाठसे प्रसन्न होकर उनके मस्तकपर 'रामदास' शब्द अङ्कित कर दिया।

दक्षिण भारतकी तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें महाप्रभु चैतन्यद्वारा जिन्हीं-जिन्हीं स्थलोंके राम-उपासकोंको रामतत्त्वनिरूपणसे कृतार्थ करनेका विवरण उपलब्ध होता है, जिसमें गौड़ीय सम्प्रदायकी राम-उपासनाके सम्बन्धमें पारस्परिक सहानुभूति और निष्पक्षता-उदारतापर प्रकाश पड़ता है। दक्षिणयात्राके समय रास्तेमें समान निष्ठासे चैतन्यदेव कृष्ण और रामके नाम-मन्त्रके उच्चारणसे लोगोंको धन्य करते चलते थे।

राम राघव राम राघव राम राघव पाहि माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव रक्ष माम्॥'
यह श्लोक पथे पढ़ि करिला प्रयाण।
गौतमी गंगाय याइ कैल ताहाँ स्नान॥

(चैतन्यचरितामृत, मध्यलीला ९। ११)

चैतन्यमहाप्रभुने सिद्धिवटकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ भगवान् सीतापति रघुनाथकी मूर्तिकी वन्दना की, भगवान्‌को प्रणाम कर उन्होंने स्तुति की। वहाँ एक अनन्य रामभक्त ब्राह्मणका निमन्त्रण स्वीकारकर उन्होंने उसके यहाँ कृपापूर्वक पधारकर प्रसाद ग्रहण किया—

सिद्धिवट गेला—याहाँ मूर्ति सीतापति॥
रघुनाथ देखि कैल प्रणति-स्तवन।
ताहाँ एक विप्र तारे कैल निमन्त्रण॥
सेइ विप्र राम नाम निरन्तर लय।
राम नाम विना अन्य वाणी ना कहय॥

(चैतन्यचरितामृत, मध्यलीला ९। १५-१७)

दक्षिण भारतके तीर्थ-यात्रा-कालमें चैतन्यदेव सेतुबन्ध रामेश्वरकी ओर प्रस्थान करते समय श्रीशैल पर्वत होते हुए दक्षिण मथुरा—मदुरा पहुँच गये। मदुराके एक रामभक्त ब्राह्मणने प्रभु चैतन्यदेवको मध्याह्न-भोजनके लिये निमन्त्रित किया। उन्होंने कृतमाला नदीमें स्नानकर दोपहरको विप्रके निवास-स्थानको अपनी पवित्र चरण-धूलिसे धन्य किया। उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ब्राह्मणने न तो अब-तक भोजन ही सिद्ध किया है और न उसकी ओर उसकी चेष्टा ही है। चैतन्यदेवने कारण पूछा तो उसने कहा कि 'यहाँ अयोध्याका राजवैभव तो है नहीं कि आज्ञा होते ही सामग्री एकत्र हो जाय; लक्ष्मणजी फल-मूल लेने अरण्यके भीतर गये हैं, उनके आनेपर ही सीतामाता भोजन-सामग्री सिद्ध करेंगी।'

विप्र कहे, प्रभु मोर अरण्ये वसति।
पाकेर सामग्री वने ना मिले सम्प्रति॥
वन्य शाक फल मूल आनिबे लक्ष्मण।
तबे सीता करिबेन पाक प्रयोजन॥
तार उपासना शुनि प्रभु तुष्ट हैला।
आस्ते व्यस्ते सेइ विप्र रन्धन करिल॥

(चैतन्य-चरितामृत, मध्य० ९। १८८-१९१)

बात यह थी कि विप्र उस समय वनवासी रामके अरण्य-चरित्रके चिन्तनमें तल्लीन था। धीरे-धीरे उसने भोजन सिद्ध किया और इस तरह प्रभु चैतन्यदेवने उसकी उपासनासे परम संतुष्ट होकर तीसरे प्रहरके समय प्रसाद-ग्रहण किया। उन्होंने देखा कि विप्रने स्वयं भोजन नहीं किया। कारण पूछनेपर उसने महाप्रभुके सम्मुख निवेदन किया कि 'मैंने सुना है, दुष्ट राक्षस रावणने जगज्जननी सीताका अपहरण करते समय उनका स्पर्श किया; यह मेरे लिये बड़े ही दुःखकी बात है। मैं जीवन नहीं धारण करूँगा। इस बातका स्मरण होते ही मेरा हृदय फटने लगता है। यदि यह बात सच है तो मेरे लिये तो यह असार जीवन व्यग्र है।'

जगन्माता महालक्ष्मी सीता ठाकुराणी।
राक्षसे स्पर्शिब तारे, इह

सनातनगोस्वामीने बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे इस बृहद्भागवतामृत ग्रन्थमें हनुमान्‌जीकी महिमाका वर्णन किया है तथा भगवान् रामकी उपासना-पद्धतिका निरूपण किया है।

चैतन्यमहाप्रभुने सोलह भगवन्नाम तथा बत्तीस अक्षर-वाले तारक-महामन्त्रके प्रचारद्वारा श्रीराम और श्रीकृष्ण तथा भगवान् विष्णुकी स्वरूपात्मक अभिन्नताका प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा कि—

'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'

—मन्त्रराजके निरन्तर जपसे जीव संसार-बन्धनसे मुक्त होकर भगवान्‌के परमधामका अधिकारी हो जाता है। इस मन्त्रराजमें हरि, राम, कृष्ण—इन तीन भगवन्नामोंकी स्वरूपगत अभिन्नताका दर्शन उपलब्ध होता है। सर्वचित्तहर्ता भगवान् हरि हैं, सर्वचित्तरमण भगवान् राम हैं और सर्वचित्ताकर्षक भगवान् कृष्ण हैं।

गौड़ीय वैष्णवसम्प्रदायमें भगवान् रामके स्वरूप, रूप, गुण, शील और नामकी महिमाके चिन्तनकी आचारनिष्ठ उदारता और निष्पक्षता है। अचिन्त्यभेदाभेद-दर्शनकी सीमामें भगवान् राम-कृष्ण स्वरूपतः अभिन्न हैं।

गुरु गोविन्दसिंहजी और श्रीराम

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

गुरु गोविन्दसिंहजी सिक्खोंके दसवें और अन्तिम गुरु हुए हैं। वे शस्त्र और शास्त्र दोनोंके धनी थे। इनका सम्पूर्ण जीवन त्याग, बलिदान एवं वीरताके साथ धर्मकी रक्षामें व्यतीत हुआ था। उन्होंने अपनी भावना स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त की थी—

सकल जगत में खालसा पंथ गाजै।
जगै धर्म हिंदू, सकल भंड भाजै॥

इनके अनुपम गुणोंके कारण लोगोंने इन्हें परमेश्वरका स्वरूप मानना प्रारम्भ कर दिया; किंतु इन्होंने इसका निषेध करते हुए सुस्पष्ट शब्दोंमें कहा—

जे मुझको परमेसर उचरहिं। ते नर घोर नरक महँ परहिं॥
मैं हों परम पुरख को दासा। देखन आयो जगत तमासा॥

उक्त परमपुरुषके प्रति उनकी श्रद्धा, उनका विश्वास और उनकी निष्ठा अटूट थी। वे जीवनमें पदे-पदे उस महामहिम प्रभुकी कृपा और महिमाका बखान करते रहते थे। आप कहते हैं—

दीनन की प्रतिपाल करै नित, संत उबार गनी मन गारै।
पच्छि-पसू, नग-नाग, नराधिप, सर्ब समै सबको प्रतिपारै॥
पोखत है जल मे, थल मे, पल मे, कलि के नहिं कर्म बिचारै।
दीनदयाल दयानिधि दोख न देखत है, पर देत न हारै॥
(अकाल स्तुति १। २४१)

आपने यह भी स्वीकार किया है कि पृथ्वीपर जब-जब धर्म-पर आँच आती है और दुष्कृतियों एवं पापोंकी वृद्धि होती है तथा सर्वत्र अनाचार और दुराचारका प्रसार हो जाता है, तब तब करुणासिन्धु परब्रह्म परमेश्वर अवतरित होते और साधु-पुरुषोंकी रक्षा, दुष्टोंका विनाश एवं धर्मकी स्थापना करते हैं—

'जब जब होत अरिष्टि अपारा। तब तब देह धरत अवतारा॥'
('विचित्र नाटक')

दशरथ-नन्दन श्रीरामको वे साक्षात् परब्रह्म परमेश्वरका अवतार मानते थे। उन्हींके शब्दोंमें—

मृगेस देव राम हैं। अभेद धर्म धाम हैं॥
अखुट भूरि तै भनै। अजुट्ट गाथ कौ भनै॥
अगाध है, अनंत है। अभूत सोभवंत है॥
कलच्छु कर्म-कारणं। निहार साधु तारणं॥
अनेक संत तारणं। अदेव देव कारणं॥
सुरेस भाय भंजणं। समृद्ध सिद्ध भूखनं॥

इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंहजी दशरथकुमार श्रीरामको साक्षात् परमात्मा, अनादि, अनन्त, अनन्त सौन्दर्यसम्पन्न, परम कृपालु, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ एवं साधुपुरुषोंके त्राता मानते हैं। उन्होंने अपनी इस भावनाको अपनी समर्थ लेखनीसे 'गोविन्द-रामायण' में अनेक स्थलोंपर व्यक्त कर दिया है।

श्रवणकुमारके नेत्रहीन माता-पिताका शरीरान्त हो जानेपर अवधनरेश महाराज दशरथ अत्यन्त दुःखी हुए। वे उदास हो गये। सोचने लगे, मैं क्या करूँ? क्या यहीं अग्निमें जल जाऊँ या राज्य त्यागकर साधु हो जाऊँ? या अयोग्य

ए शरीर धरिबारे कभु ना जुयाय।
एइ दुःखे ज्वले देह, प्राण नाहि याय ॥

(चैतन्य चरितामृत, मध्य० ९ । १०३, १०४)

चैतन्यदेवने समझाया कि 'भगवती सीता तो साक्षात् भगवान्‌की प्रियतमा पत्नी हैं । वे चिन्मय तथा सर्वथा दिव्य हैं । प्राकृतिक—भौतिक इन्द्रियोंके द्वारा उनका दर्शन भी नहीं हो सकता । उन चिन्मय देवीका स्पर्श तो किसी भी तरह सम्भव ही नहीं है । रावणने तो मायासीताका हरण किया था, जो उसे वास्तविक सीतास्वरूपिणी ही दीख पड़ी थी । रावणके आनेपर वास्तविक सीता तो अदृश्य हो गयीं और रावणके सम्मुख उन्होंने मायासीता भेजी । चिन्मय वस्तुका भौतिक इन्द्रियोंद्वारा दर्शन नहीं होता । वेद-पुराण—सब-के-सब इस बातके प्रमाण हैं ।'

ईश्वर प्रेयसी सीता चिदानन्दमूर्ति ।
प्राकृत इन्द्रिये तारे देखिते नाहि शक्ति ॥
स्पर्शिबार कार्य अस्तुक ना पाय दर्शन ।
सीतार आकृति माया हरिल रावण ॥
रावण आसिते सीता अन्तर्धान कैल ।
रावणेर आगे मायासीता पाठाइल ॥
अप्राकृत वस्तु नहे प्राकृत गोचर ।
वेदपुराणे ते एइ कहे निरन्तर ॥

(चैतन्य-चरितामृत, मध्य० ९ । १९१–९४)

महाप्रभु चैतन्यदेवके समझाने-बुझानेपर ब्राह्मणने भोजन कर लिया । वहाँसे चैतन्यदेवने सेतुबन्ध रामेश्वरकी ओर प्रस्थान किया । रामेश्वरमें एक ब्राह्मण-मण्डलीके बीच बैठकर कूर्म-पुराणकी कथा सुनने लगे । सीताहरणका प्रसङ्ग चल रहा था । प्रभुने सुना कि जिस समय जानकीजीने रावणको देखा, उन्होंने अग्निकी आराधना की । अग्निने सीताको अपने स्थानमें रख लिया और उनकी छायाको बाहर कर दिया । रावण उसी छायाको हरकर ले गया । चैतन्यदेव इस कथाको सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने प्राचीन पुस्तक रख लिया; उसकी नयी प्रतिलिपि ब्राह्मणोंको दे दी । दक्षिण मथुरामें आकर उन्होंने रामभक्त ब्राह्मणको प्राचीन पुस्तक दिखाकर उसे आश्वासन दिया कि रावणने छाया-सीताका हरण किया था—

पतिव्रता शिरोमणि जनक नन्दिनी ।
जगतेर माता सीता रामेर गृहिणी ॥
रावण देखिया सीता लैल अग्निर शरण ।
रावण हैते अग्नि कैल सीता आवरण ॥

(चैतन्यचरितामृत मध्य० ९ । १९७-१९८)

रामभक्त ब्राह्मणके चैतन्यदेवद्वारा परितोष-दानमें उनके हृदयकी कृपामयी उदारता और सहृदयताके साथ-साथ गौड़ीय वैष्णवसम्प्रदायकी निष्पक्ष सहानुभूतिका भी दर्शन होता है ।

चैतन्यदेवके चरणारविन्द-मकरन्दके रसिक-मधुर सनातनगोस्वामीने अपने 'बृहद्भागवतामृत' ग्रन्थके चौथे अध्यायमें हनुमान्‌जीकी रामोपासनापर प्रकाश डाला है । सनातनगोस्वामीका यह ग्रन्थ श्रीकृष्णकी भक्तिरस-महिमासे ओतप्रोत है । बृहद्भागवतामृतमें हनुमान्‌द्वारा श्रीरामकी अर्चा-भक्तिका वर्णन श्रीमद्भागवतके पञ्चम स्कन्धके १९ वें अध्यायके पहलेसे आठवें श्लोकके अनुरूप किया गया है । किम्पुरुषवर्षमें श्रीलक्ष्मणजीके बड़े भाई, आदिपुरुष, सीता-हृदयाभिराम भगवान् श्रीरामके चरणोंकी संनिधिके रसिक परमभागवत श्रीहनुमान्‌जी अन्य किंनरोंके सहित अविचल भक्ति-भावसे उनकी उपासना करते हैं—

'किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परम-भागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ।'

(श्रीमद्भागवत ५ । १९ । १)

बृहद्भागवतामृतमें सनातनगोस्वामीने उपर्युक्त श्लोकका विशद विवेचन प्रस्तुत किया है । महादेवकी प्रेरणासे नारदजीने किम्पुरुषवर्षमें प्रवेशकर हनुमान्‌जीको श्रीरामकी उपासनामें रत देखा । नारदजीने हनुमान्‌जीका दर्शन किया । वे साक्षात् भगवान् रामचन्द्रजीके मूर्तिस्वरूपका पूजन वनमें पैदा होनेवाली विविध सामग्रियोंसे कर रहे थे । आनन्दपूर्वक वे गन्धर्व आदिके मुखारविन्दसे रामस्वरूप रामायणका श्रवण कर रहे थे । उनका तन रोमाञ्चित और मन उत्कण्ठित था । वे स्वरचित विचित्र दिव्य गद्य-पद्योंसे तथा प्रसिद्ध स्तोत्रोंसे स्तुति करते हुए प्रभुसे दण्डवत् प्रणाम कर रहे थे ।

तत्रापश्यद्धनुमन्तं रामपादाब्जसेविनम् ।
साक्षात्‌श्रीरामचन्द्रं तं विचित्रैर्वन्यवस्तुभिः ॥
गन्धर्वादिभिरानन्दाद्गीयमानं रसायनम् ।
रामायणं च शृण्वन्तं कम्पाश्रुपुलकान्वितम् ॥
विचित्रैर्दिव्यदिव्यैश्च गद्यपद्यैः स्वनिर्मितैः ।
स्तुतिभिश्चैव कुर्वाणं दण्डवत् प्रणतीरपि ॥

(बृहद्भागवतामृत १ । ४ । ५५-५७)

सनातनगोस्वामीने बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे इस बृहद्भागवतामृत ग्रन्थमें हनुमान्‌जीकी महिमाका वर्णन किया है तथा भगवान् रामकी उपासना-पद्धतिका निरूपण किया है।

चैतन्यमहाप्रभुने सोलह नामवाले तथा बत्तीस अक्षरवाले तारक-महामन्त्रके प्रचारद्वारा श्रीराम और श्रीकृष्ण तथा भगवान् विष्णुकी स्वरूपात्मक अभिन्नताका प्रतिपादन किया। उन्होंने कहा कि—

'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'

—मन्त्रराजके निरन्तर जपसे जीव संसार-बन्धनसे मुक्त होकर भगवान्‌के परमधामका अधिकारी हो जाता है। इस मन्त्रराजमें हरि, राम, कृष्ण—इन तीन भगवन्नामोंकी स्वरूपगत अभिन्नताका दर्शन उपलब्ध होता है। सर्वचित्तहर्ता भगवान् हरि हैं, सर्वचित्तरमण भगवान् राम हैं और सर्वचित्ताकर्षक भगवान् कृष्ण हैं।

गौड़ीय वैष्णवसम्प्रदायमें भगवान् रामके स्वरूप, रूप, गुण, लीला और नामकी महिमाके चिन्तनकी आधारशिला उदारता और निष्पक्षता है। अचिन्त्यभेदाभेद-दर्शनकी सीमामें भगवान् राम-कृष्ण स्वरूपतः अभिन्न हैं।

गुरु गोविन्दसिंहजी और श्रीराम

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

गुरु गोविन्दसिंहजी सिक्खोंके दसवें और अन्तिम गुरु हुए हैं। ये शास्त्र और शस्त्र दोनोंके धनी थे। इनका सम्पूर्ण जीवन त्याग, बलिदान एवं वीरताके साथ धर्मकी रक्षामें व्यतीत हुआ था। उन्होंने अपनी भावना स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त की थी—

सकल जगत में खालसा पंथ गाजै।
जगै धर्म हिंदू, सकल भंड भाजै॥

इनके अनुपम गुणोंके कारण लोगोंने इन्हें परमेश्वरका स्वरूप मानना प्रारम्भ कर दिया; किंतु इन्होंने इसका निषेध करते हुए सुस्पष्ट शब्दोंमें कहा—

जे मुझको परमेसर उचरहिं। ते नर घोर नरक मँह परहिं॥
मैं हों परम पुरख को दासा। देखन आयो जगत तमासा॥

उक्त परमपुरुषके प्रति उनकी श्रद्धा, उनका विश्वास और उनकी निष्ठा अद्भुत थी। वे जीवनमें पदे-पदे उस महामहिम प्रभुकी कृपा और महिमाका दर्शन करते रहते थे। आप कहते हैं—

दीनन की प्रतिपाल करै नित, संत उबार गनीम गारै।
पच्छि-पसू, नग-नाग, नराधिप, सर्ब समै सबको प्रतिपारै॥
पोखत है जल मे, थल में, पल में, कल के नहिं कर्म बिचारै।
दीनदयाल दयानिधि दोख न देखत है, पर देत न हारै॥
(अकाल उस्तति १। २४३)

आपने यह भी स्वीकार किया है कि 'पृथ्वीपर जब-जब धर्मपर आँच आती है और दुष्प्रवृत्तियों एवं पापोंकी वृद्धि होती है तथा सर्वत्र अनाचार और दुराचारका प्रसार हो जाता है, तब तब करुणासिन्धु परब्रह्म परमेश्वर अवतरित होते और साधु-पुरुषोंकी रक्षा, दुष्टोंका विनाश एवं धर्मकी स्थापना करते हैं'—

'जब जब होत अरिष्टि अपारा। तब तब देह धरत अवतारा॥'
('विचित्र नाटक')

दशरथ-नन्दन श्रीरामको वे साक्षात् परब्रह्म परमेश्वरका अवतार मानते थे। उन्हींके शब्दोंमें—

भूदेव देव राम हैं। अभेद धर्म धाम हैं॥
अखंड मारि हैं मनै। अखुट बान को मनै॥
अगाध हैं, अनंत हैं। अभूत सोभवंत हैं॥
कृपाल कर्म-कारणं। बिहाल साधु तारणं॥
अनेक संत तारणं। अदेव देव कारणं॥
सुरेश भाय रूपणं। समृद्ध सिद्ध भूपणं॥

इस प्रकार गुरु गोविन्दसिंहजी दशरथकुमार श्रीरामको साक्षात् परमात्मा, अनादि, अनन्त, अनन्त सौन्दर्यसम्पन्न, परमकृपालु, सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ एवं साधु पुरुषोंके त्राता मानते हैं। उन्होंने अपनी इस भावनाको अपनी समर्थ लेखनीसे 'गोविन्द-रामायण' में अनेक स्थलोंपर व्यक्त कर दिया है।

श्रवणकुमारके नेत्रहीन माता-पिताके शोकसन्तप्त हो प्राणत्यागसे महाराज दशरथ अत्यन्त दुःखी हुए। वे अशान्त हो गये। सोचने लगे, मैं क्या करूँ? क्या कहीं अग्निमें जल जाऊँ या राज्य त्यागकर साधु हो [illegible]! [illegible]

जाकर साफ कह दूँ कि मैं ब्राह्मणकी हत्या करके आ रहा हूँ।' आगे वे कहते हैं—

तब भई देव-बाणी अनाम। जिस करयो दूर दुख राव राम॥
तव धाम होहि सुपुत्र बिष्णु। सब काम अन सिध होहि जिष्णु॥
हैहै सुनाम रामावतार। करिहैं जे सकल जग को उधार॥
करिहैं सुदुनिक में दुष्टनाश। इहि भाँति कित करिहैं प्रकाश॥

'तब आकाश-वाणी हुई कि हे राजन्! तुम्हारे घरमें स्वयं विष्णु अवतरित होंगे और सब कामनाएँ पूर्ण करेंगे। उनकी रामावतारके नामसे सुकीर्ति होगी। वे सम्पूर्ण जगत्का उद्धार करेंगे और दुष्टोंका नाशकर शुभयश विस्तार करेंगे।'

इसे सुनकर राजाका दुःख दूर हो गया।

....................। तब संतन हेतु उधार।
रावण रिपु परगट भये जग आन राम अवतार॥

'तब संतोंके रक्षक, रावणके शत्रु इस जगत्में रामावतार लेकर प्रकट हुए।'

महर्षि विश्वामित्रके साथ वनमें जाकर श्रीरामने मारीच, सुबाहु और दैत्य-सेनाका विनाश किया। उस समयके श्रीरामके शौर्यका वर्णन करते हुए गुरु गोविन्दसिंहजी कहते हैं—

मुखं मार तारयो। ऋषीशं उधारयो॥
सबै साधु हरषे। भये जीत करषे॥
करैं देव अरचा। करैं बेद चरचा॥
भयो जग्य पूरं। गए पाप दूरं॥
सुरं सर्ब हरषे। घनं धार बरषे॥

'(श्रीरामचन्द्रजीने) ताड़काका मार हत्या किया और ऋषीश्वरोंका उद्धार किया। सभी साधु प्रसन्न हुए, श्रीरामचन्द्रजीका जय-जयकार हुआ। निश्चिन्त होकर वे देवताओंकी पूजा तथा वेदोंकी चर्चा करने लगे। पाप दूर हुए, यज्ञ पूरा हुआ; सभी देवता प्रसन्न हुए और उन्होंने धन-धान्यकी वर्षा की।'

'जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥'

—रामचरितमानस (१।२४०।२) के इसी भावको श्रीजनकजीकी धनुर-यज्ञशालामें श्रीराम और लक्ष्मणके पहुँचनेपर वे इस प्रकार प्रकट करते हैं—

पुरं नारि देखैं। सही काम लेखैं॥
रिपं सत्रु जानै। सिधं साधु मानै॥
सिसुं बाल रूपं। लख्यो भूप भूपं॥
तप्यो पौन हारी। भयं ब्रह्मचारी॥
निसा चंद जान्यो। दिनं भान मान्यो॥
गनं रुद्र पेख्यो। सुरं इन्द्र देख्यो॥
भुतं ब्रह्म जान्यो। दिजं ब्यास मान्यो॥
हरी बिष्णु लेखे। सिया राम देखे॥

यहाँ भी श्रीरामका प्रसङ्ग आया है, खालसा-पंथके प्रवर्तक गुरु गोविन्दसिंहजी उन्हें परमपवित्र, अवतारी, दुष्ट दैत्योंके संहारक और संत पुरुषोंके प्राणाधारके रूपमें देखते हुए अपनी श्रद्धा समर्पित करते हैं—

राम परम पवित्र हैं रघुबंसके अवतार।
दुष्ट दैतन के सँहारक संत प्रान-अधार॥

अपने भाई लक्ष्मण और परमसाध्वी पत्नी सीताजीके साथ जब भक्तवत्सल श्रीराम अगस्त्यमुनिके आश्रममें पहुँचते हैं, तब उन्हें गुरु 'धर्मकी ध्वजा' कहते हैं—

रिख अगस्त धाम। भये राम राम॥
धुज धरम धाम। सिया सहित बाम॥

मारीच रावणको समझाते हुए कहता है कि मैं हाथ जोड़कर विनय करता हूँ, आप बुरा न मानें। श्रीराम सचमुच अवतार हैं, उन्हें आप मनुष्य न समझें।'

है करि जोर करौं बिनती, सुनि कै नृपनाथ बुरा मति मानो।
श्री रघुबीर सही अवतार, तिन्हें तुम मानस कै न पछानो॥

पर जब उसने देखा कि दशाननपर मेरी प्रार्थनाका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है और इसकी आज्ञाका पालन न करनेपर यह निश्चय ही मुझे मार डालेगा, तब मारीचने सोचा कि 'इस नीचके हाथ मरनेकी अपेक्षा तो श्रीरामके हाथोंसे मुक्ति मिले, यह अधिक अच्छा है; क्योंकि इसके हाथसे मरनेसे तो अधोगति होगी, पर प्रभु श्रीरामके कर-कमलोंसे प्राण-त्याग करनेपर मैं सदाके लिये मुक्त हो जाऊँगा।'

'मारन नीच की नीच अधोगत राघव-पानि परी सुरि मानी॥'

रावण-वधके अनन्तर उसकी पत्नियाँ रोती-कलपती श्रीरामके सम्मुख उपस्थित हुईं, पर उनके सुन्दर रूपको देखकर सभी उनके चरणोंमें शीश झुकाने लगीं—

लखे राम देखै। महा रूप लेखै॥
रही मान्द सीसं। लखे नाथ ईसं॥

भगवान् श्रीरामकी अमित सौन्दर्य-राशिको देखकर रानियाँ मोहित हो गयीं। सारी लङ्कामें श्रीरामकी दोहाई

रामस्नेही-सम्प्रदायमें रामोपासना

(लेखक—श्रीरामस्नेही-सम्प्रदायाचार्य, सिंहस्थलपीठाधीश्वर श्री १००८ श्रीभगवद्दासजी महाराज शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य)

राम अमानी वेद राम है दास पुरामै।
राम सांख्य स्मृति राम शास्त्र सु जामै॥
राम गीता भागवत, राम रामायन गावै।
राम विष्णु शिव शेष, राम ब्रह्मा मन भावै॥

राम नाम तिहुँ लोकमें, ऐसा और न कोय।
जन हरिया गुरु-राम बिना भ्रम-गुम्फा गया होय॥

रामस्नेही-सम्प्रदायमें गुरुद्वारा प्रदत्त रामनामका अनन्य भावसे स्मरण करना ही उपासना है और इसे ही मुक्तिका साधन कहा गया है—

जो कोइ चाहै मुगति है तो सिंवरीजै राम।
हरिया गैले चालतौं जैसे आवै गाम॥

गुरु—

गुरुका प्रत्येक कार्य असाधारण होता है 'गृणाति उपदिशति महाज्ञानं स्वभक्तेभ्य इति गुरुः।—जो भक्तोंको अध्यात्मज्ञानका उपदेश देकर सांसारिक दुःखसे मुक्त करते हैं तथा अविद्याकी निवृत्ति करते हैं, वे गुरु हैं।' 'गिरति अज्ञानमिति गुरुः—भक्तोंके हृदयाकाशमें प्रकाशित होकर उनके अज्ञानतिमिरको निगल जाते हैं अर्थात् नष्ट कर देते हैं, वे गुरु हैं।'

हरि है दाता देह का, ताते भया सकाम।
गुरु है दाता ज्ञान का, मन का मेटि विराम॥

भगवान् कृपा करके मानव-देह देते हैं, परंतु स्वयंको प्राप्त करानेवाली वस्तु (भक्ति और ज्ञान) नहीं देते। यह ज्ञान गुरु महाराज ही देते हैं, जिससे स्वतः संकल्प-विकल्प मिटकर प्राणी अपने स्वरूप (राम) को सहज ही प्राप्त कर लेता है। यह ज्ञान भी नाममें ही है।

जिस नामके अवलम्बनसे मनुष्य भगवान्‌को प्राप्त हो सकता है, उस नामके तत्त्वको समझनेके लिये पहले यह समझ लेना चाहिये कि भगवान्‌का उनके अपने नामसे क्या सम्बन्ध है?

प्रलयके बाद प्रकृतिस्थित जीवोंका संस्कार सृष्टि-रचनाके अनुकूल होता है। उसी समय 'बहु स्यां प्रजायेय' का भाव परमात्माके अन्तःकरणमें उत्पन्न होता है। इसी भावसे नाम-रूपात्मक ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति होती है। दृश्य-संसारके नाम-रूपात्मक होनेका कारण यह है कि प्रत्येक भाव ही नाम और रूपके द्वारा संसारमें प्रकट होता है। जिस किसीके चित्तमें जो भाव होता है, वह उसीके अनुसार शब्दद्वारा अथवा रूप-कल्पनाके द्वारा उसे दृश्यभावसे प्रकट करता है। व्यष्टि-भावके चिन्तनसे यह सिद्धान्त निश्चित होता है कि जिस प्रकार व्यष्टि-जगत्‌में प्रत्येक भावका प्रकाश नाम और रूपके द्वारा देखा जाता है, उसी प्रकार समस्त सृष्टिमें भी परमात्माके चित्तमें सृष्टि-रचनानुकूल भाव नाम-रूपात्मक जगत्‌से प्रकट होता है। परमात्माकी इच्छा-शक्तिका नाम ही 'माया' है और यही माया नाम-रूपमयी होकर समस्त संसारको प्रकट करती है। अतः सिद्धान्त हुआ कि परमात्मासे भाव, भावसे नाम-रूप और उससे निखिलसमष्टि यह संसार हुआ। इसलिये जिस क्रमके अनुसार सृष्टि हुई है, उसके विपरीतक्रमसे लय होगा। अर्थात् मुक्तिकी प्राप्ति करनी हो तो प्रथम नाम-रूपका आश्रय लेकर नामरूपसे भावमें और भावसे परमात्मामें चित्तवृत्तिका लय करना होगा। जिस भूमिपर जो गिरता है, वह उसी भूमिका अवलम्बन लेकर पुनः उठ सकता है। अतः साधक नामके अवलम्बनसे ही भवबन्धनरहित होकर मुक्तिपद प्राप्त करते हैं।

भवबन्धन काटनेवाले नामसे ही साकार-सगुणोपासक भक्त सूर एवं तुलसी तथा निर्गुणोपासक-संत कबीरजी, दादूजी, हरिदासजी, जयमलदासजी, हरिरामदासजी आदिने अपनी-अपनी वाणीमें 'राम' शब्दसे स्वीकार किया है। यद्यपि प्रभुके अनेक नाम हैं, उनमें 'राम' सर्वश्रेष्ठ है।

'रामो—ज्ञानिनां धामः—निवास इति रामः' (ज्ञानियोंका निवास ही राम है)। 'राति—भक्तिमुक्त्यादिकं ददातीति रामः।' (जो भक्ति-मुक्ति आदिका दान करता है, वह राम है)। 'सर्वेभ्योऽधिकतरं राजते शोभते इति रामः।'—(सबसे अधिक शोभायुक्त ही राम है।)

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥*

* 'राम' शब्दसे उस परमतत्त्वका बोध होता है, जो सच्चिदानन्दमय है और जिसमें योगीजन सदा रमण करते हैं।

रमन्ते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ।
अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥*

—इत्यादि जिसकी व्युत्पत्तियाँ हैं,—वही मन्त्रराज है । इसलिये जो ऐसे अपने इष्टदेवको अपनी सीमामें बाँधकर स्मरण करता है, वह अपने इष्टको छोटा बना लेता है और सर्वेश्वरत्वसे पदसे नीचे गिरा लेता है । इस प्रकारका स्मरण सर्वोपरि अपने इष्टदेवका न होकर एकदेशीय, ससीम होता है । सुमिरन अपने इष्टका ही करो, परंतु शेष स्वरूप अपने आराध्यके ही समझो । चल-अचल—समस्त प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे राम (इष्टदेव) ही परिपूर्ण हैं, अर्थात् प्रकाश्य और प्रकाशक सब कुछ राम ही है । सत्यस्वरूपनिष्ठको 'संत' कहा गया है । उसे ही संत-परम्परामें 'साधुजन', शब्दसे परिचित कराया गया है ।

सभी प्रकारके मानसिक विक्षेप हटाकर एकान्तमें नामस्मरणसे आचार्यचरणने जो अनुभव प्राप्त किया, उसका विशद वर्णन 'नाम परचा' एवं 'पक्ष निशाणी'में है, जिसका संक्षिप्त भाव इस प्रकार है—

सम्प्रदायकी साधनापद्धतिमें रामनामस्मरणके लिये 'सुरति-शब्दयोग' का प्रचुरमात्रामें वर्णन है । रसना, कण्ठ, हृदय, नाभि आदि स्थानोंपर सुरतिके साथ शब्दकी स्थिति होती है । इसीलिये नामस्मरणके स्थान चार होनेसे स्मरणके भेद चार माने गये हैं ।

सतगुरु से सिखिया मंतर सिखिया, सार शब्द [illegible] है ।
तन मन का हेती रसना सेती रामहि राम रटंता है ॥

इत्यादि—

प्रथम राम रसना सुमर, दुतियँ कंठ लगाय ।
तृतियँ हिरदे ध्यान धर, चौथे नाभि मिलाय ॥

अब मध उत्तम अध का ठान् । चौथे अति उत्तम अस्थान् ॥
अध चहुँ भिन भिन देखे अस्थाना । राम-भक्ति जो पावे मरमा ॥
निस दिन रसना राम उचारा । ज्यों दर बंदीजन पुकारा ॥
ज्यों रसना तन कों तृप देनी । तन तृप संग संतु का सेनी ॥
ऐसे फल फूल पत्र सुगंध । रसना राम सुमिर मन मगना ॥
अध सुमरन रसना है करिवा । कहतोहि सुख पर सरिवा ॥
रसना राम सुमर अब ताहू । मध सुमरन को आगा माहू ॥
मध सुमरन जू ऐसा भाई । सुख सुमरन हरदय रह ज्यांई ॥

गदगद कंठहि छमक विगसा । सरस प्रेम मगा परकासा ॥
ज्यों घायल उर सालै पीरा । त्यों रटां व्यापै राम शरीरा ॥
घायल की घायल सोइ जाने । राम भजै सोई मन माने ॥
निसदिन रामनाम लिव लागी । सुमना कंठ छमक की जागी ॥
मध सुमरन की ये परतीति । अब उत्तम सुमरन की रीति ॥
उत्तम सुमरन हरदय स्थानूँ । भीतर माँहि मध्य धर ध्यानूँ ॥
रसना लेन रामका नामा । उर भीतर पाया विसरामा ॥
सहजाँ सरस शब्द पिछानी । रसना सहज नाम निरबानी ॥
उत्तम सुख सुमरन हिरदा में । ज्यूँ नारी पुरुष मन रामें ॥
उत्तम सुमरन की सुधि भाई । दुजि एक ध्यान रहा ठहराई ॥
अब मध उत्तम सुमर सुजाना । अति उत्तम के माँहि मिलाना ॥
अति उत्तम सुमरन जू ऐसा । या उपमा बरनूँ मैं कैसा ॥
अति उत्तम सुमरन परचाया । रोम रोम रसना रँगवाया ॥
अति उत्तम नाभी अस्थानूँ । मन संकल्प विकल्प न ठानूँ ॥
अति उत्तम सुमरन सरवंग । अक्षर एक अमर अनभंग ॥

यहाँ 'एक अमर' से कूटस्थ अक्षर और अनभंग (प्रकृतिसे पर) पुरुषोत्तम (राम) एक ही है । देखें गीतातत्त्वविवेचनी अध्याय १५ श्लोक १५ से २० तक । जब 'जीव-सीव' एक हो जाते हैं, तब परस्पर कोई भेद रहता ही नहीं—

हंसा सुन सरवर मिल्या, सरवर हंस मिलाय ।
हरिया पसर मुक्तों, सहजाँ रहै समाय ॥

ऐसी स्थितिमें एक ही नाम और एक ही स्थान होनेसे सर्वांगी स्वयं ही पूजा (उपासना) करता है; क्योंकि सद्भवमें सहज (सत्यस्वरूप) के अतिरिक्त अन्यका समावेश ही नहीं, अर्थात् नाम रूप आदिका भाव भी नहीं ।

'सहज तन मन की सहज पूजा । सहज सा देव नहिं और दूजा ॥'

× × × ×

सहजाँ मारग सहज का, सहज क्रिया विश्राम ।
हरिया जीव र सीव का, एक नाम अरु ठाम ॥
जीव सीव मिल एकठा, रहै निरन्तर छाय ।
हरिया ब्रह्मानन्द में, ना कोई और गमाय ॥

'नेति-नेति' कहकर जिसका वर्णन किया गया है, उसे ही आचार्यचरण 'न कोई, न कोई' (न को) कहकर बतलाते हैं—

न को रस्म मोरी न को रहत
न को मन हरगं [illegible]

* जो अन्तरात्माके रूपमें सभी चराचर प्राणियोंमें रम रहा है, वही 'राम' कहलाता है ।

योगिराज अरविन्दकी दृष्टिमें भगवान् श्रीराम

(लेखक—श्रीचन्द्रदीपजी त्रिपाठी)

श्रीअरविन्द प्राचीन हिंदू-परम्पराका अनुसरण करते और अवतारवादमें पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'गीता-प्रबन्ध'में इस विषयपर काफी प्रकाश डाला है और दार्शनिक ढंगसे यह समझानेका प्रयास किया है कि अवतारकी मान्यताके पीछे क्या सत्य है, अवतारका स्वरूप और हेतु क्या होता है, भगवान्‌के अवतरणकी प्रणाली क्या है। उन्होंने आधुनिक मनकी अवतारसम्बन्धी शङ्काओंका भी पर्याप्त निरसन किया है और अपने पत्रोंमें भी अवतार-तत्त्वसे सम्बन्धित अनेक तत्त्वोंका प्रतिपादन किया है। वे भगवान्‌के प्राकट्यके चमत्कारकी ओर समालोचककी दृष्टि आकर्षित करते हुए कहते हैं—'निश्चय ही पार्थिव चेतनाके लिये स्वयं यह तथ्य ही है कि भगवान् प्रकट होते हैं। यह एक महान्‌से महान् घटना है। जरा यहाँ पृथ्वीपरके अन्धकारकी ओर तो देखो और यह विचार करो कि यदि भगवान् सीधे हस्तक्षेप न करते और ज्योतियोंकी ज्योति अन्धकारमेंसे न फूट निकलती—क्योंकि भागवत अभिव्यक्तिका यही तात्पर्य है—तो क्या अवस्था होती।'

श्रीअरविन्द यह मानते हैं कि अवतार पार्थिव चेतनाके क्रम-विकासमें सहायता करने आते हैं। जब-जब निम्न पार्थिव चेतनाके भागवत चेतनामें वर्द्धित होनेके मार्गमें संकटकाल आते हैं, तब-तब भगवान् स्वयं मानुषी तनुमें अवतीर्ण होकर असोपान विकास-सोपान पार करते और मानवचेतनाके आगे बढ़नेका मार्ग प्रशस्त करते हैं। श्रीअरविन्द एक प्रसङ्गमें 'गीता-प्रबन्ध'में कहते हैं—'अवतारका आना होता है मानव-प्रकृतिमें भागवत प्रकृतिको प्रकट करनेके लिये, जिससे कि मानव-प्रकृति भागवत प्रकृतिमें रूपान्तरित हो जाय।'

एक समालोचकने बालि-वध आदि कार्योंके कारण जब रामके अवतारत्वपर संदेह प्रकट किया तो श्रीअरविन्दने उत्तर दिया कि 'जहाँतक अवतारपनकी बात है, मैं रामको अवतार स्वीकार करता हूँ; क्योंकि वे योजनाके अंदर एक स्थानको पूरा करते हैं और मुझे ऐसा लगता है कि उसे वह समुचित रूपमें ही पूरा करते हैं और इस कारण स्वीकार करता हूँ कि जब मैं रामायण पढ़ता हूँ, तब मैं एक अन्तःप्रेरणा अनुभव करता हूँ, जिसे मैं मान्यता देता हूँ और जो इस कहानीको एक ऐसी महान् संकटपूर्ण संक्रमणकालीन घटनाका रूपक बना देती है, जो पार्थिव क्रम-विकासके अंदर घटित हुई थी। इतना ही नहीं, वह प्रमुख चरित्रके व्यक्तित्व और कार्यको एक ऐसा अर्थ प्रदान करती है, जो विशाल, आदर्शमय, विश्वव्यापी है। और यदि ये कार्य किसी दूसरे व्यक्तिके द्वारा घटनाओंकी किसी दूसरी योजनाके अंदर किये गये होते तो उनको यह अर्थ नहीं मिला होता। अवतार असाधारण कार्योंको करनेके लिये बाध्य नहीं होता, बल्कि वह अपनी क्रियाओंको या अपने कार्यको, अथवा वह जो कुछ है, उसको, इनमेंसे किसी एकको या सबको एक ऐसा अर्थ और एक ऐसी फलदायी शक्ति देनेको बाध्य होता है, जो पृथिवी और उसकी जातियोंके इतिहासमें किये जानेवाले किसी प्रमुख कार्यके अङ्ग हों।'

फिर एक दूसरे पत्रमें श्रीरामके कार्यमें आध्यात्मिकताकी कमी महसूस करनेवाले आलोचकको उत्तर देते हुए और श्रीरामके कार्यको समझाते हुए कहते हैं—'नहीं, निश्चय ही नहीं, कोई अवतार आध्यात्मिक नबी (पैगंबर) होनेके लिये बिल्कुल बाध्य नहीं है—सच पूछा जाय तो वह कभी निरा नबी नहीं होता, बल्कि वह सिद्ध करनेवाला संस्थापक होता है—केवल बाहरी चीजोंका नहीं—यद्यपि वह बाहर भी कुछ संसिद्ध करता है, बल्कि, जैसा कि मैंने कहा है, कुछ ऐसी मौलिक और महत्त्वपूर्ण वस्तुका संस्थापक होता है, जो पार्थिव क्रम-विकासके लिये आवश्यक होती है—उस पार्थिव विकास के लिये, जो क्रमशः एक-एक स्तर पार करता हुआ भगवान्‌की ओर जानेवाला शरीरधारी आत्माका क्रम-विकास है। उस विकासके आध्यात्मिक स्तरको स्थापित करना रामका कार्य बिल्कुल नहीं था—अतएव उनके साथ उन्होंने बिल्कुल ही अपना कोई सरोकार नहीं रखा। उनका कार्य था रावणको मार डालना और रामराज्य स्थापित करना—दूसरे शब्दोंमें, भविष्यके लिये ऐसे सात्त्विक सभ्य मनुष्यके गौरव एवं व्यवस्थाकी सम्भावनाको निश्चित कर देना, जो अपने जीवनको बुद्धि, सूक्ष्मतर भावों, नैतिकता अथवा कम-से-कम नैतिक आदर्शोंके द्वारा—उदाहरणके लिये सत्य, आज्ञाकारिता, सहयोग और सामञ्जस्य, पारिवारिक और सार्वजनिक सुव्यवस्था आदिके द्वारा परिचालित करता है—ऐसे एक ऐसी व्यवस्थाको स्थापित करना, जो अभी भी विरोधी शक्तियोंके अधिकारमें

है, जहाँ पशु-मन और प्राणिक अहंकारकी शक्तियाँ अपनी निजी संतुष्टिको ही जीवनका विधान मानती हैं, दूसरे शब्दोंमें, जहाँ वानर और राक्षस राज्य करते हैं। यही अर्थ है राम और उनके जीवन-कार्यका तथा उन्होंने वह कार्य कैसे पूरा किया या नहीं किया, इसके अनुसार विचार करना होगा कि वे अवतार थे या नहीं। उनका कार्य वाली-जैसे दुर्धर्ष नृशंस पशुके साथ वीर क्षत्रियका सुखान्त नाटक खेलना नहीं था, बल्कि उनका कार्य था उसे मार डालना और विश्वव्यापी पशुभावको अपने वशमें करना। उनका कार्य निश्चय ही कोई व्यक्ति होना नहीं था, बल्कि महान् आदर्श-रूप सात्त्विक मनुष्य होना था—यथा पति और प्रेमी, त्याग और आज्ञाकारी पुत्र, स्नेही और यथार्थ भाई, पिता और मित्र होना था—वे सब प्रकारके लोगोंके मित्र हैं—नीच गुहके मित्र, पशुओंके नेता सुग्रीव-हनुमान्‌के मित्र, गीध जटायुके मित्र, यहाँतक कि राक्षस विभीषणके भी मित्र हैं। यह सब वे बहुत उज्ज्वल और आकर्षक रूपमें थे, पर सबसे अधिक सहज—स्वाभाविक और प्रामाणिक रूपमें थे।

हरिश्चन्द्र या शिविकी तरह किसी एक स्तरपर उनका अत्यधिक जोर नहीं था, बल्कि उनमें एक प्रकारकी सुसमञ्जस्यपूर्ण परिपूर्णता थी। परंतु सबसे अधिक उनका कार्य था, उन सब चीजोंको स्थापित करना और उनका आदर्श रखना, जिनपर सामाजिक आदर्श और उसका स्थायित्व निर्भर करता है—जैसे सत्य और न्यायपरता, धर्मबोध, जन-भावना और सुव्यवस्थाका बोध, अपनी पितृभक्ति और अपने पिताके प्रति आज्ञाकारिताकी अपेक्षा बहुत अधिक—यद्यपि उनके लिये भी—उन्होंने प्रथम सत्य और न्यायके लिये व्यक्तिगत अधिकारोंका त्याग किया, जो उन्हें राजा और प्रजाद्वारा उत्तराधिकारी चुने जानेके कारण मिला था और अपने जीवनके सर्वोत्तम चौदह वर्षोंका बलिदान कर देशसे बाहर वनमें बिताया। अपनी लोक-भावना और सामाजिक सुव्यवस्थाके लिये (प्राचीन भारतीयों, यूनानियों और रोमनोंमें इसे यह एक महान् और सर्वोच्च नागरिक गुण माना जाता था; क्योंकि उस युगमें मानव-विकासधाराकी सबसे बड़ी आवश्यकता व्यक्तिका पृथक् विकास और उसकी संतुष्टि नहीं, वरं सुव्यवस्थित समाजकी सुरक्षा थी) उन्होंने अपने निजी सुख और पारिवारिक जीवन तथा सीताके सुखका बलिदान कर दिया। इस विषयमें समस्त प्राचीन जातियोंके नैतिक बोधके साथ वे एकमत थे, यद्यपि आधुनिक मनुष्यकी बाहरी औपन्यासिक व्यक्तिवादी भावुकताप्रधान नैतिकतासे उनका विरोध था; क्योंकि आधुनिक मनुष्य उन कम कठोर नैतिकताओंको ठीक इसी प्रकार ग्रहण कर सकता है कि प्राचीन लोगोंने सामाजिक सुव्यवस्थाकी भावनासे संसारको सुरक्षित करनेके लिये व्यक्तिका बलिदान कर दिया। अन्तमें रामका कार्य यह था कि वह रावणके साम्राज्य, राक्षसीय आतङ्कका नाश करके, सात्त्विक मानवके आदर्शके लिये संसारको सुरक्षित बना दे। यह सब उन्होंने अपने व्यक्तित्व और कर्ममें विद्यमान एक ऐसी दिव्य प्रेरणाके साथ किया कि उनकी स्थायी छाप भारतीय संस्कृतिके मनपर तीन सहस्र वर्षोंसे अधिक कालसे पड़ी हुई है और जिस चीजका उन्होंने प्रतिनिधित्व किया, वह सभी देशोंके मनुष्योंकी बुद्धि और आदर्शवादी मनपर छायी हुई है तथा मानवीय प्राणके निरन्तर विद्रोह करते रहनेपर भी वह शायद तबतक वैसी ही बनी रहेगी, जबतक कोई महत्तर आदर्श नहीं खड़ा हो जाता। और इन सब बातोंके बावजूद तुम यह कहते हो कि वे अवतार नहीं थे? परंतु उनका कार्य और अर्थ पृथ्वीकी विकासशील जातिके भूतकालपर अङ्कित रहेगा।'

अनुजोंसहित श्रीरामकी आरती

सीता करत आरती मैया।
चारु रतन के चारि सिंहासन रवि-ससि कोटि उदैया॥
रघुवर-लछिमन-भरत-सत्रुहन नृप दसरथके छैया।
रतन जटित को पलँग बन्यो है, ऊपर लाल तुलैया॥
मातु कौसिला करत आरती, दोउ कर लेत बलैया।
कीट मुकुट, मकराकृत कुंडल, कर सोहैं बान-धनुइया॥
मानदासके तन-मन वारौं सुंदर है राम रमैया॥

—संत मानदास: भजन रत्नावली

सूरदासके रामचरित-चित्रणकी पृष्ठभूमि

(लेखक—श्रीप्रभुदयालजी मीतल)

महात्मा सूरदास हिंदी-साहित्यमें कृष्ण-काव्यपरम्पराके उन्नायक और उसके सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। कृष्णसम्बन्धी प्रचुर और महत्त्वपूर्ण काव्यके कारण ही उनका नाम इतिहासमें अमर है। किंतु इस काव्यका अनुशीलन करनेसे ज्ञात होता है कि यह केवल कृष्णसम्बन्धी रचनाओंतक ही सीमित नहीं है, वरं इसमें राम-सम्बन्धी रचनाएँ भी हैं। कृष्णोपासक वल्लभ-सम्प्रदायसे सम्बन्धित एक भक्त-कवि होनेके कारण अपने उपास्य एवं इष्टदेव श्रीकृष्णकी लीलाओंका विविध रूपमें गायन करना उनके लिये स्वाभाविक था; किंतु उन्होंने राम-काव्यकी रचना क्यों की और उनके रामचरित्र-चित्रणका आधार क्या है, यह विद्वानोंके अनेक अनुमानों और उनकी विविध कल्पनाओंका विषय बना हुआ है।

एक विद्वान्‌का मत है कि 'सूरदासजी श्रीवल्लभाचार्यजीके सम्पर्कमें आनेसे पहले रामानन्दी सम्प्रदायमें दीक्षित थे। अतः उनकी राम-सम्बन्धी रचनाएँ उनके जीवनके आरम्भिक कालकी हैं।' अन्य विद्वानोंका मत है कि 'सूरदासने श्रीमद्भागवतके अनुवादरूपमें सूरसागरकी रचना की है, अतः भागवत-नवमस्कन्धका अनुवाद करते हुए उनका राम-काव्य भी प्रस्तुत हुआ है।' ये मत सूरदासजीके जीवन-वृत्तान्त और उनके राम-काव्यका अनुशीलन करनेसे असंगत ज्ञात होते हैं।

सूरसागरके रामसम्बन्धी पदोंका अवलोकन करते ही पाठककी दृष्टि सर्वप्रथम इस बातपर जाती है कि इनमें राम-जन्म-सम्बन्धी प्रसङ्गके अतिरिक्त बालचरित्रके पद संख्यामें कम हैं, जब कि हनुमान्, अङ्गदके वीरत्व और राम-रावणके युद्धसम्बन्धी पद संख्यामें अधिक हैं। यही कारण है कि इन पदोंमें बालकाण्ड और अयोध्याकाण्डकी अपेक्षा सुन्दरकाण्ड और लङ्काकाण्डका विशेषरूपसे वर्णन हुआ है। यह बात सूरदासकी प्रकृतिके विरुद्ध पड़ती है; क्योंकि उनका मन जितना बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड-सम्बन्धी वात्सल्य और शृङ्गारादि रसोंके प्रसङ्गोंमें रम सकता था, उतना सुन्दरकाण्ड और लङ्काकाण्ड-सम्बन्धी वीर-रसके प्रसङ्गोंमें नहीं।

यहाँपर स्वाभाविक रूपसे ये प्रश्न उत्पन्न होते हैं कि सूरदासने कृष्ण-काव्यके अतिरिक्त रामकाव्यविषयक पदोंकी रचना क्यों की? और उनमें भी अपनी प्रकृतिके प्रतिकूल कोमल विषयोंका कम तथा मार-काट एवं युद्धसम्बन्धी प्रसङ्गोंका अधिक वर्णन क्यों किया? इन प्रश्नोंके उत्तरके लिये वल्लभ-सम्प्रदायकी भक्ति-भावना और सेवा-विधिका ज्ञान होना आवश्यक है।

सूरदासजी जिस वल्लभ-सम्प्रदायमें दीक्षित थे, उसमें श्रीकृष्णको सर्वोपरि उपास्यदेव माना जाता है। इस सम्प्रदायकी मान्यता है कि परब्रह्म श्रीकृष्णने दुष्टोंके दमनके लिये समय-समयपर अवतार धारण किया है; ऐसे चौबीस अवतार हुए हैं, जिनमें श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं; शेष कलावतार एवं अंशावतार हैं। कलावतारोंमें भगवान् रामका सर्वोपरि महत्त्व है, उनके पश्चात् नृसिंह और वामनका है। इन चारोंकी जयन्तियोंके उत्सव वल्लभ-सम्प्रदायी मन्दिरोंमें मनाये जाते हैं; किंतु इनमें कृष्ण-जन्मोत्सवके पश्चात् राम-जन्मोत्सवको ही अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। वल्लभ-सम्प्रदायके इतिहाससे विदित होता है कि श्रीवल्लभाचार्यजीने सूरदासको अपने मतकी दीक्षा देकर उनको गोवर्धनस्थित श्रीनाथजीके मन्दिरमें कीर्तन करनेका आदेश दिया था। इसके अनुसार सूरदास सं० १५६८ से श्रीनाथजीकी झाँकियोंमें उपस्थित होकर नित्य-नये पदोंकी रचनाद्वारा उनका कीर्तन करने लगे। उनका यह क्रम उनके देहावसान-काल सं० १६४० तक चलता रहा था। उस ७२ वर्षके सुदीर्घकालमें उन्होंने जिन अगणित पदोंकी रचना की, वे ही बादमें 'सूरसागर' के रूपमें संकलित किये गये। वल्लभाचार्यजीके उपरान्त उनके द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथजीने सं० १६०२ में श्रीनाथजीकी सेवा-विधिकी पुनर्व्यवस्था करते हुए उसका विस्तार किया और 'अष्टछाप' की स्थापना की थी। उस समय वल्लभसम्प्रदायी सेवा-विधिमें कितने ही उत्सवोंकी व्यवस्था की गयी थी। श्रीनाथजीकी आठों झाँकियोंमें समय, ऋतु, त्यौहार और अन्य तिथियोंके अनुसार प्रतिदिन कीर्तन होने लगे, जिनमें सूरदास और अष्टछापके अन्य कीर्तनकार पृथक्-पृथक् तथा सम्मिलित रूपमें भाग लेते थे।

वल्लभसम्प्रदायी मन्दिरोंमें रामनवमीके दिन राम-जयन्तीका उत्सव होता है। इसी प्रकार दशहराका उत्सव भी प्रायः राम-विजयसे सम्बन्धित माना जाता है। इन दोनों उत्सवोंमें रामसम्बन्धी पदोंद्वारा कीर्तन करनेका नियम है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस सम्प्रदायमें सं० १६०२ से पहले भी रामनवमी और दशहराके उत्सव प्रचलित थे या नहीं; किंतु तबसे अबतक ये बराबर मनाये जाते हैं।

सूरदासके जीवनकालमें रामनवमी और दशहराके उत्सव सं० १६०२ के पश्चात् भी १८ बार हुए थे। उनमें कीर्तन करते हुए उन्होंने प्रत्येक बार दो-दो चार-चार पद भी गाये हों, तब भी उनके द्वारा रामसम्बन्धी अनेक पद रचे जानेका प्रमाण मिलता है। इस प्रकारके पद सर्व प्रथम कीर्तनकी पुस्तकोंमें संकलित किये गये, जो रामनवमी-को रामजन्मकी बधाई और दशहराको 'करखा' के पदोंके रूपमें उपलब्ध हैं। इन्हीं पदोंको बादमें राम-कथाके क्रमसे भी संकलित किया गया, जो सूरसागर, नवमस्कन्धमें प्राप्त होते हैं। ये ही पद सूरकृत 'रामपदावली' अथवा 'सूर-रामायण' के रूपमें भी संकलित मिलते हैं; किंतु सूरदासने इन्हें रामचरितका क्रमबद्ध चित्रण करनेके लिये नहीं रचा था, वरं वे रामजन्मोत्सव और दशहरापर गायन करनेके लिये रचे गये थे।

रामनवमीको रामजन्मकी बधाईके रूपमें गाये हुए पदोंमें बाल्यावस्थाकी कथाओंका कथन हुआ है और दशहराके अवसरपर गाये हुए 'करखा' के पदोंमें सुन्दरकाण्ड और लङ्काकाण्डके वीरतापूर्ण प्रसङ्गोंका वर्णन किया गया है। इन पदोंमें उक्त दोनों उत्सवोंके अनुरूप कथा-क्रमका ही नहीं, वरं रागोंका भी पृथक्करण किया गया है। रामनवमीविषयक पद विशेषकर कान्हरो, बिलावल और सारंग रागोंमें रचे गये हैं, जब कि दशहरासम्बन्धी अधिकांश पदोंकी रचना प्रसङ्गानुसार मारू रागमें हुई है। यदि सूरदास राम-कथाका क्रमबद्ध चित्रण करते तो उनकी रचनाका दूसरा ही रूप होता।

उपर्युक्त कथनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कृष्णोपासक सम्प्रदायमें सम्मिलित और अपनी प्रकृतिके अनुसार कोमल विचारोंके गायक होनेपर भी सूरदासने रामावतारकी रचना कर उसके अन्तर्गत वीरता एवं उत्साह-जन्य पदोंका सृजन विशिष्ट उद्देश्यकी पूर्तिके लिये किया है। और इस प्रकारके पद उन्होंने वल्लभाचार्यजीसे दीक्षा लेनेके उपरान्त उसी सम्प्रदायकी भक्तिभावनाके अनुसार ही रचे हैं।

इन पदोंमें रामकथाका क्रमबद्ध चित्रण न होनेके कारण स्पष्ट है कि इनकी रचना समय-समयपर मुक्तक-काव्यके रूपमें हुई थी; अतः इनमें प्रबन्ध-काव्यकी तरह कथाक्रमका निर्वाह नहीं हो सका है। जहाँतक इन पदोंकी काव्य-कलाका सम्बन्ध है, वह निस्सन्देह कृष्णलीलाके पदोंके समान नहीं है, यद्यपि दोनों प्रकारके पदोंकी रचना सूरदासकी प्रौढावस्थामें ही हुई थी। इसका कारण यह है कि सूरदासके राम-सम्बन्धी पद वल्लभसम्प्रदायी उत्सवोंकी विधिके निर्वाहमात्रके लिये रचे गये थे; अतः इनमें सूरदासके व्यक्तित्वका वह रूप नहीं उभर सका है, जो उनके कृष्ण-लीलाके पदोंमें दिखलायी देता है। फिर भी राम-कथाके जो प्रसङ्ग सूरदासकी प्रकृतिके अनुरूप आये हैं, उनकी रचना अपेक्षाकृत सुन्दररूपमें हुई है।

उपर्युक्त विवेचन रामसम्बन्धी उन पदोंके विषयमें है, जो 'सूरसागर' और 'कीर्तन-संग्रह' में उपलब्ध हैं, अथवा जो सूरकृत 'रामपदावली' और 'सूर-रामायण'-जैसी रचनाओंमें मिलते हैं। इनके अतिरिक्त 'सूर-सारावली' में जो राम-प्रसङ्ग प्राप्त है, उसकी शैलीमें उक्त पदोंसे भिन्नता है। 'सूर-सारावली' एक निश्चित समयमें रची हुई क्रमबद्ध रचना है, जिसमें परब्रह्म श्रीकृष्णके विविध अवतारोंका कथन करते हुए रामावतारकी कथा भी वर्णित है। यह कथा संक्षिप्त होते हुए भी क्रमबद्ध है। इसमें रामके बाल्य-चरित्रका वर्णन पूर्वोक्त पदोंकी अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत और मनोहर हुआ है। इसमें सूरदासके वात्सल्य-चित्रणकी वह झाँकी दिखलायी देती है, जिसके कारण उनकी इतनी प्रसिद्धि है। इसमें सीता-स्वयंवरका भी मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है। इसके पश्चात् कथा-विस्तारमें अत्यन्त शीघ्रता की गयी है। इसके कारण कोई प्रसङ्ग छूटे तो नहीं हैं, किंतु उनका समुचित वर्णन न कर नामोल्लेखमात्र कर दिया गया है।

सूरदासके रामचरित-चित्रणका आधार वाल्मीकि रामायण और श्रीमद्भागवत है। इनके अतिरिक्त उनकी मौलिक उद्भावनाएँ भी हैं। हिंदी साहित्यमें स्वामी

तुलसीदास राम-काव्यके सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, किंतु सूरदासने अपने राम-काव्यकी रचना उनसे पहले की है। इस प्रकार यहाँ उनको हिंदी-साहित्यमें कृष्ण-काव्य-परम्पराका प्रमुख निर्माता कहा जाता है, वहाँ उनको राम-काव्यके आरम्भ कर्ताओंमेंसे एक होनेका भी श्रेय दिया जा सकता है। इस दृष्टिसे सूरदासके रामचरित-चित्रणका पृथक् महत्त्व है।

सूरदासका श्रीराम-चरित-चित्रण

(लेखक—डा० श्रीगोकुलानन्द शर्मा तैलंग, पी० ए०, साहित्यरत्न)

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने शक्ति-शील-सौन्दर्यके पुण्य प्रतीक भगवान् श्रीरामके जिस लोकमङ्गल-व्यक्तित्वकी प्रतिष्ठा भारतीय वाङ्मयमें की है, सभी परवर्ती कवियोंने अपनी-अपनी लोकवाणियोंमें उसी मुक्त-मङ्गल आदर्शसे आलोक-रश्मियाँ लेकर अपने काव्योंको सँवारा है—निखारा है। शृङ्गार, सख्य और वात्सल्यकी रस-त्रिपुटीसे अनुप्राणित ब्रजभाषा वाङ्मयके समुज्ज्वल ज्योतिर्धर भक्त कवि सूरने अपनी निष्ठा एवं साधनाके अनुरूप, लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके जितने मनोमुग्धकारी चित्र अपनी काव्यतूलिकासे उतारे हैं, मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामके भी उतने ही लोकाभिराम चित्र उन्होंने अपने काव्य-पटपर आलेखित—अवतरित किये हैं। लगता है कि सूरका जितना मन 'श्याम विनोद-मोदकी लीला'में रमा है, मनका उतना ही तादात्म्य उन्होंने 'मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।' में पाया है। क्यों न हो, लीला और मर्यादा, दोनोंका समन्वित रूप ही तो भगवान्का 'लोक-संग्रही' व्यक्तित्व है। सूर-काव्यमें उसी लोकसंग्रहको श्रीरामके चरित्रमें उभारा गया है, जिनके द्वारा—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४। ८)

'साधु पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये और दूषित कर्म करनेवालोंका नाश करनेके लिये तथा धर्म स्थापन करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट होता हूँ।'

—श्रीहरिके इस संकल्पका पूर्ण निर्वाह निरूपित होता है।

कविने चरितनायक श्रीरामके आविर्भाव-प्रसङ्गमें अपने काव्यमें उल्लासपूर्ण वातावरणकी सृष्टि करते हुए श्रीप्रभुके अवतारके रसकी कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति की है—

आजु दसरथ कें आँगन भीर।
ये भू-भार उतारन कारन, प्रगटे स्याम-सरीर॥
फूले फिरत अयोध्यावासी, गनत न त्यागत चीर।
परिरंभन हँसि देत परस्पर, आनँद नैननि नीर॥
सिव-सुरपति रिषि व्योम बिमाननि देखत रहत न धीर।
त्रिभुवननाथ दयालु दरस दै, हरी सबनि की पीर॥
देत दान राख्यौ न भूप कछु, महा बड़े नग हीर।
भए निहाल 'सूर' सब जाचक, जे जाँचे रघुबीर॥

(सूर रामच० ४)

आज अवधपुरीमें रघुकुलमणि श्रीराम 'नीलाम्बुज श्यामल-कोमलाङ्ग' रूपसे, समग्र ऐश्वर्य विभूतियोंको अपनेमें समाहित करके भू-भार-निवारण करने तथा भिक्षुजनोंकी समग्र पीड़ाको हरण करनेके लिये अवतरित हुए हैं। त्रिलोकीपति करुणा-वरुणालय स्वयं श्रीहरि जो ठहरे! आज श्रीरघुनाथजीसे उनके भक्तजन जो भी याचना करेंगे, उनकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी। इसीलिये तो 'फूले फिरत अयोध्यावासी……आनँद नैननि नीर……'

श्रीराम स्वयं आनन्दनिधि हैं, भक्तवत्सल हैं, परम दयालु हैं। भूतलपर आसुरी वृत्तियोंकी प्रबलता तथा मानवकी दानवी लीलाओंके ताण्डवसे सत्पुरुष पीड़ित, पददलित हो रहे हैं। उनका संरक्षण, परिपालन ही प्रभुके इस अवतरणका लक्ष्य है। निराशा और पीड़ाओंके आवर्तसे घिरे भटकते मानवको आलम्ब प्रदानकर, उसे स्नेह-सम्बलके द्वारा अलौकिक सुखकी उपलब्धि कराकर श्रीराम भक्तोंको अभयदान दे रहे हैं। कविने उनके गुणगान, नाम-स्मरणमें इसीकी झाँकी पायी है—

करतल सोभित बान-धनुहियाँ।
खेलत फिरत कनकमय आँगन, पहिरे लाल पनहियाँ॥
दसरथ-कौसिल्या के आगें लसत सुमन की छहियाँ।
मानौ चारि हंस सरवर तें बैठे आइ सदेहियाँ॥
रघुकुल-कुमुद-चंद चिंतामनि प्रगटे भूतल महियाँ।
आए ओप देन रघुकुल कौं, आनँदनिधि सब कहियाँ॥

यह सुख तीनि लोक मैं नाहीं, जो पाए प्रभु पहियाँ।
'सूरदास' हरि बोलि भक्त कौं निरबाहत गहि बहियाँ॥
(पद-रामचरितावली ५)

कितना मञ्जुल, कितना मधुर, कितना मनोरम सौन्दर्य है। चिन्तामणिरूप रघुकुल-कुमुद-चन्द्रके उदित होनेपर केवल रघुवंश ही नहीं, समग्र भूतल उसकी अप्रतिम प्रकाश रश्मियों-से समुद्भासित हो रहा है। शील-सौन्दर्यकी राशि श्रीरामकी इस धर-क्रीडासे उनमें अन्तर्निहित अतुल शक्ति-संसारका निदर्शन हो रहा है। प्रभु इस शक्ति-शील-सौन्दर्य-समन्वित स्वरूपसे ही तो अपने भक्तोंको बाँह पकड़कर भवसागरके आवर्तोंसे बचाते हैं। 'निरबाहत गहि बहियाँ'में श्रीरामकी अहैतुकी कृपा, अपार अनुग्रह और शरणागतवत्सलताकी गरिमा संनिहित है। स्वयं भक्तको बुलाकर उसपर अनुग्रह करना ही तो 'पोषणं तदनुग्रहः'का स्वरूप है।

श्रीरामके इसी कृपालु, अनुग्रह-प्रतिरूप स्वरूपकी झलक परशुराम-संवाद-प्रसङ्गमें भी सूरने निदर्शित की है—

परसुराम तेहिं औसर आए।
कठिन पिनाक कहौ, किन तोरयौ, क्रोधित बचन सुनाए॥
बिप्र जानि रघुबीर धीर दोउ हाथ जोरि सिर नाम्यौ।
बहुत धिननि कौ टूटौ पुरातन, हाथ छुवत उठि भाज्यौ॥
तुम तौ द्विज, कुलपूज्य हमारे, हम-तुम कौन लराई।
क्रोधवंत कछु सुन्यौ नहीं, लियौ सायक धनुष चढ़ाई॥
तबहूँ रघुपति क्रोध न कीन्हौ, धनुष न बान सँभारयौ।
'सूरदास' प्रभुरूप समुझि, मन परसुराम पग धारयौ॥
(वही, १५)

एक ओर कठिन-पिनाकी रौद्ररूप क्रोधवंत परशुराम, दूसरी ओर विनय शील-समुद्रित, शान्त-सौम्य-विग्रह, धीर-रघुवीर श्रीराम। रौद्रपर शान्तकी विजय, उद्दण्ड क्रोधपर विनयकी विजय। सदाप्रसन्न धीर-वीर श्रीरामने सहजरूपमें विनोद-वाणीके माधुर्यसे ही एक अनपेक्षित संघर्षको टाल दिया। 'बहुत धिननि कौ टूटौ पुरातन हाथ छुवत उठि भाज्यौ' में कितना सरल, मधुर व्यङ्ग्य है—साथ ही श्रीरामकी अनन्त शिव शक्तिका निदर्शन भी। फिर गुरुजनोंके प्रति श्रद्धा-आदरभावकी परम मर्यादा भी श्रीरामके प्रस्तुत चरित्रमें परिलक्षणीय है। 'तुम तौ द्विज कुलपूज्य हमारे' में यह स्पष्ट है। भगवान्‌की ब्रह्मण्यता भी यह उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रभुकी महिमा, शान्ति एवं गम्भीरताके आगे परशुरामजीका

कुलिश-कठोर हृदय भी द्रवित हो गया। श्रीरामके इन नर-शीलमें परशुरामजीने भगवत्ताके दर्शन किये। दिव्य उदात्त, महिमा-गरिमामय व्यक्तित्व श्रीरामका है।

सूरदासने श्रीराम-कथाके विविध प्रसङ्गोंमें प्रभुके हृदयकी कोमलताके साथ-साथ कठोर कर्मनिष्ठा—धर्मपरायणताकी बहुत ही मार्मिकतासे अभिव्यक्ति दी है। वन-गमनके समय श्रीजानकीजीके प्रति किये गये स्नेहानुरोधको देखिये—

तुम जानकी! जनकपुर जाहु।
कहा आनि हम संग भरमिहौ, गहबर बन दुख-सिंधु अथाहु॥
तजि वह जनक-राज, भोजन-सुख, कत तृन-तलप, बिपिन फल खाहु।
ग्रीषम कमल-बदन कुम्हिलैहै, तजि सर निकट दूरि कित न्हाहु॥
जनि कछु प्रिया! सोच मन करिहौ, मातु-पिता-परिजन-सुख-लाहु।
तुम घर रहौ सीख मेरी सुनि, भरत बन मति दै पछिताहु॥
हौं पुनि आनि करौं न्याय-सेवा, . करिहौं तात-बचन-निरबाहु।
'सूर' सत्य जो पतिव्रत राखौ, चलौ संग जनि, रहहीं माहु॥
(वही, २०)

श्रीराम कर्तव्यकी रेखाओंसे बँधे हुए हैं। कर्तव्य-पालनसे आपद हैं। मातु-पितु-आज्ञाका पालन उनके लिये परम धर्म है, अपरिहार्य है। 'प्रान जाहि बरु नाहिं टरैं'—इस कुल परम्पराके अनुसार वे वन जानेको दृढ-संकल्प हैं। आखिर, आततायी राक्षसी-शक्तियोंके कारण पृथ्वीपर बढ़ते हुए पापके भारको भी उतारनेके लिये उन्हें आश्रम गमन है, यही उनके अवतारका प्रयोजन है। किंतु श्रीराम नहीं चाहते कि उनके आत्मीय, स्नेहीजन—प्राणप्रिय भाई लक्ष्मण अथवा परमप्रेयसी जनकनन्दिनी-सरीखे अति कोमल, अति सुकुमार प्रियजन उनके कर्तव्य-कर्मकी कठोरताके कारण उत्पन्न संकटके भागीदार बनें। वे जानकीजीके समक्ष वनकी विभीषिकाका चित्र खींचते हैं। उनके कमल-कोमल-कान्त कलेवरके कुम्हलानेकी करुण कल्पना करते हैं और उन्हें 'मातु-पिता-परिजन-सुख-लाहु'के बीच घर रहनेकी सीख देते हैं। श्रीरामको तो 'तात-बचन-निरबाहु' करना है। यही उनके लिये 'धर्मसेतु रेखा' है। जनकपुरके राज-वैभवमें पली जनकनन्दिनी उनके कारण वन-वन क्यों भटकें। सुख-दुःखकी चिरसङ्गिनी नारी पतिकी सदा-सर्वदा अनुचरी-सहचरी बन कर रहे—यही सदाचार है, आर्यधर्म है, शास्त्रीय मर्यादा है, पतिव्रता है। किंतु श्रीराम इसके विपरीत जानकीजी-से जनकपुर रहनेका आग्रह करते हैं और इसीमें उनके

पारिवारिकता निर्वाह मानते हैं, क्योंकि इसीमें उनका सुख है, परिवारका सुख है। इसीसे अपने कर्तव्य निर्वाहके लिये निर्बाध, प्रशस्त मार्गकी सिद्धि है। कर्तव्य-कर्मके प्रति कितनी सुदृढ़ निष्ठा, हृदयकी कितनी कोमलता।

यह तो हुआ अपने प्रियजन परिजनोंके प्रति स्नेह, वात्सल्य। अब भक्तोंके प्रति आपके सहज स्नेह, अनुग्रहका एक चित्र देखिये—आपके मङ्गलरूप चरणरेणुका प्रताप और उसकी भक्तोंके लिये गरिमा—

रे भैया केवट ! उतारौं ।
महाराज रघुपति इत ठाढ़े, तैं कत नाव दुराई ॥
अबहिं सिला तें भई देवगति, जब पग-रेनु छुवाई ।
हौं कुटुंब काहे प्रतिपारौं, वैसी मति ह्वै जाई ॥
याकी चरन-रेनु की महि मैं सुनियत अधिक बड़ाई ।
'सूरदास' प्रभु अगनित महिमा बेद-पुराननि गाई ॥

(वही, १८)

आज भक्त केवटका हठ है, प्रभुके पद-प्रक्षालनके लिये, पुण्य पद-रज प्राप्तिसे अपने जीवनको धन्य, सार्थक करनेके लिये। उसे किसी भी प्रकारकी भौतिक लिप्सा नहीं है, वह प्रभुके दिव्य अनुग्रहका आकाङ्क्षी है। शिलारूप ऋषिपत्नीको देवगति देनेवाली भगवच्चरण रेणुके माहात्म्यका निर्वचन तो उसके पद-प्रक्षालनकी महती कामनाकी पूर्तिके लक्ष्यकी सिद्धिके लिये है। अपनी साधनहीनता, अकिंचनता बताते हुए केवट प्रभुको विवश कर रहा है—पद पखारनेकी अनुमति प्राप्त करनेके लिये। उधर प्रभु भी केवटके निश्छल, सरल स्नेह, सेवा-समर्पणके भावसे अभिभूत होकर उसपर अहैतुकी कृपा करनेके लिये तत्पर हैं। 'रे, भैया केवट ! उतारौं।'—शब्दोंमें श्रीरामके अयाचित अनुग्रहकी ध्वनि है। प्रभु भक्तको स्वयं अपनेमें ले रहे हैं, यही तो प्रभुका महदनुग्रह है—पुष्टि-भक्तिका सिद्धान्त है।

श्रीरामके हृदयकी यह उदारता भक्तों, स्नेहियोंतक ही सीमित नहीं; वह तो समस्त परिजन-पुरजन, कौटुम्बिक आत्मीयजन एवं प्रजाजनके प्रति उनके चरित्रमें व्यापकरूपसे परिलक्षित होती है। दण्डकवनगमनके पूर्व, बन्धु भरतको चरणपादुका समर्पित करते हुए प्रभु इन शब्दोंमें नेहनीति, प्रीतिरीति, राजनीतिका निदर्शन करते हैं—

बंधु ! करियो राज सँभारे ।
राजनीति अरु गुरु की सेवा, गाइ-बिप्र प्रतिपारे ॥
कौसल्या कैकई सुमित्रा दरसन साँझ सवारे ।
गुरु बसिष्ठ अरु मिलि सुमंत सौं, परजा हेतु बिचारे ॥
भरत-गात सीतल ह्वै आयौ, नैन उमँगि जल ढारे ।
'सूरदास' प्रभु दई पाँवरी, अवधपुरी पग धारे ॥

(वही, ४१)

कुछ इनी-गिनी पंक्तियोंमें, श्रीरामके गुरु-भक्त, गो-ब्राह्मणप्रतिपालक, मातृ-सेवी, प्रजावत्सल एवं राजनीतिविद् व्यक्तित्वको कितनी सुन्दर रीतिसे निखारा गया है—भारतीय राजनीतिके उज्ज्वल पक्षको निरूपित किया गया है। ऐसे नीतिविशारद श्रीरामके स्नेहपूर्ण निर्देशको पाकर क्यों न भरत करुणाविगलित हृदयसे गद्गद होकर प्रेमाश्रुओंमें अवगाहन करें।

भगवान् श्रीरामके मानव-प्रेमका यह विलक्षण आदर्श आज भी भारतीय जन-जीवनको एक सुन्दर प्रेरणा दे रहा है। मानवमात्रके प्रति ही नहीं, वे तो जीवमात्रके साथ उसी स्नेह-वात्सल्यसे व्यवहार करते हैं। उच्चावचभावसे परे, स्त्री शूद्र, पुण्यात्मा-पापिष्ठ, पशु-पक्षी—सभी उनके लिये अपने हैं। 'हरि को भजै सो हरि का होय।' सभीको वे अपनी शरणमें लेकर अपने असीम स्नेहानुग्रहका पात्र बनाते हैं। भक्त जटायुपर प्रभुकी अपरिमेय कृपाका प्रसङ्ग देखिये—

रघुपति निरखि गीध सिर नायौ ।
कहि कै बात सकल सीता की, तन तजि, चरन-कमल चित लायौ ॥
श्रीरघुनाथ जानि जन आपनौ, अपने कर करि ताहि जरायौ ।
'सूरदास' प्रभु-दरस-परस करि, तत्छन हरि के लोक सिधायौ ॥

(वही, ५२)

मांस-भोजी पतित गीध-जाति, अधमकुल-पक्षीको हरि-प्राप्ति कितना सौभाग्यका विषय है! श्रीराम अपने हाथसे उसकी उत्तरक्रिया करते हैं। श्रीप्रभुके पुण्य-दर्शन और करस्पर्श पाकर जटायु क्यों न इहलोकके समस्त मायाबन्धनोंसे मुक्त हो प्रभुपद प्राप्ति करे! जन्म-जन्मके पुण्योंसे जो फल प्राप्त नहीं हो सकता, वह आज जटायुको उपलब्ध हुआ है। एक ओर जहाँ 'चरन-कमल चित लायौ' में भक्तकी एकनिष्ठ तन्मयता है, वहाँ दूसरी ओर 'श्रीरघुनाथ जानि जन आपनौ' में प्रभुकी भक्तवत्सलताकी अभिव्यक्ति है।

श्रीरामकी यही भक्तवत्सलता, पतितोद्धारकता शबरीके प्रसङ्गमें सूरदासद्वारा निदर्शित की गयी है—

सबरी आस्रम रघुबर आए। अरधासन दै प्रभु बैठाए॥
खाटे फल तजि मीठे ल्याई। जूठे भए सो सहज सुहाई॥
अंतरजामी अति हित मानि। भोजन कीने, स्वाद बखानि॥
जाति न काहू की प्रभु जानत। भक्ति-भाव हरि जुग-जुग मानत॥
करि दंडवत भई बलिहारी। पुनि तन तजि हरिलोक सिधारी॥
'सूरज' प्रभु अति करुना मई। निज कर करी तिल-अंजलि दई॥
(वही, ५७)

यह है श्रीरामका [illegible] स्वरूप। शबरी-जैसी पतित भिल्लिनी कन्यकापर भी! आज वह कितनी भाग्यशालिनी है कि प्रभु उसके आश्रममें उससे अर्घ्य-आसन स्वीकार किये हुए हैं। वह इतनी भोली, सरल निष्पाप-प्रकृति, कि जिसे यह भी ज्ञान नहीं कि प्रभुका भोग्य क्या है, जूठा क्या है! फलोंको पहले स्वयं चखकर प्रभुको मीठे-मीठे अर्पित कर रही है। किंतु श्रीरामकी अन्तर्यामिता भी दर्शनीय है कि वे उसके हितको मानकर बड़े स्वादसे भोजनरत हैं—
'जाति न काहू की प्रभु जानत। भक्ति-भाव हरि जुग-जुग मानत॥'

यही तो आपकी भक्तिवत्सलता है। ऐसे भक्तको आप तत्काल अपने पदकी प्राप्ति कराकर उसका उद्धार करें, इसमें आश्चर्य ही क्या। करुणामय प्रभु उसे 'तिलाञ्जलि' देकर उसके प्रति अपना स्नेह-वात्सल्य व्यक्त करते हैं। 'जाति पाँति पूछै नहिं कोई।' का पूर्ण परिपालन।

श्रीरामकी करुणामय भक्तवत्सलताका दूसरा आदर्श-निरूपण विभीषणकी शरणागतिके प्रसङ्गमें देखिये—

आए बिभीषन सीस नवायो।
देखतहीं रघुबीर धीर, कहि लंकापति, बुलायो॥
कह्यौ सो बहुरि कह्यौ नहिं रघुबर, यहै बिरद चलि आयो।
भक्त-बछल करुनामय प्रभु को, 'सूरदास' जस गायो॥
(वही, ११८)

'लङ्कापति'नामनिर्देशपूर्वक विभीषणके प्रति श्रीरामका सम्बोधन उनके लिये एक बहुत बड़ा वरदान है। मानो प्रभु लङ्केश रावणकी पराजय और उसका विनाश संकेत कर अपने भक्त विभीषणको अमोघ आशीर्वचन देकर अनुगृहीत कर रहे हों। प्रभुकी शरण शरणमें एक बार भी निष्कपट होकर जो आ गया, प्रभु उसके लिये अभयदान देनेमें विलम्ब नहीं, फिर वह कैसा भी दीन हीन, कलुष-कल्मषपूर्ण क्यों न हो। विभीषण तो आपके परम भक्त—'भागवतोत्तम' ठहरे। 'कह्यौ सो बहुरि कह्यौ नहिं रघुबर'—प्रभुका यह विरद सनातन कालसे चला आ रहा है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

—यही तो शरणागतिका सिद्धान्त है, 'प्रपत्ति' है, अनुग्रहमार्ग है, पुष्टिमार्गकी पुष्टि भक्ति है।

इसी प्रसङ्गमें, भक्तको अभयदान देकर, पूर्णतः अपनानेके अपने अटल संकल्पको प्रभु इन पंक्तियोंमें उद्घोषित करते हैं—

तब हौं नगर अजोध्या जैहौं।
एक बात सुनि निस्चय मेरी, राज बिभीषन दैहौं॥
कपि-दल जोरि और सब सैना, सागर सेतु बँधैहौं।
काटि दसौ सिर, बीस भुजा, तब दसरथसुत जु कहैहौं॥
छिन इक माहिं लंकगढ़ तोरौं, कंचन-कोट ढहैहौं।
'सूरदास' प्रभु कहत बिभीषन, रिपु हति सीता लैहौं॥
(वही, ११९)

भक्तकी पीड़ाको प्रभु सहन नहीं कर सकते। उनका करुणामय स्वरूप, एक अप्रतिम शौर्यकी अभिव्यक्तिके साथ और भी निखर उठा। श्रीरामके सत्य संकल्पको कौन टाल सकता है। वानर-सैन्यके संयोजन, सागर-सेतु-बन्धन, दशमुख रावणके दमन और जनकनन्दिनी सीताको मुक्त कराकर विभीषणके राज्याभिषेककी सारी योजना श्रीरामने बना ली। जबतक यह सब नहीं हो जाता, श्रीराम अयोध्याको नहीं लौटेंगे। कितनी अटल प्रतिज्ञा है। समुद्रका [illegible], उसपर अभेद्य कञ्चन-कोट उनके लिये बाधक नहीं है। सीताका प्रगाढ़ प्रेम उनमें एक असीम स्फूर्ति, अजेय शक्तिका संचार कर रहा है। लगता है कि शक्ति शील-सौन्दर्यके समन्वित अधिष्ठान श्रीराम एकमात्र 'शक्ति'के अधिष्ठान बन गये हैं।

श्रीरामका यही शक्ति-स्वरूप, रौद्र-रूप सुहृद् सुग्रीवके समक्ष भी प्रदर्शित हुआ है। सूरदासके शब्दोंमें करुणामय प्रभुका वह उग्र स्वरूप भी देखिये—

दूसरैं कर बान न लैहौं।
सुनि सुग्रीव! प्रतिज्ञा मेरी, एकहिं बान असुर सब हैहौं॥
सिव-पूजा जिहिं भाँति करी है, सोइ पद्धति परतच्छ दिखैहौं।
दैत्य प्रहारी पाप-फल-प्रेरित, सिर-माला सिव-सीस चढ़ैहौं॥
मनौ तूल-गन पवन अगिनि-मुख, करि [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] नहिं बिलँब [illegible], यहि [illegible] [illegible] है [illegible]॥

रमि रमि हुए देव-द्विज मोचन, लंक विभीषन ! तुम क्यों देहौ।
सखिमन, सिया समेत 'सूर' कपि, सब सुख सहित अजोध्या ऐहौं॥

(वही, १७८)

इस संदर्भमें भीष्म-प्रतिज्ञाका प्रसङ्ग स्मरण हो आता है। महाभारतमें श्रीकृष्णने भी एक ऐसी ही अटल प्रतिज्ञा की थी, शस्त्र ग्रहण न करनेकी और वह भी धर्मनीतिके सम्पुटमें। यहाँ भक्तराज भीष्मने प्रभुको विवश किया था शस्त्र-ग्रहण करानेके लिये—'प्रभु जो हरिहि न सस्त्र गहाऊँ।' (१।१०९।१) और यहाँ भी भक्तोंकी पीरके निवारणके लिये ही श्रीराम शस्त्र ग्रहण कर रहे हैं, भीषण संघर्षके लिये संनद्ध हैं। मित्र सुग्रीव, भक्त विभीषण, आत्मीय लक्ष्मण, प्रिया जनकजा और समग्र देव द्विजके रक्षणके लिये प्रभुका यह पराक्रम-पूर्ण प्रण है। श्रीरामके अवतारका प्रयोजन ही दैवी सृष्टिको अभय-दान और दानवी सृष्टिका दमन है। श्रीराम स्वयं शिव-पूजक हैं। शिव-कल्याणकी साधना, जन कल्याणकी भावना आपके चरित्रमें संनिहित है। इसीलिये तो 'सिव-पूजा जिहि भाँति करी है, सोइ पद्धति परतच्छ दिखैहौं॥' शब्दोंमें श्रीरामका रौद्ररूप झलक रहा है। *पालन-पोषण-संहारसमन्वित साधना श्रीरामका* आदर्श है, भक्तोंकी रक्षाके लिये।

इस प्रकार सूरदासने श्रीरामके चरित्रको विविध रूपोंमें उभारा है। श्रीरामके एक-एक चरित्रके एक-एक पात्रमें, एक-एक भावमें, एक महान् आदर्श, जीवनके लिये एक महती प्रेरणा है। जड-चेतन, देव मानव, पशु पक्षी—सभीके लिये श्रीरामका चरित्र अनुकरणीय, अभिवाञ्छनीय है। श्रीराम इसीलिये सभीके प्रिय हैं। उन्हें सभी प्रिय हैं। सभी उनके आत्मीय, स्नेही और अभिन्न हैं। समग्र विश्व उनका है। सभी मानव उनके स्वजन हैं और जननी जन्मभूमि तो उनके लिये सर्वोपरि है। भवन और भवनवासियोंके प्रति उनकी ममता, अवधकी नैसर्गिक सुषमाके प्रति उनका आकर्षण इन पंक्तियोंमें देखिये—

हमारी जन्मभूमि यह गाऊँ।
सुनहु सखा सुग्रीव-बिभीषन ! अवनि अजोध्या नाऊँ॥
देखत बन-उपबन, सरिता-सर, परम मनोहर ठाऊँ।
अपनी प्रकृति लिये बोलत हौं, सुरपुर मैं न रहाऊँ॥
ह्याँ के बासी अवलोकत हौं आनँद उर न समाऊँ।
'सूरदास' जो बिधि न सँकोचै, तौ बैकुंठ न जाऊँ॥

(वही, १९१)

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'की कितनी विशद व्याख्या, मार्मिक विश्लेषण है। श्रीराम विधि-विधानसे बँधे हैं, विधिकी मर्यादाओंसे संकुचित हैं, अन्यथा वे तो वैकुण्ठ—स्वधाम साकेत जानेके लिये भी तैयार नहीं हैं। उन्हें अयोध्यामें ही समस्त स्वर्गीय सुखोंकी समुपलब्धि है। ये चिरपरिचित पुरवासी, जिनसे उन्हें प्यार और दुलार मिला है—ये सर-सरिता, वन-उपवन, जहाँ उन्होंने अपनी बाल-क्रीडाएँ की हैं, ये परम मञ्जुल, मनोहर अवधके स्थल, जिनके कण कणमें उनका चित्त रमा हुआ है, वे कैसे भूल सकते हैं। 'हमारी जन्मभूमि' इस पदमें हृदयका कितना उल्लास, आत्मीय भाव और तादात्म्य अभिव्यक्त है।

फिर क्यों न श्रीरामके समुज्ज्वल चरित्र, उदात्त शील-सौन्दर्य और रूप-माधुरीपर पुरवासी मोहित होकर उनकी गुण-गण गरिमाका निरवधि गान करें! श्रीरामके भीतर-बाहर सब कुछ सौन्दर्यमय है, मधुर और मनोरम है। अन्तः-सौन्दर्यसे ही उनका बाह्य-सौन्दर्य अभिभूत, अनुस्यूत है। श्रीरामके सौन्दर्यवर्णनकी एक झाँकी कविकी वाणीमें देखिये—

देखन कौं मंदिर जनि चढ़ी।
रघुपति-पूरनचंद बिलोकत मनु पुर-जलधि-तरंग बढ़ी॥
प्रिय-दरसन-प्यासी अति आतुर, निसि-बासर गुनग्राम रढ़ी।
रही न लोकलाज मुख निरखत, सीस नाइ आसीस पढ़ी॥
मई देह जो खेह करम बस जनु तट गंगा अनल दढ़ी।
'सूरदास' प्रभु-दरस सुधानिधि, मानौ फेरि बनाइ गढ़ी॥

(वही, १९४)

आज चौदह वर्षके वनवासके अनन्तर श्रीराम अयोध्यामें प्रवेश कर रहे हैं, मानो अवधपुरीके पूर्व क्षितिजपर रघुकुलका पूर्णेन्दु उदय हो रहा हो। पुरवासियोंके सरल हृदय-जलधि उल्लास-तरङ्गोल्लसित होकर श्रीरामके सुधा स्निग्ध मुख माधुर्यका स्पर्श करनेको आतुर हैं। प्रिय दर्शनकी प्यासी आँखें आज प्रभुके सुधा स्निग्ध दृष्टि निक्षेपसे परितृप्त होंगी। श्रीरामके चिर-वियोगकी अग्निसे विदग्ध पुरवासी श्रीरामकी अमियदृष्टि पाकर पुनर्जीवन प्राप्त कर रहे हैं। पुरवासिनियोंके हृदयकी आतुरताके व्याजसे, समग्र रूपमें अयोध्यावासियोंके सौन्दर्यासक्त हृदयका ही चित्र कविने अङ्कित किया है।

यह है श्रीरामका अप्रतिम व्यक्तित्व और दिव्यतम चरित्र, जिसका दर्शन सूरदासने किया है और जिसे वे अपनी काव्य-सुमनिकासे भक्तजनोंके मानसपटपर उतार रहे हैं।

—:o:—

संत कबीरके 'राम'

(लेखक—पं० परशुरामजी चतुर्वेदी, एम्० ए०, एल्-एल्० बी०)

संत कबीर साहबने परमतत्त्वकी चर्चा करते समय, उसे विभिन्न प्रकारके शब्दोंद्वारा अभिहित किया है। कभी-कभी जहाँ वे उसके लिये 'अगम', 'अगोचर', 'अलख', 'सुंनि'-जैसे शब्दोंका प्रयोग करके, उसे कोई विलक्षण एवं अनिर्वचनीय सत्ता बतला डालते हैं और अन्यत्र उसे 'उन्मन', 'गगन', 'जोति', 'सबद' वा 'परमपद' आदि-जैसा ठहराते जान पड़ते हैं, वहाँ वे कभी उसे 'राम', 'रहीम', 'कृष्ण', 'करीम', 'गोविन्द', अथवा 'हरि'-जैसे नाम देकर किसी-न-किसी रूपमें साकारतातक भी प्रदान कर दिया करते हैं। उनके अनुसार उसे वास्तवमें उक्त तीनों वा अन्य वैसे किन्हींमें भी, केवल एकमें टाँककर अपना कोई मत निर्धारित कर लेना अपनेको धोखेमें डालनेके समान होगा; क्योंकि उस 'अविगत'की 'गति'के विषयमें कुछ कहा ही क्या जा सकता है, जिसके किसी 'गाँव-गाँव'का कोई ठिकाना नहीं तथा उस 'गुनविहूँन'का मन कोई निरीक्षणतक भी कैसे कर सकता है अथवा उसे कोई नाम ही क्या दिया जा सकता है।

जैसे—

अविगत की गति क्या कहूँ, जस कर गाँव न नाँव।
गुनविहूँन का पेखिये, काकर धरिये नाँव॥
(क०[1] ग्रं०, 'परचै', पृ० २१९)

उसका इस सम्बन्धमें अपने लिये भी केवल इतना कहना है कि 'सतगुरु'ने मुझसे उसकी ओर केवल विचारपूर्वक संकेतमात्र कर दिया और मैंने उससे, तदनुसार, उसके अपने मूलरूपमें अपनी निजी अनुभूतिके बलपर ही ग्रहण कर लिया।

जैसे—

'सतगुरु तत कह्यो विचार, मूल गह्यो अनभै बिसतार।'
(वही, पद १८९, पृ० २२६)

इसी प्रकार मैं अपने उस रामको किसी हदतक, केवल अपने अनुमानके अनुसार, उसका कुछ स्मरण करते-करते ही जान पाया।

जैसे—

'सुमिरत हूँ अपनैं उनमाना, क्यंचित जोग रांम मैं जांनां।'
(वही, 'परचै', पृ० २१९)

अतएव परमतत्त्वके विषयमें संत कबीरने जो कुछ भी कहा है, वह न केवल उनके अपने निजी अनुभवपर आधारित हो सकता है, प्रत्युत उनके वैसे कथनोंको भी तदनुसार उपर्युक्त-जैसे विविध वर्गोंमेंसे किसी-न-किसीके साथ मेल खाता भी मान लिया जा सकता है। उनकी ऐसी धारणा वस्तुतः इस बातकी ओर भी संकेत करती है कि उनका जो उपास्य 'भगवंत' है, वह उक्त 'अपरंपार'से अभिन्न है और उसके लिये इतना और भी कहा जा सकता है कि उसके नाम 'अनन्त' हैं।

जैसे—

'अपरंपार का नांउ अनंत, कहै कबीर सोई भगवंत।'
(वही, पद ११७, पृ० १९९)

इसके सिवा यहाँपर यह भी उल्लेखनीय है कि यों तो वे अपनी रचनाओंके अन्तर्गत उक्त अनन्त नामोंमेंसे कईके प्रयोग प्रायः एक दूसरेके पर्यायरूपमें करते दीख पड़ते हैं, किंतु उनमेंसे भी इन्हें 'राम' एवं 'हरि'-जैसे नाम विशेष प्रिय हैं।

संत कबीर ऐसे विविध नामोंमेंसे कईका कोई अर्थ भी करते नहीं दीखते, जिसे व्युत्पत्तिमूलक अथवा परम्परागत ठहराया जा सके, किंतु वे उनके ऊपर अपनी ओरसे कोई-न-कोई नयी छाप-सी लगा देते भी जान पड़ते हैं, जिससे कभी-कभी हमें ऐसा भी लगता है, जैसे उन्हें उनको अपने मौलिक अभिप्रायके साथ प्रयोगमें लाना कदाचित् अभीष्ट भी न रहा हो। उदाहरणके लिये, जिस पदकी अन्तिम पङ्क्तिको अभी ऊपर उद्धृत किया गया है, उसीके अन्तर्गत वस्तुतः वे अपने उपास्य 'भगवंत'के कई नामोंसे कुछ-न-कुछ व्याख्या प्रस्तुत करते लगते हैं तो यहाँपर उनके वाक्य 'राम' शब्दके विषयमें बतलाते हैं कि 'राम वह अलेख्य नहीं है, जो युगों-युगोंतक घट-घटमें व्याप्त रहा करता है।'

---

[1] 'कबीर-ग्रन्थावली' (नागरी-प्रचारिणी-सभा', [illegible], सन् १९४० ई०)।

जैसे—

'सोइ राम मैं कुनि कुनि रहै।'

(वही, पद १२७, पृ० १११)

इसके सिवा उन्होंने अन्यत्र इतना और भी स्पष्ट कर दिया है कि 'राम' शब्दका ऐसा प्रयोग करते समय वे इसके द्वारा उस भगवान् रामचन्द्रको भी सूचित करना नहीं चाहते, जिसने त्रेतायुगमें अवतार धारण किया था। उन्होंने यहाँपर दूसरोंको उपदेश देते समय इस प्रकार भी कहा है कि 'तुम्हें उसी स्वामीके साथ लगना चाहिये तथा सुख एवं दुःखके द्वन्द्वसे मुक्त होकर स्वतन्त्र मन बनाना चाहिये, जिसने न तो राजा दशरथके घर जन्म ग्रहण किया था और न जिसने लङ्काके रावणको सताया था, प्रत्युत उसके, जो सारे विश्वके भीतर अपने 'अगम' रूपमें काम किया करता है।' जैसे—

ता साहिब के लागौ साथा, दुख सुख मेटि रहौ अनाथा।
नाँ दसरथ घरि औतरि आवा, नाँ लंका का राव सँतावा॥
...　　...　　...　　...
सबही मैं जो अगम है, सो बरति रह्या समाइ॥

(वही, 'रमैणी', पृ० २४१)

संत कबीरका इस प्रसङ्गमें किया गया एक अन्य कथन 'दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राँम नाम का मरम है आना।' के रूपमें भी पाया जाता है, जिसके द्वारा इसका और भी अधिक स्पष्टीकरण हो जाता है।

संत कबीर अपने 'राम'के विषयमें एक स्थलपर इस प्रकार भी कहते हैं कि 'मैंने उसे अपनी आँखोंसे कभी नहीं देखा है, जिस कारण मैं बतला नहीं सकता कि वह कैसा है।' जैसे—

'मैं का आँखें राँम कूँ नैनूँ कबहूँ न दीठ॥'

(वही, साखी १, पृ० १०)

वे उसे अन्यत्र भी अधिकतर 'आतम राम'-जैसे शब्दोंद्वारा ही अभिहित करना चाहते हैं और यह भी कह देते हैं कि उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। जैसे—

'आतम राँम अवर नहिं दूजा।' (वही, पद ११५, पृ० १११)

तथा वे अपनी एक रचनाके अन्तर्गत, और प्रायः ऐसे ही प्रसङ्गमें, संतोंको सम्बोधित करते हुए उनसे पूछते हैं— 'हे संतो! यदि तुम उस 'आतमराम'को पहचाननेमें असमर्थ हो तो भला, उस 'रामराम'में रमोगे भी तो कैसे!'

जैसे—

'आतम राँम न चीन्हैं संतो, क्यूँ रमि लै राँम राया।'

(वही, पद १००, पृ० १४४)

क्योंकि इस प्रकार 'आतमराममय' हो जानेपर ही अपने मनको विश्राम प्राप्त होता है। जैसे—'आतमां राँम को मन बिसराँम' (वही, पद० १८०) वे उसे सर्वव्यापक बतलाते हुए स्वयं उससे भी कहते हैं कि 'जहाँ देखता हूँ, वहाँपर सर्वत्र मुझे तुम केवल एक राम ही-रामके रूपमें दीख पड़ते हो और तुमसे रहित 'ठौर' मुझे कोई भी अपनी दृष्टिमें नहीं आता।'

जैसे—

'जहाँ देखौं तहाँ राँम समाँनाँ, तुम्ह बिन ठौर और नहिं आँनाँ।'

(वही, 'रमैणी', पृ० २११)

तथा वे अन्यत्र यह भी बतलाते हैं कि 'मैंने जब सभी किसीमें केवल एक रामको ही देखा, तभी मेरा मन मान पाया।' जैसे—

'एक राँम देख्या सबहिन मैं, कहै कबीर मन माँनाँ।'

(वही, पद ५१, पृ० १०५)

—जिसके आधारपर कहा जा सकता है कि यह बात भी उनके लिये अनुभवसिद्ध ही रही होगी।

संत कबीर अपने उस रामको कभी कभी, 'निरगुण राम' कहकर भी पुकारते दीख पड़ते हैं और वे इस प्रसङ्गमें कहते हैं—'अरे भाई! निरगुण निरगुण रामका जप करो; क्योंकि उस अगम्यकी गति हमें लख नहीं पड़ती। उसका मर्म चारों वेद, अठारहों स्मृति पुराण अथवा नौ व्याकरणवाले भी नहीं जानते और न शेषनाग, गरुड या कमला (लक्ष्मी) को ही उसका कोई पता चल सका।' जैसे—

निरगुण राँम निरगुण राँम जपहु रे भाई।
अबिगति की गति लखी न जाई॥ टेक॥
चारि बेद जाकै सुमृत पुराँनाँ, नौ ब्याकरणाँ मरम न जाँनाँ।
सेस नाग जाकै गरड समाँनाँ, चरन कवल कवला नहिं जाँनाँ॥

(वही, पद ४१, पृ० १०४)

इसी प्रकार वे अन्यत्र उसे कोई निरञ्जन या निरञ्जन भी कह डालते हैं और कहते हैं कि 'वही, एकमात्र निरञ्जन ही, सर्वत्र विद्यमान है तथा जो कुछ इसके

हुआ दीख पड़ता है, वह केवल 'अञ्जन' मात्र ही समझा जा सकता है। जैसे—सृष्टिका उद्गम 'ॐकार', उसके आधारपर विस्तृत सारा प्रपञ्च आदि ये सभी अञ्जन (माया)के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं।'

जैसे—

> राँम निरंजन न्यारा रे, अंजन सकल पसारा रे ॥ टेक ॥
> अंजन उतपति वो ऊँकार, अंजन माँड्या सब बिस्तार ॥ आदि
> (वही, पद ३३८, पृ० २०१)

वास्तवमें उनका 'राम' अपने ढंगका अकेला है और इसी कारण वह निराला भी है। क्योंकि उनका कहना है कि 'कितने ही चिन्तनाकर उठ गये (अर्थात् लीन हो गये), किंतु रामकी समाधि अभीतक भी छूट नहीं सकी है। प्रलयकालमें अगणित इन्द्र चले गये और ब्रह्मा उसकी नाल पकड़कर उसकी खोज करते ही रह गये। किंतु उसे कोई न पा सका।'

जैसे—

> किते क सिवसंकर गए उठि। राँम समाधि अजहूँ नहि छूटि ॥ प्रलै काल कहूँ किते क भाष। गए इंद्र से अगणित लाष ॥
> ब्रह्मा खोजि परयौ गहि नाल। कहै कबीर वै राँम निराल ॥
> (वही, पद १५, पृ० ९९)

तथा, यदि स्वयं कबीर भी उनका भजन कर पाता है तो वह केवल इसलिये कि 'अनेकोंकी संगतिके सहारे उसके मनमें यह बात जम गयी है और उसकी मतिमें धैर्य हो आया है, जिससे वह रामको 'सहज' या 'सहज सिद्ध' मानकर भजने लग गया है।' जैसे—

> भगत संगति मति मन करि धीरा, सहज जानि रामहि भजै कबीरा ॥'
> (वही, पद ११५, पृ० १२५)

इस प्रकार यदि हम केवल उपर्युक्त पदोंके ही आधारपर विचार करने लगें तो हमें ऐसा भी भ्रम हो सकता है कि संत कबीरके 'राम'का स्वरूप, उनकी अपनी कोरी भावनाओंके ही अनुसार निर्मित किया गया होगा तथा यह भी कि उनके ऐसे निर्माणमें जितना भाग उनकी बुद्धि एवं तर्कपद्धतिने लिया होगा, उतना कदाचित् उसमें उनके हृदयका भी हाथ नहीं रहा होगा। परंतु यदि हम उनके साथ उनके द्वारा बतलाये गये उनके विभिन्न सम्बन्धों-की ओर भी ध्यान देते हैं तो हमें ऐसा भी जान पड़ता है कि यह बात केवल आंशिक रूपमें ही सत्य सिद्ध की जा सकेगी। ऐसी दशामें उनके 'राम' हमारे सामने किसी ऐसे अनुपम व्यक्तिके रूपमें भी आ जाते दीख पड़ते, जिनके साथ अनेक प्रकारके नातेदार भी जोड़े जा सकते हैं। उदाहरणके लिये संत कबीर अपने एक पदके आरम्भमें ही बतला देते हैं कि 'मुझे अपने रामके चरण अपने लिये सुखप्रद अथवा कल्याणकर जान पड़ने लग गये हैं।' जैसे—'राम चरन मनि भाए रे।' आदि पद (७६, पृ० ११२) तथा कहींपर उस अपने उपास्यदेवका रूप निर्दिष्ट करते हुए भी वे कहते हैं कि 'चारोंओर आठ-पत्तोंके तुलसीके वन घेरे लगे हुए हैं और मध्यमें द्वारिका नगर स्थित है, वहींपर मेरा वह 'ठाकुर' (स्वामी) रामराय निवास करता है, जिसके भक्तका नाम कबीर है।'

जैसे—

> बनि बनि तुलसी की बिरवा, मांहि द्वारिका गाँव रे।
> तहाँ मेरौ ठाकुर राँम राइ है, भगत कबीरा नाँव रे ॥
> (वही, पद ७१, पृ० ११४)

इसके सिवा वे उस अपने रामको, एक ऐसे स्वामी-के भी रूपमें देखने लगते हैं, जिसके वे स्वयं कोई एक क्रीतदासमात्र हैं तथा वे इस प्रकारसे कहते हैं—'हे गुसाईं (मालिक)! मैं तेरा एक गुलाममात्र हूँ। क्योंकि मेरा जो कुछ भी तन, मन अथवा धनके रूपमें है, वह सभी मेरे अपने मालिकके ही लिये है। उसीने मुझ कबीरको हाटमें लाकर उतार दिया है। वास्तवमें वही मेरा विक्रेता भी है और वही मेरा ग्राहक भी। यदि वह मुझे बेचना चाहता है तो फिर कौन है, जो मुझे रख सकेगा; तथा इसी प्रकार यदि वह मुझे रखना चाहता है तो मुझे बेच ही कौन सकता है।'

जैसे—

> मैं गुलाँम मोहि बेचि गुसाँई।
> तन मन धन मेरा राँमजीकै ताँई ॥ टेक ॥
> आँनि कबीरा हाटि उतारा। सोई गाहक, सोई बेचनहारा ॥
> बेचै राम तौ राखै कौंन। राखै राम तौ बेचै कौंन ॥
> (वही, पद, ११३, पृ० १२४)

संत कबीर अपने उस 'रामराया'को 'भरतार राया' अथवा 'भरतार रामराया' कहना भी पसंद करते हैं और इस प्रकार उसके साथ अपनी घनिष्ठ आत्मीयताका भाव प्रकट करते हुए वे उससे कहते हैं—'हे भरतार राम! मेरी विनती सुनो, क्योंकि ये सारे औगुन मेरे लिये ही हो जाती हैं,

किंतु तुम्हारे लिये वे प्रकट एवं प्रत्यक्ष हैं·····हे मेरे रामराय ! मेरा कथन श्रवण कीजिये तथा पहले मुझे क्षमा प्रदान करके, तब मेरा लेखा लीजिये । कबीर कहता है कि हे पिता रामराय ! अब मैं तेरी शरणमें आ गया हूँ ।'

जैसे—

> बाप राँम सुनि बिनती मोरी ।
> तुम्हसूँ प्रगट लोगनि सूँ चोरी ॥ टेक ॥
> × × ×
> राँम राइ मेरा कह्या सुनीजै । पहले बकसि, तब लेखा लीजै ॥
> कहै कबीर बाप राँम राया । अबहूँ सरनि तुम्हारी आया ॥
> (वही, पद १५७, पृ० २०७)

इसी प्रकार वे 'हरि'के लिये भी कहते हैं—'हे हरि ! तुम मेरी जननी हो और मैं तुम्हारा बालक हूँ; इसलिये तुम मुझे क्षमा क्यों नहीं कर देते ।' (जैसे—'हरि जननीं, मैं बालिक तेरा, काहे न औगुंण बकसहु मेरा ।' पद ११०, पृ० १२२) और अन्तमें वे यह भी कह डालते हैं कि 'बालकके दुखी हो जानेपर उसकी 'महतारी' भी दुखिनी हुए बिना नहीं रहती ।'' संत कबीर तो रामको अपना सद्गुरु मानते हुए अपनेको उनका 'नौतम चेला' तक भी कह देते हैं । इसके पहले वे एक पदमें बतलाते हैं कि ''राम'के बिना मेरे शरीरकी तपन नहीं जा पाती तथा जिस जलके भीतर मेरा निवास है, उसमें अब यह और भी अधिक प्रज्वलित होती जान पड़ रही है । हे राम ! तुम्हीं वह जलनिधि हो, जिसमें मैं मछलीके रूपमें वर्तमान हूँ; किंतु (आश्चर्य तो यह है कि) उसमें रहती हुई भी मैं उसके बिना तड़प रही हूँ । तुम पिंजरा हो, जिसमें मैं एक तुम्हारा सुगा-सा हूँ और इसी प्रकार तुम सद्गुरु हो जिसका मैं एक नया-नया चेला-जैसा हूँ तथा इसी रूपमें मैं तुम्हारे भीतर अकेले ही रमण कर रहा हूँ ।''

जैसे—

> राँम बिन तन की ताप न जाई ।
> जल मैं अगनि उठी अधिकाई ॥ टेक ॥
> तुम्ह जलनिधि मैं जल कर मीनाँ, जल मैं रहौं जलहि बिन खीनाँ ॥
> तुम्ह पींजरा मैं सुवनाँ तोरा, दरसन देहु, भाग बड़ मोरा ॥
> तुम्ह सतगुर, मैं नौतम चेला, कहै कबीर राँम रमूँ अकेला ॥
> (वही, पद १००, पृ० ११६)

परंतु इन सबसे अधिक रोचक और आत्मीयताका सूचक सम्बन्ध हमें वह समझ पड़ता है, जिसे संत कबीरने अपने राम या हरिके साथ किसी अपूर्व दाम्पत्यरक भावके रूपमें जोड़ा है और जिसका परिचय देते समय वे कहते हैं—

> हरि मेरा पिव, माई ! हरि मेरा पिव ।
> हरि बिन रहि न सकै मेरा जिव ॥ टेक ॥
> हरि मेरा पिव, मैं हरि की बहुरिया । राम बड़े, मैं छुटक लहुरिया ॥
> किया स्यंगार मिलनके तांई । काहे न मिलौ, राजा राँम गुसांई ॥
> अब की बेर मिलन जो पांऊँ । कहै कबीर भौजलि नहीं आंऊँ ॥
> (वही, पद ११७, पृ० १२५)

अर्थात् ''अरी माई ! हरि मेरा प्रियतम है और हरिके बिना मैं जी नहीं सकती । हरि मेरा प्रियतम है और मैं उसकी 'बहुरिया' हूँ । वे राम मेरे बड़े हैं और मैं उनकी लहुरिया अर्थात् वधूटीमात्र हूँ । (हे राम !) तुमसे मिलनेके लिये मैंने शृङ्गार किया है, किंतु (क्या बात है कि) मेरे राजा एवं स्वामी राम ! तुम मुझसे मिल नहीं रहे हो । कबीर कहता है कि अबकी बार यदि मेरी भेंट तुमसे हो गयी और मैं तुमसे मिल सकी तो मैं फिर कभी भवसागरमें पड़नेका नाम नहीं लूँगी ।'' इतना ही नहीं, संत कबीर उस अपने रामके साथ विधिपूर्वक विवाहित होनेतककी बातें करते हैं और वे कहते हैं—'हे सुहागिन सखियो ! तुम सभी मङ्गलके गीत गाओ; क्योंकि आज मेरे घर स्वयं राजा राम ही भर्तार या पतिके रूपमें पधार रहे हैं ।' और फिर इसके अनन्तर वे यह भी कह देते हैं कि 'मुझे एक-मात्र एवं अविनश्वर 'पुरुष'ने ब्याह लिया है ।''

जैसे—

> दुलहनीं गावहु मंगलचार ।
> हम घरि आए हो (राजा) राँम भरतार ॥ टेक ॥
> × × ×
> कहै कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी ॥
> (वही, पद १, पृ० ८७)

तथा वे अन्यत्र इस प्रकारका भी कथन करते हैं कि 'भले ही मेरी निन्दा करो, भले ही मेरी निन्दा करो, तुम लोग मेरी निन्दा करते रहो; मेरा तो तन एवं मन—सब कुछ उस रामप्यारेके ही साथ जुड़ा हुआ है । मैं दासी हूँ और ये राम ही मेरे पति हैं तथा उन्हींके निमित्त मैंने अपना सारा शृङ्गार किया है' इत्यादि ।

जैसे—

मोकौं निंदौ मोकौं निंदौ मोकौं निंदौ लोग।
तन मन राँम पियारे जोग॥ टेक॥
मैं बौरी, मेरे राँम भरतार। ता कारनि रचि करौं स्यँगार॥
(वही, पद १४१, पृ० १०१)

इस प्रकार संत कबीरद्वारा किये गये विभिन्न कथनोंके अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके 'राम' कोई व्यक्तिविशेष नहीं हो सकते और न वास्तवमें हम उन्हें किसी अवतारके रूपमें भी मान सकते हैं। उनके अनुसार उनके 'राम'को हम किसी देवविशेषकी भी कोटिमें नहीं रख सकते; क्योंकि इनकी सहायताके बल्पर भी उनका अपना काम चलनेवाला नहीं। उनका कहना है कि 'यदि मैं कोई याचना करता हूँ तो वह भी केवल रामसे ही, अन्य देवताओंके साथ मेरा कोई सरोकार नहीं है।' तथा उस अपने रामका कुछ परिचय देते हुए वे यह भी हमें बतला देते हैं कि 'उसके यहाँ करोड़ों सूर्यदेव प्रकाश करते हैं, करोड़ों महादेव और उनके कैलास पर्वत विद्यमान हैं, करोड़ों ब्रह्मा उसके यहाँ वेदोच्चार किया करते हैं।' आदि—

जैसे—

जो जाचौं तो केवल राँम, आँन देव सूँ नाँहीं काँम॥ टेक॥
(जाके) सूरिज कोटि करैं परकास, कोटि महादेव गिरि कबिलास॥
ब्रह्मा कोटि बेद उचरैं, दुर्गा (कोटि) जाके मरदन करैं॥
(वही, पद १४, पृ० १०२)

केवल वे ही राम इनका साथ बराबर देते रहा करते हैं तथा इन्हींमें वे सदा लीन भी रहा करते हैं। संत कबीरका कहना है कि 'मेरा मन कभी डिगता नहीं, जिस कारण मेरा शरीर भी कभी भयभीत नहीं होता और दोनों सदा केवल राममें ही लव लगाये रहते हैं। अत्यन्त अथाह जलके भीतर, जो गहरा होनेके साथ ही गम्भीर भी है, मुझ कबीरको जंजीरोंसे बाँधकर डाल दिया गया है, किंतु मुझे ऐसा लग रहा है कि उस जलकी ही तरंगोंने उमड़कर जंजीरको काट भी दिया और मैं कबीर हरिस्मरण करता तटपर आ गया। कबीर कहता है कि मेरा अन्य कोई भी संगी-साथी नहीं है। मेरी रक्षा, चाहे जलमें हो या स्थलपर, वह 'जगनाथ' (राम) ही करता है।'

जैसे—

मन न डिगै, तातैं तन न डराई।
केवल राँम रहे ल्यौ लाई॥ टेक॥
अति अथाह जल गहर गँभीर, बाँधि जंजीर जलि बोरे हैं कबीर॥
जल कि तरँग उठि कटि हैं जंजीर, हरि सुमिरन तट बैठे हैं कबीर॥
कहै कबीर मेरे संग न साथ, जल थल मैं राखै जगनाथ॥
(वही, पद १४१, पृ० १०१)

अतएव संत कबीरकी उपलब्ध रचनाओंके आधार पर कहा जा सकता है कि उनके राम उनके लिये सभी कुछ हैं, यहाँतक कि उस रामके नामतकको भी वे सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करना चाहते हैं। वे उस रामनामको कभी 'रामरतन' कहते हैं, कभी उसे 'रामरसायन' ठहराते हैं, कभी 'रामरस' या 'रामअमृत' बतलाते हैं तो कभी 'रामकसौटी' या 'चिन्तामणि' कह डालते हैं। तथा वे उसका स्मरण करनेके फलस्वरूप यहाँतक भी कह देते हैं कि 'मेरा मन रामका स्मरण करता है, मेरा मन राम ही है। जब मेरा मन राम ही-राम हो रहा है तो अब मैं किसी दूसरेमें अपना सिर किसे झुकाऊँ?'

जैसे—

(कबीर) मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहि आहि।
अब मन रामहि है रह्या, सीस नवावौं काहि॥
(स० ८, पृ० ५)

परंतु इसके साथ ही एक बात यह भी स्पष्ट दीख पड़ती है कि उनके वे राम उनके द्वारा यत्र-तत्र 'रघुनाथ' (पद १८७, पृ० १५१), 'रघुराया' (पद ५९, पृ० ८०) अथवा 'रघुपति राजा' कहलाने हुए भी, वस्तुतः वह राम या रामतत्त्व हैं, जो उनका उपास्य है। उनका कहना भी है कि 'हमारे लिये राम, रहीम, करीम, केशव अथवा अल्लाह—सभी उस सत्यरूपी राममें अभिन्न हैं तथा 'बिसमिल्ला' को मिटाकर 'विश्वम्भर' कह देना भी एक ही बात है, मेरे लिये दूसरा कोई नहीं है।'

जैसे—

(हमारे) राँम, रहीम, करीमाँ, केसौ, अलह, राँम, सति सोई।
बिसमिल मेटि बिसंभर एकै, और न दूजा कोई॥
(वही, पद ५८, पृ० १०६)

राजरानी मीराँकी साधनामें राम

(लेखक—श्रीमती रानीसाहिबा एम० श्रीनिवासाचारियर)

भारतीय इतिहासके मध्यकालके दूसरे चरणके आरम्भमें चित्तौड़के राजराजेश्वर महाराणा साँगाकी पुत्र-वधू राजरानी मीराँबाईने राजकीय वैभवसे तिलाञ्जलि देकर वृन्दावनके प्रेमदेवता भगवान् गिरिधर गोपालकी भक्ति-साधना की। वैसे तो वे प्रमुखरूपसे श्रीकृष्णकी ही उपासिका थीं और निस्संदेह उनका सम्पूर्ण जीवन श्रीकृष्णकी अनुरक्तिमें सम्पृक्त था; पर उनके अनेक पदोंमें श्रीराम-नामके प्रति उनकी निर्मल श्रद्धा और पवित्र भक्तिका पता चलता है। उन्होंने अपने पदोंमें श्रीकृष्णके सगुण रूपका माधुर्यपूर्ण सौन्दर्य निरूपित किया है और अनेक प्रकीर्ण पदोंमें निर्गुण रामके नामकी महिमा भी गायी है। यद्यपि उनकी दृष्टिमें श्रीराम और कृष्णमें अभेद था, तथापि साधनाके क्षेत्रमें श्रीकृष्णके सगुण रूपके प्रति ही उनका विशिष्ट आकर्षण था; किंतु साथ-ही-साथ रामनामके प्रभाव और महिमाका गान किये बिना भी वे नहीं रह सकीं। उनकी इस तत्त्वकी उदार प्रवृत्तिपर संत रैदासकी निर्गुण भगवद्भक्ति और गोस्वामी तुलसीदासजीकी सगुण रामभक्तिका स्पष्ट प्रभाव था। वे संत रैदासके निर्गुण पदोंसे तथा निर्मल भगवद्भक्तिसे बहुत प्रभावित थीं। कहा जाता है कि संत रैदास उनके गुरु थे। मीराँबाईके एक पदसे पता चलता है कि गुरु-रूपमें संत रैदासने मीराँपर कृपा की थी।

मीराँ मन मानी सुरत सैल असमानी॥
जब जब सुरत लगी वा घर की, पल पल नैनन पानी।
ज्यों हिये पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी॥
रात दिवस मोहि नींद न आवत, भावै अन्न न पानी।
ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी॥
ऐसा वैद मिलै कोइ भेदी, देस-बिदेस पिछानी।
तासों पीर कहूँ तन की री, फिर नहिं भरमूँ खानी॥
खोजत फिरौं भेद वा घर को, कोइ न करत बखानी।
रैदास संत मिले मोहि सतगुरु, दीन्ही सुरत सहदानी॥
मैं मिलि जाय, पाय पिय अपना, तब मेरी पीर बुझानी।
मीराँ खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी॥

राणा विक्रमजित्‌द्वारा यातना दिये जानेपर भक्तिमती मीराँने अपने एक विशेष दूतके हाथ काशीमें श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीके पास पत्र भेजा था—ऐसी प्रसिद्धि है। उन्होंने गोस्वामीजीसे पूछा था कि 'साधुओं और हरिभक्तोंके साथ भगवद्भजन करते देखकर हमारे राजपरिवारके स्वजन मुझे अनेक प्रकारसे प्रताड़ित कर रहे हैं। मुझे कृपाकर लिखिये कि क्या करना चाहिये। आप हमारे माता-पिताके समान हैं, भगवद्भक्तोंको सुखी करनेवाले हैं। मेरा उचित पथ-प्रदर्शन कीजिये।' गोस्वामीजीने पत्रके उत्तरमें लिख भेजा कि 'जिन्हें श्रीसीताराम प्रिय नहीं लगते, उनका परित्याग कर देना चाहिये; वह भले ही अपना परम सगा हो, पर है वह करोड़ों वैरीके समान ही। श्रीरामके पदमें ही स्नेह करना उचित है।'

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।
× × × × × ×
नाते नेह राम के मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित, पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥
(विनय० १७४)

मीराँबाईके पदोंमें रामके उल्लेखका कारण गोस्वामीजीकी भक्तिभावनाका मीराँके मस्तिष्कपर प्रभाव भी प्रकारान्तरसे कहा जा सकता है। मीराँबाईकी भगवद्भक्ति-भावना राममक्तिमय वातावरणसे अपने आपको दूर नहीं रख सकी। भक्तिमती मीराँबाईने आचार्य रामानन्दके शिष्य संत कबीर और महात्मा रैदासद्वारा प्रतिपादित संतमतकी निर्गुण भक्तिकी परम्पराके अनुसार अपने पदोंमें निर्गुण रामतत्त्व और रामनामका चिन्तन किया। उन्होंने रामरत्न धनकी प्राप्ति संत सद्गुरुकी कृपासे की। उन्होंने इस तरह निर्गुण रामकी भक्तिके रूपमें जन्म-जन्मकी पूँजी प्राप्त की। उनकी स्वीकृति है—

मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, करि किरपा अपनायो॥
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन-दिन बढ़त सवायो॥
सत की नाव, खेवटिया सतगुरु, भवसागर तरि आयो।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरखि हरखि जस गायो॥
([illegible] १०५)

श्रीसमर्थ रामदासस्वामीजीकी श्रीरामोपासना

(लेखक—श्रीरघुवीरराम भालेराव)

महाराष्ट्रकी संतमालिकामें श्रीसमर्थ रामदासस्वामीजीका महत्त्वका अग्रस्थान है। हिंदी-जगत्‌में जो स्थान श्रीगोस्वामीजीको प्राप्त है, वही स्थान मराठी-जगत्‌में श्रीसमर्थजीका है। दोनों ही श्रीरामके परम भक्त थे, मानो इस घोर कलियुगमें स्वयं श्रीहनुमान्‌जी अवतीर्ण हुए हों। यह विचित्र संयोग है कि दोनोंने जो उपाधियाँ अपने आराध्यको बारंबार प्रदान कीं, उन्हीं उपाधियोंसे उनके भक्तगणोंने उनकी इहलीला-समाप्तिके पश्चात् उन्हींको भूषित किया। 'गुसाईं' शब्दसे श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचन्द्रजीको सम्बोधित किया था तो श्रीरामदासजी प्रभुको 'समर्थ' कहा करते थे। ये ही उपाधियाँ दोनोंको प्राप्त हुईं। यह बात इसीका परिचायक है कि भगवान् तथा भक्तमें अभेद होता है।

रामदासी सम्प्रदायमें श्रीसमर्थजीको साक्षात् हनुमदवतार ही माना गया है—'यो जातो मरुदंशजः क्षितितले।' संत-श्रेष्ठ श्रीतुकाराम महाराज श्रीसमर्थजीके बारेमें स्पष्ट कहते हैं कि प्रत्यक्ष श्रीमारुतिरायकी मूर्ति होनेसे योगियों तथा संतोंको उनकी पूँछ भी दिखायी देती थी। अपने शिष्योंको भी उन्होंने अनेक बार श्रीबजरंगबलीके रूपमें दर्शन दिये, जिसका दर्शन पाकर शिष्य मूर्च्छित हो गये। उनके परम शिष्य छत्रपति शिवाजी महाराजको भी इसी दिव्य रूपके दर्शन हुए थे।

हनुमदवतार होनेसे श्रीसमर्थ उन सब सद्गुणोंसे मण्डित थे, जो श्रीरामदूतमें भूषणरूप हैं—जैसे अखण्ड ब्रह्मचर्य, विपुल बल-सामर्थ्य, बुद्धिचातुरी, जितेन्द्रियत्व आदि। इन सबमें उनका शिरोमणिवत् गुण था—प्रभु रामचन्द्रजीकी ऐकान्तिक एवं असीम भक्ति। श्रीसमर्थजीका साहित्य अत्यन्त विशाल है। उनका समग्र व्यक्तित्व उनके साहित्यमें प्रतिबिम्बरूपसे दिखायी देता है। वैसे तो रामायण, पदावलियाँ, अभंग, हिंदी कविताएँ आदि उनकी अन्यान्य रचनाएँ महत्त्वपूर्ण हैं ही, परंतु 'श्रीमद् दासबोध' एवं 'आत्माराम'—ये दो रचनाएँ समर्थ-सम्प्रदायमें अपना सर्वोपरि स्थान निश्चितरूपसे रखती हैं। इस सम्बन्धमें उनका मार्मिक एक वचन है—"दासबोध, आत्माराम सकल ग्रन्थमें स्वतः सिद्ध" अर्थात् 'आत्माराम एवं दासबोध—ये ग्रन्थ साक्षात् मेरे ही रूप हैं।' इसी हेतु वे 'मन्त्रराज' माने जाते हैं। उनके अखिल साहित्यसिन्धुका प्रत्येक बिन्दु रामोपासनारूपिणी माधुर्यतासे युक्त है।

समग्र संतसाहित्यमें श्रीसमर्थजीकी विशेषता तो यही है कि उन्होंने केवल अध्यात्म, भक्ति, दैवी-सम्पत्ति, आत्मोद्धार, वेदान्तदर्शन आदि मननात्मक साधनोंकी चर्चा नहीं की, अपितु साधारण मानव एवं साधकके लिये आवश्यक व्यावहारिक सभी लौकिक विषयोंके सम्बन्धमें बोध प्रदान किया है। श्रीसमर्थद्वारा लौकिक एवं आध्यात्मिक विषयोंके विवेचनका सार यही है कि व्यक्तिकी इहलोककी यात्रा तथा सत्य जीवन, चाहे वह व्यक्ति साधारण हो अथवा असाधारण, सुचारु-रूपसे सम्पन्न हो। और इससे भी मुख्य बात यह है कि साध-नामें अध्यात्मानुसंधान बना रहकर वह भगवत्प्राप्तिरूप सुफलित हो, कृतार्थ हो।' और यह उपदेश भी स्वानुभूतिसे समन्वित होनेसे अतीव महत्त्वपूर्ण है। वे कहते हैं—'आधी केलें। मग सांगितलें॥' अर्थात् 'पहले हमने आचरण कर दिखाया, फिर उसीके अनुसार दूसरोंको उपदेश किया।'

इन सारे आचरण तथा उपदेशका एकमात्र अधिष्ठान है—उनकी दिव्य रामोपासना। वे स्वयं कहते हैं—

'धन्य हाच रामउपासक। धन्य धन्य उपासना॥ रघुनाथ-भजनें ज्ञान जालें। रघुनाथ भजनें महत्त्व वाढलें। म्हणोनि तुम्हीं केलें। पाहिजे आधीं॥'

अर्थात् रघुनाथजीकी उपासना धन्य है; क्योंकि उसीके द्वारा हम श्रीरामजीके ज्ञानसम्पन्न बने और हमें परम ज्ञानका लाभ हुआ, सब प्रकारकी महत्ता भी हमने उसीके कारण पायी। अतः हे मानव! तुझे प्रथम इसीका आचरण करना चाहिये।' रामोपासनाके अनेकविध उन्मेष उनके साहित्यमें पदे पदे बिखरे हुए पाये जाते हैं।

वैसे तो श्रीसमर्थजीकी रामभक्ति उनकी बाल्यावस्थासे ही निस्सीम दिखायी देती है। उनके वंशज रघुनाथ (जो कि 'ठोसर' नामसे सुप्रसिद्ध हैं) उनको श्रीरामरायका मन्त्रका उपदेश मिला, उनको मधुर सगुण दर्शन भी श्रीसीता श्रीलक्ष्मण श्रीहनुमान्‌के साथ हुआ था। फिर श्रीरघुनाथजीके आज्ञासे प्रेरित हुई तपश्चर्याके निमित्तसे उन्होंने उस दर्शनके दिव्य साक्षात्कारका लाभ लिया। उस समय नासिकक्षेत्रमें

ध्यान कर सकता है। कलिकाल भी उसका आदर करता है। उस महान् भक्तका जीवन धन्य है, सार्थक है; वह देव-दुर्लभ दिव्य गति पाता है। कोई भी बलवती दुष्ट शक्ति उसे टेढ़ी निगाहसे नहीं देख सकती। उसका कौन क्या बिगाड़ सकेगा। उसकी लीलाकी, अद्भुत चरित्रोंकी चर्चा सर्वत्र हुआ करती है। ऐसे एकनिष्ठ भक्तकी प्रभु कैसे उपेक्षा कर सकते हैं। उस अनन्य भक्तको तो मृत्युका भी भय नहीं होता। दीनानाथ प्रभुने जिसके सिरपर कृपाकरपद्म रखा हो, उसे भयभय कैसे हो सकता है। वे स्वयं अपने दासका निरन्तर रक्षण करते हैं तथा उसको महानन्दका, कैवल्यानन्द-का दान करते हैं। इससे बढ़कर उनकी महिमाका वर्णन क्या हो सकता है। उनके चिन्तनसे सम्पूर्ण सांसारिक चिन्तायें नष्ट हो जाती हैं और समाधिका सुख मिलता है। चन्द्रोदयसे चकोरपक्षीको जिस प्रकार स्वाभाविक सुख होता है, उसी प्रकार श्रीरामके दर्शनसे भक्तको सुख मिलता है। केवल अनन्य—शुद्ध-भक्तिसे ही प्रभु वशमें होते हैं। उनका मिलन स्वरूपसे ऐक्यसे ही बनता है, जिसकी चर्चा करते-करते श्रुतियाँ भी मौन हो गयीं। उनके ध्यानसे सारे दुःख सम्पूर्णरूपसे निरस्त होते हैं। शास्त्रोंमें जो इतनी राममहिमा सुनी गयी सद्गुरुने (स्वयं श्रीराम श्रीसमर्थजीके सद्गुरु हैं) जिसका मर्म दिखलाया, उसीके अनुसार हम स्वयं भी अनुभव करते हैं। इसके अतिरिक्त उनका तथा उनकी गौरवकी भक्तिका बखान क्या हो सकता है।'

इस तरह श्रीराममहिमाका गान श्रीसमर्थजीने स्वानुभूति-पूर्ण वाणीसे किया है। स्वयं भवसागरसे तर जानेपर जगदुद्धार-का विशाल उद्देश्य हृदयमें रखकर वे भक्तोंको संदेश देते हैं कि 'यदि भवनदीको पार करना है और अन्तिम सुख चाहते हो तो एकमात्र प्रभुकी शरण आकर उनकी उपासनामें सदा रत हो जाओ।'

'रामभक्तिका साधन करने हेतु हर सम्भव प्रयत्न होना चाहिये। यह सच्चे भक्तोंमें श्रीसमर्थका रूप है, जिसने अनन्य भक्ति, स्वधर्म तथा विरागको हमेशाके लिये अपनाया, उसे निश्चय ही यथासमय आत्मज्ञानकी उपलब्धि होती है। भक्तोंको चाहिये कि अपनी अज्ञानजनित कामनाओंका पूर्णतया त्याग कर प्रभुकी इच्छाके अनुसार व्यवहार करें तथा उसीमें संतोषका अनुभव करें। ऐसी भावनासे वह रघुकुल-भूषण प्रभुकी असीम कृपाके योग्य अवश्य ही बन जाता है। उसे चाहिये कि भावभीनी भक्तिसे सदा ही उनके श्रीचरण-कमलके चिन्तनमें मग्न रहे। ऐसा करनेपर महान्-से महान् आपदा-से भी उस भक्तको मेरे दयामय प्रभु तुरंत छुड़ाते हैं। यह बात नहीं कि प्रभु केवल मेरे ही हैं, अपितु जो कोई भी उनकी शरण सम्यग्रूपसे ग्रहण करता है, उसके भी वे प्रिय स्वामी बन जाते हैं। यह मैं सत्य कहता हूँ—जिन्हें सियाराम स्वामी-रूपमें प्राप्त हुए, वे जन निश्चय ही धन्य-धन्य हैं। जो जन रामभिलनकी आशा बाँधे हुए यह चाहते हैं कि प्रभुद्वारा सर्वथा उनकी रक्षा हो तथा उनकी वासना सुखारूपेण समाप्त हो, उनके लिये एक अमोघ उपाय यह है कि वे श्रीरामतारक-जैसे किसी एक दिव्य मन्त्रका अखण्ड जाप परमार्थके नियमानुसार अनन्यभावसे करें। इससे आत्मा-रामके दर्शन अवश्य होंगे।' अन्ततः अकेले ही इस मृत्यु-लोकको त्यागना होगा, इसीलिये रामजीको भजो। देहपातके समय तथा उसके पश्चात् भी केवल श्रीराम ही जीवके सहायक प्रभु हैं। इतना ही नहीं, अपितु देह रहते समय भी हर संकटसे वे अपने भक्तकी रक्षा वात्सल्यसे करते हैं। प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्तमें तो उनका स्मरण विशेषरूपसे अवश्य करना चाहिये। वाणीमें अखण्ड रामनाम रहे। संध्या-ध्यान आदि उपासना भी नियमके अनुसार चलती रहे। सभी कार्य भावयुक्त होने चाहिये। भावपूर्वक एवं एकाग्र रामनामके स्मरणसे सभी इष्ट संकल्प पूरे होते हैं, यह बात हम सिद्धान्तरूपेण कह सकते हैं। अपितु प्रतिज्ञा करके कहते हैं कि इस सिद्धान्तका मैंने स्वयं अनुभव किया है। अतः हमारी शुभाकाङ्क्षा है कि रघुनाथजीके निष्काम भजनमें सभी लोगोंकी प्रीति हो। प्राणोंसे भी प्रिय वे जगत्पालक प्रेमास्पद प्रभु हैं, यह हम सत्य कहते हैं।'

उसकी प्रगतिमें बाधक न हों अथवा उसे समूल नष्ट न कर दें। परंतु जब पौधा भूमिमें अपनी जड़ें गहरी जमाकर एक विशाल वृक्षका रूप धारण कर लेता है, तब उसे अपनी रक्षाके लिये बाड़की आवश्यकता नहीं होती; अपितु वह स्वयं आश्रय लेनेवाले मनुष्यों एवं पशुओंको सुरक्षा-दान करनेमें समर्थ हो जाता है। इसी प्रकार किसी विशिष्ट देवके प्रति भक्ति जबतक जड़ें जमाकर अविचल नहीं हो जाती, तबतक यह ऐकान्तिक भक्ति सराहनीय है। किंतु यदि यह ऐकान्तिक भक्ति अन्योंके प्रति प्रबल बहिष्कार-वृत्ति धारण कर लेती है, या इससे भी नीचे उतरकर अन्य देवोंके प्रति घृणामें परिणत हो जाती है, तब यह विकृत होकर कलुषित कट्टरताका रूप धारण कर लेती है, जो अन्ततोगत्वा अपने इष्टदेवकी भक्तिको भी नष्ट कर देती है। एक बारपर श्रीत्यागराजके ऊपर भी इस बहिष्कार-वृत्तिकी छाया घिर आती है तथा श्रीरामके अतिरिक्त वे किसी अन्य देवताको अपनी निष्ठाके योग्य नहीं मानते। परंतु वराळि-रागमें गेय 'कारेदु वेलसु' शीर्षक कीर्तनमें वे घोषणा करते हैं कि 'जो सीतापतिके रूपमें लोकविख्यात हैं, वे ही परम प्रभु हैं।' रुद्रप्रिय-रागमें गेय 'ल्यवम्म राम' शीर्षक अपने अन्य कीर्तनमें श्रीत्यागराज कहते हैं—'तुम्हारे विस्मयकारी सौन्दर्य एवं महिमाका अनुभव हो जानेके पश्चात् अन्य क्षुद्र देवताओंकी कृपा-याचनाके लिये कौन हाथ पसारना चाहेगा?' आनन्दका विषय है कि श्रीत्यागराजका यह बहिष्कारात्मक और कुछ सीमातक असहिष्णु दृष्टिकोण एक अस्थायी तरंग है। अपनी भक्तिके परिपक्व होनेपर श्रीत्यागराज इस संकीर्ण मनोवृत्तिसे ऊपर उठकर, नवचेतनाप्रद गाम्भीर्यसे युक्त होकर अपने 'धनि वेरुगे' शीर्षक कीर्तनमें घोषित करते हैं कि 'अन्य देवताओंके प्रति निरादर अथवा विद्वेषकी वृत्ति न रखते हुए जो श्रीरामोपासना करते हैं, निस्संदेह वे ही सच्चे रामभक्त हैं।' श्रीत्यागराज अनुभव करते हैं कि अन्य देवता भी उनके श्रीरामके ही विभिन्न स्वरूप हैं तथा उत्कट भक्तिसे प्रसन्न वे उनके भी अभिमुख होते हैं। श्रीत्यागराजने अनेक पदोंमें शिव, अम्बिका, सुब्रह्मण्य एवं कृष्ण-का गुणगान किया है। भैरवी-रागमें गेय अपनी 'ललिते श्रीप्रवृद्धे' शीर्षक कीर्तनमें वे श्रीअम्बिकाको 'श्रीराम-सहोदरी' कहकर सम्बोधित करते हैं और उनसे याचना करते हैं कि वे अपनी कृपा-की वर्षा उनपर करें; क्योंकि वे उनके भाई श्रीरामकी भक्ति करके धन्य हो चुके हैं (श्रीराम दयकु पात्रुडने)। इस प्रकार श्रीत्यागराजकी भक्ति एक सुविशाल वटवृक्षके रूपमें परिणत हो जाती है, जिसकी शाखाएँ चतुर्दिक् प्रसरित होकर अपनी छायाकी परिधिमें प्रत्येक वस्तुको बाँध लेती है। गत हो गयी वह अनुदार बहिष्कारपरायणता, जो संकीर्णताके ऊँचे, पर आग्रहपूर्ण स्वरोंमें कह उठती थी—'राम एव दैवतं रघुकुलतिलकमेव—रघुकुलतिलक श्रीराम ही मेरे एकमात्र देव हैं' (बलहंस)। अब भी श्रीराम तथा केवल श्रीराम ही श्रीत्यागराजके परमदेव हैं, परंतु अब वे राम—केवल राम ही नहीं, शिव, अम्बिका, कुमार तथा कृष्ण भी हैं। बिना किसी दुविधाके संत त्यागराज श्रीकृष्णाभिमुख होकर उनसे दिव्य रक्षाकी याचना करते हैं। (धन्यासी-रागमें गेय 'प्राणनाथ बिरान ब्रोवरे' शीर्षक कीर्तनमें) रामको कृष्णसे पृथक् करनेवाली दुर्बल मानसिक प्राचीर भी ध्वस्त हो उठती है, जब वे संतकवि 'नौकाचरितम्' नामक विस्तृत गीत-नाटिकाका प्रणयन करते हैं, जिसमें गोपिकाओंके साथ श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन है।

संतोंके जीवनका एक और तथ्य, जिसका रहस्य समझमें नहीं आता, उनका अपने उपास्य विग्रहोंके प्रति दुर्बोध्य आसक्ति तथा भक्ति है। महिमामयी मीराँ अपने श्रीविग्रह गिरिधर गोपालके साथ बालसुलभ कोमलस्वरमें ओतप्रोत होकर वार्तालाप करती थीं। अदीक्षित एवं उच्चतर दृष्टि-बिन्दुसे रहित लोगोंको ऐसी प्रवृत्तिमें बचपन तथा विचारहीन श्रद्धाकी गन्ध आ सकती है, परंतु उन संतोंके लिये उनके पूजित देवविग्रह भौतिक पदार्थ न होकर, उनके प्रियतम परमेश्वरके सजीव स्वरूप थे अथवा (तात्पर्य एक ही है) ऐसे माध्यम थे, जिनके द्वारा उन्हें भगवान्‌का साक्षात्कार प्राप्त होता था। इसी कारण श्रीत्यागराजके लिये भी श्रीरामका वंशानुगत श्रीविग्रह उनका साक्षात् स्वरूप ही था तथा इसीलिये जब उनके बड़े भाईने मत्सराग्निमें उन श्रीविग्रहोंको चोरीसे ले जाकर कावेरीकी बालुकामें गाड़ दिया, तब वे विक्षिप्त एवं व्याकुल हो उठे। अपनी विक्षिप्तताके उन अन्धकारपूर्ण दिनोंमें हृदयको काट-काटकर वे अपना दुर्निवार दुःख व्यक्त करते हैं। वे पुकारते हैं—'हे हरि! मैं तुम्हें कहाँ ढूँढूँ। जब तुमने महान् भक्तोंमें तुलनाको भी प्रश्रय देना अङ्गीकार नहीं किया, तब एक पापात्मा एवं दाम्भिक मैं तुम्हें पानेकी कैसे आशा कर सकता हूँ?' (हरिकाम्भोजि-रागमें गेय

श्रीरामके गुण त्रिगुणोंकी परिधिसे परे हैं ('दरबारी' रागमें गेय 'गुणमुग्धिर' शीर्षक कीर्तन)। श्रीरामने ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवको उत्पन्न किया और उन्हें क्रमशः सृजन, पालन तथा संहारका कार्य, रज, सत्त्व एवं तमकी क्रियाके आधारपर सौंप ('निजमर्ममुलनु'—'उमाभरणम्' राग)। ये सब तर्क त्यागराजको यह विश्वास करनेके लिये विवश कर देते हैं कि श्रीराम लिया पराक्रम—परम सत्यके अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं—'रामाबाण ब्रह्मगुनडु पेरा' तथा इस ज्ञानके परिणामस्वरूप उनमें इस अनुभूतिका उदय होता है कि परमात्मारूपमें श्रीराम ही प्रत्येक वस्तुमें परिव्याप्त हैं। श्रीराम ही हरिमें, हरमें, देवताओंमें, मनुष्योंमें, ब्रह्माण्डमें, सज्जनों तथा दुर्जनोंमें, पशुओं तथा पक्षियोंमें भी सदा समाये हुए हैं ('नागवीस्वरी'-रागमें गेय 'परमात्मुडु' शीर्षक कीर्तन)। इन सभी निष्कर्षोंके लिये त्यागराज रामायणके इस अर्थपूर्ण श्लोकसे पुष्टि प्राप्त करते हैं—

'अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।'

(वा० रा०, युद्धकाण्ड ११७। १४)

परब्रह्मस्वरूप श्रीराम परात्पर तथा सर्वव्यापी—दोनों ही हैं, अक्षर-ब्रह्मके रूपमें परात्पर एवं सत्यके रूपमें सर्वव्यापक, सम्पूर्ण विश्वमें अन्तर्यामीरूपमें परिव्याप्त (सर्वान्तर्यामी—'परिभरि निन्ने'—'पगडम्नोरमी') श्रीराम ही हैं। जीवनकी जीवनी-शक्ति, नेत्रोंकी दर्शन-शक्ति, नासिकाकी घ्राण शक्ति, गाये जानेवाले मन्त्रोंमें निहित उनकी स्थायी शक्ति—वस्तुतः सबमें चेतना भरनेवाली शक्ति, सम्पूर्ण भूतोंकी प्राणशक्तिके रूपमें विराजित हैं। ('ना जीवाधार'—'राग बिलहरी') यह भावना केनोपनिषद्के निम्नलिखित मन्त्रका ही रूपान्तर-सा है।

'श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुः' (१।२)—(वह कानका कान है, मन मन, वाणीकी वाणी, जीवनका जीवन तथा चक्षुका चक्षु है।)

सद्गुरु त्यागराजद्वारा श्रीरामके परात्पर रूपकी अनुभूतिका सार उनके इस अर्थपूर्ण वचनमें निहित है—('वासुदेवः सर्वमिति' का ही चिन्तन करो—'श्रीवासुदेव अनं मनुसुनु विडिवेरा' ('मेरे बुद्धि'—राग अठाण)। गीताके निम्नलिखित श्लोकके भावसे इसका पूर्ण सामञ्जस्य है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति ……………………॥

(७। १९)

सब कुछ केवल श्रीराम ही हैं—इस परम ज्ञानकी उपलब्धिके पश्चात् श्रीत्यागराज परमात्मा श्रीरामके समक्ष अपना सर्वस्व-समर्पण कर देते हैं तथा रामका दास बने जानेपर भी ब्रह्मानन्दमें मग्न अपनेको उनका भाईचारा तथा परम धन्य मानते हैं। ('आनन्द मानन्द'—राग 'भैरवी')। श्रीरामकी भक्ति इहलोक तथा परलोकमें भी ऊँची-से-ऊँची चाहिए नहीं है। ('राममक्ति साम्राज्यमेमु'—राग 'शुद्धबंगाल')

इस प्रकार त्यागराजकी राम-भक्तिमें—गौणीभक्तिसे पराभक्तिपर्यन्त, किसी साधारण प्रतिमाके पूजनसे वास्तवमें सब कुछ राम ही हैं—इस निरपेक्ष सत्यतक, तथा रामके रूपमें सगुण ईश्वरसे लेकर निर्गुण अद्वैत ब्रह्मको कल्पनातक भक्तिकी समस्त धाराओंको प्रवाहित होते हुए देखा जा सकता है।

श्रीत्यागराजकी श्रीरामसम्बन्धी भावनाकी एक अन्य विस्मय विशेषता, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, उनके द्वारा श्रीरामकी नादसे की गयी एकात्मता है। इसपर हमें चकित होनेकी आवश्यकता नहीं। प्रणव (ओंकार) के रूपमें श्रीराम ही वह परम सत्ता है, जो अपनी दुर्निरीक्ष्य माया-शक्तिके द्वारा अर्थ-प्रपञ्च (भौतिक जगत्) का स्वरूप धारण करती है। आदिस्वर ओंकार ही परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरीके रूपमें परिवर्तित होते हुए शब्द अथवा नाम-प्रपञ्च (शब्द या नाम-जगत्) का स्वरूप धारण करता है। इसके भी आगे प्रणव ही स्वर-सप्तकके रूपमें अपना समाहार करके संगीतके सम्पूर्ण कलेवरकी रचना करता है। अतः श्रीराम तथा नाद अभिन्न हैं, क्योंकि ये प्रणवके अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। इसीलिये त्यागराज घोषणा करते हैं कि 'सम्पूर्ण वेदों, पुराणों, आगमों तथा शास्त्रोंके आधार प्रणवरूपी नादामृतने ही श्रीरामके रूपमें मनुष्याकृति धारण की है।' ('नादसुधा'—राग 'आरभि') अतः रामोपासना तथा नादोपासना अभिन्न हैं, क्योंकि दोनों ही परम मुक्तिके मार्गका निश्चित द्वार खोल देती हैं। तथा 'संगीत वह साधन है, जो रामसायुज्यतक पहुँचा देता है।' ('संगीतज्ञान सायुज्य बोध्यद्मे, मनसा!'—राग भैरवी)

इस प्रकार इन सामान्य विवरणके प्रतिफल कि श्रीत्यागराज धर्मनिष्ठ ऋषि-तुल्य एक भक्त—संगीतज्ञ थे, यह स्पष्ट हो जाता है कि वे नारदजी तथा पुरन्दरदासके

विद्वानोंका मत है कि 'ऋग्वेदमें जिन रामका उल्लेख मिलता है, वे वास्तवमें दाशरथि रामचन्द्र ही थे।' साथ ही, इससे यह भी सिद्ध होता है कि रामकथा वैदिक कालसे ही प्रचलित और प्रसिद्ध थी।

वैदिकोत्तर कालमें रामकथाका सुव्यवस्थित ग्रन्थ-रूप हमें सर्वप्रथम 'वाल्मीकिरामायण'में ही दिखायी पड़ता है। वाल्मीकि-रामायण इतनी लोकप्रिय हुई कि वाल्मीकि 'आदिकवि' कहे जाने लगे और उनकी यह रामायण भी 'आदिकाव्य'के नामसे लोकविश्रुत हुई। संस्कृत-भाषामें वाल्मीकि-रामायणको सर्वश्रेष्ठता प्राप्त हुई है। संस्कृतकी अनेक रामायणोंमें इसका नाम जन-जनका रसनाग्रवर्ती हो गया है।

यह कहना आवश्यक है कि भारतमें प्रचलित रामकथाकी पृष्ठभूमिमें आध्यात्मिक भावना भी विद्यमान रही है, जिसके अनुसार रामावतार हर कल्पमें होता है। इसके सम्बन्धमें अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। अतएव स्पष्ट है कि रामचरितकी चर्चा अनादिकालसे चली आ रही है और इसीलिये कुछ लोग रामकथाको 'कल्पभेदी कथा' कहते हैं।

पौराणिक दृष्टिसे भी रामकथाका सर्वाधिक पल्लवन हुआ है। महाभारतमें रामकथाका चार स्थलोंपर उल्लेख मिलता है, जिसमें रामोपाख्यान सर्वाधिक विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है। पौराणिक साहित्यके अन्तर्गत हरिवंशपुराणमें रामकथाका संक्षिप्त वर्णन मिलता है। इसमें रामावतारके उल्लेखके बाद क्रमशः रावण-वधतककी रामायणकी मुख्य घटनाओंका वर्णन है, अनन्तर रामराज्यकी प्रशंसा की गयी है। विष्णुपुराणमें भी अयोनिजा सीताका उल्लेख है और रामकथाका भी संक्षिप्त रूपमें वर्णन है। इसके अतिरिक्त वायुपुराण, भागवतपुराण, कूर्मपुराण, अग्निपुराण, नारदपुराण, ब्रह्मपुराण, गरुडपुराण, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, नरसिंहपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, वह्निपुराण, शिवमहापुराण, देवीभागवतपुराण, बृहद्धर्मपुराण, कालिकापुराण, सौरपुराण आदिमें भी रामकथाका चित्रण पाया जाता है।

धार्मिक साहित्यके अन्तर्गत जो संस्कृत निबद्ध रामचरित मिलते हैं, उनमें 'योगवासिष्ठरामायण', 'अद्भुत-रामायण', 'आनन्दरामायण' और 'भुशुण्डिरामायण' (आदि-रामायण) सर्वाधिक प्रचलित हैं। इन रामायणोंके अतिरिक्त अनेक ऐसी रामायणोंका नामोल्लेख भी हुआ है, जो विद्वानोंद्वारा कल्पित मानी गयी हैं। इसके अतिरिक्त कतिपय प्राचीन वैष्णव संहिताओं और उपनिषदोंमें भी रामचरितका उल्लेख मिलता है, जो कथा-तत्त्वकी अपेक्षा रामभक्तिकी दृष्टिसे अधिक महत्त्व रखते हैं। इनमें रामकथा और रामभक्तिका अद्भुत सामञ्जस्य पाया जाता है।

अन्यान्य संस्कृत-साहित्यके अन्तर्गत रामचरितकी काव्यमयी विभूतिकी दृष्टिसे रघुवंश (कालिदास), भट्टिकाव्य (भट्टिकवि), जानकी-हरण (कुमारदास), रामचरित (अभिनन्द), रामायण-मञ्जरी तथा दशावतार-चरित (क्षेमेन्द्र), उदारराघव (साकल्यमल्ल), जानकीपरिणय (चक्रकवि), रामरहस्य (मोहनस्वामी), प्रतिमा-नाटक (भास), अभिषेकनाटक (भास), महावीर-चरित (भवभूति), उत्तररामचरित (भवभूति), अनर्घराघव (मुरारि), बालरामायण (राजशेखर), महानाटक, हनुमन्नाटक (श्रीहनुमान्), आश्चर्यचूडामणि (शक्तिभद्र), प्रसन्नराघव (जयदेव) आदि ग्रन्थ अपनी विशेषताके लिये समादृत हैं। इस प्रकार रामचरित-ग्रन्थोंकी संस्कृत-वाङ्मयमें बड़ी ही विशालता एवं विपुलता उपलब्ध है।

भारतीय भाषाओंके विकासके साथ ही रामकथा-के गायनकी परम्परा भी विकसित होती रही है। संस्कृत एवं तदुत्तरवर्ती कालमें विभिन्न प्राकृत भाषाओंका समानान्तर विकास हुआ। पाँचवीं सदीमें प्रवरसेनने महाराष्ट्री प्राकृतमें 'सेतुबन्ध' काव्यकी रचना की। इसमें वाल्मीकिरामायणके युद्धकाण्डकी कथाका पंद्रह सर्गोंमें विस्तारपूर्वक वर्णन है। विमलसूरिरचित 'पउमचरिय' को ही प्राकृत साहित्यमें प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है। संस्कृतमें निबद्ध-रामचरितोंमें वाल्मीकि-रामायणकी जो महत्ता है, वही महत्ता प्राकृतमें विमलसूरि-रचित 'पउमचरिय' को उपलब्ध है। इस चरितग्रन्थमें पौराणिक प्रबन्ध और शास्त्रीय प्रबन्ध—दोनोंके लक्षणोंका समावेश है। विमलसूरिने परम्परागत रामकथा-वस्तुमें किंचित् संशोधन कर यथार्थ बुद्धिवादकी प्रतिष्ठा

पं० रामकुमारदासजीकी रचना 'वेदोंमें रामकथा'ने विवक्षित मार्ग इस अर्थमें प्रशस्त कर दिया है कि वेदोंमें भी रामकथाके बीज उपलब्ध हैं।

संस्कृत वाङ्मयमें रामकाव्य—

संस्कृत भाषामें रामकाव्यका प्रथम अवतरण वाल्मीकिसे हुआ। यों तो वेद, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदोंमें रामकथा उपलब्ध होती है; किंतु मतवैभिन्यके कारण कुछ स्पष्ट रूप सामने नहीं आता। फिर भी इतना सत्य है कि छान्दस-भाषाके ऋषि रामकथाके पात्रोंसे अवश्य परिचित थे। अतः रामकाव्यका अभ्युदय सरस्वतीके वरद पुत्रोंका आश्रय प्राप्तकर विभिन्न रूपोंमें प्रादुर्भूत होता रहा। संस्कृतके मान्य आचार्य और कवियोंने आराध्य रामको मर्यादापुरुषोत्तम, अंशावतारी, पूर्णावतारी, परब्रह्म आदि अनेक रूपोंमें वर्णन कर कथाका अङ्कन किया है। अतएव रामकाव्यकी यह भूयसी विशिष्टता है कि उसमें जनसाधारणके मनोभावों, हृदयकी वृत्तियों, विभिन्न दशाओं, मानसिक विकारोंके निग्रहके साथ, भक्ति, ज्ञान और कर्मकी त्रिवेणी प्रवाहित हुई। राग और द्वेष, हर्ष और विषाद, प्रेम और करुणा, उत्साह और अवसाद आदि जितने भाव मानव-हृदयको अपना रङ्गस्थल बनाया करते हैं, उनका चित्रण रामकाव्यके रचयिताओंने एवं लेखकोंने इतनी सुन्दरतासे किया है कि पाठक, भक्त और साधक—तीनों ही भावलहरियोंमें अपने-आपमें गोते लगाते हुए पाते हैं।

मर्यादापुरुषोत्तम रामका जीवन जनसामान्यके लिये अत्यन्त आकर्षणकी वस्तु रही है। यही कारण है कि रामकाव्य अनेकविधाओंमें प्रादुर्भूत हुआ है। संस्कृत वाङ्मयमें उपलब्ध रामसाहित्यको निम्नलिखित काव्यविधाओंमें विभक्त किया जा सकता है—

(१) पुराण, (२) संहिता, (३) महाकाव्य, (४) लघुकाव्य, (५) चम्पू, (६) नाटक, (७) स्तोत्र, (८) सुभाषित और (९) आलोचनात्मक निबन्ध।

रामोपासनासे सम्बन्धित अनेक संहिता-ग्रन्थ उपलब्ध हैं। ग्रन्थाभावके कारण विशद उल्लेख सम्भव नहीं है। संक्षेपमें यह कह सकते हैं कि संहिता-ग्रन्थोंमें रामके मधुररूपकी उपासना वर्णित है और यह रूप सम्भवतः श्रीमद्भागवतके पश्चात् विकसित हुआ है।

'संहिता' शब्दका अर्थ ही अनेक विषयोंका संकलन है। अतएव संहिताओंमें रामका रूप, नाम, लीला, धाम, प्रमाण आदिकी दृष्टिसे महत्त्व बतलानेके लिये संवादरूपमें रामाख्यानके किसी अंशविशेषको जोड़ दिया जाता है। अतः संहिताओंमें रामकाव्यका कोई यथार्थ स्वरूप प्रस्फुटित नहीं हो सका है, संवाद या कथोपकथनके रूपमें ही रामचरितका एक अंश उपलब्ध होता है। यह सत्य है कि पुराणोंमें रामायणरूपमें समग्र रामकथाको यत्र-तत्र निबद्ध करनेका प्रयास किया गया है; पर संहिताग्रन्थोंने रामाख्यानके मधुर रूपको ही ग्रहण किया है। सीताहरणके अनन्तर विरही रामकी विभिन्न मानसिक स्थितियोंका संहिताओंमें गम्भीर चित्रण हुआ है।

प्रमुख पुराणोंमें वर्णित रामकाव्य

कुछ एक प्रमुख पुराणोंके अध्ययनके उपरान्त प्रायः यह स्पष्ट हो जाता है कि रामकाव्यका सम्मोहक रूप पुराणकारको अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रह सका है। पर यह स्पष्ट है कि रामके चरित्रवर्णनमें पुराणकारकी दृष्टि विशेषतया उनके अलौकिक रूपपर ही अधिक रही है। फिर भी इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उनके पार्थिव-रूपकी व्यञ्जना भी पुराणोंमें बड़े विशदरूपसे हुई है। उनके पार्थिव रूपके वर्णन-क्रममें रामका आदर्श राजा, आदर्शपति, आदर्श भाई एवं आदर्श सखाका रूप अधिक निखर सका है। कुछ एक पुराणोंमें तो उनके शारीरिक तेज और सौन्दर्यका बड़ा ही सम्मोहक रूप देखनेको मिलता है। सबसे बड़ी विलक्षण बात तो पुराणोंमें यह देखी जा सकती है कि उनका निश्चित मत है कि अपने अंशस्वरूप भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नादिक भाइयोंको लेकर रामने जितना पराक्रम प्रदर्शित किया, उससे अधिक लोगोंका कल्याण रामके नामस्मरणसे हुआ है, होता रहेगा। स्पष्ट है कि पुराणकारने सम्यक् रूपसे रामकी कोई कथा विस्तार प्रदान नहीं किया हो किंतु इतना तो मानकर चलते थे कि राम्ौ जब पार्थिवके रूपमें अवतरित रहे थे, तब वाल्मीकिकी अपेक्षा [illegible] ही पार्थिव आचरण होना पड़ा। लेकिन [illegible] बातें थे नहीं कि वे लोकमें ईश्वर भी [illegible] मनुष्यरूपमें अवतीर्ण होकर भी [illegible]

हिंदी वाङ्मयमें रामकाव्य

हिंदीमें रामकाव्यका मुख्यरूपसे दर्शन सूरसागरमें हमें होता है। सूरसागरके रामचरित्रके पद तथा सूरसारावली-के श्रीरामचरित्रके पदोंको देखकर अवश्य ही विस्मय होता है कि कृष्णभक्तिके अनुरागमें रँगे हुए महात्मा सूरदास किस प्रकार रामचरित्रके गुण-गानमें अपना हृदय उँड़ेलते हैं।

रामचरित्रके वर्णनमें जन्मोत्सवसे लेकर राज्याभिषेक और राजसमाज-वर्णनतकके अनेक उत्कृष्ट चित्र हमें उपलब्ध होते हैं। कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे सम्पूर्ण रामचरित्रको ही सूरदासने प्रत्येक काण्डके सारांशके आधारपर ऐसा सुग्रथित किया है कि पाठक उसे देखकर दंग रह जाता है। उदाहरणके लिये सीता और रामका विवाह, दशरथ-विलाप, रामवनगमन, भरतका चित्रकूट-गमन, शबरी-उद्धार, हनुमान्-रावण-संवाद, मन्दोदरीकी रावण-से प्रार्थना, सीताकी अग्नि-परीक्षा, रामका अयोध्यागमन आदि ऐसे चित्र हैं, जो पाठकको सहसा आकृष्ट करते हैं।

एक ओर जहाँ भक्त-शिरोमणि कवि सूरके हृदयरस-से सनी हुई रामकी सलोनी मूर्ति पाठकोंके हृदयमें आनन्दका संचार करती है, वहीं दूसरी ओर उनकी सरस अभिव्यक्ति भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। रामके विविध गरिमामय एवं प्रभावपूर्ण रूपोंने कवि सूरके अन्तर्जगत्‌के भावोंको झंकृत किया है। उदाहरणके रूपमें वन-गमनका चित्र हम लें। राम चाहते हैं कि लक्ष्मण परिवारके सदस्योंके साथ रहकर उनकी देख-रेख करें। किंतु रामके बिना लक्ष्मणके जीवनका एक पल भी भारस्वरूप है। अतः लक्ष्मणका प्रेममय एवं विषादपूर्ण हृदय आँसुओंके माध्यमसे बरसने लगता है। अन्तर्यामी राम का सारा निर्णय लक्ष्मणके आँसुओंके प्रखर प्रवाहमें तिरोहित होने लगता है—

> लछिमन नैन नीर भरि आए।
> उत्तर कहत कछू नहिं आवै, रहे चरन लपटाए॥
> अंतरजामी प्रीति जानि कै, लछिमन लीन्हे साथ।
> 'सूरदास' रघुनाथ चले बन, पिता-बचन धरि माथ॥
>
> (सूर-रामचरितावली १५)

सूरके राम एक ओर जहाँ प्रेमकी अनन्यमूर्तिके रूपमें चित्रित किये गये हैं, वहीं दूसरी ओर 'अन्तर्यामी' परात्पर कविने उनके अलौकिक रूपोंको भी प्रकाशित किया है।

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामीजीका प्रादुर्भाव हिंदी-काव्य क्षेत्रमें एक चमत्कार ही सिद्ध हुआ है। हिंदी-काव्यमें भक्तिका पूर्ण प्रसार इनकी रचनाओंमें पहले-पहल दिखायी पड़ा। जिस प्रकार चौपाई-दोहेके क्रमसे जायसीने अपना 'पद्मावत' नामक प्रबन्ध काव्य लिखा, उसी क्रमपर गोस्वामीजीने अपने परम प्रसिद्ध काव्य 'रामचरितमानस' तथा अन्य धार्मिक ग्रन्थोंका प्रणयन किया। भारतीय जनताके प्रतिनिधि कवि होनेका गौरव गोस्वामीजीको इसलिये प्राप्त हुआ कि जहाँ अन्य कवि जीवनका एक पक्ष लेकर चले हैं, जैसे वीरकालके कवि उत्साहको, भक्ति-कालके कवि प्रेम और ज्ञानको, अलंकारकालके कवि दाम्पत्य-प्रणय या शृङ्गारको, वहाँ इनकी पैठ मानव मनकी गहन वृत्तियोंतक थी। रामचरितमानसमें गोस्वामीजीने जीवनके सनातन यथार्थ और युग-सापेक्ष यथार्थका नितान्त मर्म-स्पर्शी दृश्य प्रस्तुत किया है। विश्वमानवके मधुर आदर्श पर ही आदिकविका काव्य खड़ा है। भारतकी कवि-काव्य-परम्परा लोकमङ्गलकारी इसी पावन पक्षको प्रकाशित करती रही है। गोस्वामी तुलसीदासजीको भी हम उसी परम्पराकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ीके रूपमें स्वीकार करते हैं। संक्षेपमें कहना अनुचित नहीं होगा कि रामचरितमानसका कथाशिल्प तुलसीके मनोविज्ञान तथा उनके भावजगत्‌का ही द्योतक है। रामकथाकी भूमिपर तुलसीके चित्रित राम ऐसी विशेषता रखते हैं, जो अन्य ग्रन्थोंमें नहीं मिलती। तुलसीका रामचरितमानस जहाँ मध्ययुगीन लोकमानसका प्रतिबिम्ब है, वहीं उसमें सांस्कृतिक भारतके चिर मानसका सर्वोत्तम रूप भी विद्यमान है। थोड़ेमें हम यह कहते हैं कि तुलसीका वस्तु-शिल्प रामचरितमानसके द्वारा महिमावान् बना है और श्रेष्ठ भावनाकी विराट् सत्ता उसमें विद्यमान है। निःसंदेह मानसका अवतरण भारतीय मध्ययुगकी सबसे बड़ी घटना है और गोस्वामी तुलसीदासका व्यक्तित्व इसीके द्वारा युग-युगतक प्रकाशित होता रहेगा।

हिंदीतर वाङ्मयमें निहित रामकाव्य

रामकाव्यकी मुख्यधारामें यह प्रकरण नहीं आता, फिर भी इसका अपना वैशिष्ट्य है। कोई सरिता अपने उद्गमस्थलसे निकलकर अबाध गतिसे सागर-संगमकी ओर बढ़ती है; यदि किसी कारणवश उसे अपने गंतव्यका दर्शन न हो और बीचमें ही उसे विभिन्न धाराओंमें विभक्त होकर प्रवाहित होना

श्रीरामलीला-वर्णनमें बँगलाके आदिकवि कृत्तिवास

(लेखक—श्रीसोमेन्द्र भट्टाचार्य, साहित्यभूषण)

भगवान् श्रीरामचन्द्रकी पुण्य जीवनलीलाका वर्णन करके गोस्वामी तुलसीदास समस्त विश्वमें अमर हो गये हैं। जबतक चन्द्र-सूर्य और ग्रह धरित्री विद्यमान रहेगी, तबतक गोस्वामी तुलसीदासका नाम और उनका श्रीरामचरित-मानस मानव-हृदयमें अधिष्ठित रहेगा। तुलसीदास केवल कवि ही नहीं थे; वे थे—संत, युग-विभूति, महामानव। गोसाईंजीका आविर्भाव सं० १५६९ विक्रमाब्द अर्थात् १५१२ खीष्टाब्दमें हुआ था। 'गोसाईंचरित' ग्रन्थके अनुसार १४९७ खीष्टाब्दमें वे उत्पन्न हुए और १५२६ खीष्टाब्दमें विवाह-बन्धनमें आबद्ध होकर ५ वर्षके बाद गृहस्थाश्रमका त्याग करके प्रयाग, अयोध्या, रामेश्वरम्, द्वारकाधाम, बदरीनाथ आदि तीर्थोंका भ्रमण कर, पूर्ण वैराग्य ग्रहण करके कठोर तपस्यामें निमग्न हो गये। उस तपस्या-कालमें ही रचित उनके महादान श्रीरामचरितमानस आदि अमूल्य ग्रन्थ हैं। उन्होंने सं० १६८० वि० अर्थात् १६२६ ई०में नश्वर देह त्याग दिया।

गोस्वामी तुलसीदासके आविर्भावके प्रायः एक सौ वर्ष पूर्व बङ्गदेशमें कृत्तिवास नामक एक मनीषी कविने आविर्भूत होकर सारे पूर्वभारतमें श्रीरामलीलाका प्रचार किया था। प्रस्तुत निबन्धमें कृत्तिवासका जीवन-वृत्तान्त है।

कविका जीवन-परिचय

दिल्लीके सिंहासनपर उस समय पठान वंशके सैयद मुबारक अधिष्ठित थे। बङ्ग-भूमि उन दिनों स्वाधीन सार्वभौम राष्ट्रके रूपमें थी। सम्भवतः गौड़ेश्वर कंस-नारायण या राजा गणेश उस समय बङ्गदेशमें राज्य कर रहे थे। कृत्तिवासने अपने परिचयके विषयमें स्वरचित रामायणमें लिखा है—

> आदित्यवार श्रीपञ्चमी पूर्ण माघ मास।
> तथि मध्ये जन्म लइलाम कृत्तिवास॥

इसीके अनुसार इनका जन्म १३५४ शक (१४३२ खी०) माघ २१को हुआ था। कृत्तिवासका जन्म नदिया जिलेके फुलियाग्राममें हुआ था। १२ वर्षकी अवस्थामें कृत्तिवासने एक तेजस्वी महापुरुषसे दीक्षा ली थी। गुरुके आशीर्वादसे वे गौड़ेश्वरके राज-परिषद्के पदपर आसीन हुए। उन्होंने राजसम्मान प्राप्तकर राजाके आदेशसे जिस रामायणकी रचना की, वह 'कृत्तिवासी रामायण'के नामसे बङ्गदेशमें प्रसिद्ध है।

कृत्तिवास—बँगलाके आदिकवि

रामायण कृत्तिवासकी श्रेष्ठ कृति है। प्रसिद्ध पण्डित रामकृष्ण रायने लिखा है—'बङ्गदेशीय कविके रूपमें जिनका परिचय दिया जाता है, उनमें कृत्तिवास ही सर्वप्रथम आविर्भूत हुए थे। विद्यापति-चण्डीदास आदिने छोटे-छोटे पदोंमें काव्यरचना की थी, बृहत् महाकाव्यकी रचना उन्होंने नहीं की। कृत्तिवास ही बँगलाके वे आदिकवि हैं, जिन्होंने सर्वसाधारणके लिये महाग्रन्थकी रचना की है।'

कृत्तिवासी रामायणका उपादान

महाकवि कृत्तिवासने मुख्यतः वाल्मीकिरामायण, जैमिनी-अश्वमेध, अद्भुतरामायण और अध्यात्मरामायणका अवलम्बन करके अपने रामायणकी रचना की थी। इसके सिवा पुराण, उपपुराण, दन्तकथा और जनश्रुतिसे भी उपादान संग्रह किया था। किष्किन्धाकाण्डमें कविने लिखा है—

> वाल्मीकि वन्दिया कृत्तिवास विचक्षण।
> शुभक्षणे विरचिल गाथा रामायण॥

अन्यत्र उल्लेख किया है कि—

> ए सब गाइल गीत जैमिनि भारते।
> विस्तारित लिखिल अद्भुत रामायणे॥
> एक रामायण शत सहस्र प्रकार।
> के जाने प्रभुर लीला कत अवतार॥

रामायणोंमें वाल्मीकि रामायणको उन्होंने आदर्शरूपमें ग्रहण किया है। मूल संस्कृत रामायणका शाब्दिक या भावानुवाद वे नहीं करते। वाल्मीकि और वेदव्यास उनके पथप्रदर्शक हैं।

कविकी वर्णनावली

वाल्मीकि-रामायण, महाभारतके अतिरिक्त कविने अपने रामायणमें तरणीसेन, वीरबाहु हनुमान्के द्वारा सूर्यको काँखमें धारण करना, महीरावण, अहिरावण, मैरावणके वध्याख्यान आदिका वर्णन किया है।

राम राम बल भाई ! सबे बार-बार ।
मेरे देख राम बिना गति नाई आर ॥

(किष्किन्धाकाण्ड)

'भाई ! मुखसे बार-बार राम-नामका उच्चारण करो । सोचकर देखो, राम-नामके बिना और गति नहीं है ।'

राम नाम जप भाई, अन्य कर्म पिछे ।
सर्व धर्म कर्म राम नाम बिना मिछे ॥
मृत्यु काले यदि नर राम बोलि डाके ।
विमाने चढ़िया याय सेइ देवलोके ॥

(लङ्काकाण्ड)

'राम-नाम जपो, भाई ! और काम सब पीछे करो । राम-नामके बिना धर्म-कर्म सब मिथ्या है । मृत्युके समय यदि मनुष्य 'राम' कहकर पुकारे तो वह विमानपर चढ़कर निश्चय ही देवलोकको जायगा ।'

कृत्तिवास कविने एकमात्र रामनामको ही जीवनका अवलम्बन समझा है । उनकी लेखनीसे श्रीराम-नामका माहात्म्य अपूर्वरूपमें प्रकटित हुआ है ।

कवि कृत्तिवासका अन्तिम जीवन

कवि ४८ वर्षकी अवस्थामें नरदेह त्यागकर श्रीराम-पदमें लीन हो गये । कविकी अन्तिम वासना थी—

यह निवेदन मोर शुन नारायण ।
गङ्गाके रामनामे त्यजिब जीवन ॥

कविकी अपने आराध्यदेव श्रीरामचन्द्रका मधुर नाम उच्चारण करते हुए पतितपावनी गङ्गाके पवित्र जलमें प्राण विसर्जन करनेकी अन्तिम कामना थी । कवि कृत्तिवास अति सरल और सहज भाषामें अपनी बङ्गीय संतानके लिये जो अपूर्व श्रीरामचरित-रचना कर गये हैं, उससे समस्त बङ्ग-संतानका विश्वास है कि कविने श्रीरामके चरणोंमें स्थान लिया था ।

गोस्वामी तुलसीदास और बंगालके आदिकवि कृत्तिवासकी जीवन-साधनामें बहुत ही कम पार्थक्य दृष्टिगोचर होता है । दोनोंने श्रीरामचरितकी रचना सुरुचिपूर्ण ढंगसे करके जातिकी अन्तरात्मापर विजय प्राप्त की है । परंतु कवि कृत्तिवास थे पंद्रहवीं शताब्दीके तथा गोस्वामी तुलसीदास सोलहवीं शताब्दीकी विभूति थे । गोस्वामी तुलसीदासके जीवनमें साधनाकी विभूति जिस रूपमें प्रकाशित हुई थी, कवि कृत्तिवासके जीवनमें वह सौभाग्य प्राप्त न था । तथापि दोनोंकी काव्यसाधना और काव्यरसनिर्झरकी धारा एक ही प्रकारकी है । दोनों ही श्रीरामनामके माहात्म्यका प्रचार करके श्रीरामपदमें विलीन हो गये हैं । दोनों ही जातिके हृदयपर विजय प्राप्त करके धन्य हो गये हैं ।

रामनामका स्मरण

छोड़ै सब ही वासना, हो बैठे निष्काम ।
चरण-कमलमें चित धरै, सुमिरै रामहि राम ॥
जब लगि जीवै राम कहु, रामहि सेती नेह ।
जोय मिलैगो राम में, पड़ी रहैगी देह ॥
यह सिर नवै तो राम कूँ, नाहीं गिरियो टूट ।
आन देव नहिं परसिये, यह तन जायो छूट ॥
सबी निचोरे कहत हैं, भक्ति करी निष्काम ।
कोटि तपस्या यही है, मुख सूँ कहिये राम ॥
राम-नाम मुख सूँ कहै, राम नाम सुन कान ।
रोम-रोम हरि कूँ रटो, ऐसी गहिये बान ॥

—[illegible]—महात्मा बनादासजी

तेलुगु भाषामें रामकथा

(लेखक—श्रीपी० आर० के० आचार्युलु)

दक्षिणकी सुप्रसिद्ध भाषा तेलुगुमें श्रीरामका पवित्र चरित्र ११वीं शतीके आदिकवि नन्नयासे लेकर अबतक अनेकों कवियोंद्वारा लिखा गया है। उक्त भाषामें मन्त्रयाका 'रामाभ्युदय' (महाकाव्य), तिक्कनाका 'निर्वचनोत्तर रामायण', एर्रनाका 'रामायण' (अप्राप्य), गोनबुद्ध रेड्डिका 'रङ्गनाथ रामायण', कट्टवरदराजुका 'उत्तर रामायण', हुलक्कि भास्करद्वारा रचित 'भास्कर रामायण', गोपीनाथ वेंकट कविका 'गोपीनाथ रामायण', कूचिमंचि तिम्मकविका 'अच्च तेलुगु रामायण', आतुकूरि मोल्लका 'मोल्ल रामायण', कचविभुडु तथा विट्ठलराजुद्वारा रचित 'रङ्गनाथोत्तर रामायण', अय्यल राजु रामभद्रका 'रामाभ्युदय', कट्ट वरदराजुका 'द्विपद रामायण', रघुनाथनायकका 'रघुनाथ रामायण', श्रीपाद कृष्णमूर्तिका 'रामायण', विश्वनाथ सत्यनारायणका 'रामायण-कल्पवृक्ष' आदि अनेक रामायण हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक रामायणोंके नाम स्थानाभावके कारण यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। उपर्युक्त रामायणोंमेंसे केवल गोनबुद्ध रेड्डिके 'रङ्गनाथ रामायण' तथा हुलक्कि भास्करके 'भास्कर रामायण'में वर्णित रामचरित वाल्मीकिरामायणसे भिन्न-भिन्न भावोंमें भिन्न हैं, केवल इसका ही संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है। स्थानाभावसे अन्य रामायणोंके काव्य-वैचित्र्य तथा कथा-गायनका परिशीलन करना सम्भव नहीं है। 'रङ्गनाथ रामायण'में आरम्भमें कहा गया है कि 'यह रामायण वाल्मीकि-रामायणका अनुसरण करती है।'

इन दोनों रामायणोंकी कतिपय मुख्य विशिष्ट-भावनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) 'रङ्गनाथ रामायण'के अनुसार बाल्यावस्थामें खेलते समय श्रीरामके पैरका आघात लगनेसे मन्थराका पैर टूट जाता है। मन्थरामें इसीका बदला लेनेका भाव रहता है। इस प्रसङ्गके बाद ही राजा अपने पुत्रोंको वसिष्ठके पास विद्याभ्यासके लिये भेजते हैं।

'भास्कर-रामायण'में भी मन्थराके कोपका कारण श्रीराम-पाद-ताडन ही कहा गया है।

(२) शिवधनुर्भङ्गका विशद वर्णन 'रङ्गनाथ रामायण'में है, किंतु 'भास्कर-रामायण'में वाल्मीकिरामायणकी भाँति उस कथाका संक्षिप्त ही वर्णन किया गया है।

(३) 'रङ्गनाथ रामायण'के अरण्यकाण्डमें जम्बुकुमारका वृत्तान्त एक मुख्य प्रसङ्ग है। यही स्वल्प भेदसे 'भास्कर रामायण'में भी है। शूर्पणखाके पुत्रका नाम जम्बुकुमार है। वेणुके झुरमुटको काटते समय श्री-लक्ष्मणद्वारा जम्बुकुमार अनायास मारा जाता है। इसका बदला लेनेके लिये शूर्पणखा आती है, पर राम-लक्ष्मणके रूपको देखकर मोहित हो जाती है। इससे श्रीराम तथा लक्ष्मणके लोकातीत सौन्दर्यका परिचय मिलता है, जिसके कारण शोकपीड़ित शूर्पणखा भी उनपर आसक्त हो जाती है।

युद्धकाण्डके भावपूर्ण प्रसङ्ग अत्यधिक प्रभावपूर्ण हैं—

१. रावण विभीषणको पादताडनद्वारा सभासे भगाता है।

२. विभीषण माताके पास जाकर अपनी अवस्था बताते हैं तथा उनका आशीर्वाद लेकर श्रीरामके पास शरणप्राप्तिके लिये जाते हैं।

३. सेतु-बन्धनके समय अपनी शक्तिके अनुसार सहायता करनेके लिये गिलहरी आती है। उसकी सेवासे राम बहुत प्रसन्न होते हैं।

४. रावणकी माता कैकसी रावणको हितोपदेश देती है।

५. रावण श्रीरामके धनुर्विद्या-प्रावीण्यकी स्तुति करता है।

६. रावणको मन्दोदरी समझाती है।

७. रावण शुक्रके पास जाकर दुःखित होता है।

८. कालनेमिका वध होता है।

९. दूसरी बार संजीवनी बूटीको लाते समय हनुमान्‌जी-का माल्यवान्‌से युद्ध होता है।

१०. विजयसाधनासे रावण पातालमें जाकर हवन करता है। उसमें विघ्न डालनेके लिये अङ्गद मन्दोदरीके केश पकड़कर खींचते हुए रावणके पास लाते हैं, उससे रावणका यज्ञभङ्ग हो जाता है।

११. राम-रावण-युद्धमें रावणके सिरोंके बारंबार उगते रहनेसे चिन्तित रामको विभीषण उसका कारण बताते हैं कि रावणके अन्तरमें अमृत पड़ा है और उसे ब्रह्मास्त्रसे मारनेके लिये कहते हैं।

उक्त प्रसङ्गोंके अतिरिक्त सभी रामायणोंमें मूल रामकथा तो प्रायशः एक-समान ही है, किंतु भाव, शैली, विशेषता

करते ही आये हैं। राम और कृष्णके जीवनका चिन्तन ऐतिहासिक महापुरुषके तौरपर आजकल हो रहा है। इसीमें एकाध कल्पनाका संनिवेश करके उसे रामभक्त मानवभक्तोंके सामने रखना अनुचित नहीं होगा।

दस अवतारोंमेंसे पहले पाँचको हम छोड़ दें। जीव-सृष्टिका प्रारम्भ पानीमें हुआ (मत्स्यावतार)। उसके बाद पानीका जीव जमीनपर आकर चलने लगा। तब भू और जल दोनों क्षेत्र उसके बने (कूर्मावतार)। इसके बाद कीचड़मेंसे सख्त जमीनपर जीवोंका निवास बढ़ गया (वराह-अवतार) और उसीमेंसे आधा पशु और आधा मनुष्य—ऐसे प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई (नृसिंह-अवतार), ऐसा अर्थ लगाकर इन अवतारोंको विकासवादके साथ जोड़ देनेकी कल्पनाएँ लोगोंने चलायी हैं। और वानरोंने आखिरकार नरोंकी सेवा और भक्ति शुरू की, ऐसा बोध हनुमान्-रामचन्द्रके द्वारा चिन्तनके लिये पेश किया गया। यह सब हम छोड़ दें और छोटे-से वामनावतारसे क्षमा माँगकर अपने चिन्तनका प्रारम्भ परशुरामसे करें।

परशुरामका समय परशुके द्वारा जंगल तोड़कर मनुष्य-बस्ती स्थिर करनेका काल था। इस बातको भी हम छोड़ दें। सह्याद्रि और पश्चिम समुद्रके बीचकी जमीनको मानवी बस्तीके उपयुक्त बनानेका प्रयास परशुरामके अवतारमें हम देखें अथवा न देखें, इतनी बात तो सिद्ध है कि परशुरामके कालमें ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों जमातोंमें (वर्णोंमें) भारी संघर्ष था और ब्राह्मण परशुरामने ब्राह्मणोचित आदर्शको छोड़कर क्षात्रवृत्ति धारण की, क्षत्रियोंको इक्कीस बार हराया।

इस अनुभवसे तंग होकर क्षत्रियोंने देखा कि संगठनके बिना केवल बहादुरीसे हम जी नहीं सकते, फल नहीं पाते। इसलिये क्षत्रियोंने अंदर-अंदर लड़ना बंद करके एक समर्थ पुरुषको सम्राट् बनाकर बाकीके सब राजा लोग उसके इर्द-गिर्द मण्डलमें बैठने लगे, यानी माण्डलिक बने।

एक राजा सम्राट् बने और बाकीके सब माण्डलिक बनकर सारे भारतकी एकता मजबूत करें, यह विचार अगर सचमुच क्षत्रियमान्य होता तो सम्राट् बननेके लिये किसी भी महत्त्वाकांक्षी राजाको अश्वमेध करना नहीं पड़ता और घोड़ेकी मददसे राजसूय यज्ञ करनेकी नौबत नहीं आती। एक राजा सम्राट् बनता था, केवल सेनाके बलपर और बाकीके राजा माण्डलिक बनते थे, हारनेके बाद लाचार होकर। हमारे पौराणिक इतिहासमें ऐसा कोई साम्राज्य एक या डेढ़ पुश्तसे अधिक चला हो तो उसकी जानकारी हमें नहीं है। सम्राट्के देहान्तके साथ उसके राज्यके विभाग करने ही पड़ते थे। यह थी परशुराम-अवतारकालकी राजनीतिक परिस्थिति।

इसके बाद आते हैं, दाशरथि रामचन्द्र। इनका सारा प्रयत्न ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों जमातोंके बीच समन्वय स्थापन करनेका था। ब्राह्मणोंकी महत्ताका अनुभव करनेके बाद क्षत्रिय जमातमेंसे ब्राह्मण बन गये विश्वामित्र। राम उनके शिष्य बने और उनके पाससे रामने दोनों जमातोंकी विद्या सीख ली।

रामावतारका काल खेतीके प्रारम्भका था, खेतीके विस्तारका था। राजा जनक आदर्श किसान थे। वृष्टि-ऋतुकी तैयारी देखते ही किसानोंके नेता राजा जनक सोनेका हल चलाकर खेती शुरू करते। जनकके बाद ही बाकीके किसानोंके हल चलानेका रिवाज था। जनक राजाको जमीनमें हल चलाते सीता मिल गयी। ('सीता' शब्दका असली अर्थ ही है, हल चलानेसे जमीनमें बननेवाली लकीर। उसके बाद सीताका अर्थ हुआ कृषि विद्या। मनुस्मृति (१। २९२) में हल, कुदाली आदि खेतीके उपकरणोंको 'सीताद्रव्य' कहा गया है।) राजा रामचन्द्रने किसान राजा जनककी कन्याके साथ विवाह किया, यानी कृषि विद्या अपनायी और दक्षिणमें जाकर, जिस जमीनमें हल चल नहीं सकता था, ऐसी 'अहल्या'-भूमिका उद्धार किया।

श्रीरामका सारा प्रयत्न ब्राह्मण और क्षत्रियोंके बीच समाधान करनेका और सांस्कृतिक समन्वय साधनेका था। उन्होंने लिया पक्ष, सुधारक ब्राह्मण विश्वामित्रका। किंतु उनके कुलगुरु थे, प्राचीन परम्पराके अभिमानी ब्राह्मण वसिष्ठ।

रामके सामने तीन आदर्श थे—(१) ब्राह्मणोंका वर्चस्व मान्य करना, (२) जनताके अभिप्रायका आदर करना और (३) पिछड़ी हुई आदिवासी जमातोंको गम्भीर आर्य-संस्कृतिकी दीक्षा देना।

हमें एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये। [illegible] [illegible] हो, ब्राह्मण किया जाय, लेकिन यह [illegible] नहीं

आदिके वैशिष्ट्यकी दृष्टिसे प्रत्येक रामायणका अपना विशिष्ट महत्त्व है। 'भास्कर-रामायण' तथा 'रङ्गनाथ रामायण'में वर्णित प्रसङ्गोंका वाल्मीकि-रामायणके प्रसङ्गोंके साथ इतना अधिक साम्य देखकर सहज ही यह प्रेरणा मिलती है कि विभिन्न रामायणोंकी रामकथाओंका अनुशीलन किया जाय, जिससे यह ज्ञात हो सके कि विभिन्न रामायणोंके रचयिताओंने किस सीमातक वाल्मीकि-रामायणका अनुसरण किया है।

अन्य रामायणोंमें तिक्कनाका 'निर्वचनोत्तर रामायण' और कंकंटि पापराजुका 'उत्तर रामायण' अत्यन्त मार्मिक ग्रन्थ हैं। इनमें श्रीसीता-रामके प्रणय-विलास तथा रामका सीताके प्रति अपार और अचिन्त्य प्रेमका मनोरम वर्णन है। वे ही सीताप्रेमी राम राजधर्मकी दृष्टिसे, वंश-परम्पराके चारित्रिक नैर्मल्यकी रक्षाके लिये तथा प्रजाकी दृष्टिसे अपनी प्राणाधिका प्रिया पत्नी सीताको सौमित्रिके द्वारा वनभ्रमणके व्याजसे निर्जन वनमें भिजवा देते हैं। कंकंटि पापराजुद्वारा वर्णित सीता-परित्यागका वर्णन पढ़नेसे पाठकका हृदय और आँखें रह-रहकर भर आती हैं। तिक्कना श्रीसीता-रामके उद्यान-विहारका वर्णन करके भावी वियोगको और भी हृदयस्पर्शी बना देते हैं। उक्त रामायणोंके अनुशीलनसे यह माना जा सकता है कि श्रीरामचरितका रसपूर्ण वर्णन विभिन्न रामायणोंमें किस तरह किया गया है।

यहाँ तेलुगु भाषाके सभी रामायणोंमें वर्णित श्रीरामचरितका वर्णन तो दूर रहा, मुख्य विशेषताओंका निर्देश भी स्थानाभावके कारण नहीं हो पा रहा है। यहाँ तो केवल दो ही रामायणोंके मुख्य प्रसङ्गोंका उल्लेखमात्र किया गया है।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम—एक दृष्टिकोण

(लेखक—श्रीकाकासाहेब कालेलकर)

सनातनी धर्मवृत्ति एक ही समय भिन्न-भिन्न भूमिकापर चिन्तन चला सकती है। श्रीराम और श्रीकृष्णको हम ऐतिहासिक महापुरुष समझकर उनके जीवनकार्यका विचार कर सकते हैं और साथ-ही-साथ हम इन दो महापुरुषोंको ईश्वरका अवतार समझकर उनकी अवतारलीलाका रहस्य ढूँढ़नेकी कोशिश भी कर सकते हैं।

और आगे जाकर हम श्रीराम और श्रीकृष्णको परमात्माके लोकप्रिय नाम समझकर अध्यात्मसाधनामें उनके नामोंका और उनके वचनोंका उपयोग भी कर सकते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीताका उदाहरण लीजिये। महाभारतके युद्ध-क्षेत्रमें पाण्डववीर अर्जुनको उनके सारथि श्रीकृष्णने जो उपदेश दिया और अर्जुनका विषाद और मोह नष्ट करके उसे युद्धके लिये तैयार किया, उस संवादको हम एक तरहका ऐतिहासिक संवाद भी मान सकते हैं। और नर-नारायणरूप अर्जुन-श्रीकृष्णकी जोड़ीमें नरश्रेष्ठ अर्जुनको मानवजातिका प्रतिनिधि और नारायण श्रीकृष्णको प्रत्यक्ष ज्ञानमूर्ति परमात्मा मानकर सारे संवादको एक आध्यात्मिक रूपक भी मान सकते हैं। पुनः उसमें पाण्डवोंको दैवीसम्पत्के प्रतिनिधि मानकर कौरवोंको आसुरीसम्पत्के रूपक भी हम बना सकते हैं। आज जब आध्यात्मिक साधनाके लिये गीताका हम उपयोग करते हैं, तब उसकी ऐतिहासिक भूमिका एक तरफ रख देते हैं और जो संवाद असलमें ऐतिहासिक नमूना था, उसे हम आध्यात्मिक रूपक मानकर ही उससे लाभ उठाते हैं।

जब महात्माजीने अपने अन्तिम क्षण 'हे राम' कहा, तब उनके मनमें अयोध्याके राजा दशरथपुत्र राम नहीं थे; किंतु साक्षात् परमात्माका नाम ही 'राम' शब्दके द्वारा उन्होंने लिया था।

इसी तरह हम श्रीरामकी, श्रीकृष्णकी अथवा सम्मिलित श्रीराम-कृष्णकी आध्यात्मिक उपासनाके समय परमात्माका ही ध्यान करते हैं। लेकिन जब भारतीय संस्कृतिके इतिहासको ध्यानमें रखकर पौराणिक कथाओंमेंसे ऐतिहासिक निष्कर्ष निकालते हैं, तब श्रीरामको एक आदर्श राजा और सांस्कृतिक नेता मानकर ही चलते हैं।

हमारे अवतारी पुरुष श्रीराम अथवा श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'संकट दूर करनेके लिये मनुष्यके द्वारा जो भी कोशिश हो सकती है, हम करेंगे, दैवी चमत्कार नहीं।'

आध्यात्मिक साधनाकी दृष्टिसे रामावतारका और रामचरित्रका चिन्तन हमारे संत-महंत, योगियों और भक्तगण

करते ही आये हैं । राम और कृष्णके जीवनका चिन्तन ऐतिहासिक महापुरुषके तौरपर आजकल हो रहा है । इसीमें एकाध कल्पनाका संनिवेश करके उसे रामभक्त भागवतोंके सामने रखना अनुचित नहीं होगा ।

दस अवतारोंमेंसे पहले पाँचको हम छोड़ दें । जीव-सृष्टिका प्रारंभ पानीमें हुआ (मत्स्यावतार) । उसके बाद पानीका जीव जमीनपर आकर चलने लगा । तब भू और जल दोनों क्षेत्र उसके बने (कूर्मावतार) । इसके बाद कीचड़मेंसे सख्त जमीनपर जीवोंका निवास बढ़ गया (वराह-अवतार) और उसीमेंसे आधा पशु और आधा मनुष्य—ऐसे प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई (नृसिंह-अवतार), ऐसा अर्थ लगाकर इन अवतारोंको विकासवादके साथ जोड़ देनेकी कल्पनाएँ लोगोंने चलायी हैं । और वानरोंने आखिरकार नरोंकी सेवा और भक्ति मान्य की, ऐसा बोध हनुमान्-रामचन्द्रके द्वारा चिन्तनके लिये पेश किया गया । यह सब हम छोड़ दें और छोटे-से वामनावतारसे सामा सीमाकर अपने चिन्तनका प्रारम्भ परशुरामसे करें ।

परशुरामका समय परशुके द्वारा जंगल तोड़कर मनुष्य बस्ती स्थिर करनेका काल था । इस बातको भी हम छोड़ दें । सह्याद्रि और पश्चिम समुद्रके बीचकी जमीनको मानवी बसेराके उपयुक्त बनानेका प्रयास परशुरामके अवतारमें हम देखें अथवा न देखें, इतनी बात तो सिद्ध है कि परशुरामके कालमें ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों जमातोंमें (वर्णोंमें) बड़ा संघर्ष था और ब्राह्मण परशुरामने ब्राह्मणोचित आदर्शको छोड़कर क्षात्रवृत्ति धारण की, क्षत्रियोंको इक्कीस बार हराया ।

इस अनुभवसे तंग होकर क्षत्रियोंने सोचा कि संगठनके बिना केवल बहादुरीसे हम जी नहीं सकते, बच नहीं सकते । इसलिये क्षत्रियोंने अंदर-अंदर लड़ना कम करके एक समर्थ पुरुषको सम्राट् बनाकर बाकीके सब राजा लोग उसके इर्द-गिर्द मण्डलमें बैठने लगे, यानी माण्डलिक बने ।

एक राजा सम्राट् बने और बाकीके सब माण्डलिक बनकर उसकी सत्ता मजबूत करें, यह विचार अगर सबमुच क्षत्रियमान्य होता तो सम्राट् बननेके लिये किसी भी महत्त्वाकाङ्क्षी राजाको अश्वमेध करना नहीं पड़ता और फौजकी मददसे सम्राट्‌पद पानेकी नौबत नहीं आती । एक राजा सम्राट् बनता था, केवल सैन्यके बलपर और बाकीके राजा माण्डलिक बनते थे, हारनेके बाद लाचार होकर । हमारे पौराणिक इतिहासमें ऐसा कोई साम्राज्य एक या डेढ़ पुश्तसे अधिक चला हो तो उसकी जानकारी हमें नहीं है । सम्राट्‌के देहान्तके साथ उसके साम्राज्यके विभाग करने ही पड़ते थे । यह थी परशुराम-अवतारकालकी राजनीतिक परिस्थिति ।

इसके बाद आते हैं, दाशरथि रामचन्द्र । इनका काम प्रथम ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों जमातोंके बीच समन्वय स्थापन करनेका था । ब्राह्मणोंकी महत्ताका अनुभव करनेके बाद क्षत्रिय जमातमेंसे ब्राह्मण बन गये विश्वामित्र । राम उनके शिष्य बने और उनके पाससे रामने दोनों जमातोंकी विद्या प्राप्त की ।

रामावतारका काल खेतीके प्रारम्भका था, खेतीके विस्तारका था । राजा जनक आदर्श किसान थे । मुहूर्तकी तैयारी देखते ही किसानोंके नेता राजा जनक देनेका हल चलाकर खेती शुरू करते । जनकके बाद ही बाकीके किसानोंके हल चलानेका रिवाज था । जनक राजाको जमीनमें हल चलाते सीता मिल गयी । ('सीता' शब्दका असली अर्थ ही है, हल चलानेसे जमीनमें बननेवाली लकीर । उसके बाद सीताका अर्थ हुआ 'कृषि विद्या' । मनुस्मृति (१ । २९२) में हल, कुदाली आदि खेतीके उपकरणोंको 'सीताद्रव्य' कहा गया है ।) राजा रामचन्द्रने किसान राजा जनककी कन्यासे विवाह किया, यानी कृषि-विद्या अपनायी और दक्षिणमें जाकर, जिस जमीनमें हल नहीं चलाया था, ऐसी 'अहल्या'-भूमिका उद्धार किया ।

श्रीरामका काम प्रथम ब्राह्मण और क्षत्रियोंके बीच समाधान करनेका और सांस्कृतिक समन्वय साधनेका था । उन्होंने विद्या पायी, गुरुतक ब्राह्मण विश्वामित्रसे । किंतु उनके कुलगुरु थे, प्राचीन परम्पराके प्रतिनिधि ब्राह्मण वसिष्ठ ।

रामके सामने तीन आदर्श थे—(१) ब्राह्मणोंका वर्चस्व मान्य करना, (२) क्षत्रियोंके अभिमानको नष्ट करना और (३) पिछड़ी हुई अविकसित जमातोंको मर्यादित आर्य-संस्कृतिकी दीक्षा देना ।

इसे एक बार समझने लायक मानिये । राम राज्यको मिले ही राज्य मिला था, लेकिन यह राज्य...

ऐ मेरे दाहिने हाथ! अकालमृत्युको प्राप्त हुए ब्राह्मणके लड़केको जिलानेके लिये इस शूद्रमुनिपर शस्त्र चला। तू कठोर रामका दाहिना हाथ है। गर्भवती निर्दोष सीताको जंगलमें छोड़ देनेमें तुम होशियार साबित हुआ है। तेरे अंदर करुणा कैसी?'

शम्बूकने रामका दर्शन करके प्राण छोड़े। उसकी तपस्याका पूर्ण फल उसे मिल गया। उसने कहा—'बड़े-बड़े ऋषि मुनि जिनके दर्शनके लिये ध्यान लगाते हैं, ऐसे तुम परमात्मा स्वयं मुझे ढूँढ़ते आये। मेरी तपस्या सफल हुई।'

[परम सम्मान्य काका कालेलकर महोदयके विचार ऊपर प्रकाशित किये गये हैं। काकाजी गांधीवादी विचार-धाराके प्रमुख चिन्तक, पूर्वाग्रहशून्य, विलक्षण प्रतिभाशाली एवं भारतके एक प्रबुद्ध मनीषी हैं।

हमारे परमश्रद्धेय नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारसे तो काकासाहेबका बहुत पुराना—महात्मा गांधीजी जब साबरमती आश्रममें थे, तभीसे—बड़ा प्रीतिका सम्बन्ध रहा है। 'कल्याण' पर भी काकासाहेबका स्नेह रहा है। जब भी काकासाहेबसे प्रार्थना की गयी, उन्होंने 'कल्याण' के लिये उत्साहपूर्वक लिखा है। प्रस्तुत लेख भी काकासाहेबकी उसी आत्मीयताका परिणाम है। हम जानते हैं, पूज्य काकासाहेबका अवतार-वादपर विश्वास है तथा वे श्रीरामको मानवताका आदर्श मानते हुए उन्हें भगवान् भी मानते हैं। अतएव उपर्युक्त लेखमें उन्होंने जो एक दृष्टिकोण रखा है, उसके सम्बन्धमें हमें कुछ कहना तो नहीं चाहिये था पर मनकी दो चार बातें अत्यन्त नम्रतापूर्वक काकासाहेबकी सेवामें निवेदन करनेकी धृष्टता की जा रही है। आशा है, काकाजी इससे प्रसन्न ही होंगे—'भिन्नरुचिर्हि लोकः।'

कुछ लोग सृष्टिक्रमकी पौराणिक परम्पराको नहीं मानते और वे विकासवादका पश्चिमी ढंगसे अर्थ करते हैं। अर्थ करनेमें सभी स्वतन्त्र हैं, किंतु प्रयत्न होना चाहिये सत्यकी खोजका।

महात्मा गांधीकी रामपर अटूट श्रद्धा थी। जैसी गांधीकी श्रद्धा थी, वैसी ही महात्मा श्रीगोस्वामी तुलसीदासकी भी थी—उनके रामचरितमानसपर भी। श्रद्धा अन्धकार नहीं दिखाती, दिखाती है प्रकाश। श्रद्धा कल्पना नहीं होती, भ्रम नहीं होता, सत्य ज्ञान ही होता है।

परशुरामके साथ क्षत्रियोंका—राजाओंका संघर्ष कभी दैविक स्वरूपका संघर्ष नहीं रहा। वह संघर्ष रहा न्याय और अन्यायका। शक्तिमदने जब अन्याय और जुल्म किया, तब सर्वस्वत्यागियोंने उस समय अपनी दिव्य शक्तियोंका भी उपयोग किया। विश्वामित्रके साथ वसिष्ठके संघर्षकी तुलना कीजिये। विश्वामित्र अपने मुखसे कहते हैं—

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हतानि मे॥
(वा० रा० १।५६।२३)

—और तपसे अन्तःशक्तिको जाग्रत् करनेमें लग जाते हैं अर्थात् ब्रह्मतेजकी उपासना करते हैं।

पुराणोंमें विश्वामित्रके अतिरिक्त अन्य किसी क्षत्रियके ब्राह्मणवर्णमें परिवर्तित होनेकी चर्चा नहीं पायी जाती। यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिये कि स्वयं विश्वामित्रकी उत्पत्ति जिस चरुसे हुई थी, वह ब्रह्मवीर्यसम्पन्न था। वीर्यकी सदैव प्रधानता रही है। वही शरीरका भाव। तपःसंलग्न विश्वामित्रके शरीरका कण कण धीरे धीरे परिवर्तित होता गया—इस परिवर्तनमें कितना समय लगा होगा, इसकी कल्पना कीजिये। रामायणमें उल्लेख है जितनी सरलतासे होनेके आसार प्रकट हुए, उतनी सरलतासे वे सम्पूर्ण आचारसे—शरीरको परिवर्तित नहीं कर पाये। उसमें काफी समय लगा। सभी मनीषी इस बातका समर्थन करेंगे कि आन्तरिक चेतनाके प्रबुद्ध होनेके साथ शरीरमें भी परिवर्तन होता है। किंतु शरीरका परिवर्तन आन्तरिक चेतनाके उस भागपर निर्भर करता है, जो गुणत्रयसे आवृत होता है। यह कहना पर्याप्त होगा कि ब्राह्मणकी चेतनामें सत्त्वका अंश अधिक होता है, इसीलिये वह अपने स्वरूपमें ही रजस् और तमस्को दबाकर सत्त्वप्रधान बन जाती है।

जो बात विश्वामित्रपर घटित होती है, वही बात शम्बूकपर भी घट जाती है। शम्बूक आदिवासी थे, यह हमारी मान्यता नहीं है। शम्बूक आदिवासी भले ही हों। वे यहाँ [illegible] भूमिपर जन्मे हैं। वह शूद्र था और शूद्रका धर्म है—[illegible]। तमस् धीरे धीरे रजस्को और रजस् सत्त्वगुणमें परिवर्तित होता है। आचारके अनुसार उद्बुद्ध चेतना अपना काम करती है। इसीलिये चेतनाको उद्बुद्ध करनेमें पूर्व [illegible] आचार प्रधानतः आचारशुद्धि और [illegible] गया है और इसीलिये [illegible] पुराणोंमें [illegible] आचारशुद्धिके लिये [illegible] है। [illegible] चेतनाके विभिन्न आवरणोंको, [illegible] करता हुआ अपनेको उपलब्ध कर लेता है, जो उसे

योगवासिष्ठ और श्रीराम

(लेखक—श्रीआचार्य शर्मा)

महर्षि वसिष्ठ श्रीरामसे तत्त्वज्ञानकी मीमांसा करते हुए कहते हैं—जिस तरह जल अपने आपमें स्वतः बुद्बुद और तरंगादिके रूपमें स्फुरित होता है, उसी प्रकार आत्मा अपने आपमें स्वयं ही स्फुरणशील होता है। योगवासिष्ठमें अनेकानेक कथासूत्रों एवं दृष्टान्तों आदिके माध्यमसे जो कुछ कहा गया है, उसको श्रवण कर लेनेपर श्रीरामके चरित्रमनपर जो भ्रान्ति अथवा व्यामोहका एक घना कुहासा-सा छा गया था, वह नष्ट होकर आत्मस्वरूपमें संस्थितिका प्रथम हुआ। उनके पिता राजा दशरथने भी गुरुदेव वसिष्ठके उक्त सर्व प्रकारसे शुद्ध एवं अनुकरणीय व्याख्यानपर प्रतिक्रियास्वरूप जो कहा, उसका सार है कि 'भगवन्! आपके उपदेशसे हम सभीकी आत्मा परमपदमें सुखपूर्वक प्रवेश करनेयोग्य हो गयी है।'

प्रमुख बोध यह है कि अज्ञानवश अपना ही विश्वरूप भासमान होता है, जब कि वास्तविक दृष्टिका ही वस्तुतः अत्यन्ताभाव है—एकमात्र ब्रह्म ही सर्वत्र विराजमान है। इस मायाके लिये चिन्ता करना व्यर्थ है। यही बात वसिष्ठ श्रीरामको स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि जिस प्रकार जागनेपर स्वप्न विनष्ट हो जाता है, उसी प्रकार प्राणीके आत्मस्वरूपमें जागनेपर यह जगत्-संसाररूपी स्वप्न भी विनष्ट हो जाता है।

इसपर श्रीराम पूछते हैं—'क्या कोई ऐसा महामुनि इस धरतीपर अभीतक पैदा नहीं हुआ, जो इस विशाल वास्तविक स्वप्नसे जाग गया हो?'

गुरुवरने बताया—'हुआ कैसे नहीं, एक नहीं, अनेक मुनि ऐसे हुए, जो इस स्वप्नसे जागे हैं।' श्रीराम सरल भावसे पूछ बैठे—'तो फिर यह स्वप्नरूपी जगत् नष्ट क्यों नहीं हुआ? क्यों आज भी पहाड़, नदी, वनस्पति, वीर, मनुष्य, पशु-पक्षी आदिके रूपमें यह स्वप्न दिखायी देता है?'

महर्षि मुसकराते हुए कहते हैं—'जगत्की प्रतीति केवल अज्ञानीको हो रही है, जो अभी इस महान् स्वप्नसे जागे नहीं हैं। वस्तुतः तो यह है ही नहीं। इसका पृथक् अस्तित्व ही नहीं है—उसी प्रकार, जैसे स्वर्ण और कंगनका पृथक् अस्तित्व नहीं, केवल स्वर्णमें ही कंगनकी भ्रान्ति है।'

श्रीरामका समाधान हो जाता है कि एक ही व्यक्तिका स्वप्न उस एकके जागनेपर नष्ट होता है; किंतु जो अनादि महास्वप्न सबके मन-मन्दिरमें घूम रहा है, जिसे अनादिकालसे सब देखते चले आ रहे हैं, जिसमें सब आनन्द भी ले रहे हैं, जिसमें सब सुख-दुःखकी अनुभूति भी कर रहे हैं, वह महास्वप्न केवल एक-दो महामुनियोंके जग जानेपर कैसे भङ्ग हो सकता है। हाँ, जिनके लिये यह जगत्-स्वप्न भङ्ग हो गया है, उन्हें यथार्थ आत्मस्वरूपका बोध हुआ है, उन्हें चिन्मय चैतन्य विशुद्ध शिव-संस्पर्शकी अनुभूति हुई है और उनके सम्पूर्ण अन्धकार, अविद्या, भ्रान्ति, अहंकार आदिका क्षय हो गया है। पर जब समूचा विश्व ही इस महास्वप्नसे जागे, तभी तो यह महास्वप्न भङ्ग हो।

श्रीरामकी बोधशक्ति व्यष्टि-चैतन्य और समष्टिगत चैतन्यको नियन्त्रित करनेवाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म अतीन्द्रिय क्षेत्रोंमें विकसित होती है और यह उच्चतर स्थिति ज्ञानाग्निद्वारा सम्पूर्ण कर्मोंके भस्म हो जानेपर उन्हें महाभागवत वसिष्ठजीकी अनुकम्पासे प्राप्त होती है—यह एक मीमांसा है, किंतु अन्तिम नहीं।

आज इस विश्वमें जो कुछ पदार्थवादी क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ चल रही हैं, वे हमारे देशको भी प्रतिबिम्बित करती हैं और हमारे राजनेताओंका मनोबल क्षीण हो गया है। वे प्रायः हृदयदौर्बल्यके शिकार हो गये हैं और पदार्थवादियोंकी भाषामें बोलने और सोचनेकी प्रक्रिया अपना लेनेके कारण ही (अत्यन्त खेदका विषय है कि) वे आसुरी शक्तियोंके खेमेमें प्रविष्ट हो गये हैं।

हित नहीं चाहता है कि आम देशोंको नरकमें पचाकर किसी खाईमें धकेलकर गिराये, लेकिन दैवी सम्पदाके शिखरपर भारतीय सभ्यता स्वयं ही (धीरे-धीरे) आसुरी खेमेमें घुस गया है, पतित हो गया है। इसकी पराजय निश्चय है; क्योंकि इसने स्वधर्मके पालन अपनी आध्यात्मिक परम्पराओंको छोड़कर पश्चिमी महासत्ताओंसे प्रभावित होकर उनकी-जैसा भौतिकवादी आचरण प्रारम्भ कर दिया है। यही तो आसुरी लोग चाहते थे।

चाहिये यह था कि जैसा बोध योगिराज वसिष्ठ श्रीरामको प्रदान करते हैं, उसके अनुसार चिन्मय संसारकी परिस्थितिमें भागीदार बनते हुए हम भी शान्त, संतुलित एवं प्रसन्न रहते। स्वधर्म छोड़कर परधर्म (भौतिकवाद) को अपनानेकी चेष्टा व्यर्थ होनेसे मूर्खतापूर्ण है; क्योंकि इससे शक्ति, समय, अर्थ, धर्म एवं पुण्यादिका घोरतम क्षय होता है।

आसुरी शक्तियाँ स्वतः आपसमें टकराकर विनष्ट हो जाती हैं, यही दैवी विधान है; अथवा दैवी शक्तियाँ उन्हें ध्वस्त कर डालती हैं। दिव्य शक्तियोंकी विजय एक ध्रुव सत्य है, जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। दिव्य चैतन्यके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं, था ही नहीं, भविष्यमें होगा भी नहीं। फिर कहाँ और कैसे असत्‌का अस्तित्व रहेगा!

श्रीरामद्वारा संस्थापित आदर्श-राज्य उनकी मर्यादा-पुरुषोत्तमताको सिद्ध करता है; क्योंकि उनकी समस्त क्रिया-प्रक्रियाके मूलमें चिन्मय संसारकी विशुद्ध अनुभूति सक्रिय थी, जिसे उन्होंने सर्वत्र समभावपूर्वक (यहाँ तक कि महाबली रावणके पक्षमें भी) मार्ग-प्रदान किया। विरोधी अवरोधोंके बावजूद पूरे मनसे सत्य प्रयास उन्होंने सभी ओर किया। किसी भी प्रकारकी ममता, मोह आदि उनकी इस अपरिमेय मर्यादाको विचलित नहीं कर सकी। उनका संकल्प सुदृढ़ रहा अथवा वे दृढ़तापूर्वक चिन्मय संसारमें सुस्थिर रहे—यही उनके सर्वोच्च धर्मज्ञ, रामराज्य-निर्माता एवं आजन्म सर्वगुणसम्पन्न मर्यादा-पुरुष अथवा भगवान् कहलानेका कारण बना।

योगवासिष्ठके अनुसार भगवद्दर्शन भाव अपनाकर ही मानव स्वधर्ममें सुस्थिर रह सकता है।

नमन, हे राम! तुम्हें शतवार!

तुम्हारी धर्म-व्यवस्था, देव! हमारी संस्कृतिका श्रृंगार।
नमन, हे राम! तुम्हें शतवार॥

पिताके प्रण पालन के हेतु
त्यागकर वैभव राज प्रसाद,
अवध से लेते विदा सहर्ष,
न छायी आनन रेखा विषाद।
विपिन तपस्वी बनकर तुम चले, मेटने क्षिति-मण्डल-भार।
नमन, हे राम! तुम्हें शतवार॥

तुम्हें लौटानेको, हे देव!
चले तब भरत अवधके संग।
सुनी जब तुमने धर्म पुकार,
किया नत अनुगत तुमने भक्त॥
बन्धुसे चित्रकूट पर मिले, वृष्टि कर करुणा प्रेम अपार।
नमन, हे राम! तुम्हें शतवार॥

विपिन विचरणमें प्रभु सप्रेम
चरण शबरी कुटियामें दिया।
भक्तिवश तुमने पाकर प्रीति,
बेर, दुरलभ गति विनिमय किया॥
अछूतोंको देकर पद श्रेष्ठ, कर्म-जगको दी शिक्षा सार।
नमन, हे राम! तुम्हें शतवार॥

बन्धु-भय-व्याकुल कपि सुग्रीव
'त्राहि' कर आया तेरे शरण,
भयातुर को वर दिया 'दर्शन',
अकिंचन जनके संकट हरण।
गही जब जिसने तेरी शरण, हुई, बस, उसकी नय्या पार।
नमन, हे राम! तुम्हें शतवार॥

विभीषण व्याकुल चरण-प्रहार
शरण आया, तज राज-समाज।
उसे दे तुमने पद 'लंकेश',
निभायी बाँह-गहे की लाज॥
अनाथोंके तुम ही हो नाथ, न तुम-सा जगमें अन्य उदार।
नमन, हे राम! तुम्हें शतवार॥

सुनाऊँ सूने किस के कष्ट,
देव! मैं दीन-अनाथ अजान
अहर्निश करते तेरी याद
अहल्या, विहग, निषाद, अजगन।
'पतित-पावन' सुन तेरा नाम, पतित आया है तेरे द्वार।
नमन, हे राम! तुम्हें शतवार॥

—[illegible] 'विकल'

विशिष्ट महत्त्व है, तथापि अभीतक ये दोनों अप्रकाशित हैं। इसके रामायण-अभिनयका चलचित्रण भी नहीं किया गया। स्व॰ आचार्य रघुवीरजीने १९६०में दोनोंके हिंदी संक्षेप प्रकाशित किये थे।

थाईदेशमें रामायणका रूपान्तर 'रामकियेन' (अर्थात् रामकीर्ति) के नामसे प्रख्यात है। यह 'खोन' अर्थात् मुखौटा-नृत्यमें, नाङ् अर्थात् छायानाटकमें, मनुष्य-अभिनयमें और कठपुतलियोंके रूपमें उपलब्ध है। काव्य थाई नरेशोंने स्वयं रचे हैं; क्योंकि वे इस धरापर रामके प्रतिनिधि हैं, जिसके उपलक्ष्यमें राज्याभिषेकके समय उन्हें 'राम'की उपाधिसे घोषित किया जाता है। वर्तमान थाई-नरेश अपने राजवंशमें नवें (९) होनेके कारण 'राम नवम' हैं। थाई-नरेश राम प्रथमका काव्य पूर्णतम है, परंतु राम द्वितीयका काव्य मञ्चपर अभिनयकी दृष्टिसे अधिक उपयोगी है। आज भी थाई देशमें राज्य-शासनकी ओरसे रामायणका अभिनय होता रहता है। इसकी शिक्षा देनेका दायित्व सिल्पाकोन् (शुद्ध संस्कृत-शिल्पकरण) पर, अर्थात् शिक्षा-मन्त्रालयके ललित कला (शिल्प) विभाग-पर है। 'सिल्पाकोन्' रामलीलामें राम प्रथम और राम द्वितीय—दोनोंके काव्योंका प्रयोग करता है, परंतु उसमें यथोचित परिवर्तन कर लेता है। राम षष्ठका काव्य और भी अधिक पढ़ा जाता है और अभिनीत होता है। इसमें नरेशने वाल्मीकि-रामायणको भी अपनी परम्परामें संवर्धित किया। राजमहिम राजपुत्र धानिनिवात्-जैसे थाई विद्वानोंका मत है कि उनकी रामकियेन्-परम्परा इंडोनीशियाके श्रीविजय साम्राज्यसे उद्भूत है। 'नाङ्' अर्थात् छायानाटक भी थाईदेशमें इंडोनीशियासे मलय प्रायद्वीप होता हुआ पहुँचा। नरेश बोरोमा त्रैलोक्यनाथ-द्वारा सन् १४५८में प्रसारित राजनियममें नाङ्—धर्म-पुस्तिकाओंमें छायानाटकके अभिनयका उल्लेख मिलता है।

मलेशियामें सन् १४००-१५००के बीच 'हिकायत श्रीराम' की रचना हुई। इससे यह रामायणकी छायाकठपुतलियोंका आधार रहा है। छायानाटकके दो रूप हैं—'वायङ् सियम' और 'वायाङ् जावा'। देशोंके नामोंसे अभिहित होनेपर भी इन दोनोंमें स्व विशेषताएँ हैं, जो इनको विशिष्ट विभिन्न मलय स्वरूप प्रदान करती हैं। इनका इंडोनीशियाकी कलासे साम्य है और इंडोनीशियाई पारिभाषिक शब्द भी इनमें प्रयोग किये जाते हैं—केलिर्, पायङ्, दालङ् आदि। मलेशियामें रामायणके विभिन्न स्थानीय रूपान्तर हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि यह यहाँकी लोकपरम्परामें अभिन्नरूपसे रमकर लोकप्रिय हो चुकी थी। मलेशियामें आज भी सूत्रधार, जो 'दालङ्' कहलाता है, एक वर्षमें २००-३०० बार अभिनय करता है। यह मनोरञ्जनमात्र नहीं है, अपितु इसका धार्मिक महत्त्व भी है। यह इस बातसे स्पष्ट है कि छायानाटकका प्रारम्भ करनेसे पहले पूजा की जाती है और सुख-शान्ति एवं कल्याण-मङ्गलके लिये देवताओंका आह्वान किया जाता है। डॉ॰ अमीन स्वीनीने, जिन्होंने मलेशियाकी रामायणपर शोधग्रन्थ लिखकर लंदन विश्व-विद्यालयसे पी-एच॰डी॰की उपाधि प्राप्त की है, कहा—'रामायणका छायानाटक मलेशियाके निवासीके लिये एक प्रेरणा है, 'आत्मा' है, अर्थात् प्राणवान् चैतन्य है, जिसमें प्रदर्शक और उसका दर्शक-श्रोता वाद्ययन्त्रोंकी स्वरलहरीमें ओतप्रोत होकर रामायणके पात्रविशेषसे अपना तादात्म्य स्थापित करता है और अलौकिक अनुभूति करता है। यह कभी-कभी इस अनुभूतिमें विलीन हो समाधिस्थ हो जाता है।'

बर्मामें भी रामायणका प्रसार शताब्दियोंसे रहा है। बर्मा-नरेश क्यान्जित्था (सन् १०८४–१११२) का रामायणसे विशेष अनुराग था और उन्होंने अपनेको 'राम'का वंशज कहा है। बर्मामें रामायणका आधुनिक अभिनय सन् १७६८में प्रारम्भ हुआ। इस वर्ष बर्माने थाईदेशपर विजय पायी और साथमें यामापवे (यामा राम) अर्थात् रामलीला भी। पहले राम-लीलाका अभिनय २१ रात चलता था, परंतु आजकल यह केवल १२ रात ही होता है।

राम-कथाका प्रसार उत्तरके दुर्गम प्रदेश मंगोलियातक हुआ। यहाँ रामायण तिब्बत होती हुई पहुँची। तुन्हुआङ्की गुफाओंमें क्रमशः ७वीं एवं १०वीं शतीमें दो तिब्बती पाण्डुलिपियाँ मिली हैं, जिनमें रामायणकी दो धाराएँ हैं। १५वीं शतीमें शाङ्शुङ्पा ठोन्ग्याङ् ड्राक्पा ग्यालछन्ने तिब्बती भाषामें छन्दोबद्ध रामायण लिखी। काव्यादर्श और सुभाषित रत्ननिधिकी तिब्बती टीकाओंमें भी रामायण उपलब्ध है। तिब्बतसे रामचरित मंगोलदेश पहुँचा और वहाँसे हिमाच्छादित साइबेरियामें। मंगोलदेशसे दक्षिणकी ओर बढ़ते हुए मंगोल-समुदायोंके साथ-साथ रामायण कल्मकोंके वोल्गा नदीके तटपर फैली, जहाँ आजकल काल्मिक गणराज्य है। काल्मिकोंमें लोककथाके रूपमें यह फैली गयी। काल्मिक भाषाकी रामायणकी एक हस्तलिपि प्रो॰ ए॰ [illegible] नामक

विदेशोंमें श्रीराम-दर्शन (२)

वालि-सुग्रीव-युद्ध पट्टचित्र (थाईलैंड)

सुवर्णमृग-वध-तत्पर श्रीराम (जावाद्वीप)

सीताजीकी अग्निपरीक्षाका पट्टचित्र (थाईलैंड)

हनुमानजी (कम्बोडिया) [१३।५११

भारतीय भाषाओंके कुछ प्रमुख श्रीराम-कथाकार

(लेखक—श्रीरामलाल)

भगवान् श्रीराम अनन्त हैं, उनके गुण भी अनन्त हैं और उनकी कथाओंका विस्तार भी असीम है—

'राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।'

(मानस १ । ३३)

सरस्वती, शेष, शिव, ब्रह्मा, वेद—ये सब पार न पाकर 'नेति नेति'—'ऐसा नहीं', 'ऐसा नहीं' कहते हुए भगवान् श्रीरामका गुणगान किया करते हैं। यद्यपि प्रभु श्रीरामचन्द्रकी प्रभुताको सब अकथनीय ही मानते हैं, तथापि भक्त कवियोंने उसका वर्णन किया है। इसमें उनका उद्देश्य यही रहा है कि भगवान्‌की महिमाका पूरा वर्णन जब सम्भव नहीं है, तब जितना हो सके उतना ही कल्याणकारी है और उसको अपनी वाणीका विषय बनाकर लोकको सचेत बनाया जाय। अतएव भक्तकवियोंने—जिससे जितना बन पड़ा है, उतना उसका गान अवश्य किया है। नीचे हम ऐसे ही महाभाग्यशाली कुछ भक्त कवियोंका पावन स्मरण करते हैं, जिन्होंने भगवान् श्रीरामके स्वरूप, महिमा, प्रभाव, गुण, चरित आदिका वर्णन कर अपनी वाणीको सार्थक किया है तथा जगत्‌के लोगोंको भवसागरसे पार होनेका सहज साधन प्रदान किया है—

'जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥'

(मानस १ । ३२ । १)

(१)
आदिकवि वाल्मीकि

काव्य चिन्तन सार्वभौम, सनातन, अनादि और अनन्त मानवीय-तत्त्व है। भक्तोदयका परम स्थान महर्षि वाल्मीकिका मानस लोक है। भगवती महर्षिके कण्ठदेशसे काव्यका दिव्य आलोकमय प्रसाद रामायणके रूपमें अपने पूर्ण स्वरूपमें प्रकट हो गया। भगवान् रामने रावणका नाश कर मनुष्यकी महिमाका विस्तार किया। भृगुवंशीय वाल्मीकिने उन्हींके यशका काव्यरूपमें वर्णन किया—

रामायणकृतो राजन् रघूणां वंशवर्द्धनः।
वाल्मीकिर्महत् चरितं चक्रे भार्गवसत्तम॥

(मत्स्यपुराण ११ । ५०)

महर्षि वाल्मीकिरचित रामायण निस्संदेह आदिकाव्य है। यह सम्पूर्ण वेदोंकी सम्मतिके अनुकूल है। इसके द्वारा समस्त पापोंका निवारण हो जाता है। यह पुण्यमय काव्य सम्पूर्ण दुःखोंका विनाशक तथा समस्त पुण्यों और धर्मोंका फल देनेवाला है—

रामायणमादिकाव्यं सर्ववेदार्थसम्मतम्।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदुःखनिबर्हणम्॥
समस्तपुण्यफलदं सर्वयज्ञफलप्रदम्॥

(स्कन्दपु०, उत्तर०, रामा० माहात्म्य ५ । ६१-६२)

महर्षि वाल्मीकिने स्वरचित रामायणके चौबीस हजार श्लोकोंके पाँच सौ सर्गोंमें युक्त सात काण्डोंमें रघुवरचरितका वर्णन किया। इस आदिकाव्यमें वर्णित रामचरित्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है—

'चतुर्वर्गप्रदं नित्यं चरितं राघवस्य तु।'

(वाल्मीकि०, उत्तर० १११ । ११)

महर्षि वाल्मीकिने स्वरचित रामायणमें भगवान् विष्णुके रामरूपमें प्राकट्यका विस्तार कर उनकी सम्पूर्ण भगवत्ता—महत्ताका चित्रण किया है। विश्वामित्रने दशरथजीसे रामकी भगवत्ताके बखानमें कहा कि सत्यपराक्रमी राम क्या हैं—यह मैं जानता हूँ, वसिष्ठजी तथा अन्य तपस्वी जानते हैं—

अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्॥
वसिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः।

(वाल्मीकि०, बाल० १९ । १४-१५)

हनुमान्‌जीने रावणकी लङ्कामें घोषणा की कि श्रीराम तीनों लोकोंके स्वामी हैं। देवता, दैत्य, किन्नर, गन्धर्व, नाग तथा यक्ष और विद्याधर भी युद्धमें उनके सामने नहीं ठहर सकते। स्वयं चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा, तीन नेत्रोंसे त्रिपुरनाशक रुद्र और देवताओंके स्वामी इन्द्र संग्राममें उनका सामना नहीं कर सकते। महर्षिजीने हनुमान्‌जीसे भगवान् रामके सामर्थ्यका बखान—

सर्वाँल्लोकान् सुसंहृत्य सभूतान् सचराचरान्।
पुनरेव तथा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः॥

(वाल्मीकि०, सुन्दर० ५१ । ३९)

इसमें महर्षि व्यासदेवको ही सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। अग्निपुराणमें पाँचवेंसे ग्यारहवें अध्यायमें श्रीरामावतारके वर्णनके प्रसङ्गमें उन्होंने सात काण्डोंमें वर्णित श्रीरामायणकी कथाका संक्षिप्त रूप निरूपित किया है। कूर्मपुराणके पूर्वार्धके इक्कीसवें अध्यायमें परम धर्मज्ञ तथा लोकविश्रुत विष्णुस्वरूप भगवान् रामके चरित्रका बड़ा ही युक्तियुक्त वर्णन किया है महर्षि व्यासने। पद्मपुराण तथा स्कन्दपुराण आदिमें भी रामसम्बन्धी साहित्य उपलब्ध होता है।

श्रीमद्भागवतपुराणके नवें स्कन्धके १०वें और ग्यारहवें अध्यायोंमें उन्होंने अत्यन्त प्रेरणाप्रद रूपमें भगवान् रामके पवित्र चरित्र और यशका चिन्तन किया है। व्यासदेवने शुकदेवजीद्वारा राजा परीक्षित्के प्रति कहलवाया है—

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः।
अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः।
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया॥
(श्रीमद्भा० ९।१०।२)

'देवताओंकी प्रार्थनासे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि ही अपने अंशांशसे चार रूप धारण करके राजा दशरथके पुत्र हुए। उनके नाम थे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न।' श्रीरामकी भगवत्ताके बखानमें महर्षि व्यासकृत भागवतपुराणमें श्रीशुकदेवजीकी संस्तुति है—

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयाऽऽत्त-
लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः।
रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः
किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः॥
यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-
पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये॥
(श्रीमद्भा० ९।११।२०-२१)

'भगवान् रामके समान कोई नहीं है, फिर उनसे बढ़कर तो हो ही कैसे सकता है। उन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे ही यह लीलाविग्रह धारण किया था। ऐसी स्थितिमें रघुवंश-शिरोमणि भगवान् रामके लिये यह कोई बड़े गौरवकी बात नहीं है कि उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंसे राक्षसोंका वध कर डाला अथवा समुद्रपर पुल बाँध दिया। शत्रुओंका अन्त करनेके लिये उन्हें बंदरोंकी सहायताकी अपेक्षा भी क्या? यह उनकी लीला ही है। भगवान् रामका निर्मल यश समस्त पापोंको नष्ट कर देनेवाला है। वह इतना फैल गया है कि दिग्गजोंका श्यामल शरीर भी उसकी उज्ज्वलतासे चमक उठता है। बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि राजाओंकी सभामें उसका गान करते रहते हैं। स्वर्गके देवता और पृथ्वीके नरपति अपने कमनीय किरीटोंसे उनके चरणकमलोंका सेवन करते हैं। मैं उन्हीं रघुवंशशिरोमणि भगवान् रामचन्द्रकी शरण ग्रहण करता हूँ।'

महर्षि व्यासने देवीभागवतके तीसरे स्कन्धके २८वेंसे ३०वें अध्यायोंमें श्रीरामके चरित्रका बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे चित्रण किया है। व्यासदेवने जानकीजीके रावणद्वारा हरे जानेके शोकसे संतप्त भगवान्‌के प्रति लक्ष्मणजीकी आश्वासनपरक उक्तिमें अपने हृदयकी निर्मल दृष्टिसे श्रीरामका भक्तिपूर्वक गुणानुवाद कर उनकी भगवत्ता—सर्वज्ञताका चित्रण किया है—

सर्वज्ञोऽसि महाभाग समर्थोऽसि जगत्पते।
किं प्राकृत इवात्यर्थं कुरुषे शोकमात्मनि॥
(श्रीदेवीभा० ३।२९।५४)

महर्षि व्यासद्वारा शब्दाङ्कित भगवान् रामके लीला-चरित्रके चिन्तनसे मन पवित्र होता है, हृदयमें भगवान्‌के प्रति श्रद्धा-भक्तिका अक्षय साम्राज्य स्थापित हो जाता है। उनकी कीर्ति अमिट है।

(२)
कालिदास

महाकवि कालिदासने भारतीय इतिहासके स्वर्णयुगमें ईसाकी लगभग पहलीसे चौथी शतीके मध्यकालमें जन्म लेकर भारतीय संस्कृति और साहित्यकी समृद्धि वृद्धिमें जो योगदान दिया है, वह सर्वथा मौलिक और अप्रतिम है। उनका साहित्य आदिकवि वाल्मीकि और महर्षि व्यासकी भावधारासे सर्वथा अनुप्राणित है। उनके काव्यमर्मके समझना आसान बात नहीं है। कालिदासकी रचनाओंके महान् व्याख्याकार महामति मल्लिनाथका कथन है—

कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा साक्षाद् विदुर्नान्ये तु मादृशाः॥

'कालिदासकी वाणीके सारको केवल तीनने ही समझा है। वे हैं—ब्रह्मा, भारती और स्वयं कालिदास। मैं व्याख्यान करता हुआ भी उनकी वाणीके मर्मको नहीं समझ पाया हूँ।'

प्रति भगवान् रामके अनिर्वचनीय प्रेम, प्रजारञ्जन-तत्परता प्रभृति आदिका बड़ा गम्भीर और मर्मस्पर्शी वर्णन मिलता है।

'उत्तररामचरित' नाटकके प्रथम अङ्कके आरम्भमें ही रामके विनम्र स्वभावका कविने बड़ा मार्मिक विवेचन उन्हींकी उक्तिमें किया है। कञ्चुकीने प्रवेश कर पहले श्रीरामको 'रामभद्र' कहकर तथा तत्पश्चात् ही 'महाराज' रूपमें सम्बोधित किया। रामने कञ्चुकीसे कहा—"मेरे पिताके परिजनगण मेरे लिये 'रामभद्र' शब्दका ही प्रयोग करते हैं। यही सुन्दर है। आप मुझे जिस रूपमें सम्बोधित करते हैं, उसी रूपमें बोला कीजिये।"

'रामः—(सस्मितम्) आर्य ! ननु रामभद्र ! इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य । तद् यथाभ्यस्त-मभिधीयताम् ।' (उत्तररामचरित, अं० १)

श्रीरामकी कुलगुरु वसिष्ठके प्रति श्रद्धा-भक्तिका उनके अष्टावक्रसे निवेदित वचनोंमें समीचीन अभिव्यञ्जन मिलता है। अष्टावक्रने श्रीरामको गुरु वसिष्ठका जब यह संदेश सुनाया कि 'आप तरुण हैं, राज्य भी नया है, प्रजाका ही अनुरञ्जन करना चाहिये; क्योंकि यश ही आपका परम धन है', तब श्रीरामने कहा कि प्रजाको 'प्रसन्न रखनेके लिये चाहे मुझे स्नेह छोड़ना पड़े, दयाके बदले कठोरता अथवा निष्ठुरताको अपनाना पड़े, अपने सुखका त्याग करना पड़े तथा इन सबसे भी अधिक प्रियतमा जानकीतकको भी छोड़ना पड़े तो मुझे इन सबका त्याग करनेमें तनिक भी व्यथा नहीं होगी।'

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥
(उत्तररामचरित १ । १२)

जब दुर्मुखके मुखसे श्रीरामने सीताके प्रति अपवादका श्रवण किया, तब उनका हृदय असह्य वेदनासे परिपूर्ण हो उठा। उन्होंने कहा—'हाय ! इस समय जीवलोक अस्त-व्यस्त हो उठा है। रामके (मेरे) जीवन-धारणके प्रयोजनका अन्त हो गया है। इस समय यह जगत् जीर्ण और शून्य अरण्य-सा हो पड़ा है। संसार निस्संदेह असार है। शरीर ही कष्टसार है। मैं तो आश्रयहीन हो गया हूँ। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? ऐसा तो नहीं है कि केवल दुःखोंको ही सहनेके लिये विधाताने राम (मुझ) को प्राण अर्पित किया था। मेरा प्राण वज्रकीलकी तरह मुझमें स्थिर होकर मेरा हृदय विदीर्ण कर रहा है।'

'हन्त, हन्त ! सम्प्रति विपर्यस्तो जीवलोकः। अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य। शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्। असारः संसारः, कष्टप्रायं शरीरम्। अशरणोऽस्मि। किं करोमि ? का गतिः ?

दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमागतम् ।
मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि ॥
(उत्तररामचरित १ । ४७)

'उत्तररामचरित' नाटकके अन्तमें भगवान् रामकी मङ्गलमयी वाणीमें ध्वनित होता है महाकवि भवभूतिका रामायणी कथामें अनुराग। महर्षि वाल्मीकिके यह पूछनेपर कि 'आपका क्या प्रिय कार्य करूँ', भगवान् रामने उनकी रामायणगाथाकी महत्ता प्रकट करते हुए निवेदन किया—

पाप्मभ्यश्च पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा
मङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गङ्गेव च ।
तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः
शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतप्रज्ञस्य वाणीमिमाम् ॥
(उत्तररामचरित ७ । २१)

'माता और जननीकी तरह मङ्गलविधायिनी यह मनोहर रामकथा पापका नाश करके श्रेयकी वृद्धि करनेवाली है। परिपक्वबुद्धि तथा शब्दब्रह्मज्ञाता कविकी इस अभिनययोग्य वाणीकी पण्डितजन पर्यालोचना करें।'

(५)
क्षेमेन्द्र

महाकवि क्षेमेन्द्रने ईसाकी ग्यारहवीं शताब्दीमें कश्मीरमें जन्म लिया था। संस्कृत साहित्यके इतिहासमें उनकी प्रसिद्ध कृति 'रामायणमञ्जरी'को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उन्होंने १०३७ ई०में श्रीरामायणमञ्जरीका प्रणयन किया था। 'दशावतारचरित' भी उनका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी रचना उन्होंने १०६६ ई०में की थी। इस ग्रन्थमें भी उन्होंने रामावतारके प्रसङ्गमें भगवान् रामकी महत्ताका वर्णन किया है। उन्होंने [illegible] की रचना [illegible] की थी। उन्होंने समस्त चरितोंके [illegible] भगवान् [illegible] की [illegible] की है—

रूप न रंग न रेख बिसेष अनादि अनंत जु बेद न गावै।
केसव गाधि के नंद हमें वह ज्योति सो मूरतिवंत दिखावै॥

(रामचन्द्रिका १ । २८)

"विश्वामित्रजीने हमें वही दिव्य ज्योति साक्षात् दिखा दी, जिसका दर्शन करनेके लिये सिद्धलोग समाधि लगाते हैं, योगियोंने साधना करके जिसको साकाररूपमें कभी नहीं देखा, जो सदा महादेवजीके *मन-समुद्रमें ही निवास करती है,* जिसका ठीक-ठीक वर्णन करनेमें ब्रह्मा भी क्षम नहीं हैं, जिसका न रूप है न रंग है और न कोई चिह्न अथवा आकार-प्रकार ही है। वेदोंने जिसका वर्णन 'अनादि और अनन्त' कहकर किया है। निर्गुण, निराकार भगवान् विश्वामित्रजीकी कृपासे रामरूपमें हमारी दृष्टिमें पड़ गये।"

'रामचन्द्रिका'के छठे प्रकाशमें ही केशवदासजीने श्रीरामके बाहोलास नख-शिखका वर्णन किया है तथा सीताजीकी शोभा निरखी भी है। 'रामचन्द्रिका'में केशवदासके राम-कथा-वर्णन-क्रममें कहीं-कहीं अनुपम उक्ति-वैचित्र्यका दर्शन होता है, जो सर्वथा मौलिक है और उनके अद्भुत काव्याचार्यत्वका परिचायक है। रावण सीताको हरकर ले जा रहा था। सीताजीने एक पर्वतपर पाँच बन्दरोंको बैठे देखा। उन्होंने अपने चरण-कमलोंके नूपुर, जो सुवर्ण-निर्मित थे तथा जिनमें नीलम जड़े हुए थे, अपनी ओढ़नीमें बाँधकर भूमिपर फेंक दिये। केशवदासजीका कथन है कि 'मुझे तो ऐसा लगता है— मानो सुग्रीवके घर राजलक्ष्मीका प्रस्थान हो गया हो।' सुग्रीवको थोड़े दिनोंके बाद ही बालीके वधके उपरान्त किष्किन्धाकी राज्यश्री मिलनेवाली थी—इस प्रसङ्गकी ही ओर कविके उपर्युक्त कथनका लक्ष्य है।

लंका के परदाह के नूपुर-पट मनि मानु।
मनहु पठाये सुग्रीव-घर राजश्री प्रस्थानु॥

(रामचन्द्रिका १२ । १५)

केशवदासजीने रामराज्यके रूपका एक दोहेमें बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। उनकी उक्ति है—'श्रीरामके राज्यकालमें नरलोककी पृथ्वी, नागलोक तथा सुरलोकसहित सभी लोकोंकी सम्पत्ति पृथ्वीपर निवास करती थी।'

नरलोक सुरलोकमय नरलोक के साज।
नागलोकनि प्रति मनी रामचन्द्र के राज॥

(रामचन्द्रिका २८ । १९)

रामराज्यमें सभी लोग सुखी थे। अपनी 'रामचन्द्रिका'का समाप्त करते हुए केशवदासजीने उसके श्रवण और पाठके फलके सम्बन्धमें कहा है—

अशेष पुन्य पाप के कलाप आपने बहाय।
विदेह राज ज्यों सदेह भक्त राम को कहाय॥
लहै सुभुक्ति लोक लोक अंत मुक्ति होहि ताहि।
कहै, पढ़ै, सुनै, गुनै, जु रामचन्द्र-चन्द्रिकाहि॥

(रामचन्द्रिका १९ । १९)

इस पठ-श्रवणफल निर्धारणमें अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामके प्रति उनकी भक्ति और निष्ठाका परिचय मिलता है। महाकवि केशवदासका कथन है कि "जो व्यक्ति इस 'रामचन्द्रिका'को पढ़ेगा, पढ़ेगा, सुनेगा और गुनेगा वह अपने पाप-पुण्य—सबसे परे होकर राजा जनककी तरह इसी देहसे 'रामभक्त' कहलाता हुआ भुक्ति-मुक्तिकी यथावत् प्राप्ति करेगा।"

(१२)

रामानुजन् एषुत्तच्छन्

महाकवि रामानुजन् एषुत्तच्छन् रामपदके गम्भीर रसिक थे। ये मध्यकालीन मलयालम साहित्यके महान् संतकवि और धर्मगुरुके रूपमें प्रसिद्ध थे। उन्होंने मलयालम भाषामें रामकथाका वर्णन कर असंख्य लोगोंकी श्रद्धा अर्जित की। संस्कृत भाषामें रचित 'अध्यात्मरामायण'को उन्होंने मलयालममें सुरचित 'अध्यात्मरामायणम्'का आधार बनाया। केरलमें घर-घरमें 'अध्यात्मरामायणम्' का पठन-पाठन होता है। ये रामचरितमानसके रचयिता गोस्वामी तुलसीदासके समकालीन थे।

एषुत्तच्छन्ने श्रीविष्णुके अवतार भगवान् रामकी भगवत्ता बड़ी भक्ति और निष्ठासे महत्त्वगान किया है। श्रीरामने उन्होंने देवर्षि नारदके प्रति एक स्थलपर कहलाया है—

नारीकर्णोत्सवम् वारदूत तम्बुरम्।
विम्बोष्ठमुद्रैत मंदहासं वर्ण
नलिन् मुनिवेषमोदु कर्णोद्भवम्॥
पूर्वम् निगमाधीशं तव्यम्
नारदेतु योगम् मुनिकुलपुंगवधे।
मोनवे चरणमूलमाश्रित योगम्
गाधिपाल्यभावनं महत्त्वम्॥

"अध्यात्मरामायणकी [illegible] है कि
मुनीन्द्र [illegible]

अमुरक्तिमिंतु ममतिनितु मे-
श्रीधरिरे इमरणर मारक-
रामरेनिसिरे अमररेंदुनमुरु रघुरामु ॥

युद्धमें सामना करनेवालेको मारना, शरणागतजनोंकी रक्षा करना, अधर्मको दूरकर पृथ्वीमें धर्मकी प्रतिष्ठा करना राजाओंका कर्तव्य है। ऐसा न करके व्यर्थ गड़बड़ानेवाले जगत्में क्या राजा कहलानेयोग्य हैं? रामने ये वचन हँसते हुए कहे।'

महाकवि कुमार वाल्मीकिने 'तोरवे-रामायण'में भगवान् रामके परम पवित्र यशका गानकर कन्नड-साहित्यकी बड़ी अमूल्य सेवा की। उनकी रामभक्ति धन्य थी।

(१५)

रहीम खानखाना

रहीम खानखाना मध्यकालीन भारतीय इतिहासके सम्राट् अकबरद्वारा पोषित राजनीतिक औदार्य-वृक्षके सात्त्विक फल थे। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने भगवान् राम और कृष्णके प्रति जो श्रद्धा प्रकट की है, वह मध्यकालीन आध्यात्मिक चेतनाकी प्रमुख आधार-शिलाओंमें विशिष्ट स्थान रखती है।

गोस्वामी तुलसीदास और महात्मा सूरदासद्वारा प्रवर्तित भगवान् राम और श्रीकृष्णकी सगुण भक्तिधारासे रहीमका कविहृदय यथेष्ट प्रभावित था। गोस्वामी तुलसीदास और रहीम—एक दूसरेसे विशेष प्रभावित थे।

रहीम खानखानाका जन्म १५५९ ई०में हुआ था तथा मृत्यु १६२७ ई०में हुई। उन्होंने श्रीराम-कृष्णकी शरणागतिसे जीवनको अभय कर लिया। उन्होंने मनको समझाया—

भजि मन राम सियापति, रघुकुल ईस।
दीनबन्धु दुख टारन, कौसलधीस॥

रहीम खानखानाने भगवान् रामकी प्रभुता, शरणागत-वत्सलता और लीला आदिका चिन्तन बड़े निष्पक्ष और निर्मल हृदयसे किया है। उन्होंने भगवान्से अपना उद्धार करनेकी विनम्र प्रार्थना की है—

बेद पुरान बखानत अधम उधार।
केहि कारन करुनानिधि करत बिचार॥

भगवान् रामके चरणोंमें रहीम खानखानाने अटल विश्वास और प्रगाढ़ श्रद्धा समर्पितकर शरणागतिकी दीक्षा ली। उनकी सुदृढ़ धारणा थी कि श्रीरामकी कृपासे ही पूर्ण परमगतिकी प्राप्ति होती है तथा सारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं—

रहिमन धोखे भाव से, मुख से निकसे राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम॥

उन्होंने स्पष्ट कहा कि 'संसार-सागरसे पार उतरनेका एकमात्र उपाय श्रीरामकी शरणागति ही है। वे करुणामय प्रभु संसारकी विषय-वासनाओंसे प्राणीको मुक्तकर उसे अपनी भक्ति प्रदानकर निर्भय कर देते हैं।' उनका कथन है—

गहि सरनागति राम की भवसागर की नाव।
रहिमन जगत-उधार कर और न कछू उपाव॥

रहीम खानखानाने कहा कि 'करुणामय रघुवीर ही हमारे समस्त दुःखोंका नाश करते हैं। जगत्के लोग तो हमारे दुःखी होनेकी बात जानकर हँसते हैं, उनसे तो कुछ अपेक्षा ही नहीं किया जा सकता।'

दुख नर सुनि हाँसी करैं, धरत रहीम न धीर।
कही सुनै, सुनि-सुनि करै, ऐसे वे रघुबीर॥

रहीम खानखानाने भगवान् रामकी लीलाओंका स्मरणकर अनेक दोहोंकी रचना की, जिनमें उनकी भक्तिभावनाका स्पष्ट चित्रांकन उपलब्ध होता है। श्रीरामके लीला-प्रसंगोंके स्मरणसे वे मानव-जीवनकी समस्याओंका समाधान प्रस्तुत करते हैं। श्रीरामके प्रति भरतजीके प्रगाढ़ प्रेमके वर्णनमें उनकी उक्ति है कि 'गुरुकी—बड़ेकी आज्ञा होनेपर भी अनुचित वचन नहीं मानना चाहिये। श्रीरामने भरतजीको अयोध्या लौटकर राज्य सँभालनेका आदेश दिया, भरतजीने यह वचन नहीं माना। वे उनकी चरण-पादुकाको माध्यम बनाकर, नन्दिग्राममें निवास कर, तपस्यामय जीवन अपनाकर अयोध्याका राज्य-कार्य चलाने लगे और इस कार्यसे भरतजीका सुयश बढ़ गया'—

अनुचित बचन न मानिये जदपि गुराइसु गाढ़ि।
है रहीम रघुनाथ तें, सुजसु भरत को बाढ़ि॥

श्रीरामके चित्रकूट निवासके प्रसंगमें उनका निवेदन होता यह स्पष्ट करता है कि जिसपर विपत्ति पड़ती है, वही चित्रकूटमें आता है।'

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध-नरेस।
जा पर बिपदा परत है, सो आवत यह देस॥

·····जो रावण अबसे शरणागत बनी हेत ।
सर्व मती अयोध्या अधीश पने वैभवराज समेत ॥
हूँ अधीश तपवनमों जाइ, राज करेंगे रावण राम ।
पन विभीषण ने जे लंक आपी, ते मिथ्या नव थास ॥

(गिरिधर-रा०, सुन्दर० २० । ७-८)

'यदि शरणागत होकर रावण आयेगा तो उसे मैं अपनी अयोध्या समस्त वैभव और राज्यके साथ प्रदान कर दूँगा। मैं वनमें जाकर तप करूँगा और राजा रावण राज्य करेगा। पर मैंने विभीषणको जो लङ्का दी है, वह मिथ्या नहीं होगी। लङ्का उन्हींकी रहेगी।'

गिरिधरकृत रामचरित्र सुधारसका समुद्र है। यह परम पवित्र है। इस समुद्रका पार पाना असम्भव है। इसके अध्ययन तथा पठन-पाठनसे दैहिक, दैविक और भौतिक त्रास शमन हो जाता है। कविकी स्वीकृति है—

श्रीरामचरित्र सुधारससिन्धु, पावन सुखद अपार जी।
शमन त्रिताप त्रिविध परिपूरण, अगम रत्न नहिं पार जी॥

(गिरिधर-रा०, उत्तर० १११ । १)

रामकथाका गिरिधरजीने रामायणके रूपमें वर्णन कर अपनी कीर्ति गुजराती-साहित्यमें अमर कर दी। उनकी उक्ति है—

ए रामकथा शुद्ध भाव धरी जे सुणे-भणे नर-नार जी।
आ लोक भवे ते भोग भोगवे अंते हरिपद सार जी॥

(गिरिधर-रा०, उत्तर० १११ । ५)

'इस रामकथाको जो स्त्री-पुरुष पवित्र भाव धारकर भक्तिसे श्रवण-अध्ययन करेंगे, उनको इस लोकमें इष्ट-भोग-सुखकी प्राप्ति होगी तथा अन्त समयमें श्रीरामके पदमें स्थान मिलेगा।'

हिंदीके मध्यकालीन कतिपय रामभक्त कवि

(लेखक—डॉ० श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, डी० लिट्०)

गोस्वामी तुलसीदासजीकी कृतियोंका दिव्य प्रभाव शताब्दियोंतक रामकाव्यके अध्येताओंको इतना मन्त्रमुग्ध किये रहा कि 'मानस' और 'विनय' के अतिरिक्त रामचरित और रामभक्तिविषयक रचनाएँ अन्य भक्त कवियोंद्वारा भी लिखी गयी हैं, इस ओर उनका ध्यान ही न गया। इसके परिणामस्वरूप तुलसीके पूर्ववर्ती, समकालीन तथा परवर्ती युगमें निर्मित रामकाव्यका वास्तविक स्वरूप हिंदी-संसारके समक्ष प्रस्तुत न हो सका। 'रामभक्तिमें रसिक-सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थमें इन पङ्क्तियोंके लेखकने पूर्वमध्यकालीन रामकाव्यधारामें रसिक-भावनाके विकास-सूत्रोंका विवेचन करते हुए उसका उद्गमस्थल यहीं, यतियों और संतोंकी पुण्यभूमि राजस्थान बताया था और प्राप्त तथ्योंके आधारपर यह मत व्यक्त किया था कि १७वीं शतीमें इस सम्प्रदायका सम्यक् प्रसार गलताजीमें ही हुआ। इस दिशामें कार्य करते हुए मुझे कुछ दिनों पूर्व 'प्राच्यविद्या-शोध प्रतिष्ठान', जोधपुरसे 'पद-मुक्तावली' नामक एक प्राचीन हस्तलेख (सं० १८८२) प्राप्त हुआ है, जिससे हमारी उक्त धारणाका समर्थन होता है।

पदमुक्तावलीमें हिंदीकी निर्गुण तथा सगुण भक्ति-धाराके अनेक प्रसिद्ध तथा अप्रसिद्ध कवियोंकी रामभक्ति-सम्बन्धी जो रचनाएँ संकलित हैं, उनमेंसे कुछ अबतक सर्वथा अज्ञात रही हैं। ये चार वर्गोंमें विभाजित की जा सकती हैं—

(क) निर्गुण-रामभक्ति-विषयक रचनाएँ।

(ख) निर्गुण-भक्तिमार्गी संतोंकी सगुण-रामभक्ति-विषयक रचनाएँ।

(ग) सगुण रामभक्ति-शाखाके प्राचीन कवियोंकी रचनाएँ।

(घ) कृष्णभक्ति-शाखाके प्रसिद्ध भक्तोंकी रामोपासना-विषयक रचनाएँ।

(क) निर्गुण-रामभक्तिविषयक रचनाएँ

संतसाहित्य-परम्परामें यों तो रामानन्दीय आदि सम्प्रदायोंमें प्रयुक्त होनेसे प्रायः सभी प्रमुख ईश्वर-वाचक शब्दोंका प्रयोग मिलता है, किंतु उनका सर्वाधिक प्रिय नाम 'राम' ही रहा है। यही इनके निर्गुण ब्रह्मका वास्तविक पर्याय है। पदमुक्तावलीमें उपलब्ध पदोंमें इस रामकी जो व्यञ्जना मिलती है, वह निर्गुणपन्थी भक्तोंकी भावनाके अनुरूप ही है—

……जो रावण अपने शरणागत करी देव ।
सर्व भरी अयोध्या अर्पेंगा घने वैभवराज समेत ॥
हूँ करीश तपजनमा यह, राज करहीं रावण राम ।
पन विभीषण ने जे लंका आपी, ते मिथ्या नव थाय ॥

(गिरिधर-रा०, सुन्दर० २० । ७-८)

‘यदि शरणागत होकर रावण आयेगा तो उसे मैं अपनी अयोध्या समस्त वैभव और राज्यके साथ प्रदान कर दूँगा। मैं वनमें जाकर तप करूँगा और रामा रावण राज्य करेगा। पर मैंने विभीषणको जो लङ्का दी है, वह मिथ्या नहीं होगी। लङ्का उन्हींकी होगी।’

गिरिधरकृत रामचरित सुधारसका समुद्र है। यह परम पवित्र है। इस समुद्रका पार पाना असम्भव है। इसके श्रवण तथा पठन-पाठनसे दैहिक, दैविक और भौतिक तापका शमन हो जाता है। कविकी स्वीकृति है—

श्रीरामचरित्र सुधारससिन्धु, पावन सुखद अपार जी।
शमन त्रिताप त्रिलोक परिपूरण, करत रत्न नहिं सार जी॥

(गिरिधर-रा०, उत्तर० १११ । १)

रामकथाका गिरिधरजीने रामायणके रूपमें वर्णन कर अपनी कीर्ति गुजराती-साहित्यमें अमर कर दी। उनकी उक्ति है—

ए रामकथा शुद्ध भाव धरी जे सुणे-भणे नर-नार जी।
आ लोक मधे ते भोग भोगवे अंते हरिपद सार जी॥

(गिरिधर-रा०, उत्तर० १११ । ५)

‘इस रामकथाका जो स्त्री-पुरुष पवित्र भाव धारण करके श्रवण-अध्ययन करेंगे, उनको इस लोकमें इष्ट-भोग-सुखकी प्राप्ति होगी तथा अन्त समयमें श्रीरामके पदमें स्थान मिलेगा।’

हिंदीके मध्यकालीन कतिपय रामभक्त कवि

(लेखक—डॉ० श्रीभगवतीप्रसादसिंहजी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)

गोस्वामी तुलसीदासजीकी कृतियोंका दिव्य प्रकाश पर्यवेक्षक रामकाव्यके अध्येताओंको इतना मन्त्रमुग्ध किये रहा कि ‘मानस’ और ‘विनय’ के अतिरिक्त रामचरित और रामभक्तिविषयक रचनाएँ अन्य भक्त कवियोंद्वारा भी लिखी गयी हैं, इस ओर उनका ध्यान ही न गया। इसके परिणामस्वरूप तुलसीके पूर्ववर्ती, समकालीन तथा परवर्ती युगमें निर्मित रामकाव्यका वास्तविक स्वरूप हिंदी-संसारके समक्ष प्रस्तुत न हो सका। ‘रामभक्तिमें रसिक-सम्प्रदाय’ नामक ग्रन्थमें इन पङ्क्तियोंके लेखकने पूर्वमध्यकालीन रामकाव्यधारामें रसिक भावनाके विकास-सूत्रोंका विवेचन करते हुए उसका उद्गमस्थल यतियों, सतियों और संतोंकी पुण्यभूमि राजस्थान बताया था और प्राप्त तथ्योंके आधारपर यह मत व्यक्त किया था कि १७वीं शतीमें इस सम्प्रदायका सम्यक् प्रसार ब्रजभूमिमें ही हुआ। इस दिशामें कार्य करते हुए मुझे कुछ दिनों पूर्व ‘प्राच्यविद्या शोध प्रतिष्ठान, जोधपुर’से ‘पद-प्रसङ्गमाला’ नामक एक प्राचीन हस्तलेख (सं० १८८२) प्राप्त हुआ है, जिससे हमारी उक्त धारणाका समर्थन होता है।

प्रस्तुत हस्तलेखमें हिंदीके निर्गुण तथा सगुण भक्ति-धाराके अनेक प्रसिद्ध तथा अप्रसिद्ध कवियोंकी रामभक्ति-सम्बन्धी जो रचनाएँ संकलित हैं, उनमेंसे कुछ अद्यावधि सर्वथा अज्ञात रही हैं। वे चार वर्गोंमें विभाजित की जा सकती हैं—

(क) निर्गुण-रामभक्ति-विषयक रचनाएँ।

(ख) निर्गुण-भक्तिमार्गी संतोंकी सगुण रामभक्ति-विषयक रचनाएँ।

(ग) सगुण रामभक्ति-धाराके प्राचीन कवियोंकी रचनाएँ।

(घ) कृष्णभक्ति-धाराके प्रसिद्ध भक्तोंकी रामोपासना-विषयक रचनाएँ।

(क) निर्गुण-रामभक्तिविषयक रचनाएँ

संतकाव्य-परम्परामें यों तो समकालीन धर्म-सम्प्रदायोंमें प्रयुक्त होनेवाले प्रायः सभी प्रमुख ईश्वर-वाचक शब्दोंका प्रयोग मिलता है, किंतु उनमें सर्वाधिक प्रिय नाम ‘राम’ ही रहा है। यही उनके निर्गुण ब्रह्मका वास्तविक पर्याय है। ज्ञानमार्गी शाखाके उत्तरीय कवियोंने इस शब्दकी जो व्याख्या लिखी है, वह निर्गुणमार्गी भक्तोंकी भावनाके अनुरूप ही है—

भक्ति और निर्गुण-साधनासे सम्बद्ध हैं। आचार्य पं० परशुराम चतुर्वेदीने इन्हें एक ही व्यक्तिकी रचना माना है। सूरपूर्ववर्ती व्रजभाषा-साहित्यका विवेचन करते हुए डॉ० शिवप्रसादसिंहने भी इस विषयमें अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'गीत-गोविन्दके आधारपर यह कहना ठीक न होगा कि जयदेव निर्गुण-भक्तिसे प्रभावित काव्यरचना नहीं कर सकते। निर्गुण और सगुण भक्तिका मध्यकालीन विभेद भी १२वीं शतीके जयदेवके निकट कोई महत्त्व नहीं रखता।"

जयदेव किस सम्प्रदायके अनुयायी थे, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। गौड़ीय वैष्णव उनके गीत-गोविन्दको सर्वाधिक महत्त्वका प्रेरणा-ग्रन्थ मानते हैं। विष्णुस्वामी-मतानुयायी उनकी गणना अपनी आचार्य-परम्परामें करते हैं और निम्बार्क-मतके संत वृन्दावनवासी मधुरानन्दनदेवको उनका गुरु बताते हैं। इनमें सत्य जो भी हो, इतना निश्चित है कि गीत-गोविन्दकी भावभूमि मध्ययुगीन कृष्णभक्ति-सम्प्रदायोंद्वारा प्रचारित सिद्धान्तोंके मेलमें ही है। कहा जाता है कि इन्होंने वृन्दावन और जयपुरकी यात्राएँ भी की थीं।

गुरुग्रन्थसाहबमें संकलित इनके एक पदसे ज्ञात होता है कि उसका रचयिता रामनामकी महिमासे परिचित तथा योगसाधना-निरत भक्त है। गीत-गोविन्दके दशावतार-वन्दनावाले श्लोकमें दशमुखसंहर्ता रामका स्मरण इनकी उदार वैष्णव भावनाका द्योतक है। ऐसी स्थितिमें पदमुक्तावलीमें संकलित रामभक्तिविषयक पद इन्हींकी रचना हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

रामकि मे गौहैंगे।
गौहैंगे रस पैहैंगे॥
मेपीचंदन हरि हरि वंदन, रघुपति जमि भावैंग धरेंग॥
घनश्याम मनोहर राजो, हैया हौं निहारैंगे।
पुण्डरीक प्रियद भावती हरि पूजा निहारैंगे।
रत्नेश राम-नाम जपि रसनौ, जमपी तम निवारैंगे॥
समदि दूरि बैसन पूर्वै, हरि चरण दिन पखैंगे।
कन जयदेव जन्म धनि ताको, जप निर्दैं, पुर तारैंगे॥

(२) ज्ञानदेव (सं० १३३२-१३५३)—ज्ञानदेव (ज्ञानेश्वर) महाराष्ट्रके संतोंमें सर्वोच्च स्थानके अधिकारी हैं। इनके पिता विट्ठल पंत, श्रीआफ्रेक्टरके अनुसार स्वामी रामानन्दके शिष्य थे। और स्वामीजीके ही आशीर्वादसे इन्हें चार संतानों—निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाई—की प्राप्ति हुई थी। कालान्तरमें ये चारों ही वारकरी-सम्प्रदायके प्रधान स्तम्भ हुए। इनमेंसे प्रथम निवृत्तिनाथको ज्ञानदेवके गुरु होनेका सुयोग प्राप्त हुआ। नाभादासने इनका सम्बन्ध विष्णुस्वामी-सम्प्रदायसे स्थापित किया है। यदि इससे उनका तात्पर्य भागवतधर्म अथवा वैष्णव-भक्तिधारासे है तो इसे स्वीकार करनेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती; क्योंकि वारकरी-मत महाराष्ट्रमें भागवत सम्प्रदायका ही प्रतिरूप माना जाता है। परंतु यदि इस मान्यताके आधार ज्ञानदेवका आचार्य विष्णुस्वामीकी परम्परासे सीधा सम्बन्ध मानते हैं तो महाराष्ट्रीय सूत्रोंसे प्राप्त तथ्योंसे इसका सामञ्जस्य स्थापित नहीं होता। ज्ञानदेवकी रचनाओंपर नाथपन्थ और अद्वैतमतका प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। इनकी जो हिंदी रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं, वे इसी विचारधारासे ओतप्रोत हैं। किंतु पदमुक्तावलीमें संगृहीत दोनों पद सगुण रामभक्तिके हैं। मेरा यह विचार है कि संत ज्ञानदेव जिस युगमें हुए थे, उस समय अध्यात्मसाधनाके क्षेत्रमें निर्गुण-सगुण भक्ति-भावनामें इतना भेद नहीं माना जाता था, जितना १६वीं शती और उसके बाद हुआ। जयदेव, नामदेव आदि संतोंकी रचनाएँ इस अभेद-स्थितिकी द्योतक हैं। इसके अतिरिक्त विठोबाके माध्यमसे प्राप्त रामभक्तिके संस्कार, वारकरी-सम्प्रदायको विठ्ठलरूपमें सिद्ध वैष्णवाचारमें आस्था तथा नामदेवके साथ की गयी उत्तरी भारतकी तीर्थयात्रा आदि तत्त्व भी ज्ञानदेवको सगुणोपासनाकी ओर आकृष्ट करनेमें सहायक हुए होंगे।

पदमुक्तावलीमें इनके दो पद संगृहीत हैं—एकमें सीतारामकी संयोग-क्रीडाका संकेत है, दूसरेमें ध्यान-स्थितिका वर्णन।

(३) त्रिलोचन (१४वीं शती विक्रमी)—ये संत ज्ञानेश्वरके शिष्य और नामदेवके गुरुभाई थे। मकॉलिफके अनुसार इनका जन्म ११[illegible]ई० में हुआ था। आदिग्रन्थमें इनके चार पद संकलित हैं, जिनमें रामनामकी महिमाके वर्णनके साथ ही समकालीन साधनाओंमें उपदेश बढ़ती हुई बहिर्मुखी प्रवृत्तिकी निन्दा की गयी है। त्रिलोचनकी साधनाभूमि पंढरपुर थी।

(ग) सगुण रामभक्ति-धाराके कवियोंकी रचनाएँ

[illegible] पूर्ववर्ती, [illegible] सगुण रामभक्तिधाराके निर्माणमें [illegible]

राम बराम पहना मखमली, मग चंदन कौ साजु ।
हीरा, मणि, पट की डोरी, रतन जटित ताजु ॥
जै कानें-कुंडल, कर गहे, नील कमल तन सोहै ।
घुंघर हिलक अलक घुंघुराली, मृदुल हास मन मोहै ॥
सत-पर [illegible] चारु अजोध्या पावन-परम-निवास ।
[illegible] लोक मन पावन, भक्ति परमानंददास ॥

(४) तानसेन (सं० १५८८—१६४६)—संगीत जगत्में तानसेनकी उपलब्धियाँ सर्वविदित हैं, परंतु ये एक उच्चकोटिके कवि और भक्त भी थे, यह कम लोग जानते हैं। वार्ता-साहित्यसे ज्ञात होता है कि ये अष्टछापके संस्थापक गोस्वामी विट्ठलनाथ, भक्त सूरदास और गोविन्द स्वामीके घनिष्ठ सम्पर्कमें रहे थे और श्रीनाथजीकी इन्होंने कुछ समयतक कीर्तन-सेवा भी की थी। ध्रुपद-शैलीकी शिक्षा इन्होंने स्वामी हरिदास और गोविन्द स्वामीके सांनिध्यमें प्राप्त की थी।

तानसेनकी जो रचनाएँ प्राचीन काव्य-संग्रहोंमें मिलती हैं, उनमें वैष्णवभक्तोंकी परम्परानुसार शिव-गणेशादि देवोंकी वन्दनाके साथ ही श्रीकृष्णके रूपमाधुर्यपरक तथा श्रीरामवर्णन-विषयक पदोंका बाहुल्य है। इससे उनका साम्प्रदायिक भक्त होना समर्थित होता है।

(५) परशुरामदेवाचार्य (१७वीं शती विक्रमी)—ये निम्बार्क-सम्प्रदायके आचार्य हरिव्यासदेवके प्रधान शिष्योंमें थे। इनका जन्म नारनौलके समीप एक ब्राह्मणके घर हुआ था। प्रसिद्ध है कि गुरुकी आज्ञा मानकर इन्होंने सलेमाबादके अत्याचारी मुसल्मान फकीर सलीमशाहको अपनी सिद्धियोंसे परास्त किया था और उस स्थलमें अपनी गद्दी स्थापित की थी। इससे यह स्थान 'परशुरामपुरी'के नामसे भी जाना जाने लगा। आजतक यह निम्बार्क सम्प्रदायके प्रमुख पीठके रूपमें प्रतिष्ठित है। इनका गोलोकवास सं० १६८०में हुआ।

परशुरामदेवाचार्य ब्रह्मके निर्गुण, सगुण तथा रामकृष्णादि रूपोंमें भेद नहीं रखते थे। यह इनकी मुख्य कृति 'परशुराम-सागर'में संकलित रचनाओंसे स्पष्ट हो जाता है। इनके कुछ फुटकर पद यत्र-तत्र प्राचीन संग्रहोंमें प्राप्त होते हैं। इनसे इनकी भक्तिके स्वरूपपर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

(६) नन्ददास (१७वीं शती विक्रमी)—ये गो० विट्ठलनाथके शिष्य और अष्टछापके प्रमुख कवि थे। इनका दीक्षाकाल सं० १६०२ माना जाता है। इनका जो वृत्त उपलब्ध है, उससे ज्ञात होता है कि वल्लभमतमें आनेसे पूर्व ये रामभक्त थे और प्रारम्भिक अवस्थामें इन्होंने गोस्वामी तुलसीदासके साथ काशीके वैष्णव विद्वान् शेष सनातनसे विद्याध्ययन किया था। खोजमें प्राप्त 'श्रीमत् तुलसीदास स्वगुरुभ्राता पद बंदे' पंक्तिवाले छप्पयसे यह विदित होता है कि गुरुभ्राता तुलसीकी ही कृपासे इनके हृदय-नेत्र खुले और आराध्यकी माधुर्यकेलिके रसानन्दपानका सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसमें सत्य जो भी हो, अबतक उपलब्ध इनके पदोंसे इसमें संदेह नहीं रह जाता कि रामचरितवर्णनमें इनकी रुचि थी और रामावतारमें श्रद्धा। 'नन्ददास-ग्रन्थावली'में संगृहीत पदोंसे इसकी पुष्टि होती है।

(७) तत्त्ववेत्ता (१७वीं शती विक्रमी)—ये परशुरामदेवाचार्यके शिष्य थे। इनका आविर्भाव मारवाड़में जयतारणके निकटवर्ती [illegible] नामक गाँवके एक दाधीच ब्राह्मणपरिवारमें हुआ था। इनका नाम टीकमदास था। कालक्रमसे असाधारण आध्यात्मिक उपलब्धियोंके कारण ये 'तत्त्ववेत्ता' नामसे प्रसिद्ध हो गये। जोधपुरनरेशने इनके निमित्त सं० १६६६में गोपालद्वारा मन्दिरका निर्माण जयतारणमें कराया था। इस आधारपर इनका आविर्भावकाल १७वीं शतीका पूर्वार्ध ठहरता है।

पदमुक्तावलीके ये पद मध्यकालके धार्मिक पुनर्जागरणमें रामोपासनाका महत्त्वपूर्ण योगदान तथा समन्वयात्मक भक्ति-सम्प्रदायोंमें उसकी अन्तर्धारा [illegible] व्यक्त करते हैं। इनके साथ ही ये इस तथ्यके भी द्योतक हैं कि रामभक्ति-धारामें रीतिकालकी अपनी परम्परा निर्गुण तथा सगुण भक्ति-सम्प्रदायोंकी भाँति गोस्वामी तुलसीदासके आविर्भावके पूर्वसे ही चली आ रही थी। इसकी तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ थीं—ऐश्वर्यपरक, माधुर्यपरक और दार्शनिक। तुलसीको ये तीनों [illegible] रिक्थरूपमें मिले थे। उनमें ऐश्वर्य तथा दार्शनिकताकी प्रधानता है, माधुर्यपक्ष गौण है। किंतु उत्तर-मध्यकालीन रामचरितमें माधुर्यतत्त्व ही प्रधान हो गया। [illegible] उन्नीसवीं शतीमें लिखित विशाल [illegible] इसका प्रमाण है। पदमुक्तावलीमें संकलित [illegible] पूर्वार्धपर प्रकाश [illegible] इस भावधाराके प्रारम्भके [illegible] हैं।

पुण्योदयो महासारः पुराणपुरुषोत्तमः ।
स्मितवक्त्रो मितभाषी पूर्वभाषी च राघवः ॥
अनन्तगुणगम्भीरो धीरोदात्तगुणोत्तरः ।
मायामानुषचारित्रो महादेवाभिपूजितः ॥
सेतुकृज्जितवारीशः सर्वतीर्थमयो हरिः ।
श्यामाङ्गः सुन्दरः शूरः पीतवासा धनुर्धरः ॥
सर्वयज्ञाधिपो यज्वा जरामरणवर्जितः ।
शिवलिङ्गप्रतिष्ठाता सर्वाघगणवर्जितः ॥
परमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः ।
परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परात्परः ॥
परेशः पारगः पारः सर्वभूतात्मकः शिवः ।
इति श्रीरामचन्द्रस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥
गुह्याद्गुह्यतरं देवि तव स्नेहात् प्रकीर्तितम् ॥

(पद्म०, उत्त०, २१८ । २९-४८)

१-ॐ श्रीरामः-जिनमें योगीजन रमण करते हैं, ऐसे सच्चिदानन्दघनस्वरूप श्रीराम अथवा सीतासहित राम, २-रामचन्द्रः-चन्द्रमाके समान आनन्दमयी एवं मनोहर राम, ३-रामभद्रः-कल्याणमय राम, ४-शाश्वतः-सनातन भगवान्, ५-राजीवलोचनः-कमलके समान नेत्रोंवाले, ६-श्रीमान् राजेन्द्रः-श्रीसम्पन्न तथा राजाओंके भी राजा (चक्रवर्ती सम्राट्), ७-रघुपुंगवः-रघुकुलमें सर्वश्रेष्ठ, ८-जानकीवल्लभः-जनकदुलारी सीताके प्रियतम, ९-जैत्रः-विजयशील, १०-जितामित्रः-शत्रुओंको जीतनेवाले, ११-जनार्दनः-सम्पूर्ण मनुष्योंद्वारा याचना करनेयोग्य, १२-विश्वामित्रप्रियः-विश्वामित्रजीके प्रियतम, १३-दान्तः-जितेन्द्रिय, १४-शरण्यत्राणतत्परः-शरणागतोंकी रक्षामें संलग्न, १५-वालिप्रमथनः-वालिनामक वानरको मारनेवाले, १६-वाग्मी-अच्छे वक्ता, १७-सत्यवाक्-सत्यवादी, १८-सत्यविक्रमः-सत्यपराक्रमी, १९-सत्यव्रतः-सत्यका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले, २०-व्रतफलः-सम्पूर्ण व्रतोंके प्राप्त होनेयोग्य फलस्वरूप, २१-सदा हनुमदाश्रयः-निरन्तर हनुमान्‌जीके आश्रय अथवा हनुमान्‌जीके हृदय-कमलमें सदा निवास करनेवाले, २२-कौसलेयः-कौसल्याजीके पुत्र, २३-खरध्वंसी-खरनामक राक्षसका नाश करनेवाले, २४-विराधवधपण्डितः-विराध नामक दैत्यका वध करनेमें कुशल, २५-विभीषणपरित्राता-विभीषणके रक्षक, २६-दशग्रीवशिरोहरः-दशशीश रावणके मस्तक काटनेवाले, २७-सप्ततालप्रभेत्ता-सात तालवृक्षोंको एक ही बाणसे बींध डालनेवाले, २८-हरकोदण्डखण्डनः-जनकपुरमें शिवजीके धनुषको तोड़नेवाले, २९-जामदग्न्यमहादर्पदलनः-परशुरामजीके महान् अभिमानको चूर्ण करनेवाले, ३०-ताटकान्तकृत्-ताड़का नामवाली राक्षसीका वध करनेवाले, ३१-वेदान्तपारः-वेदान्तके पारंगत विद्वान्, अथवा वेदान्तसे भी अतीत, ३२-वेदात्मा-वेदस्वरूप, ३३-भवबन्धैकभेषजः-संसार-बन्धनसे मुक्त करनेके लिये एकमात्र औषधरूप, ३४-दूषणत्रिशिरोऽरिः-दूषण और त्रिशिरा नामक राक्षसोंके शत्रु, ३५-त्रिमूर्तिः-ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीन रूप धारण करनेवाले, ३६-त्रिगुणः-त्रिगुणस्वरूप अथवा तीनों गुणोंके आश्रय, ३७-त्रयी-तीन वेदस्वरूप, ३८-त्रिविक्रमः-वामन अवतारमें तीन पगोंसे समस्त त्रिलोकीको नाप लेनेवाले, ३९-त्रिलोकात्मा-तीनों लोकोंके आत्मा, ४०-पुण्यचारित्रकीर्तनः-जिनकी लीलाओंका कीर्तन परम पवित्र है, ऐसे, ४१-त्रिलोकरक्षकः-तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले, ४२-धन्वी-धनुष धारण करनेवाले, ४३-दण्डकारण्यवासकृत्-दण्डकारण्यमें निवास करनेवाले, ४४-अहल्यापावनः-अहल्याको पवित्र करनेवाले, ४५-पितृभक्तः-पिताके भक्त, ४६-वरप्रदः-वर देनेवाले, ४७-जितेन्द्रियः-इन्द्रियोंको काबूमें रखनेवाले, ४८-जितक्रोधः-क्रोधको जीतनेवाले, ४९-जितलोभः-लोभकी वृत्तिको परास्त करनेवाले, ५०-जगद्गुरुः-अपने आदर्श चरित्रोंसे सम्पूर्ण जगत्‌को शिक्षा देनेके कारण सबके गुरु, ५१-ऋक्षवानरसंघाती-वानर और भालुओंकी सेनाका संगठन करनेवाले, ५२-चित्रकूटसमाश्रयः-वनवासके समय चित्रकूटपर्वतपर निवास करनेवाले, ५३-जयन्तत्राणवरदः-जयन्तके प्राणोंकी रक्षा करके वर देनेवाले, ५४-सुमित्रापुत्रसेवितः-सुमित्रानन्दन लक्ष्मणके द्वारा सेवित, ५५-सर्वदेवाधिदेवः-सम्पूर्ण देवताओंके भी अधिदेवता, ५६-मृतवानरजीवनः-मरे हुए वानरोंको जीवित करनेवाले, ५७-मायामारीचहन्ता-मायामय मृगका रूप धारण करके आये हुए मारीच नामक राक्षसका वध करनेवाले, ५८-महाभागः-महान् सौभाग्यशाली, ५९-महाभुजः-बड़ी-बड़ी बाँहोंवाले, ६०-सर्वदेवस्तुतः-सम्पूर्ण देवता जिनकी स्तुति करते हैं, ऐसे, ६१-सौम्यः-शान्तस्वभाव, ६२-ब्रह्मण्यः-ब्राह्मणोंके हितैषी, ६३-मुनिसंस्तुतः-मुनियोंके द्वारा प्रशंसित, ६४-महायोगी-सम्पूर्ण योगोंके अधिष्ठान होनेके कारण

रामनामकी महिमा

सहसनाम सम सुनि सिव बानी । जपि जेईं पिय संग भवानी ॥

कर रामका जो अर्थ समझा जा सकता है, तुलसीदासजीके रामका अर्थ उससे कुछ दूसरा ही है। जैन या बौद्ध राम-कथाके रामके अर्थसे गोस्वामीजीके रामका अर्थ निश्चय ही बहुत भिन्न है। गोस्वामीजीने जब—'राम सकल नामन्ह ते अधिका।' (मानस ३।४०।४) कहा, तब उनके मनमें रामका वही अर्थ कौंधा कर रहा था, जो वे समझ रहे थे, न कि वह, जो इतिहासके पन्नोंसे प्रकट होता है। इतिहासके राम अपने स्थानपर हैं, रस-साधनाके राम अपने स्थानपर और तत्त्व-चिन्तनके राम अपने स्थानपर हैं। किंतु 'रामधुन' एक ऐसी बढ़िया प्रक्रिया है, जो तीनोंको समेटती हुई अखिल मानव-जातिको उदात्त मानवीय गुणोंसे भर देनेकी क्षमता रखती है। मनुष्य अपने सच्चे हितैषी और सहायकसे जो शील, जो चारित्र्य, जो संरक्षण-समत्व चाहता है, वह रामके व्यक्तित्वमें प्रचुरमात्रामें विद्यमान है। वर्तमान युगमें तो हमें ऐसे ही आराध्यकी अधिक आवश्यकता है। गोस्वामीजीने रामके व्यक्तित्व और रामके चरित्रको जितने आकर्षक और स्पृहणीय रूपमें संसारके समक्ष रखा है, उसने राम-नामकी अर्थ-गर्भताको और भी अधिक महत्त्व दे दिया है। राम नर होकर नारायण हो गये हैं और नारायण होकर आदर्श नर हो गये हैं। मनुष्य अपनी प्रत्येक परिस्थितिमें ऐसे रामको अपने सहायकरूपमें सहज ही पा जाता है। इसलिये भी रामनाम अन्य नामोंकी अपेक्षा अधिक अर्थात् श्रेष्ठ कहा गया है—'राम सकल नामन्ह ते अधिका।'

भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां राम रामेति गर्जनम्॥
(रामरक्षास्तोत्र)

'राम-नामका घोष आवागमनकी बीजरूपा वासनाओंको भूँज देनेवाला, सुख-सम्पत्तिका अर्जन करनेवाला तथा यम-दूतोंको भगा देनेवाला है।'

कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम॥
(महानाटक १।८)

'राम-नाम—जो सम्पूर्ण कल्याणोंका खजाना, कलियुगके पापोंका नाश कर देनेवाला, पवित्र करनेवालोंको भी पवित्र करनेवाला, परमपदकी प्राप्तिकी ओर बढ़नेवाले मोक्षकामीके लिये सम्बलरूप, श्रेष्ठ कवियोंकी वाणीको विश्राम देनेवाला, सत्पुरुषोंका जीवन और धर्मरूपी वृक्षका बीज है—आप सब-का मङ्गल करनेमें समर्थ हो।'

श्रीरामनाम-महिमा

भगवान् शंकर देवी पार्वतीसे कहते हैं—

रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः। गच्छंस्तिष्ठञ्शयानो वा मनुजो रामकीर्तनात्॥
इह निर्वर्तितो याति चान्ते हरिगणो भवेत्। रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः॥
न रामादधिकं किञ्चित् पठनं जगतीतले। रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना॥
रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च। अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते॥
रामेति मन्त्रराजोऽयं भयव्याधिनिषूदकः। राम रामेति रामेति रामेति समुदाहृतः॥
द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि। देवा अपि प्रगायन्ति रामनाम गुणाकरम्॥
तस्मात्त्वमपि देवेशि रामनाम सदा [illegible] [illegible]॥

है। प्रत्येक क्षण वह बदलता रहता है। उसके रूपमें आमूल परिवर्तनका ही नाम तो मृत्यु है। चेतनको जड़के सम्पर्कसे सर्वथा अलग कर देना ही अमरत्वकी प्राप्ति है। प्रथम इसने स्थूल शरीर और अन्नमय कोशको अमर रखनेकी भरपूर चेष्टा की। इन्होंने सोचा, मनुष्य मरता ही क्यों है? इन्होंने देखा, मानव-शरीरके भिन्न भिन्न अवयवोंके जीर्ण होनेसे, मस्तिष्क, हृदय, फेफड़े, पक्वाशय इत्यादि-के घिसे जानेसे, समुचित भोजन और व्यायाम नहीं मिलनेसे, असंख्य जीवाणुओं (Cells) के टूटनेसे, रोग-कीटाणुओंके आक्रमणसे तथा शरीरमें जो कई ग्रन्थियाँ हैं, उनसे समुचित स्राव न होनेसे शरीर-यन्त्र बिगड़ जाता है और मनुष्य मर जाता है। इन्होंने शरीरको नीरोग और दीर्घायु करनेके बहुत-से उपाय सोचे। रसायन-शास्त्रने कई प्रकारके रसोंका, आयुर्वेदने कई ओषधियोंका और हठयोगने कई आसनों और व्यायामोंका आविष्कार किया, जिनसे मनुष्य दीर्घ-जीवी बनकर अपने सौन्दर्य और यौवनको अक्षुण्ण रख सकते थे। पर अध्यात्मवादियोंने देखा कि नीरोग शरीर ही सब कुछ नहीं है, जीवनकी सफलताके लिये मस्तिष्क और चरित्रका विकास भी आवश्यक है। वे असत्से सत्की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे अमरत्वकी ओर जाना चाहते थे। इन्होंने देखा कि जीवनकी पूर्ण सफलता भगवत्कृपापर निर्भर है और भगवत्कृपा प्राप्त करनेके लिये भगवन्नाम और प्रार्थना आवश्यक है।

पूर्वाचार्योंने वेद शास्त्ररूपी क्षीरसागरका मन्थन कर राम नामका अमृत निकाला। समुद्रके गर्भमें तो विष भी था, मदिरा भी थी और अमृत भी था। भव-सागरके अन्तरालमें तम भी है, रज भी है और सत्त्व भी है। चाहे कोई देश या धर्म तम और रजका भले ही अन्वेषण कर रहा हो, पर हमने तो केवल सत्त्वको अपनाया है। हम जानते हैं—

'यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः।'

हमारा हिंदूधर्म सत्यके आधारपर खड़ा है। भगवान् हमारे साथ हैं, अतः हमारी विजय निश्चित है। हमारा कभी नाश नहीं हो सकता—

'कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥'

(गीता ९।३१)

इसीलिये भगवन्नामके विस्तार करनेके लिये देशमें [illegible] भी है। विज्ञान नये-नये चमत्कार दिखा रहा है। राजनीति और अर्थशास्त्र भौतिक तथा सामाजिक जीवनका विश्लेषण कर रहे हैं। किंतु उस हीरेकी ओर किसका ध्यान है, जो मानव-शरीरके अन्तर्गत जल रहा है! भोग-सभ्यताके शिखरपर जब पाश्चात्य देशोंमें लोग चिल्लाकर कहेंगे—'मुझे नवीन भोजन दो, संसारके सारे भौतिक पदार्थोंका रस मैं चख चुका, वे अब फीके पड़ गये', उस समय मानवता सोचेगी—'ततः किम्?' वह समझेगी और महसूस करेगी कि वह गलत रास्तेपर थी। जीवनमें त्याग और बलिदानकी जितनी आवश्यकता है, उतनी भोग-वासनाकी नहीं। उस समय यह दलित मानवताके पथ-प्रदर्शनके लिये रामनाम प्रकाश और शक्ति प्रदान करेगा। पाश्चात्य मानवोंकी अँधेरी रातोंमें चलनेवाले बादल उमड़-घुमड़कर कुछ कालके लिये भले ही आकाशको आच्छन्न कर लें, पर इससे सूर्यका नाश नहीं हो सकता। शीघ्र ही प्राचीके प्राङ्गणमें उषा-देवी अरुण राग-रञ्जित नवीन परिधान धारणकर हेमकुम्भसे इस विश्व भूतलपर अमृत-धारा उँडेल देती है।

रामनाम वह सुधाकी धारा है, जो मृतकोंमें भी जीवन-का संचार करती है। पर प्रश्न तो यह है कि 'इस अमृतसे जितने मानवोंका उद्धार होना चाहिये, वह होता क्यों नहीं? हमें क्या अधिकार है कि इस अमृतकी एक मात्र घूँट अपने पीकर फिर इसको पात्रमें बंद कर दें और तृषित मानवता इस अमृतके अभावमें इधर-उधर भटकती फिरे तथा मदिरा और जहर पीकर ही मस्त हो जाय—रामनाममें जो सुन्दरता है, जो माधुर्य है, जो आनन्द है, संसार उससे वञ्चित रह जाय!

आज मानव-जीवन अशान्त है। अनवरत संघर्षोंके बीच वह कुछ रुकना चाहता है। वह स्थायी शान्ति चाहता है। पर वह शान्ति मिलेगी कैसे? [illegible] ओर तो [illegible] प्राप्त करना चाहता है और दूसरी ओर भोग-सम्बन्धी कार्योंमें [illegible] प्रतिस्पर्धा इतनी बढ़ती भी जा रही है। आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको हड़पना चाहता है—उसे दबाना चाहता है। [illegible] इतना बढ़ गया है कि [illegible] [illegible] है। [illegible] भी [illegible] नहीं। [illegible] [illegible]

श्रीजानकीजीका नौलखा मन्दिर, जनकपुर

श्रीरामेश्वर-मन्दिरका प्रधान गोपुरद्वार

भरत-मन्दिर, ऋषिकेश

युगल-चरण-चिह्न

की है। यह मङ्गलकारक है, कल्याणप्रद है। श्रीशंकरजी पार्वतीजीसे कहते हैं—

'स्वस्तिकमन्त्रेय मंत्राचं कल्याणं सर्वतः प्रिये ॥'

(महारामायण ४८ । ४०)

तीसरा चिह्न अष्टकोण है। यह लाल और सफेद रंगका है। यह यन्त्र है। अवतार श्रीनरसिंहदेवजी हैं। इसके ध्यानसे अष्टसिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। चौथा चिह्न श्रीलक्ष्मीजी हैं। इनका रंग अरुणोदयकालकी लालिमाके सदृश है। यही ही मनोहर हैं। अवतार साक्षात् लक्ष्मीजी ही हैं। इनके ध्यानसे ऐश्वर्य और समृद्धि मिलती है। पाँचवाँ चिह्न हल है, इसका रंग श्वेत है। अवतार बलरामजीका हल है। यह विजयप्रद है। इससे निर्मल विज्ञानकी उपलब्धि होती है। छठा चिह्न मूसल है, यह धूम्र रंगका है। अवतार मूसल है। इसके ध्यानसे शत्रुका नाश होता है। सातवाँ चिह्न सर्प—शेष है, इसका रंग श्वेत है। अवतार शेषनाग हैं। इस चिह्नका ध्यान करनेवालेको भगवद्भक्ति और शान्तिकी प्राप्ति होती है। आठवाँ चिह्न शर—बाण है; इसका रंग श्वेत, पीत, अरुण—गुलाबी और हरा है। इसका ध्यान करनेवालेके शत्रु नष्ट होते हैं। अवतार बाण है। नवाँ चिह्न अम्बर—वस्त्र है। इसका रंग आसमानी अथवा नीला और बिजलीके रंगके समान है। अवतार श्रीवराह भगवान् हैं। इस चिह्नके ध्यानसे भयका नाश होता है। यह भक्तोंको दुःख देनेवाली जड़तारूपी शीतका हरण करता है। दसवाँ चिह्न कमल है, यह लाल—गुलाबी रंगका है। अवतार विष्णु-कमल है। ध्यानी भगवद्भक्ति पाता है, इसका यश बढ़ता है और मन प्रसन्न रहता है। ग्यारहवाँ

धर्म, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है, समस्त मनोरथ पूरे होते हैं। पंद्रहवाँ चिह्न अङ्कुश है। इसका रंग श्याम है। इससे समस्त लोकोंके मलका नाश करनेवाला ज्ञान उत्पन्न होता है। इसके ध्यानका फल मनोनिग्रह है। सोलहवाँ चिह्न ध्वजा है। इसका रंग लाल है। यह विचित्र वर्णका भी कहा जाता है। इससे विजय—कीर्तिकी प्राप्ति होती है। सत्रहवाँ चिह्न मुकुट है। अवतार दिव्यभूषण है। इसका रंग सुनहला है। इसके ध्यानसे परमपद मिलता है। अठारहवाँ चिह्न चक्र है। अवतार सुदर्शनचक्र है। इसका रंग तपाये हुए सोनेकी तरह है। यह शत्रुका नाश करता है। उन्नीसवाँ चिह्न सिंहासन है। अवतार श्रीरामका सिंहासन है। रंग सुनहला है—

'सिंहासनेन सम्भूतं रामसिंहासनं परम् ॥'

(महारामायण ४८ । ४९)

—यह विजयप्रद है, सम्मान प्रदान करता है। बीसवाँ चिह्न यमदण्ड है, अवतार धर्मराज हैं। यह काँसेके रंगका है। इसके ध्यानसे यमयातनाका नाश होता है, ध्यानी निर्भयता प्राप्त करता है। इक्कीसवाँ चिह्न चामर है। इसका रंग सफेद है। अवतार श्रीहयग्रीव हैं। यह राज्य एवं ऐश्वर्य प्रदान करता है। इसके ध्यानसे हृदयमें निर्मलता आती है, विकार नष्ट होते हैं, चन्द्रमाकी चन्द्रिकाके समान प्रकाशका उदय होता है। बाईसवाँ चिह्न छत्र है। अवतार कल्कि है। इसका रंग शुक्ल है। इसका ध्यान करनेवाला राज्य तथा ऐश्वर्य पाता है। यह तीनों (दैहिक, दैविक, भौतिक) तापोंसे रक्षा करता है, मनमें दयाभाव लाता है। तेईसवाँ चिह्न नर—पुरुष है। अवतार दत्तात्रेय हैं। [illegible]

मस्तक, भ्रूमध्य, बाहु, कण्ठ, हृदय, नाभि, ऊरु, जानु और चरण—इन दस अङ्गोंमें न्यास करे।

ध्यान

अयोध्यानगरे रत्नचित्रसौवर्णमण्डपे ।
मन्दारपुष्पैराबद्धविताने तोरणान्विते ॥
सिंहासनसमासीनं पुष्पकोपरि राघवम् ।
रक्षोभिर्हरिभिर्देवैः सुविमानगतैः शुभैः ॥
संस्तूयमानं मुनिभिः प्रह्वैश्च परिसेवितम् ।
सीतालङ्कृतवामाङ्गं लक्ष्मणेनोपशोभितम् ॥
श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम् ।

(ना० पुराण, पूर्व० ७३ । ६८—७१)

'दिव्य अयोध्या-नगरमें रत्नोंसे चित्रित एक सुवर्णमय मण्डप है, जिसमें मन्दारके फूलोंसे चँदोवा बनाया गया है। उसमें तोरण लगे हुए हैं। उसके भीतर पुष्पक विमानपर एक दिव्य सिंहासनके ऊपर राघवेन्द्र श्रीराम विराजित हैं। उस सुन्दर विमानमें एकत्र हो शुभस्वरूप देवता, वानर, राक्षस और विनीत महर्षिगण भगवान्‌की स्तुति और परिचर्या करते हैं। श्रीराघवेन्द्रके वामभागमें भगवती सीता विराजमान हो उस वामाङ्गकी शोभा बढ़ाती हैं। भगवान्‌का दाहिना भाग लक्ष्मणजीसे सुशोभित है। श्रीरघुनाथजीकी कान्ति श्याम है। उनका मुख प्रसन्न है तथा वे समस्त आभूषणोंसे विभूषित हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके, मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त हो दस लाख जप करे। कमल-पुष्पोंद्वारा दशांश होम और पूजनकी विधि षडक्षर मन्त्रके समान है। 'रामाय धनुष्पाणये स्वाहा।'—यह दशाक्षर मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि हैं, विराट् छन्द है तथा राक्षसमर्दन श्रीरामचन्द्रजी देवता कहे गये हैं। 'रां'—यह बीज है और 'स्वाहा' शक्ति है। बीजके द्वारा षडङ्गन्यास करे। वर्णन्यास, ध्यान, पुरश्चरण तथा पूजन आदि कार्य दशाक्षर मन्त्रके लिये पहले बताये अनुसार करे। हाथमें धनुष-बाण धारण करनेवाले भगवान् श्रीरामका ध्यान करना चाहिये। तार (ॐ) से युक्त 'नमो भगवते रामचन्द्राय' अथवा 'रामभद्राय'—ये दो प्रकारके द्वादशाक्षर मन्त्र हैं। इनके ऋषि और ध्यान आदि पूर्ववत् हैं। श्रीपूर्वक, जयपूर्वक तथा जयद्वयपूर्वक 'राम' नाम हो। यह ('श्रीराम जय राम जय जय राम')—तेरह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, विराट् छन्द तथा पापराशिका नाश करनेवाले भगवान् श्रीराम देवता कहे गये हैं। इसके तीन पदोंकी दो-दो आवृत्ति करके षडङ्गन्यास करे। ध्यान-पूजन आदि सब कार्य दशाक्षर मन्त्रके समान करे।

'ॐ नमो भगवते रामाय महापुरुषाय नमः।'—यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके विश्वामित्र ऋषि, धृति छन्द, श्रीराम देवता, 'ॐ' बीज और 'नमः' शक्ति है। मन्त्रके एक, दो, चार, तीन, छः और दो अक्षरोंवाले पदोंद्वारा एकाग्रचित्त हो षडङ्गन्यास करे।

ध्यान

निःसाणभेरीपटहशङ्खतूर्यादिनिःस्वनैः ॥
प्रवृत्तनृत्ये परितो जयमङ्गलभाषिते ।
चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरादिसुवासिते ॥
सिंहासने समासीनं पुष्पकोपरि राघवम् ।
सौमित्रिसीतासहितं जटामुकुटशोभितम् ॥
चापबाणधरं श्यामं ससुग्रीवविभीषणम् ।
हत्वा रावणमायान्तं कृतत्रैलोक्यरक्षणम् ॥

'भगवान् राघवेन्द्र रावणको मारकर त्रिलोकीकी रक्षा करके लौटे हैं। वे सीता और लक्ष्मणके साथ पुष्पक विमानमें सिंहासनपर विराजमान हैं। उनका मस्तक जटाओंके मुकुटसे सुशोभित है। उनका वर्ण श्याम है और उन्होंने धनुष-बाण धारण कर रखा है। उनके साथ सुग्रीव तथा विभीषण विराजित हैं। उनकी विजयके उपलक्ष्यमें निशान, भेरी, पटह, शङ्ख और तुरही आदि बाजोंके बजनेके साथ नृत्य आरम्भ हो गया है। चारों ओर जय जयकार तथा मङ्गलपाठ हो रहा है। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कपूर आदिकी मधुर गन्ध छा रही है।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक मन्त्रकी अक्षर-संख्याके अनुसार अठारह लाख जप करे और घृतमिश्रित खीरकी दशांश आहुति देकर पूर्ववत् पूजन करे।

ॐ ह्रीं श्रीं रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम ।
दशास्यान्तक मां रक्ष देहि मे परमां श्रियम् ॥

—यह पैंतीस अक्षरोंका मन्त्र है। [illegible] देनेवाला [illegible] है। [illegible] देनेवाला है। इसके विश्वामित्र ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, रामभद्र देवता, ह्रीं बीज और श्रीं शक्ति है। मन्त्रके चार चरणोंके आदिमें दोनों बीज लगाकर [illegible] द्वारा क्रमशः षडङ्ग [illegible]

राघव (सुग्रीवको राज्य देनेवाले) रक्षा करें। मन, वचन, बुद्धि और अहंकारद्वारा ज्ञानमें अथवा अनजानमें किये हुए इस जन्मके अथवा जन्मान्तरके जो मेरे अनेकविध पाप हैं, उन सबको शीघ्र ही भस्म करके हरकोदण्डखण्डन (शिवजीके धनुषको तोड़नेवाले) मेरी सब दिशाओंमें रक्षा करें। शार्ङ्गधनुष और बाण धारण करनेवाले श्रीराम सदा मेरी रक्षा करें।'

इति श्रीरामचन्द्रस्य कवचं वज्रसम्मितम्॥
गुह्याद्गुह्यतमं दिव्यं सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा समाहितः॥
स याति परमं स्थानं रामचन्द्रप्रसादतः।
महापातकयुक्तो वा गोघ्नो वा भ्रूणहा तथा॥
श्रीरामचन्द्रकवचपठनाच्छुद्धिमाप्नुयात्।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥
भोः सुतीक्ष्ण यथा पृष्टं त्वया मम पुरा शुभम्।
तथा श्रीरामकवचं मया ते विनिवेदितम्॥

'मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! श्रीरामचन्द्रजीका यह दिव्य कवच वज्र-तुल्य तथा गुह्यसे भी परम गुह्य है। जो मन लगाकर इसे पढ़ता है, सुनता है अथवा दूसरोंसे कहता है, वह श्रीरामचन्द्रजीकी कृपासे परमधामको प्राप्त करता है। चाहे वह महापातकी, गोघाती अथवा गर्भस्थ बालककी हत्या करनेवाला ही क्यों न हो, इस श्रीरामचन्द्रके कवचके पाठसे वह शुद्ध हो जाता है—यहाँतक कि ब्रह्महत्या-जैसे पापोंसे भी उसे छुटकारा मिल जाता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। हे सुतीक्ष्ण! जिस प्रकार जैसा पहले तुमने मुझसे पूछा था, उसी प्रकार मङ्गलकारक श्रीरामकवच मैंने तुम्हें बतला दिया।'

(आनन्दरामायण, मनोहरकाण्ड ११। ४९—८२)

श्रीसीताजीकी उपासनाके मन्त्र

भगवान् श्रीरामकी प्रसन्नताके लिये भगवती सीताजीकी प्रसन्नता प्राप्त करना परम आवश्यक है। गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी 'विनय पत्रिका'में श्रीसीताजीसे प्रार्थना करते समय यही कहा है—

कबहुँक, अंब! अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ॥ १॥
दीन, सब अँगहीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥ २॥
बूझिहैं 'सो है कौन', कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥ ३॥
जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाइ॥ ४॥

(विनय ४१)

मन्त्र

पद्मा (श्रीं), चे-विभक्त्यन्त सीता शब्द (सीतायै) और अन्तमें ठद्वय (स्वाहा)—(श्रीं सीतायै स्वाहा) यह षडक्षर सीता-मन्त्र है। इसके वाल्मीकि ऋषि, 'गायत्री' छन्द, भगवती सीता देवता, 'श्रीं' बीज तथा 'स्वाहा' शक्ति है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजद्वारा (श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः) षडङ्गन्यास करे।

ध्यान

ततो ध्यायेन्महादेवीं सीतां त्रैलोक्यपूजिताम्।
तप्तहाटकवर्णाभां पद्मयुग्मं कराब्जयोः॥
सद्रत्नभूषणस्फूर्जद्दिव्यदेहां शुभात्मिकाम्।
नानावस्त्रां शशिमुखीं पद्माक्षीं मुदितान्तराम्।
पश्यन्तीं राघवं पुण्यं शय्यायां षड्गुणेश्वरीम्॥

'तदनन्तर त्रिभुवनपूजित महादेवी सीताका ध्यान करे। तपाये हुए सुवर्णके समान उनकी कान्ति है। उनके दोनों हाथोंमें दो कमलपुष्प शोभा पा रहे हैं। उनका दिव्य शरीर उत्तम रत्नमय आभूषणोंसे प्रकाशित हो रहा है। वे मङ्गलमयी सीता भाँति-भाँतिके वस्त्रोंसे सुशोभित हैं। उनका मुख चन्द्रमाके सदृश्य जान पड़ता है। उनके नेत्र कमलोंकी-सी शोभा धारण करते हैं। उनका अन्तःकरण आनन्दसे उल्लसित है। वे ऐश्वर्य आदि छः गुणोंकी अधीश्वरी हैं और शय्यापर अपने प्राणवल्लभ पुण्यमय श्रीराघवेन्द्रको अनुरागभरी दृष्टिसे निहार रही हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रसाधक छः लाख जप करे और खिले हुए कमलोंद्वारा दशांश आहुति दे। पूर्वोक्त (श्रीराम) पीठपर उनकी पूजा करनी चाहिये। मूलमन्त्रसे मूर्ति निर्माण करके उसमें [illegible]

पुत्री और रामकी प्रिय भामिनी हैं, जिन्हें दासियाँ पंखे झल रही हैं, सुवर्णकलशके समान जिनके पयोधर हैं, उन जनकनन्दिनी सीताका ध्यान करके इस दिव्य एवं मङ्गलप्रद निम्नाङ्कित सीताकवचका पाठ करना चाहिये।'

स्तोत्रम्

श्रीसीता पूर्वतः पातु दक्षिणेऽवतु जानकी।
वारुण्यां पातु वैदेही पातूदीच्यां च मैथिली॥
अधः पातु मातुलुङ्गी ऊर्ध्वं पद्माक्षजावतु।
मध्येऽवनिसुता पातु सर्वतः पातु मां रमा॥
स्मितानना शिरः पातु पातु भालं नृपात्मजा।
पद्मावतु भ्रुवोर्मध्ये मृगाक्षी नयनेऽवतु॥
कपोले कर्णमूले च पातु श्रीरामवल्लभा।
नासाग्रं सात्त्विकी पातु पातु वक्त्रं तु राजसी॥
तामसी पातु मद्वाणीं पातु जिह्वां पतिव्रता।
दन्तान् पातु महामाया चिबुकं कनकप्रभा॥
पातु कण्ठं सौम्यरूपा स्कन्धौ पातु सुरार्चिता।
भुजौ पातु वरारोहा करौ कङ्कणमण्डिता॥
नखान् रक्तनखा पातु कुक्षौ पातु लघूदरा।
वक्षः पातु रामपत्नी पार्श्वे रावणमोहिनी॥
पृष्ठदेशे वह्निगुप्तावतु मां सर्वदैव हि।
दिव्यप्रदा पातु नाभिं कटिं राक्षसमोहिनी॥
गुह्यं पातु रत्नगुप्ता लिङ्गं पातु हरिप्रिया।
ऊरू रक्षतु रम्भोरूर्जानुनी प्रियभाषिणी॥
जङ्घे पातु सदा सुभ्रूर्गुल्फौ चामरवीजिता।
पादौ लवसुता पातु पात्वङ्गानि कुशाम्बिका॥
पादाङ्गुलीः सदा पातु मम नूपुरनिःस्वना।
रोमाण्यवतु मे नित्यं पीतकौशेयवासिनी॥
रात्रौ पातु कालरूपा दिने दानैकतत्परा।
सर्वकालेषु मां पातु मूलकासुरघातिनी॥

'पूर्वकी ओर श्रीसीता मेरी रक्षा करें, दक्षिणकी ओर जानकी रक्षा करें, पश्चिम दिशामें वैदेही रक्षा करें, उत्तरमें मैथिली रक्षा करें। नीचेकी ओर मातुलुङ्गी रक्षा करें, ऊपरकी ओर पद्माक्षजा रक्षा करें, मध्यदेशमें अवनिसुता रक्षा करें और रमा मेरी सभी ओरसे रक्षा करें। स्मितानना (मुसकराते हुए मुखवाली) सिरकी रक्षा करें, नृपात्मजा (राजकुमारी) ललाटकी रक्षा करें, भौंहोंके बीचमें पद्मा रक्षा करें और नेत्रोंकी मृगाक्षी (मृगनयनी) रक्षा करें। श्रीरामवल्लभा कपोलों और कर्णमूलोंकी रक्षा करें, सात्त्विकी नासिकाके अग्रभागकी रक्षा करें, राजसी मुखकी रक्षा करें, तामसी मेरी वाणीकी रक्षा करें, पतिव्रता जिह्वाकी रक्षा करें। महामाया दाँतोंकी और कनकप्रभा ठोढ़ीकी रक्षा करें। सौम्यरूपा कण्ठकी रक्षा करें, सुरार्चिता (देवपूजिता) कंधोंकी रक्षा करें, वरारोहा बाहुओंकी और कङ्कणमण्डिता हाथोंकी रक्षा करें। रक्तनखा (लाल-लाल नखोंवाली) मेरे नाखूनोंकी रक्षा करें, लघूदरा कुक्षिदेशकी रक्षा करें, रामपत्नी वक्षःस्थलकी और रावणमोहिनी दोनों पार्श्वोंकी रक्षा करें। वह्निगुप्ता (अग्निद्वारा रक्षित) सदा मेरे पृष्ठदेशकी रक्षा करें। दिव्यप्रदा (दिव्य पदार्थोंको देनेवाली) मेरी नाभिकी और राक्षसमोहिनी कमरकी रक्षा करें। रत्नगुप्ता (रत्नोंसे आच्छादित) गुह्यकी रक्षा करें और हरिप्रिया लिङ्गकी रक्षा करें। रम्भोरु मेरी दोनों जाँघोंकी और प्रियभाषिणी जानुओंकी रक्षा करें। सुभ्रू (सुन्दर भौंहोंवाली) जङ्घोंकी और चामरवीजिता गुल्फों (टखनों) की रक्षा करें। लवसुता (लव-जननी) पैरोंकी रक्षा करें तथा कुशाम्बिका (कुशकी माता) शरीरके सब अङ्गोंकी रक्षा करें। मेरे पैरोंकी उँगलियोंकी नूपुरनिःस्वना (नूपुरोंकी झनकारवाली) सदा रक्षा करें और पीतकौशेयवासिनी (रेशमी पीताम्बर धारण करनेवाली) नित्य मेरे रोमोंकी रक्षा करें। रात्रिके समय कालरूपा और दिनको दानैकतत्परा रक्षा करें तथा सब समय मूलकासुरघातिनी मेरी रक्षा करें।'

एवं सुतीक्ष्ण सीतायाः कवचं ते मयेरितम्।
इदं प्रातः समुत्थाय स्नात्वा नित्यं पठेत्तु यः॥
जानकीं पूजयित्वा स मर्त्यान् कामानवाप्नुयात्।
धनार्थी प्राप्नुयाद्द्रव्यं पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात्॥
स्त्रीकामार्थी शुभां नारीं सुखार्थी सौख्यमाप्नुयात्।
अष्टवारं जपनीयं सीतायाः कवचं सदा॥
अष्टभूतो दिव्यदैत्यो भयः [illegible]।
[illegible]
[illegible] कवचं वेदे पुण्यं [illegible]।
[illegible]

[illegible]! इस प्रकार मैंने तुम्हें [illegible] सीताकवच बतलाया। [illegible] और उठकर स्नान करके [illegible] इस कवचका पाठ करता है, वह [illegible] कर लेता है। [illegible]

भार्याको धन मिल जाता है—यहाँतक कि जिन-जिन पदार्थोंकी अभिलाषा मनमें होती है, वे सभी पदार्थ इस कवचके पाठसे मनुष्योंको संसारमें उपलब्ध हो जाते हैं, यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ। इसलिये रामोपासक भक्तोंको सदा इसका पाठ करना चाहिये।'

(आनन्दरामायण, मनोहरकाण्ड, अ० १९)

श्रीलक्ष्मणकवचम्

वन्दना

सौमित्रिं रघुनायकस्य चरणद्वन्द्वेक्षणं श्यामलं
बिभ्राणं स्वकरेण रामशिरसिच्छत्रं विचित्रं वरम्।
बिभ्राणं रघुनायकस्य सुमहत्कोदण्डबाणासने
तं वन्दे कमलेक्षणं जनकजावाक्ये सदा तत्परम्॥

'जो श्रीरघुनाथजीके दोनों चरण-कमलोंको निर्निमेष नेत्रोंसे देखते हुए कभी तृप्त नहीं होते, जो अपने हाथसे श्रीरामचन्द्रजीके सिरपर सुन्दर श्रेष्ठ छत्र धारण किये रहते हैं तथा अपने कंधेपर जो श्रीरामचन्द्रजीका अत्यन्त विशाल धनुष और तरकस लिये रहते हैं, जो सर्वदा जानकीजीकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर रहते हैं और जिनके कमलके समान नेत्र हैं, उन परम सुन्दर सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीलक्ष्मणकवचमन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीलक्ष्मणो देवता। शेष इति बीजम्। सुमित्रानन्दन इति शक्तिः। रामानुज इति कीलकम्। रामदास इत्यस्त्रम्। रघुवंशज इति कवचम्। सौमित्रिरिति मन्त्रः। श्रीलक्ष्मणप्रीत्यर्थं सकलमनोऽभिलषितसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः।

न्यासः

अथ करन्यासः। ॐ लक्ष्मणाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ शेषाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ सुमित्रानन्दनाय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ रामानुजाय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ रामदासाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ रघुवंशजाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयादिन्यासः। ॐ लक्ष्मणाय हृदयाय नमः। ॐ शेषाय शिरसे स्वाहा। ॐ सौमित्रये शिखायै वषट्। ॐ रामानुजाय कवचाय हुम्। ॐ रामदासाय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ रघुवंशजाय अस्त्राय फट्। ॐ सौमित्रये इति दिग्बन्धः।

ध्यानम्

रामपृष्ठस्थितं रम्यं रत्नकुण्डलधारिणम्।
नीलोत्पलदलश्यामं रत्नकङ्कणमण्डितम्॥
रामस्य मस्तके दिव्यं बिभ्राणं छत्रमुत्तमम्।
वरपीताम्बरधरं मुकुटेनातिशोभितम्॥
तूणीरे कार्मुके चापि बिभ्राणं च स्मिताननम्।
रत्नमालाधरं दिव्यं पुष्पमालाविराजितम्॥

'जो श्रीरामचन्द्रजीके पीछे बैठे रहते हैं, जिनका मनोहर स्वरूप है, रत्नजटित कुण्डल जिनके कानोंमें झलमला रहे हैं, नील कमलदलके समान जिनकी आभा है, जिनके हाथोंमें रत्नजटित कङ्कण सुशोभित हो रहे हैं, जो श्रीरामके मस्तकपर परमोत्तम दिव्य छत्र लगाये हुए हैं, सुन्दर पीताम्बर धारण किये हैं, मुकुट धारण करनेसे जिनकी अतिशय शोभा हो रही है, जो दो तूणीर तथा दो धनुष धारण किये हुए हैं, जिनके मुखपर मन्द हासकी छटा निखर रही है, जिनके गलेमें रत्नोंकी माला लटक रही है, जिनका दिव्य वेष है और जो फूलोंकी मालाओंसे और भी सुन्दर दीख रहे हैं, मैं उन लक्ष्मणजीका ध्यान करता हूँ।'

स्तोत्रम्

लक्ष्मणः पातु मां पूर्वे दक्षिणे राघवानुजः।
प्रतीच्यां पातु सौमित्रिः पातूदीच्यां रघूत्तमः॥
अधः पातु महावीरश्चोर्ध्वं पातु नृपात्मजः।
मध्ये पातु रामदासः सर्वतः सत्यपालकः॥
स्मिताननः शिरः पातु भालं पातूर्मिलाधवः।
भ्रुवोर्मध्ये धनुर्धारी सुमित्रानन्दनोऽक्षिणी॥
कपोलौ राममन्त्री च सर्वदा पातु वै मम।
कर्णमूले सदा पातु कबन्धभुजखण्डनः॥
नासाग्रं मे सदा पातु सुमित्रानन्दवर्धनः।
रामन्यस्तेक्षणः पातु सदा मेऽत्र मुखं भुवि॥
सीतावाक्यकरः पातु मम वाणीं सदात्र हि।
सौम्यरूपः पातु जिह्वामनन्तः पातु मे द्विजान्॥

पदार्थोंको पा सकता है—यहाँतक कि भिन्न-भिन्न पदार्थोंकी अभिलाषा मनमें होती है, वे सभी पदार्थ इस कवचके पाठसे मनुष्योंको संसारमें उपलब्ध हो जाते हैं, यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ। इसलिये रामोपासक भक्तोंको सदा इसका पाठ करना चाहिये।'

(आनन्दरामायण, मनोहरकाण्ड, अ० १९)

श्रीलक्ष्मणकवचम्

वन्दना

सौमित्रिं रघुनायकस्य चरणद्वन्द्वेक्षणं श्यामलं
बिभ्राणं स्वकरेण रामशिरसिच्छत्रं विचित्रं वरम्।
बिभ्राणं रघुनायकस्य सुमहत्कोदण्डबाणासने
तं वन्दे कमलेक्षणं जनकजावाक्ये सदा तत्परम्॥

'जो श्रीरघुनाथजीके दोनों चरण-कमलोंको निर्निमेष नेत्रोंसे देखते हुए कभी तृप्त नहीं होते, जो अपने हाथसे श्रीरामचन्द्रजीके सिरपर सुन्दर श्रेष्ठ छत्र धारण किये रहते हैं तथा अपने कंधेपर जो श्रीरामचन्द्रजीका अत्यन्त विशाल धनुष और तरकस लिये रहते हैं, जो सर्वदा जानकीजीकी आज्ञाका पालन करनेमें तत्पर रहते हैं और जिनके कमलके समान नेत्र हैं, उन परम सुन्दर सुमित्रानन्दन श्रीलक्ष्मणजीकी मैं वन्दना करता हूँ।'

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीलक्ष्मणकवचमन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीलक्ष्मणो देवता। शेष इति बीजम्। सुमित्रानन्दन इति शक्तिः। रामानुज इति कीलकम्। रामदास इत्यस्त्रम्। रघुवंशज इति कवचम्। सौमित्रिरिति मन्त्रः। श्रीलक्ष्मणप्रीत्यर्थं सकलमनोऽभिलषितसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः।

न्यासः

अथ करन्यासः। ॐ लक्ष्मणाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ शेषाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ सुमित्रानन्दनाय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ रामानुजाय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ रामदासाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ रघुवंशजाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। एवं हृदयाद्यङ्गन्यासः। ॐ लक्ष्मणाय हृदयाय नमः। ॐ शेषाय शिरसे स्वाहा। ॐ सौमित्रये शिखायै वषट्। ॐ रामानुजाय कवचाय हुम्। ॐ रामदासाय नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ रघुवंशजाय अस्त्राय फट्। ॐ सौमित्रये इति दिग्बन्धः।

ध्यानम्

रामपृष्ठस्थितं रम्यं रत्नकुण्डलधारिणम्।
नीलोत्पलदलश्यामं रत्नकङ्कणमण्डितम्॥
रामस्य मस्तके दिव्यं बिभ्राणं छत्रमुत्तमम्।
वरपीताम्बरधरं मुकुटेनातिशोभितम्॥
तूणीरे कार्मुके चापि बिभ्राणं च स्मिताननम्।
रत्नमालाधरं दिव्यं पुष्पमालाविराजितम्॥

'जो श्रीरामचन्द्रजीके पीछे बैठे रहते हैं, जिनका मनोहर स्वरूप है, रत्नजटित कुण्डल जिनके कानोंमें झलमला रहे हैं, नील कमलदलके समान जिनकी आभा है, जिनके हाथोंमें रत्नजटित कङ्कण सुशोभित हो रहे हैं, जो श्रीरामके मस्तकपर परमोत्तम दिव्य छत्र लगाये हुए हैं, सुन्दर पीताम्बर धारण किये हैं, मुकुट धारण करनेसे जिनकी अतिशय शोभा हो रही है, जो दो तूणीर तथा दो धनुष धारण किये हुए हैं, जिनके मुखपर मन्द हास्यकी छटा निखर रही है, जिनके गलेमें रत्नोंकी माला लटक रही है, जिनका दिव्य वेष है और जो फूलोंकी मालाओंसे और भी सुन्दर दीख रहे हैं, मैं उन लक्ष्मणजीका ध्यान करता हूँ।'

स्तोत्रम्

लक्ष्मणः पातु मां पूर्वे दक्षिणे राघवानुजः।
प्रतीच्यां पातु सौमित्रिः पातूदीच्यां रघूत्तमः॥
अधः पातु महावीरश्चोर्ध्वं पातु नृपात्मजः।
मध्ये पातु रामदासः सर्वतः सत्यपालकः॥
स्मिताननः शिरः पातु भालं पातूर्मिलाधवः।
भ्रुवोर्मध्यं धनुर्धारी सुमित्रानन्दनोऽक्षिणी॥
कपोले राममन्त्री च सर्वदा पातु वै मम।
कर्णमूले सदा पातु कबन्धभुजखण्डनः॥
नासाग्रं मे सदा पातु सुमित्रानन्दवर्धनः।
रामन्यस्तेक्षणः पातु सदा मेऽत्र मुखं भुवि॥
सीतावाक्यकरः पातु मम वाणीं सदात्र हि।
सौम्यरूपः पातु जिह्वामनन्तः पातु मे द्विजान्॥

श्रीशत्रुघ्नकवचम्

वन्दना

धनुर्वं धृतबद्धतूणं धृतमहातूणीरबाणोत्तमं
पार्श्वे श्रीरघुनन्दनस्य विनयाद् वामे स्थितं सुन्दरम् ।
रामं स्वीयकरेण तालदलजं धृत्वा विचित्रं वरं
सूक्ष्मं व्यजनं समास्थितमहं तं श्रीशत्रुघ्नं भजे ॥

'जो धनुष, अक्षय तरकस और उत्तम बाण धारण किये हुए हैं तथा श्रीरघुनाथजीके वाम भागमें विनयपूर्वक स्थित हैं, जिनका सुन्दर शरीर है, जो ताड़पत्रसे बने हुए सूक्ष्म-सी आभावाले रंग-बिरंगे उत्तम पंखेको अपने हाथमें लेकर सभामें स्थित श्रीरामजीके ऊपर हवा कर रहे हैं, उन शत्रुघ्नकी मैं वन्दना करता हूँ ।'

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीशत्रुघ्नकवचमन्त्रस्य अगस्त्य ऋषिः । श्रीशत्रुघ्नो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । सुदर्शन इति बीजम् । कैकेयीनन्दन इति शक्तिः । श्रीभरतानुज इति कीलकम् । भरतमन्त्रीत्यस्त्रम् । श्रीरामदास इति कवचम् । लक्ष्मणौरसज इति मन्त्रः । शत्रुघ्नप्रीत्यर्थं सकलमनःकामनासिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ।

करन्यासः

ॐ शत्रुघ्नाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ सुदर्शनाय तर्जनीभ्यां नमः । ॐ कैकेयीनन्दनाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ भरतानुजाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ भरतमन्त्रिणे कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ श्रीरामदासाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । एवं हृदयादिन्यासः । ॐ लक्ष्मणौरसज इति दिग्बन्धः ।

ध्यानम्

रामस्य संस्थितं वामे पार्श्वे विनयपूर्वकम् ।
कैकेयीनन्दनं सौम्यं मुकुटेनातिराजितम् ॥
रत्नकङ्कणकेयूरवनमालाविराजितम् ।
रशनाकुण्डलधरं रत्नहारसुनूपुरम् ॥
व्यजनेन धीजयन्तं जानकीकान्तमादरात् ।
रामचन्द्रेक्षणं वीरं कैकेयीतोषवर्धनम् ॥
द्विभुजं कमलाक्षं दिव्यपीताम्बरान्वितम्
सुभुजं सुन्दरं मेघश्यामलं सु...
रामपादे दत्तकर्णं रक्षोघ्नं
धनुर्धरं ...

सभायां संस्थितं रम्यं कस्तूरीतिलकाङ्कितम् ।
मुकुटेनाकर्णलेन शोभितं च स्मितानमम् ॥
रविवंशोद्भवं दिव्यरूपं दशरथात्मजम् ।
मधुरावासिनं देवं लवणासुरमर्दनम् ॥
एवं ध्यात्वा तु शत्रुघ्नं रामपादेक्षणं हृदि ।
पठनीयं वरं चेदं कवचं तस्य पावनम् ॥

'जो श्रीरामके वाम भागमें विनयपूर्वक स्थित हैं, कैकेयीको आनन्द देनेवाले हैं, जिनका सौम्य स्वरूप है, मुकुट धारण करनेसे जिनकी विचित्र शोभा हो रही है, जो रत्नोंके बने हुए कङ्कण, बाजूबंद और वनमालासे विभूषित हैं, करधनी, कुण्डल, रत्नहार और सुन्दर नूपुर धारण किये हुए हैं तथा आदरपूर्वक जानकीवल्लभ श्रीरामके ऊपर पंखेसे हवा कर रहे हैं, जिनके नेत्र श्रीरामकी ओर लगे हुए हैं, जो महान् पराक्रमी तथा (भरतके अनुगामी होनेके कारण) कैकेयीके सुखकी वृद्धि करनेवाले हैं, जिनके दो भुजाएँ और कमलके समान नेत्र हैं, जो दिव्य पीताम्बर धारण किये हुए हैं, जिनकी भुजाएँ सुडौल हैं और मेघके सदृश साँवली-सलोनी सूरत है, जिनका मुख मनोहर है, जो श्रीरामके चरण-कमलमें कान लगाये रहते हैं, राक्षसोंके संहारक और धनुष धारण करनेवाले हैं, जिनका स्वभाव श्रेष्ठ है, जो नरोत्तम धनुष-बाण और तरकस लिये रहते हैं, जो मनोहर रूपवाले एवं सभामें स्थित हैं, कस्तूरीका तिलक जिनकी शोभा-वृद्धि कर रहा है, जो मुकुट एवं कर्णभूषणोंसे सुशोभित हैं, जिनके मुखपर मुसकराहट छायी रहती है, जो सूर्यवंशमें उत्पन्न, दिव्यरूपधारी, दशरथके पुत्र, मधुपुरीमें वास करनेवाले, देवस्वरूप और लवणासुरका मर्दन करनेवाले हैं, (उन शत्रुघ्नजीका मैं ध्यान करता हूँ ।)'

'इस प्रकार श्रीरामके चरणोंसे निर्निमेष दृष्टि निहारनेवाले शत्रुघ्नका अपने हृदयमें ध्यान करके उनके इस पावन ...

निश्चय ही प्राप्त हो जाता है । इसके पाठ आदिसे पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति हो जाती है, धन चाहनेवाला धन पा लेता है और कामार्थी—पत्नी चाहनेवालेकी इच्छापूर्ति हो जाती है । भूगण्डलमें यह शत्रुत-कवच निश्चय ही शुभकारक है, इसीलिये मनुष्यको भक्तिपूर्वक सदा इसका पाठ करना चाहिये ।'

श्रीहनुमत्-उपासना

(लेखक—स्व० पं० श्रीहनुमानजी शर्मा)

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
　　दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
　　रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥
　　　　(मानस, सुन्दर० श्लोक ३)

'अतुल बलके धाम, सोनेके पर्वत (सुमेरु) के समान कान्तियुक्त शरीरवाले, दैत्यरूपी वन [को ध्वंस करने] के लिये अग्निरूप, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य, सम्पूर्ण गुणोंके निधान, वानरोंके स्वामी, श्रीरघुनाथके प्रिय भक्त पवनपुत्र श्रीहनुमान्-जीको मैं प्रणाम करता हूँ ।'

(१) पुराणोंसे ज्ञात हो सकता है कि हनुमान्जी पवनके पुत्र और रुद्रके अवतार हैं । देवी, दानवी और मानवी सृष्टिमें इनका मान और महत्त्व सर्वोच्च है । जिस समय इन्होंने जन्म लिया, उसी समय ब्रह्मा-विष्णु-महेश-यम-वरुण-कुबेर-अग्नि-वायु-इन्द्रादिने इनको अजरामर बना दिया था और इन्हें अनेक प्रकारके वर दिये थे ।

(२) जिस प्रकार ध्यान, धारणा और समाधिके प्रभावसे ब्रह्मादिका सर्वाधिक सम्मान है, उसी प्रकार हनुमान्जी अखण्ड ब्रह्मचर्यके पालनसे अधिक पूजित और प्रसिद्ध हुए हैं और इसी कारण इनकी उपासना सर्वत्र होती है ।

(३) पुराणों और रामायणोंमें इनके अद्भुत चरित्रोंका अनेक स्थानोंमें वर्णन आया है । धर्मशास्त्रोंमें इनकी सेवा-पूजा और स्तोत्र-पाठादिका महान् फल बतलाया गया है और आराधनाके ग्रन्थोंमें इनकी उपासनाके मनोवाञ्छित फल देनेवाले विधान हैं । इनके सिवा कुछ ज्ञातव्य बातोंका उल्लेख यहाँ किया जाता है ।

(४) उपासकलोग अपनी भावनाके अनुसार हनुमान्जीको वीर और दास—दोनों रूपोंमें मानते हैं और आपत्तिप्रतिनिवारणार्थ वीररूपकी तथा सुखलाभार्थ दासरूपकी आराधना करते हैं । शास्त्रोंमें दोनोंके ध्यान और विधान हैं और वीरके लिये राजस तथा दासके लिये सात्त्विक उपचारोंका उल्लेख है ।

(५) वास्तवमें हनुमान्जीने समुद्रके लाँघने, सुरसा, सिंहिनी और लङ्किनीका वध करने, लङ्का जलाने, रावणादिका तिरस्कार करने और पातालमें प्रविष्ट हुए रामको लाने आदिमें सर्वोत्कृष्ट वीरत्व और स्वामीकी सेवा तथा भक्तोंकी अभीष्ट-सिद्धि आदिमें सर्वाधिक दासत्व दरसाया था । ऐसे सर्वोत्तम देवकी उपासना अवश्य ही हितकारिणी होती है ।

(६) अनुष्ठानप्रकाशादिमें हनुमान्जीकी उपासनाके अद्भुत और अनुभूत अनेकों अनुष्ठान हैं, जिनसे वे शीघ्र प्रसन्न होते हैं । इसके सिवा 'मन्त्रमहोदधि', 'मन्त्रमहार्णव' और 'मन्त्रसंग्रह' आदिमें इनके प्रत्यक्ष होनेके उपाय भी हैं और 'हनुमत्-उपासना-कल्पद्रुम' तो इस विषयका सर्वोत्तम ग्रन्थ है ही । उपासकोंको चाहिये कि उनका अनुशीलन करें ।

(७) हनुमान्जीकी उपासनामें पूजा-जप-पाठ और पताकादिका देना मुख्य है और भक्ति, श्रद्धा, समर्पण तथा संलग्नता होना आवश्यक है । इन सबके विधान उपर्युक्त ग्रन्थोंमें भलीभाँति लिखे हैं; अतः यहाँ उनकी पुनरावृत्ति आवश्यक नहीं, केवल ज्ञातव्य बातोंका उल्लेख ही आवश्यक है ।

(८) पूजा—पञ्चोपचार, दशोपचार और षोडशो-पचारादि उपचारोंका उपयोग कामनाके अनुसार किया जाता है । विशेषता यह है [illegible] हो, उसीको समासित्र [illegible] उपासक शीघ्रतामें [illegible]

(१६)

उद्यन्मार्तण्डकोटिप्रकटरुचियुतं चारुवीरासनस्थं

मौञ्जीयज्ञोपवीताभरणरुचिरशिखाशोभितं कुण्डलाङ्कम्।

भक्तानामिष्टदं तं प्रणतमुनिजनं वेदनादप्रमोदं

ध्यायेद्देवं विधेयं प्लवगकुलपतिं गोष्पदीभूतवार्धिम्॥

उदय होते हुए करोड़ों सूर्य-जैसे तेजस्वी, मनोरम वीरासनसे स्थित, मूँजकी मेखला तथा यज्ञोपवीत धारण करनेवाले, आभरणोंकी सुन्दर शिखावाले, कुण्डलोंसे शोभित, भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाले, मुनिगणोंद्वारा वन्दित, वेदनादसे प्रहर्षित, वानरकुलके स्वामी और समुद्रको गोपद के समान लाँघ जानेवाले दासरूपका ध्यान सर्वानुकूल प्रतीत होता है।

(१७) दूसरा प्रकार यह है कि जहाँ-कहीं, जिस मूर्तिके देखनेसे चित्त आकर्षित हो, उसे अनेक बार देखकर ऐसा अभ्यास कर लेना चाहिये कि नेत्र बंद करनेपर भी वह स्वरूप यथावत् दीखता रहे। इस प्रकार सब मूर्तियोंको हृदयंगम करके जप करते समय अन्तर्दर्शन करते रहना चाहिये और जपकी संख्या मनियोंकी माला या अँगुलियोंकी करमालाके बदले वर्णमालात्मक मानसिक मालासे करनी चाहिये। इस क्रियासे हाथसे फिरनेवाली माला, मुँहसे होनेवाले जप और मन्त्रशास्त्रमें रहनेवाला मन इधर-उधर भटकनेके बदले संयमित रहेंगे।

(१८) इस प्रकार जप, ध्यान और संख्या—इस 'मानसकी त्रिवेणी' में उपस्थित होकर साधन करनेसे तामस, राजस और सात्त्विक—सभी साधनाएँ शीघ्र सफल होती हैं और यदि इस प्रकारका जप निष्काम किया जाय तो फिर अकेले हनुमान्जी ही नहीं, बल्कि वे और उनके स्वामी—दोनों प्रत्यक्ष होकर उपासकके समीप बैठे रहें और उससे बात करनेकी बाट देखते रहें।

(१९) मनको एकाग्र करना मनुष्यके लिये असाध्य नहीं है। अभ्याससे दूसरे काम करते हुए भी मनको हम अपने वशमें आरूढ़ रख सकते हैं। जैसे—१-अश्वारोही महायोद्धा सेनासमूहके एकाधिक आक्रमणोंसे आक्रान्त होकर भी युद्धभूमिमें भटके हुए साथीको हठात् निकाल ले जाते हैं। २-पचास फुट ऊँचे बाँसके सिरेपर निराधार सीधे सोये हुए नट-बालक अपने सिरपर रखते हुए पाँच बर्तनोंको नीचे नहीं गिरने देते। ३-अनुभवी न्यायाधीश कई अभियोगोंकी अलग-अलग अपील एक साथमें सुनते हुए भी अपना आशापत्र निर्दोष लिख देते हैं। ४-भारतमार्तण्ड पण्डित गट्टूलालजी विभिन्न भाषाओंमें पूछे हुए अनेक प्रश्नोंका यथायोग्य उत्तर एक ही बारमें दे देते थे और ५-सिरपर जलपूर्ण दो घड़े तथा बगलमें एक घड़ा और डोरी लिये हुए मुँहसे वार्तालाप सो अनेक ग्रामीण स्त्रियाँतक करती हैं। अतएव अभ्यास होनेपर जिस प्रकार ये सब काम होते हैं, उसी प्रकार उपासकोंका मन भी एकाग्र हो सकता है। अस्तु,

(२०) इष्टदेवको प्रसन्न करनेके लिये तदनुकूल आचरणोंकी भी आवश्यकता होती है। हनुमान्जी रामचन्द्रजीके चरित्रोंसे प्रसन्न होते हैं। अतएव वाल्मीकि-रामायण, तुलसीकृत रामायण, मूलरामायण और सुन्दरकाण्ड आदिके सादे, सार्थ या सम्पुटयुक्त पाठ करने चाहिये। इनके सिवा कथा-वार्ता, पुराण-पाठ या रामलीलाका अभिनय आदि जो भी अनुकूल हों, करने चाहिये।

(२१) प्रयोगादिके प्रारम्भमें 'प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्य' के अनुसार पूर्वाभिमुख होनेमें कई जगह स्थान-विशेषके कारण असुविधा हो जाती है। ऐसी स्थितिमें 'पूज्यपूजकयोर्मध्ये पूर्वाशापरिकल्पयेत् सुधीः' (पूजकको ऐसी भावना कर लेनी चाहिये कि उसके आराध्यदेव पूर्व दिशामें ही स्थित हैं) के अनुसार पूज्य (गो-गुरु-विप्र-देवादि) के सम्मुख बैठना चाहिये और 'देवो भूत्वा देवं यजेत्—देवके समान होकर देवता-का भजन करना चाहिये।' अर्थात् त्रिनयन, चतुर्भुज, पञ्चमुखादिके अर्चनमें अपनेमें तत्तुल्य विधान (न्यास, मुद्रा और उपचारादि) करने चाहिये। साथ ही 'यथा देहे तथा देवे—जिस प्रकार पूजा आदिमें अपने शरीरमें गन्धादि लेपन या अङ्गन्यासादि करते हैं, उसी प्रकार देवताके भी होने चाहिये।' 'वित्तशाठ्यं न कारयेत्—धर्माचरणादिमें वित्त (या सामर्थ्य) की शठता नहीं करनी चाहिये।' अर्थात् धन, मन और समय जितना लगाया जा सके, उसमें संकोच नहीं होना चाहिये।

अन्तमें सम्पुटित पाठके कुछ मन्त्र सूचित कर देना प्रसङ्गके अनुकूल प्रतीत होता है—

(१) उपर्युक्त रामायणादिमें किसी भी श्लोकके 'श्री रामाय नमः' का सम्पुट लगानेसे हनूमान्जी प्रसन्न होते हैं।

हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति

(लेखक—ज्योतिषसम्राट् पं० श्रीभैरोरामजी शर्मा गौड़)

सन् १९४९में मैं बदरीनाथ धाम (उत्तराखण्ड) गया था। बदरीनाथ धामसे १९ या २९ मील पूर्व आद्य शंकराचार्यद्वारा संस्थापित 'ज्योतिर्मठ' (ज्योतिष्पीठ) है। मैंने एक दिन ज्योतिर्मठमें विश्राम किया। संयोगवश उस समय ज्योतिर्मठके तत्कालीन शंकराचार्य श्री १००८ स्वामी ब्रह्मानन्दजी सरस्वती महाराज वहाँ उपस्थित थे, जो कुछ समयके लिये विश्रामार्थ वहाँ आये हुए थे। रात्रिमें श्रीशंकराचार्यजीके दर्शनार्थ उनकी सेवामें उपस्थित हुआ तो वे मुझे देखकर अत्यन्त संतुष्ट हुए। कुशल-मङ्गलके पश्चात् उन्होंने मुझसे कहा—"तुम प्रतिष्ठित वेदज्ञ-परिवारके वेदज्ञ विद्वान् हो; अतः हम तुमको आशीर्वादरूपमें अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति' नामकी हस्तपुस्तिका दे रहे हैं; इसे स्वीकार करो।" मैंने श्रीशंकराचार्यजीसे पुस्तिका प्राप्तकर अपना परम सौभाग्य समझा। पश्चात् श्रीशंकराचार्यजीने बतलाया कि 'हमने जो पुस्तिका तुमको दी है, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सिद्धिप्रदा है। इसमें २० मन्त्र हैं। प्रत्येक मन्त्रका ग्यारह-ग्यारह हजार बार ब्राह्मणके माध्यमसे हनुमान्‌जीके किसी भी प्राचीन मन्दिरमें ब्रह्मचर्यपूर्वक जप करनेसे सभी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं। मन्त्रोंको सिद्ध कर लेनेके पश्चात् मन्त्रोंका प्रयोग करनेपर कठिन-से-कठिन कार्य सुसाध्य हो जाते हैं।'

'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति'के मन्त्रोंकी अनुष्ठान-विधि इस प्रकार है—शुभ मुहूर्तमें उक्त पद्धतिके प्रत्येक मन्त्रको अलग-अलग ग्यारह-ग्यारह हजार बार जप करके समस्त मन्त्रोंको सिद्ध कर लेना चाहिये। पश्चात् आवश्यकता पड़नेपर मनुष्यको स्वयं अपने कार्यके लिये अथवा दूसरेके कार्यके लिये 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति' के प्रत्येक मन्त्रका ग्यारह-ग्यारह हजार जप करके, पीछे प्रत्येक मन्त्रका दशांश ग्यारह सौ (११००) हवन करना चाहिये।

श्रीशंकराचार्यजीद्वारा प्रदत्त 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति' का मैंने स्वयं कई बार अनुष्ठान करके चमत्कारपूर्ण लाभ उठाया है और कई बार मैंने अपने सीनेवाले विपद्ग्रस्त परिचितोंसे भी उक्त पद्धतिका अनुष्ठान कराया है, जिसके द्वारा उन्हें भी अद्भुत लाभ हुआ है। अतः मैं सर्वसाधारणके कल्याणार्थ 'कल्याण'के विशेषाङ्क 'श्रीरामाङ्क'में श्रीशंकराचार्यजीके द्वारा प्रदत्त 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति'को प्रकाशित कर दे रहा हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जो मनुष्य श्रद्धा-भक्ति और विश्वासके साथ अपनी विपत्तिके निवारणार्थ 'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति'का सविधि अनुष्ठान करेगा, वह अवश्य सफलीभूत होगा*।

'हनुमन्मन्त्रचमत्कारानुष्ठानपद्धति'के मन्त्र इस प्रकार हैं—

१—ॐ नमो हनुमते महाबलाय वायुसुताय अञ्जनीगर्भसम्भूताय अखण्डब्रह्मचर्यव्रतपालनतत्पराय धवलीकृतजगत्त्रितयाय ज्वलदग्निसूर्यकोटिसमप्रभाय प्रकटपराक्रमाय आक्रान्तदिङ्मण्डलाय यशोवितानाय यशोऽलंकृताय शोभिताननाय महासामर्थ्याय महातेजःपुञ्जविराजमानाय श्रीरामभक्तितत्पराय श्रीरामलक्ष्मणानन्दकारणाय कपिसैन्यप्राकाराय सुग्रीवसख्यकारणाय सुग्रीवसाहाय्यकारणाय ब्रह्मास्त्रब्रह्मशक्तिग्रसनाय लक्ष्मणशक्तिभेदनिवारणाय शल्यविशल्यौषधिसमानयनाय बालोदितभानुमण्डलग्रसनाय अक्षकुमारच्छेदनाय वनरक्षाकरसमूहविभञ्जनाय द्रोणपर्वतोत्पाटनाय स्वामिवचनसम्पादितार्जुनसंयुगसंग्रामाय गम्भीरशब्दोदयाय दक्षिणाशामार्तण्डाय मेरुपर्वतपीठिकार्चनाय दावानलकालाग्निरुद्राय समुद्रलङ्घनाय सीताश्वासनाय सीतारक्षकाय राक्षसीसंघविदारणाय अशोकवनविदारणाय लङ्कापुरीदहनाय दशग्रीवशिरःकृन्तकाय कुम्भकर्णादिवधकारणाय बालिनिबर्हणकारणाय मेघनादहोमविध्वंसनाय इन्द्रजिद्वधकारणाय सर्वशास्त्रपारंगताय सर्वग्रहविनाशकाय सर्वज्वरहराय सर्वभयनिवारणाय सर्वकष्टनिवारणाय सर्वापत्तिनिवारणाय सर्वदुष्टादिनिबर्हणाय सर्वशत्रुच्छेदनाय भूतप्रेतपिशाचडाकिनीशाकिनीध्वंसकाय सर्वकार्यसाधकाय प्राणिमात्ररक्षकाय रामदूताय स्वाहा।

२—ॐ नमो हनुमते महाबलाय विपक्षाय अमितविक्रमाय प्रकटपराक्रमाय महाबलाय सूर्यकोटिसमप्रभाय रामदूताय स्वाहा।

३—ॐ नमो हनुमते महाबलाय रामसेवकाय रामभक्तितत्पराय रामहृदयाय लक्ष्मणशक्तिभेदनिवारणाय लक्ष्मणरक्षकाय दुष्टनिबर्हणाय रामदूताय स्वाहा।

४—ॐ नमो हनुमते महाबलाय सर्वशत्रुसंहारणाय सर्वरोगहराय सर्ववशीकरणाय रामदूताय स्वाहा।

* अनुष्ठानकर्ताओंको चाहिये कि वह [illegible] हवन करें, तथा कार्य— [illegible]

सर्वसिद्धिप्रद प्रयोग

(लेखक—कविराज पं० [illegible] गुरु)

सर्वाधारपुरुषोत्तम श्रीभगवान् रामभद्रके शरणागत होकर इस प्रयोगसे फल लेनेवाला मानव मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है। श्रीरामभद्रकी शरणागतिके सम्बन्धमें परमपिता परम-दयालु प्रभु स्वयं ही घोषणा करते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा० रा० ६ । १८ । ३३)

'प्राणिमात्रके लिये यह मेरी प्रतिज्ञा है कि यदि कोई जीव 'मैं आपका हूँ'—यों कहता हुआ केवल एक बार या मेरी भी मेरे शरणागत होकर मुझसे रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसको मैं सभी प्राणियोंसे सर्वथा, सदाके लिये निर्भय कर देता हूँ।' एक बार—केवल एक बार यह कह देना ही पर्याप्त है कि 'मैं आपका हूँ'; तथा एक बारकी शरणागति ही कल्याणके लिये पर्याप्त है। श्रीभगवान्की यह प्रतिज्ञा सदा-सर्वदाके लिये है। क्योंकि 'रामो द्विर्नाभिभाषते' (वा० रा० २ । १८ । ३०)—राम दो बार नहीं बोलते।' जो भी प्राणी एक बार उनके शरणागत हो गया, वह अभय हो गया। परम दयालु दयार्णव यह नहीं देखते कि यह पापी है या धर्मात्मा; क्योंकि बच्चा अगर गंदा भी है तो माता उसे स्वच्छ करके, नहला-धुलाकर आँखमें टीकी लगाकर, स्वच्छ वस्त्र पहनाकर, हृदयमें लगाकर, अपना दुग्धरूपी अमृत पिलाती है। फिर परमपिता हमारे प्रभु तो अपनी संतानोंके प्रति परमवात्सल्यमयी माताने भी अनन्तगुना प्रेम रखते हैं। उनकी उदारताकी कोई सीमा नहीं है। उनके शरणागत जीव तो एक बार शरणागत होते ही निहाल हो जाता है, [illegible] लिये उसे अपना लेते हैं। [illegible] जिनमें असंख्य पापोंको भूल जाते हैं।

कामाद्विजुपकारेण
न [illegible]

अभी कोई [illegible]
उनके उस एक ही
पापमें रमने [illegible]
उसके [illegible]

श्रीवाल्मीकिरामायणान्तर्गत सुन्दरकाण्डका यह अपूर्व प्रयोग है। निम्नाङ्कित चार श्लोक—जिनका घोष करते हुए श्रीहनुमान्जीने लङ्कामें सिंहनाद करके विजयका डंका बजाया तथा पुरीके समस्त वीरोंके दिलोंको दहलाकर तथा लङ्कापुरीको जलाकर ध्वंस कर दिया—ये श्लोक नहीं हैं, मन्त्र हैं और वेदके तुल्य महत्त्व रखते हैं। यों तो श्रीवाल्मीकिरामायणका एक-एक अक्षर उसका उच्चारण करने वाले मानवको सब पापोंसे विमुक्तकर धर्म-अर्थ-काम—इन तीनों पुरुषार्थोंके साथ-साथ परमपुरुषार्थ मोक्षको भी अनायास ही प्राप्त करा देता है।

स्वयं वाल्मीकिमुनिका वचन है—

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्
स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।
वणिग्जनः पण्यफलत्वमीया-
ज्जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात्॥

(वा० रा०, बा० १ । १००)

'इसे ब्राह्मण पढ़े तो विद्वान् हो, क्षत्रिय पढ़ता हो तो पृथ्वीका राज्य प्राप्त करे, वैश्य हो व्यापारमें लाभ हो और शूद्र भी प्रतिष्ठा प्राप्त करे।'

इससे दीर्घायुकी भी प्राप्ति होती है—

पूजयंश्च पठंश्चेममितिहासं पुरातनम्।
सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥

(वही, ६ । १२८ । ११०)

'इस पुरातन इतिहासका पूजन एवं पाठ करनेवाला व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है और लम्बी आयु प्राप्त करता है।'

[illegible] इस प्रयोग [illegible] किया जाता है—

[illegible] सुन्दरकाण्डके प्रत्येक सर्गको
[illegible] पाठ [illegible] तो बहुत उत्तम; समयाभाव
[illegible] न हो तो इन चार
[illegible] श्रीसीताराम
[illegible] शरणागत होकर,
[illegible] किया जाय या
[illegible] यह
[illegible] तो देखी मानता

बनेगी और हमारा मन भगवान्‌में लग जायगा । भजनमें मस्त बने रहना । कभी-न-कभी वे हमारी अरजी सुनेंगे—

एक धुन रटते रहो जब लग घट में प्रान ।
कबहुँक दीनदयाल के भनक परैगी कान ॥

सबसे बड़ा साधन है, एकान्त । एकान्तमें जानेपर सूक्ष्म राग उत्पन्न होता है । उसे छोड़नेका प्रयत्न करो । घरमें किवाड़ बंद करके बैठो । यदि हम आत्म-कल्याण करना चाहते हैं तो हमें देरी-से-देरी ४ बजे और जल्दी-से-जल्दी ३ बजे बिछौना त्याग कर देना चाहिये । हमें जो साधन बताया गया है, उसे यथार्थरूपसे करें । ब्राह्ममुहूर्तमें हमको बड़ी शान्ति मिलती है । जिस समय चाँदनी खिली हो, भगवन्नाममें मन लगा हो, शान्त वातावरण हो तो तुम देखोगे कि इससे बढ़कर कोई सुख नहीं है । इतना श्रम नहीं बढ़ाना चाहिये, जिससे कि हम सबेरे जल्दी न उठ सकें । प्रातःकाल जल्दी उठनेकी आदत डालो । तीनसे पहले उठना नहीं और पाँचके बाद सोना नहीं । गृहस्थको कम-से-कम पाँच घंटा और ज्यादा-से-ज्यादा ७ घंटा सोना चाहिये । ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों तृष्णा बढ़ती जाती है और नींद घटती जाती है । यदि तुम संकल्प रोकनेमें असमर्थ हो तो शरणागति ग्रहण कर लो ।

श्रीगुरुदेवकी आज्ञाके अनुसार विश्वासके साथ साधन करनेपर भगवान् मिलते ही हैं । साङ्गोपाङ्ग यत्न करनेसे वे मिलते हैं । भगवान् भक्तोंको पहले यहाँ मिलते हैं, तत्पश्चात् वहाँ गोलोकमें मिलते हैं । हम कहें कि 'भगवान् हमको मरनेके बाद मिलेंगे', यह मैं नहीं मानता । भगवान्‌को यहीं प्राप्त करना है । गुरुवाक्यपर विश्वास करनेसे और आज्ञानुसार प्रयत्न करनेपर वे प्राप्त होते हैं । शास्त्र-ज्ञानका अहंकार छोड़कर, बिल्कुल तर्करहित होकर हमको साधनमें लग जाना चाहिये । निष्ठा पक्की होनी चाहिये । ज्यादा शास्त्र पढ़नेसे वे समझमें नहीं आयेंगे । जिनको वह अपना लेंगे, उसीकी समझमें वे आयेंगे ।

'अधैर्य' साधनका एक दोष है । साधन धैर्यपूर्वक करें, एकनिष्ठासे करें, उसमें फेर-फार नहीं करना चाहिये । बार-बार इष्ट और साधन बदलनेसे असंतोष एवं अश्रद्धा होगी । मैं चित्रकूटको कभी चित्रकूट नहीं समझता ।

ध्यान करनेके लिये प्रथम मुख्य साधन है, तीव्र इच्छा और दृढ़संकल्प । ध्यानके समय जब मन बाहरके विषयोंका चिन्तन करे, तब मनका निरीक्षण करके उसे उस दिशासे मोड़कर ध्यानमें लगाओ । मन शुद्ध हो यानी ध्यानके समय कोई विचार न हो तो निरीक्षण करनेकी कोई जरूरत नहीं ।

ध्यानसे परमात्माकी प्राप्ति होती है । श्रीरामका ध्यान जीवके लिये श्रेयस्कर है । ध्यान-पूजन रोज करना । इससे मनकी शुद्धि होती है । भजन ही सार है, इतना ध्यान रखना । जीवन अमूल्य है, इसका ध्यान रखना । जीवनमें ईश्वरकी कृपा प्राप्त हो, यही अभिलाषा रखना । अशरण-शरण पतितपावन एक सर्वेश्वर श्रीराम ही हैं ।

भगवान् कैसे हैं ! 'कंदर्प-कोटि-किशोर-मूर्ति ।' यह भगवान्‌का ध्यान है, मनको केन्द्रित करनेके लिये । हम मनका अनुसंधान करते हुए अन्य झूठे और पथभ्रष्ट करनेवाले संकल्पोंको रोक दें तो निश्चित ही मन एकाग्र हो जायगा । बादमें उसे निरुद्ध करनेका प्रयत्न करना चाहिये । करके देखो, मन कैसा लय होता है, कैसा एकाग्र होता है । विद्यार्थी जब पढ़नेमें तल्लीन हो जाता है, तब उसके पाससे कौन निकल गया, इसका उसे पता नहीं रहता ।

श्रीरामचन्द्रजीका अखण्ड स्मरण-चिन्तन करनेको 'प्रभुध्यान' कहते हैं । ध्यानके निमित्त हृदयमें साङ्गोपाङ्ग मूर्ति ऐसी बनानी चाहिये, जो दीर्घकालपर्यन्त ज्यों-की-त्यों बनी रहे । प्रारम्भमें बिना किसी सहायताके ध्यान होना किंचित् कठिन है । इसलिये श्रीरघुनन्दनलालजीके मनोहर चित्रको पूजनके समय सामने रखना चाहिये ।

चित्रपट आसनके आगेसे एक हाथ और एक बित्ता दूर रहना चाहिये और उतना ही जमीनसे ऊँचा । उनपर स्वामी-भावका अवलम्बन करके ही ध्यानका अभ्यास करना चाहिये । स्वामी-सेवकके नित्य-सम्बन्धसे यह ध्यानरूपी क्रिया अच्छी तरह बनती है ।

फिर भगवान्‌की हृदयस्थ मूर्तिपर मनको बाँधना चाहिये । पर अभ्यासके प्रारम्भमें पूर्ण मूर्तिके बननेमें और ज्यों-की-त्यों बनाये रखनेमें बहुत कठिनाई जान पड़ेगी—जैसे, कभी चरण नहीं दीखेंगे, कभी कर नहीं दीखेंगे, कभी सिर नहीं दीखेगा । पर ध्यान रहे, यह बात साधनके प्रारम्भमें होती है । इस कठिनाईको दूर करनेमें चित्र सामने रखनेसे बड़ी सहायता मिलेगी और कुछ काल अभ्यास करनेसे कठिनाइयाँ जाती रहेंगी ।

ध्यान-का होना आसान बात नहीं । शुरूमें खूब सामान्य ढंगसे ध्यान-जप करे । इससे शारीरिक, सामाजिक आदि सब बाधाएँ, जो साधनमें आनेवाली होंगी, दूर हो जायँगी । श्रद्धा खूब होनी चाहिये । एक भाईने सामान्य ढंगसे १८ वर्ष ध्यान किया । फिर थोड़ा साधन करनेपर अच्छा परिणाम देखा और उन्हें पूर्ण संतोष हुआ ।

स्वप्न-जैसी अवस्थामें जप यदि होता है तो यह अच्छा है । इस अवस्थाको हटानेका यत्न नहीं करना । अगर मन्त्र-जपका ध्यान रहता है तो आप उसे स्वप्न कैसे कह सकते हैं ? मनका निरोध पूर्णतया करना । एकाग्रता आत्मदृष्टिसे आती है ।

मेरुदण्ड सदा सीधा रखना । साधकको चिकने पदार्थ ज्यादा नहीं खाने चाहिये । इससे प्रमाद बढ़ता है । साधकके स्वच्छ, धुले हुए वस्त्र और आसनको कोई न छुए । बिना स्नान आसनको छूना नहीं । आसनको अपने हाथोंसे साफ करना, किसीके पहने हुए वस्त्र नहीं पहनना । आसन मुलायम रखना ।

सम्यक् प्रकारसे क्रियामें आरूढ़ हो जाना चाहिये । यह बात कहने-सुननेकी नहीं है, आचरणमें लानेकी है । कितना ही लिखो-पढ़ो, लेकिन बिना अनुभव सब फीका है । अनुभूतिका परिणाम सत्य तत्त्व है ।

(संकलनकर्ता—श्रीमंदा श्रीमती, श्रीपार्वती योगिनी)

साकेत—दिव्य अयोध्या

(लेखक—मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी)

साकेते रम्यपीठे मणिगणखचिते कल्पवृक्षस्य मूले
मन्दारादौघपुष्पे कुसुमितविपिने नेत्रजासरयूकूले ।
जानक्याढ्यं रमन्तं नृपमणिविदितं मन्मथाप्येककलितं
रामं लोकाभिरामं निजहृदिकमले भासयन्तं भजेऽहम् ॥

साकेतवासरसकेलिकियो विदग्धां
ब्रह्मेन्द्ररुद्रवसुमुख्यसमाश्रितां ताम् ।
आनन्दमग्नपदवीकपदां नतोऽस्मि
तां रामप्रेमजलपूर्णनदीस्वरूपाम् ॥

ब्रह्मादिभिः सुखैस्समुपास्यमानां
लक्ष्म्यादिभिश्च सखिभिः परिसेव्यमानाम् ।
सर्वेश्वरैः स्वगणैः परिगीयमानां
तां राघवेन्द्रनगरीं शिरसा नमामि ॥

'दिव्यातिदिव्य साकेतलोकमें भगवान्‌के नेत्र (-जल) से उत्पन्न सरयू नदीके निर्मल कूलपर पुष्पित कानन है । उसके अन्तर्गत कल्पवृक्षके मूलमें, जो नाना प्रकारकी फलपुष्पिका पुष्पमात्र है, मणिजटित एक स्वर्णमय पीठ है । उसपर आह्लादिनी जानकीके साथ दिव्य केलिमें रत, राजनीतिके धुरन्धर, अपनी आराध्या एवं प्रियतमा भगवती जानकीके ही ध्यानमें अनन्यभावसे परायण तथा अपने भिखारियोंके हृदयरूपी कमलमें प्रकाश फैलाते हुए लोक-सुखदायक भगवान् श्रीरामका मैं भजन करता हूँ ।'

'मैं उन नदीश्रेष्ठ भगवती सरयूको प्रणाम करता हूँ, जो साकेतलोकमें निरन्तर होनेवाली रासरूपी सरस केलिके विधानमें परम पटु हैं, जो शक्तिसहित ब्रह्मा, रुद्र, वसु आदि देवगणोंके द्वारा सेवित हैं, जिनके रूपमें स्वयं आनन्दमय पद ही प्रकट होकर प्रवहमान है तथा जो भगवान् श्रीरामके नेत्रोंसे निकले हुए प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण जलस्वरूपा हैं ।'

'मैं भगवान् राघवेन्द्रकी राजधानी अयोध्यापुरीको आदर-पूर्वक वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मादि देववर्गोंके द्वारा उपासित हैं, भगवती लक्ष्मी-प्रभृति अपनी सखियोंद्वारा सुसेवित हैं और जिनका अपने-अपने गणों (पार्षदों) सहित सम्पूर्ण ईश्वरकोटिके देवताओंके द्वारा स्तवन किया जाता है ।'

आनन्दाम्बुधि भगवान्‌के निजधामके विषयमें पूर्वकालमें दार्शनिकोंने प्रश्नोत्तर-रूपमें इस प्रकार समझाया था—

प्रश्न—किमात्मिका भगवद्व्यक्तिः ?

प्रश्न—भगवान्‌का आविर्भाव या प्राकट्य किस रूपमें होता है ?

उत्तर—यदात्मको भगवान् तदात्मिका भगवद्व्यक्तिः ।

उत्तर—भगवान्‌का अपना जो स्वरूप है, उसी रूपमें उनकी अभिव्यक्ति होती है ।

प्रश्न—किमात्मको भगवान् ?

प्रश्न—भगवान्‌का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—ज्ञानात्मको भगवान्, चिदात्मको भगवान्, आनन्दात्मको भगवान् । अतएव सच्चिदानन्दात्मिका भगवद्व्यक्तिः ।

मन-बर होना आसान बात नहीं। शुरूमें खूब सामान्य ढंगसे मन्त्र-जप करो। इससे शारीरिक, सामाजिक आदि मन्य बाधाएँ, जो साधनमें आनेवाली होंगी, दूर हो जायँगी। मन्त्र खूब होनी चाहिये। एक भाईने सामान्य ढंगसे २८ पर्व मन्त्र-जप किया। फिर थोड़ा साधन करनेपर अच्छा परिणाम देखा और उन्हें पूर्ण संतोष हुआ।

तन्द्रा-जैसी अवस्थामें जप यदि होता है तो यह अच्छा है। इस अवस्थाको हटानेका यत्न नहीं करना। मगर मन्त्र-जपका ध्यान रहता है तो आप उसे तन्द्रा कैसे कह सकते हैं? मनका निरोध पूर्णतया करना। एकाग्रता आन्तरदृष्टिसे आती है।

मेरुदण्ड सतत सीधा रखना। साधकको चिकने पदार्थ ज्यादा नहीं खाने चाहिये। इससे प्रमाद बढ़ता है। साधकके स्वच्छ, धुले हुए वस्त्र और आसनको कोई न छुए। बिना स्नान आसनको छूना नहीं। साधनकी जगह अपने हाथोंसे साफ करना, किसीके पहने हुए वस्त्र नहीं पहनना। आसन मुलायम रखना।

सम्यक् प्रकारसे क्रियामें आरूढ़ हो जाना चाहिये। यह बात कहने सुननेकी नहीं है, आचरणमें लानेकी है। कितना ही लिखो-पढ़ो, लेकिन बिना अनुभव सब फीका है। अनुभूतिका परिणाम सत्य तत्त्व है।

(संकलनकर्ता—श्रीमती बीमाबी, श्रीपार्वती बांभणी)

साकेत—दिव्य अयोध्या

(लेखक—मानसतत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी)

वन्दे स्वर्णपीठे मणिगणखचिते कल्पवृक्षस्य मूले
सरयूतीरसुरम्ये कुसुमितविपिने मित्रजाम्बरक्षके।
वामाङ्गे राजमानं नृपसमविधृतं मन्मथाश्चैकविम्बं
रामं लोकाभिरामं निजजनहृदयमध्ये मासयन्तं मजेऽहम्॥

साकेतवासरसकेलिविधौ विदग्धौ
ब्रह्मेन्द्ररुद्रवसुवन्दितसाधितद्युयम्।
आनन्दभावद्रवरूपमयीं मवोऽहमि
तां रामप्रेमकरुणामयरूपाम्॥

तां
महद्भिः सुकवैस्समुपास्यमानां
लक्ष्म्यादिभिश्च सखिभिः परिसेव्यमानाम्।
स्वीयैश्च स्वगणैः परिगीयमानां
तां राघवेन्द्रनगरीं शिरसा नमामि॥

'दिव्यातिदिव्य साकेतलोकमें भगवान्के नेत्र (—जल) से
न सरयू नदीके निर्मल सुन्दर पुष्पित कानन है।
के अन्तर्गत कल्पवृक्षके मूलमें, जो नाना प्रकारकी
रत्नोंका पुञ्जमात्र है, मणिजटित एक स्वर्णमय पीठ है।
उत्तर अपनजननी जानकीके साथ दिव्य केलिमें रत, राज-
कैकिके सुन्दर, अपनी आराध्या एवं प्रियतमा भगवती
जनोंके ही मनमें अनन्यभावसे परायण तथा अपने
निजजनोंके हृदयरूपी कमलमें प्रकाश फैलाते हुए लोक-
गुणात्मक भगवान् श्रीरामका मैं भजन करता हूँ।'

मैं उन नदीश्रेष्ठ भगवती सरयूको प्रणाम करता हूँ— आनन्दमयकी

मैं साकेतधाममें निरन्तर होनेवाली रासरूपी सरस विधानमें परम पटु हैं, जो शक्तिसहित ब्रह्मा, रुद्र, वसु आदि देवगणोंके द्वारा सेवित हैं, जिनके रूपमें स्वयं आनन्दमय प्रेम ही द्रवित होकर प्रवहमान है तथा जो भगवान् श्रीरामके नेत्रोंसे निकले हुए प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण महासरूप हैं।'

मैं भगवान् राघवेन्द्रकी राजधानी अयोध्यापुरीकी आदर-पूर्वक वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मादि देववरोंके द्वारा उपासित हैं, भगवती लक्ष्मी-प्रभृति अपनी सखियोंद्वारा सुसेवित हैं और जिनका अपने-अपने गणों (पार्षदों) सहित सम्पूर्ण ईश्वरकोटिके देवताओंके द्वारा स्तवन किया जाता है।'

आनन्दाम्बुधि भगवान्के नित्यधामके विषयमें पूर्वकालमें दार्शनिकोंने प्रश्नोत्तर-रूपमें इस प्रकार समझाया था—

प्रश्न—किमात्मिका भगवद्व्यक्तिः?

प्रश्न—भगवान्का आविर्भाव या प्राकट्य किस रूपमें होता है?

उत्तर—यदात्मको भगवान् तदात्मिका भगवद्व्यक्तिः।

उत्तर—भगवान्का अपना जो स्वरूप है, उसी रूपमें उनकी अभिव्यक्ति होती है।

प्रश्न—किमात्मको भगवान्?

प्रश्न—भगवान्का क्या स्वरूप है?

उत्तर—ज्ञानात्मको भगवान्, विज्ञानात्मको भगवान् आनन्दात्मको भगवान्। अतएव

उत्तर—भगवान् सत्स्वरूप हैं, चित्स्वरूप हैं, आनन्दस्वरूप हैं। इसीलिये उनका साम्राज्य भी सत्स्वरूप, चित्स्वरूप, आनन्दस्वरूप ही होता है।

यहाँ चिन्मय अर्थ स्वयम्प्रकाशात्मकता मात्र है, चैतन्य नहीं। भगवान्‌के नित्यधामको ही वैदिक भाषामें 'त्रिपाद्विभूति' कहा जाता है। परमात्माकी समग्र विभूति दो भागोंमें विभक्त है। एक चतुर्थांशका एक भाग है, जिसे 'एकपाद्विभूति' कहा जाता है। इसीका नाम अविद्यापाद एवं मायापाद भी है और तीन चतुर्थांशोंका एक भाग है, जिसे 'त्रिपाद्विभूति' कहा जाता है और उसीके नाम ब्रह्मपाद, आनन्दपाद एवं शुद्धसत्त्वपादादि भी हैं।

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'
(ऋग्वेद १० । ९० । ३; अथर्व० १९ । ६ । ३; यजु० ३१ । ३; तै० आ० ३ । १२ । १)

'त्रिपादूर्ध्वमुदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।'
(ऋग्वेद १० । ९० । ४; यजु० ३१ । ४; अथर्व० १९ । ६ । २; तै० आ० ३ । १२ । २)

दोनों भागोंकी सीमा विरजा है। एकपाद् (मायापादविभूति) में ही युगपत् प्रतिक्षण अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड बना-बिगड़ा करते हैं—

सुनु खगेस ब्रह्मांड निकाया। पार जाइ कछु बिरचति माया॥
बाहरि तरह बिसाल तर माया। बहु ब्रह्मांड अनेक निकाया॥
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥
(श्रीरामचरितमानस)

इस 'एकपाद्विभूति'के लिये कहा गया है—

"इस 'मायापाद'के इर्द-गिर्द तथा नीचेकी ओर कोई सीमा नहीं है। इसके ऊपरकी ओर विरजा नदी है। त्रिपाद्विभूतिके नीचेकी सीमा विरजा नदी ही है, ऊपर तथा दोनों पार्श्वोंमें सीमा नहीं है।"

आज जिस ब्रह्माण्डमें हमलोग रहते हैं—'यह प्रकृतिसे उत्पन्न रमणीय ब्रह्माण्ड (भूः, भुवः आदि सात ऊपरके तथा अतल, वितल आदि सात नीचेके—कुल) चौदह लोकोंसे युक्त है। चौदहों भुवनोंसे युक्त सागरों, (स्वेदज, अण्डज, जरायुज एवं उद्भिज्ज—इन) चार कोटिके जीवोंसे तथा महान् आनन्ददायक पर्वतोंसे परिपूर्ण है। इतना ही नहीं, नर्मोंकी पर्वतोंके समान दस उत्तरोत्तर विशाल आवरणोंसे यह घिरा हुआ है। यह प्राकृत ब्रह्माण्ड पचास करोड़ योजन ऊँचा और पचास करोड़ योजन विस्तारवाला है। यह अण्ड अपने इर्द-गिर्द तथा ऊपर-नीचे कड़ाहेके समान कठोर भागसे उसी प्रकार सब ओर घिरा हुआ है, जैसे अनारका बीज कड़ी भूसीसे घिरा रहता है। जैसे कैथका फल बीजोंके आधारपर स्थित रहता है, उसी प्रकार जड़-चेतनात्मक ब्रह्माण्ड इसी अण्डकटाहके आधारपर स्थित है। पृथ्वीका घेरा एक करोड़ योजनका है, जलका घेरा दस करोड़ योजनका कहा गया है, अग्निका घेरा सौ करोड़ (एक अरब) योजनके परिमाणका है, वायुका घेरा हजार करोड़ (दस अरब) योजन परिमाणका है। आकाशका आवरण दस हजार करोड़ (एक खरब) योजनका है, अहंकारका आवरण एक लाख करोड़ (दस खरब) योजनका और महत्तत्त्वका आवरण असंख्य योजनका कहा गया है। प्रकृतिके अन्तर्गत समस्त लोक कालरूप अग्निके द्वारा (प्रलयकालमें) जला दिये जाते हैं।"

× × ×

"भगवान्‌का (साकेत) धाम प्रकृतिसे परे, सदा रहनेवाला, अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित, निर्विकार, मायारूपी मलसे रहित, काल एवं प्रलयके प्रभावसे मुक्त तथा एकमात्र भक्तिसे ही प्राप्त होता है। उसीके सम्बन्धमें गीतामें श्रीकृष्ण कहते हैं—'उसे न तो सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा और न अग्नि। जहाँ पहुँचकर कोई भी लौटकर इस प्राकृत ब्रह्माण्डमें नहीं आता, ऐसा मेरा सर्वश्रेष्ठ परम धाम है (गीता १५ । ६)।' जिस मायिक ब्रह्माण्डका मैंने ऊपर उल्लेख किया है, वह अविद्यारूप घने अन्धकारसे व्याप्त है। उसके ऊपरी भागमें विरजा नामकी नदी, जिसकी कोई सीमा नहीं है, विराट्ब्रह्माण्डके उस पार उसका आवरण बनी हुई स्थित है। विरजा नदी प्रकृति एवं परव्योम (भगवद्धाम) के बीचमें विद्यमान है।" (वृहद्ब्रह्मसंहिता, पाद १, अध्याय ६, श्लोक ११ से १९, ४० से ४६)

भूलोक और महर्लोकके बीचमें भुवर्लोक और स्वर्लोक है। कहा गया है—

"महर्लोक पृथ्वीके ऊपर (भुवर्लोक एवं स्वर्लोकसे भी आगे) एक करोड़ योजन परिमाणका है। उसके ऊपर दो करोड़ योजन परिमाणका जनलोक है, उसके ऊपर-

आभ्यन्तरिक नेत्र तथा (प्राणः) शारीरिक और आत्मिक बल, (जरसः पुरा) मृत्युसे पूर्व, (न जहाति) निश्चय ही नहीं छोड़ते ।'

तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीरामकी उभयपादस्थित दोनों अयोध्यापुरियाँ पवित्र अगच दिव्य हैं । त्रिपाद्विभूतिस्थ साकेतके समान ही एकपाद्विभूतिस्थ साकेत—अयोध्याका भी माहात्म्य है । इतना ही अन्तर है कि—

भोगस्थानं परायोध्या लीलास्थानं त्वियं भुवि ।
भोगलीलापती रामो निरङ्कुशविभूतिकः ॥
(शिवसं०, पटल ५, अ० २, श्लोक ८)

'परव्योमस्थित अयोध्या दिव्य (भगवत्स्वरूप) भोगोंकी भूमि है और पृथ्वीगत यह (सबके लिये प्रत्यक्ष) अयोध्या लीलाभूमि है । इन दोनों अयोध्याओंके स्वामी श्रीराम भोग और लीला, दोनोंके मालिक हैं । उनकी विभूति (ऐश्वर्य) अङ्कुशहीन (स्वतन्त्र) है ।'

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः ॥
(अथर्व० १० । २ । ३१)

ब्रह्मकी उस पुरी (भोगस्थान पूः अयोध्या) के नाम और रूपको स्पष्टरूपेण यह मन्त्र बताता है—

(पूः अयोध्या) 'यह पुरी अयोध्या ऐसी है, (अष्टाचक्रा) जिसमें आठ आवरण हैं, (नवद्वारा) जिसमें प्रधान नवद्वार हैं तथा जो (देवानाम्) दिव्यगुणविशिष्ट, भक्तिप्रपत्तिसम्पन्न, यमनियमादिमान्, परमभागवत चेतनोंसे 'सेव्य इति शेषः' सेवनीय है । (तस्यां स्वर्गः) उस अयोध्यापुरीमें बहुत ऊँचा अथवा बहुत सुन्दर, (ज्योतिषा आवृतः) प्रकाशपुञ्जसे आच्छादित, (हिरण्ययः कोशः) सुवर्णमय मण्डप है ।''

इस मन्त्रमें अयोध्याजीका स्वरूप-वर्णन है । अयोध्यापुरीके चारों ओर कनकोज्ज्वल, दिव्यप्राकारमय आवरण है, जो भीतरसे गिननेपर अष्टमावरण और बाहरसे प्रवेश करनेपर प्रथमावरण या प्रथम चक्र है—

ब्रह्मज्योतिरयोध्यायाः प्रथमावरणे शुभम् ।
यत्र गच्छन्ति कैवल्याः सोऽहमस्मीतिवादिनः ॥
(वसिष्ठसंहिता ११ । १ 'अयोध्यावृन्दावनमें कदून')

''अयोध्याके सर्वप्रथम घेरेमें शुभ्र ब्रह्ममयी ज्योति प्रकाशित है । 'सोऽहम्, सोऽहम्' कहनेवाले कैवल्यगामी पुरुष (मरनेपर) इसी ज्योतिमें प्रवेश करते हैं ।''

'सोऽहं' या 'अहं ब्रह्मास्मि' वादियोंका मुमुक्षुत्व ही स्व-परमपद' यही है । उस आवरणमें सर्वत्र दिव्य ब्रह्म प्रकाश-मात्र रहता है ।

बाहरसे प्रवेश करनेपर द्वितीय, किंतु भीतरसे गिननेपर सप्तमावरण अर्थात् सप्तम चक्र है, जिसमें प्रवहमान श्रीसरयूजी हैं—

अयोध्यानगरी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी ।
यस्यांशांशेन वैकुण्ठो गोलोकादिः प्रतिष्ठितः ॥
यत्र श्रीसरयूर्नित्या प्रेमवारिप्रवाहिनी ।
यस्या अंशेन सम्भूता विरजादिसरिद्वराः ॥
(वा० सं०, ९००)

'अयोध्या नगरी नित्य है । यह सच्चिदानन्दरूपा है । वैकुण्ठ एवं गोलोक आदि भगवद्धाम अयोध्याके अंशके अंशसे निर्मित हैं । इसी नगरीके बाहर सरयू नदी है, जिसमें श्रीरामके प्रेमाश्रुओंका जल ही प्रवाहित हो रहा है । विरजा आदि श्रेष्ठ नदियाँ इन्हीं सरयूके किसी अंशसे उद्भूत हैं ।'

'साकेतके पुरद्वारे सरयूः केलिकारिणी' ॥ ४९ ॥
(सदाशिवसंहिता, पटल १, अ० १)

'उस अयोध्या नगरीके द्वारपर सरयू नदी क्रीडा करती रहती है ।'

जो बाहरसे तीसरा और भीतरसे गिननेपर छठा आवरणचक्र है, उसमें महाविष्णु, महाब्रह्मा, महेन्द्र, वरुण, कुबेर, धर्मराज, महान् दिक्पाल, महासूर्य, महाचन्द्र, यक्ष, गन्धर्व, गुह्यक, किंनर, विद्याधर, सिद्ध, चारण, अष्टादश सिद्धियाँ और नवनिधियाँ दिव्यस्वरूपसे निवास करती हैं ।

बाहरसे चौथा और भीतरसे गिननेपर जो पाँचवाँ आवरण है, उसमें दिव्यविग्रहधारी वेद-उपवेद, पुराण उपपुराण, ज्योतिष, छन्द, मन्त्र, नाटक, काव्य, कोश, ज्ञान, कर्म, योग, वैराग्य, यम, नियम, काम, धर्म, गुण आदि निवास करते हैं ।

जो बाहरसे पाँचवाँ तथा भीतरसे चौथा आवरण है, उसमें भगवान्‌का मानसिक ध्यान करनेवाले योगी और ज्ञानीजन निवास करते हैं ।

साकेतपुरीके पाँचवें घेरेमें विष्वक्सेन आदि सर्विस्त पदेविश्य सहाय निवास करते हैं, जो निर्भय, निर्विकार

श्रीअयोध्याके कुछ प्रमुख दर्शन

कनकभवनके आराध्य, अयोध्या

कनकभवनका प्रवेश-द्वार, अयोध्या

कनकभवनका मुख्य मन्दिर, अयोध्या

श्रीलक्ष्मणसाहब दरबार, अयोध्या

रसिक-भक्तोंकी

'पुष्पराग' मण्डप है, जो विविध पुष्पपुञ्जोंसे सम्पन्न मुक्तामणियोंके वितान (चँदोवे) से सुशोभित तथा सुधाको भी मात कर देनेवाले स्वादिष्ट फलोंके बोझसे अत्यधिक झुके हुए वृक्षोंसे मण्डित है।'

(वशिष्ठसंहिता, अध्याय २६)
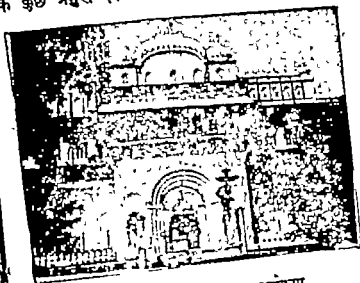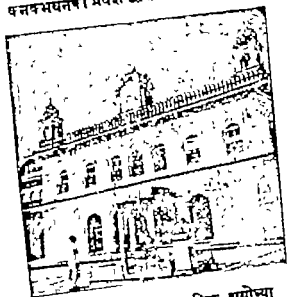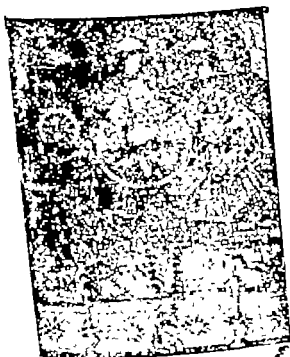
बाहरसे आनेमें आठवाँ और भीतरसे निकलनेमें जो प्रथम आवरण है, उसमें नित्यमुक्त भगवत्-पार्षदगण रहते हैं और भगवान्‌के अनन्तानन्त अवतार भी इसीमें रहते हैं।

'प्रासादके दक्षिणद्वारपर श्रीरामके प्रति दास्यभाव रखनेवाले श्रीहनुमान्‌जी (द्वारपालके रूपमें) विराजमान हैं। उसी द्वार-देशमें 'आंजनिक' नामका वन है, जो श्रीहरि (श्रीराम) को प्रिय है।'

× × ×

'मत्स्य, कूर्म, अनेक वराह, अनेक नरसिंह, वैकुण्ठ, हयग्रीव, हरि, वामन, केशव, यज्ञ, धर्मपुत्र, नारायणऋषि तथा उनके छोटे भाई नर, देवकीनन्दन श्रीकृष्ण, वसुदेवनन्दन बलराम, पृश्निगर्भ, मधुसूदन, गोविन्द, माधव, परात्पर वासुदेव, अनन्त, संकर्षण, लक्ष्मीपति, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध—भगवान्‌के ये सभी व्यूह भी श्रीरामकी आज्ञामें रहकर एक साथ उनकी सेवामें उपस्थित होते हैं। 'श्रीराम' नामसे विख्यात महेश्वर इनके तथा अन्य ईश्वरोंके द्वारा सेव्य हैं। कारण, वे इन सबको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा इनके मूल हैं। इनके बिना ये सब ऐश्वर्यहीन हैं।'

(वशिष्ठसंहिता ५। २। २४-२८)

विभिन्न साम्प्रदायिक ग्रन्थोंमें आवरणस्थ निवासियोंके स्थानोंमें यत्र-तत्र हेर-फेर भी है, परंतु तन्निवासियोंके नामोंमें हेर-फेर नहीं है।

तस्मिन् हिरण्मये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥

(अथर्व० १०। २। ३२)

"(तस्मिन्) उस विख्यात (हिरण्मये) सुवर्णमय (कोशे) मण्डपमें, (तस्मिन्) उसके अर्थात् उस मण्डपके (आत्मन्वत्) आत्माके समान, (यद् यक्षम्) जो पूजनीय देव विराजमान है, (तद्) उसीको (ब्रह्मविदः) ब्रह्मस्वरूप ज्ञानवान् जन (विदुः) जानते हैं। अथवा 'ब्रह्मविदः' में दो पद हैं—'ब्रह्म' और 'विदः'। तब अर्थ हुआ यह कि (विद्वान्) विद्वान् जन उसी यक्षको, उसी परमोत्कृष्ट देवको, (ब्रह्म विदुः) परात्पर सनातन ब्रह्मपुरुष जानते हैं। जिस कोशमें वह यक्ष विराजमान है वह कोश कैसा है। (त्र्यरे) उसमें तीन अरे लगे हुए हैं, अर्थात् सत्, चित्, आनन्द—तीन अरोंसे वह मण्डप बना हुआ है तथा (त्रिप्रतिष्ठिते) चित्, अचित् एवं ईश्वर, तीनोंसे प्रतिष्ठित—आदृत है।"

इस मन्त्रमें जो 'तस्मिन्' पद आया है, वह षष्ठीके अर्थमें है। इसीसे उसका अर्थ 'उसके' किया गया है।

इस मन्त्रमें स्पष्ट ही कहा गया है कि अयोध्याके मध्यमें जो सुवर्णमय मणिमण्डप है, उसमें विराजमान देवको ही विद्वान्‌लोग 'ब्रह्म' कहते हैं। अयोध्याके मणिमण्डपमें भगवान् श्रीरामके अतिरिक्त अन्य कोई भी विराजमान नहीं है। अतः भगवान् श्रीरामको ही ब्रह्म हैं। इसी अर्थका पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय दो सौ अट्ठाईसमें विस्तार किया गया है। उसके कुछ श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

तद्विष्णोः परमं धाम याति ब्रह्म सनातनम्॥ १०॥
नानाजनपदाकीर्णं वैकुण्ठं तद्धरेः परम्।
प्राकारैश्च विमानैश्च सौधै रत्नमयैर्वृतम्॥ ११॥
तन्मध्ये नगरी दिव्या साऽयोध्येति प्रकीर्तिता।
मणिकाञ्चनचित्राढ्यप्राकारैस्तोरणैर्वृता॥ १२॥

× × ×

मध्ये तु मण्डपं दिव्यं राजस्थानं महोत्सवम्॥ १९॥
मध्ये सिंहासनं रम्यं सर्ववेदमयं शुभम्।
धर्मादिदैवतैर्नित्यं वृतं वेदमयात्मकैः॥ २०॥
धर्मज्ञानमहैश्वर्यवैराग्यैः पादविग्रहैः।
ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यरूपैर्नित्यं युतं क्रमात्॥ २१॥
शक्तिराधारशक्तिश्च चिच्छक्तिश्च सदाशिवा।
धर्मादिदैवतानां च शक्तयः परिकीर्तिताः॥ २२॥

× × ×

तन्मध्येऽष्टदलं पद्ममुद्यदर्कसमप्रभम्।
तन्मध्ये कर्णिकायां तु सावित्र्यां सुमदर्शने॥ २६॥
ईश्वर्या सह देवेशस्तत्रासीनः परः पुमान्।
इन्दीवरदलश्यामः कोटिसूर्यसमप्रभः॥ २७॥
युवा कुमारः स्निग्धश्च कोमलावयवैर्युतः।
फुल्लरक्ताम्बुजाभाक्षः कोमलभ्रूविराजितः॥ २८॥

'भक्तलोग (मरकर) भगवान् विष्णुके उस परम धाम वैकुण्ठमें जाते हैं, जो नाना प्रकारके निवासियोंसे पूर्ण है। (वह) आनन्ददायक ब्रह्म ही है। वहीं भगवान्

श्रीरामका निवासस्थान है । वह परकोटों, सात मंजिले महलों तथा रत्ननिर्मित प्रासादोंसे घिरा हुआ है । उसी वैकुण्ठधामके बीचमें वह दिव्य नगरी है, जहाँ 'अयोध्या' नामसे विख्यात है । वह नाना प्रकारकी मणियों तथा सोनेके निर्मित सम्पन्न है और परकोटों तथा द्वारोंसे घिरी हुई है ।"

"उस अयोध्या नगरीके मध्यमें बहुत ऊँचा एवं दिव्य भवन है, जो वहाँके राजाका निवासस्थान है । उसके बीचमें एक आकर्षक एवं चमकीला सिंहासन है, जो अपने पायोंके रूपमें स्थित धर्मादि सनातन देवताओंसे घिरा हुआ है । अथवा धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य एवं वैराग्य—इन पायोंके रूपमें स्थित है । अथवा पायोंके रूपमें क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—इन चारों वेदोंके ही द्वारा यह सिंहासन घिरा है । 'शक्ति', 'आधारशक्ति', 'चिच्छक्ति' और 'सदाशिवा'—ये धर्मादि चार देवताओंकी शक्तियाँ कही गयी हैं ।"

× × ×

"उस सिंहासनके मध्यमें एक अष्टदल (आठ पंखुड़ियोंवाला) कमल है, जिससे उदयकालीन सूर्यकी-सी आभा निकलती रहती है । उक्त कमलके बीचके कर्णिका-भागमें, जिसे 'वासिनी' कहते हैं, समस्त देवताओंके स्वामी परात्पर पुरुष विराजमान रहते हैं । उनका वर्ण नील कमलकी पंखुड़ियोंकी तरह श्याम है और उनमें करोड़ों सूर्योंका प्रकाश है । वे नित्य युवा होनेके साथ ही दुग्धसमप्रसन्न भी रहते हैं । वे स्नेहयुक्त, सुकुमार अङ्गोंवाले, रक्तकमल रक्त कमलकी-सी आभावाले और कोमल चरण-कमलोंसे सम्पन्न हैं ।"

इसी तथ्यको सनत्कुमारसंहितोक्त 'श्रीरामस्तवराज'में और भी स्पष्ट किया गया है—

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे ।
स्मरेत् कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम् ॥
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नानारत्नैश्च वेष्टितम् ।
रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम् ।
महाप्रभावं देवं रामं त्रैलोक्यपूजितम् ॥

"रम्य अयोध्यानगरीमें रत्ननिर्मित मण्डपके मध्यमें कल्पवृक्षके मूलमें चमचमाते हुए रत्नसिंहासनका ध्यान करे । उस सिंहासनके बीचमें अष्टदल कमल है, जो विविध रत्नोंसे घिरा हुआ है । साथ ही उसमें विराजमान रघुश्रेष्ठ, वीरशिरोमणि, धनुर्वेदमें निष्णात, महाप्रभावशाली कमल-लोचन श्रीरामका भी ध्यान करे ।"

'करुणासिन्धु श्रीरामचरणदासजी महाराजने रामचरित-मानसकी—'अवधपुरी सम बैकुंठ सुहावन ।' (रा० च० मा० ७ । ४ । १) की टीकामें प्रमाण उद्धृत किया है—

वैकुण्ठाः पञ्च विख्याताः क्षीराब्धिश्च रमात्मकः ।
महाकारणवैकुण्ठो पञ्चमो विरजापरः ॥
त्रिपाद्विभूतिमेकभोगविभवं वैकुण्ठरूपोत्तरं ।
साकेतमभिविहारभवं रूपमनुग्रहरूपं त्वयोध्यापुरी ॥

'साकेत-सुषमा'में निम्न श्रुति उद्धृत है—

'यायोध्या पूः सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलाधारा मूलप्रकृतेः परा तत्सद्ब्रह्ममयी विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोशाढ्या तस्यां नित्यमेव सीतारामयोर्विहारस्थलमस्ति ।'

(सा० सु०, प्रथमकुसुम, पृ० २)

तात्पर्य यह कि "क्षीरसागरस्थ वैकुण्ठ, रमावैकुण्ठ, महावैकुण्ठ, कारणवैकुण्ठ और विरजापार (त्रिपाद्विभूतिस्थ) आदि वैकुण्ठ—इन पाँचों वैकुण्ठोंका तथा अन्य अनन्त वैकुण्ठोंका मूलाधार 'अयोध्या-साकेत' ही है । यह साकेत मूल प्रकृतिसे परे, अखण्ड और अपरिवर्तनीय ब्रह्ममय है, विरजाके दूसरे तीरपर स्थित है, दिव्यरत्नमण्डपवाली है । इसी अयोध्यामें श्रीसीतारामजीकी नित्य विहारभूमि है ।"

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम् ।
पुरं हिरण्मयीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥

(अथर्व० १० । २ । ३३)

"(ब्रह्म) सर्वान्तर्यामी श्रीरामजी (प्रभ्राजमानाम्) अत्यन्त प्रकाशमयी, (हरिणीम्) मनको हरण करनेवाली अथवा सर्वपापोंका आत्यन्तिक नाश करनेवाली तथा (यशसा सम्परीवृताम्) अनन्तकीर्तिसे युक्त और (अपराजिताम्) सर्वपुरियोंसे अजेय, (पुरम्) उस अयोध्यापुरीमें (आविवेश) प्रविष्ट हैं, अर्थात् विराजमान हैं ।"

प्राप्य वेदोंमें तो उपर्युक्त सारे पाँच मन्त्र ही हैं । परंतु पुराणोंमें, पाञ्चरात्रीय संहिताओंमें, रामायणोंमें, रामायणोंमें एवं साम्प्रदायिक रहस्य ग्रन्थोंमें अयोध्या—साकेतका इतना विस्तृत वर्णन है कि उनका संक्षिप्त संकलन भी एक पोथा हो सकता है । यह लघु लेख तो सारे पुस्तकोंका संकेतमात्र है ।

श्रीअयोध्यापुरी

सप्तपुरियोंमें प्रथम पुरी 'अयोध्या' है । मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके भी पूर्ववर्ती सूर्यवंशी राजाओंकी यह राजधानी रही है । इक्ष्वाकुसे लेकर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामतक सभी चक्रवर्ती नरेशोंने अयोध्याके सिंहासनको विभूषित किया है । भगवान् श्रीरामकी अवतारभूमि होकर तो अयोध्या 'साकेत' हो गयी ।

अयोध्याका प्राचीन इतिहास बतलाता है कि वर्तमान अयोध्या महाराज विक्रमादित्यकी बसायी है । महाराज विक्रमादित्य देशाटन करते हुए संयोगवश यहाँ सरयूकिनारे पहुँचे थे और यहाँ उनकी सेनाने शिविर डाला था । उस समय यहाँ वन था । कोई प्राचीन तीर्थ-चिह्न यहाँ नहीं था । महाराज विक्रमादित्यको इस भूमिमें कुछ चमत्कार दीख पड़ा । उन्होंने खोज प्रारम्भ की और पासके योगसिद्ध संतोंकी कृपासे उन्हें ज्ञात हुआ कि यह श्रीअवधकी भूमि है । उन संतोंके निर्देशसे महाराजने यहाँ भगवल्लीलास्थलीको जानकर यहाँ मन्दिर, सरोवर, कूप आदि बनवाये ।

मथुराके समान अयोध्या भी आक्रमणकारियोंकी बार-बार शिकार होती रही है । बार-बार आततायियोंने इस पावन पुरीको ध्वस्त किया । इस प्रकार अब अयोध्यामें प्राचीनताके नामपर केवल भूमि और सरयूजी बच रही हैं । भवन ही भगवल्लीला-स्थलीके स्थान वे ही हैं ।

अयोध्या फैजाबाद जिलेके अन्तर्गत सदर फैजाबादसे पाँच मीलकी दूरीपर सरयूके किनारे बसी हुई एक नगरी है । यहाँपर मन्दिरों एवं धार्मिक स्थानों तथा साधु-संतोंका अधिक निवास है । सर्वप्रधान श्रीरामानन्दीय वैष्णवोंकी यहाँ अधिकता है । साथ ही यहाँपर श्रीरामानुजीय संतोंके भी प्रतिष्ठित स्थान हैं । जहाँ-तहाँ उदासी, संन्यासी, तपस्वी-जनोंके भी स्थान हैं ।

श्रीअयोध्यामें गोस्वामी तुलसीदासजीकी रचनारी आदि भूमि श्रीतुलसी-चौरा स्थान दर्शनीय है । भगवकी इसी रामनवमीके अवसरपर गोस्वामी रामचरितमानसकी रचना आरम्भ चौरेपर श्रीगोस्वामीजीकी मूर्ति द्वारा स्वामीजी ... स्थापी जाती है ।

श्रीरामाइ ...

अयोध्या लखनऊसे ८४ मील और काशीसे १२० मील है । मुगलसराय, बनारस तथा लखनऊसे यहाँ सीधी गाड़ियाँ आती हैं । स्टेशनसे सरयूजी लगभग तीन मील दूर हैं और मुख्य मन्दिर कनकभवन लगभग १॥ मील । पूर्वोत्तर रेलवेद्वारा गोरखपुरकी दिशासे आनेपर मनकापुर स्टेशनपर गाड़ी बदलकर लकड़मंडी स्टेशन आना पड़ता है । लकड़मंडी सरयूजीके उस पार है । सरयूपर पक्का पुल बना हुआ है । सरयूपार होकर अयोध्या आया जा सकता है । बनारस, लखनऊ, प्रयाग, गोरखपुर आदि नगरोंसे अयोध्या पक्की सड़कोंद्वारा भी सम्बन्धित है ।

ठहरनेके स्थान

अयोध्यामें यात्री साधुओंके मठोंमें भी ठहरते हैं । प्रायः सभी साधु-स्थानोंमें यात्रियोंके ठहरनेकी व्यवस्था है । अयोध्या तो साधुओंका नगर ही है । नगरमें अनेकों धर्मशालाएँ भी हैं ।

दर्शनीय स्थान

अयोध्यामें सरयू-किनारे कई सुन्दर पक्के घाट बने हुए हैं । किंतु सरयूजीकी धारा अब घाटोंसे दूर चली गयी है । पश्चिमसे पूर्व चलें तो घाटोंका यह क्रम मिलेगा—ऋणमोचनघाट, सहस्रधारा, लक्ष्मणघाट, स्वर्गद्वार, गङ्गामहल, शिवालाघाट, जटाई (जटायु) घाट, अहल्याबाईघाट, धौरहरा-घाट, रूपकलाघाट, नयाघाट, जानकीघाट और रामघाट ।

लक्ष्मणघाट—यहाँके मन्दिरमें लक्ष्मणजीकी ५ फुट ऊँची मूर्ति है । यह मूर्ति सामने कुण्डमें पायी गयी थी । कहा जाता है कि यहींसे श्रीलक्ष्मणजी परमधाम पधारे थे ।

स्वर्गद्वार—इस घाटके पास श्रीनागेश्वरनाथ महादेवका मन्दिर है । कहते हैं कि यह मूर्ति कुशद्वारा स्थापित की गयी है और इसी मन्दिरको पाकर महाराज विक्रमादित्यने अयोध्याका जीर्णोद्धार किया था । नागेश्वरनाथके पास ही एक गलीमें ... है । ... पत्थरमें श्रीराम- ... भगवानके मन्दिरको ... यहाँ स्थापित ... न करते हैं । ... नाथ- ... यह

नन्दिग्राम—फैजाबादसे १० मील और अयोध्यासे १५ मील दक्षिण यह स्थान है, जहाँ श्रीराम-वनवासके समय १४ वर्ष भरतजीने तपस्या करते हुए व्यतीत किये थे। यहाँ भरतकुण्ड-सरोवर और भरतजीका मन्दिर है।

दशरथतीर्थ—रामघाटसे ८ मील पूर्व सरयूतटपर यह स्थान है, जहाँ महाराज दशरथका अन्तिम संस्कार हुआ था।

छपैया (छपिया)—अयोध्यासे सरयूपार ५ मील दूर छपिया गाँव है। स्वामिनारायण-सम्प्रदायके प्रवर्तक स्वामी सहजानन्दजीकी यह जन्मभूमि है। छपिया पूर्वोत्तर रेलवेका स्टेशन है।

परिक्रमा

अयोध्याकी दो परिक्रमाएँ हैं। बड़ी परिक्रमा स्वर्गद्वारसे प्रारम्भ होती है। वहाँसे सरयू-किनारे सात मील जाकर और फिर मुड़कर घाटमपुर, मुकर्रमनगर होते हुए दर्शननगरमें सूर्यकुण्डपर पहला विश्राम किया जाता है। वहाँसे पश्चिम कौशाहा, मिर्जापुर, बीकापुर ग्रामोंसे होते जनौरा पहुँचनेपर दूसरा विश्राम होता है। जनौरासे सोहावलपुर, निर्मलीकुण्ड, गुप्तारघाट होते स्वर्गद्वार पहुँचनेपर परिक्रमा पूरी हो जाती है।

अयोध्याकी छोटी (अन्तर्वेदी) परिक्रमा केवल ६ मीलकी है। यह रामघाटसे प्रारम्भ होती है तथा बाबा रघुनाथदासकी गद्दी, सीताकुण्ड, अग्निकुण्ड, विद्याकुण्ड, मणिपर्वत, कुबेरपर्वत, सुग्रीवपर्वत, लक्ष्मणघाट, स्वर्गद्वार होते हुए रामघाट आकर पूर्ण होती है।

मेले—अयोध्यामें श्रीरामनवमीपर सबसे बड़ा मेला होता है। दूसरा मेला ८-९ दिनतक श्रावण-शुक्लपक्षमें झूलेका होता है। कार्तिक-पूर्णिमापर भी सरयूस्नानके लिये लाखोंकी संख्यामें यात्री आते हैं।

श्रीअयोध्या-महिमा

जिन के परस मुनि-पतिनी पवित्र करी
आनि महिमा जो सिव सुपठ सकानी है।
कहै 'रत्नाकर' निषाद जिन ओग आनि
धोए बिनु धूरि भाव निकट न आनी है॥
ध्यावैं जिन्हैं ईस औ फनीस गुन गावैं सदा,
नावैं सीस निखिल मुनीस-गन ग्यानी हैं।
तिन पद पावन की परस-प्रभाव-पूँजी
अवधपुरी की रज-रज मैं समानी है॥

—महाकवि रत्नाकर

श्रीमिथिला-वन्दना

नित्यस्वर्गे नित्यसौख्ये नित्यधाम नमोऽस्तु ते।
धन्या त्वं मिथिले देवि ज्ञानदे मुक्तिदायिनि॥
रामस्वरूपे वैदेहि सीताजन्मप्रदायिनि।
पापविध्वंसिके मातर्भवबन्धविमोचनि॥
सदा दानतपोध्यानस्वाध्यायफलदे शुभे।
भक्तिनां कामदे तुभ्यं नमस्यामो वयं सदा॥

'नित्यस्वर्गभूमि नित्यधाम श्रीमिथिलाजी! आप ज्ञान और मोक्ष देनेवाली हैं, अतएव धन्य हैं। आप रामस्वरूपा हैं, विदेहपुरी हैं, श्रीजानकीजीको जन्म देनेवाली हैं, पापनाश करनेवाली और भवबन्धनसे छुड़ानेवाली हैं। सदा दान-तप-ध्यान-स्वाध्यायादि शुभकर्मोंका फल देनेवाली और भक्तोंकी कामनापूर्ति करनेवाली हैं। हम सब आपको सदा प्रणाम करते हैं।'

सेनापति अमरसिंह थापाने कराया था। राम-मन्दिरके अहातेमें पूर्वी ओर यह मन्दिर है, जिसमें प्रसन्न-वदन श्रीहनुमान्‌की मूर्ति स्थापित है।

चतुर्भुजनाथ-मन्दिर—जनकपुरके प्रवर्तक महात्मा चतुर्भुजगिरिकी समाधिपर शिवलिङ्ग स्थापितकर इस मन्दिरका निर्माण किया गया है।

देवी-मन्दिर—राम-मन्दिरके उत्तरमें यह देवी-मन्दिर स्थित है। यहाँ राजर्षि जनककी कुलदेवीका मृण्मय पीठ है और शारदीय नवरात्रमें शास्त्रविधिसे पूजा होती है। यहाँका पुरश्चरण-अनुष्ठान अमोघ समझा जाता है।

जानकी-मन्दिर—इसी स्थानपर महात्मा सूरकिशोरने स्वर्णमयी सीता और रामजीकी मूर्ति एक प्राचीन ढंगके मन्दिरमें स्थापित की थी। सूरकिशोरजीके परम्परागत शिष्य महन्त रामकृष्णदासके उद्योगसे टीकमगढ़की महारानी श्रीमती वृषभानुकुमारीने मन्दिरके अहातेके मध्यमें एक सुन्दर, भव्य और मनोहर मन्दिरका निर्माण कराया तथा नौलखा, सीता-मठ और जानकी-मन्दिरके चतुर्दिक् भव्य प्रासाद बनवाकर मन्दिरकी शोभा बढ़ायी। इस मन्दिरमें राम-सीताकी प्रस्तर-मूर्ति, सीता और रामकी सुवर्णमयी मूर्ति तथा लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नकी मूर्तियाँ स्थापित हैं। सीताजी इसी स्थानपर रहती थीं। यहाँ राम-सीताके भोग-रागके लिये नेपाल सरकारने एक बड़ी जागीर दे रखी है।

सुनयना-जनक-मन्दिर—जीर्णोद्धारके उद्धारके समय खुदाईमें प्राप्त रामजी, सीताजी और लक्ष्मणजीकी मूर्तियाँ तथा राजर्षि जनक, शतानन्दजी और सुनयनाजीकी मूर्तियाँ इस मन्दिरमें स्थापित हैं।

मड़वा (मण्डप)—जानकी-मन्दिरसे उत्तर-पश्चिम कोणमें एक प्राचीन मण्डप था, जो सन् १९३४ ई०के भूकम्पमें ध्वस्त हो गया। जानकी-मन्दिरके महन्तके उद्योगसे यहाँ एक नये और भव्य मण्डपका निर्माण हुआ है। कहते हैं कि इसी मण्डपमें श्रीजानकीजीका विवाह हुआ था।

लक्ष्मण-मन्दिर—जानकी-मन्दिरके समीप स्थापित इस मन्दिरमें लक्ष्मण-राम और सीताकी सुन्दर मूर्तियाँ हैं। नेपाल-नरेशने इस मन्दिरके भोग-रागके लिये भी काफी जमीन दे रखी है।

लव-कुश-मन्दिर—लक्ष्मण-मन्दिरके समीप ही यह मन्दिर अवस्थित है, जहाँ लव-कुशकी प्राचीन मूर्तियाँ स्थापित हैं।

जनक-मन्दिर—राम-मन्दिरसे कुछ दूरीपर (धनुषसरके पास अवस्थित) यह मन्दिर पहले बड़ी जीर्ण-शीर्ण स्थितिमें था। नेपालके सेनापति अमरसिंह थापाने इसका पुनर्निर्माण कराया था, किंतु १९३४ ई०के भीषण भूकम्पमें यह मन्दिर धराशायी हो गया। नेपाल-नरेशने इस मन्दिरका नये ढंगसे निर्माण कराया है। यहाँ राजर्षि जनक एवं सुनयनाकी मूर्ति तथा गङ्गासागरकी खुदाईमें प्राप्त सीताकी मूर्ति स्थापित है। यही स्थान राजर्षि जनकका प्रधान वास-स्थान बताया जाता है।

रत्नसागर-मन्दिर—जानकी-मन्दिरसे एक मीलकी दूरी-पर रत्नसागर नामक एक सुन्दर सरोवरके किनारे यह मन्दिर है। यहाँ सीता-रामकी भव्य मूर्तियाँ दर्शनीय हैं। इस मन्दिरका भंडारा सुविख्यात है।

रसिक-निवास-मन्दिर—जानकी-मन्दिरसे आध मील पश्चिममें अवस्थित इस मन्दिरमें राम-सीताकी भव्य और सुन्दर मूर्तियाँ हैं। इस स्थानके प्रवर्तक श्रीरसिकअली नामके एक महात्मा थे। इनके अनुगामी दूल्हा-दुलहिनके रूपमें रसिक राम-सीताकी उपासना करते हैं, अतएव इस मन्दिरका नाम 'रसिक-निवास' पड़ा है।

स्वर्ण-मण्डप—महाराजसरके समीप एक स्थानपर पत्थरमें 'स्वर्ण-मण्डप' खुदा हुआ है। कुछ लोग इसी स्थानको राम-सीताका विवाह-मण्डप बताते हैं।

दशरथ-मन्दिर—महाराजसरसे पश्चिममें अवस्थित इस मन्दिरमें दशरथकी मूर्ति दर्शनीय है।

मौनीबाबाका आश्रम—जानकी-मन्दिरसे कुछ दूर एक खाली जमीन है, जो 'रङ्गभूमि' कहलाती है। कहा जाता है कि इसी स्थानपर रामने धनुष तोड़ा था। इसके पास एक नये ढंगका मकान है, जहाँ मौनी बाबा निवास करते हैं और इसके पास ही सीता रामका भव्य और आकर्षक मन्दिर है।

जनकपुरके दर्शनीय स्थान

धनुषा—जनकपुरसे १२ मील उत्तर पूर्वमें अवस्थित इस स्थानकी प्राकृतिक शोभा अपूर्व है। यहाँ सुरम्य पर्वत और वनों संगम दर्शनीय है। इसी स्थानपर भगवान् रामद्वारा तोड़े हुए धनुषका एक खण्ड अवतक विद्यमान है। यात्रियोंके

ज्ञानकूप-विद्याकूप—यह कूप विहारकुण्डके पश्चिममें है। इन्हींके जलसे कालमें यहाँ धार्मिक-आध्यात्मिक आलोचनाएँ हुआ करती थीं। जनकपुरमें कुल मिलाकर ७६ कूप और सरोवर हैं। उनके नाम निम्नलिखित हैं—पुरन्दरसर, महाराजसर, भागीरथसर, धनुस्सर, ऋषिसर, विहारसर, रुक्मिणीसर, अनङ्गसर, इन्द्रसर, महादेवसर, गोपालसर, धनुःक्षेत्रसर, पादप्रक्षालनसर, विभीषणसर, चैतन्यसर, धुन्धुमतीसर, पयस्विनीसर, कुण्डलेसर, वैरङ्गीसिकासर, इन्द्रासर, विघ्नहारिणीसर, अस्कदेवीसर, श्यामारीसर, क्षितिराजसर, छत्रधारिणीसर, क्षेमसर, चित्रचापसर, पूर्वदक्षसर, दुर्गाम्बासर, चित्रधात्रीसर, कदलीसर, सुधासर, पुष्पासर, भारुवतीसर, नगरहैसाकुण्ड, सनकादिसर, तारणसर, मन्मथसर, अक्षयेश्वरसर, धनुषसर, केदारसर, मध्यमसर, रत्नसागरसर, ज्ञानभीसर, कुम्भेश्वरसर, भावनसर, भारद्वाजसर, चतुर्दीपिकासर, अङ्गरसर, अमृतकुण्डसर, धात्रीसर, सिंहरसर, मुरलीसर, महावरसर, अङ्गराजसर, गौतमसर, लक्ष्मणसर, पुष्करणीसर, विश्वामित्रसर, दीर्घिकासर, मोक्षसर, मधुसर, क्षेमसर, यमलसर, वशिष्ठसर, ध्रुवसर, तीर्थसर, जानकीकुण्ड, शिवकूप, वीरपालकूप, सदानन्दकूप, अक्रूरकूप, सीमन्तककूप, त्रियकूप, ज्ञानकूप, जनककूप। उपर्युक्त सरोवर, कूप आदि जनकपुरकी पञ्चकोशीके अन्तर्गत ही हैं। इनमें स्नान करनेका विशेष फल बताया गया है।

दुग्धवती नदी—जगज्जननी जानकीके भूगर्भसे प्रकट होनेपर उनके दर्शनार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओंके साथ आगत कामधेनुने प्रेम-विह्वल होकर अपने स्तनोंसे जानकीके मुखमें लगा दिया था। उस समय जो दूध गिरा गिरा, वही नदीके रूपमें प्रवाहित हुआ। वही नदी 'दुग्धवती'के नामसे विख्यात है। इसमें आमावस्या मासमें स्नान करनेसे विशेष पुण्य होता है।

यमुनी—इसमें स्नान करनेसे यमुना स्नानका फल मिलता है। यम-द्वितीयाको इसके तटपर मेला लगता है।

सरस्वतिका—इसमें स्नान करनेसे सरस्वती स्नानका फल होता है। माघमासमें इसमें स्नान करना विशेष पुण्य-दायक माना गया है।

गेरुका—इसका नाम 'गौरिका' भी है। माघमासमें इसके तटपर प्रत्येक रविवार और मङ्गलवारको मेला लगता है। इसमें माघमासमें स्नानका विशेष पुण्य है।

इनके अतिरिक्त मुक्तीमें आश्विनमें, इक्षुमतीमें पौषमें, मणनामें फाल्गुनमें, श्यामवतीमें ज्येष्ठमें और वीरजामें श्रावणमें स्नान करनेसे विशेष फल होता है।

जनकपुर मेला

रामनवमी—जनकपुरमें रामनवमीके दिन सबसे बड़ा और प्रधान मेला लगता है। इस मेलेमें सारे भारतसे करीब दो लाख यात्री और साधु-सन्त एकत्र होते हैं। यह मेला नवमीसे पूर्णिमातक रहता है।

जानकीनवमी—जगज्जननी जानकीके जन्म दिवस वैशाखशुक्ला नवमीको भी साधारण मेला लगता है। जानकी-मन्दिरमें इस अवसरपर १५ दिनोंतक उत्सव मनाया जाता है।

झूलन—श्रावणशुक्ला द्वितीयासे पूर्णिमातक यहाँ झूलनोत्सव होता है और हजारोंकी संख्यामें भक्तजन एकत्र होकर मन्दिरोंमें झूलनोत्सव देखते हैं।

विवाह-पञ्चमी—श्रीसीतारामके विवाहके दिन मार्गशीर्षशुक्ला पञ्चमीको यहाँ बड़ा विशाल मेला लगता है। इसमें लाखोंकी संख्यामें यात्री एकत्र होते हैं। सप्तमीसे सप्तमीतक यहाँ बड़ी धूमधाम रहती है।

इसके अतिरिक्त कार्तिकी पूर्णिमा तथा माघी पूर्णिमाको यहाँ काफी संख्यामें यात्री एकत्र होते हैं। चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, महावारुणी आदि अवसरोंपर भी मेले लगते हैं।

जनकपुर-परिक्रमा

छोटी परिक्रमा गङ्गासागरसे स्नान करके आरम्भ करते हैं और क्रमशः धनुस्सर, पुरन्दरसर, महाराजसर, विहारकुण्ड, अग्निकुण्ड, मध्यमसर, रत्नसागर, कौशिकीसर, अङ्गराजसर तथा लक्ष्मणसरमें मार्जनादि करते हुए गङ्गासागर आकर समाप्त करते हैं। जनकपुरमें चारों ओर पक्की सड़क बनी हुई है। छोटी परिक्रमामें इसी सड़कका उपयोग होता है।

चाहिये ।" प्रयागमें गङ्गा-यमुनाके संगममें स्नान करके प्राणी पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गका अधिकारी हो जाता है और इस क्षेत्रमें देह त्यागनेवाले प्राणीकी मुक्ति हो जाती है—ऐसे वचन पुराणोंमें हैं।

शृङ्गवेरपुर

शृङ्गवेरपुर आनेके लिये प्रयागसे मोटर-बस आदि मिलती हैं। यह प्रयागसे लगभग २४ मीलकी दूरीपर है। भगवान् श्रीरामने वनवासके समय यहाँ निषादराज गुहका आग्रह मानकर रात्रिभर विश्राम किया था—

सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई ॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी ॥
(वही, २। ८६। १)

चित्रकूट-माहात्म्य

(लेखक—श्रीमत्यकिशोरदासजी वैष्णव)

सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू ॥
नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तपबल आनी ॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि ॥
(मानस २। १३२। २-३)

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू ॥
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ॥
नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना ॥
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी ॥
(मानस २। १३३। १-२)

चित्रकूटो गिरिश्रेष्ठः श्रीरामपदभूषितः।
यस्मिन् श्रीजानकीनाथो रमते सर्वदैव हि ॥
चित्रकूटं महातीर्थं परं निर्वाणकारकम्।
तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥
पीठानां परमं पीठं पर्वतानां च पर्वतम्।
धर्माभिलाषयुक्तानां धर्मराशिप्रदं परम् ॥
अर्थिनामर्थदातारं परमार्थप्रकाशकम्।
कामिनां कामदातारं मुमुक्षूणां च मोक्षदम् ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रदाता सर्वपालकः।
तेनायं चित्रकूटोऽसौ सर्वसम्पत्तिदायकः ॥
एवंप्रभावो भगवान् चित्रकूटो गिरीश्वरः।
यस्य दर्शनमात्रेण हरिश्चित्तं समाविशेत् ॥

"चित्रकूट, जहाँ श्रीजानकीनाथजी सदा ही रमण करते हैं और जो श्रीरामचरणोंसे विभूषित है, सर्वदा ही पर्वतोंमें श्रेष्ठ है। श्रीचित्रकूट महातीर्थ है। यह मोक्षदाताओंमें श्रेष्ठ है, तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ है एवं मङ्गलोंमें परम मङ्गल है। पीठोंमें उत्तम पीठ है, पर्वतोंमें उत्तम पर्वत है और धर्मा[illegible] युक्त जिनकी बुद्धि है, उनको धर्मकी राशि प्रदान [illegible] है। यह अर्थाभिलाषियोंको अर्थ देनेवाला है, परमार्थको प्रकाशित करनेवाला है, सकाम भक्तोंको अभीष्ट देनेवाला और मुमुक्षुओंको मोक्ष देनेवाला है। अर्थ-धर्म-काम एवं मोक्षका प्रदाता और सम्पूर्ण जीवोंका पालक होनेसे यह श्रीचित्रकूट 'सर्व सम्पत्तिका दाता' कहा जाता है। पर्वतराज भगवान् श्रीचित्रकूटजीका ऐसा प्रभाव है कि इनके दर्शनमात्रसे श्रीरामचन्द्रजी चित्तमें प्रवेश करते हैं।"

मन्दाकिनी-वन्दना

मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नमः।
नमस्त्रैलोक्यभूषिण्यै शिवदायै नमो नमः ॥ १ ॥
नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमो नमः।
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः ॥ २ ॥
सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये।
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठ्यै नमो नमः ॥ ३ ॥
स्थाणुजङ्गमसम्भूतविषहन्त्र्यै नमो नमः।
सर्वसंशुद्धिकारिण्यै नमः पापारिमूर्तये ॥ ४ ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यै भद्रदायै नमो नमः।
भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमो नमः ॥ ५ ॥

"आप मन्दाकिनीजीको नमस्कार है। आप उत्तम कर्मोंको स्वर्ग देनेवाली हैं, आपको नमस्कार है। तीनों लोकोंको विभूषित करनेवाली आपको बार बार नमस्कार है। आप विष्णुपदसे ब्रह्मलोकको प्राप्त हुईं और ब्रह्मलोकसे शिवजीकी जटामें पहुँचीं, पुन[illegible]

पापसे मुक्त हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदासने इसे एक ऐसा शिकारी बताया है, जो पापरूपी मृगको निशाना लगानेमें कभी चूकता नहीं। यों तो इस पर्वतराजका महत्त्व अनादिकालसे ही है, पर भगवान् रामके पाद-संस्पर्शने इसका प्रभाव और भी बढ़ गया है—

'अमर मे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत विषादा ॥'

(मानस २। २४८। १)

कामदगिरिके दर्शनके लिये प्रतिमासकी अमावस्या, सूर्यग्रहण, रामनवमी तथा दीपमालिकाको देशके कोने-कोनेसे असंख्य श्रद्धालु यात्री चित्रकूट आते हैं और इसकी परिक्रमा करके कृतार्थ होते हैं। परिक्रमाकी परिधि लगभग ४ मीलकी है। इसके अगल-बगल सैकड़ों देवालय हैं। इनमेंसे कई ध्वंस-शीर्ण दशामें मूकभावसे स्थित अपने प्राचीन तथा विगत दिनोंका स्मरण कर आँसू बहा रहे हैं। इन मन्दिरोंमें रामसुदर्शन-मुखारविन्द, साक्षी-गोपाल और चरणपादुका अधिक प्रसिद्ध तथा महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रमोदवन—यह कामदगिरिके पूर्व मन्दाकिनीके तटपर रामघाटसे लगभग ४ फर्लांग दक्षिणमें है। इसका प्राकृतिक दृश्य बड़ा मनोहारी है। इसमें रीवाँ-नरेशका बनवाया हुआ श्रीनारायण भगवान्‌का मन्दिर है। इसके चारों ओर छोटी-छोटी लगभग १०० कोठरियाँ बनी हुई हैं, जिनके सम्बन्धमें कहा जाता है कि रीवाँनरेशने किसी दैवी बाधाकी शान्तिके लिये इनका निर्माण कराकर उतने ही पण्डितोंद्वारा किसी विशेष अनुष्ठानका आयोजन किया था। स्थान सुन्दर है, देखनेयोग्य है और पर्यटकोंकी मनःशान्तिकी दृष्टिसे सर्वथा उत्तम है।

जानकीकुण्ड—प्रमोदवनसे एक फर्लांग दक्षिणमें स्थित जानकीकुण्ड चित्रकूटका बड़ा ही रम्य आश्रम है। यहाँ विरक्त महात्माओंकी सैकड़ों गुफाएँ तथा कुटीर हैं, जहाँ २०० से भी अधिक संत महात्मा रहते हैं। इसका प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही सुहावना है। नीचे मन्दाकिनी कल-कल करती हुई बह रही है, जो इस आश्रमकी सुषमाको और भी बढ़ा देती है। कहा जाता है कि वनवास-कालमें महारानी जानकीजी यहाँ नित्य स्नान करती थीं, इसलिये इसका नाम 'जानकीकुण्ड' पड़ा।

आश्रमका दर्शन करनेसे भारतीय महाकाव्योंमें वर्णित प्राचीन ऋषियोंके पावन आश्रमोंका चित्र आँखोंके सामने झूलने लगता है। वातावरण शान्त तथा पवित्र है, इससे तपश्चर्याके लिये यह बहुत ही उपयुक्त है। यहाँ एक धर्मशाला, संस्कृत-पाठशाला तथा श्रीराम-सीताका भव्य मन्दिर भी है।

स्फटिक-शिला—यह जानकीकुण्डसे लगभग एक मील दक्षिण सघन वृक्षावलीसे आवृत मन्दाकिनीके तटपर है। यह वही स्थान है, जहाँ—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए ॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर ॥

(मानस ३। १। २)

एक विशाल शिलापर भगवान् रामके चरण चिह्न अङ्कित हैं। इसी शिलापर बैठी हुई भगवती सीताको देखकर इन्द्र-पुत्र जयन्तने काकका रूप धारणकर चञ्चुका प्रहार किया था। यहाँका प्राकृतिक दृश्य अतीव आकर्षक, मनोमुग्धकारी एवं नेत्रानुरञ्जनकारी है।

अनसूया-आश्रम—कामदगिरिसे लगभग १० मील दक्षिण प्रकृति देवीकी हरी-भरी गोदमें महासती अनसूया तथा महर्षि अत्रिजीकी तपश्चर्याका दिव्य स्थल 'अनसूया-आश्रम' के नामसे विख्यात है। पुण्यशील दम्पतिकी तपस्याके प्रभावसे इसका कण-कण परम पवित्र है। यह जनसमूहके कोलाहलसे दूर शान्तिपूर्वक निवास करनेयोग्य श्रेष्ठ आश्रम है। इसके पावन वायुके संसर्गमात्रसे मानवमें सत्त्वगुणी भावना-का उदय हो जाता है। इस आश्रमकी पावन गोदमें असंख्य महात्माओंने परमसिद्धि प्राप्त कर ली है। यहाँ अत्रि, अनसूया तथा उनके पुत्र भगवान् दत्तात्रेय, दुर्वासा और चन्द्रमाकी मूर्तियाँ स्थापित हैं। प्राकृतिक तथा धार्मिक-दोनों दृष्टियोंसे यह स्थान महत्त्वपूर्ण है।

पुराणोंमें उल्लेख है तथा स्थानीय किंवदन्ती भी है कि कामदवन अत्रि ऋषिका निवासस्थान था। एक बार जब ऋषि समाधिमें थे, उस समय देव और दानवोंने मिलकर माता अनसूयासे प्रार्थना की कि सूखा तथा पानीके अभावसे त्रस्त जनताकी आप सहायता करें। इसपर अनसूयाजीने एक गड्ढा खोदा और शिवजीके शिरपर रहनेवाली गङ्गामाताका आवाहन किया। गङ्गाजीने अनसूयाजीके निमन्त्रणको स्वीकार किया और वे मन्दाकिनीके रूपमें प्रकट हुईं। यहाँ तथा चित्रकूटमें मन्दाकिनीकी धारा बहती है, जिसमें पयस्विनी नामकी एक दूसरी नदी भी आकर मिलती है।

विभिन्न स्थानोंके कुछ दर्शन

पर्णकुटी, पञ्चवटी

श्रीरघुवीरजी, जानकीकुण्ड, चित्रकूट

भरद्वाज-आश्रम, प्रयाग

मानस-मन्दिरके आराध्य

विभिन्न स्थानोंके कुछ दर्शन

पर्णकुटी, पञ्चवटी

श्रीरघुवीरजी, जानकीकुण्ड, चित्रकूट

भरद्वाज-आश्रम, प्रयाग

मानस-मन्दिरके

पञ्चवटी और सज्जनगढ़के कुछ दर्शन

श्रीराम-पञ्चायतन, सज्जनगढ़ (महाराष्ट्र)

श्रीराममन्दिर, सज्जनगढ़

हनुमान-धारा—यह स्थान रामघाट (सीतापुर) से दो मील पूर्व देवाङ्गनवाले पर्वतपर ही स्थित है। यहाँ श्रीहनुमान्‌जीकी भव्य मूर्ति स्थापित है, जिसके दर्शनके लिये यों तो यात्री सदैव आते रहते हैं, पर भाद्रपद-शुक्लपक्षके अन्तिम मङ्गलवार (बुढ़वा-मङ्गल) को प्रतिवर्ष भारी मेला लगता है। पर्वतके भीतरसे एक ऐसा झरना फूट निकला है, जिसकी धुग्धाकार निर्मल जलधारा हनुमान्‌जीकी बायीं भुजापर पड़ती है। इसे देखनेसे शंकर भगवान्‌के मस्तकपर गङ्गावतरणके दृश्यकी कल्पना होने लगती है। मूर्तिके पास-तक पहुँचनेके लिये नीचेसे १६० सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यात्रियोंके विश्रामके लिये छोटी-सी धर्मशाला भी है। इसी पर्वत-श्रेणीमें हनुमान-धाराके ऊपर 'सीता-रसोई' तथा 'नरसिंह-धारा' नामक स्थान भी देखनेयोग्य है।

मत्तगजेन्द्र (मदगंजन स्वामी)—रामघाटके ऊपर मत्तगजेन्द्र (मदगंजन स्वामी) नामक शंकर भगवान्‌का प्रसिद्ध मन्दिर सुशोभित है। पुरीके अन्तर्गत यह प्रसिद्ध देवालय है और पुरी—क्षेत्रका प्रमुख देवता है। कहा जाता है कि मत्तगजेन्द्र शंकरजीकी स्थापना साक्षात् ब्रह्माजीके कर-कमलों द्वारा हुई थी।

उल्लिखित स्थानोंके अतिरिक्त चित्रकूट-क्षेत्रमें और भी अनेक दर्शनीय स्थल हैं। जानकीकुण्डके मार्गमें रामधाम, परिक्रमाके दक्षिण भागमें लक्ष्मणपहाड़ी तथा उत्तरी भागमें पीली कोठी, पीली कोठीसे थोड़ी दूरपर रामशय्या, परिक्रमामें ही भरत मिलाप और कर्वीसे ४ मील उत्तर-पश्चिम सूर्यकुण्ड, *चित्रकूटसे २४ मील दूर गोस्वामी तुलसीदासजीकी जन्मभूमि* राजापुर, १६ मील दूर वाल्मीकि-आश्रम तथा २४ मील दूर ऐतिहासिक स्थान कालिञ्जर आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

नासिक-पञ्चवटी-माहात्म्य

(प्रेषक—विद्यावाचस्पति पं० श्रीशंकरजी शास्त्री)

कलिधर्माः प्रबाधन्ते सर्वदेशेषु भूतले।
गोदावर्या न बाधन्ते कदापि तटयोर्द्वयोः॥
ततोऽपि नासिके नैव बाधन्ते कलिजा रुजाः।
कलियुगे यदि वाञ्छति सद्गतिं
निजकुलस्य गतिं परमार्थतः।
वसतु पञ्चवटीं प्रति मानवो
भजतु रामपदाम्बुजद्वयम्॥
रामेति नामस्मरणेन जन्तु-
र्विमुच्यते पञ्चवटीं गतः सन्।
नानाविधानामपि पातकानां
कर्ता कलौ मुक्तिमुपैति जीवः॥
संसारार्णवतारणाय विहिता नानातरीर्णां यथा।
किंतु श्रीरघुनाथनामसदृशी नान्या तरिर्दृश्यते।
तस्मात्प्राज्ञतमेन पञ्चवटिकामध्ये निवासालयं
श्रीरामस्य पदारविन्दयुगलं ध्येयं च सेव्यं भृशम्॥
देवर्षिभिः सुरैर्नित्यं गीयते नासिकं सदा।
धन्यो धन्या धन्यो धन्या मानवा ब्रह्मवासिके॥
यदि च मरणकाले मानवो नासिके च।
त्यजति हि मतिमान् नासिकस्थानि
नमसमरमरीचावसरे। सेव्यमानो
विगतसकलपापो याति ...

'इस भूतलपर कलिधर्म सभी स्थानोंपर बाधा उत्पन्न करते हैं, परंतु गोदावरीके दोनों तटोंपर कभी बाधा नहीं उत्पन्न करते। फिर 'नासिक' नामक क्षेत्रमें तो कलिसे उत्पन्न दोष और भी बाधा नहीं पहुँचाते। इस कलिकालमें मनुष्य यदि परमार्थकी दृष्टिसे अपनी और अपने परिवारकी सद्गति चाहता हो तो वह पञ्चवटीमें निवास करे और श्रीरामजीके चरण-कमलोंकी सेवा करे। पञ्चवटीमें गया हुआ जीव राम-नामके स्मरणमात्रसे मुक्त हो जाता है और साथ ही कलिकालमें नाना प्रकारके पातक कर्म करनेवाला जीव मुक्तिको प्राप्त कर लेता है। संसार-सागरको पार करनेके लिये अनेक प्रकारकी नौकाएँ हैं, किंतु श्रीरघुनाथके नामके सदृश अन्य कोई तरणि (नौका) नहीं दिखायी देती। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति उस पञ्चवटीमें निवास-स्थान बनाकर श्रीरामके युगल चरण-कमलका सदा ध्यान करे तथा अधिक सेवा-रत रहे।

जिसमें सूर्योदयके साथ ही ठीक ठाकुरजीके श्रीमुखपर पड़ती है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे नवमीतक यहाँ रामनवमीका उत्सव मनाया जाता है और चैत्र शुक्ल एकादशीको रथयात्राका बड़ा भारी मेला लगता है। इस मन्दिरमें नित्य दर्शनार्थियोंकी भीड़ लगी रहती है।

(४) सीतागुफा—श्रीराममन्दिरके पास उत्तरकी ओर यह स्थान है। खर-दूषणसे लड़ाईके समय सीताजीको इसी गुफामें रखा गया था, ऐसी मान्यता है। गुफामें सात सीढ़ियाँ नीचे उतरनेपर श्रीराम, सीता, लक्ष्मणजीकी मूर्तियाँ विराजमान हैं। सीतागुफाकी बगलमें ही प्राचीन पाँच वटवृक्ष हैं, जिनसे इस स्थानको 'पञ्चवटी' नाम प्राप्त हुआ है।

(५) तपोवन—पुराणप्रसिद्ध नासिक-पञ्चवटी क्षेत्रके पूर्वमें १॥ मीलकी दूरीपर 'तपोवन' है। यहाँ कपिला और गोदावरीका संगम है। सांख्यशास्त्र-प्रणेता श्रीकपिलमुनिकी यह तपोभूमि है। यहाँ संगमपर ब्रह्मयोनि, विष्णुयोनि, रुद्रयोनि, मुक्तितीर्थ, अग्नितीर्थ, सौभाग्यतीर्थ, ऋषितीर्थ और कपिला-संगम—ये पुराण-प्रसिद्ध अष्टतीर्थ हैं, ऐसी बात 'स्कन्दपुराण'के 'पञ्चाद्रि-माहात्म्य'में लिखी है।

अग्नितीर्थकी विशेषता यह है कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने सीताहरणके पूर्व श्रीसीताजीका मूलस्वरूप इसी स्थानपर अग्निमें रखा था और मायिक स्वरूप रावण-द्वारा हरण किया गया था। ऐसी कथा 'आनन्दरामायण' तथा 'श्रीरामचरितमानस'में वर्णित है। तपोवनमें प्राचीन लक्ष्मणमन्दिर, पर्णकुटी, शूर्पणखा-नासिका-छेदन तथा मारीचवध-स्थल विद्यमान हैं और तपोवन जाते समय मार्गमें श्रीपञ्चमुखी हनुमान्‌जीका मन्दिर पड़ता है।

(६) जटायु तीर्थ—नासिक जिलेमें टाकेद नामक गाँवसे करीब २१ मीलकी दूरीपर यह पवित्र स्थान है, जो बड़ा ही रमणीय, मनोरम तथा प्राकृतिक सौन्दर्यसे सम्पन्न है। यहींपर भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जटायुसे भेंट हुई थी और इसी स्थानपर जटायुके शरीरत्यागके समय भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने सब तीर्थोंको आवाहन करके बुलाया था। इसीलिये जटायुतीर्थको 'सर्वतीर्थ' भी कहते हैं। यह तीर्थ टाकेद गाँवके नजदीक ही विद्यमान है। घोटीसे सर्वतीर्थ (टाकेद) जानेके लिये बसकी सुविधा है।

(७) सीता-सरोवर—यह पञ्चवटीके उत्तर ४ मील दूर म्हसरूळ नामक ग्रामके पास वरुणा नदीके तीरपर है। यह सीतामाताके स्नान करनेकी जगह थी, ऐसी मान्यता है। यहाँ पौषमासके प्रति रविवारको मेला लगता है। यहाँ एक श्रीराममन्दिर भी है।

भगवान् रामके चरणोंकी महिमा

कंज के समान सिव-मानस-मधुप-निधि,
परम निधान सुरसरि मकरंद के।
सब सुख साज, सुरराजन के सिरताज,
भाजन हैं मंगल मुकति रूप कंद के॥
सरजू-बिहारी, रिपिनारी-तापहारी, ध्यान-
दाता हितकारी सेनापति मतिमंद के।
बिस्व के भरन, लसकरि के सरन, दोऊ
राजत चरन महराज रामचंद के॥

—महाकवि [illegible]

माल्यवान् पर्वत (स्फटिकशिला)—विरूपाक्ष-मन्दिरसे ४ मील पूर्वोत्तर माल्यवान् पर्वत है। इसके एक भागका नाम 'प्रवर्षणगिरि' है। इसीपर स्फटिकशिला-मन्दिर है। हास्पेटसे यहाँतक सीधी सड़क आती है। मोटर-बससे सीधे स्फटिकशिला आ सकते हैं। श्रीराम-लक्ष्मणने वर्षाके चार महीने यहीं व्यतीत किये थे।

सड़कके पाससे ही ऊपर जानेका मार्ग है। यहाँ गोपुरसे भीतर जानेपर एक परकोटेके भीतर सुविस्तृत आँगनके मध्यमें सभामण्डपसे युक्त श्रीराम मन्दिर है। मन्दिरमें श्रीराम-लक्ष्मण तथा जानकीजीकी बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं। सुग्रीवादिकी भी मूर्तियाँ हैं। यह मन्दिर एक शिलामें गुफा बनाकर बनाया गया है और शिलाके ऊपर शिखर बना दिया गया है। शिखरके नीचे शिलाका भाग स्पष्ट दीखता है।

मन्दिरके दक्षिण-पश्चिम कोणपर 'रामकचहरी' नामक एक सुन्दर मण्डप है। पासमें एक अन्य कुण्ड है। कहते हैं, इसे श्रीरामने बाण मारकर प्रकट किया था। मन्दिरके पिछले भागमें कुछ ऊँचाईपर 'लक्ष्मणबाण'-नामक स्थान है। कहा जाता है कि लक्ष्मणजीने बाण मारकर यहाँ जल प्रकट किया था और श्रीरामने यहाँ पितृश्राद्ध किया था। यहाँ पर्वतमें एक चौड़ी दरार है, जिसमें जल भरा रहता है। इसके पास बहुत-सी शिलापिण्डियाँ हैं। इस स्थानके पास ही एक छोटा-सा गुफा मन्दिर है। यहाँ गुफामें शिवलिङ्ग स्थापित है।

मन्दिरके पूर्वभागमें पर्वतके ऊँचे शिखरपर दो छोटे मण्डप बने हैं। एकको 'रामझरोखा' और दूसरेको 'लक्ष्मण झरोखा' कहते हैं।

स्फटिकशिलाके इस मन्दिरके सामनेकी पक्की सड़कसे ही एक मील आगे जानेपर सुग्रीवका 'मधुवन' मिलता है।

श्रीरामेश्वर-माहात्म्य

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गंगाजलु आनि चढ़ाइहि। सो साजुज्य मुक्ति नर पाइहि॥
होइ अकाम जो छल तजि सेइहि। भगति मोरि तेहि संकर देइहि॥
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही॥
(मानस ६। २। १-४)

अस्ति रामेश्वरं नाम रामसेतौ पवित्रकम्॥
क्षेत्राणामपि सर्वेषां तीर्थानामपि चोत्तमम्।
दृष्टमात्रे रामसेतौ मुक्तिः संसारसागरात्॥
हरे हरौ च भक्तिः स्यात्तथा ...
कर्मणश्चित्तविशुद्धिश्च सिद्धिः स्यान्नात्र ...
तावतां ब्रह्महत्यानां नाशः स्यान्नात्र संशयः।
(स्कं०, ब्राह्मखण्ड, सेतुमा० १। १८—२०, २३-२४, २८, ४९-५०)

'भगवान् श्रीरामद्वारा बँधाये हुए सेतुसे जो परम पवित्र हो गया है, यह रामेश्वर-तीर्थ सभी तीर्थों तथा क्षेत्रोंमें उत्तम है। उस [illegible] दर्शनमात्रसे संसार सागरसे मुक्ति ... तथा ... [illegible] ... भक्ति और ... [illegible] ... ([illegible] ...) ... हैं, इससे ... [illegible] सारे

करनेसे पिशाच-बाधा दूर होती है। सुतीक्ष्णमुनिने एक युवकको इस तीर्थमें स्नान कराकर पिशाचयोनिसे मुक्त किया था। युवकने एक मुनिके पुत्रको समुद्रमें डुबो दिया था। मुनिके शापसे युवक पिशाच हो गया था। इसी स्थानपर समुद्रके ठीक किनारे श्रीशंकराचार्यजीका एक मठ बना हुआ है।

कोदण्डराम स्वामी—रामेश्वरसे पाँच मील दूर उत्तर समुद्रके किनारे किनारे बालूपर रेतके मैदानमें यह मन्दिर मिलता है। केवल पैदल जाना पड़ता है। यहाँ मन्दिरमें श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी तथा विभीषणकी मूर्तियाँ हैं। कहते हैं, यहीं भगवान्‌ने विभीषणको समुद्र-जलसे राजतिलक किया था।

गन्धमादन (रामझरोखा)—यह स्थान श्रीरामेश्वर-मन्दिरसे डेढ़ मील दूर है। इस मार्गमें जाते समय क्रमशः सुग्रीवतीर्थ, अङ्गदतीर्थ, जाम्बवान्‌तीर्थ और अमृततीर्थ मिलते हैं। इनमें सुग्रीवतीर्थ सरोवर है, शेष कूप हैं। यात्री इनके जलसे आचमन-मार्जन करते हैं। इनसे आगे हनुमान्‌जीका एक मन्दिर है। इसमें हनुमान्‌जीके बालरूपकी सुन्दर मूर्ति है। इस मार्गमें यहीं पीनेयोग्य अच्छा जल मिलता है। अमृततीर्थका जल भी उत्तम है।

इस स्थानसे कुछ आगे 'रामझरोखा' है। यह एक टीला है। ऊपर ऊपरतक जानेको सीढ़ियाँ बनी हैं। मन्दिरमें भगवान्‌के चरणचिह्न हैं। कहते हैं, यहींसे हनुमान्‌जीने समुद्र पार होनेका अनुमान किया था और श्रीरघुनाथजीने यहाँ सुग्रीवादिके साथ लङ्कापर चढ़ाईके सम्बन्धमें मन्त्रणा की थी।

यहाँसे नीचे उतरकर परिक्रमा करते हुए दूसरे मार्गसे रामेश्वर लौटते हैं। इस मार्गमें रामझरोखाके टीलेसे नीचे उतरते ही 'धर्मतीर्थ' मिलता है। यह एक बावली है। इस तीर्थकी स्थापना युधिष्ठिरद्वारा हुई बतायी जाती है। आगे क्रमशः भीमतीर्थ, अर्जुनतीर्थ, नकुलतीर्थ, सहदेवतीर्थ और द्रौपदीतीर्थ थोड़ी-थोड़ी दूरीपर मिलते हैं। इन तीर्थोंके जलसे आचमन मार्जन किया जाता है। ये सब तीर्थ सरोवर हैं। ब्रह्मतीर्थ बड़ा सरोवर है, जिसमें समुद्रका खारा पानी रहता है। इस कुण्डके पास भद्रकाली देवीका मन्दिर है। विजयादशमीके दिन रामेश्वरमन्दिरसे गणेश, रामेश्वर एवं स्कन्दकी उत्सवमूर्तियाँ यहाँ यहाँ आती हैं और यहाँ शमी-पूजन होता है। आगे सीतातीर्थ है। यहाँ द्रौपदीकी मूर्ति है। इसके समीप एक छोटा-सा नासी मन्दिर है। द्वारपर गणेशमूर्ति है। मन्दिरके सामनेवाले तथा सुग्रीवकी मूर्तियाँ हैं। इस मन्दिरके पास दक्षिणकी ओर 'हनुमान्-तीर्थ' है। इस सरोवरके तटपर हनुमान्‌जीकी मूर्ति है।

रामेश्वर-मन्दिर—रामेश्वर-बाजारके पूर्व समुद्र-किनारे लगभग २० बीघे भूमिके विस्तारमें श्रीरामेश्वर-मन्दिर है। मन्दिरके चारों ओर ऊँचा परकोटा है। इसमें पूर्व तथा पश्चिम ओर ऊँचे गोपुर हैं। पूर्वद्वारका गोपुर दस मंजिलोंका है। पश्चिमद्वारका गोपुर सात मंजिलोंका है।

पश्चिम गोपुरके भीतर तथा बाहर बाजारमें भी शङ्ख, सीपियाँ, कौड़ियाँ, मालाएँ, रंगीन टोकरियाँ आदि बिकती हैं। रामेश्वरके मन्दिरमें शङ्ख तथा रंगीन टोकरियोंका बड़ा बाजार है। यहाँसे यात्री प्रायः ये वस्तुएँ साथ ले जाते हैं। मन्दिरमें प्रवेश करते ही मार्गके दोनों ओर स्तम्भोंमें सिंहादिकी सुन्दर मूर्तियाँ बनी हैं। एक स्थानपर राजा सेतुपति तथा उनके परिवारके लोगोंकी मूर्तियाँ एक स्तम्भमें बनी हैं। चक्रतीर्थ और शङ्खतीर्थके मध्यमें रामेश्वरके निज-मन्दिरको जानेका फाटक है। श्रीरामेश्वरजीके मन्दिरके सम्मुख विस्तृत सभा-मण्डप है। श्रीरामेश्वर-मन्दिरके उत्तर ओर सटा हुआ श्री-विश्वनाथ (हनुमदीश्वर) मन्दिर है। यह हनुमान्‌जीका लाया हुआ लिङ्ग है। नियम यही है कि पहले श्रीविश्वनाथका दर्शन-पूजन करके तब रामेश्वरका दर्शन करना चाहिये।

श्रीरामेश्वर-मन्दिरके सामने छड़ोंका घेरा लगा है। तीन द्वारोंके भीतर श्रीरामेश्वरका ज्योतिर्लिङ्ग प्रतिष्ठित है। इनके ऊपर शेषजीके फणोंका छत्र है। रामेश्वरजीपर कोई यात्री अपने हाथसे जल नहीं चढ़ा सकता। मूर्तिपर गङ्गोत्तरी या हरिद्वारसे लाया गङ्गाजल ही चढ़ता है और यह जल पुजारीको दे देनेपर पुजारी यात्रीके सम्मुख ही चढ़ा देते हैं।

स्फटिक लिङ्ग—श्रीरामेश्वरजीका एक बहुत सुन्दर स्फटिकलिङ्ग है। इसके दर्शन प्रातःकाल ४॥ बजेसे ५ बजे-तक होते हैं। यात्री सबेरे इसका दर्शन करके तब स्नानादि करने जाते हैं। यह स्फटिकलिङ्ग अत्यन्त स्वच्छ तथा पारदर्शी है। मन्दिर खुलते ही प्रथम इसकी पूजा होती है। इस मूर्तिपर दुग्धधारा चढ़ते समय मूर्तिके स्पष्ट दर्शन होते हैं। पूजन हो जानेके पश्चात् मूर्तिपर चढ़ा दुग्धादिका पञ्चामृत प्रसादरूपमें यात्रियोंको दिया जाता है।

श्रीरामेश्वरजीके जगमोहनमें उनके पीछे एक छोटे मन्दिर हैं। एकमें गन्धमादनेश्वर शिवलिङ्ग है। यहाँ आग्र

"इधर मूर्ति-स्थापनका मुहूर्त बीता जा रहा था। श्रीजानकीजीने क्रीडापूर्वक एक बालुका लिङ्ग बना लिया था। ऋषियोंके आदेशसे श्रीरघुनाथजीने उसीको स्थापित कर दिया। यही 'रामेश्वरलिङ्ग' है, जिसे स्थानीय लोग 'रामनाथ-लिङ्गम्' भी कहते हैं।

"श्रीहनुमान्‌जी लौटे तो उन्हें एक अन्य लिङ्गकी स्थापनासे बड़ा खेद हुआ। इसपर प्रभुने कहा—'तुम यदि मेरे स्थापित लिङ्गको हटा सको तो मैं तुम्हारा लाया लिङ्ग-विग्रह ही यहाँ स्थापित कर दूँ।' हनुमान्‌जीने रामेश्वर-लिङ्गको पूँछसे लपेटकर उखाड़नेका पूरा प्रयत्न किया, किंतु वे उसे हटानेमें सफल नहीं हुए। उलटे पूँछका बन्धन खिसक जानेसे दूर जा गिरे और मूर्च्छित हो गये। श्रीजानकीजीने उन्हें सचेत किया।

"भगवान् श्रीरामने कहा—'जानकीके द्वारा निर्मित और मेरेद्वारा स्थापित मूर्ति तो अविचल है और वह हटायी नहीं जा सकती। तुम अपनी लायी मूर्ति पासमें स्थापित कर दो। जो इस तुम्हारी लायी मूर्तिका दर्शन नहीं करेगा, उसे रामेश्वर-दर्शनका फल नहीं होगा।' हनुमान्‌जीने कैलाससे लायी मूर्ति स्थापित कर दी। भगवान्‌ने उसका पूजन किया। यही मूर्ति 'काशी-विश्वनाथ' (हनुमदीश्वर) कही जाती है।"

श्रीरामेश्वरजीकी मूर्ति पहले वनमें ही थी। पीछे वहाँ किसी संतने झोपड़ी बना दी। आगे चलकर सेतुपति नरेशोंने यहाँ मन्दिर बनवाया। वर्तमान मन्दिर कई नरेशोंके श्रमसे कई बारमें इस रूपमें लाया गया है। यद्यपि तीर्थों एवं अन्य देवमूर्तियोंके सम्बन्धकी कथा भी पुराणोंमें मिलती है, किंतु विस्तारभयसे उन कथाओंको यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

श्रीरामेश्वर-तीर्थसे बाहर भी कुछ महत्त्वपूर्ण तीर्थ हैं, उनके नाममात्र यहाँपर दिये जा रहे हैं—

१—देवीपत्तनम्, २—दर्भशयनम्, ३—चक्र-तीर्थ, ४—क्षीर-कुण्ड, ५—रामनद, ६—पार्श्वनाथ (मण्डपम् स्टेशनके पास है), ७—वेताल-वरद।

शत्रुरूपमें अनोखा प्रेमी मारीच

(लेखक—स्वामी श्रीरामदासजी)

जबतक विशुद्धतीव्र भगवत्प्रीतिके रसकी उपलब्धि जीवको नहीं हो जाती, तबतक जागतिक भोगोंके गंदे रसोंमें मन फँसा रहता नहीं। स्वभावतः प्राणियोंका मन रसिया है, अतः इसे यदि रस नहीं मिलेगा तो दुःख परिणामी गंदे रसोंकी ओर जायगा ही। विशुद्ध रस भगवान्‌के चरणोंका प्रेम ही है—'हरि पद रति रस बेद बखाना।' भगवत्प्रीतिके अनुपम रसमें रात-दिन डूबे रहना ही मानव-जीवनकी सबसे बड़ी सार्थकता तथा सफलता है। ऐसी स्थिति प्राप्त होनेपर ही जीवनके सभी विकारोंका तथा दम्भोंका आत्यन्तिक अभाव होता है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—'रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।' (गीता २। ५९)

अपने भक्तिसूत्रमें उस भगवत्प्रीतिरसके स्वरूपका विवेचन करते हुए देवर्षि नारदने यही निष्कर्ष निकाला है कि 'अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्' (५१) अर्थात् प्रीतिके स्वरूपको इदमित्थं नहीं कहा जा सकता। प्रेम जहाँ एक ओर अनन्त लक्षणोंसे लक्ष्य है, वहाँ दूसरी ओर लक्षणोंसे सर्वथा परे भी है।

श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें जिस समय श्रीभरतलालका प्रभुसे मिलन होता है, उस समय उस मिलन-प्रीतिको गोस्वामीजी महाराज अश्रुपात, रोमाञ्च, गद्गद स्वर आदि लक्षणोंद्वारा अभिव्यक्त करते हैं। यथा—

राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी॥
(मानस ७। ४। १—२)

पर जिस समय श्रीचित्रकूटमें प्रभु तथा श्रीभरतका मिलन होता है, उस समय गोस्वामीजी महाराज मिलन प्रीतिको लक्षणोंद्वारा अभिव्यक्त करनेमें अपनेको नितान्त असमर्थ बताते हैं; क्योंकि वहाँ प्रेमका कोई बाह्य लक्षण नहीं भासता। यथा—

'मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबि कुल अगम करम मन बानी॥'
(वही, २। २४०। ३)

यहाँ न अश्रुपात है, न रोमाञ्च है, न गद्गद स्वर है। यहाँ तो 'कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा॥' (वही, २। २४१। ३) इस प्रकार प्रेम लक्षणोंवाला भी है, लक्षणोंसे परे भी है। यही नहीं, प्रेममें तो विरोधी भावोंका भी समावेश है। ...

करना प्रेम है तो गारी देना भी

प्रति अटूट प्यार है। 'अस रामपद प्रेम अभंग।' दुनिया जिस मौतकी परछाईंसे भयभीत होती है, आज उसीका आलिङ्गन करनेके लिये मारीच अत्यन्त हर्षित हो रहा है। सच ही है, जिसने संसारमें करनेयोग्य कार्यको कर डाला है, जिसके अन्तःकरणसे कामनाके अङ्कुरोंका समूलोच्छेदन हो चुका है, जो भगवान्‌के प्रेमको प्राप्त करके उसमें डूब चुका है, उसे मृत्युका क्या भय!

परंतु मारीचकी स्थिति तो यहाँ और अधिक श्रेष्ठ है। यह तो अपने प्रभुके कार्यकी सिद्धिके लिये उन्हींके कर-कमलोंसे मरने जा रहा है। प्रभुके मनकी हो, इससे बढ़कर भक्तके लिये हर्षका विषय और क्या होगा! अतः आज 'मन अति हरष जनाव न तेही।' (वही, ३।२५।४)

प्रभुके समान जीवसे प्रेम करनेवाला कोई दूसरा नहीं है। मारीच कहता है—'निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबसहि बसकरी।' (वही, ३।२५। छं० १) 'जिस प्रभुका क्रोध भी मुक्ति देनेवाला है, वे ही सुखस्वरूप प्रभु मेरा वध करेंगे। रावणपर क्रोध किया तो उसे अपने धाम भेज दिया। विभीषणपर रीझे तो उसे लङ्काका राज्य दे दिया—'रीझे बस होत, खीझे देत निज धाम रे॥'
(विनय-पत्रिका)

"जिनका क्रोध भी निजधाम देनेवाला है, वे ही प्रियतम प्रभु आज मुझे मारेंगे। मुझे उनके दिव्याङ्गोंका स्पर्श न मिले, न सही, पर उनके कर-कमलोंसे संस्पर्शित पुनीत बाण तो मुझे स्पर्श करेगा ही; इससे बढ़कर सौभाग्य मेरा और क्या होगा? आज वह परात्पर ब्रह्म, जिसको निगमोंने 'नेति' कहा है; जो स्वयं भगवान् शिवके लिये अगम्य है, जो सम्पूर्ण विश्वका नियामक है, वह मेरे पीछे-पीछे दौड़ेगा। अतः आज मेरे समान धन्य संसारमें कौन है? माँ कौसल्ये! जिन्होंने उस ब्रह्मको प्रकट करके जगत्‌में उसकी माँ बननेका महान् गौरव प्राप्त किया है, वे तुम भी आज मेरे समान धन्य नहीं हो।"

"बात ऐसी थी कि एक दिन भोजन करते समय श्रीदशरथजी महाराज अपने रामलल्लाको खानेके लिये बुला रहे थे। न आनेपर माता कौसल्या उन्हें पकड़ने चलीं। माँको आते देख प्रभु भगे। गोस्वामीजीने कहा—

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥
निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥
(वही, १।२०३।४)

अतः मारीच कहता है—"अरी माँ! जिन ब्रह्मको पकड़नेके लिये तुम उनके पीछे-पीछे दौड़ी थीं, वे ही प्रियतम आज मेरे पीछे-पीछे दौड़ेंगे—'मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।' (वही, ३।२६), अतः मेरे समान धन्य तुम नहीं हो।"

मारीच कहता है—"अरे भैया लक्ष्मण! क्या हुआ जो प्रभुकी चरणरूपी पताकाके लिये तुम्हारा यश दण्डके समान हुआ! तुम जिन प्रभुके सदा पीछे-पीछे चला करते हो—'आगें रामु अनुज पुनि पाछें।' (वही, २।१२२।½), आज वे ही मेरे पीछे-पीछे दौड़ेंगे। अतः मेरे समान आज तुम भी धन्य नहीं हो।"

"हे माँ जानकि! तुम अपने जिन जीवन-सर्वस्व प्रभुको पुष्पवाटिकामें खोज रही थीं—'चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृप किसोर मनु चिंता॥' (वही, १।२३१।½) तथा मार्गमें चलते समय तुम जिन प्रियतमके पीछे-पीछे चलती हो, आज वे ही प्रियतम मेरे पीछे-पीछे दौड़ेंगे। अतः माँ! तुम भी तो आज मेरे समान धन्य नहीं हो।"

"काकभुशुण्डिजी! सचमुच तुम्हारी भक्ति अनन्य है। एक दिन खेल-खेलमें ही प्रभु जब तुम्हें पकड़ने चले थे, तब तुम भागे थे और उस समय तुम ब्रह्माण्ड भेदकर जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँ तुमने प्रभुकी केवल भुजा अपने पीछे-पीछे देखी थी। पर यहाँ तो उस ब्रह्मका सम्पूर्ण श्रीविग्रह आज मेरे पीछे दौड़ेगा। अतः मेरे समान तुम भी धन्य नहीं हो—'धन्य न मो सम आन।'" (वही, ३।२६)।

इस प्रकार मारीच अपनेको महान् भाग्यशाली मानता हुआ प्रभुके कार्यकी सिद्धिके लिये अत्यन्त हर्षित होकर प्रभुके आश्रमके निकट जाता है। वह चाहता तो श्रीविभीषणके समान प्रभुकी शरणमें आकर रावणके भयसे अपनेको मुक्त कर लेता। पर नहीं, उसका उद्देश्य तो है प्रभुकी प्रसन्नताके लिये प्रभुके कार्यकी सिद्धि करना और यह उद्देश्य जीवन-रक्षासे कहीं अधिक श्रेष्ठ है। अपने परम प्रियतम प्रभुकी प्रसन्नता तथा सुखके लिये उनके समक्ष शत्रुरूपमें आकर भी मारीच अपने प्रभु-प्रेमका निर्वाह करता है तथा श्रीरामावतारके प्रयोजनकी पूर्तिमें सहायक बनता है। धन्य मारीच और श्रीरामके प्रति उसका अनोखा प्रेम!

उनमेंसे किसीको चुन लें।' मैंने उत्तर दिया—'जब वे मुझसे मिलने आते हैं, तब मुझसे पूर्व आपको नमस्कार करते हैं। इसलिये आप ही जिसे उचित समझें, चुन लें और मुझे बता दें। मैं उसका नाम, धाम, काम आदि सब पता करके आपको बता दूँगा।'

'मैंने समझा समस्या हल हो गयी है। परंतु एक मासके पश्चात् श्रीमन्‌ स्वामीने फिर वही प्रश्न दोहराया। मैंने भी अपना वही उत्तर दोहरा दिया। मेरे पास और कोई गुंजाइश थी भी नहीं। तो भी उस शामको जब राम-प्रभुके चरणोंमें बैठा, तब उनसे निवेदन किया—'मेरे राम! यह कैसी लीला है तेरी! लड़कीके वरका प्रबन्ध कौन करेगा?' इसके उपरान्त एक मासके अंदर-अंदर सुन्दर, सुडौल, सदाचारी, एम्॰ ए॰, एल्॰ एल्॰ बी॰ नवयुवक मिल गया, जो प्रचारक बन चुका था। इसके अतिरिक्त उसी महीनेमें विवाहका प्रबन्ध भी हो गया। मेरे जिम्मे केवल यह काम लगाया गया—'यह प्रेसमें आया हुआ कम्पोज़ किया हिंदी निमन्त्रण-पत्र है। इसे देख लीजिये, ताकि छपनेके बाद आप यह न कह सकें कि यहाँ अर्ध-विराम नहीं, वरं पूर्ण-विराम होना चाहिये था।' बस, मुझसे इसके अतिरिक्त न खाने-पीनेकी चीजोंके विषयमें पूछा गया, न कपड़े-लत्तेके विषयमें। मुझे इन बातोंकी समझ भी नहीं है। तो भी मेरे लिये बड़ी बात यह थी कि मुझपर कोई दायित्व न लादा गया। विवाह कुशलपूर्वक हो गया। करनेवाले रामने स्वयमेव सब कुछ कर दिया।''

× × ×

श्रीराम तथा हनुमान्‌के भक्त भाई मूलराजका लड़का स्कूलमें पढ़ता था। वह बीमार हो गया। डबल निमोनियाके कारण रावलपिंडीके सरकारी अस्पतालमें प्रविष्ट करा दिया गया। माता-पिता—दोनों बेटेकी चारपाईके पास दिन-रात बैठे रहते। कुछ दिनके पश्चात् डाक्टरोंने कहा—'आज बीमारकी अवस्था न केवल अच्छी नहीं, वरं चिन्ताजनक है। अब हम इसके लिये कुछ नहीं कर सकते। आप जो चाहें, कर सकते हैं। चाहें तो इसे घर ले जा सकते हैं।'

माता घबरायी, आँसुओंकी झड़ी लग गयी। पिता तो पहलेसे हर समय हनुमानचालीसा जपनेमें मग्न रहते थे। रातके चार बजे थे। सर्दियोंके दिन थे। माईजीको झपकी आ गयी। इसके बाद आँख खुली तो फकीरसे कहने लगीं—'मैं कहाँ हूँ?' फकीरने पूछा—'कहाँ?' उन्होंने उत्तर दिया—'अभी लौटनेपर बताता हूँ।' फकीरकी अन्य कोई बात सुने बगैर वे जल्दी-जल्दी अस्पतालके बाहर निकल गये। अब रात कुछ था। थोड़ी ही देरमें रावलपिंडीनगरके अंदर आ पहुँचे। एक गलीमें पक्के मकानके सामने जाकर वे अपने उस हकीम मित्रको आवाज़ें देने लगे, जो स्कूलमें उनके साथ पढ़ता रहा था। पहले तो किसीने उत्तर न दिया। बार-बार आवाज़ें लगानेपर अन्तमें अंदरसे उत्तर मिला—'कौन है?' माईजीने कहा—'मैं मूलराज।' प्रश्न—'कौन मूलराज?' उत्तर—'तुम्हारा लड़कपनका सहपाठी मूलराज लिम्बर।' प्रश्न—'इस समय कैसे आये हो?' उत्तर—'दरवाज़ा खोलो तो बताऊँ।'

आखिर द्वार खुला। दोनों मित्र एक दूसरेसे सीने-से-सीना लगाकर मिले। अब माईजीने कहा—'मेरा लड़का अस्पतालमें डबल निमोनियासे पीड़ित है। तुम दवा दो, ताकि वह चंगा हो जाय।' मित्रने कहा—'डबल निमोनियाका रोगी अस्पतालमें पड़ा है, डाक्टरोंने जवाब दे दिया है और अब तुम मेरे पास आये हो! मैं क्या उसे मौतके मुँहसे निकाल लाऊँगा? यदि लड़केको कुछ हो गया तो कलंक मेरे मत्थेपर लगाओगे। वे डाक्टर और तुम भी मुझे जिम्मेदार ठहराओगे।' माईजीने नम्रतासे कहा—'तुम दवा तो दो। मैं वचन देता हूँ कि यदि कुछ हो गया तो किसीसे यह न कहूँगा कि दवा तुमसे ले गया था। पर मैं तो जानता हूँ कि तुम्हारी दवासे मेरे बच्चेको राहत मिलनेवाली है।'

मित्रने पूछा—'यह कैसे?' तब माईजीने बताया—'अभी कुछ मिनट हुए हनुमान-चालीसा जपते-जपते मुझे झपकी आ गयी। सफेद दाढ़ीवाले एक वृद्ध व्यक्तिने आकर कहा—'घबराओ मत, नगरमें जाओ और अपने सहपाठी हकीम-मित्रसे दवा लाकर लड़केको दो। वह चंगा हो जायगा।' बस, इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये और मैं तुम्हारी ओर चला आया। अरे, यह तो अब तुम्हारे हाथमें निर्भर है। इसलिये तुम चिन्ता किस बातकी करते हो?'

हकीमने चार पुड़ियाँ दीं और बोले—'तीन-तीन घंटेके बाद एक पुड़िया गुनगुने पानीके साथ देते जाओ। रोगीके लड़केका हाथ या सिर भार मालूम देता है, जिससे दवा गिर सकती है। लेकिन तुम चिन्ता न करना। श्रीरामकी कृपासे तीन पुड़ियोंसे ही अपेक्षित लाभ होगा। चौथी मैंने फालतू दी है।'

तथा उन्हींके मधुर-मनोहर गुणोंका गान किया करते थे। श्रीरामके स्मरणसे उन्हें रोमाञ्च हो आता और उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगते।

'रमता जोगी, बहता पानी'—अच्छा होता है। मक्त बसाली भी एक स्थानपर कभी नहीं रहते थे। आज यहाँ हैं तो कलका पता नहीं। उठे, चल दिये। एक बार घूमते-फिरते मुल्तान नगरमें पहुँचे। रात्रिमें टहलते हुए समर्द शाहके मकबरेके समीप पहुँच गये। वहाँ देखा, व्यास-पीठपर पण्डित टेकचन्दजी बैठकर रामायणकी कथा सुना रहे थे। उनका स्वर अत्यन्त मधुर था। वे रामायणकी कथा इतने सरल शब्दोंमें कहते कि छोटे-छोटे बच्चेतक समझ जाते। उनकी वाणीमें रस और माधुर्य था। सैकड़ों स्त्री-पुरुष श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक शान्तचित्तसे कथा सुन रहे थे। महात्मा बसालीजी भी सबके पीछे चुपकेसे बैठकर कथा सुनने लगे।

प्रसङ्ग था राजा जनककी पुष्पवाटिकाका। मिथिला-नगरनिवासी श्रीराम-लक्ष्मणके अलौकिक सौन्दर्यपर मुग्ध थे। पुष्पवाटिकामें जनकनन्दिनी श्रीजानकीजीने उनका दर्शन किया तो देवर्षि नारदके वचनको स्मरणकर उनके हृदयमें पुनीत प्रीति उत्पन्न हो गयी। नगरवासियोंसहित श्रीजानकीकी प्रीतिका इतना सुन्दर एवं सरस चित्रण पं० श्रीटेकचन्दजीने किया कि श्रोता जैसे स्वयं श्रीरामके भुवनमोहन मरकत-नीरद-वपुका दर्शन कर अपने-आपको भूल गये। पण्डितजीने दशरथनन्दन श्रीरामकी सौन्दर्य-राशिका वर्णन करते हुए कहा—

केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुलभूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान॥
(मानस १। २३३)

श्रोताओंके नेत्र अश्रुपूरित थे। वे निखिल सृष्टिके नायक त्रैलोक्यसुन्दर श्रीरामके ध्यानमें अपनी सुध-बुध खो चुके थे और यही दशा महात्मा बसालीकी भी। वे नखशिख-सुन्दर श्रीरामके ध्यानमें उन्मत्त थे। उनकी आँखें आँसुओंसे भरी थीं और उनकी हिचकियाँ बँध गयी थीं। साथ ही वे कथावाचककी कथाशैलीसे अत्यन्त प्रभावित हो गये। वे अपने आँसू पोंछ रहे थे कि अचानक उनके मुँहसे जोरसे निकल पड़ा—

'जिसकी आँख में जादू, तेरी जबाँन में है।'

पण्डितजीने दृष्टि उठाकर महात्मा बसालीको

उस दिन कथा यहीं समाप्त कर दी। आरती हुई। एक-एक श्रोता आरती लेकर चलने लगे। सबके पीछे शाहसाहेबने पण्डितजीके पास आकर बड़े ही प्यारसे कहा—'पण्डितजी! तुम बड़ी सुन्दर कथा कहते हो। बराय मिहरबानी मुझे इतनी तकलीफ करो कि तुम जिन श्रीरामकी कथा सुना रहे थे, वे कौन हैं और जिस किताबमें इनका जिक्र है, उसका नाम क्या है?'

'सरयू नदीके किनारे एक बड़ा सुन्दर नगर बसा है।' पण्डितजीने अत्यन्त आदर एवं प्रेमसे शाहसाहेबको बताया। 'उसका नाम है अयोध्या। वहाँके प्रतापी राजा दशरथ थे। उन्हींके पुत्र परमसुन्दर और सम्पूर्ण आदर्श गुणोंके केन्द्र श्रीरामचन्द्रजी थे। वे कृपा एवं प्रेमकी मूर्ति थे। और इस पोथीका नाम रामायण है। इसमें उन्हीं करुणामय, कल्याणमय, सर्वशक्तिमान्, परमसुन्दर, नवनीलनीरदवपु श्रीरामचन्द्रकी मधुर-मनोहर लीला-कथाका वर्णन है। यह कथा आपको कैसी लगती है?'

'बहुत अच्छी!' शाहसाहेबने उत्तर दिया। 'सच तो यह है, पण्डितजी! कि मैं उसीका आशिक हूँ। वह मेरी जान है। उसके बिना मैं रह नहीं सकता। उनकी कथा, उनकी चर्चा तो मैं रोज ही सुनूँगा। सबसे पहले आऊँगा और सबके बाद जाऊँगा।'

दूसरे दिन कथा प्रारम्भ करते ही पण्डितजीने देखा, शाहसाहेब सबके पीछे खड़े हैं। पण्डितजी उठकर खड़े हो गये और हाथ जोड़कर बोले—'शाहसाहेब! आप कृपापूर्वक यहाँ मेरे पास आइये। आपके समीप बैठनेसे मुझे प्रभुकी सौम्य कथा सुनानेमें बड़ा सुख मिलेगा।'

पण्डितजीकी प्रार्थना सुनकर शाहसाहेब व्यासासनके समीप श्रोताओंके आगे बैठ गये और सिर झुकाकर कथा सुनने लगे। शाहसाहेबके नेत्र अनवरत बरसते रहे। कथाके अनन्तर आरती हो जानेपर शाहसाहेबने पण्डितजीसे कहा—'कल फिर आऊँगा।'

इस प्रकार शाहसाहेब प्रतिदिन नियमितरूपसे कथा सुनने लगे। सबसे पहले आते, पण्डितजीके प्रेमाग्रहसे सबके आगे [illegible] आरती [illegible] के अन्तमें चले जाते।
[illegible]
[illegible] गया कहा
[illegible] देते
[illegible] रहते।

संत संतुष्ट हो गये। बोले—'अच्छा पण्डितजी! माँगो, क्या माँगते हो?'

पण्डितजी शाहसाहेबको अच्छी तरह जानते थे। बहुत देरतक सोचनेके अनन्तर उन्होंने तीन चीजोंकी इच्छा प्रकट की—

(१) मेरे कोई संतान नहीं, एक पुत्र चाहिये।

(२) मृत्यु कष्ट मुझे न हो। अनायास ही मेरी मृत्यु हो जाय।

(३) प्राणधन श्रीरामके पद-पद्मोंमें प्रीति हो।

'हाँ, दो चीजें अभी देता हूँ।' शाहसाहेबने पूरी उमंगसे कहा। 'तीसरी चीज तब दूँगा, जब तुम फिर मिलकर मेरे दिलवरकी कथा सुनाओगे।'

'हाय!' चूक गये पण्डितजी। जीवनका ध्येय ही विस्मृत हो गया। मणि छोड़कर काँच ले बैठे। अत्यन्त उदास होकर उन्होंने पूछा, 'मैं फिर आपको कहाँ पाऊँगा?'

'यारकी गलियोंमें।' शाहसाहेब बोले—'मेरा यार तुम्हें तुम्हा लियाकर मुझसे मिला ही देगा। चिन्ता मत करो। अब जाओ।'

पण्डित टेकचन्दको विदा हुए और शाहसाहेब अपने यारके सौन्दर्यका गुन गाते उसकी गलीकी ओर चले। उन्होंने पण्डितजीके मुँहसे सुनी प्रार्थनाकी केवल एक पङ्क्ति याद कर ली थी और उसे ही कभी-कभी उछलकर गाते—

'रमानाथो रामो वसतु मम चित्ते तु सततम्।'

चार महीने बीते। पाँचवें मासमें शाहसाहेब अपने यारकी तलाश करते-करते अयोध्या पहुँच गये। बाबरी मसजिदमें उतरे। इश्कसे पीड़ित ही पीतम अपना सुख जानता है। इतने दिनों बाद अयोध्याके दर्शन करनेपर शाहसाहेबको कितना आनन्द प्राप्त हुआ, उनका हृदय कितना उल्लसित हुआ, उन्हें कौन-सी अलौकिक निधि प्राप्त हो गयी, जिसके कारण उनके पैर धरतीपर नहीं पड़ रहे थे—इसे कौन बताये? बस, वे ही जानते हैं और जानता है, उनका दिलदार यार।

और उसके कूचेमें आकर वे कहीं बैठते, कहीं व्याकुल हो जाते। बस, वे श्रीरामकी आराधना ही करते रहते। एक दिनकी बात है। शाहसाहेब श्रीरामके ध्यानमें मग्न बैठे थे। एक सज्जनने आकर पूछा—'शाहसाहेब! अकेले कैसे बैठे हो?'

'अबतक तो अकेला नहीं था।' ध्यान भङ्ग होनेपर महात्मा वसालीको अत्यधिक क्लेश हुआ। अपने आराध्यके वियोगसे हुई व्यथा एवं रोषको नियन्त्रितकर उन्होंने उत्तर दिया। 'दिलदार यारके साथ मजे लूट रहा था, पर तुम्हारे आ जानेसे मैं जरूर अकेला हो गया।'

महात्मा वसालीके साभिप्राय वचन सुनकर उक्त सज्जन-को बड़ा खेद हुआ। उन्होंने शाहसाहेबसे बार-बार क्षमा माँगी और प्रणाम कर वहाँसे चले गये।

दो-चार दिन बाद शाहसाहेबने अपने आराध्यके पवित्रतम धामकी परिक्रमा करनेका निश्चय किया और एक बार परिक्रमा की तो जब जीमें आता, तभी परिक्रमा कर आते। यह बात सच्ची है, जब अयोध्यामें इतने मन्दिर नहीं थे और परिक्रमा भी इतनी सुकर नहीं थी; पर अपने इष्टसे सम्बन्धित वस्तुएँ कितनी सुखद होती हैं, इसे श्रद्धा-भक्तिपूर्ण भक्त-हृदय ही जानता है।

पर शाहसाहेबकी बड़ी विचित्र स्थिति थी। उनका पवित्रतम हृदय भगवान् श्रीरामकी वियोगाग्निमें झुलसा जा रहा था और दूसरी ओर पुजारी इन्हें मन्दिरमें प्रविष्ट नहीं होने देते थे। इस कठिनाईमें इनकी दर्शन-लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जा रही थी। महात्मा वसाली दिन-रात छटपटाने लगे। वे सम्पूर्ण रात्रि रोते-रोते बिता देते। पर,

जिसको हम चाहें न चाहे वह हमको।
दिल से लेकिन उसको चाहा चाहिये॥

महात्मा वसालीकी व्याकुलता इतनी बढ़ गयी कि इन्हें क्षण-क्षण भी विषतुल्य प्रतीत होने लगा। यह स्थिति उनका दिलदार यार कैसे सह सकता था? वह तो अपने प्रेमियोंके लिये अपना सर्वस्व नहीं, अपने-आपको दे देता है। उनपर अर्पित हो जाता है। उनके लिये पृथ्वीपर उतर आता है। आकाशवाणी हुई—

'वसाली! जल्दी आ! मैं तुम्हारे लिये तड़प रहा हूँ!'

शाहसाहेबके आनन्दका क्या कहना! 'इतने दिनों बाद आखिर उसने मेरी सुन ली; सुन ही नहीं ली, मेरे लिये वह भी तड़पने लगा!' शाहसाहेबका शरीर पुलकित हो गया। नेत्रोंसे आँसू उमड़ पड़े और फिर पण्डितजीके द्वारा याद किये हुए श्लोककी एक पङ्क्ति, जो उन्हें याद थी, उनके मुँहसे निकल पड़ी—

'रमानाथो रामो वसतु

एक दिनकी बात है। पण्डितजी बसाली साहबसे मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर थे। उन्हें लगा, जैसे आज कथामें महात्मा बसाली अवश्य पधारेंगे और कथामें पण्डितजीकी दृष्टि चारों ओर बसाली साहबको ही खोज रही थी; पर अन्ततक उनके दर्शन नहीं हुए। कथा समाप्त हो गयी। श्रोता आरती लेकर चलने लगे, तब पोथी बाँधते हुए अत्यधिक दुःखी और उदास मनसे पण्डितजीने कहा—

'रंग पीले पड़ गये जिनके लिये।
वे शाहजी आये न दम भर के लिये ॥'

उसी समय शाहसाहेब वहाँ उपस्थित हो गये। व्यासासन पूजन था, इस विचारसे उन्होंने दूसरे ही पाँच दाने चनेके पोथीपर फेंके। चनेके दाने पोथीपर न पड़कर नीचे गिर गये। वहाँ बैठे दो एक व्यक्तियोंने उन चनेके दानोंको उठाकर देखा, वे चने नहीं, सुवर्णके दाने थे। उन्हें पण्डितजीको दे दिया। यह देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये।

पण्डितजीके हर्षकी सीमा नहीं थी। उन्होंने तत्क्षण व्यासासनसे उतरकर शाहजीका अभिनन्दन किया और अपने अयोध्या आकर कथा बाँचनेका हेतु भी उन्हें बता दिया।

शाहजी बोले—'यहाँसे अवकाश मिलनेपर प्रमोद-वनमें बेर-वृक्षके नीचे आ जाना।'

कुछ देर बाद पण्डितजी प्रमोद-वन चलनेके लिये प्रस्तुत हुए तो कितने लोग उनके साथ चलने लगे। पण्डितजीने उन्हें समझा दिया कि 'आपलोगोंके साथ रहनेसे शाहजीके दर्शन नहीं होंगे। अतएव आपलोग कृपापूर्वक लौट जायँ।'

पण्डितजीके समझानेसे सब लोग लौट गये, किंतु एक व्यक्ति चोरीसे उनके पीछे पीछे चला। पण्डितजी प्रमोद-वनमें बेर-वृक्षके नीचे पहुँचे तो वहाँ शाहसाहेबका पता नहीं था। पण्डितजी वहीं बैठ गये और बैठे ही रहे। उनके पीछे चोरीसे आया हुआ व्यक्ति निराश होकर लौट गया। उसके चले जानेके अनन्तर उसी बेर-वृक्षके नीचे बसाली साहब प्रकट हो गये।

पण्डितजीने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनीत वाणीमें कहा—'आपके अनुग्रहसे धन तो प्राप्त हो गया, अब आप कृपापूर्वक दैन्य प्रदान कीजिये।'

'ठीक है।' महात्मा बसालीने पण्डितजीको हुक्म दिया। 'आज जो कुछ कथामें मिला है, कल सब दान कर देना और रात्रिमें इसी स्थानपर आ जाना। अकेले आना। अपने साथ किसीको मत लाना।'

'जैसी आज्ञा।' पण्डितजीने हाथ जोड़ा ही था कि महात्मा बसाली अदृश्य हो गये।

पण्डित टेकचंदजी लौट आये। वे मन-ही-मन प्रसन्न थे। प्रातःकाल पुण्यमयी सरयूमें स्नान कर प्रभुका दर्शन पूजन किया और जो कुछ पास था, पण्डितजीने सब दान कर दिया। उनके पास अपना कुछ भी नहीं रहा।

रात्रिमें पूर्णतया भिक्षुककी तरह पण्डितजी प्रमोद-वनमें उसी बेर-वृक्षके नीचे पहुँचे। उस समय वहाँ महात्मा बसाली प्रभुके ध्यानमें तल्लीन थे। वे जैसे स्वयं श्रीराम हो गये थे।

'मैं आपका सेवक आपके हुक्मके मुताबिक सेवामें हाजिर हूँ।' पण्डित टेकचंदजीने विनयपूर्वक निवेदन किया।

'आ गये?' महात्मा बसालीने नेत्र बंद किये ही कहा—'अच्छा किया। अच्छा बोलो'—

मासुकीमाने चव दिल दारेम।
रम् न दुनिया वहीं नमी आरेम ॥
मुल मुल्केम कला कलम न कदर।
ओलवाद मुरा न गुन्नारेम ॥
मुरी दस्ते दाकर रहद् खेन।
ज़ेहरे दुर्र मंच रामारेम ॥

इसे पहले बसाली साहब बोलते थे, पीछे पण्डित टेकचंदजी दुहराते जाते थे। अन्तमें बसाली साहब बोले—'अच्छा! अब मस्त-अलमस्त हो जा।'

'मैं आपका सेवक टेकचंद हूँ।' पण्डितजीने कहा।

'हाँ, हाँ, ठीक है।' बसाली साहब आँख मूँदे ही कहते जा रहे थे। 'मस्त-राम हो जा।'

पण्डितजीपर जैसे नशा छा गया। आश्चर्यकी बात है वे भी प्रभु-प्रेमोन्मत्त हो गये। उन्हें अपना भान नहीं रहा। उनका जीवन धन्य हो गया। वे अपने परमाराध्य श्रीरामसे जैसे मिल गये। उनका जैसे पृथक् कोई अस्तित्व ही नहीं

क्षमा-प्रार्थना एवं नम्र निवेदन

यमेकरूपं वेदविदो वरिष्ठ-
मादित्यचन्द्राग्न्यसुप्रभावम्।
सर्वात्मकं सर्वगतस्वरूपं
नमामि रामं तमसः परस्तात्॥

'जो संसारके स्रष्टा, वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, सूर्य, चन्द्रमा और अग्निके समान उत्तम प्रभाववाले, सर्वस्वरूप, सर्वत्र व्यापक और तमसे परे हैं, उन भगवान् श्रीरामको मैं प्रणाम करता हूँ।'

भगवान् श्रीरामकी अहैतुकी कृपा, परमश्रद्धेय नित्य-लीलालीन हमारे भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की चिन्मय विग्रहसे की गयी आत्मीयतापूर्ण सँभाल तथा पूजनीय संतों, महात्माओं, विद्वानों, लेखकों, सहयोगियों, सज्जनों आदिके अनुग्रहपूर्ण सहयोगसे 'श्रीरामाङ्क' इस रूपमें समाप्त हो रहा है। परिपाटीके अनुसार अङ्ककी समाप्तिपर सम्पादककी ओरसे 'क्षमा-प्रार्थना और नम्र निवेदन' आना चाहिये। अतएव 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' के सिद्धान्तको स्वीकारकर कुछ पङ्क्तियाँ लिख रहा हूँ। किंतु मेरा हृदय भर आ रहा है; साथ ही संकोच, ग्लानि और लज्जाके भाव मुझे इससे विरत कर रहे हैं। 'कल्याण' एक विशुद्ध आध्यात्मिक पत्र है, अतएव इसके सम्पादकका जीवन पूर्णतया अध्यात्मनिष्ठ होना चाहिये। 'कल्याण'के विकासमें परमश्रद्धेय श्रीभाईजीकी आध्यात्मिक स्थिति ही प्रधान हेतु रही है। उनका जीवन पूर्णविश्वास, भगवत्प्रेम, भगवद्भक्ति, ज्ञान एवं निष्काम कर्मका मूर्तिमान् आदर्श था। गीताके सोलहवें अध्यायमें वर्णित दैवी सम्पदाके गुण सहज एवं स्वाभाविकरूपसे उनमें प्रतिष्ठित थे। जो कुछ वे 'कल्याण'में लिखते थे, वह सब उनमें था। उनके पवित्र जीवन, पवित्र वाणी, पवित्र लेखनी, पवित्र दृष्टि, पवित्र विग्रहसे नित्य-निरन्तर भगवद्रसकी दिव्य-प्रेमकी अखण्ड सुधा-धारा प्रवाहित होती रहती थी और वह जगत्‌के जीवोंको सहज ही अमृतत्व प्रदान करती थी। यही हेतु है कि 'कल्याण'का छोटा सा पौधा सहजरूपसे विकसित होकर हुआ आज इस रूपमें जनता-जनार्दनकी सेवा कर रहा है। 'कल्याण'की सेवामें श्रद्धेय श्रीभाईजीने अपने जीवनका सर्वस्व तथा शरीरका कण-कण होम दिया था। वास्तवमें 'कल्याण' और श्रीभाईजी पर्याय हो गये हैं। 'कल्याण'के लिये की गयी उनकी सेवाओंका वर्णन कोई क्या कर सकता है; वह तो अनुभवगम्य है, उसका वाणीमें आना सम्भव नहीं है।

पर विधिकी विडम्बनासे हमारे परमश्रद्धेय श्रीभाईजी गत चैत्र कृष्ण १०, श्रीकृष्ण संवत् ५१९६, तदनुसार २२ मार्च १९७१ को प्रातःकाल ७ बजकर ५५ मिनटपर पाञ्चभौतिक कलेवरका परित्याग कर—हम सबको छोड़कर भगवान्‌की नित्यलीलामें लीन हो गये और उनके स्थानमें इस विशाल 'कल्याण'रूपी वृक्षकी सार-सँभालका भार किसको सौंपा जाय—यह प्रश्न उपस्थित हुआ तथा मेरे सर्वथा न चाहनेपर भी गुरुजनों, सज्जनों, आत्मीयजनोंके अनुरोधके कारण अपने सर्वथा अयोग्य एवं निर्बल कंधोंपर उसके सम्पादनका भार मुझे स्वीकार करना पड़ा। इस भारको वहन करनेके लिये उस समय मैं अपनेको सर्वथा अक्षम अनुभव करता था और आज भी कर रहा हूँ। यद्यपि 'कल्याण'के सम्पादकके रूपमें मेरा नाम भी गत १७-१८ वर्षोंसे प्रकाशित होता रहा है, तथापि यथास्थितिका निर्देश करते समय इस तथ्यको स्पष्ट करना मेरा कर्तव्य है कि 'कल्याण'का सारा भार अकेले श्रीभाईजी ही वहन करते थे। क्योंकि उनका स्वास्थ्य बहुत क्षीण था, भीषण व्याधियाँ उनके पाञ्चभौतिक शरीरको जर्जर एवं अशक्त कर रही थीं, परंतु फिर भी चारपाईपर बैठे-बैठे अथवा लेटे-लेटे वे 'कल्याण'का कार्य सम्पन्न करते रहे और यह क्रम अन्तिम समयतक चलता रहा। सम्पादकके रूपमें अपने पावन एवं गौरवशाली नामके साथ मेरा नाम वे अपने वात्सल्यवश मुझे प्रोत्साहित करने और मेरी सम्मानकी वासनाको पूर्ण करनेके लिये ही जोड़ दिया करते थे। मेरे अंदर न तो साधन-बल है न आध्यात्मिक अनुभव, न त्याग न तप, न शास्त्रज्ञान न शास्त्रनिष्ठा, न दैवी सम्पदाकी पूँजी और न शुद्ध विचार। इसके अतिरिक्त न भगवान्‌की वाणी तथा शास्त्रों, ऋषियों, भक्तों, ज्ञानियों आदिके वचनोंके रहस्यको भाषाका रूप देनेकी क्षमता ही मेरी लेखनी-में है। इस प्रकार 'कल्याण'-जैसे पत्रके सम्पादकमें जैसी और जितनी योग्यता होनी चाहिये, उसका मैं अपने अंदर सर्वथा अभाव अनुभव करता हूँ। परंतु भगवान्‌की अहैतुकी कृपा, श्रद्धेय श्रीभाईजीकी उदार आत्मीयता तथा कृपालु संतों, महात्माओं, आचार्यों, विद्वानों, लेखकों, भक्तों आदिके आशीर्वाद एवं सहयोगका अवलम्बन लेकर इस भारकी वह यात्रा पूर्ण कर रहा हूँ। यह यात्रा कैसी हुई है तथा इस